

स्वाध्याय

स्वमन्थन

स्वावलम्बन

30 प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)



इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04 (N)

इतिहास भारत : प्राचीन काल से 8वीं सदी ईस्वी

प्रथम खण्ड - पर्यावरण और अनुकूलन का आरंभिक स्वरूप

द्वितीय खण्ड - हड़प्पा की सभ्यता

तृतीय खण्ड - प्राचीन भारतीय समाज का विकास

चतुर्थ खण्ड - छठी से चौथी शताब्दी ई.पू. तक

पंचम खण्ड - राज्यतंत्र, समाज और अर्थव्यवस्था : 320 से 200 ई.पू. तक

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013



उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04(N)

इतिहास

भारत: प्राचीन काल से
8वीं सदी ईस्वी

खंड

1

पर्यावरण और अनुकूलन का आरंभिक स्वरूप

इकाई 1

भारत: प्राकृतिक विशेषताएं

9

इकाई 2

भारतीय इतिहास में क्षेत्र: गठन एवं विशेषताएं

25

इकाई 3

शिकारी-संग्रहकर्त्ता: पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य

38

इकाई 4

भारत: प्राचीन काल से 8वीं सदी ईस्वी

आपने मानविकी तथा सामाजिक विज्ञानों (एफ. एच. एस.-1) के आधार पाठ्यक्रम के खंड "सामाजिक विकास के चरण" (खंड 1) में पढ़ा कि मानव समुदायों ने किन युगों से विकास यात्रा की। आपने यह भी पढ़ा कि एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हुए मानव समाजों के संगठन में किस तरह के परिवर्तन आये। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सभी देशों में मानव समुदायों में समान गति से परिवर्तन नहीं हुए। और यह भी कि जो परिवर्तन हुए वे सब जगह समान नहीं थे। इसीलिए जब हम इतिहास के विभिन्न चरणों में भारतीय समाज का अध्ययन करते हैं, तो हमें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि भारत में जो भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए वे अन्यत्र, जैसे चीन या यूरोप के इतिहास में, हुए परिवर्तनों के ही समान थे। यह सही है कि कई समाजों में हुए परिवर्तनों का स्वरूप कुछ-कुछ समान है। जैसे, भारतीय समाजों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जब मानव ने शिकारी जीवन तथा अन्न संग्रह करके गुजारा करने की स्थिति से पशु पालन और कृषि के जीवन में प्रवेश किया। इसी के आगे के एक चरण में राज्य संगठन का उदय हुआ। ये परिवर्तन अन्य कई समाजों में भी भिन्न कालों में दिखायी पड़ते हैं, लेकिन इन सामान्य परिवर्तनों में हर समाज में सूक्ष्म अंतर भी मिलते हैं।

जब हम भारतीय इतिहास का अध्ययन करें तो हमें दो बातें जान लेनी चाहिए:

- 1) भारतीय इतिहास के परिवर्तन के प्रमुख चरण कौन-कौन से थे और ये कैसे हुए ?
- 2) भारतीय समाज में अन्य समाजों से भिन्न कहे जाने वाली कौन-कौन सी विशिष्ट संस्थाएँ और सांस्कृतिक तत्व हैं ?

भारतीय इतिहास की अवधि बहुत बड़ी है। लेकिन इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको भारत के प्राचीन काल से 8वीं सदी ईस्वी तक के इतिहास के प्रमुख चरणों से परिचित कराना है। जब हम प्राचीन काल के इतिहास की बात करते हैं, तो हम अपने इतिहास के "मध्यकालीन", "आधुनिक" आदि अन्य कालों की धारणा का संकेत कर रहे हैं। इस पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद आप मध्यकालीन इतिहास तथा आधुनिक इतिहास के बारे में पढ़ेंगे, पर अभी आपके मन में यह प्रश्न कौंध रहा होगा कि प्राचीन इतिहास से हमारा क्या अभिप्राय है और साथ ही इस प्रकार के विभाजन के पीछे अंतर का क्या आधार है ? वे कौन से तत्व या प्रवृत्तियाँ हैं जो प्राचीन को हमारे इतिहास के अन्य युगों से अलग करती हैं ? सच्चाई तो यह है कि इस प्रश्न का उत्तर देना इतना सरल नहीं है जितना इनको विभाजित करके दिखाना। वास्तव में अपने देश के इतिहास को तीन युगों में विभाजित करने के पीछे यूरोपीय इतिहास लेखन का प्रभाव तो रहा ही है। हालाँकि यह काल-विभाजन निराधार नहीं है, लेकिन आज तक इतिहासकार इस प्रश्न पर तर्क करते दिखाई देते हैं कि कौन-सा युग कब समाप्त हुआ और कौन-सा कब शुरू हुआ, क्योंकि काल विभाजन करते समय जो सीमा-रेखा बनाई गई, वह उस रूप में संभव नहीं हो सकती।

किसी भी देश के इतिहास का काल-विभाजन करते समय दो कालों के बीच बहुत स्पष्ट सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। लेकिन हम दोनों युगों के मध्य पाई जाने वाली प्रमुख सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं एवं प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करके उनमें भेद दिखा सकते हैं और इस रूप में उन्हें अलग कर सकते हैं। इस प्रकार इतिहासकारों ने यह महसूस किया कि ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं के कारण हमारे इतिहास में प्राचीन काल का निर्धारण हो पाया। छठी-सातवीं शताब्दी (ईसा पूर्व) से ही इसमें परिवर्तन प्रारंभ हो गए थे। हालाँकि कभी भी पूर्ण रूप से युगों के बीच स्पष्ट विभेद नहीं हो पाया। पुराना समाप्ति की ओर बढ़ा और साथ ही नए युग का प्रारंभ उसमें पहले से ही शामिल हो गया। जैसे वसंत का प्रारंभ पतझड़ की समाप्ति से ही शुरू हो जाता है। नया काल पूर्व-काल की समाप्ति पर ही आकार ग्रहण करना प्रारंभ कर देता है। उदाहरण के लिए, राजनैतिक संगठन का गणतंत्रिक रूप, जो उत्तर भारत के विभिन्न भागों में "गुप्त वंश" तक प्रचलित था, चौथी शताब्दी ईस्वी से लुप्तप्रायः हो गया। आर्थिक क्षेत्र में नए प्रकार के "कृषक संबंध" अस्तित्व में आए। जाति-प्रथा जो पूर्व वैदिक काल से अस्तित्व में आ गयी थी, गुप्तवंश के परवर्ती काल में नए रूप धारण करने लगी। साथ ही प्रादेशिक संस्कृतियों के कुछ तत्व, जैसे

प्रादेशिक भाषाएँ गुप्त-उत्तर काल में नए रूप में परिणत हुई। ये सारे परिवर्तन संभवतः इंगित करते हैं कि 7वीं-8वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास का एक नया चरण शुरू हो रहा था। हालाँकि हमारा यह सोचना गलत होगा कि पिछले युग से इसमें कोई आमूल परिवर्तन आ गया था।

एक और महत्वपूर्ण सवाल है जो आप स्वयं ही उठाना चाहेंगे। इतने सुदूर अतीत में जो ऐतिहासिक घटनाएँ घटीं और जो परिवर्तन हुए उनके बारे में हम कैसे जानते हैं? दूसरे शब्दों में, जब इतिहासकार अतीत के बारे में लिखते हैं तो उसके पीछे क्या आधार रहता है, जबकि वे अतीत को देख नहीं सकते। इसका सहज उत्तर यह है कि सभी युगों के मानव-समाज अपने पीछे अपने रहन-सहन से संबंधित कुछ प्रमाण और कुछ संकेत छोड़ गए हैं। उदाहरण के लिए, (जैसा कि आप खंड-1 में पढ़ेंगे) शिकारी तथा भोजन संग्रह करने वाले समाज के रूप में रहने वाले मानव-समुदाय अपने पीछे वे पत्थर के हथियार छोड़ गए हैं जिनका वे इस्तेमाल करते थे। इसी तरह का एक दूसरा प्रमाण है वे चित्र, जो उन्होंने अपनी गुफाओं की दीवारों पर चित्रित किये। वास्तव में इस प्रश्न का इस तरह हल देना भी इतना सहज नहीं है। हमें यह खोजना होगा कि प्राचीन मानव ने किस प्रकार के प्रमाण अपने पीछे छोड़े हैं और यह अध्ययन भी करना होगा कि उन प्रमाणों से क्या अर्थ निकाला जा सकता है। प्रायः इस तरह के प्रयत्न में कई प्रकार के विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए, एक पत्थर के औज़ार को सिर्फ देखकर यह नहीं बताया जा सकता कि वह कैसे बनाया गया। यह काम केवल एक प्रागैतिहासिक पुरातत्ववेत्ता ही कर सकता है जिसने इस तरह की सूचना प्राप्त करने की विशेषज्ञता प्राप्त की है। अगर कोई पुरातत्ववेत्ता प्राचीन शिकारियों द्वारा मारे गए प्राणियों के अवशेष खोज निकालता है, तो उन प्राणियों की पहचान एक दूसरे विशेषज्ञ यानि जीवाश्मविज्ञानी द्वारा ही हो सकती है। इसी तरह ऐसे अवशेषों के काल का पता लगाने के लिए एक और वैज्ञानिक की आवश्यकता होगी, जो प्रयोगशाला में प्रयोगों के आधार पर काल निर्धारण कर सके।

इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी वस्तुओं के बारे में जानकारी के लिए विविध प्रकार के विशेषज्ञों की आवश्यकता है। अगर आप किसी युग के बारे में अध्ययन कर रहे हों जिसमें धातु के सिक्के प्रयोग में आते थे, तो “सिक्का-विशेषज्ञ” उन सिक्कों के बारे में कई प्रकार के विवरण दे सकते हैं, लेकिन उन सिक्कों के धातु मिश्रण के बारे में सूचना वैज्ञानिक परीक्षण से कोई वैज्ञानिक ही दे सकता है। इसी तरह केवल शिलालेख विशेषज्ञ ही अतीत की भाषाओं में, विविध लिपियों में लिखे शिलालेखों के अर्थ को स्पष्ट कर सकता है। मध्यकाल में दिल्ली के बादशाह फीरोज़ शाह तुगलक दिल्ली में अशोक-स्तंभों को लाए, जिन पर किसी अपरिचित लिपि में लेख खुदे हुए थे (आप इस तरह का एक स्तंभ दिल्ली के फीरोज़ शाह-कोटला में अब भी देख सकते हैं), लेकिन उस समय के विद्वान भी उन अक्षरों को नहीं पढ़ सके। कई शताब्दियों के बाद ही अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के एक कर्मचारी जेम्स प्रिंसेप ने कड़े परिश्रम के बाद अंततः उन शिलालेखों एवं अन्य कई अशोक शिलालेखों की लिपि को पहचाना।

इस प्रकार के उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि अतीत के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिए इतिहासकारों को कितना परिश्रम करना पड़ता है। पुराने समाज की वस्तुओं के अवशेष तथा अभिलेख जिनसे इतिहासकार सूचना प्राप्त करते हैं, इतिहास के स्रोत कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, आप जान चुके हैं कि शिकारी/संग्रही समुदायों ने अपने पीछे कोई लिखित अभिलेख नहीं छोड़े हैं, क्योंकि उन्हें लिखने की कला नहीं आती थी। यहाँ तक कि लेखन कला का विकास हो जाने पर भी सभी लिखित अभिलेखों की प्रकृति समान नहीं थी। इसलिए इतिहासकारों को उन सभी स्रोतों पर निर्भर होना पड़ा जो उन्हें प्राप्त हुए और उसी आधार पर अतीत का निर्माण भी हुआ। उस अतीत के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का यह मतलब नहीं है कि इतिहासकारों ने उन स्रोतों से उपलब्ध सामग्री एवं सूचनाओं का मात्र उल्लेख किया, बल्कि उसका तार्किक विश्लेषण भी किया तथा उसे सुरक्षित एवं रोचक ढंग से भी प्रस्तुत किया जिससे हम उस विषय वस्तु याने तत्वों को समझ सकें, जो प्राचीन युग से आज तक बचे हुए हैं एवं सुरक्षित हैं। साथ ही उन्होंने इनमें आपसी संबंध स्थापित करने के भी प्रयास किए। अगर पुरातत्ववेत्ता आज प्रस्तुत युग के विभिन्न हथियारों को हमारे समक्ष रख दे, तो हम यह बताने में समर्थ नहीं होंगे कि इनको किस प्रकार बनाया गया था या इनका प्रयोग किस आवश्यकता के लिए किया गया। साथ ही हमारे लिए यह बताना भी असंभव होगा कि जिस काल में ये हथियार बने उसके प्रयोजनों

की तुलना में दूसरे काल में बने हथियारों से ये किन-किन रूपों में भिन्न हैं, याने पर्यावरण में, भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया में, मानव समुदाय के सामाजिक संगठन में और यहाँ तक कि परम्पराओं एवं विश्वासों में भी। एक अन्य उदाहरण लीजिए। लिखित सामग्री के अध्ययन से तथा पुरातत्ववेत्ताओं की खोजों से पता चलता है कि गंगा घाटी में शहरों का छठी शताब्दी ई. पू. तथा चौथी शताब्दी ई. पू. में उदय हो गया था। चूँकि यह इस प्रदेश के इतिहास में एक नया आयाम है, आवश्यकता इस बात की है कि इतिहासकार इस दृष्टिकोण से हमें समझाएँ कि जो शहर उदित हो गए उनका संदर्भ उस युग की सामाजिक स्थिति से कहाँ तक जुड़ता है, और वे इससे क्या निष्कर्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं।

इस प्रकार की व्याख्याओं एवं तार्किक विश्लेषण से इतिहासकार हमें सोचने के लिए तथा विविध प्रकार के प्रश्न पूछने के लिए उकसा सकते हैं, जो अतीत को समझने में मदद दे सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य ज्ञान के क्षेत्रों के समान इतिहास लेखन भी बदलता रहता है, उसकी दृष्टि बदलती है। इससे कुछ हद तक स्पष्ट हो सकता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में इतिहासकार क्यों सिर्फ राजाओं और उनकी उपलब्धियों के बारे में लिखने से दूर हट गये और किस तरह उन्होंने समाज के विविध आयामों और उसमें हुए परिवर्तनों के कारकों को नजर में रखा। इतिहासकारों के बीच में भी व्याख्या और विवरण में अंतर हो सकता है, विविध ऐतिहासिक घटना क्रमों के वर्णन में मतभेद हो सकता है। पुरातत्ववेत्ता, शिलालेख विज्ञानी, सिक्का-विशेषज्ञ तथा अन्य लोगों द्वारा प्रकाश में लाए गए नए स्रोतों के साथ अब चीजों को देखने की नई दृष्टि है और वे नए प्रश्न हैं जिनके कारण अतीत के संबंध में हमारे ज्ञान का विस्तार होता जा रहा है और यह ज्ञान इस नयी दृष्टि के कारण सीमित नहीं रहता।

प्राचीन भारतीय इतिहास का यह पाठ्यक्रम, जो आप पढ़ने जा रहे हैं, नौ खंडों में विभाजित है। हर खंड में कई इकाइयाँ हैं। हर खंड में किसी युग विशेष से संबंधित एक प्रमुख विषयवस्तु है जो हमारे देश के प्राचीन काल के इतिहास के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

खंड I में भारत के भौगोलिक क्षेत्रों का विवरण है। इस खंड में यह भी चर्चा है कि किस प्रकार विविध ऐतिहासिक शक्तियों के मिलने के फलस्वरूप कुछ प्रमुख क्षेत्र उभर कर आए। यह खंड इस क्षेत्रीय ढाँचे के संदर्भ में ही प्राचीन संस्कृतियों की महत्वपूर्ण समस्याओं की चर्चा करता है और यह बताता है कि धातु के औजार बनाने के पहले से ही किस तरह मानव ने भोजन संग्रह से अन्न-उत्पादन में कदम रखा।

खंड II में हड़प्पा सभ्यता के विविध पहलुओं की चर्चा है। यह सभ्यता अचानक ही उठ खड़ी नहीं हुई; यह कई सदियों तक बनी भी रही। इस सभ्यता का विस्तार पूरे भारत में नहीं हुआ, भारतीय उपमहादीप के ही कुछ क्षेत्रों में हुआ। वास्तव में भौगोलिक दृष्टि से यह “कांस्य-युग” के विश्व की सबसे व्यापक सभ्यता थी और उस सभ्यता के विविध आयामों की जानकारी हमें उस समय के अवशेषों से मिलती है।

यही क्षेत्रीय ढाँचा भारतीय उपमहादीप के विविध क्षेत्रों में, जिनमें कृषि और पशु पालन ग्रामीण भारतीय जीवन का आधार बना, पत्थर तथा ताँबे का उपयोग करने वाली संस्कृति को समझने में उपयोगी है।

इस संबंध में खंड III में आप अध्ययन करेंगे। इस युग के लिए हमारे पास ऋग्वेद के भी प्रमाण उपलब्ध हैं। ऋग्वेद देवों की स्तुति के पदों का संग्रह है। यह उस समय की जन जातियों के जीवन का वर्णन करता है जो मुख्य रूप से मवेशीपालन करती थीं। जीवन की उस पद्धति में उत्तर-वैदिक काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में पुनः कह सकते हैं कि गंगा-तट के क्षेत्र में मुख्य रूप से मध्य गंगा तट के क्षेत्र में ईसा पूर्व की सुरुआत के मध्य से (लगभग 500 ई. पू. से) कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। खंड I में इन परिवर्तनों के बारे में चर्चा की गई है। इन परिवर्तनों की एक प्रमुख दिशा है क्षेत्रीय राज्यों का उदय और राज्य-संगठन का विकास। इस दिशा में आगे विकास से मगध साम्राज्य का उदय हुआ जो मौर्यों के शासन काल में सर्वोच्च स्थिति तक पहुँचा। आप इतिहास के इस चरण के बारे में खंड V में पढ़ेंगे।

खंड VI तथा VII में प्रमुख रूप में यह दिखाने का यत्न किया गया है कि अद्यपि ई. पू. 200 के बाद मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ, राज्य व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, समाज तथा धर्म के क्षेत्रों में

व्यापक परिवर्तन होते रहे। ये परिवर्तन भारत के विविध क्षेत्रों तक पहुँचे। वास्तव में इसी युग में विदेशों के साथ भारत के संपर्क कई महत्वपूर्ण स्तरों पर हुए। खंड VIII में गुप्त-वंश तथा उसके शासन के बारे में ही चर्चा नहीं है बल्कि गुप्त वंश द्वारा शासित प्रदेशों और अन्य वंशों की सत्ता वाले क्षेत्रों के समाज के विविध आयामों की भी चर्चा है। खंड IX में सामाजिक परिवर्तनों के उन विविध आयामों की चर्चा है जिन्हें प्राचीन काल की समाप्ति तथा एक नए युग के प्रवर्तन का सूचक मान सकते हैं। यहाँ उन महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर विशेष बल दिया गया है जिनसे आप स्वयं निर्णय कर सकें कि किस प्रकार और किस परिमाण में यह नया युग प्राचीन युग से भिन्न प्रतीत होता है।

हमने इस पाठ्यक्रम की इकाइयों के साथ आडियो तथा वीडियो कार्यक्रम भी तैयार किए हैं जिन्हें आप देख / सुन सकते हैं। संबंधित खंडों में इन कार्यक्रमों का उल्लेख है। निम्नलिखित दो वीडियो कार्यक्रम पूरे पाठ्यक्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें पुरातात्विक स्रोतों की खुदाई से मिले संग्रह के बारे में चर्चा है और इन स्रोतों से आप यह जान सकते हैं कि किस प्रकार मानव जीवन के रूप का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

शीर्षक: पुरातत्व एवं इतिहास

भाग I अतीत की खोज

भाग II अतीत का पुनर्निर्माण

खंड 1 पर्यावरण और अनुकूलन का आरंभिक स्वरूप

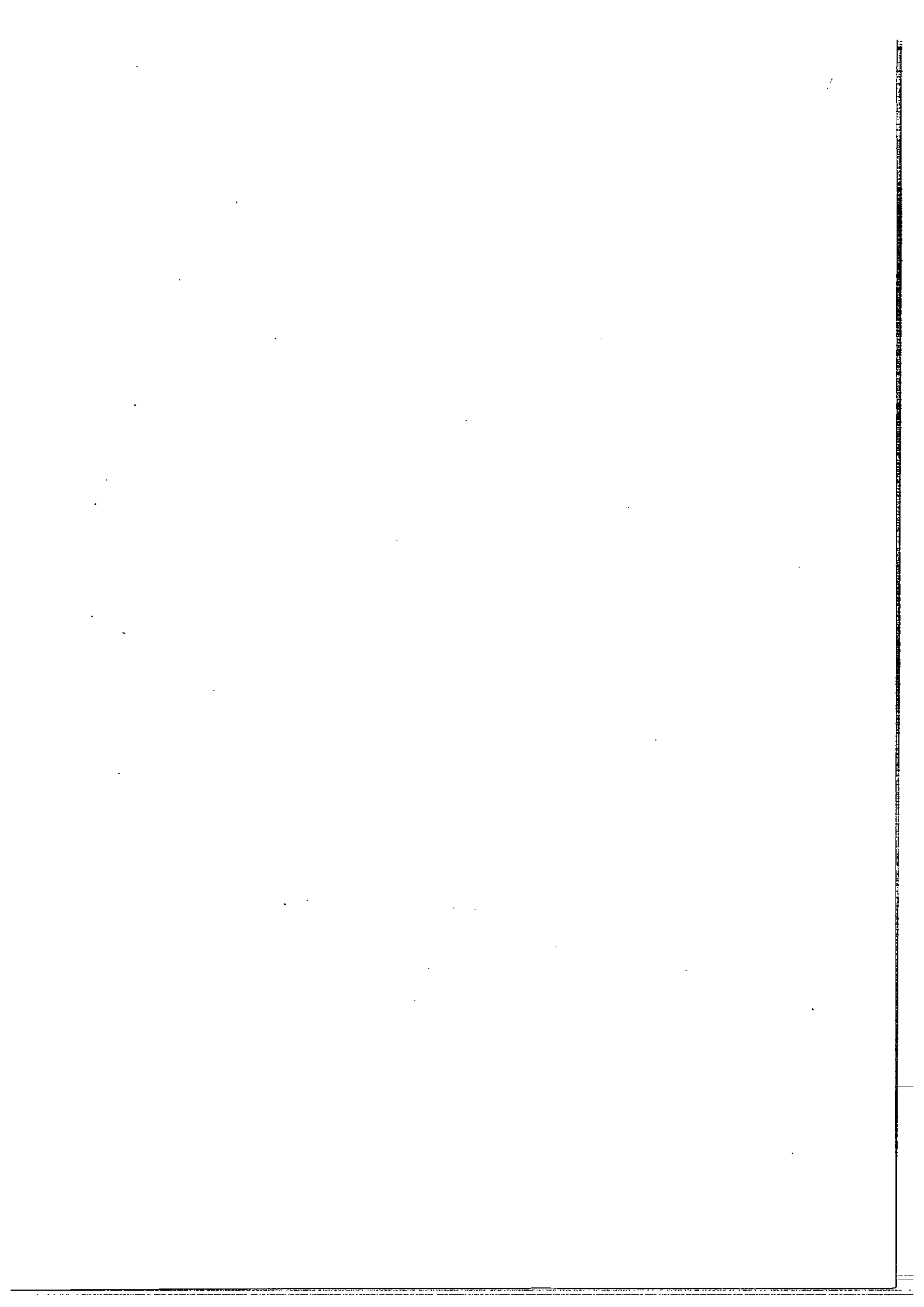
इस खंड के दो भाग हैं। पहली दो इकाइयों में आपका परिचय भारत के प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों तथा उनके उप क्षेत्रों से कराया जा रहा है। इनमें यह भी विवरण है कि इन क्षेत्रों में विविध कारकों के परस्पर संबंध के कारण किस प्रकार इतिहास का विकास हुआ। आप जानते हैं कि भारत का उपमहाद्वीप आकार में बड़ा है। उसके विभिन्न प्रदेशों में (समुद्र तल से) ऊँचाई, मिट्टी, वर्षा, जल-निकास, प्रमुख नदियों और उनकी उप नदियों की स्थिति आदि के कारण विविध लक्षण दिखायी पड़ते हैं। इन विभिन्न क्षेत्रों तथा उप क्षेत्रों के विविध लक्षणों की जानकारी हमारे लिए अनिवार्य है, क्योंकि आप बाद में पढ़ेंगे कि भारतीय उपमहाद्वीप में सब जगह मानव जीवन का व्यवहार एक जैसा नहीं था, न ही किसी काल में सभी जगह एक जैसे कार्यकलाप थे। व्यवहार के अंतर को भौतिक अंतर कुछ हद तक स्पष्ट कर सकते हैं। यह बात खासकर उस युग के संदर्भ में और भी सत्य है, जिस युग के बारे में इस पाठ्यक्रम में आप पढ़ने जा रहे हैं।

सामाजिक विकास के प्रारंभिक स्तर पर इतिहास का स्वरूप ज्यादा इस पर निर्भर था कि किस तरह मानव समुदाय अपने पर्यावरण के साथ परस्पर संपर्क करते थे। इस अंतःसंबंध की प्रकृति के आधार पर ही विविध क्षेत्रों का स्वरूप विकास हुआ। इकाई 2 में यह स्पष्ट किया गया है कि किस तरह कुछ क्षेत्रों में काफी जल्दी विकास हुआ और क्यों अन्य क्षेत्रों में विकास की निश्चित स्थिति आने में देर हुई, जबकि कोई भी क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से पूर्ण रूप से अलग नहीं रहा। इस इकाई में यह भी विवरण है कि क्षेत्रीय असमानताओं के बावजूद किस तरह उपमहाद्वीप के सारे क्षेत्रों में सामान्य रूप से सामाजिक संगठन, धर्म का स्वरूप, राजा की परिकल्पना आदि से संबंधित कई सामान्य लक्षण दिखायी पड़ते हैं। इस तरह सारे क्षेत्रों को एक सूत्र में बाँधने वाली एक सामान्य सांस्कृतिक पहचान (अस्मिता) उभर कर आयी।

इकाई 3 और 4 में आप भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक विकास के प्रारंभिक चरणों का अध्ययन करेंगे। इकाई 3 में चर्चा है कि किस तरह मानव समुदायों ने अपने आसपास के परिवेश से सामंजस्य स्थापित करते हुए उससे खाद्य पदार्थ संग्रह (इकटूठे) करके जीवन बिताया तथा इस कार्य के लिए उपकरण बनाने के उपयुक्त तरीकों का विकास किया। संस्कृति के इस चरण में परिवर्तन की गति मंद थी, फिर भी उपकरणों के जिन्हें मनुष्यों ने भोजन प्राप्त करने तथा उसे पकाने के लिए निर्मित किये, विकास के विविध चरण यह दिखाते हैं कि जलवायु तथा मनुष्य के परिवेश में परिवर्तन होते गये और मनुष्य ने इन परिवर्तनों के अनुसार जीवन में परिवर्तन करने की अदभुत क्षमता दिखायी। एक महान परिवर्तन (जिसे एक ख्याति-प्राप्त पुरातत्ववेत्ता ने "क्रांति" कहा है) तब आया जब मानव समुदायों ने कृषि तथा पशु पालन को अपनाकर भोजन स्वयं पैदा करना आरंभ किया। इस परिवर्तन को परिपक्व रूप में आने में बहुत समय लगा, क्योंकि दोनों कार्यों के लिए मनुष्य को प्रकृति से लड़ना पड़ा। प्रकृतिस्थ पौधों को भोज्य पदार्थों के रूप में अनाज आदि प्राप्त करने के लिए खेतों तक सीमित करना पड़ा। ऐसे प्राणियों को चुनना पड़ा जिन्हें पालतू बनाया जा सके और जिनका विविध प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जा सके। संस्कृति के विकास के इस चरण में एक और परिवर्तन स्वभावतः हुआ। मानव समुदायों ने एक स्थान में बने रहना प्रारंभ किया, जिसके परिणामस्वरूप इतिहास के प्राचीन गाँवों का निर्माण हुआ।

यद्यपि कृषि तथा पशु पालन के प्रारंभ का संबंध सामान्य रूप से नव पाषाण युग (या नव प्रस्तर युग) से जोड़ा जाता है (जिस नाम का संबंध इस युग से प्राप्त धिसे पत्थरों के औजारों से जोड़ा जाता है) यह सभी क्षेत्रों के संदर्भ में शायद सही नहीं है। पहले की यह धारणा कि यह परिवर्तन मूलतः (पश्चिम एशिया के) एक अंचल में प्रारंभ हुआ और वहाँ से दूसरे अंचलों तक पहुँचा, अब बदली जा रही है। इस संबंध में विद्वानों में जो भी मतभेद हों, महत्वपूर्ण बात यह है कि दूसरे क्षेत्रों की तरह भारतीय उपमहाद्वीप में भी विविध क्षेत्रों में और विभिन्न कालों में शिकार तथा भोजन संग्रह की अवस्था से कृषि तथा पशुपालन की ओर परिवर्तन भारतीय समाज के विकास के एक नये युग के प्रवर्तन का दर्शाता है।

हम यहाँ यह भी उल्लेख करना चाहेंगे कि इस खंड में चर्चित युग की संस्कृति को जानने के प्रमुख स्रोत पुरातात्विक स्रोत हैं। पुरातत्ववेत्ताओं ने विभिन्न स्थानों पर की गयी खूदाई से इसके प्रमाण प्राप्त किये हैं।



इकाई 1 भारत: प्राकृतिक विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 प्राकृतिक भूगोल और इतिहास
 - 1.2.1 पर्यावरण और मानव भस्त्रियाँ
 - 1.2.2 भौगोलिक नियतत्ववाद के विरुद्ध तर्क
- 1.3 आधारभूत भू-आकृतिक विभाजन
- 1.4 क्षेत्रीय प्राकृतिक विशेषताएं
 - 1.4.1 हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश
 - 1.4.2 सिन्धु का मैदान
 - 1.4.3 गंगीय उत्तरी भारत
 - 1.4.4 पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत
 - 1.4.5 प्रायद्वीपीय भारत
 - 1.4.6 सुदूर दक्षिण
- 1.5 सारांश
- 1.6 शब्दावली
- 1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि:

- किसी देश के इतिहास के अध्ययन के लिए इसके भौगोलिक लक्षणों और विशेषताओं की जानकारी आवश्यक क्यों है ?
- इतिहास के एक विद्यार्थी के रूप में प्राकृतिक विशेषताओं को हम किस तरह देखते हैं,
- पर्यावरण, भूगोल और इतिहास के बीच क्या सम्बन्ध है,
- भारतीय उपमहाद्वीप में ऐतिहासिक विकास का स्वरूप असमान क्यों है।

1.1 प्रस्तावना

बिना भूगोल के इतिहास प्रायः अधूरा रहता है और अपने एक प्रमुख तत्व से वंचित हो जाता है। यानी स्थान की अवधारणा के अभाव में इतिहास अपने लक्ष्य से भटक सकता है। यही कारण है कि इतिहास को मानव जाति के इतिहास और पर्यावरण के इतिहास, दोनों ही रूपों में देखा जाता है। इन दोनों को अलग करना कठिन है। मानव इतिहास और पर्यावरण का इतिहास दोनों ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मिट्टी, वर्षा, वनस्पति, जल-वायु और पर्यावरण मानव संस्कृतियों के उद् विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वस्तुतः मानव प्रगति का सार प्रकृति को नियन्त्रित करके मानव जीवन को बेहतर बनाने में है। इस सम्बन्ध में तकनीकी प्रगति पर्यावरण को अपने नियंत्रण में लाने में मनुष्य की मदद करती है। मनुष्य प्रभावशाली ढंग से अपने पर्यावरण पर नियंत्रण स्थापित करने में इतिहास के बहुत आगे के चरण में ही सफल हो पाया। अतः जब हम अपने अतीत को समझने का प्रयास करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस भूगोल, पर्यावरण और उन प्राकृतिक क्षेत्रों को समझने और जानने का प्रयास करें जिन्होंने भारतीय इतिहास को प्रभावित किया। इस इकाई में हम आपको भारतीय उपमहाद्वीप की उन प्राकृतिक विशेषताओं से अवगत कराने का प्रयास करेंगे जिनका कि भारत के ऐतिहासिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.2 प्राकृतिक भूगोल और इतिहास

मिट्टी, स्थलाकृति, वर्षा और जलवायु की विविधता ने अलग-अलग प्रकार के अनेक ऐसे क्षेत्र बनाए हैं जिनके प्राकृतिक लक्षण और पहचानें भी अलग-अलग हैं। प्राकृतिक क्षेत्र सांस्कृतिक क्षेत्रों के अनुरूप होते हैं। इन भिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास ही भिन्न प्रकार का रहा है। तात्पर्य यह है कि ये क्षेत्र भाषा बोली पोशाक, फसल, जनसंख्या घनत्व, जाति, संरचना आदि की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहार जैसे कुछ क्षेत्रों में, यानी गंगा घाटी के उपजाऊ मैदानों में जनसंख्या घनत्व बहुत अधिक है। जबकि पठारी मध्य भारत की बसावट काफी छिन्ती हुई है। इसी प्रकार मगध, कौशल, अवन्ति, महाराष्ट्र, आन्ध्र कलिंग और चोल देश जैसे कुछ क्षेत्र प्रारंभ में विकसित क्षेत्रों के रूप में उभरे, जबकि अन्य क्षेत्र विकास की दृष्टि से पिछड़े रहे। ऐतिहासिक रूप से विभिन्न प्रदेशों के उद्भव की प्रक्रिया असमान रही और विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास हुआ जो मुख्य रूप से भूगोल और पर्यावरण से संबंधित थीं और उनसे प्रभावित थीं। एक अन्य उदाहरण में हम देखते हैं कि गेहूं पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोगों का मुख्य भोजन है जबकि बंगाल, बिहार और उड़ीसा जैसे पूर्वी भारत के प्रदेशों के लोगों का मुख्य भोजन और वहां की मुख्य फसल चावल है। ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए है कि:

- विभिन्न फसलों के प्राकृतिक वास क्षेत्र भिन्न होते हैं।
- ये फसलें विशेष प्राकृतिक परिस्थितियों में उगती हैं और समय के साथ बाद में ये फसलें उस स्थान विशेष के लोगों की भोजन सम्बन्धी आदतों को प्रभावित करती हैं।

इसी प्रकार सिंचाई के साधन भी अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग हैं।

- नदियां और नहरें उत्तर भारत में सिंचाई का सर्वाधिक प्रमुख साधन रहे हैं।
- प्राकृतिक तालाब पूर्वी भारत में बहुत उपयोगी रहे हैं।
- जलाशयों द्वारा सिंचाई ने दक्षिण भारत की कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

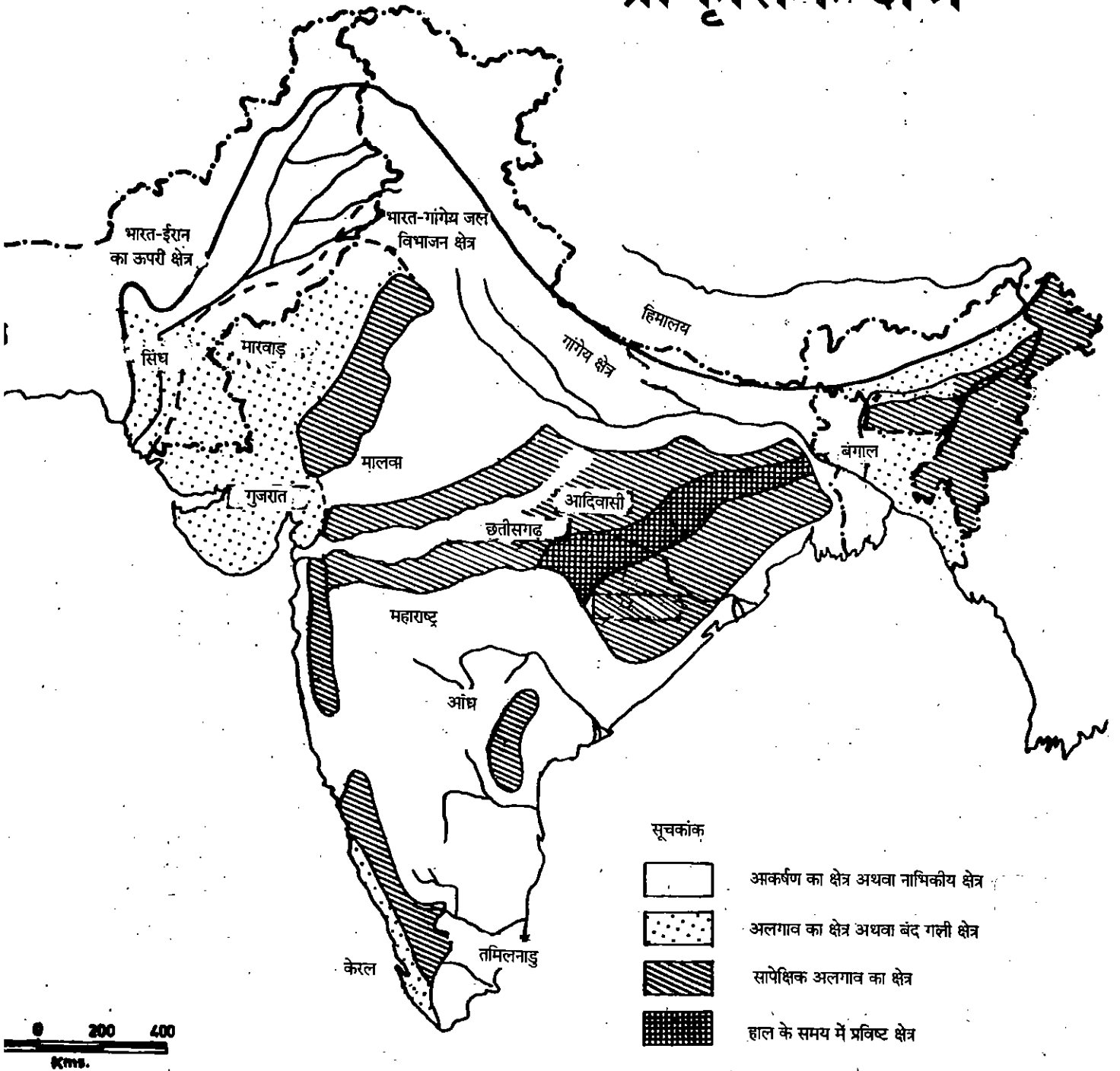
इन भिन्नताओं का अर्थ यह नहीं है कि पूर्वी या दक्षिण प्रदेशों में नदियों का महत्व नहीं रहा है। बल्कि इनसे जो बात सामने आती है वह यह है कि विभिन्न प्रदेशों में जल संसाधनों में वृद्धि के लिए लोग विभिन्न तरीके अपनाते हैं। एक क्षेत्र विशेष में अपनाया गया तरीका इस बात पर निर्भर करता है कि वह उस क्षेत्र के लिए कितना उपयोगी है।

भूगोल और पर्यावरण, वस्त्र शैलियों के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, हम कश्मीरी, राजस्थानी तथा तटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के वस्त्र और उनके पहनने ओढ़ने के तरीकों की तुलना कर सकते हैं। विभिन्न प्रदेशों की वस्त्र शैलियों पर उन प्रदेश की जलवायु और पर्यावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

गंगा के मैदान और डेल्टा उन्नत संस्कृतियों के जन्म स्थान रहे हैं, और यहां उनका युगों तक पोषण भी हुआ जबकि मध्य भारत के पर्वतीय इलाकों में अलग-अलग क्षेत्रों के आदिवासी लोगों की अच्छी बसावट रही है। इस तरह जल नदियों के मैदानों में मरपूर प्राकृतिक सम्पदा रही है और मैदानी लोगों का अपना एक विशिष्ट जीवन रहा है, वहां अलग-अलग क्षेत्रों में बसे लोगों का जीवन अन्य भू-क्षेत्रों में हुई प्रगति से अप्रभावित रहा। इसलिए भारतीय उपमहाद्वीप की वस्त्र शैली से संबंधित या भोजन सम्बन्धी आदतों या संस्कृतियों से सम्बद्ध विविधताओं के सहअस्तित्व को यहां के प्राकृतिक भूगोल के संदर्भ में ही ठीक से समझा जा सकता है।

प्राकृतिक भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा पोषित क्षेत्रीय भिन्नताएं और उनसे संबंधित भिन्न क्षेत्रीय पहचानें भारतीय इतिहास में स्थायी अखिल भारतीय राज्यों के उदय के मार्ग में बाधा बनी रही हैं। समूचा भारतीय उपमहाद्वीप कभी भी एक राजनीतिक इकाई नहीं रहा। यह बात मौर्य साम्राज्य दिल्ली सल्तनत, मुगल साम्राज्य और साथ ही ब्रिटिश भारत पर समान रूप से लागू होती है। साथ ही यहां यह बताना भी आवश्यक है कि हालांकि भौगोलिक संरचनागत क्षेत्रीय विविधताओं ने हमारे इतिहास में अखिल भारतीय राज्यों के विकास में बाधा पैदा की फिर भी इन विविधताओं ने किसी भी काल में विभिन्न राष्ट्रीयताओं को जन्म नहीं दिया।

भारत के प्राकृतिक क्षेत्र



मानचित्र 1.

1.2.1 पर्यावरण और मानव बस्तियाँ

प्राकृतिक भूगोल मानव बस्तियाँ और बसावट की शैलियों का परस्पर सम्बन्ध एक और ऐसा महत्वपूर्ण विषय है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, सिंध प्रदेश आज अपेक्षाकृत गर्म और शुष्क है क्योंकि इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है। फिर भी हम जानते हैं कि अतीत में इसी क्षेत्र के अधिकांश भागों में हड़प्पा की सभ्यता का विकास हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि उस समय इस क्षेत्र की जलवायु नम रही होगी और वर्षा भी अपेक्षाकृत अधिक होती होगी, जिसके कारण यहां उच्चस्तरीय सभ्यता का विकास हो सका और लम्बे समय तक यह सभ्यता बनी रह सकी। कुछ विद्वानों द्वारा यह तर्क भी दिया जाता है कि प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण प्राकृतिक वनस्पति के क्षेत्र को नुकसान पहुँचा और साथ ही शुष्क जलवायु पैदा होने से लोगों के जीवन-निर्वाह का आधार ही खतरे में पड़ गया। इस प्रकार यह सभ्यता नष्ट हो गई (इस विषय पर विस्तृत जानकारी के लिए देखें खंड-2 इकाई-9)।

अनुपयोगी भौगोलिक स्थितियों और भूमि तथा संसाधनों पर पड़ने वाले संभावित जनसंख्यात्मक दबाव ने लोगों को सभ्यता के इस केन्द्र से निकलने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार यह सभ्यता धीरे-धीरे नष्ट हो गई।

दूसरी ओर मगध साम्राज्य की सफलता और इस साम्राज्य द्वारा स्थापित किया गया राजनीतिक प्रभुत्व हमें आश्चर्य में डाल देता है। इसके क्या कारण थे? यह तर्क दिया जा सकता है कि इस साम्राज्य की स्थापना में कई तत्व सहयोगी बने:

- अत्यधिक उपजाऊ जमीन,
- पर्याप्त वर्षा और उससे होने वाली धान की वार्षिक अच्छी फसल,
- लोहे की खानों तथा छोटा नागपुर पठार के पत्थर और लकड़ी के स्रोतों का निकट होना,
- नदियों द्वारा पर्याप्त संचार और व्यापार की सुविधा उपलब्ध कराना,
- मानव बस्तियों की निकटता और निरंतरता, जो बहुत कुछ इन प्राकृतिक सुविधाओं के कारण संभव हुई, अत्यधिक जनसंख्या घनत्व की ओर इशारा करती है।

संयुक्त रूप से इन तथ्यों ने आसानी से उत्तरी गंगेय मैदान पर विजय प्राप्त करने में मदद दी। वास्तव में इन्हीं कारणों से सिंधु-गंगेय का मैदानी प्रदेश, कृषि उत्पादकता और जनसंख्या की दृष्टि से अन्य प्रदेशों से आगे था। उत्तरी मैदानों की ओर सीमाई विस्तार से उस समय निर्विवाद भारतीय सर्वोच्चता की स्थापना का आधार मिला। इस तरह इस क्षेत्र में एक के बाद एक घटने वाली घटनाओं को एक क्रम में देखा जा सकता है। मगध राज्य का भारत पर अधिपत्य उसकी उत्तरी मैदानों की विजय पर आधारित थी। इन मैदानों की भूमि, वर्षा, वनस्पति, सहज संचार सुविधा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि ने मगध साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने में मदद दी।

मगध के राजनीतिक प्रभुत्व के बढ़ने से इसकी राजधानी पाटलीपुत्र उत्तरी भारत की राजधानी बन गई। साम्राज्यिक राजधानी के रूप में पाटलीपुत्र का महत्व कई शताब्दियों तक बना रहा। पाटलीपुत्र के उत्थान और पतन के अनेक भौगोलिक कारण गिनाए गए हैं। पाटलीपुत्र के इतिहास के प्रारंभिक दिनों में गंगा, सोन और गंडक जैसी नदियाँ उसे प्राकृतिक संरक्षा प्रदान करती थीं। साथ ही व्यापार और परिवहन की सहज सुविधाएं भी देती थीं। लेकिन प्रथम सहस्राब्दि ईसवी के मध्य तक लगातार बाढ़ों के कारण इन नदियों का महत्व कम हो गया। यह सर्व विदित है कि गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में व्यापार की क्षति हुई और नगरों का पतन हुआ गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में उत्तर भारत में व्यापार और साम्राज्य के पतन के साथ मानव गतिविधियों के कम हो जाने और गंगा नदी का मार्ग बदल जाने से इन नदियों की उपयोगिता कम हो गई। इस काल में गंगेय उत्तर भारत में नगरों के पतन के कारणों में मीतरी क्षेत्रों में वनों की कटाई और परिणामतः वर्षा में कमी जैसे भौगोलिक कारण भी बताए गए हैं। हो सकता है कि ये कारण पूरी तरह से सही न हों। फिर भी ये उदाहरण निश्चित रूप से यह बताते हैं कि ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और भौगोलिक विशेषताओं के बीच सदैव ही निकट सम्बन्ध रहा है।

1.2.2 भौगोलिक नियतत्ववाद के विरुद्ध तर्क

यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्राकृतिक विशेषताओं और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के विकास के बीच अन्तर्सम्बन्ध को देखना और समझना एक बात है, परन्तु इतिहास को भौगोलिक नियतत्ववाद के अर्थ में देखना एक पूरी तरह भिन्न बात है। भौगोलिक तथ्यों की जानकारी से सांस्कृतिक विकास को भली प्रकार समझने में मदद मिलती है। इससे विभिन्न प्रदेशों में विकास के अलग-अलग तरीकों और शैलियों को भी समझने में सहायता मिलती है। फिर भी भूगोल और पर्यावरण को एकमात्र या प्रमुख नियामक कारकों के रूप में नहीं लिया जा सकता क्योंकि अंततः प्राकृतिक क्षेत्र मात्र संभावनाओं वाले क्षेत्र होते हैं और उन संभावनाओं को मनुष्य अपनी तत्कालीन तकनीकी उपलब्धियों के आधार पर कार्यान्वित करता है। यह कहा जा चुका है कि प्रकृति, विकास का मार्ग तय करती है। जबकि मनुष्य विकास की अवस्था और उसकी गति को तय करता है। इसलिए न तो प्रकृति का प्रभाव स्थायी होता है और न ही मनुष्य और पर्यावरण के सम्बन्ध ही सुस्थिर हैं। मनुष्य अपने अनुभव और अपने औजारों के बल पर प्रकृति द्वारा लगाई गई सीमाओं और बाधाओं पर विजय प्राप्त करता रहा है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो मानवीय अनुभव को निरंतर समृद्ध बनाती है और पर्यावरण पर मनुष्य के नियंत्रण की सीमाओं को निरंतर विस्तार देती जाती है। एक समय में जो प्राकृतिक विशेषताएं और पर्यावरण से सम्बद्ध स्थितियां प्रतिकूल प्रतीत होती हैं दूसरे चरण में वे ही समृद्ध संभावनाओं वाली हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, शिकार-जीवी लोग जंगलों के निकट, या जिन्हें आज हम सीमांत क्षेत्र कहते हैं, वहां रहना पसंद करते थे। लेकिन प्रारंभिक किसानों को लोहे आदि के हल इत्यादि के अभाव में स्वयं को गंगा-यमुना दो-आब के पश्चिम में नर्म भूमि तक ही सीमित रहना पड़ा। ये किसान, गाण्डेय उत्तरी भारत के समृद्ध जलोढ़ मैदानों पर लोहे के आगमन के साथ ही पहुंच सके और तभी वे घनी वनस्पति और भारी तथा उपजाऊ मिट्टी वाली भूमि का दोहन कर सके।

1.3 आधारभूत भू-आकृतिक विभाजन

अब हम भारतीय उपमहाद्वीप प्राकृतिक लक्षणों के और इन लक्षणों द्वारा निर्मित विभिन्न प्रदेशों की विशिष्टताओं की चर्चा करेंगे। भू-आकृतिक लक्षणों के आधार पर उपमहाद्वीप को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

- 1) हिमालय के पर्वतीय प्रदेश,
- 2) सिंधु गंगा के मैदान, और
- 3) प्रायद्वीपीय भारत।

इनमें से प्रत्येक का आगे भी विभाजन किया जा सकता है। यह माना जाता है कि हिमालय पर्वत श्रृंखला की ऊँचाई अब भी बढ़ रही है। हिमालय की पर्वतीय श्रृंखलाओं के अपक्षय और भूमि कटाव के कारण जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी निरंतर बढ़ कर भारी मात्रा में इन मैदानों में आती है। हिमालय की बर्फ के पिघलते रहने से सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र तीन बड़ी नदियों में निरंतर जल प्रवाह बना रहता है। उत्तर भारत का कछारी मैदान लगभग 3200 किलोमीटर तक एक घनुष के आकार में सिंधु के मुहाने से लेकर गंगा के मुहाने तक फैला हुआ है। लगभग 320 किलोमीटर चौड़ाई वाला यह मैदान तमाम संभावनाओं से भरा हुआ है। सिंधु के मैदान में भारतीय उपमहाद्वीप की पहली सभ्यता का विकास हुआ जबकि गंगा के मैदान में ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दि से नगर जीवन, राज्य, समाज और साम्राज्य सम्बन्धी ढांचे का पोषण और विकास हुआ।

उत्तर के मैदान और प्रायद्वीपीय भारत को, एक विशाल मध्यवर्ती क्षेत्र जिसे किसी बेहतर शब्दावली के अभाव में मध्य भारत कहा जा सकता है, अलग करता है। यह मध्यवर्ती क्षेत्र गुजरात से लेकर पश्चिमी उड़ीसा तक लगभग 1600 किलोमीटर तक फैला हुआ है। राजस्थान की अरावली पहाड़ियां सिंधु के मैदान को प्रायद्वीप से अलग करती हैं। मध्यवर्ती क्षेत्र में विंध्याचल और सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियां और छोटा नागपुर का पठार है जो बिहार, बंगाल

और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों तक फैला है। इस मध्यवर्ती क्षेत्र यानी मध्य भारत को चार उप प्रदेशों में बांटा जा सकता है:

- 1) उदयपुर और जयपुर के बीच राजपूतों की भूमि,
- 2) उज्जैन के आस-पास मालवा का पठार जो प्राचीन समय में अवन्ति के नाम से प्रसिद्ध था।
- 3) विदर्भ-या नागपुर के आस-पास का उप-क्षेत्र, और
- 4) पूर्वी मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ का मैदान जो प्राचीन काल में दक्षिण कौशल के नाम से जाना जाता था।

हालांकि सामान्य रूप में इस मध्यवर्ती क्षेत्र में संचार तथा आवागमन कभी भी आसान नहीं रहा फिर भी इन चार प्रत्यक्ष रूप से अलग-अलग उप प्रदेशों के बीच आपस में सम्पर्क बना रहा, तथा मध्यवर्ती क्षेत्र और अन्य भौगोलिक क्षेत्रों के बीच भी सम्पर्क बना रहा।

मध्यवर्ती क्षेत्र या मध्य भारत के दक्षिणी सिरे पर वह मूरचना शुरू होती है जिसे प्रायद्वीपीय भारत कहा जाता है यह एक प्राचीन भू-भाग है जिसमें स्थायित्व के सभी लक्षण मौजूद हैं। यह भू-भाग पठारी है। इस पठारी चट्टानी संरचना का झुकाव पश्चिम से पूर्व की ओर है। इसमें चार प्रमुख नदियाँ हैं जो बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियाँ हैं महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। इन नदियों के कारण इस पठारी क्षेत्र में जलोढ़ मैदान बने और इन मैदानों तथा नदियों के डेल्टाओं में मूल आवास क्षेत्रों का विकास हुआ। यहाँ दीर्घ काल तक सांस्कृतिक विकास की धारा प्रवाहित हुई जो प्राचीन काल से प्रारंभ होकर मध्य काल में होते हुए आधुनिक काल तक निरंतर बहती रही।

मध्य भारत में बहने वाली नर्मदा और ताप्ती नदियों का प्रवाह पश्चिम की ओर है। पर्वतीय मध्य भारत में लम्बी दूरी तय करने के बाद ये नदियाँ गुजरात में अरब सागर में गिरती हैं। उपमहाद्वीप के इस भाग की प्रमुख विशेषता बसकन का पठार है। यह उत्तर में विन्ध्य पर्वत श्रृंखलाओं से लेकर कर्नाटक की दक्षिणी सीमाओं तक फैला हुआ है। महाराष्ट्र तथा मध्य भारत के भू-भागों में काली मिट्टी विशेष रूप से उपजाऊ है, क्योंकि इसमें नमी बनी रहती है और इस जमीन को स्वहलित भूमि यानी ऐसी भूमि माना जाता है जिसमें जुताई की आवश्यकता नहीं होती। भूमि की इस विशेषता के कारण वार्षिक वर्षा की कमी और सिंचाई सम्बन्धी अन्य कठिनाइयाँ फसल के लिए बड़ी बाधा नहीं बनती। यह भूमि कपास, ज्वार, मूंगफली और तिलहन की अच्छी फसल देती है इसलिए यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि पश्चिम और मध्य भारत में प्रारंभिक कृषि संस्कृतियाँ (ताम्र पाषाण संस्कृति) इसी क्षेत्र में उदित हुईं। दक्षिण का यह पठार पश्चिम में पश्चिमी घाट तक फैला है और पूर्व में इसकी सीमाएं पूर्वी घाट से लगी हुई हैं। पूर्वी घाट इसको पूर्वी तटवर्ती मैदानों से अलग करता है। मैदान पश्चिम के संकरे मैदानों की तुलना में कहीं अधिक चौड़े हैं। नीलगिरी और कार्दामोम पहाड़ियाँ मूल प्रायद्वीपीय संरचना की उत्पत्ति मानी जाती हैं।

बोध प्रश्न 1

1 सही कथन पर (✓) चिह्न लगाइए।

प्राकृतिक भूगोल की जानकारी:

- i) विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की जीवन शैलियों को समझने में मदद करती है,
- ii) अतीत में सांस्कृतिक विकास की प्रकृति को समझने में कोई मदद नहीं करती,
- iii) का इतिहास के विद्यार्थी के लिए कोई महत्व नहीं है,
- iv) आपको केवल विशेष क्षेत्रों के अध्ययन तक सीमित कर देती है।

2 मगध के उत्थान की उत्तरदायी प्राकृतिक विशेषताओं का उल्लेख करिए। उत्तर लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

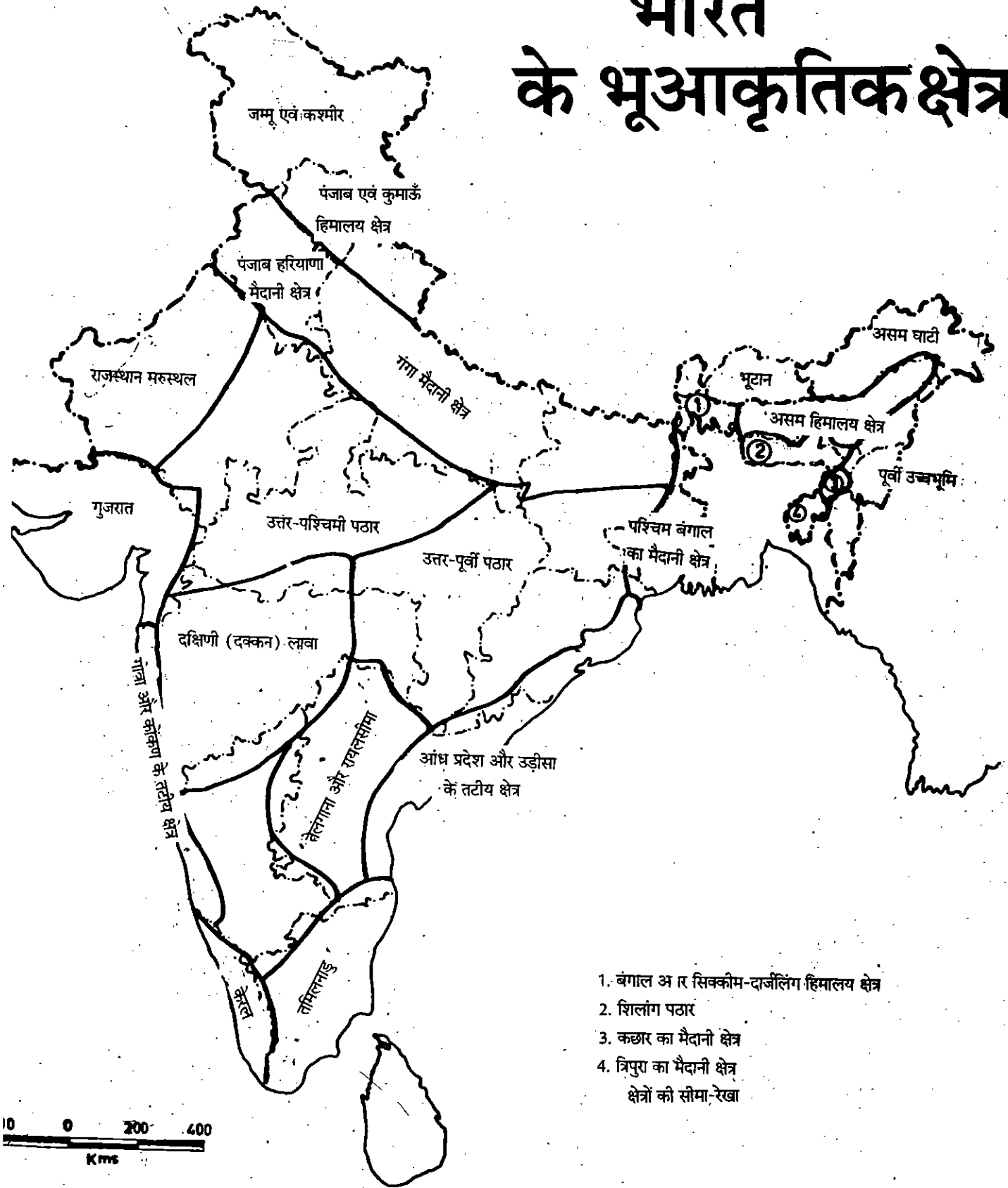
.....

.....

.....

.....

भारत के भूआकृतिक क्षेत्र



1. बंगाल और सिक्कीम-दार्जीलिंग हिमालय क्षेत्र
 2. शिलांग पठार
 3. कछार का मैदानी क्षेत्र
 4. त्रिपुरा का मैदानी क्षेत्र
- क्षेत्रों की सीमा-रेखा

3 रिक्त स्थान भरिए:

- i) भौगोलिक तथ्य मगध के ... (उत्थान और पतन/बाढ़ग्रस्त होने) के कारणों को तय करने में ... (हमारी मदद करते हैं/हमारी मदद नहीं करते हैं)
- ii) मनुष्य प्रकृति को सफलता से नियंत्रित ... (करता है/करने का प्रयास करता है)
- iii) भारत में मूल भू-आकृतिक विभाजन ... है। (पांच/दो/तीन)
- iv) मध्यवर्ती क्षेत्र में ... (मूल भू-आकृतिक/उपक्षेत्र) शामिल है।

1.4 क्षेत्रीय प्राकृतिक विशेषताएं

अभी तक हमने मोटे तौर पर भौगोलिक विभाजनों की विशेषताओं का सामान्य आधार पर विवेचन किया है। अब हम उन विशिष्ट प्रमुख भौगोलिक इकाइयों को लेंगे जो आमतौर पर भाषा पर आधारित विभाजनों को पुष्ट करती हैं, और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उनकी प्राकृतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

1.4.1 हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश

हिमालय को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है:

- पूर्वी हिमालय
- पश्चिमी हिमालय, और
- मध्यवर्ती हिमालय

पूर्वी हिमालय पर्वत श्रृंखला ब्रह्मपुत्र के पूर्व में उत्तर दक्षिण दिशा में असम से लेकर दक्षिणी चीन तक फैली हुई है। हालांकि पूर्वी हिमालय पर्वतमाला के बीच से गुजरने वाले मार्ग दुर्गम हैं फिर भी प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक कालों में दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिण चीन से सांस्कृतिक प्रभावों का आना नहीं रुका। मध्यवर्ती हिमालय पर्वत श्रृंखलाएं, जो भूटान से चित्राल तक फैली हुई हैं तिब्बत के विशाल पठार की सीमा पर स्थित हैं। भारत और तिब्बत के बीच व्यापार तथा अन्य प्रकार के सम्बन्ध इसी सीमा प्रदेश के माध्यम से बने रहे।

संकरि हिन्दुकुश पर्वत श्रृंखला हिमालय से दक्षिण पश्चिम की ओर प्राचीन गांधार प्रदेश को घेरती हुई अफगानिस्तान में दूर तक फैली है। भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से पश्चिमी अफगानिस्तान का गहरा सम्बन्ध साम्य पूर्वी ईरान से है। लेकिन दक्षिण-पूर्वी अफगानिस्तान सांस्कृतिक रूप से नवपाषाण काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप के निकट रहा है। खैबर दर्रा और अन्य दर्रे तथा काबुल नदी इस क्षेत्र को सिन्धु के मैदान से जोड़ते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अफगानिस्तान के इस भाग में स्थित शोर्टुगाई हड़प्पा की सम्यता का एक प्रमुख व्यापारिक बाह्य केन्द्र था। काबुल और कन्धार जैसे प्राचीन नगर ईरान और भारत के बीच व्यापार मार्गों पर स्थित हैं।

बलूचिस्तान की ओर चलते हुए दक्षिण पश्चिम अफगानिस्तान में रेगिस्तानी हालात काफी प्रखर रूप से सामने आते हैं। इस क्षेत्र में नवपाषाण काल से ही पशुचारण को जीवन के विभिन्न एक लाभदायक अनुकूल नीति के रूप में अपनाया जाता रहा है। बलूचिस्तान का तट-वर्ती क्षेत्र जो कि मकरान कहा जाता है, मानव बस्तियों के लिए कभी भी उपयुक्त क्षेत्र नहीं रहा। उदाहरण के लिए, भारत अभियान से वापस लौटते हुए जब सिकन्दर अपनी सेना के एक भाग को मकरान तट से होकर ले गया तो उसे भोजन और पानी की कमी के कारण भारी जन हानी उठानी पड़ी। यह प्रदेश एक प्रकार का केन्द्रीय स्थल रहा है क्योंकि यहाँ से एक ओर तो मध्य एशिया और चीन के लिए रास्ते निकलते हैं। तो दूसरी ओर ईरान और सुदूर पश्चिम की ओर रास्ते निकलते हैं।

वे सभी प्रमुख मार्ग, जो अफगानिस्तान होकर भारत के मैदानों को ईरान और मध्य एशिया से जोड़ते हैं, गोमाल, बोलन और खैबर दरों से होकर जाते हैं। ऐतिहासिक कालों अथवा उससे भी पहले से व्यापारी, हमलावर और विविध सांस्कृतिक प्रभाव इन सभी प्रमुख मार्गों से होकर भारत आते रहे। यूनानी, शक, कुषाण, हूण और अन्य हमलावर इन्हीं मार्गों से भारत आए। बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति के अन्य प्रभाव अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक इन्हीं दरों से होकर पहुंचे। इस तरह ऐतिहासिक रूप से अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र महत्वपूर्ण सीमान्त क्षेत्र रहे हैं।

1.4.2 सिंधु का मैदान

इन दरों से निकलने वाले ये मार्ग सिंधु के उपजाऊ मैदानों की तरफ ले जाते हैं। इस मैदान को दो भागों में बांटा जा सकता है:

- पंजाब, और
- सिंध

पंजाब (इस समय भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजित) का शाब्दिक अर्थ है पांच नदियों की भूमि। विस्तृत जलोढ़ मैदान के बीच से बहने वाली सिंधु नदी की पांच सहायक नदियों ने इस क्षेत्र को उपमहाद्वीप का बहु-धान्य प्रदेश बना दिया है। इस मैदान का पूर्वी भाग गंगा के घाटों से जा मिलता है। पंजाब विभिन्न संस्कृतियों का मिलन स्थल और उनके परस्पर एकीकृत होने का स्थान रहा है। पूर्व स्थापित संस्कृतियों के तथा बाहर से आने वाले नये तत्व यहाँ घुल-मिल कर एक होते रहे हैं। पंजाब की सामरिक स्थिति और यहाँ की समृद्धि सदा ही हमलावरों को आकर्षित करती रही है।

सिंधु घाटी का निचला क्षेत्र और डेल्टा मिल कर सिंध प्रदेश का निर्माण करते हैं। यह प्रदेश उत्तर पश्चिम में बलूचिस्तानी पहाड़ियों और दक्षिण-पूर्व में थार के रेगिस्तान से घिरा हुआ है इस प्रदेश के गुजरात के साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध रहे हैं। इस प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है लेकिन यहाँ की जलोढ़ भूमि बहुत उपजाऊ है। सिंध प्रदेश, सिंधु नदी का प्रदेश है और बड़ी मात्रा में चावल और गेहूँ उत्पन्न करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सिंधु मैदान में ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दि के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप की पहली नागरीय संस्कृति पनपी। इनके दो प्रमुख नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ों क्रमशः पंजाब और सिंध में स्थित हैं।

1.4.3 गाँगेय उत्तरी भारत

सिंधु के मैदान की तुलना में गंगा का मैदान जलवायु की दृष्टि से अधिक आद्र है। वार्षिक वर्षा जो सिंधु-गंगा विभाजक पर 50 सेंटीमीटर होती है वह बंगाल तक पहुंचते-पहुंचते बढ़ कर दो सौ सेंटीमीटर हो जाती है। गंगा के मैदानी क्षेत्र को तीन उप-क्षेत्रों में बांटा जा सकता है:

- ऊपरी क्षेत्र,
- मध्य क्षेत्र, और
- निचला क्षेत्र।

पश्चिम और मध्य उत्तर प्रदेश के ऊपरी मैदानी क्षेत्र में अधिकांश दोआब का इलाका शामिल है। यह संघर्ष और सांस्कृतिक संश्लेषण का क्षेत्र रहा है। हड़प्पा संस्कृति के इस क्षेत्र तक फैले होने के बहुतायत में साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। यह क्षेत्र “वित्रित घूसर या भूरे मांड संस्कृति” का केन्द्र भी था और उत्तर वैदिक काल में हलचल मरी गतिविधियों का केन्द्र इलाहाबाद (प्राचीन प्रयाग) भी दोआब की सीमा पर गंगा और यमुना नदियों के संगम पर स्थित है। गाँगेय मैदान का मध्य क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक फैला हुआ है। यह वही क्षेत्र है जहाँ प्राचीन कौशल, काशी और मगध स्थित थे। यह क्षेत्र ईसा पूर्व छठी शताब्दी से नगर जीवन, मौरिक अर्थव्यवस्था तथा व्यापार का केन्द्र रहा है। इसी प्रदेश ने मौर्य साम्राज्य के विस्तार को आधार प्रदान किया और यह भू-प्रदेश राजनीतिक दृष्टि से गुप्त काल पाँचवी शताब्दी इसवी तक महत्वपूर्ण बना रहा।

गंगा के मैदान का ऊपरी और मध्य क्षेत्र भौगोलिक रूप से उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में मध्य भारत की पर्वत श्रृंखलाओं से सीमाबद्ध होता है। गंगा के मैदान का निचला क्षेत्र बंगाल प्रान्त के साथ फैला हुआ है। बंगाल का विस्तृत मैदान, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी से निर्मित हुआ है। मैदान के निचले क्षेत्रों में

भारी वर्षा होने से यहां घने जंगल और ढल-ढल हैं। इनके कारण बंगाल में प्रारंभिक बस्तियों की बसावट में काफी बाधाएं आईं। इस जलोढ़ भूमि की उर्वरता का उपयोग तभी किया जा सका जब लौह तकनीक पर नियंत्रण और उसका प्रयोग अच्छी मात्रा में शुरू हो गया। इस क्षेत्र में मध्य क्षेत्रीय मैदान की नगरीय संस्कृति का प्रवेश अपेक्षाकृत देर से हुआ। यहां के पर्यावरण को देखते हुए तालाब और पोखर प्राचीन समय से ही बंगाल के जीवन में विशिष्ट बने रहे हैं। प्राचीन समय से ही मछली यहां के सभी वर्गों के भोजन का आवश्यक अंग रही है।

अन्य बृहद बसावट वाले क्षेत्रों की तुलना में गंगा का मैदान अनेक घनी बस्तियों वाला क्षेत्र रहा है। जनसंख्या घनत्व भी यहां अपेक्षाकृत अधिक रहा है। ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दि से ही यह क्षेत्र भारतीय सभ्यता का मुख्य केन्द्र रहा है। अति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इस प्रदेश की सह स्थिति बनी हुई है। बंगाल के मैदान से लगी हुई ब्रह्मपुत्र द्वारा निर्मित दूर तक फैली हुई असम घाटी है। यह 600 किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में फैली हुई है। सांस्कृतिक रूप से असम बंगाल के निकट है। लेकिन ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से यह प्रदेश उड़ीसा की तरह देर से विकास प्रक्रिया में आने वाला प्रदेश है।

1.4.4 पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत

मध्य भारत जैसा कि पहले बताया जा चुका है, एक पूरी तरह भिन्न प्रकार का क्षेत्र है और उसमें कोई भी ऐसा विशेष स्थान नहीं है जिसे केन्द्र स्थान मान कर बात की जा सके। यह एक पर्वतीय प्रदेश है जहां पहाड़ियां अधिक ऊंचाई तक नहीं पहुंचती। प्रपातीय ढाल इस क्षेत्र की पर्वत श्रृंखलाओं को बीच-बीच में खंडित करते हैं और घाटियां इन्हें विभाजित करती हैं। ये पर्वत श्रृंखलाएं सामान्य रूप से पूर्व से पश्चिम की ओर चलती हैं। लेकिन इस भू-आकृतिक क्षेत्र के उत्तर, पश्चिम भाग में अरावली पर्वत श्रृंखलाएं दक्षिण पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर फैली हुई हैं। अरावली पर्वत श्रृंखलाएं मरु प्रदेश राजस्थान को लगभग दो भागों में विभाजित करती हैं। अरावली पर्वत श्रृंखला के पूर्व में राजस्थान राज्य का दक्षिण पूर्वी भाग मालवा उप-क्षेत्र का एक अंग है। इस प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है। इसलिए यहां सिंचाई के अभाव के बावजूद अच्छी फसलें हो जाती हैं। इस प्रदेश में ताम्र-पाषाण युगीन बस्तियां काफी संख्या में फैली हुई हैं। इसकी भौगोलिक अवस्थाओं को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह प्रदेश हड़प्पा-कालीन समुदायों और मध्य भारत तथा उत्तरी दक्कन के दूसरे ताम्र पाषाण युगीन समुदायों के बीच पुल के रूप में रहा होगा। सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश में उत्तर कालों में, उत्तरी मैदानों की संस्कृति का ही विस्तार हुआ। इस प्रदेश के पूर्व में ऊपरी महानदी क्षेत्र में छत्तीसगढ़ का मैदान एक छोटा उपजाऊ क्षेत्र है। यहां अच्छी वर्षा होती है और धान उगाया जाता है। चौथी-पांचवीं शताब्दी से यहां का ऐतिहासिक विकास उसी प्रकार का था जैसा कि पश्चिमी उड़ीसा के ऊंचे नीचे पहाड़ी क्षेत्रों में हुआ। इन क्षेत्रों में भौगोलिक निकटता के कारण सांस्कृतिक और राजनीतिक आदान-प्रदान होता रहा।

वह अधिकांश भू-भाग जिसे हमने मध्य भारत बताया है, आज मध्य प्रदेश के नाम से जाना जाता है। इस प्रदेश में उत्तर से दक्षिण यात्रा में विंध्य और सतपुड़ा पर्वत श्रृंखलाएं तथा नर्मदा और ताप्ती नदियां रुकावट बनती हैं। मध्य भारतीय क्षेत्र, जिसमें विशेष रूप से दक्षिण बिहार, पश्चिम उड़ीसा और पूर्वी मध्य प्रदेश आते हैं, आदिवासी बहुल क्षेत्र है। फिर भी यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें बाह्य तत्वों के प्रवेश की गति धीमी और निरंतर रही। इस प्रदेश के आदिवासी निकटवर्ती क्षेत्रों के सांस्कृतिक प्रभाव में आकर प्रारंभिक ऐतिहासिक कालों से या कहें कि गुप्त काल से ही, भारतीय समाज के प्रमुख जाति-कृषक आधार वाले ढांचे से जुड़ते रहे।

गुजरात मध्य भारत क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह प्रदेश तीन प्राकृतिक भागों में बंटा हुआ है। सौराष्ट्र अनर्त (उत्तरी गुजरात) और लता (दक्षिण गुजरात) अनर्त की विशेषता यहां अर्ध शुष्क वायु प्रवाहित मिट्टी है तो लता में पश्चिम तट का उपजाऊ क्षेत्र शामिल है। गुजरात का मध्यवर्ती प्रायद्वीप काठियावाड़ कहलाता है। इस प्रदेश का एक और प्राकृतिक भाग कच्छ के रण का निचला इलाका है। मानसून के दिनों में कच्छ का रण बादली क्षेत्र में बदल जाता है। इस प्राकृतिक उप-विभाजन के बावजूद गुजरात की अपनी सांस्कृतिक पहचान और एकता रही है क्योंकि यह प्रदेश विंध्य पर्वत श्रृंखलाओं और पश्चिमी घाट से पूर्व में और उत्तर में मरुस्थल से सीमाबद्ध है। हालांकि यह एक अलग-थलग क्षेत्र प्रतीत होता है किन्तु

वास्तव में यह हड़प्पा कालीन समय से ही निरंतर प्राचीन बस्तियों का क्षेत्र रहा है। सौराष्ट्र में इसको सिंधु नदी के साथ भौगोलिक निकटता के कारण हड़प्पा की सम्यता का विस्तार हुआ। यह क्षेत्र प्रायः सिंध तथा सुदूर पश्चिमी क्षेत्र और भारत के बीच संक्रान्ति का क्षेत्र रहा है यहाँ का मैदान नर्मदा, ताप्ती, साबरमती और माही नदियों द्वारा मध्य भारतीय पर्वत श्रृंखलाओं से लाई गई कछारी भूमि से समृद्ध है। अपनी संरक्षित स्थिति और लम्बी तट रेखा के कारण गुजरात चार हजार वर्षों से भी अधिक समय से तटीय (समुद्र तटीय) और विदेशी व्यापार का केन्द्र रहा है। मध्य भारत पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्वी छोर पर गंगा के डेल्टा के दक्षिण पश्चिम में उड़ीसा के तटवर्ती मैदान हैं। हालांकि इसी तट पर बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली कुछ अन्य नदियाँ भी हैं। ये तटवर्ती मैदान पर्वत श्रृंखलाओं का ही एक विस्तार है और जैसा कि छत्तीसगढ़ के मैदान के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है, इसके कुछ प्राकृतिक लक्षण भी वैसे ही हैं। इस तरह उड़ीसा में दो भू-आकृतिक भाग हैं जो विकास की असमान प्रक्रियाओं को दर्शाते हैं। समृद्ध कृषि आधार वाला उपजाऊ तटवर्ती मैदान मानव गतिविधि का स्थल और सामाजिक सांस्कृतिक विकास का केन्द्र रहा है। उड़ीसा ने अपनी भाषाई और सांस्कृतिक पहचान देर से पहली शताब्दी में बनायी थी।

1.4.5 प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत की सीमाएं इसको घेरने वाले तटवर्ती मैदानों और दक्कन के पठार से निर्धारित होती हैं। तटवर्ती मैदान पूर्व में और सुदूर दक्षिण में चौड़े हैं, जबकि पश्चिम में ये संकरे हैं। बंबई और पालघाट के बीच का मैदान सर्वाधिक संकरा है। दक्कन का पठार तीन प्रमुख भागों में बंटा हुआ है। ये भाग महाराष्ट्र, आंध्र और कर्नाटक राज्यों में पड़ते हैं। महाराष्ट्र में अन्य क्षेत्रों के अलावा दक्कन के पठार का उत्तरी भाग शामिल है। सुदूर दक्षिण के लिए सांस्कृतिक प्रभावों का प्रसार दक्कन द्वारा होता रहा है। और ऐसा इसलिए संभव हुआ होगा क्योंकि पश्चिम भाग को छोड़ कर वहाँ और घने जंगल नहीं हैं। महाराष्ट्र और आन्ध्र के बीच सीमा प्राकृतिक रूप से निर्धारित हुई प्रतीत होती है क्योंकि यह सीमा रेखा उपजाऊ काली मिट्टी के वितरण के आधार पर बनी है। यानी इस सीमा के इस ओर महाराष्ट्र में उपजाऊ काली मिट्टी है तो सीमा के उस पार तैलंगाना में लाल मिट्टी है जो नमी सोखने में सक्षम नहीं होती है। इसलिए तैलंगाना तालाबों तथा अन्य प्रकार के कृत्रिम सिंचाई के साधनों का क्षेत्र रहा है। प्रारंभिक बस्तियों के विकास पर पर्यावरण सम्बन्धी भिन्नताओं का प्रभाव इस क्षेत्र में जितने रूप में सामने आता है उतना अन्य क्षेत्रों में नहीं। दक्षिण पश्चिम आन्ध्र के प्रारंभिक नव-पाषाण युगीन लोगों ने अनुकूल व्यवहार नीति के रूप में पशु चारण को अपनाया तो उत्तरी दक्कन ताम्र-पाषाण युगीन मानव समुदायों ने कृषि को अपना उद्यम बनाया।

कर्नाटक में दक्षिण-पश्चिमी दक्कन शामिल है। कुछ छोटे-छोटे क्षेत्रों को छोड़ कर दक्कन लावा का फैलाव यहाँ तक नहीं है इसके अलावा पश्चिम घाट और पश्चिमी तटवर्ती मैदान का एक भाग इस राज्य में शामिल है राज्य दक्षिण भाग में अपेक्षाकृत अधिक पानी है और यह क्षेत्र मानव बस्तियों के लिए उत्तर की तुलना में अधिक उपयुक्त है। महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच विभाजन रेखा किन्हीं विशेष प्राकृतिक दशाओं को नहीं दर्शाती। इस क्षेत्र में पर्यावरण द्वारा पैदा की गई बाधाओं की पर्याप्त पुष्टि इस क्षेत्र के नव-पाषाण युगीन लोगों के अपेक्षाकृत अपर्याप्त सांस्कृतिक अवशेषों से होती है।

चार दक्षिण भारतीय राज्यों में आन्ध्र विशालतम है। इसमें तैलंगाना, उपजाऊ तटवर्ती मैदान, रायल सीमा जैसे अनेक उप क्षेत्र शामिल हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राज्य का उत्तर-पश्चिमी भाग तैलंगाना कहा जाता है। यहाँ की लालछोँहा मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है और यहाँ की मुख्य फसलें, ज्वार, दलहन और तिलहन हैं। पूर्व में पूर्वी घाट और तटवर्ती मैदान का एक भाग उत्तर में उड़ीसा की सीमा पर महेन्द्र गिरि के निकट से लेकर दक्षिण में तमिलनाडु तक, जिसका अधिकेन्द्र कृष्णा-गोदावरी की संयुक्त डेल्टा है, आन्ध्र-प्रदेश में शामिल है। यह एक चावल प्रधान क्षेत्र है। दोनों नदियों के बीच का तटवर्ती क्षेत्र जो प्राचीन समय में वैनगी नाम से जाना जाता था धान का प्रमुख उत्पादन केन्द्र रहा है। कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच रायचूर दोआब की तरह, इस क्षेत्र के लिए भी प्राचीन ऐतिहासिक कालों में निरंतर संघर्ष होने रहे।

1.4.6 सुदूर दक्षिण

दक्कन का पठार सुदूर दक्षिण में नीलगिरि और कार्डामोम पहाड़ियों जैसे अलग-अलग खण्डों में विभाजित हो जाता है। ये पहाड़ियाँ मोटे तौर पर पूर्वी और पश्चिमी तटवर्ती मैदानों को विभाजित करती हैं। दक्षिण में विस्तृत पूर्वी तटवर्ती मैदान और इससे जुड़े भीतरी प्रदेश तमिलनाडु में आते हैं। तमिलनाडु के तटवर्ती जिलों में भारी मात्रा में चावल पैदा होता है। कावेरी का मैदान और इसका डेल्टा इस क्षेत्र का अधिकेन्द्र है। इस क्षेत्र की नदियाँ मौसमी हैं इसलिए यहाँ के किसान पल्लव चोल कालों से ही सिंचाई के लिए तालाबों पर निर्भर रहते आए हैं। असिंचित क्षेत्रों में ज्वार, दलहन और तिलहन की फसलें होती हैं। यह जानना रोचक है कि इन पारिस्थितिक विविधताओं का उल्लेख, जिनके कारण विविध वैकल्पिक जीवन शैलियाँ अस्तित्व में आईं, इस भूमि के प्राचीनतम साहित्य यानी संगम साहित्य में प्राप्त होता है। भौगोलिक, भाषायी और सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश की अपनी निजी पहचान बनी है।

पश्चिमी तटवर्ती मैदान भी सुदूर दक्षिण में मालाबार यानी आज के केरल राज्य तक फैला हुआ है। केरल में धान तथा अन्य फसलों के अलावा काली मिर्च तथा अन्य मसालों का उत्पादन भी होता है पश्चिम के साथ केरल इन मसालों का व्यापार उत्तर मौर्य काल से ही होता आया है। तमिलनाडु की ओर से केरल में प्रवेश पालघाट घाटी के द्वारा और पश्चिमी घाट के दक्षिणी छोर से संभव है। भूमि से अपेक्षाकृत अलग-थलग केरल राज्य, समुद्र की ओर से पूरी तरह खुला हुआ है। यह एक रोचक सत्य है कि भारत में ईसाई प्रभाव और बाद में मुस्लिम प्रभाव समुद्र के माध्यम से ही आया। यह ध्यान देने योग्य है कि केरल और तमिलनाडु, दोनों ही प्रदेश गंगा के मैदान की तरह घने आबाद हैं।

बोध प्रश्न 2

1. निम्न में से कौन से कथन सही (✓) अथवा गलत (×) हैं:

- पूर्वी हिमालय क्षेत्र चीन के सांस्कृतिक प्रभावों से अछूता रहा।
- हड़प्पा पंजाब में अवस्थित है।
- गंगा के मैदान में सबसे अधिक मानव वस्तियाँ फली फूलीं।
- दक्कन पठार का तटवर्ती मैदान बम्बई और पालघाट के बीच बहुत चौड़ा है।

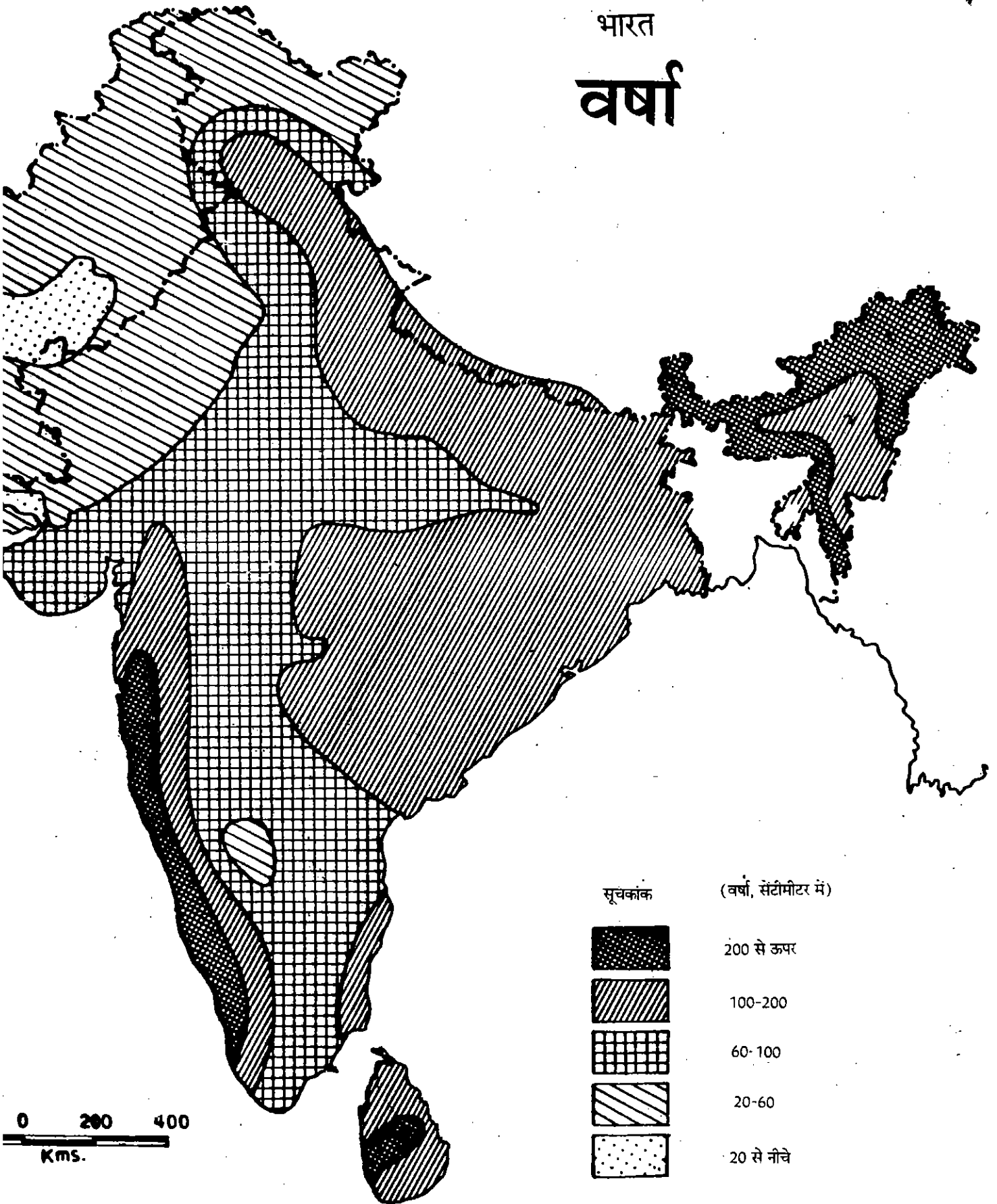
2. खाली स्थान भरिए:

- हिमालय को (पांच/तीन) मुख्य (क्षेत्रों/इकाइयों) में बांटा जा सकता है।
- कच्छ का रन (वर्षा/शरद) ऋतु के दौरान (समुद्र/दलदल) में बदल जाता है।
- सुदूर दक्षिण की असिंचित भूमि (गेहूँ/जौ/ज्वार) और (तिलहन/चावल) पैदा करती है।
- तेलंगाना (नदियों/तालाबों) की और कृत्रिम (खेती/सिंचाई) की भूमि हो गई है।

1.5 सारांश

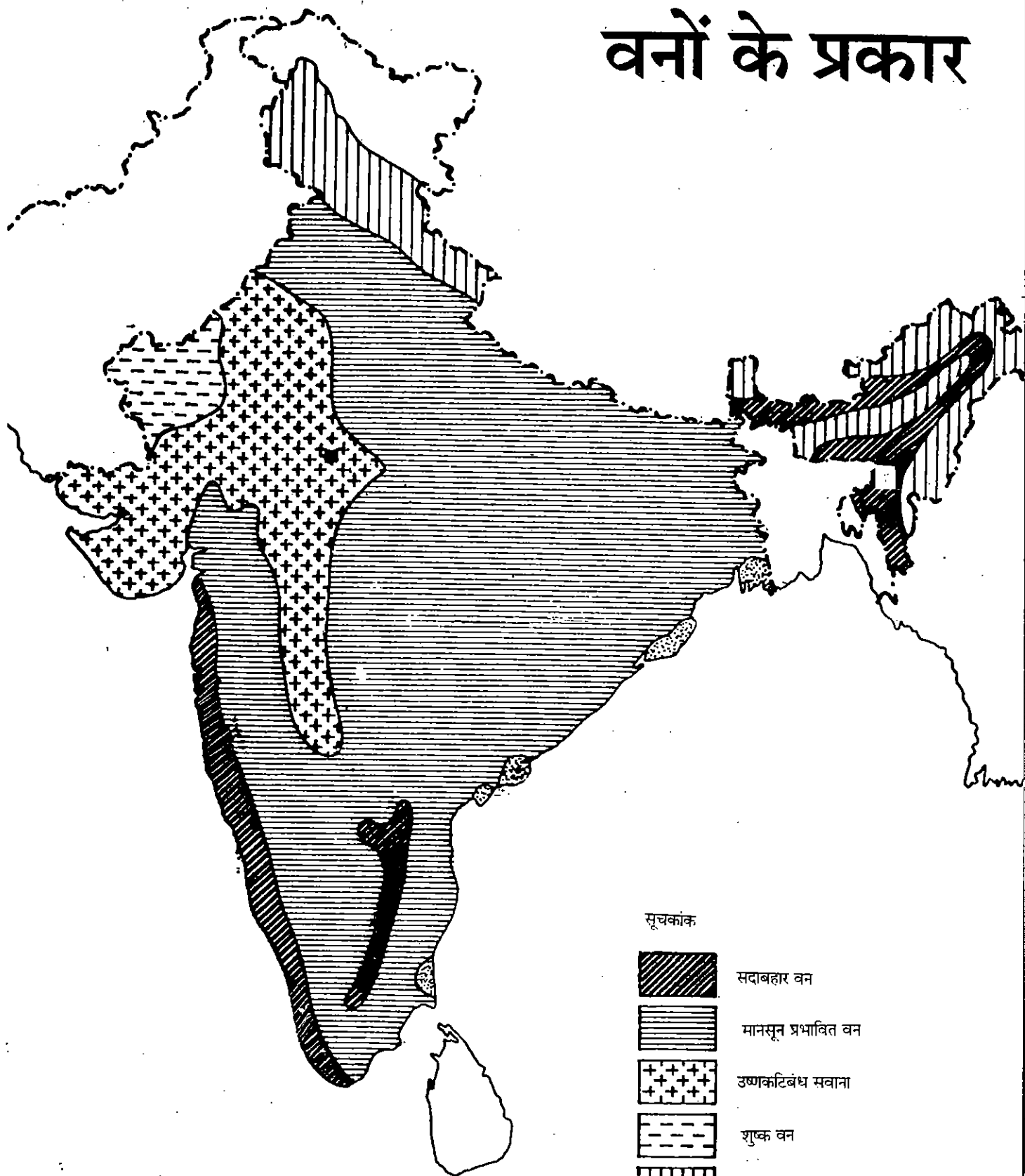
भारतीय उपमहादीप में प्राकृतिक विभाजन मोटे तौर पर भाषाई क्षेत्रों के अनुरूप है। इन भाषाई क्षेत्रों ने समयानुकूल विकसित होकर अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान कायम की। विभिन्न प्राकृतिक भागों के लोगों को विभिन्न रुचियाँ, भोजन संबंधी आदतें और वस्त्र शैलियाँ हैं। ये आदतें और रुचियाँ विभिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाओं के अन्दर विकसित हुए संसाधनों के उपयोग के तरीके, पर्यावरणीय व्यवस्था और जीवन के ढंग से पैदा हुईं। बृहद क्षेत्रों के अन्दर और दो बृहद क्षेत्रों के बीच जो असमान विकास हुआ उसे इन क्षेत्रों में उपलब्ध या अनुपलब्ध संसाधनों के संदर्भ में, और मानवीय तथा तकनीकी हरित क्षेत्र के आधार पर समझा जा सकता है। देश की प्रमुख नदियाँ घाटियाँ, जिनमें प्रति वर्ष वर्षा का औसत पचास

भारत वर्षा



भारत

वनों के प्रकार



सूचकांक



सदाबहार वन



मानसून प्रभावित वन



उष्णकटिबंधीय मरुताना



शुष्क वन



हिमालय के वन



तटीय एवं डेल्टाई वन

200 0 200 400
Kms.

और सौ सेंटीमीटर के बीच रहा है और जो बड़े पैमाने पर कृषि समुदायों को पोषण प्रदान करने में सक्षम रही हैं, वे युगों से पूरी तरह आबाद रही हैं। कम या अधिक वर्षा वाले क्षेत्र अनुवर्तता और घनी वन्य वनस्पति की समस्याओं से ग्रस्त रहे हैं। और ऐसे क्षेत्र कृषि के लिए अधिक उपयुक्त नहीं रहे हैं। उपमहाद्वीप में हृष्टतम वर्षा वाले क्षेत्र और कृषि के लिए साफ किए गए क्षेत्रों में आश्चर्यजनक सह-सम्बन्ध पाया गया है (मानचित्र देखिए)। ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का विकास सभी जगह न तो संतुलित हुआ है और न एक-जैसा।

उत्तर में हिमालय और दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में समुद्री सीमाओं से घिरा भारतीय उपमहाद्वीप एक बन्द और अलग क्षेत्र होने का आभास कराता है। मगर इन सीमाओं के पार से सांस्कृतिक प्रभावों का आदान-प्रदान होता रहा, और इस महाद्वीप के पश्चिम, पश्चिम-एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ समुद्र मार्ग से सम्बन्ध बने रहे। आन्तरिक रूप से मध्य भारत का ऊबड़-खाबड़ और दुर्गम पहाड़ी प्रदेश, देश के विभिन्न प्रदेशों के बीच विचारों और प्रभावों के आदान-प्रदान के मार्ग में कभी भी वास्तविक बाधा नहीं बन सका। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हालांकि भूगोल और पर्यावरण ऐतिहासिक विकास को पूरी तरह नियत नहीं करते, फिर भी उसे पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करते हैं।

1.6 शब्दावली

अनुकूलन नीति: मनुष्य द्वारा अपनाई गई वह नीति या ढंग जिससे वह नए पर्यावरण या संस्कृति के साथ सामंजस्य करता है उसके अनुकूल स्वयं को ढालता है।

जलोढ़ मैदान: नदी द्वारा लाई गई मिट्टी या बालू आदि के इकट्ठा होने से बना मैदान।

जाति-कृषक आधार: प्रारंभिक व्यवस्थित कृषि-समाज से सम्बन्धित, जिसके सदस्य सामाजिक रूप से जाति-आधार पर वर्गीकृत थे। ये सदस्य अपने समाज के खेती करने वाले सदस्यों की पैदावार पर निर्भर रहते थे।

ताम्र पाषाण युगीन बस्तियां: उस युग का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियां जिसमें पत्थर और तांबे दोनों से ही निर्मित वस्तुओं का उपयोग होता था।

सीमान्त क्षेत्र: एक कृषिक बस्ती के बाहर का क्षेत्र सामान्य रूप से ऐसे क्षेत्रों का कुछ सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध मुख्य बस्ती से होता था। उदाहरण के लिए, ऐसे सीमान्त क्षेत्रों में रहने वाले खानाबदोश मुख्य बस्ती को दूध, मेड़, खाल, ऊन आदि की आपूर्ति किया करते थे।

भौगोलिक निकटता: प्राकृतिक रूप से निकटवर्ती या साथ-साथ लगे क्षेत्र।

भाषाई विभाजन क्षेत्र: प्राकृतिक क्षेत्र का उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं के आधार पर विभाजन।

तटवर्ती: समुद्र तट पर स्थापित।

चित्रित भूरे या धूसर भांड संस्कृति: गंगा दोआब क्षेत्र में प्राप्त भूरे रंग के बर्तनों या भांडों से सम्बन्धित संस्कृति।

पशुचारण: वह पेशा या व्यवसाय जिसके तहत पशु पाले जाते हैं।

भू-आकृतिक क्षेत्र या प्राकृतिक क्षेत्रों के अर्थ में: भारत के भू-आकृतिक या प्राकृतिक क्षेत्रों के अर्थ में।

तकनीकी हस्तक्षेप: एक क्षेत्र की संसाधन क्षमता के विकास में नई तकनीकों और जानकारियों का प्रभाव।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (1)

- 2 आपके उत्तर में भारी उपजाऊ भूमि, सिंचाई सुविधाएं, पत्थर लकड़ी जैसे विभिन्न संसाधनों की निकटता आदि को शामिल किया जाना चाहिए। देखिए उप-भाग 1.2.1।
- 3 i) उत्थान और पतन, हमारी मदद करते हैं
ii) करने का प्रयास करता है
iii) तीन
iv) उपक्षेत्र

बोध प्रश्न 2

- 1 i) × ii) ✓, iii) ✓, iv) ×
- 2 i) तीन भागों ii) वर्षा, दलदल
iii) उषार, तिलहन iv) तालाब सिंचाई

इकाई 2 भारतीय इतिहास में क्षेत्र: गठन एवं विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण
 - 2.2.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं
 - 2.2.2 मूलकला प्रमाण
 - 2.2.3 साहित्यिक प्रमाण
- 2.3 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता
 - 2.3.1 चक्रवर्ती संकल्पना
- 2.4 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता
 - 2.4.1 भुनियादी भौगोलिक प्रभाव
 - 2.4.2 केन्द्रीय क्षेत्र
 - 2.4.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में बस्तियों की संरचना
- 2.5 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन
 - 2.5.1 गांगेय घाटी
 - 2.5.2 तमिल देश
 - 2.5.3 दक्कन: आंध्र एवं महाराष्ट्र
 - 2.5.4 कलिंग एवं प्राचीन उड़ीसा
 - 2.5.5 उत्तर-पश्चिम
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- भारतीय इतिहास के विभिन्न चरणों को समझने के लिए (भारतीय) भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी क्यों आवश्यक है,
- इन क्षेत्रों का उदय कैसे हुआ, तथा
- एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र से किस रूप में भिन्न था।

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में हमने देखा कि भारतीय उपमहाद्वीप कई क्षेत्रों से मिलकर बना है और प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेषताएं हैं देश के ऐतिहासिक उद्भव की प्रक्रिया में क्षेत्रों ने विशेष सांस्कृतिक विशिष्टताएं ग्रहण की तथा कई आधारों पर जैसे समान ऐतिहासिक परंपरा, भाषा, सामाजिक संगठन, कलाएं आदि, हम एक क्षेत्र से दूसरे की भिन्नताओं को इंगित कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय इतिहास में समान सामाजिक तथा सांस्कृतिक रीतियों एवं संस्थाओं तथा साथ ही क्षेत्रीय विशिष्टताओं की संरचना के स्थायित्व की दोहरी प्रक्रिया देखने को मिलती है।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इतिहास में क्षेत्रों के उदय की प्रक्रिया का स्वरूप असमान रहा है। अतः वर्तमान की भांति भूत में भी विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में काफी असमानताएं रही हैं यद्यपि कोई भी क्षेत्र कभी भी पूरी तरह से कटा हुआ नहीं रहा है। इस इकाई में भारतीय इतिहास में क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। स्थान एवं काल के आधार पर भारतीय समाज के उद्भव के विभिन्न

चरणों में मिन्नता को समझने के लिए भारतीय उप महाद्वीप का गठन करने वाले क्षेत्रों के स्वरूप की जानकारी अत्यावश्यक है।

2.2. क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण

क्षेत्रों तथा क्षेत्रीय संस्कृतियों के बीच विभिन्नताओं के चिह्न संभवतः खाद्य उत्पादन के रूप में जीवन यापन के नए साधन की शुरुआत के साथ दृढ़ जा सकते हैं। उपमहाद्वीप की मुख्य नदियों के क्षेत्रों में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की शुरुआत मात्र एक घटना नहीं बल्कि एक प्रक्रिया थी जो कई सहस्राब्दियों में फैली हुई थी। कच्ची मैदान (जो कि अब पाकिस्तान में है) के अंतर्गत मेहर गढ़ में कृषिगत गतिविधियाँ अपेक्षाकृत जल्दी लगभग 6000 ईसा पूर्व से पहले ही आरंभ हो गयीं थी तथा सिंधु घाटी में चौथी-तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व में, गंगा की घाटी में कोलडिहवा (उत्तर प्रदेश) में 5000 ईसा पूर्व में, चिरंद (बिहार) में तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध तथा अतरंजी खेडा (ओआब) में दूसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के पूर्वार्ध में कृषि की शुरुआत हुई तथापि गंगा घाटी में पूर्ण रूप में नियोजित कृषि, खेतीहर गांव तथा अन्य सम्बद्ध लक्षण जैसे नगर का उदय, व्यापार तथा राज्य प्रणाली आदि प्रथम सहस्राब्दि ईसा पूर्व के मध्य में ही दिखायी देते हैं। मध्य एवं प्रायद्वीपीय भारत में ऐसे कई स्थान थे जहाँ बदलाव की यह प्रक्रिया प्रथम सहस्राब्दि ईसा पूर्व की अंतिम शताब्दि में ही आरंभ हो सकी। इसी प्रकार गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के क्षेत्रों में कृषक समुदाय तेज़ी से फैलता रहा और सभ्यता के चरणों की विभिन्न प्रक्रियाओं को तेज़ी से तय करता रहा। जबकि असम, बंगाल, गुजरात, उड़ीसा तथा मध्य भारत के काफी क्षेत्र जो कि बाकी क्षेत्रों से अपेक्षाकृत अथवा पूर्णतया कटे हुए थे। काफी लम्बे समय तक इन विकासों से अछूते रहे तथा आदिम अर्थव्यवस्था के चरण से आगे नहीं बढ़ पाए थे। अंततः जब कुछ अपेक्षाकृत कटे हुए क्षेत्रों में बदलाव की प्रक्रिया का ऐतिहासिक दौर शुरू हुआ तो अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा इन विकासों के बीच न केवल समय का लंबा अंतराल था बल्कि क्षेत्रों के गठन के स्वरूप में भी स्पष्ट अन्तर था। पूर्व विकसित क्षेत्रों के मुख्य केन्द्रों का सांस्कृतिक प्रभाव इन कटे हुए क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया पर आरंभ से ही पड़ा। अतः आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से विकसित हुए तथा अभी भी कुछ क्षेत्र हैं जो अन्य की अपेक्षा पिछड़े हुए हैं।

2.2.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं

जैसा कि हमने इकाई 1 में देखा, अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास की असमान प्रक्रिया तथा ऐतिहासिक शक्तियों का असमान विन्यास भूगोल से अत्यधिक प्रभावित रहा। क्षेत्रों के असमान विकास को ऐतिहासिक स्थितियों द्वारा दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में गुजरात में मध्य पाषाण युगीन संस्कृति मौजूद थी जबकि इसी समय दक्कनी क्षेत्रों में नवपाषाण युगीन पशु पालक काफी संख्या में मौजूद थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अन्य क्षेत्रों के इन संस्कृतियों के युग में ही हड़प्पा जैसी विकसित सभ्यता विद्यमान थी। फलतः विकास के विभिन्न चरणों में क्षेत्रों एवं संस्कृतियों के एक दूसरे से प्रभावित होने के प्रमाण मिलते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय इतिहास के हर दौर में दिखायी देती है। दूसरे शब्दों में, जहाँ एक ओर सिंधु एवं सरस्वती के क्षेत्रों में घुमक्कड़ लोग तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व में बसने लगे थे वहीं दूसरी ओर दक्कन, आंध्र, तमिलनाडु, उड़ीसा एवं गुजरात में बड़े पैमाने पर खेतिहार समुदाय बुनियादी रूप में लौह-युग में गठित हुए जो कि प्रथम सहस्राब्दि ईसा पूर्व का उत्तरार्ध अनुमानित किया जा सकता है।

लोहे के प्रादुर्भाव के साथ ही स्थायी कृषिगत गतिविधि पर आधारित भौतिक संस्कृति का प्रसार आरंभ हुआ। तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के आरंभ से गांगेय उत्तरी भारत तथा मध्य भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों की भौतिक संस्कृति में काफी कुछ समानता दिखायी देती है। यद्यपि अशोक के शिला लेखों के भौगोलिक वितरण (जो कि उत्तर से दक्षिण तक मिलते हैं) के कारण पूरे उपमहाद्वीप में कुछ हद तक सांस्कृतिक समानता स्वीकार की जाती है, विंध्याचल के दक्षिण के क्षेत्रों में जटिल सामाजिक संरचना वाले आरंभिक ऐतिहासिक, साक्षर युग के उदय की प्रक्रिया मौर्य युग में तथा उसके उपरांत तेज़ हुई।

वास्तव में उत्तर मौर्य युग, 200-ईसा पूर्व 300-ईसवी दक्षिण भारत तथा दक्कन के अधिकतर क्षेत्रों की संस्कृति के विकास का आरंभिक चरण था। इन क्षेत्रों की ऐतिहासिक बस्तियों की खुदाई से प्राप्त पुरातात्विक आंकड़ों से इस तर्क को बल मिलता है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि बीच के काफी क्षेत्र अथवा मध्य भारत की जंगली पहाड़ियाँ कभी भी पूरी तरह नहीं बसीं और आदिम युगीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न चरणों में आदिवासियों को शेष मानव समाज से अलग रहने का अवसर देती रहीं। इस उपमहाद्वीप में सम्यता तथा पारंपरिक सामाजिक संगठन के रूप में अधिक जटिल संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न कालों में पहुँची तथा अपेक्षाकृत अधिक विकसित भौतिक संस्कृति का क्षेत्रीय प्रसार काफी असमान रहा।

2.2.2 मृत्कला प्रमाण

अपने अनश्वर गुण के कारण मृत्माण्ड किसी संस्कृति की पहचान का विश्वस्वीय चिह्न होते हैं तथा पुरातत्वात्मक श्रेणीबद्धता का महत्वपूर्ण साधन होते हैं। विभिन्न संस्कृतियाँ अपने विशिष्ट मृत्माण्ड के आधार पर पहचानी जाती हैं। गेरू चित्रित मृत्माण्ड जो कि 1000 ईसा पूर्व से पहले के हैं, चित्रित भूरे मृत्माण्ड जो 800-400 ईसा पूर्व के बीच के हैं, काले एवं लाल मृत्माण्ड जो उपरोक्त दोनों के बीच के काल के हैं, तथा उत्तरी काले पालिश वाले मृत्माण्ड जो कि 500-100 ईसा पूर्व के हैं। मृत्माण्ड की प्रथम तीन श्रेणियाँ मुख्यतः भारत-गांगेय विभाजन तथा दोआब सहित ऊपरी गंगा घाटी में मिलते हैं। काली पालिश वाले मृत्माण्ड उत्तरी मैदान से आरंभ होकर मौर्य काल के दौरान मध्य भारत तथा दक्कन तक फैल गए।

विभिन्न प्रकार के मृत्माण्डों के वितरण से हमें संस्कृतियों की सीमाओं तथा उनके विस्तार के चरण के विषय में जानकारी प्राप्त होती है: भारत-गांगेय विभाजन तथा ऊपरी गंगा क्षेत्र में एक नई संस्कृति का उदय सर्वप्रथम दूसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में हुआ जो कि धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैली जो मौर्य काल में संभवतः मुख्य गांगेय क्षेत्र से भी आगे बढ़ गई।

2.2.3 साहित्यिक प्रमाण

प्राचीन भारतीय साहित्य से हमें संस्कृति स्वरूप के भौगोलिक प्रसार के प्रमाण भी मिलते हैं। ऋग वैदिक काल का भौगोलिक केन्द्र बिंदु सप्तसिंधु (सिंधु तथा इसकी सहायक नदियों की भूमि) तथा भारत-गांगेय विभाजन था। उत्तर वैदिक काल में दोआब ने यह स्थान ले लिया तथा बुद्ध के युग में मध्य गांगेय घाटी (कौशल एवं मगध) को यह गौरव प्राप्त रहा यहाँ यह कह देना उपयुक्त होगा कि भौतिक संस्कृति के विकास के साथ ही भौगोलिक विस्तार के चरणों का विकास होता रहा। राज्य सीमा के अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में आरंभ हुआ और इसी काल में कुरु और पांचाल जैसे क्षेत्रों में छोटे-छोटे राजवंशों एवं राज्यों का उदय हुआ। बुद्ध के युग में (छठवीं शती ईसा पूर्व) सोलह महाजनपदों (16 क्षेत्रीय राज्य) का उदय हुआ। यहाँ रुचिकर तथ्य यह है कि उत्तर पश्चिम में गांधार, मालवा में अवंती तथा दक्कन में अस्माक को छोड़कर अधिकतर महाजनपद ऊपरी एवं मध्य गांगेय घाटी में स्थित थे। कलिंग (प्राचीन तटवर्ती उड़ीसा) आंध्र, ङग (प्राचीन बंगाल) राजस्थान एवं गुजरात जैसे क्षेत्रों को इस युग पर प्रकाश डालने वाले साहित्य में स्थान नहीं मिला जिसका अर्थ यह है कि इन राज्यों का तब तक ऐतिहासिक रंगमंच पर प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

विध्याचल के दक्षिण के राज्यों, जैसे कलिंग, का उल्लेख सर्वप्रथम पाणिनि ने पांचवीं शती ईसा पूर्व में किया सुदूर दक्षिण में तमिल भू-भाग का ऐतिहासिक काल में प्रवेश तक नहीं हुआ था। अतः विभिन्न क्षेत्रों का उदय और गठन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। अतः आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों की तकनीकी एवं सामाजिक-आर्थिक विकास का यह अन्तर बाद में पनपने वाली सांस्कृतिक विभिन्नता के मूल में रहा।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है ?

i) क्षेत्रों के असमान विकास की व्याख्या ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर नहीं की जा सकती। ()

ii) विभिन्न क्षेत्रों के सांस्कृतिक विकासों ने एक-दूसरे पर प्रभाव छोड़ा। ()

- iii) क्षेत्रों के अभ्युदय की प्रक्रिया हर स्थान पर समान रूपी थी। ()
- iv) विभिन्न संस्कृतियों की पहचान उनके विशिष्ट मूत्माण्ड से होती है। ()
- v) क्षेत्रों की पहचान करने में साहित्य का कोई उपयोग नहीं है। ()
2. लगभग पाँच पंक्तियों में विभिन्न मूत्माण्ड कलाएँ और उनसे संबद्ध कालों का विवेचन कीजिए।

2.3 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता

सभी क्षेत्रों में गांव ही बुनियादी सामाजिक संगठन के इकाई रहे हैं और अपने निवासियों तथा शहरी जनता के जीवन यापन तथा राज्य की शक्ति का आधार रहे हैं इनमें से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व, भ्रमीण बस्तियाँ एवं नागरिक केन्द्र अपेक्षाकृत अधिक थे तथा शक्तिशाली विस्तारवादी राज्यों का इन क्षेत्रों में उदय हुआ। इन क्षेत्रों में नव पाषाण युग-ताम्र पाषाण युग से लगातार आबादियाँ तथा बस्तियाँ होने का प्रमाण मिलता है। यह विशेषता अन्य क्षेत्रों में दिखायी नहीं देती। क्षेत्रों के बीच के अन्तर की व्याख्या निम्न तथ्यों के आधार पर की जा सकती है:

- भूगोल,
- मौक्तिक संस्कृति के प्रसार का तरीका एवं काल, तथा
- ऐतिहासिक शक्तियों का विन्यास जैसे जनसंख्या, तकनीकी, सामाजिक संगठन, सिंचाई आदि इन तमाम कारणों का संयोग क्षेत्रों की अलग पहचान बनाने में सहायक हुआ।

क्षेत्रों के पृथक एवं मजबूत व्यक्तित्व तथा क्षेत्रीय शक्तियों की असमानता के कारण भारतीय उपमहादीप राजनैतिक एकता प्राप्त न कर सका। कुछ लोगों ने अपनी आंतरिक शक्ति के कारण अखिल भारतीय, अथवा कई क्षेत्रों की सबसे बड़ी शक्ति बनने के उद्देश्य से राज्य विस्तार का प्रयास किया किंतु इन प्रयासों को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। मौर्य, तुगलक, मुगल तथा ब्रिटिश साम्राज्यों को राजनैतिक एकीकरण में आंशिक सफलता मिली फिर भी इनमें से कोई भी सभी भौगोलिक इकाइयों और संस्कृतियों में राजनैतिक एकता नहीं ला सका, यद्यपि ब्रिटिश बहुत हद तक इसमें सफल रहे थे। मध्य भारत, या मोटे तौर पर मध्यवर्ती क्षेत्र तथा भारतीय प्रायद्वीप का दूरवर्ती सदैव ही मजबूत विस्तारवादी अखिल भारतीय शक्ति के दायरे से बाहर रहा। जैसा कि इकाई 1 में संकेत दिया गया था, विंध्याचल उत्तरी भारत तथा दक्षिण प्रायद्वीप के इतिहासों को पृथक करने में बहुत कुछ सफल रहा। इसी प्रकार अरावली पहाड़ियाँ कैम्बे खाड़ी के मुख से शुरू होकर दिल्ली तक एक सीमान्ती रेखा तैयार करती हैं। वास्तव में यह बहुत प्रभावी सीमा रही है। तथापि सिन्धु का निचला थाला और गुजरात काफी लम्बे समय तक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र बने रहे। इस प्रकार जहाँ एक ओर बड़े पैमाने पर केन्द्रीयकृत राज्य लम्बे समय तक बने न रह सके वहीं दूसरी ओर मगध, कौशल अवन्ती आंध्र, कलिंग, महाराष्ट्र, चेर, पाण्ड्य, चोल आदि जैसे प्राचीन राज्य किसी न किसी वंश के अंतर्गत बने रहे। उनके इस दीर्घकालीन स्थायित्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस प्राकृतिक क्षेत्र में राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बने रहे।

2.3.1 चक्रवर्ती संकल्पना

चक्रवर्ती (विश्व सम्राट) की संकल्पना जो कि प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों का आदर्श थी इस विषय पर प्रकाश डालती है। आदर्श चक्रवर्ती के लिए विश्व विजेता होना तथा सम्पूर्ण

विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार हिमालय से समुद्र तट का क्षेत्र चक्रवर्ती सम्राट का क्षेत्र था। रुचिकर तथ्य यह है कि उक्त क्षेत्र उतना ही है जितना भारतीय उपमहादीप है। बाद की कई कृतियों में इस आदर्श को बार-बार दोहराया गया है। जो राजा विश्व-सम्राट का स्तर प्राप्त करना चाहता था उसे अश्वमेध यज्ञ करना होता था। प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों में चक्रवर्ती की संकल्पना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस प्रकार राजा की परिकल्पना सदैव विश्व प्रभुत्व से संबद्ध थी। लेकिन न तो कौटिल्य और न ही उसके उत्तराधिकारी इस बात की व्याख्या करते हैं कि सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य का प्रशासन किस रूप में होना चाहिए। संभावना इस बात की है कि चक्रवर्ती आदर्श का अर्थ विरोधियों को वशीकृत करना, उनकी सीमाओं में अपने अधिकारों का विस्तार करना और इस प्रकार साम्राज्य को विस्तृत बनाना था। इसका अर्थ यह नहीं है कि वशीकृत राज्य हमेशा के लिए एक ही प्रशासन प्रणाली का अंग बन जाते थे अथवा उन पर कठोर नियन्त्रण रखा जाता था। दूसरे शब्दों में, चक्रवर्ती का अर्थ श्रेष्ठ राजनैतिक शक्ति प्रदर्शन था और प्रशासन प्रबन्ध और संगठन जैसे पक्षों से इसका कोई मतलब नहीं था।

उक्त आदर्श की इस प्रकार की सीमाओं के बावजूद महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक क्षेत्रों की मजबूती और शक्तिशाली क्षेत्रवाद ने इस संकल्पना को साकार नहीं होने दिया। भारतीय उपमहादीप को राजनैतिक रूप में एकीकृत करने के प्रयास यद्यपि अधिक सफल नहीं हुए लेकिन यह इच्छा लगातार बनी रही। इस तथ्य के बारे में हमें पूर्व ऐतिहासिक युग के शिलालेखों से संकेत मिलता है कि छोटे-मोटे शासक भी अश्वमेध यज्ञ किया करते थे जिससे कि वे अपनी शक्ति और संप्रभुता तथा राज्य के प्रति अपने लम्बे चौड़े दावों का प्रमाण प्रस्तुत कर सकें। वास्तव में यह एक स्पष्ट उदाहरण है जो कि वास्तविकता और आदर्श के अन्तर पर प्रकाश डालता है और हमारे पूरे इतिहास में पृथक प्राकृतिक क्षेत्रों के बड़े पैमाने पर विद्यमान होने की ओर संकेत करता है।

2.4 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता

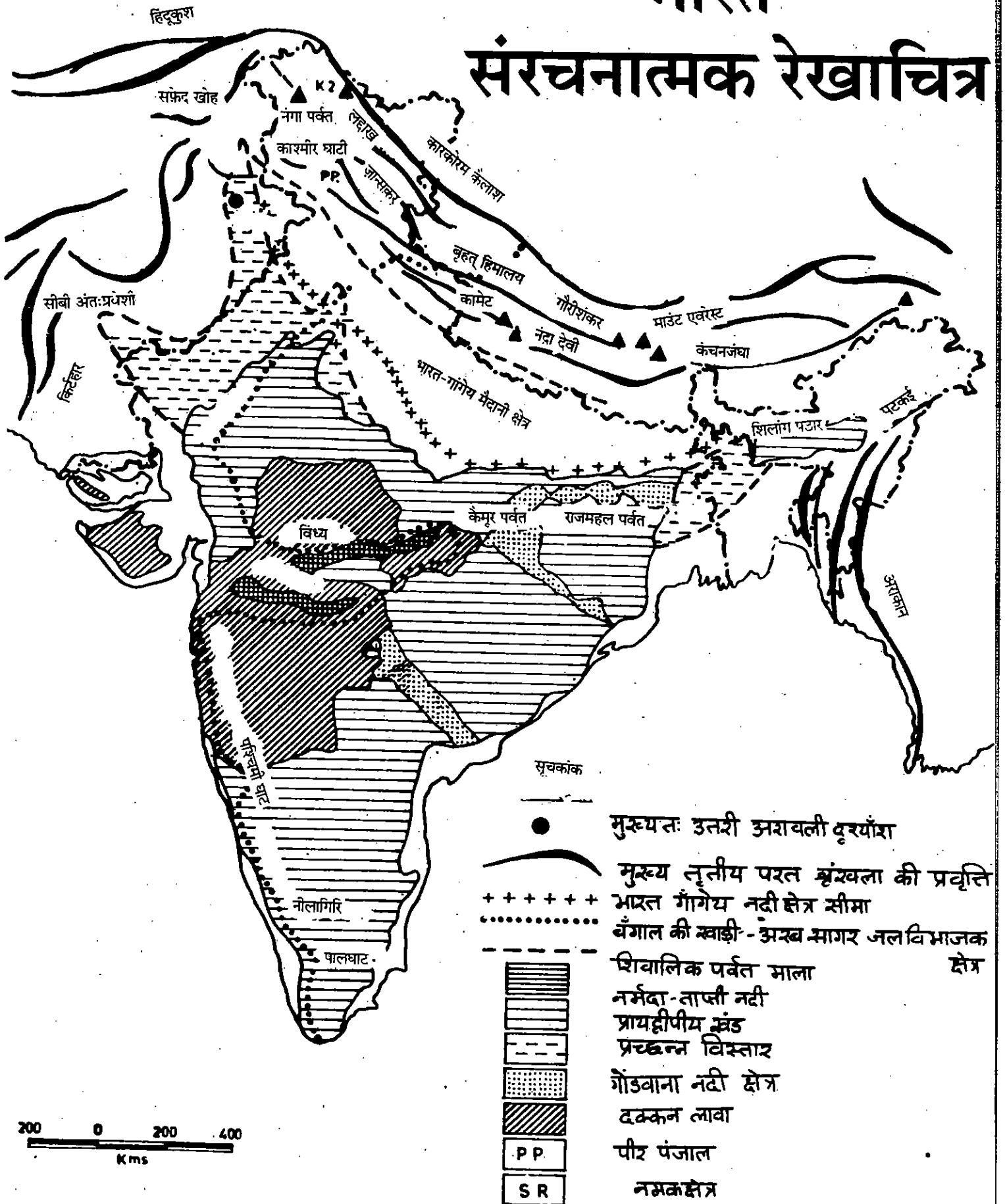
“देश” शब्द की भांति “क्षेत्र” शब्द भी काफी विस्तृत अर्थ रखता है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। भूगोलशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधान की आवश्यकताओं के अनुरूप क्षेत्रों को भिन्न रूपों में रेखांकित किया है। फलतः क्षेत्रों के वर्गीकरण में “भाषायी क्षेत्र”, “जातीय क्षेत्र”, “भौतिक क्षेत्र”, “प्राकृतिक क्षेत्र”, “सांस्कृतिक क्षेत्र” आदि का उल्लेख मिलता है। यद्यपि ये क्षेत्रीय सीमाएँ लगभग समान प्रतीत होती हैं तथापि आवश्यक रूप से हमेशा ऐसा नहीं होता। भौतिक एवं प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाएँ अभिसरित प्रतीत होती हैं। प्राकृतिक क्षेत्र अपनी विशिष्ट भाषायी, जातीय, पारिवारिक बंधुत्व संगठन तथा ऐतिहासिक परंपराओं के साथ स्वतंत्र संस्कृति क्षेत्र थे। तथापि आवश्यक नहीं है कि दो पड़ोसी क्षेत्र समरूप हों। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, भौगोलिक रूप से निकटवर्ती क्षेत्रों में भी सम्पूर्ण इतिहास के दौरान विपरीत सांस्कृतिक रुझान मौजूद थे। देश के ऐतिहासिक विकास के प्रतिरूप तथा ऐतिहासिक चरण की ओर संक्रमण में क्षेत्रीय असमानता क्षेत्रों के बीच श्रेणीबद्धता के अस्तित्व की ओर संकेत करती है। इस श्रेणीबद्धता की समझ के आधार पर क्षेत्रों की अंतरीय विशिष्टता तथा उनके विभिन्न कालों में गठन को समझा जा सकता है।

2.4.1 बुनियादी भौगोलिक प्रभाव

“भारतीय ऐतिहासिक भूगोल की बुनियादी संरचना रेखा” अथवा भारतीय इतिहास को मुख्य भौगोलिक विशिष्टताओं जैसे नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा अथवा कैम्बे की खाड़ी से मथुरा तक जाने वाली रेखा, अरावली द्वारा संरचित रेखा आदि ने उपमहादीप में सांस्कृतिक प्रसार के प्रतिरूप को काफी प्रभावित किया, इनको निम्नलिखित रूप में चार बुनियादी भागों में विभाजित किया गया है:

- मध्य एवं पश्चिमी एशिया से प्रभाव ग्रहण करने वाले सिंधु के मैदान,
- गंगेय मैदान जो कि दिल्ली-मथुरा रेखा से आरंभ होते हैं तथा उत्तर-पश्चिम सीमाओं से आने वाले तमाम राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों को समाहित कर चुके हैं,
- केन्द्रीय भारतीय मध्य क्षेत्र जिनके गुजरात तथा उड़ीसा दो छोर हैं, तथा

भारत संरचनात्मक रेखाचित्र



● प्रायद्वीपीय भारत जो नर्मदा का दक्षिणी भाग है।

अरावली रेखा के उत्तर एवं पश्चिम में सामान्यतः सांस्कृतिक स्थिति भिन्न प्रतीत होती है। आरंभिक ऐतिहासिक दौर में केवल राजस्थान एवं गुजरात के कुछ क्षेत्र गांगेय घाटी के सांस्कृतिक विकास की मुख्य धारा से प्रभावित नज़र आते हैं।

पंजाब के संदर्भ में अन्तर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। ऋग वैदिक काल के बाद पंजाब में विकास की दर धीमी थी। गुप्त काल तक इस क्षेत्र में गैर-राजतंत्रीय जनपदों का नियमित अस्तित्व स्वतंत्र विकास का स्रोतक है। इससे क्षेत्र में अधिकसित सम्पत्ति संबंध तथा असंतोष-जनक कृषि विकास की ओर भी संकेत मिलता है। पंजाब के मैदानों में भूमि अनुदान शिलालेखों की अनुपस्थिति, जो कि गुप्त काल तथा उत्तर गुप्त काल भारत में सामान्य बात थी, इस विश्वास को और भी बल प्रदान करती है। पंजाब के मैदानों में ब्राह्मणवाद ने कभी जड़ें नहीं पकड़ी थीं और न ही वर्ण व्यवस्था को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया था। ब्राह्मणों ने यदा कदा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और क्षत्रिय वर्ण शीघ्र ही वर्ण व्यवस्था से लुप्त हो गया। खत्री जो कि स्वयं को क्षत्रिय बताते हैं अधिकतर वैश्यों के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं।

इस प्रकार पंजाब गंगा घाटी के दृष्टिकोण से देर से हुए ऐतिहासिक परिवर्तन तथा क्षेत्रीय भिन्नता दोनों ही अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा बुनियादी विभाजन रेखा है क्योंकि गुजरात, महाराष्ट्र एवं उड़ीसा को छोड़कर इस रेखा के दक्षिण के सभी सांस्कृतिक क्षेत्र आरंभिक काल में तमिल मैदानों से प्रभावित नज़र आते हैं। इन क्षेत्रों में भिन्न समुदाय-संगठन तथा जाति श्रेणियां मौजूद थीं। महाराष्ट्र, जिसकी सीमा मालवा से मिलती है और चूकि मालवा और दक्कन लावा क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा मालवा गंगा घाटी तथा दक्कन के बीच महत्वपूर्ण सेतु है, अतः यहां विकास प्रक्रिया भिन्न थी। यहां यह उल्लेख अनुचित न होगा कि दक्षिण की ओर जनसंख्या का आवागमन तथा सीमा विस्तार इसी रास्ते से हुआ।

2.4.2 केन्द्रीय क्षेत्र

भारतीय इतिहास में काफी पहले ही कुछ क्षेत्र शक्ति के स्थायी केन्द्र बन गए थे। इन क्षेत्रों में निरंतर शक्तिशाली राज्य बने रहे। इसके विपरीत कुछ क्षेत्र इतने शक्तिशाली नहीं थे। भूगोलशास्त्री एवं इतिहासकार इन्हें तीन वर्गों में विभाजित करते हैं: i) स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र ii) अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र तथा iii) अलग-थलग क्षेत्र। स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र गंगा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा तथा कावेरी जैसी मुख्य नदी घाटियों के क्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में मानवीय बस्तियां अधिकतर संख्या में पायी जाती रही हैं। संसाधनों की उपलब्धता तथा व्यापार एवं संचार के अभिसरण ने इन क्षेत्रों के महत्व को और भी बढ़ा दिया था। तर्कसंगत ही है कि ये क्षेत्र महत्वपूर्ण शक्ति केन्द्रों के रूप में उभरे। किंतु यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भूगोल और संसाधन केवल संभावनाएं अथवा सीमाएं प्रस्तुत करते हैं। किसी का महत्वपूर्ण केन्द्र होना इस बात पर निर्भर करता है कि ऐतिहासिक कारण क्षेत्र पर किस प्रकार अभिसारित होते हैं। आरंगल के काकातीय राज्य एवं गुजरात के चालुक्य राज्य ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण मौजूद हैं जोकि केन्द्रीय क्षेत्रों की परिधि से बाहर उदित हुए लेकिन ऐसे उदाहरण छिट-पुट ही हैं। मध्य भारत के अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र, जैसे मीलों का देश, बस्तर एवं राजमहल की पहाड़ियां बस्तियों की संरचना, कृषिगत इतिहास, सामाजिक संगठन तथा राज्य प्रणाली की दृष्टि से केन्द्रीय क्षेत्रों से भिन्न थे। चूकि क्षेत्रों का विकास ऐतिहासिक रूप में हुआ अतः तीनों प्रकार के क्षेत्रों में अन्तर सदैव एक ही जैसा नहीं था। एक बिन्दु पर एक श्रेणी का दूसरी श्रेणी में परिवर्तित होना संभव था।

2.4.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में बस्तियों की संरचना

क्षेत्रों में बस्तियों की संरचना स्थिर नहीं रही। क्षेत्रों में गांव, खेड़े, नगर एवं शहर शामिल होते थे। मध्य गंगा में मैदानों एवं दक्कन जैसे कुछ क्षेत्रों में नगरों की संख्या अधिक थी। जैसे हम गुप्त काल की ओर बढ़ते जाते हैं शहरी केन्द्रों की संख्या कम होती जाती है। कृषि के विस्तार तथा नयी ग्रामीण बस्तियों के प्रसार के निरंतर प्रमाण मिलते हैं। कुछ स्थानों पर आदिवासियों के खेड़े खेतिहर गांव बन गए। आर्थिक गतिविधियों एवं सामाजिक वर्गीकरण के

स्तर पर ब्राह्मण एवं गैर-ब्राह्मण बस्तियों में अन्तर था। इस अन्तर का धीरे-धीरे उन क्षेत्रों में भी प्रसार हो गया जो आरंभिक चरणों में विकास की मुख्य धारा से पूर्णतया जुड़े हुए नहीं थे। इन क्षेत्रों में आदिवासी संस्कृति से अधिक जटिल सामाजिक संरचना की दिशा में परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, इन क्षेत्रों में संगठित धर्म, राज्य एवं वर्ग समाज का आधार तैयार हुआ। इन परिवर्तनों का अर्थ इन क्षेत्रों में नई बस्तियों का विस्तार तथा जनसंख्या में वृद्धि था। भारतीय इतिहास में सदैव जनसंख्या में अधिक घनत्व वाले क्षेत्र अग्रणी भूमिका निभाते रहे हैं। गंगा घाटी, तमिल मैदान एवं पूर्वी तट सभी ऐसे क्षेत्र थे जहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक था। संसाधन युक्त तथा अन्य सुविधाओं वाले क्षेत्र स्वाभाविक रूप से अधिक घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र थे तथा निरंतर मानवीय संसाधनों का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना राज्य की सैन्य शक्ति को बल प्रदान करता था।

बोध प्रश्न 2

1 भारतीय उपमहाद्वीप के राजनैतिक एकीकरण को बाधित करने वाले कारणों की चर्चा दस पंक्तियों में करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 चक्रवर्ती संकल्पना से आप क्या समझते हैं ? पाँच पंक्तियों में लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

3 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

- i) प्राकृतिक क्षेत्र . . . (स्वतंत्र / आश्रित) सांस्कृतिक क्षेत्र होते हैं।
- ii) इतिहास में भिन्न संस्कृतियाँ . . . (नहीं थी / सहअस्तित्व) में विद्यमान थी।
- iii) पंजाब में सांस्कृतिक विकास गाण्ड्य घाटी से . . . (भिन्न / मिलता जुलता) था।
- iv) भारतीय . . . (अंतरिक्ष विज्ञान / इतिहास) में . . . (अधिक / कम) घनत्व वाले क्षेत्रों की अग्रणी भूमिका रही है।

2.5 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन

गंगा-यमुना सोंआब, मध्य गंगा घाटी, मालवा, उत्तरी दक्कन, आंध्र, कर्नाटक (तटवर्ती उड़ीसा) एवं तमिल मैदान ऐसे मुख्य स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र हैं जो शक्ति केन्द्र के रूप में काफी पहले उभर चुके थे। लेकिन कुछ ऐसे छोटे क्षेत्र भी हैं (जिन्हें उप-क्षेत्र कहा जा सकता है) जिन्होंने अपनी पहचान बनाए रखी। कोकान, कनाडा और छत्तीसगढ़ इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ क्षेत्र जैसे कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच वेगी, ऐसे क्षेत्र थे जिनके कृषि संसाधनों की प्रचुरता के कारण इन पर प्रभुता स्थापित करने के लिए निरंतर युद्ध हुए। इन क्षेत्रों पर प्रभुता स्थापित होने से

आसपास के क्षेत्र शक्तिशाली बन सकते थे। मुख्य केन्द्रीय क्षेत्र नदी की मिट्टी वाली उपजाऊ भूमि की विस्तृत उपलब्धता के कारण मुख्य कृषि क्षेत्र भी रहे हैं। अब कुछ उदाहरणों के आधार पर क्षेत्रों के गठन के प्रतिरूपों एवं कारणों पर दृष्टिपात करेंगे।

2.5.1 गांगेय थाला

अधिक उच्च कृषि उत्पादकता तथा जनसंख्या के अधिक घनत्व के कारण गंगा के मैदान भारतीय उपमहादीप में प्रभुत्वशाली रहे हैं। इसके समरूप किसी भी अन्य क्षेत्र का शक्ति आधार नहीं रहा है। किन्तु यह पूरा मैदान जैसा कि इकाई 1 में उल्लेख किया गया है, एक समरूपी भौगोलिक क्षेत्र नहीं है। हम पढ़ चुके हैं कि मध्य गंगा के मैदान कई कारणों से ऊपरी एवं निचले गंगा के मैदानों की अपेक्षा अधिक सफल क्षेत्र रहा और मौर्य काल तक आते-आते इस क्षेत्र ने पूरे उपमहादीप पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। ऋग वैदिक काल के दौरान भारत गांगेय विभाजन इसका केन्द्र था। उत्तर वैदिक काल में 2000 ईसा पूर्व के आसपास भौगोलिक केन्द्र गंगा-जमुना दोआब बन गया। इसके साथ ही वैदिक कालीन बस्तियाँ पूर्व की ओर फैलने लगीं। लेकिन इसके अधिक महत्वपूर्ण विकास का दौर बेलों वाले हल के प्रयोग द्वारा स्थायी खेतिहर जीवन के आरंभ से होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सीमाएं एवं राष्ट्र एवं जनपदों का उदय हुआ। कुरु और पांचाल इसके अच्छे उदाहरण हैं। छठी शती ईसा पूर्व से जनपदों के उदय की प्रक्रिया तेज हो गयी थी। इसी समय सर्वप्रथम महाजनपदों का उदय होता है जिसमें छोटे जनपद समाहित हो जाते हैं। समकालीन साहित्य में महाजनपदों की संख्या सोलह बतायी गयी है।

रहने योग्य स्थान बनाने के लिए घने जंगलों को आग लगाकर अथवा घातु के औजारों से साफ किया गया। धान की उपज वाली मध्य गंगा घाटी में लोहे के हल, द्वारा गहरी जुताई के कारण अन्न का उत्पादन बढ़ गया। बढ़ती हुई जनसंख्या ने अधिक उपज की आवश्यकता को जन्म दिया। विशेषकर इस अधिक जनसंख्या वाले समाज का एक वर्ग जिसमें शासक, अधिकारी, पुरोहित, संन्यासी आदि शामिल थे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया में भाग नहीं लेते थे। स्थानीय उपभोगी आवश्यकता से अधिक इस कृषि उत्पादन से नगरों के उदय एवं विकास को बढ़ावा मिला। इस काल के मिट्टी के बर्तन उत्तरी काली पालिश वाले (Northern Black Polish Ware) बर्तन हैं जो 500 ईसा पूर्व के लगभग के हैं। इसी समय सर्वप्रथम सिक्कों का चलन आरंभ होता प्रतीत होता है। बढ़ते हुए व्यापार एवं वाणिज्य के कारण सिक्कों की आवश्यकता महसूस की गयी। उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनों का कौशल एवं मगध से उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला, पश्चिमी मालवा में उज्जैन तथा तटवर्ती आंध्र में उमरावती जैसे सुदूर नगरों तक फैल जाना संगठित वाणिज्य एवं संचार का चोटक है जिसने इन सुदूर नगरों के बीच संबंध जोड़ दिया। इस विकास के साथ ही भारी सामाजिक परिवर्तन हुए। बस्तियों में स्थायी जीवन के जड़ पकड़ने के कारण वन विचरण तथा आदिवासी जीवन पद्धति धीरे-धीरे कम होने लगी। उत्तर वैदिक काल की जनता मूल निवासियों के काफी नजदीकी सम्पर्क में आयी। उत्तर वैदिक साहित्य में इस संपर्क तथा आपसी मेल-जोल के प्रमाण मिलते हैं। इन विकासों की पृष्ठभूमि में सर्वप्रथम कुछ हद तक श्रम विभाजन और तदोपरांत व्यवसायों के विस्तार एवं उनमें विशिष्ट दक्षता प्राप्त करने की नयी परिस्थिति ने चार वर्णों की जाति व्यवस्था के लिए उपयुक्त माहौल तैयार कर दिया।

जनपदों एवं महाजनपदों के अभ्युदय (विस्तृत जानकारी के लिए खंड- 4 देखें) के साथ ही काफी बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन प्रकट हुए। प्रत्येक जनपद में आम तौर पर ग्राम, निगम (बड़ी बस्तियाँ जहाँ व्यापार विनिमय होता था) एवं नगर हुआ करते थे। जंगल (वन) भी जनपदों का एक हिस्सा होते थे। जनपद मूलतः सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र होते थे। इन्होंने राज्य के गठन का आधार तैयार किया, जिसे 6वीं शती ईसा पूर्व में मूर्तरूप प्राप्त हुआ। महाजनपदों के उदय के साथ महानगरों और तदानुरूप धनी एवं निर्धन सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। यह पूरी प्रक्रिया मध्य गंगाघाटी में अपने चर्मोत्कर्ष पर मौर्य काल में पहुँची। इस प्रकार समाज में सत्ता का जन्म हुआ। सत्ताधारी वर्ग शक्तिशाली धार्मिक व्यवस्थाओं जैसे ब्राह्मणवाद, बुद्धमत, जैनमत, आदि का प्रयोग करके नयी सामाजिक व्यवस्था तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करने का भरपूर प्रयास कर रहा था। इन विकासों की पृष्ठभूमि में उत्तरी गांगेय भारत पूरी तरह इतिहास का पात्र बन जाता है।

2.5.2 तमिल देश

तमिल कविताओं के संग्रह से, जिन्हें उनके समग्र रूप में संगम साहित्य के नाम से जाना जाता है, प्राचीन तमिल देश (तमिलाकम्) में पूर्व आदिवासी वन-विचरण चरण से मिलता है इन कविताओं से हमें एक ही समय में निम्न पर्यावरणीय क्षेत्रों के अस्तित्व तथा निम्न किन्तु अंतःसंबंधित जीवन शैली जैसे भोज्य पदार्थ एकत्रण, प्रारंभिक कृषि, मछली पकड़ना, पशुपालन से लेकर बड़े पैमाने पर खेती के सहअस्तित्व की ओर संकेत मिलता है। कावेरी, पेरियार एवं पैगाई की उपजाऊ नदी घाटियों (मारुटम क्षेत्र) में कृषि उत्पादन भारी मात्रा में होता था तथा यही वे क्षेत्र थे जो कि तीन प्राचीन अग्रणी वंशों, चोल, चेर, एवं पांड्य के प्रभाव क्षेत्र थे। यद्यपि ईसा पूर्व शताब्दियों में लड़ाकू सरदारों, पशु प्राप्ति के लिए आक्रमण, युद्ध एवं लूट आदि का प्रभुत्व था लेकिन धीरे-धीरे लोग किसानों के रूप में बस्तियों में वास करने लगे और एक श्रेणीबद्ध समाज का उदय हुआ जिसमें कृषक, माट, योद्धा एवं कवायली सरदार मुख्य श्रेणियाँ थीं। युद्ध के रिवाज ने योद्धा वर्ग को अपने मुखिया के आधीन प्रभुत्वमान बना दिया। छापीं से बचाव एवं छुटकारा पाने की दृष्टि से किसान वर्ग एक ऐसी व्यवस्था में समाहित होने के लिए तैयार था जिसमें अविकसित राज्य व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। राज्य के गठन की प्रक्रिया तेज़ होने के निम्नलिखित कारण थे:

- आरंभिक इसवी शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार,
- नगरों का उदय, तथा
- ब्राह्मणों के साथ उत्तरी सभ्यता (आर्य) की संस्कृति का आगमन।

ईसवी युग की आरंभिक शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार का महत्व बढ़ रहा था। साथ ही तमिलाकम् में विभिन्न क्षेत्रों के बीच आंतरिक तथा तमिलाकम् एवं दक्कन के बीच व्यापार को काफी महत्व प्राप्त हो चुका था। इस आरंभिक काल में केरल तमिलाकम् का अभिन्न हिस्सा था। पहाड़ियों एवं सीमांती कृषि वाले क्षेत्रों के छोटे-छोटे असंख्य कबीले तीन राज्यों की परिधि में लाए गए। सामाजिक रूप से यह प्रक्रिया जाति व्यवस्था के गठन में परिलक्षित होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत किसान शूद्र के स्तर पर पहुंचा दिए गए। इस प्रकार आरंभिक तमिलनाडु में राज्य के उदय का आधार तैयार किया जा चुका था।

2.5.3 दक्कन: आंध्र एवं महाराष्ट्र

आंध्र एवं उत्तरी दक्कन में लोहे का इस्तेमाल करने वाले उत्तर-पाषाण युगीन समुदायों ने, जोकि नवपाषाण युगीन तथा मध्यपाषाण युगीन संस्कृतियों का अनुसरण कर रहे थे स्थायी कृषि के लिए आधार तैयार किया और इन क्षेत्रों के परिवर्तन का पथ प्रशस्त किया। पाँचवीं से तीसरी शती ईसा के पूर्व के बीच आंध्र में समुद्र तटवर्ती भूमि पर अधिक उपज वाली धान की फसलें उगाना जारी रहा। उत्तर पाषाणकालीन शवाधानों दफनाने की परम्परा से निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:

- शिल्पकला में अल्पविकसित विशेषज्ञता,
- अविकसित विनिमय व्यवस्था जिसके अंतर्गत खनिज संसाधन उत्तर दक्कन भेजे जाते थे,
- स्तर का अंतर।

यहां काले एवं लाल बर्तनों के स्थल प्रचुर मात्रा में मिले जिनका अर्थ है कि यहां संभवतः जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी। तीसरी शती ईसा पूर्व से उत्तर पाषाणकाल में परिवर्तन विस्तृत रूप में समता आधारित समाज में परिवर्तन की शुरुआत थी, फलतः वर्गीकृत समाज की नींव पड़ी। दूसरी शती ईसा पूर्व के आरंभ से धातु के सिक्के का चलन रोम से व्यापार तथा शहरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। शिलालेखों तथा पुरातत्वशास्त्र से प्राप्त जानकारी के आधार पर आंध्र और महाराष्ट्र में काफी संख्या में नगरों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इस समय तक बुद्धमत दक्कन में फैल चुका था और बौद्ध केन्द्र एवं मठ स्थापित हो चुके थे। साथ ही मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक विस्तार के रूप में एक अन्य स्थिति उत्पन्न हुई जिसने इन विकासों की प्रक्रिया को और तेज कर दिया।

मौर्य प्रसार के साथ उत्तर पाषाण युगीन संस्कृति ने आरंभिक ऐतिहासिक बस्तियों का पथ प्रशस्त किया दक्कन में कई शहरी केन्द्र एवं मठ जिनमें से कई केन्द्रीय स्थल बन गए इसी काल में अस्तित्व में आए। यही अंतर्संबंध दक्कन में स्थानीय बस्तियों के उदय में सहायक रहे। यह स्थानीय बस्तियाँ उत्तरी भारतीय जनपदों के समरूप समझी जा सकती हैं। सतवाहनों

के युग तक स्थानीय बस्तियों ने दक्कन में पूर्व ऐतिहासिक राज्य गठन का आधार तैयार किया। दूसरी शती ईसा पूर्व के बाद से धीरे-धीरे खेतिहर बस्तियों के विस्तार एवं नए समुदायों के समाहित होने की प्रक्रिया दिखायी देती है। सामाजिक मेल-जोल का पथ सर्वप्रथम बुद्धमत एवं मठों ने तदोपरांत ब्राह्मणों एवं ब्राह्मणवाद ने प्रशस्त किया। निवासी समुदायों के बीच त्रिकोण संबंध प्रतीत होता है। यह तीन पक्ष निवासी समुदाय, राज्य, मठ अथवा /एवं ब्राह्मण थे। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया तटवर्ती आंध्र में इक्ष्वाकुवंश, कर्नाटक में कदम्ब तथा महाराष्ट्र में वकातका के अधीन और तेज हुई। प्रथम सहस्राब्दि ईसवी के मध्य तक उक्त दो क्षेत्र अपनी अलग पहचान बना चुके थे।

2.5.4 कलिंग एवं प्राचीन उड़ीसा

दक्कन की भांति ही उड़ीसा में भी तीसरी एवं चौथी शती ईसा पूर्व के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 300 ईसा पूर्व तथा चौथी शताब्दी ईसवी के बीच उड़ीसा का इतिहास आदिवासी समाज के आंतरिक परिवर्तन का इतिहास है। यह परिवर्तन आंशिक रूप से स्वतंत्र था तथा कुछ अंश तक गंगा के मैदानों की सुसंस्कृत सभ्यता से प्रभावित था जिसका आरंभ नंद एवं मौर्य काल के समय से इंगित किया जा सकता है। इसके उपरांत चौथी शताब्दी ईसवी से नवीं शताब्दी के बीच इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर कई उप क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। दसवीं शताब्दी तक यह विकास प्रक्रिया स्पष्ट रूप ले चुकी थी। तथापि यह प्रक्रिया प्रत्येक स्थान पर समरूपी नहीं थी।

डेल्टा तट के तटवर्ती क्षेत्रों में क्षेत्र के अंदर की जंगली भूमि और ढलानों की अपेक्षा, जो कि निकटवर्ती छत्तीसगढ़ एवं बस्तर उपक्षेत्रों से काफी मिलते-जुलते हैं, ऐतिहासिक चरण की दिशा में परिवर्तन जल्दी हुए। केन्द्रीय एवं पश्चिमी उड़ीसा में धीमा और असमान परिवर्तन देखने को मिलता है। बड़ी संख्या में यहां आदिवासियों का बसना तथा भू-आवृत्ति के कारण यहां गंगा प्रदेश की सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन प्रक्रिया की पुनरावृत्ति नहीं हो सकी, उड़ीसा में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत जातिगत समाज ढेर से उभरा और जब उभरा भी तो काफी मूल अंतरों के साथ उभरा। सामाजिक संरचना की दृष्टि से उड़ीसा क्षेत्रीय भिन्नता का अच्छा उदाहरण है।

2.5.5 उत्तर-पश्चिम

उत्तर-पश्चिम में सिंध और बलूचिस्तान के विषय में अभी बहुत कम चर्चा हुई है। इसका कारण इन क्षेत्रों की सीमांती स्थिति है। यह क्षेत्र आरंभिक ऐतिहासिक दौर में अधिकतर विशाल भारतीय रेगिस्तान में हो रहे सांस्कृतिक विकासों की मुख्य धारा से कटे रहे। इस तथ्य पर चर्चा की आवश्यकता नहीं कि यह क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से विकासरहित था। जिस काल की हम चर्चा कर रहे हैं उस काल में इन क्षेत्रों में जो भी महत्वपूर्ण घटनाएं हुई हैं वह अधिकतर मध्य एशिया, अफगानिस्तान अथवा ईरान के संदर्भ से हुई हैं केवल कुशान काल के बाद से ही इन क्षेत्रों में एक अंतर्देशीय राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई जिसमें उत्तरी भारत का भी एक बड़ा भाग शामिल था। उत्तर-पश्चिम में गांधार क्षेत्र इसका अपवाद था। छठवीं शताब्दि ईसा पूर्व में ही गांधार 16 महा-जनपदों की सूची में था। मगध के राजा बिम्बसार का गांधार का राजा के साथ राजनैतिक संबंध था। गांधार की राजधानी तक्षशिला शिक्षा एवं व्यापार का केन्द्र थी। गांधार का विस्तृत आर्थिक आधार था। मथुरा, मध्य भारत तथा रोम के साथ गांधार के व्यापार के प्रमाण हैं। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण गांधार विभिन्न लोगों एवं संस्कृतियों के मिलाप का केन्द्रीय स्थान था। छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम 25 वर्षों में यह क्षेत्र राजनीतिक रूप से ईरानी (आकैमिनिड) साम्राज्य का हिस्सा था। 500 शताब्दी ईसा पूर्व से 500 शताब्दी ईसवी तक लगभग 1000 वर्षों तक तक्षशिला में निरंतर शहरी जीवन के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु यह शहरी जीवन अपने चर्मोत्कर्ष पर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी ईसवी तक रहा। इसी काल में सुविख्यात गांधार कला शैली विकसित हुई। भाव की दृष्टि से सामान्य यह कला यूनानी बौद्ध शैली के रूप में व्याख्यायित की जाती है क्योंकि यह गांधार शैली — यूनानी कला तथा बुद्धमत के सामंजस्य का परिणाम मानी जाती है। लेकिन अब निरंतर यह स्वीकार किया जा रहा है कि इस शैली पर बैक्ट्रिया का प्रभाव भी था। अतः गांधार शैली के विकास

पर बैक्ट्रिया विचार पद्धति के प्रभाव को भी नहीं नकारा जा सकता। यहां जो कदम का प्रयास किया जा रहा है वह निम्नलिखित है:

- 1) प्रथमतः उत्तर पश्चिम में सिंध एवं बलूचिस्तान की तुलना में गांधार एक भिन्न विकास प्रक्रिया दर्शाता है, तथा
- 2) आरंभिक ईसवी शताब्दियों में इस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण विभिन्न बाह्य प्रभावों के आधार पर बनीं।

बोध प्रश्न 3

1 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन-सा गलत (×) है ?

- i) गांगेय घाता एक समरूपी भौगोलिक आधार है। ()
- ii) मुद्रा के चलन की आवश्यकता व्यापार एवं वाणिज्य के कारण प्रस्तुत हुई। ()
- iii) संगम साहित्य प्राचीन तमिल देश में राज्य के गठन पर कोई प्रकाश नहीं डालता है। ()
- iv) गांधार क्षेत्र का विकास भिन्न सांस्कृतिक प्रभावों से प्रेरित था। ()

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

- i) ... (जनपदों / महाजनपदों) के उदय के कारण महानगरों का उदय संभव हो सका।
- ii) आंध्र तटवर्ती क्षेत्रों में ... (पांचवीं, तीसरी, प्रथम, दूसरी) शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान अधिक उत्पादक ... (गेहूँ / धान) उगाना प्रचलित था।
- iii) उड़ीसा में ... (गैर आदिवासी / आदिवासी) परिस्थिति के कारण ... (उपमहाद्वीप / क्षेत्र) में परिवर्तन की प्रक्रिया में बाधा पड़ी।

2.6 सारांश

हमारे इतिहास में क्षेत्र एवं क्षेत्रीयता की समस्या के सर्वेक्षण तथा क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया को रेखांकित करने वाले उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रों का सामाजिक सांस्कृतिक अंतर ऐतिहासिक रूप से काफी पुराना अंतर है। स्वभाविक भौतिक क्षेत्रों का ऐतिहासिक / सांस्कृतिक क्षेत्रों के रूप में उदय भारतीय इतिहास के आरंभिक दौर में भी देखा जा सकता है। बाद के दौर में इन क्षेत्रों ने अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान तैयार की और पृथक सामाजिक राजनैतिक इकाई के रूप में उभरे। कुछ क्षेत्र, ऐतिहासिक शक्तियों के उनमें आरंभ में ही अभिसरित हो जाने के कारण अपेक्षाकृत जल्दी और तेजी से उभरे। अन्य क्षेत्रों के अंतर्गत विकास इन बुनियादी केन्द्रों के साथ सांस्कृतिक संपर्क तथा इस संस्कृति को समाहित करने के साथ हुआ। कुछ हद तक इससे भिन्न क्षेत्रों की विशिष्टताओं और उनमें भिन्नताओं को समझा जा सकता है। क्षेत्रीय विभिन्नताएं गुप्त एवं उत्तर गुप्त काल में भाषा, शिल्पकला, वास्तुकला एवं जाति व्यवस्था के माध्यम से अधिक स्पष्ट रूप में रेखांकित होती हैं। लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाएं इसी काल में विकसित होती हैं। साथ ही प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग जाति व्यवस्था भी विकसित हुई। यह सांस्कृतिक अंतर केवल भिन्न क्षेत्रों के बीच ही नहीं थे बल्कि एक ही क्षेत्र में भी भिन्नताएं देखी जा सकती हैं। यद्यपि क्षेत्र अपने आप में साधारणतया समरूपी इकाई थे लेकिन क्षेत्रों के अंतर्गत उपक्षेत्रों के अस्तित्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमने पहले भी देखा है कि गांगेय उत्तरी भारत किसी भी रूप में एक समरूपी क्षेत्र नहीं था। प्राचीन तमिलाकम् (तमिलनाडु) के अंतर्गत पर्यावरणीय विभिन्नताएँ भी ध्यान में रखी जानी चाहिए। आंध्र, उड़ीसा, पंजाब और गुजरात के संदर्भ में भी यह तथ्य उतना ही सही ज्ञान पड़ता है। उपक्षेत्रों के अपने प्राचीन नाम भी थे। तथापि बदलते हुए राजनैतिक प्रतिरूपों और उपक्षेत्रों के एक दूसरे में समाहित हो जाने के कारण यह उपक्षेत्र बाद के समय में नये नाम ग्रहण करने लगे। निश्चित सीमाओं में एक इकाई के रूप में क्षेत्र ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के आधार पर उभरते हैं, और भारतीय इतिहास की समझ के लिए क्षेत्रों की विशेषताओं और उनके गठन की प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है।

2.7 शब्दावली

साक्षर युग: इतिहास का वह काल जब समाज में साक्षरता और लिपि का ज्ञान था।

मृत्पाण्ड: मिट्टी के बर्तन।

संगम साहित्य: तमिल क्षेत्र के लोगों का सबसे पुराना साहित्य। यह पहली से तीसरी ईसवी के बीच संकलित किया गया।

भाट: वह घुमक्कड़ समूह जो गीतों के रूप में प्रशस्तियाँ गाते थे।

केन्द्रीय क्षेत्र: वह क्षेत्र जो किसी बड़े क्षेत्र के विकास में केन्द्रीय बिन्दु की भूमिका निभाते हैं।

निवासी समुदाय: कमायली समुदाय के विपरीत एक स्थान पर रहकर कृषि तथा अन्य तरीकों से जीवनयापन करने वाले लोग।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) × ii) ✓, iii) × iv) ✓, v) ×

2 संकेत: गेरू - चित्रित मृत्पाण्ड, चमकाए हुए चित्रित मृत्पाण्ड, उनके काल का भी उल्लेख करें। देखें उपभाग 2.2.2

बोध प्रश्न 2

1 आप के उत्तर में शक्तिशाली क्षेत्रीय इकाइयों के विकास, इकाइयों की शक्ति एवं क्षेत्रीय शक्तियों का मजबूत पक्ष आदि सम्मिलित होना चाहिए, देखें भाग 2.3

2 देखें उपभाग 2.3.1

3 i) स्वतंत्र, ii) सहअस्तित्व, iii) भिन्न, iv) उच्च, इतिहास

बोध प्रश्न 3

1 i) ×, ii) ✓, iii) ✓ iv) ×, v) ✓

2 i) विकास, ii) महाजनपद, iii) फसल, पांचवीं-तीसरी शताब्दी ई. पू., iv) आदिवासी क्षेत्र।

इकाई 3 शिकारी-संग्रहकर्ता: पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 पुरापाषाण युग
 - 3.2.1 पुरापाषाण युग के औजार
 - 3.2.2 पुरापाषाण युग की बस्तियाँ
 - 3.2.3 जीवन यापन के तरीके
- 3.3 मध्य पाषाण युग
 - 3.3.1 मध्य पाषाण युग के औजार
 - 3.3.2 मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ
 - 3.3.3 जीवन यापन के तरीके
- 3.4 सारांश
- 3.5 शब्दावली
- 3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्रागैतिहासिक काल की शिकारी-संग्रहकर्ता अवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों को समझ सकेंगे,
- उन पुरातात्विक प्रमाणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जिनसे इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है,
- इस काल के लोगों के जीवन-यापन के तरीकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उन औजारों के बारे में जान सकेंगे जिनका वे उपयोग करते थे। इसके अलावा इस बात की भी जानकारी मिल सकेगी कि प्रागैतिहासिक कला उनके संगठन के विषय में जानने में कितना सहयोग प्रदान कर सकती है।

3.1 प्रस्तावना

आज बीसवीं शताब्दी में हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि मनुष्य जाति ने अपने अस्तित्व के आरम्भ से लेकर आज तक का 99% हिस्सा शिकारी/संग्रहकर्ता के रूप में बिताया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य ने मात्र 10,000 वर्ष पूर्व कृषि द्वारा उत्पादन करना सीखा। इससे पहले वह पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर था। अपने भोजन के लिए या तो वे प्रकृति से जड़ें, फल, मूल आदि एकत्र करते थे या पक्षियों, जानवरों और मछलियाँ पकड़कर अपना भोजन जुटाते थे। अपने अस्तित्व के अधिकांश कालों में मनुष्य प्रकृति और पर्यावरण पर पूर्णतः आश्रित रहा। इस तथ्य से कई बातें सामने आती हैं। एक तो यह कि उनके भोजन प्राप्त करने के तरीकों का प्रभाव उनके प्रकृति से संबंध और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण पर पड़ा। दूसरी यह कि शिकारी/संग्रहकर्ता एक समूह में रहते थे और इसका संबंध उनके द्वारा भोजन जुटाने की पद्धति से है। यहां एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्य समूहों की अपेक्षा शिकारी/संग्रहकर्ता समूहों की बनावट कहीं ज्यादा लचीली थी।

मनुष्य काफी अरसे तक शिकारी/संग्रहकर्ता का जीवन बिताता रहा। इसलिए इस काल के मानव इतिहास को जानना जरूरी है। विश्व में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां आज भी लोग शिकारी/संग्रहकर्ता का जीवन जी रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि मानव इतिहास में हुए सांस्कृतिक बदलावों के साथ-साथ हम उनकी संस्कृति के बारे में भी जानकारी हासिल करें। पर हम शिकारी/संग्रहकर्ताओं के बारे में जानेंगे कैसे? शिकारी/संग्रहकर्ताओं के रहने के ढंग, उनके सामाजिक संगठन और उनके पर्यावरण आदि विभिन्न पहलुओं पर कई मानव जाति

वैज्ञानिकों/मानवशास्त्रियों ने प्रकाश डाला है। इन्होंने जीवित शिकारी/संग्रहकर्ता समूहों का अध्ययन किया है। इनके कार्यों से अतीत के शिकारी/संग्रहकर्ता समुदायों की जीवन पद्धति और स्थिति को जानने की अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। इन समुदायों के बारे में जानने के लिए हमें उन पुरातत्ववेत्ताओं और अन्य वैज्ञानिकों की सहायता लेनी पड़ती है, जो उन समुदाय विशेष के औजारों, हड्डियों के अवशेषों और पर्यावरण विशेष के विशेषज्ञ होते हैं। इस प्रकार के अध्ययन के लिए कई प्रकार के शैक्षणिक संकायों का सहारा लेना पड़ता है। उनके जीवन को जानने के लिए कई प्रकार के साक्ष्यों जैसे जानवरों के अवशेष, पौधे और अन्य जैव अवशेषों का अध्ययन करना पड़ता है और उनका संबंध शिकारी/संग्रहकर्ता अवस्था से जोड़ना पड़ता है और इनसे आदि मानव के तत्कालीन भौतिक पर्यावरण को जानने और इसके उपयोग को समझने की अंतर्दृष्टि मिलती है।

शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा उपयोग में लाए गए पत्थर के औजार पाए गए हैं। इन औजारों को इनके प्रकार तथा काल के अनुसार मध्यपाषाणीय, पुरापाषाणीय आदि वर्गों में विभाजित किया गया है। इन औजारों के बनाने की तकनीक पर भी पुरातत्ववेत्ता विचार करते हैं। पशुओं के अवशेषों के अध्ययन से इस बात की जानकारी मिलती है कि प्रागैतिहासिक काल में उनका किस प्रकार उपयोग किया जाता था। पत्थर पर की गयी खुदाई और चित्रकारी से भी प्रागैतिहासिक काल के लोगों की अर्थव्यवस्था और समाज का पता चलता है।

3.2 पुरापाषाण युग

पुरापाषाण संस्कृति का उदय अभिनूतन (Pleistocene) युग में हुआ था। अभिनूतन युग (20 लाख वर्ष पूर्व) एक भूवैज्ञानिक काल है, जिसमें बर्फ युग अपने अन्तिम चरण में था। इस युग में धरती बर्फ से ढकी हुई थी। पुरापाषाण युग के पत्थर के औजारों के वर्गीकरण के संबंध में भारत के पुरातत्ववेत्ताओं के बीच मतभेद है:

- कुछ विद्वान धारदार ब्लेड (Blade) और लक्षणी वाले काल को “उच्च पुरापाषाण” कहते हैं।
- कुछ विद्वान उच्च पुरापाषाण को यूरोपीय पुरापाषाण संस्कृति से जोड़ते हैं।

पर अब उच्च पुरापाषाण का प्रयोग भारतीय संदर्भ में भी होता है।

3.2.1 पुरापाषाण युग के औजार

पर्यावरण और जलवायु में हुए परिवर्तन और मनुष्य द्वारा बनाए गए पत्थर के औजारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में बांटा गया है।

- निचले पुरापाषाण चरण के औजारों में मुख्यतः हाथ की कुल्हाड़ी, तक्षणी, काटने का औजार आदि हैं।
- मध्य पुरापाषाण युगीन उद्योग काटने के औजारों पर आधारित था, और
- उच्च पुरापाषाण युग की विशेषता थी — तक्षणी और खुरचनी।

अब हम इस काल के कुछ औजारों और उनके उपयोग के बारे में चर्चा करेंगे।

- हाथ की कुल्हाड़ी (Handaxe) — इसका मूठ चौड़ा और आगे का हिस्सा पतला होता है। इसका उपयोग काटने या खोपने के लिए होता होगा।
- चीरने का औजार (Cleaver) — इसमें दुहरी धार होती है। इसका उपयोग पेड़ों को काटने और चीरने के लिए होता था।
- काटने के औजार (Chopper) — एक बड़ा स्थूल औजार जिसमें एक तरफा धार होती है और इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है।
- काटने का औजार (Chopping tool) — यह भी चौपर के समान एक बड़ा स्थूल औजार है पर इसमें दुहरी धार होती है, और इसमें कई पट्टे होते हैं। इसका उपयोग भी किसी चीज को काटने के लिए होता था, पर अधिक नुकीली धार वाला होने से यह चौपर से अधिक कारगर होता था।
- पत्तर (Flake) — यह एक प्रकार का औजार होता है, जिसे पत्थर को तोड़कर बनाया जाता है। पत्तर की सतह पर सकारात्मक समाघात और इसके सारभाग में एक नकारात्मक

समाघात (Negative bulb of percussion) होता है। जिस स्थान पर पत्थर के हथौड़े से चोट की जाती है उसे समाघात स्थल कहते हैं। इस चोट से जो गोल, हल्का उत्तल हिस्सा कट कर निकलता है उसे सकारात्मक समाघात कहते हैं। इस चोट के परिणाम स्वरूप सारभाग का जो हिस्सा अवतल हो जाता है उसे नकारात्मक समाघात कहते हैं। पत्तर बनाने की कुछ तकनीकें हैं: फ्री फ्लेकिंग तकनीक, स्टेप फ्लेकिंग तकनीक, ब्लॉक आन ब्लॉक तकनीक, द्विघुवीय तकनीक आदि।

- खुरचनी (Side scraper) — इसमें एक पत्तर या ब्लेड होता है और इसका किनारा धारदार होता है। इसका उपयोग पेड़ की खाल या जानवरों का चमड़ा उतारने में किया जाता होगा।
- तक्षणी (Burin) — यह भी पत्तर या ब्लेड के समान ही होता है, पर इसका किनारा दो तलों के मिलने से बनता है। तक्षणी के काम वाले हिस्से की लम्बाई 2-3 से. मी. से अधिक नहीं होती है। इसका उपयोग मुलायम पत्थरों, हड्डियों, क्रोड़ों या गुफाओं की दीवारों पर नक्काशी के लिए होता है।

3.2.2 पुरापाषाण युग की बस्तियाँ

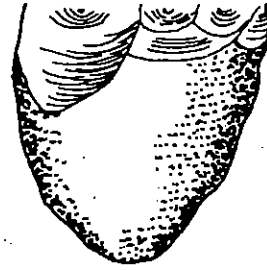
अब हम पढ़ेंगे कि शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा प्रयुक्त औजार पुरातत्ववेत्ताओं को किन-किन क्षेत्रों में मिले हैं। इन औजारों के क्षेत्रीय फैलाव के बारे में पता चलने पर न केवल हमें शिकारी/संग्रहकर्ताओं के निवास स्थलों का पता चलेगा, बल्कि उस पर्यावरण की भी जानकारी मिलेगी, जिसमें वे रहते थे।

विभिन्न क्षेत्रों में इनका अध्ययन करें:

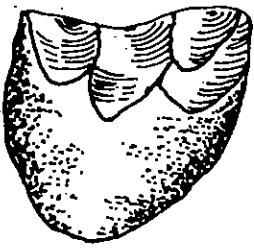
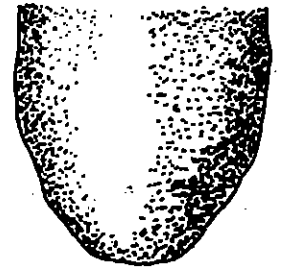
- i) कश्मीर घाटी दक्षिण पश्चिम में पीर जंगल पहाड़ियों और उत्तर पूर्व हिमालय से घिरी है। कश्मीर में लिङ्गदर नदी के किनारे पहलगांव से एक हाथ की कुल्हाड़ी प्राप्त हुई थी। किंतु पुरापाषाण युग के औजार कश्मीर में ज्यादा नहीं मिलते क्योंकि हिमानी युग में कश्मीर में अत्यधिक ठंड होती थी। पोतवार क्षेत्र (आज का पश्चिमी पंजाब और पाकिस्तान) पीर पंजल और नमक पर्वत श्रृंखला के बीच में पड़ता है। इस इलाके में विवर्तनिक बदलाव आया था और इस क्रम में सिंधु और सोहन नदियों की उत्पत्ति हुई थी। सोहन घाटी में हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औजार मिले हैं। ये औजार अडियाल, बलवाल और चौन्ट्रा जैसी महत्वपूर्ण पुरापाषाणीय बस्तियों में पाये गए हैं। ब्यास, बाण, गंगा और सिरसा नदियों के किनारे भी पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं।
- ii) लूनी नदी (राजस्थान) के आसपास के क्षेत्र में कई पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। लूनी नदी का उद्गम अरावली क्षेत्र में हुआ था। चित्तौड़गढ़ (गंभीर नदी घाटी) कोटा (चंबल नदी घाटी) और नगरई (बेराच नदी घाटी) में पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। मेवाड़ की बगांव और कदमली नदियों के आसपास भी मध्य पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। इन इलाकों से कई प्रकार की खुरचनी, बेधक औजार और नुकीले औजार भी पाए गए हैं।
- iii) गुजरात में साबरमती, माही और उनकी सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं। साबरमती नदी अरावली से निकल कर खम्बात की खाड़ी में जा गिरती है। ओरसंग घाटी के नजदीक भंडारपुर में भी मध्य पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। सौराष्ट्र में भद्रदर नदी के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औजार मिले हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियाँ, खुरचनी, काटने के औजार, नुकीले औजार, बेधक औजार आदि। कच्छ क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के अनेक औजार मिले हैं जैसे — खुरचनी, हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औजार।
- iv) नर्मदा नदी मैकॉल पर्वत श्रृंखला से निकलती है और खम्बात की खाड़ी में जाकर मिल जाती है। नर्मदा के समतलों में पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं, जैसे हाथ की कुल्हाड़ियाँ और चीरने के औजार। विध्य क्षेत्र में अवस्थित भीमबेतका (भोपाल के निकट) में पहले एश्यूलियन (Acheulian) संस्कृति के औजार उपयोग में लाए जाते थे किंतु वहां बाद में मध्य पुरापाषाण युगीन संस्कृति का आगमन हुआ।



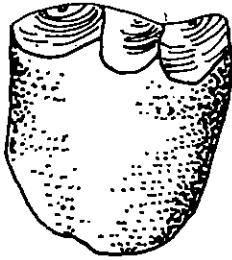
1.



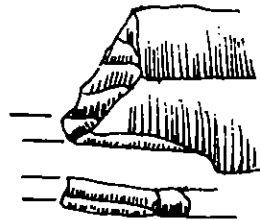
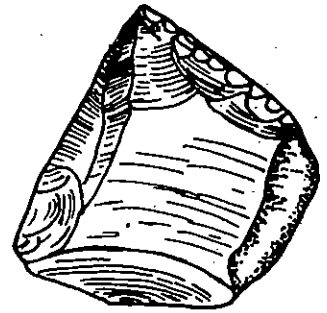
2.



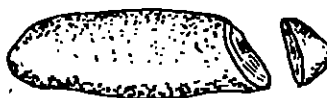
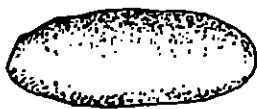
3.



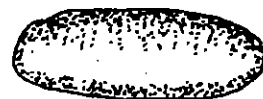
4.



5.



6.



1. चीरने के औज़ार, 2. काटने के औज़ार, 3. काटने के औज़ार,
4. खुरचनियाँ, 5. सक्की, 6. पत्तर

- v) ताप्ती, गोदावरी, भीमा और कृष्णा नदियों के आसपास भी कई पुरापाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। पुरापाषाण युग की बस्तियों की अवस्थिति का संबंध पर्यावरण संबंधी बदलाव से भी है जैसे भू-स्थलन, मिट्टी की प्रकृति आदि। ताप्ती की तलहटी में काफी गहराई तक रेगुर काली मिट्टी पाई जाती है। भीमा और कृष्णा नदियों के ऊपरी हिस्से के आसपास के क्षेत्रों में कम पुरापाषाणीय बस्तियाँ पाई गई हैं। महाराष्ट्र में नवासा के नजदीक चिरकी में हाथ की कुल्हाड़ियाँ, काटने के औजार, बेधक औजार, खुरचनी और मिट्टी तोड़ने के औजार पाए गए हैं। महाराष्ट्र में कोरेगांव, चन्दौली और शिकारपुर पुरापाषाण युग की अन्य प्रमुख बस्तियाँ हैं।
- vi) पूर्वी भारत में रासे नदी (सिंहभूम, बिहार) में भी हाथ की कुल्हाड़ियाँ, काटने के औजार, पत्तर आदि अनेक पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। सिंहभूम में भी बहुत सी पुरापाषाण युग की बस्तियाँ मिली हैं। इन बस्तियों में मुख्यतः हाथ की कुल्हाड़ियाँ और काटने के औजार पाए गए हैं। दामोदर और सुवर्णरेखा नदियों की घाटी से भी पुरापाषाण युग के औजारों के पाए जाने की सूचना मिली है। यहाँ भी पुरापाषाणीय संस्कृति की अवस्थिति स्थलाकृतिक विशेषताओं से प्रभावित हुई है। उड़ीसा में वैतरनी, ब्राह्मणी और महानदी के डेल्टा क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के कुछ औजार पाए गए हैं।
- उड़ीसा में म्यूरमंज में बुहार बलंग घाटी में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के कई औजार पाए गए हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियाँ, खुरचनी, नुकीले औजार और पत्तर।
- vii) माल प्रभा, घाट प्रभा और कृष्णा की सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग की कई बस्तियाँ पाई गई हैं। घाट प्रभा नदी घाटी में ऐशयूलियन (Acheulian) हाथ की कुल्हाड़ियाँ काफी संख्या में पाई गई हैं। अंगवाही और बागलकोट घाट प्रभा नदी के पास स्थित दो प्रमुख बस्तियाँ हैं जहाँ प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। तमिलनाडु में पत्तर, पेनियारे और कावेरी में भी पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं। अतिरमपककम और गुडिडयम में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युगीन औजार पाए गए हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियाँ, खुरचनी, पत्तर, ब्लेड आदि।

3.2.3 जीवन यापन के तरीके

पुरापाषाण युग की बस्तियों में भारतीय और विदेशी मूल के जानवरों के अवशेष काफी मात्रा में पाए गए हैं। नर बानर, जिराफ, कस्तूरी मृग, बकरी, भैंसा, गाय और सूअर स्वदेशी मूल के पशु प्रतीत होते हैं। ऊँट और घोड़े से उत्तरी अमरीका से संबंध का पता चलता है। दरियाई घोड़ा और हाथी मध्य अफ्रीका से भारत आये थे। ये हिमालय की पूर्वी और पश्चिमी सीमा से होकर आये होंगे। अधिकांश जानवर भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा से होकर आये। उस समय अफ्रीका और भारत के बीच काफी आदान-प्रदान होता था।

पुरापाषाण युग के मनुष्य भोजन के लिए किन स्रोतों पर निर्भर करते थे? इस बारे में जानकारी जानवरों के अवशेषों से मिलती है। इन अवशेषों से पता चलता है कि लोग शिकारी और संग्रहकर्ता अवस्था में थे। एक इलाके में रहने वाले मनुष्यों और पशुओं की संख्या के बीच संतुलन रहा होगा। उस समय के लोगों ने आसपास पाये जाने वाले पशुओं और पेड़ों का भोजन के रूप में उपयोग किया होगा। मनुष्य छोटे और मध्यम आकार के जानवरों, विशेषतः खुरों वाले पशुओं का शिकार करता होगा। साथ ही वह हिरण, गैडे और हाथी का भी शिकार करता होगा। इस काल में किसी खास प्रकार की शिकारी प्रवृत्ति का पता नहीं चलता है। कहीं-कहीं कुछ विशेष प्रकार के जानवरों के अवशेष बहुतायत में पाए गए, लेकिन इसका कारण यह है कि उस इलाके में उन विशेष जानवरों की बहुतायत थी और उनका शिकार करना आसान था। ऐसा लगता है कि शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा पशुओं और पेड़ों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करना काफी हद तक शुष्क/आद्र ऋतुचक्र पर आधारित था। पुरापाषाण युग के लोग मुख्य रूप से बैल, गवल, नीलगाय, भैंसा, चिकारा, हिरण, बारहसिंगे, साम्मर, जंगली सूअर, कई तरह के पक्षियों, कछुओं, मछलियों, मधु और फलदायक पौधों के फलों, मूल, बीज और पत्तों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

यह कहा जाता है कि आज के वर्तमान शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा शिकार किए जाने वाले जानवरों से अधिक महत्व शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा संग्रहित भोजन का है। संग्रहित भोजन

के अवशेष शिकार के अवशेषों की तुलना में अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं। पुरापाषाण युग के लोगों की खाने-पीने की आदतों के बारे में पता लगाना मुश्किल है। ये लोग किस प्रकार के पौधों या फलों का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे इस बारे में हमें उस प्रकार की जानकारी उपलब्ध नहीं है जैसी कि आजकल के शिकारी/संग्रहकर्ता समूहों के बारे में उपलब्ध है। यह मुमकिन है कि पुरापाषाण युग के लोग पशुओं के साथ-साथ फल-फूल को भी भोजन के रूप में इस्तेमाल करते होंगे।

पत्थर पर की गई चित्रकारी और खुदाई से भी हमें पुरापाषाण युग के लोगों के रहन-सहन और सामाजिक जीवन के बारे में पता चलता है। सबसे पुरानी चित्रकारी उत्तर पुरापाषाण युग की है। विन्ध्य क्षेत्र में स्थित भीमबेटका में विभिन्न कालों की चित्रकारी देखने को मिलती है। प्रथम काल में उत्तर पुरापाषाण युग की चित्रकारी में हरे और गहरे लाल रंग का उपयोग हुआ है। इन चित्रों में भैंसे, हाथी, बाघ, गैंडे और सूअर के चित्र प्रमुख हैं। ये चित्र काफी बड़े हैं और कुछ की लंबाई 2 से 3 मीटर तक है। पुरापाषाण युग के लोगों के शिकारी जीवन की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के जानवरों के कितने और किन रूपों में चित्र मिले हैं इसका बारीकी से अध्ययन करना होगा। खुदाई और चित्रकारी से पता चलता है कि शिकार ही जीवन यापन का मुख्य साधन था। इन चित्रों में बनी शारीरिक संरचना के आधार पर पुरुष और स्त्री में सरलता से भेद किया जा सकता है। इन चित्रों से यह भी पता चलता है कि पुरापाषाण युग के लोग छोटे-छोटे समूहों में रहते थे और उनका जीवन निर्वाह पशुओं और पेड़ पौधों पर निर्भर था।

छोछ प्रश्न ।

टिप्पणी: निम्नलिखित प्रश्नों को सावधानी से पढ़ें और सही तथा सबसे उपयुक्त उत्तर पर निश्चान लगायें।

1. सामाजिक विकास का कौन सा काल शिकारी/संग्रहकर्ता चरण का प्रतिनिधित्व करता है:
 - क) पुरापाषाण युग
 - ख) मध्य पाषाण युग
 - ग) पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग
 - घ) नवपाषाण युग
2. प्रागैतिहासिक शिकारी/संग्रहकर्ता समाज का अध्ययन कैसे किया जाता है ?
 - क) लिखित स्रोतों की सहायता से
 - ख) मुद्रा विषयक स्रोतों की सहायता से
 - ग) शिलालेख स्रोतों की सहायता से
 - घ) पुरातत्व अवशेषों की सहायता से
3. अभिनूतन (Pleistocene) युग:
 - क) बहुत ठंडा था।
 - ख) बहुत गर्म था।
 - ग) तापक्रम सामान्य था।
 - घ) बहुत सूखा था।
4. पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में निम्नलिखित में से किस आधार पर विभाजित करते हैं:
 - क) जलवायु में परिवर्तन
 - ख) पत्थर के औजारों के प्रकार
 - ग) पशु-पक्षी अवशेषों
 - घ) पत्थर के औजारों के प्रकार, मौसम में परिवर्तन और पशु-पक्षी अवशेषों

5 पुरापाषाण युग की अर्थव्यवस्था:

- मोजन उत्पादन पर आधारित थी।
- शिकार पर आधारित थी।
- जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।
- जानवरों के शिकार और जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।

3.3 मध्य पाषाण युग

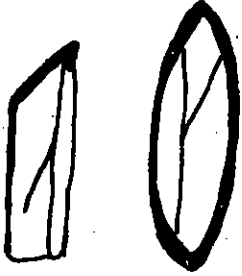
मध्य पाषाण युग का आरम्भ ई. पूर्व 8000 के आसपास हुआ। यह पुरापाषाण और नव पुरापाषाण युग के बीच का संक्रमण काल है। धीरे-धीरे तापक्रम बढ़ा और मौसम गरम और सूखा होने लगा। परिवर्तन से मनुष्य का जीवन प्रभावित हुआ। पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधों की किस्मों या प्रजातियों में भी परिवर्तन आया। औजार बनाने की तकनीक में परिवर्तन हुआ और छोटे पत्थरों का उपयोग किया जाने लगा। मनुष्य मूलतः शिकारी-संग्रहकर्ता ही रहा, पर शिकार करने की तकनीक में परिवर्तन हो गया। अब न केवल बड़े बल्कि छोटे जानवरों का भी शिकार करने लगा। मछलियाँ पकड़ने लगा और पक्षियों का भी शिकार करने लगा। यह भौतिक और पारिस्थितिकी परिवर्तन पत्थर पर हुई चित्रकारी से भी प्रतिबिम्बित होता है। अब हम इस युग में उपयोग में लाए जाने वाले कुछ औजारों की चर्चा करेंगे।



2. ब्लेड

3.3.1 मध्य पाषाण युग के औजार

मध्य पाषाण युग के औजार छोटे पत्थरों से बने हुए हैं। ये सूक्ष्म औजार आकार में काफी छोटे हैं और इनकी लम्बाई 1 से 8 से. मी. तक है। कुछ सूक्ष्म औजारों का आकार ज्यामितीय होता है। ब्लेड, क्रोड, नुकीले, त्रिकोण, नवचन्द्राकार और कई अन्य प्रकार के औजार मध्य पाषाण काल में उपयोग में लाए जाने वाले मुख्य ज्यामितीय औजार हैं। इनके अलावा इस काल में पुरापाषाण युग के औजार जैसे तक्षणा, खुरचनी और यहां तक कि गंडासा भी मिलते हैं।



3. नुकीला औजार



4. त्रिकोण



5. नवचन्द्राकार

- ब्लेड (Blade):** यह एक प्रकार का विशेषीकृत पत्तर होता है। इसकी लम्बाई इसकी चौड़ाई से दुगनी होती है। इनका उपयोग संभवतः काटने के लिए किया जाता होगा। मध्य पाषाण युग में औजार बनाने की तकनीक को फ्लूटिंग (Fluting) कहा जाता है। इसमें सार मात्र पर प्लेटफार्म के नुकीले सिरे से प्रहार किया जाता है। हमें कुछ धारदार ब्लेड भी मिले हैं। ये चौड़े, मोटे और लंबे होते हैं। ब्लेड को धार देने से उसमें पैनापन आता है। कुछ ऐसे ब्लेड पाए गए हैं, जिनके एक या दोनों सिरे धारदार होते हैं अन्यथा दोनों किनारे धारदार होते हैं। ये ब्लेड साधारण ब्लेडों से कहीं अधिक पैने तथा कारगर होते हैं।
- क्रोड (Core):** क्रोड साधारणतया आकार में बेलनाकार होता है जिसकी पूरी लम्बाई में फ्लूटिंग के निशान होते हैं और इसमें एक सपाट प्लेटफार्म होता है।
- नुकीला औजार (Point):** नुकीला औजार एक प्रकार का टूटा त्रिकोण ब्लेड होता है। इसके दोनों सिरे दलवा तथा धारदार होते हैं। इसके सिरे सरल रेखीय या वक्र रेखीय भी हो सकते हैं।
- त्रिकोण (Triangle):** इसमें साधारणतः एक सिरा और एक आधार होता है और सिरे को धारदार बनाया जाता है। इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है या इसे तीर के अग्र भाग में भी लगाया जाता है।
- नवचन्द्राकार (Lunate):** नवचन्द्राकार औजार भी एक तरह का ब्लेड होता है लेकिन इसका एक सिरा वृत्ताकार होता है। यह एक वृत्त के हिस्से के समान मालूम होता है। इनका उपयोग अवतल कटाई के लिए किया जा सकता था या ऐसे दो औजारों को मिलाकर तीर का अग्रभाग तैयार किया जा सकता था।

- vi) समलम्ब औजार (Trapeze) : यह भी एक ब्लेड के समान ही दिखाई पड़ता है। इसके एक से अधिक सिरे धारदार होते हैं। किसी-किसी समलम्ब औजारों के तीन सिरे धारदार होते हैं। इनका उपयोग तीर के अग्रभाग के रूप में होता होगा।



3.3.2 मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ

अब हम भारत में मध्य पाषाण युग की महत्वपूर्ण बस्तियों के विषय में चर्चा करेंगे।

- i) पचपद्र नदी घाटी और सोजत (राजस्थान) इलाके में सूक्ष्म औजार काफी मात्रा में मिले हैं। यहाँ पाई गई एक महत्वपूर्ण बस्ती तिलवारा है। तिलवारा में दो सांस्कृतिक चरण पाए गए हैं। पहला चरण मध्य पाषाण युग का प्रतिनिधित्व करता है तथा इस चरण की विशेषता सूक्ष्म औजारों का पाया जाना है। दूसरे चरण में चाक पर बने हुए मिट्टी के बर्तन और लोहे के टुकड़े इन सूक्ष्म औजारों के साथ पाए गए हैं। मध्य पाषाण युग की बड़ी बस्तियों में से एक है — बगोर (राजस्थान) जो कोठारी नदी के किनारे स्थित है। बगोर में खुदाई की गई तो तीन सांस्कृतिक अवस्थाएँ पाई गईं। रेडियो कार्बन डेटिंग से अवस्था-I या संस्कृति की सबसे प्रारंभिक अवस्था का समय 5000 से 2000 ई. पू. निश्चित किया गया है।
- ii) गुजरात में ताप्ती, नर्मदा, माही और साबरमती नदियों के आसपास भी कई मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अक्खज, बलसाना, हीरपुर और लंघनाज साबरमती नदी के पूरब में स्थित हैं। लंघनाज का विस्तार से अध्ययन किया गया है। लंघनाज में तीन सांस्कृतिक अवस्थाएँ पाई गई हैं। अवस्था-I में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। सूक्ष्म औजारों में ब्लेड, त्रिकोणीय औजार, अर्धचन्द्राकार औजार, खुरचनी और तक्षणी आदि प्रमुख हैं।
- iii) विन्ध्य और सतपुरा इलाके में मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियाँ पाई गई हैं। इलाहाबाद में प्रतापगढ़ इलाके में सराय नहर राय (उत्तर प्रदेश) का विस्तार से अध्ययन किया गया है। कैमूर पर्वत श्रृंखला में मध्य पाषाण युग की दो प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं — मोरहाना पहाड़ (उत्तर प्रदेश) और लेखडीया (उत्तर प्रदेश)। भीमबेटका (मध्य प्रदेश) में अनेक सूक्ष्म औजार मिले हैं। भीमबेटका में पारिस्थितिकी संतुलन बसने के लिए अनुकूल था। भीमबेटका के दक्षिण में आदमगढ़ (होशंगाबाद) में मध्य पाषाण युग की एक प्रमुख बस्ती पाई गई है।
- iv) कोंकण के तटीय इलाके और आन्तरिक पठार में भी मध्य पाषाण युग के औजार पाए गए हैं। कोंकण इलाके में कसुशोअल, जनयेरी, दमालगो और जलगढ़ जैसी कुछ प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं। असिताश्म के बने दक्षिण पठार में भी अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। धुलिया और पूना जिले में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं।
- v) छोटा नागपुर पठार, उड़ीसा के तटीय मैदानी क्षेत्र, बंगाल डेल्टा, ब्रह्मपुत्र घाटी और शिलांग पठारी इलाके में भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। प्राक नवपाषाण युग के सूक्ष्म औजार छोटा नागपुर पठार में पाए गए हैं। मयूरमंज, कियोनहर और सुन्दरगढ़ में भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। पश्चिम बंगाल में दामोदर नदी के किनारे भीमानपुर की भी खुदाई हुई है। यहाँ पर भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। मेचालय की गारो पहाड़ियों में स्थित सेबालगिरी-2 में भी प्राक नव पाषाणयुगीन सूक्ष्म औजार पाए गए हैं।
- vi) कृष्णा और भीमा नदी में भी अनेक सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। ये सूक्ष्म औजार नव पाषाण संस्कृति के चरण में भी पाए गए हैं। कर्नाटक पठार के पश्चिमी किनारे पर स्थित संगनकल में अनेक औजार मिले हैं जैसे क्रोड़, नुकीले औजार, अर्धचन्द्राकार पत्तर आदि।

6. समलम्ब औजार

गोदावरी डेल्टा में भी सूक्ष्म औजार काफी मात्रा में पाए गए हैं। यहाँ पर पाए गए ये औजार नवपाषाणीय संस्कृति से सम्बद्ध हैं। कुरनूल इलाके में भी काफी मात्रा में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर इलाके में रेणीगुटा में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। चूँकि मध्य पाषाण युग की काल सीमा काफी लंबी थी और भारत में अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अतः विभिन्न बस्तियों को कालक्रमानुसार और वहाँ प्राप्त भौतिक अवशेषों के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। कालक्रम तथा सूक्ष्म औजारों की बहुतायत मध्य पाषाण युग के सूचक हैं। कुछ बस्तियाँ कालक्रमानुसार बाद की हैं और

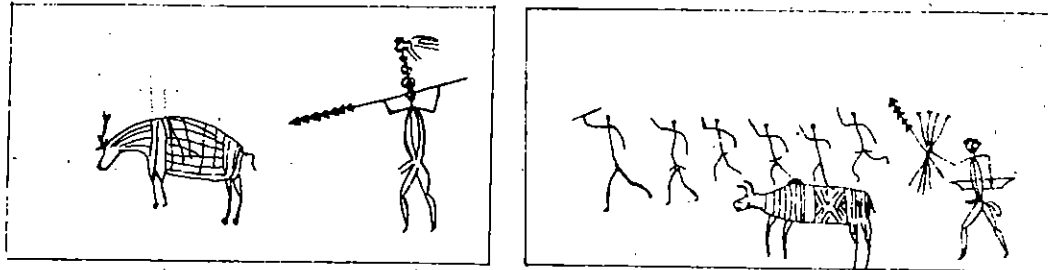
मध्य पाषाण संस्कृति से प्रभावित हैं। ये सभी बस्तियाँ मध्य पाषाणीय परम्परा की बस्तियों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। बगोर, सराय-नहर राय, और अदमगढ़ में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं।

3.3.3 जीवन यापन के तरीके

आरंभिक मध्यपाषाणीय बस्तियों से जानवरों जैसे भेड़, बकरी, भैंस, सूअर, कुत्ता, हाथी, दरियाई घोड़ा, बनेले सूअर, गवल, गीदड़, भेड़िए, चीते, साम्भर, बारह सिंघे, खरगोश, काले हिरण, मृग, कछुए, साँधे, नेवले, छिपकली, मवेशियों आदि के अवशेष पाए गए हैं। इनमें से बहुत सी प्रजातियाँ मध्य पाषाण परम्परा के अंतर्गत विद्यमान रही। मध्य पाषाणीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियों से जंगली भेड़, जंगली बकरी, गदहा, हाथी, लोमड़ी, गवल, दरियाई घोड़ा, साम्भर, खरगोश, साँधे, छिपकली, चूहा, मुर्गी, कछुआ आदि नहीं पाए गए हैं। जंगली भैंसा, ऊँट, भेड़िया, गैडा और नीलगाय मध्य पाषाणीय परम्परा के अंतर्गत पाए गए हैं। ये प्रजातियाँ आरंभिक मध्यपाषाणीय युग में अनुपस्थित थीं। किसी विशेष काल में पशुओं का पाया जाना और न पाया जाना वस्तुतः जलवायु और पर्यावरण संबंधी परिवर्तन पर निर्भर करता है।

मध्य पाषाण युग के दौरान लोग शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन खाते थे। मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियों जैसे लघनाज और तीलवारा से मछली, कछुए, खरगोश, नेवले, साँधे, मृग, नीलगाय के अवशेष पाए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भोजन के रूप में इनका उपयोग किया जाता होगा। शिकार करने और मछली मारने के अलावा मध्य पाषाण युग के लोग जंगली कन्द मूल, फल और मधु आदि का भी संग्रह करते थे और यह उनके भोजन का पूर्ण हिस्सा था। ऐसा प्रतीत होता है कि पौधों से प्राप्त भोजन शिकार से प्राप्त भोजन की अपेक्षा अधिक सुलभ था। कुछ इलाकों में घास, खाने योग्य जड़, बीज, काष्ठफल और फल काफी मात्रा में उपलब्ध थे और लोग भोजन के साधन के रूप में इनका उपयोग करते होंगे। कुछ वर्तमान शिकारी/संग्रहकर्ताओं के संदर्भ में यह तर्क दिया जाता है कि उनका मुख्य भोजन फल-फूल ही है। शिकार से प्राप्त भोजन केवल पूरक का ही काम करता है। मध्य पाषाण युग के संदर्भ में पशु मांस और पेड़-पौधों से प्राप्त भोजन के बीच तारतम्य स्थापित करना मुश्किल है; क्योंकि पौधों के अवशेष जल्दी नष्ट हो जाते हैं। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि काफी हद तक भोजन की पूर्ति शिकार के माध्यम से होती थी।

पत्थर की गुफाओं की दीवारों पर बनाए गये चित्रों और नक्काशियों से मध्य पाषाण युग के सामाजिक जीवन और आर्थिक क्रिया कलाप से संबंधित काफी जानकारी मिलती है। मीमबेटका, आदमगढ़, प्रतापगढ़, मिर्जापुर मध्य पाषाण युग की कला और चित्रकला की दृष्टि से समृद्ध हैं। इन चित्रों से शिकार करने, भोजन जुटाने, मछली पकड़ने और अन्य मानवीय



7. मध्य पाषाण युग के चित्र

क्रिया कलापों की भी झलक मिलती है। मीमबेटका में भी काफी चित्र बने मिले हैं। इनमें बहुत से जानवरों जैसे जंगली सूअर, भैंसे, बन्दर और नीलगाय के चित्र बने मिले हैं। इन चित्रों और नक्काशियों से यौन संबंधों, बच्चों के जन्म, बच्चे के पालन पोषण और शव दफन से संबंधित अनुष्ठानों की भी झलक मिलती है। इन सब बातों से यह संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण युग में पुरापाषाण युग की अपेक्षा सामाजिक संगठन अधिक सुदृढ़ हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य पाषाण युग के लोगों का धार्मिक विश्वास पारिस्थितिकी और भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित था।

बोध प्रश्न 2

- 1 मध्य पाषाण युग के औजार हैं:
 - क) हाथ की कुल्हाड़ी और चीरने के औजार
 - ख) चीरने के औजार और काटने के औजार
 - ग) ब्लेड, क्रोड़, नुकीले औजार और नवचन्द्राकार औजार
 - घ) काटने के औजार और पत्तर
- 2 निम्नलिखित स्थानों में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं:
 - क) कोठारी नदी
 - ख) ताप्ती नदी
 - ग) गोदावरी डेल्टा
 - घ) कोठारी नदी, ताप्ती नदी और गोदावरी डेल्टा
- 3 निम्नलिखित कथनों में से सबसे सही कथन कौन सा है:
 - क) मध्य पाषाण युग के लोगों का जीवन यापन जानवरों के शिकार पर निर्भर था।
 - ख) उनका जीवन जंगली कंदमूल फल के संग्रह पर निर्भर था।
 - ग) वे जानवरों का शिकार करते थे और जंगली फलों का संग्रह करते थे।
 - घ) उनका जीवन अधिशेष खाद्य उत्पादन पर निर्भर था।
- 4 मध्य पाषाण युग के औजारों और चित्रकला के आधार पर मध्य पाषाण युग के जीवन-यापन ढाँचे और सामाजिक संगठनों पर प्रकाश डालें। (10 पंक्तियों में)

3.4 सारांश

शिकारी/संग्रहकर्ता प्रागैतिहासिक समुदायों का अध्ययन पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित है। इस अध्ययन में मानवशास्त्रीय सिद्धांत सहायता प्रदान करते हैं। सामाजिक विकास के क्रम में पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग शिकारी/संग्रहकर्ता अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। जलवायु में हुए परिवर्तन और पत्थर के औजारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है। आरंभिक पुरापाषाण के औजार हाथ की कुल्हाड़ियाँ, चीरने और काटने के औजार हैं। मध्य पुरापाषाण युग के मुख्य औजार पत्तर हैं। उच्च पुरापाषाण संस्कृति के मुख्य औजार तक्षणी और खुरचनी हैं। मध्य पाषाण युग 8000 ई. पू. से शुरू होता है। इस युग में जलवायु में परिवर्तन हुए। इस दौरान सूक्ष्म औजार और छोटे पत्थर के औजार बनाने की दिशा में तकनीकी विकास भी हुए। मध्यपाषाण औजारों में ब्लेड, क्रोड़, नुकीले औजार, त्रिकोणीय औजार और नवचन्द्राकार औजार मुख्य हैं।

जीव जन्तुओं के अवशेषों से भी पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग के लोगों के जीवन-यापन के बारे में काफी जानकारी मिलती है। पुरापाषाण युग में लोग मुख्यतः शिकारी/संग्रहकर्ता थे। ये

लोग बड़े और छोटे आकार के पशुओं जैसे हाथी, बेल, नीलगाय, हिरण, जंगली भालू और कई प्रकार के पक्षियों का शिकार करते थे। इसके अतिरिक्त ये फल, बीज आदि का भी आहार के रूप में प्रयोग करते थे। मध्य पाषाण युग में भी मनुष्य शिकारी/संग्रहकर्ता ही था। हालांकि कुछ नये जानवर जैसे जंगली बकरा, लोमड़ी आदि भी इस काल में पाए जाते थे। पुरापाषाण युग और मध्य पाषाण युग की शिकार प्रवृत्ति में एक मूलभूत अन्तर है। पुरापाषाण युग में लोग बड़े जानवरों का शिकार करते थे जबकि मध्य पाषाण युग में छोटे जानवरों का भी शिकार किया जाने लगा और मछलियाँ मारी जाने लगीं। प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला उस युग के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालती है।

3.5 शब्दावली

एश्यूलियन (Acheulian): यह एक प्रकार की हाथ की कुल्हाड़ी है। ये कुल्हाड़ियाँ आरंभिक हिम युग के दिनों की हैं, ये सबसे पहले फ्रांस में पायी गयी हैं।

शिल्प अवशेष: कोई ऐसी वस्तु जो मनुष्य द्वारा बनाई तथा उपयोग में लाई जाए। इसके अन्तर्गत अपरिष्कृत पत्थर से लेकर आधुनिक तकनीक से बनी कोई भी वस्तु शामिल हो सकती है।

संकलन: विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का समुच्चय जिनका आपस में अंतर्सम्बन्ध हो। जब यह संकलन अनेक बार पाया जाता है और मानव गतिविधि का पूर्ण रूप से विवरण देता है तब उसे संस्कृति कहते हैं।

व्यासमापन: रेडियो कार्बन तिथि अंकन में इस शब्द का इस्तेमाल किया जाता है।

अवतल: अन्दर की तरफ घंसा हुआ, बीच की परत किनारे की परत से पतली।

उत्तल: बाहर की तरफ उठा हुआ और बीच का भाग, किनारे की अपेक्षा मोटा।

मानवजाति वर्णन: इसमें संस्कृतियों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

पारिस्थितिकी: पशु जीवन और पौधों के जीवन का अंतर्सम्बन्ध।

पुरालेखशास्त्र: इसमें शिलालेखों का अध्ययन किया जाता है।

घनस्पति: इस विज्ञान के अंतर्गत पौधों के जीवन का अध्ययन किया जाता है।

जीव-जंतु विज्ञान: इसमें पशुओं के जीवन का अध्ययन होता है।

भू-विज्ञान: इसमें पृथ्वी की बनावट, संरचना और इतिहास का अध्ययन होता है।

हिमाच्छादन: ठंडी जलवायु का काल जिसमें बर्फ की मात्रा अधिक थी, कई हिमाच्छादन मिलकर एक हिम-युग बनाते हैं।

स्तनधारी: ऐसे जानवर जो अपने बच्चों को स्तनपान कराते हैं।

मुद्राशास्त्र: इसमें मुद्रा का अध्ययन किया जाता है।

पराम विश्लेषण: इस तकनीक का उपयोग कालक्रम स्थापित करने के लिए किया जाता है। इसमें फूलों के पराम का विश्लेषण किया जाता है।

नर बानर: स्तनधारी जीव (मानव, बंदर, लंगूर आदि)।

आयत: समकोण चतुर्भुज।

सरल रेखीय: जिसमें सीधी रेखा हो।

रेडियो कार्बन: ऐसी विधि जिसके द्वारा 70,000 वर्ष पुरानी कार्बनिक वस्तु के काल का पता लगाया जा सकता है। पौधे और अन्य जीव अपने जीवन काल में वातावरण से कार्बन ग्रहण करते हैं। इसमें कार्बन 14 (14सी) भी रहता है, जो रेडियोधर्मी तत्व है। पौधों और जीवों के मरने के बाद इस कार्बन की मात्रा कम होने लगती है। इस प्रकार कार्बन की मात्रा से अवशेषों की पुरातनता का पता चल जाता है।

अनुप्रस्थ: चौड़ाई के मुताबिक।

कगार: नदी के किनारों के आसपास की जमीन।

शिकारी-संग्रहकर्ता:
प्रासादिक परिप्रेक्ष्य

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क, 2) घ, 3) क, 4) घ, 5) घ

बोध प्रश्न 2

1) ग, 2) घ, 3) ग

4) इस प्रश्न का उत्तर देने की प्रक्रिया में आपको अपनी कल्पना का सहारा लेना होगा और आपको समझना होगा कि किस प्रकार दीवारों पर बने चित्र तत्कालीन जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। उदाहरणस्वरूप, एक चित्र जिसमें कुछ लोग मिलकर जानवर का शिकार कर रहे हैं, इससे छोटे सामाजिक समुदायों की स्थापना के विषय में पता चलता है। इससे उनकी आहार प्रवृत्ति और औजारों के प्रकार का भी पता लगाया जा सकता है। देखें उपभाग 3.3.1।

इकाई 4 कृषि और पशु पालन का आरम्भ

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 संस्कृति का नवपाषाण चरण
- 4.3 सबसे प्राचीन किसान
 - 4.3.1 नील घाटी
 - 4.3.2 पश्चिम एशिया के प्रारम्भिक किसान
- 4.4 भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन किसान
 - 4.4.1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र
 - 4.4.2 काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति
 - 4.4.3 बेलान घाटी के प्राचीन किसान
 - 4.4.4 बिहार /मध्य गंगा घाटी की नवपाषाण संस्कृति
 - 4.4.5 पूर्वी भारत के प्रारंभिक किसान
 - 4.4.6 दक्षिण भारत के प्रारंभिक किसान
 - 4.4.7 ऊपरी मध्य और पश्चिमी दक्कन की नवपाषाण संस्कृति
- 4.5 सारांश
- 4.6 शब्दावली
- 4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में धातुओं का उपयोग होने के चरण से पहले कृषि के प्रारम्भ और पशुओं को पालने की शुरुआत पर विचार किया गया है। अनाजों की खेती और कृषि के विकास से यायावर शिकारी/संग्राहक स्थानबद्ध कृषक बन गया। इससे गांव की बस्तियों की और नए प्रकार के उपकरणों के विनिर्माण की शुरुआत हुई। मानव के विकास के इस चरण को नवपाषाण चरण कहा जाता है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित के विषय में सीख सकेंगे:

- संस्कृति के नवपाषाण चरण के विशिष्ट लक्षण,
- नए प्रकार के पत्थर के औजारों, उगाए गए पौधों आदि के रूप में पुरातात्विक साक्ष्य जिनसे कृषि की शुरुआत प्रदर्शित होती है,
- पश्चिम एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि के स्वरूप, और
- भारतीय उपमहाद्वीप के अलग-अलग क्षेत्रों में उगाई विभिन्न फसलें।

4.1 प्रस्तावना

इकाई 3 में आपने पढ़ा है कि सामान्यतः मानव समुदाय अपने अस्तित्व में सबसे अधिक लम्बे समय तक शिकारी/संग्राहक के रूप में जीवित रहे। उनके अस्तित्व का यह चरण उनके पत्थर के औजारों से प्रकट होता है, जिन्हें पुरातत्वविदों ने निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:

- i) पूर्व पाषाण, और
- ii) मध्य पाषाण

इनके औजारों द्वारा जिन पशुओं का शिकार किया गया है उनके अवशेषों के आधार पर भी उनका वर्गीकरण किया गया है। मानव समुदायों ने संस्कृति के एक नए चरण में उस समय प्रवेश किया, जब जीवित रहने के लिए उन्होंने प्रकृति के साधनों पर पूरी तरह से निर्भर रहने

की बजाए जो, गेहूँ और चावल जैसे अनाज उगाकर अपने भोजन का स्वयं उत्पादन करना शुरू किया और दूध तथा मांस की पूर्ति के लिए और विभिन्न प्रयोजनों के वास्ते उनके श्रम का उपयोग करने के लिए कुछ विशेष प्रकार के पशुओं को पालना शुरू किया। मानव संस्कृति के इस चरण की शुरुआत नए प्रकार के पत्थर के औजारों से पता चलती है जो औजार नवपाषाण औजार अथवा नव पाषाण युग के औजार कहलाते हैं। नवपाषाण औजार और चरण से सम्बद्ध मानव जीवन के विभिन्न पहलू, जब यह औजार बनाए गए थे, संस्कृति के उस चरण के विभिन्न तत्व हैं जिनमें यह नवपाषाण समुदाय रहे थे। इस इकाई में नील घाटी और पश्चिम एशिया में नवपाषाण संस्कृति के प्रसार तथा इसकी विशेषताओं पर भारतीय उपमहादीप में नवपाषाण चरण के अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में, संक्षेप में विचार किया गया है।

4.2 संस्कृति का नवपाषाण चरण

वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालना संस्कृति के नवपाषाण चरण का एक मुख्य विशिष्ट लक्षण माना गया है। नियोलिथिक (नवपाषाण) शब्द का प्रयोग सबसे पहले सर जॉन लुबॉक ने अपनी पुस्तक "प्रीहिस्टोरिक टाइम्स" (सर्वप्रथम 1865 में प्रकाशित) में किया था। उसने इस शब्द का प्रयोग उस युग को बताने के लिए किया था, जिस युग में पत्थर के उपकरण अधिक कुशलता से और अधिक रूपों में बनाए गए और उन पर पालिश भी की गई। बाद में वी. गॉर्डन चाइल्ड ने नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृति को अपने आप में पर्याप्त अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था बताया और माइल्स बरकिट ने इस बात पर जोर दिया कि निम्नलिखित विशिष्ट विशेषकों को नवपाषाण संस्कृति का माना जाना चाहिए:

- कृषि कार्य
- पशुओं को पालना
- पत्थर के औजारों का घर्षण और उन पर पालिश करना.
- मृदमांड बनाना।

नवपाषाण की संकल्पना में इधर कुछ वर्षों में परिवर्तन हुआ है। एक आधुनिक अध्ययन में उल्लेख किया गया है कि नवपाषाण शब्द उस पूर्व-धातु चरण संस्कृति का सूचक होना चाहिए जब यहाँ रहने वालों ने अनाज उगाकर और पशुओं को पालतू बनाकर भोजन की विश्वस्त पूर्ति की व्यवस्था कर ली थी और एक स्थान पर टिक कर जीवन बिताना आरम्भ कर दिया था। फिर भी, घर्षित पत्थर के औजार नवपाषाण संस्कृति की सर्वाधिक अनिवार्य विशेषता है। वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालने से:

- एक स्थान पर टिककर जीवन बिताने के आधार पर ग्राम समुदायों की शुरुआत हुई.
- कृषि टेक्नोलॉजी की शुरुआत हुई,
- प्रकृति पर और अधिक नियंत्रण अथवा प्राकृतिक साधनों का संदोहन हुआ।

तथापि अपने स्वयं के उपमहादीप में संस्कृति के नवपाषाण चरण के साक्ष्यों और विनिर्दिष्टताओं पर विचार करने से पहले हम मनुष्यों द्वारा, भारत से बाहर के क्षेत्रों में तथा भारतीय उपमहादीप में, पशुओं को पालने और वनस्पति कृषिकरण की प्रक्रिया की शुरुआत पर संक्षेप में विचार करेंगे।

चार्ट-1

क्षेत्र	युग	खेती
नील घाटी	लगभग 12,500 ई. पू.	गेहूँ और जौ
पश्चिम एशिया	8500 ई. पू. से आगे	- वही -
बलूचिस्तान	6000 ई. पू. से आगे	- वही -
उत्तर प्रदेश में बेलान घाटी	5440 - 4530 ई. पू.	चावल
दक्षिण भारत	2500 - 1500 ई. पू.	रागी

चार्ट-1 में वह अनुमानित समय अवधि बताई गई है, जिसमें वनस्पति कृषिकरण तथा पशुओं को पालने का कार्य आरम्भ हुआ प्रतीत होता है।

4.3 सबसे प्राचीन किसान

अभी हाल तक ऐसा समझा जाता था कि वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने के कार्य की शुरुआत पश्चिम एशिया में हुई और वहां से यह विसरण के द्वारा संसार के विभिन्न अन्य क्षेत्रों में फैला। लेकिन अब मिस्र में नील घाटी तथा अन्य क्षेत्रों के हाल ही में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर, इन दृष्टिकोणों में संशोधन करना आवश्यक है।

4.3.1 नील घाटी

गेहूँ और जौ की सबसे पहली खेती के बारे में जो नया साक्ष्य प्रकाश में आया है, वह निम्नलिखित स्थानों पर उत्खननों से प्राप्त हुआ है:

- वाडी कुब्बानिया (दक्षिण मिस्र में आसवान के उत्तर में थोड़ी दूरी पर स्थित)
- वाडी टस्का (आबू सिगबेल, के पास जो अब जलमग्न है),
- कोम अम्बो (आसवान के उत्तर से कुब्बानिया स्थलों से लगभग 60 किलोमीटर दूर), और
- एसना के पास का स्थल-समूह।

इस साक्ष्य के विषय में बात यह है कि ये सभी नील घाटी में स्थित उत्तर पुरापाषाण स्थल हैं, न कि नवपाषाण स्थल।

पुरातत्वविदों ने इन स्थलों का काल-निर्धारण आज से 14500 - 13000 वर्षों के बीच किया है।

नील घाटी से प्राप्त साक्ष्यों से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं:

- चूंकि मिस्र के स्थलों में पशुओं को पालतू बनाए जाने के कोई प्रमाण नहीं मिलते, अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस क्षेत्र में अनाजों की खेती पशुओं को पालने से पहले आरम्भ हुई। इस प्रकार वनस्पति कृषीकरण और पशुओं के पालने के कार्य आवश्यक रूप से अन्त सम्बद्ध नहीं हैं।
- चूंकि अनाजों की खेती परवर्ती पुरापाषाण औज़ार से सम्बद्ध है, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ मामलों में अनाज उत्पादन उस नवपाषाण संस्कृति से पहले हुआ जिससे घर्षित पत्थर के औज़ार सम्बद्ध हैं।
- अनाजों की खेती से नवपाषाण क्रान्ति को बल मिला और यह खेती इस क्रान्ति से पहले हुई।
- चूंकि कुब्बानिया स्थल जंगली गेहूँ और जंगली जौ, दोनों के विदित क्षेत्र से बाहर स्थित हैं, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं है कि अन्न उत्पादन उन्हीं क्षेत्रों से शुरू हुआ, जहां पेड़-पौधे अपने जंगली रूप में विद्यमान थे।
- जैसा पहले विश्वास किया जाता था, कृषीकरण पश्चिम एशिया से शुरू नहीं हुआ।

4.3.2 पश्चिम एशिया के प्रारम्भिक किसान

आइए, पश्चिम एशिया में विकास की प्रक्रिया पर विचार करें। इस क्षेत्र में फिलीस्तीन, सीरिया, तुर्की, इराक, कैस्पियन द्रोणी और ईरान के आसपास के क्षेत्र आते हैं। ये वे आधुनिक नगर हैं, जहां पुरातत्वविदों ने सबसे प्रारंभिक खेती करने वाली ग्राम बस्तियों का पता लगाया है। अब यह भली-भांति विदित है कि फिलीस्तीन, सीरिया और तुर्की में खेती नवें-आठवें सहस्राब्दि ई.पू. में शुरू हुई थी। यह महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र के शिकारियों - संग्राहकों ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना छोड़ दिया और एक स्थान पर टिककर जीवन बिताना आरम्भ किया। पहले उन्होंने यह काम वन्य साधनों के संदोहन पर आश्रित रहते हुए कुछ स्थानों पर किया। मुरेबात, उत्तर सीरिया में यूफरेट्स पर आबू इरेयरा का उत्तर, और उसी नदी पर दक्षिण तुर्की में सुबेरदे जैसे स्थलों में स्थायी बस्तियां शिकार करने और बटोरने पर ही पूरी तरह से फलफूल सकती थीं। खेती में संक्रमण एक धीमी प्रक्रिया थी, परन्तु लगभग नवें सहस्राब्दि ई.पू. से ऐसा साक्ष्य मिला है कि स्थायी समुदायों का खेती को अपने स्थायी

जीवन के स्वरूप का अनिवार्य आधार बनाकर आविर्भाव हो रहा था। ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ पश्चिम एशिया में किसानों के स्थायी समुदायों का पता चलता है:

कृषि और पशु-पालन का आरंभ

- i) 8500—7500 ई. पू. के बीच फिलीस्तीन में ज़ेरीको एक बड़ा गांव बन गया था, जहाँ कृषि के साक्ष्य तो मिले हैं, परन्तु पशुओं को पालने के कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं (यह कार्य बाद में हुआ)। उत्खनन के दौरान उत्तर स्तरों में यह पाया गया कि ज़ेरीको के चारों ओर दो मीटर चौड़ी पत्थर की दीवार थी और गोल मीनारें थीं। संसार में किलेबंदी का यह एक सबसे प्रारंभिक उदाहरण है।
- ii) दक्षिण तुर्की में हुयुक एक बड़ा गांव था। यहाँ गेहूँ, जौ और मटर की खेती होती थी। भव्य, भेड़, बकरी जैसे जानवरों को घर में पाला जाता था। कच्चे मकान, छत में होकर प्रवेश करना होता था, दो कमरों के होते थे और मकानों की दीवार मिली होती थीं। घरों की दीवारों पर तेंदुआ, फूटते हुए ज्वालामुखी और बिना सिर के मानव शवों को निगलते हुए गिद्धों के चित्र बने हुए मिले हैं। इस स्थान पर भौतिक संस्कृति के साक्ष्य मृदमांडों, पत्थर की कुल्हाड़ियों, पत्थर के आभूषणों, हड्डियों के औजारों, लकड़ी के कटोरों और करंडशिल्प के रूप में मिले हैं।
- iii) इराक में जारमों में स्थायी रूप से बसे कृषि गांवों (6500—5800 ई. पू.) के भी साक्ष्य मिले हैं। इनमें लगभग 20 से 30 तक कच्चे मकान होते थे, प्रत्येक में एक आंगन और कई कमरे होते थे और वहाँ घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियाँ, चक्कियाँ, मृदमांड आदि भी होते थे। लोग गेहूँ और जौ उगाते थे तथा भेड़-बकरी पालते थे।
- iv) ईरान में खेती ख़जिस्तान के क्षेत्र में आठवें सहस्राब्दि ई. पू. के दौरान शुरू हुई। लगभग उसी समय जब फिलीस्तीन और अनातोलिया में शुरू हुई। दक्षिण ईरान में (लगभग 7,500 ई. पू. से) अली कोश में हमें ऐसे लोगों के एक जाड़े के मौसम के शिविर के साक्ष्य मिले हैं। जो लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। वे भेड़ भी पालते थे। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में पशु-पालन और खेती अतःसम्बद्ध थे।

पश्चिम एशिया में फसल उगाना और पशुओं को पालना कुछ स्थलों पर अतःसम्बद्ध है, जबकि कुछ क्षेत्रों में कृषि कार्य पशुओं को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

बोध प्रश्न 1

1. संस्कृत के नवपाषाण चरण की मुख्य विशेषताओं पर लगभग दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. नीचे घाटी में उत्खननों से प्रारंभिक कृषि के सम्बन्ध में जो मुख्य प्रश्न उठे हैं, उन पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3 रिक्त स्थानों को भरिए:

- i) गार्डन चाइल्ड के अनुसार नवपाषाण संस्कृति एक . . . (आश्रित / आत्मनिर्भर)।
अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था थी।
- ii) . . . (घर्षित पत्थर/तांबे) के औजार नवपाषाण संस्कृति के अनिवार्य लक्षण रहे हैं।
- iii) ज़ेरीको ऐसा सबसे प्राचीन ज्ञात गांव है, जिसमें . . . (पानी का तालाब/मिट्टी की किलेबंदी) थी।
- iv) कलाल हुयुक . . . (तुर्की/ईरान) में एक . . . (बड़ा/छोटा) गांव था।

4.4 भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन किसान

इस महाद्वीप में कृषीकरण और पशुओं को पालने का इतिहास वस्तुतः नवपाषाण संस्कृतियों के उदय से प्रारम्भ होता है। घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियों को छोड़कर इस उपमहाद्वीप की सभी नवपाषाण संस्कृतियाँ चार्ट-2 में उल्लिखित भौगोलिक क्षेत्रों में वर्गीकृत की जा सकती हैं।

चार्ट-2

भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र — (अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान, विशेष तौर पर बलूचिस्तान में काची मैदान मिलाकर)

उत्तर क्षेत्र — (इसमें काश्मीर घाटी आती है)

दक्षिण-पूर्वी उत्तर प्रदेश — (इसमें इलाहाबाद, मिर्जापुर, रोवा और सिधी जिलों में विध्य इश्यांश — खास तौर पर बेलान घाटी आती है)

मध्य पूर्वी क्षेत्र — (उत्तरी बिहार)

पूर्वोत्तर क्षेत्र — (इसमें असम और निकटवर्ती उप-हिमालय क्षेत्र आते हैं)

मध्य पूर्वी क्षेत्र — (इसमें छोटा नागपुर का पठार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में विस्तार सहित आते हैं)

दक्षिणी क्षेत्र — (इसमें प्रायद्वीपीय भारत आता है)

इन क्षेत्रों में नवपाषाण कालीन संस्कृतियों की विशेषताओं पर हम अलग-अलग विचार करेंगे।

4.4.1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र

इसी क्षेत्र (आज का अफगानिस्तान और पाकिस्तान) में हमें गेहूं और जौ की खेती की शुरुआत के सबसे पहले साक्ष्य मिले हैं। उत्तरी अफगानिस्तान में पुरातत्वविदों ने ऐसी गुफाएँ खोजी हैं जहाँ शिकारी और संग्रहकर्ता रहते थे। इन गुफाओं में जंगली भेड़ों, मवेशियों और बकरियों की हड्डियों के अवशेष मिले हैं। 7000 ई. पू. के आसपास अफगानिस्तान में भेड़ और बकरियाँ पाली जाती थीं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मध्य एशियाई क्षेत्र और इसकी परिधियाँ — जिसमें आज का पंजाब, काश्मीर, पश्चिमी पाकिस्तान, अफगानिस्तान और

तजाकिस्तान तथा उज़्बेकिस्तान के सोवियत गणराज्य और पश्चिम-त्यान शान शामिल हैं - ब्रेड गेहूँ तथा स्पेल्ड गेहूँ की खेती के मूल स्थान थे।

पाकिस्तान और बलूचिस्तान में कृषि और पशुओं को पालने की शुरुआत के सम्बन्ध में पुरातात्विक उत्खननों में साक्ष्य मिले हैं। बलूचिस्तान में काची के मैदानों को ऐसे अनेक लाभ प्राप्त थे और ऐसी अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं, जिससे उस क्षेत्र में प्रारंभिक कृषि अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। भीतरी बलूचिस्तान की बंजर श्रेणियों के मध्य छोटी घाटियों में पहाड़ियों से आती नदियों द्वारा तथा बारहमासी नदी व्यवस्थाओं द्वारा लाई गई उपजाऊ जलोढ़क से उन भूमि खंडों पर सिंचाई करना आसान हो गया था जहाँ उस समय वनस्पति उगती थी।

मेहरगढ़ का स्थल इसी पारिस्थितिक परिवेश में है। यह क्वेटा से लगभग 150 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस स्थल पर उत्खननों से पता चलता है कि इस क्षेत्र का पूर्व मूढ़मांड नवपाषाणकाल से समृद्ध हड़प्पा-काल तक एक लम्बा सांस्कृतिक इतिहास रहा है। मेहरगढ़ में नवपाषाण स्तर दो चरणों में वर्गीकरण किए गए हैं — i) प्रारंभिक अमूढ़मांड (मूढ़मांड रहित), और ii) उत्तरवर्ती चरण। जिन अनाजों की यहाँ खेती की जाती थी, उनमें जौ की दो किस्में और गेहूँ की तीन किस्म शामिल थीं। अलूचा और खजूर के जले हुए बीज भी इन बस्तियों से ही प्राप्त हुये थे।



8. नवपाषाण काल के घर (मेहर गढ़)

उत्खननों के दौरान, नवपाषाण-काल (काल-I) के प्रारंभिक स्तरों में चिकारा, अनूप मृग, कुरंग जैसे जंगली जानवरों और भेड़-बकरी और मवेशियों की हड्डियाँ मिली हैं। लेकिन शीर्ष स्तर में (नवपाषाण निक्षेपों का उत्तरवर्ती चरण) में पालतू मवेशियों भेड़, बकरियों की हड्डियाँ मिली हैं। साथ ही जंगली चिकारा, सूअर और गोरखर की हड्डियाँ भी मिली हैं। अतः इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि भेड़-बकरियाँ स्थानीय रूप से पाली जाती थीं। यहाँ पूर्व मूढ़मांड बस्ती की शुरुआत लगभग 6000 ई. पू. निर्धारित की गई है।

नवपाषाणकाल में जीविका के स्वरूप की विशेषता है प्रारंभिक कृषि और पशुओं के पालने तथा साथ ही शिकार पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था। यहाँ के निवासी कच्ची ईंटों के आयताकार मकानों में रहते थे। कुछ संरचनाओं को छोटे वर्गाकार भागों में विभक्त कर दिया गया था और उन्हें भंडारण के लिए उपयोग में लाया जाता था। औजारों की किट में एक पत्थर की कुल्हाड़ी, पाँच पत्थर के बसूले, पच्चीस घर्षण पत्थर और सोलह लोढ़ शामिल होते थे। इनमें विशिष्ट फलक उद्योग के सूक्ष्म पाषाण औजार भी प्रचुर मात्रा में होते थे। कुछ फलकों पर चमक भी है, जो कण काटने के लिए उपयोग में चकमक की विशेषता है।

मेहरगढ़ से प्राप्त साक्ष्य के आधार पर लगता है कि शायद काची के मैदान मवेशी और भेड़ पालने के तथा गेहूँ और जौ खेती के स्वतंत्र अधिकेन्द्र (मूल केन्द्र) थे। मेहरगढ़ में काल-II

ताम्रपाषाण चरण (5000 ई. पू.) का सूचक है जिसमें गेहूँ और जौ की खेती के साथ-साथ कपास और अंगूर की खेती के भी साक्ष्य मिले हैं। सम्भवतः हड़प्पा निवासियों ने गेहूँ, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारंभिक पूर्वजों से प्राप्त किया होगा। (हड़प्पा निवासियों के लिए अगला खंड देखें)। अतः मेहरगढ़ से प्राप्त इस साक्ष्य के कारण इस सिद्धान्त को संशोधित करना पड़ेगा कि कृषि और पशुओं को पालने का कार्य भारतीय उपमहादीप की ओर पश्चिम एशिया से फैला।

4.4.2 काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति

काश्मीर घाटी में ग्राम बस्तियों का लगभग 2500 ई. पू. में आविर्भाव हुआ बृजहोम और गुफकराल में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। इस क्षेत्र के नवपाषाण चरण को बृजहोम में दो चरणों में और गुफकराल में तीन चरणों में वर्गीकृत किया गया है। उत्तरवर्ती स्थल पर सबसे प्रारंभिक अमृदमांड (पुरा मृदमांड यानि सबसे पुराने मिट्टी के बर्तन) चरण है जो भारत में पहली बार खोजा गया है। काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है गर्त आवास, अच्छी तरह बनाए गए और गेरू से रंगे फर्श और साथ ही खुले में भी आवास और बड़ी मात्रा में प्राप्त हड्डी के अद्वितीय औजारों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह अर्थव्यवस्था प्रधानतः आखेट अर्थव्यवस्था थी।

गुफकराल में, चरण-I में फलियों मसूर, अरहर, गेहूँ और जौ के जले हुए अन्न कण प्राप्त हुए हैं और साथ ही मवेशियों, भेड़-बकरियों, साकिन, लाल मृग और मेड़िया जैसे पशुओं की हड्डियाँ भी मिली हैं। चरण-II और चरण-III की विशेषता है कि उनमें वनस्पति कृषीकरण और पाले गए जानवरों के साक्ष्य मिले हैं। उत्तरवर्ती चरणों से जो अन्य उल्लेखनीय वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनमें लम्बी आदिम कुल्हाड़ियाँ, प्रस्तर नोकें, परिष्कृत हड्डी के औजार (मत्स्य भाले, वाणाग्र आदि) और छिद्रित हार्वेस्टर शामिल हैं। मानव शवाधानों के बीच कुत्तों के शवाधान भी मिले हैं। इनसे पता चलता है कि चरण-I की अनिवार्य आखेट-संग्राहक अर्थव्यवस्था का किस प्रकार धीरे-धीरे चरण-II में सुस्थापित कृषि अर्थव्यवस्था में विकास हो गया।



9. रहने का स्थान (बृजहोम)



10. दो रहने के स्थानों को मिलाने वाला गर्तगार (बृजहोम)

यहां यह उल्लेखनीय है कि बुर्जहोम की नवपाषाण संस्कृति का मृदमांड, हड्डी और पत्थर की वस्तुओं में स्वात घाटी के सराय खोला और घाली गई के साथ सादृश्य प्रकट होता है। गर्त आवास, हार्वेस्टर और कुत्तों के शवाधान उत्तर चीनी नवपाषाण संस्कृति की विशेषताएं हैं। बुर्जहोम में प्राप्त मृदमांडों से संकेत मिलता है कि इनका पूर्व हड़प्पा निवासियों से भी सम्पर्क था।

दो स्थलों से उपलब्ध सी-14 तिथि-निर्धारणों से संकेत मिलता है कि काश्मीर घाटी में नवपाषाण संस्कृति की समय अवधि 2500-1500 ई. पू. थी।

4.4.3 बेलान घाटी के प्राचीन किसान

बेलान नदी पूर्व से पश्चिम की ओर विंध्य पठार दृश्यांश के किनारे के साथ-साथ बहती है। यह टोंस नदी की उप-नदी है, जो इलाहाबाद के पास गंगा में मिलती है। यह क्षेत्र मानसून मेलखा का एक भाग है। सारे क्षेत्र में सागौन (टीक), बांस और ढाक के घने जंगल हैं। ये जंगल, बाघ, नीलगाय, चीतल आदि जैसे वन्य पशुओं के प्राकृतिक आवास हैं तथा यहां घनी घास, जंगली चावल सहित, उगी हुई है। अनुपुरापाषाण-काल तक से यह स्थान प्रारंभिक पाषाण युग के लोगों का प्रिय आश्रय स्थल रहा है। बेलान घाटी के सम्बद्ध उत्खनन स्थल, जिनसे अन्न संग्रह चरण से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण के संकेत मिलते हैं, चौपानी-मांडो, कोल्डीरोवा और महागरा हैं।

पुरातत्वविदों ने चौपानी-मांडो में अनुपुरापाषाण काल से उत्तरवर्ती मध्य पाषाण युग अथवा आद्य नवपाषाण युग तक का तीन चरणों का अनुक्रम सिद्ध किया है। चरण-III (उन्नत मध्य



11. मधुमक्खी के छत्ते जैसी झोपड़ी

पाषाण युग) की विशेषता है कि अर्द्ध स्थानबद्ध सामुदायिक जीवन तथा विशिष्ट आखेट-संग्रह अर्थव्यवस्था। यहाँ मधुमक्खी के छत्ते जैसे झोपड़ियाँ, साझा चूल्हे, असुबाह्य निहाई, ज्यामितीय आकार के सूक्ष्म पाषाण, औज़ार बड़ी संख्या में क्लय-पत्थर, और हाथ से बने सुन्दर मिट्टी के बर्तन मिले थे। आकार और प्रकार में अनेक तरह की चक्कियाँ और लोहे इस बात के परिचायक हैं कि उस समय अधिक जोर अन्न संग्रह पर दिया जाता था। इस चरण में जंगली चावल और जंगली मवेशियों, भेड़ और बकरियों की हड्डियों के महत्वपूर्ण प्रमाण भी मिले हैं।

एकल संस्कृति स्थल ऐसा पुरातात्विक स्थल है जहाँ नवपाषाण या ताम्रपाषाण जैसे संस्कृति के एकल चरण में ही बस्ती थीं। यदि एक स्थल से, उत्खनन के बाद, पता चलता है कि इसमें नवपाषाण, ताम्रपाषाण अथवा लोहे के प्रयोग के चरणों में बस्ती थीं तो इसे बहु-संस्कृति स्थल कहा जाएगा और नवपाषाण चरण को प्रथम काल, ताम्रपाषाण चरण को द्वितीय काल तथा लोहे के प्रयोग के चरण को तृतीय काल कहा जाएगा। इन कालों से उस स्थल की संस्कृतियों का काल अनुक्रम प्रदर्शित होगा।

कोल्हीहवा में उत्खननों से त्रिविध सांस्कृतिक अनुक्रम (नवपाषाण, ताम्रपाषाण, और लौह युग) का पता चलता है। महागरा एकल संस्कृति (नवपाषाण) स्थल है। इन दोनों स्थलों से प्राप्त संयुक्त साक्ष्य से स्थानबद्ध जीवन, चावल (ऑरीज़ा सेटीवा) उगाने, और मवेशी तथा भेड़-बकरी पालने के संकेत मिले हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन पर प्रकाश डालने वाली अन्य वस्तुएँ हैं:

- रज्जु-चिन्हित मृदभांड
- गोल आदिम कुल्हाड़ियाँ और बसूले, आयताकार अथवा अंडाकार अनुप्रस्थ काट तथा केल्सेडोनी फलकों सहित
- वृत्ताकार/अंडाकार फर्श - हस्तकृतियों सहित
- बड़ा मवेशी बाड़ा - मवेशियों के खुरों के निशान सहित भी महागरा स्थलों से मिले हैं।

बेलान घाटी की नवपाषाण संस्कृति से विकसित और उन्नत स्थानबद्ध जीवन का, निम्नलिखित के साथ, पता चलता है:

- निश्चित परिवार इकाइयाँ
- मृदभांड के रूपों का मानकीकरण
- चक्कियों और लोहों जैसी खाद्य संसाधन इकाइयों का सुबाह्य आकार
- छेनी, कुल्हाड़ियों और बसूलों जैसे विशिष्ट औज़ार
- कृषिकृत चावल की खेती
- मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े पालना

यह सुझाया गया है कि बेलान घाटी के नवपाषाण कालीन किसानों का भारत (छठा सहस्राब्द ई. पू.) सबसे प्रारंभिक चावल उगाने वाले समुदाय के रूप में उदय हुआ, यद्यपि यह सुझाव सभी को मान्य नहीं है। संग्रहण अर्थव्यवस्था से कृषि अर्थव्यवस्था में संक्रमण के भी इस क्षेत्र में स्पष्ट साक्ष्य मिलते हैं। फिर भी, मृदभांड चोपानी-मांडों में (नवां-आठवां सहस्राब्द ई. पू.) उत्तरवर्ती मध्य पाषाण/आद्य नवपाषाण चरण में दिखाई दिए हैं। यह इस बात का सूचक है कि मृदभांड बनाने का काम कृषिकरण (चावल) और पशु (मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े) पालने के कार्य से पहले शुरू हो गया था।

चोपानी मांडों में संसार में मृदभांड के इस्तेमाल के सबसे प्राचीन साक्ष्य मिले हैं।

4.4.4. बिहार/मध्य गंगा घाटी की नवपाषाण संस्कृति

सभी वनस्पति तथा जीव-जन्तु साधनों से सम्पन्न निचली मध्य गंगा घाटी में बहुत बाद में (2000-1600 ई. पू.) ग्रामीण बस्तियाँ बसीं। चिरांद, चेचर, सेनुआर और तारादिब आदि में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र के नवपाषाण कालीन लोगों के जीवन स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सेनुआर (ज़िला रोहतास) में नवपाषाण कालीन किसान चावल, जौ, मटर, मसूर और कुछ मोटे अनाजों की खेती करते थे। इस स्थल से गेहूँ और घास मटर की अनेक किस्में बस्ती के उच्च स्तरों से प्राप्त हुई हैं। चिरांद (ज़िला सारन), जो गंगा के उत्तरी तट पर स्थित है, में कच्चे फर्शों, मृदभांडों, सूक्ष्म पाषाणों, घर्षित कुल्हाड़ियों, हड्डी के औज़ारों, उपरतनों के मनकों और पकी मिट्टी (टेराकोटा) की मानव

मूर्तिकाओं के संरचनात्मक अवशेष मिले हैं। चिरांद और सेनुआर दोनों अपने उल्लेखनीय हथी के औजारों के लिए प्रसिद्ध हैं। चिरांद में जो अनाज उगाए जाते थे वे थे गेहूँ, जौ, चावल और मसूर।

सेनुआर में उत्तरवर्ती नवपाषाण-ताम्रपाषाण कालीन लोगों ने अपने से पहले के लोगों द्वारा उगाई जाने वाली फसलों के अलावा चने और मूंग की खेती भी शुरू कर दी थी।

4.4.5 पूर्वी भारत के प्रारम्भिक किसान

इस क्षेत्र में उत्तरी कछार को मिलाकर असम की पहाड़ियाँ और गारो तथा नागा पहाड़ियाँ आती हैं। पारिस्थितिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत वर्षा वाले मानसून क्षेत्र में आता है।

इस क्षेत्र की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है स्कंधयुक्त कुल्हाड़ियाँ, गोलाकार छोटे घर्षित कुल्हाड़े, रज्जु चिन्हित मृदुमांड जिनपर बहुत अधिक स्फटिक कण चिपकाए गए होते थे। उत्तरी कछार पहाड़ियों में देवजाली हाडिंग में किए गए उत्खननों से ऊपर बताई गई सभी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। ये वस्तुएं इन प्रकारों की हैं जो चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में व्यापक रूप से पाए जाते हैं। फिर भी, असम के नवपाषाण विशेषकों का चीन अथवा दक्षिण पूर्व एशिया से सादृश्य अन्तिम रूप से निश्चित नहीं हो सका है क्योंकि इनमें बहुत अधिक कालानुक्रमिक अंतर है। असम के नवपाषाण संस्कृति चरण का तिथि निर्धारण अस्थायी रूप से 2000 ई. पू. के आसपास किया गया है।



4.4.6 दक्षिण भारत के प्रारंभिक किसान

दक्षिण भारत में उन्नत आखेट अर्थव्यवस्था चरण से खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था चरण में संक्रमण की समस्या अभी तक स्पष्ट रूप में सिद्ध नहीं की जा सकी है। नवपाषाण कालीन बस्तियाँ पहाड़ी और शुष्क दक्खन पठार पर पाई गई हैं, जहाँ से भीम, कृष्ण, तुंगभद्रा और कावेरी नदियों को जल प्राप्त होता है। यह बस्तियाँ खास तौर पर उन क्षेत्रों में फली-फूलीं, जहाँ सामान्य वर्षा प्रति वर्ष 25 सेंटीमीटर से कम होती है। दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले उत्खनित स्थल हैं सनगनकल्लू, नागार्जुन कोंडा, मस्की, बुधगिरि, टेक्कालकोटा, पिकलीहाल, कुपगल, हल्लूर, पलवाय, हेमीजे और टी. नरसीपुर।

पुरातत्वविदों ने दक्षिण भारतीय नवपाषाण संस्कृति को तीन चरणों में वर्गीकृत किया है। सबसे प्रारंभिक चरण के साक्ष्य सनगनकल्लू और नागार्जुन कोंडा में मिलते हैं। नागार्जुन कोंडा में प्राप्त आवासों के धुंधले चिन्ह, लेपित बाहरी सतहों वाले अपरिष्कृत हस्त-निर्मित पीले रक्ताभ भूरे मृद्भांड, चकमक के फलक औजार और घर्षित पत्थर के औजारों से प्रदर्शित होता है कि लोगों को खेती का केवल अल्प-विकसित ज्ञान था। संभवतः वे जानवर नहीं पालते थे। इस चरण का तिथि निर्धारण 2500 ई. पू. अथवा इससे पहले किया जा सकता है।

चरण-II में, चरण-I के लक्षण तो जारी रहे ही, मृद्भांड मुख्यतः लाल भांड बनावट के थे। तथापि मणिकारी कला और पशु पालना नए लक्षण हैं। अब सूक्ष्म पत्थर स्फटिक क्रिस्टलों के बनने लगे थे।

चरण-III में (तिथि निर्धारण 1500 ई. पू. के आसपास) घूसर भांड प्रमुख हैं। चरण-II के लाल भांड और लघु फलक उद्योग इस चरण में भी जारी रहे। विभिन्न प्रकारों के नवपाषाण औजार भी इस चरण में प्राप्त जाते हैं। ये इस बात का संकेत देते हैं कि खेती का काम अधिक किया जा रहा था और भोजन संग्रह तथा आखेट की अब गौण भूमिका रह गई थी।

बाद के दोनों चरणों की विशेषता नागार्जुन कोंडा में आवास गर्तों से लक्षित होती है जिनकी छतों को संभालने के लिए लकड़ी के लट्ठों का इस्तेमाल किया गया था। अन्य स्थलों पर नरकुल और मिट्टी के मकानों के अवशेष भी मिले हैं।

दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा उगाई गई सबसे पहली फसलों में मिलेट (रागी) की फसल थी। इसकी खेती आज भी होती है और गरीब लोगों के भोजन का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह मवेशियों के लिए चारे के रूप में भी इस्तेमाल की जाती है। सामान्यतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि कृषीकृत रागी पूर्व अफ्रीका से आई। जंगली रागी, जो कृषीकृत रागी के साथ-साथ खरपतवार के रूप में उग जाती थी, कृषीकृत रागी की पूर्वज नहीं थी। लेकिन जंगली रागी पूर्वज परम्परा से अफ्रीकी किस्म से सम्बद्ध थी। दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा जिन फसलों की खेती की जाती थी वे थीं — गेहूँ, कुलथी, और मूँग। खजूर भी उगाई जाती थी। लगता है कि इस काल के दौरान सौपान-कृषि खेती की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही होगी। इसका उपयोग फसलें उगाने के लिए छोटे-छोटे खेत बनाने के लिए किया जाता था।

उत्खननों के प्राप्त पशुओं की हड्डियों के स्वरूप यह संकेत देते हैं कि पशुओं का उपयोग भार वहन करने के लिए अथवा भारी सामग्री खींचने के लिए तथा खेतों में हल चलाने के लिए किया जाता था। नागार्जुन कोंडा में किए गए उत्खननों से स्पष्ट है कि वनस्पति कृषीकरण पशुओं को पालने से पहले ही शुरू हो गया था। इन स्थलों से मवेशी, भेड़ और बकरी, भैंस, गधा, मुर्गी, सूअर और घोड़े जैसे पाले गए पशुओं की भी सूचना मिली है। सांभर मूँग, बारहसिंगा, चित्तीदार मूँग और चिकारा का शिकार किया जाता था तथा घोघा और कछुए भोजन के लिए पकड़े जाते थे।

प्रचुर मात्रा में मवेशी और अन्य प्रकार की खाद्य वस्तुओं से संकेत मिलता है कि नवपाषाण कालीन लोगों की स्थानबद्ध कृषि तथा पशुचारण अर्थव्यवस्था थी। सी-14

तिथि निर्धारणों के आधार पर दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति का तिथि निर्धारण 2600 और 1000 ई. पू. के बीच किया गया है।

उत्तूर, कोडेकाल और कुपगल जैसे नवपाषाण स्थलों के पास अनेक राख के टीले मिले हैं। इनमें से कुछ बस्तियों से दूर जंगलों में भी मिले हैं। सुझाया गया है कि यह राख के टीले नवपाषाण कालीन मवेशी बाड़ों के स्थल थे। समय-समय पर, इकट्ठा हो गया गोबर या तो किसी संस्कार के रूप में अथवा दुर्घटनावश जलता रहा। अपेक्षाकृत अधिक दूरस्थ स्थानों पर पाए गए राख के ढेर इस बात का संकेत देते हैं कि लोग कुछ खास मौसमों में जंगलों के पशु-चारण स्थानों पर चले जाया करते थे।

4.4.7 ऊपरी मध्य और पश्चिमी दक्कन की नवपाषाण संस्कृति

कृष्णा और गोदावरी तथा उनकी सहायक नदियों के मध्य और ऊपरी विस्तारों में चित्र कुछ और ही है। इन क्षेत्रों में, काले पाश पर बनाए गए घर्षित पत्थर के औजारों के अलावा, बड़ी संख्या में समांतर पक्षीय फलक तथा गोमदे, केल्लेडोनी और इंद्र गोप मणि (सभी उपरत्न) के सूक्ष्म पाषाण धूसर भाड़ों और ताम्रपाषाण प्रकार के चित्रित मृदभाड़ों के साथ मिले हैं। इस क्षेत्र से नवपाषाण चरण के कोई स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। लेकिन कृष्णा नदी की सहायक नदी भीमा पर चंदोली से प्राप्त साक्ष्य और गोदावरी की सहायक नदी प्रवरा पर नेवासा और दाइमाबाद स्थलों से प्राप्त साक्ष्य इस बात का संकेत देते हैं कि इस क्षेत्र में नवपाषाण किसान ताम्रपाषाण चरण में प्रवेश कर गए थे।

उत्तर महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और गुजरात की ताप्ती और नर्मदा घाटियों के उत्तर में और आगे नवपाषाण चरण के स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। केवल बीना घाटी में ऐरान स्थल पर और दक्षिण गुजरात में जोखा स्थल पर पाई गई दक्षिण भारत सादृश्य की नुकीले कुंदा सिरों वाली त्रिभुजाकार कुछ कुल्हाड़ियां ही इस क्षेत्र में नवपाषाण कालीन अवशेष हैं।

चम्बल, बनास, और काली सिंध घाटियों में घर्षित पत्थर के औजारों की विद्यमानता का शायद ही कोई प्रमाण हो। इस तथ्य के बावजूद कि प्रारंभिक मध्य पाषाण संदर्भ में पशु पालने का काम शुरू हो गया था, स्थानबद्ध बस्तियां इस क्षेत्र में केवल तमी शुरू हुईं जब ताम्र कांस्य उपकरण ज्ञात हुए।

बोध प्रश्न 2

1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति की मुख्य विशेषता पर लगभग दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है या गलत ? (✓) या (x) का चिह्न लगाइए।

- i) यह कहा जा सकता है कि हड़प्पा निवासियों ने गेहूँ, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारंभिक निवासियों से प्राप्त किया था। ()
- ii) गुफराल में, कृषीकृत वनस्पति और पालतू जानवरों के कोई साक्ष्य नहीं मिलते। ()

- iii) बेलान घाटी स्थलों पर उत्खननों से हमें अन्न संग्रह से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण का स्वरूप निर्धारित करने में सहायता प्राप्त हुई है। ()
- iv) एकल संस्कृति स्थल का अर्थ है एक सांस्कृतिक स्थल में विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन। ()
- v) दक्षिण भारत में सबसे पहले जो फसल उगाई गई थी, वह थी मिलेट (रागी)। ()
- vi) कछार पत्राड़ियों में हुए उत्खननों से नवपाषाण संस्कृति के कोई अवशेष नहीं मिले हैं। ()
- 3 मृदभांड, घर्षित पत्थर के औजार और कच्चे मकानों के अवशेष मानव समाज के विकास के सम्बन्ध में क्या संकेत देते हैं ?

4.5 सारांश

इस इकाई से आपको उस चरण के मूल लक्षणों की जानकारी प्राप्त हुई है जिसकी विशेषता है वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने में संक्रमण आखेट/संग्रहण से खेती में संक्रमण से अनेक परिवर्तन आए। सामान्य शब्दों में, इनमें मृदभांडों को बढ़िया बनाना, क्योंकि इन भांडों की अन्न संग्रह के लिए भी आवश्यकता थी और उनसे संसाधित भोजन खाने के लिए भी आवश्यकता थी, परिष्कृत-औजार जो घर्षित थे और कृषि कार्यों के लिए कारगर थे, व्यवस्थित ग्राम समुदाय आदि शामिल थे।

आधुनिक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि सबसे पहले खेती का काम नील घाटी में शुरू हुआ और पश्चिम एशिया में यह कार्य बाद में हुए। कुछ क्षेत्रों में खेती और जानवरों को पालने का काम साथ-साथ हुआ, जबकि कुछ क्षेत्रों में खेती का काम जानवरों को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

इस इकाई में आप उन भौगोलिक क्षेत्रों से भी परिचित हुए हैं जिन क्षेत्रों में भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण कालीन संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इन क्षेत्रों में नवपाषाण संस्कृतियों का उदय भिन्न-भिन्न समयों में हुआ और उनकी अवधि भी अलग-अलग थी। उपमहाद्वीप के भीतर ही पारस्थितिक अन्तरो के कारण, उगाई जाने वाली फसलें भी अलग-अलग थीं। पुरातत्वविदों ने विभिन्न प्राचीन स्थलों पर व्यापक उत्खननों से नवपाषाण संस्कृतियों के आविर्भाव और उनमें अन्तरो पर भी प्रकाश डाला है।

4.6 शब्दावली

शिकारी/संग्रहक: मानव विकास की वह अवस्था जब मनुष्य अपना भोजन शिकार करके अथवा जंगलों से कंद-मूल इकट्ठा करके प्राप्त करता था।

अनुपुरापाषाण काल: मानव द्वारा पत्थर के औजारों के प्रयोग का प्रारंभिक काल।

कृषि और पशु-पालन का आरंभ

मृदमांड: मिट्टी के बर्तन।

प्रारंभिक कृषि: मानव द्वारा जंगली पौधों का स्वयं कृषि द्वारा उत्पादन आरम्भ करना।

प्रारंभिक प्राचीन कृषक: वह मानव समूह जिन्होंने सबसे पहले कृषि करना शुरू किया।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1 आपके उत्तर में ये शामिल होने चाहिए:
गेहूँ, जौ आदि की खेती के माध्यम से आखेटक/संग्राहक से अन्न उत्पादन विधि में परिवर्तन, व्यवस्थित ग्राम जीवन, पत्थर के औजार बनाने में प्रगति, मृदमांड की शुरुआत आदि। देखें भाग 4.2।
- 2 ये थीं — वनस्पति कृषीकरण और जानवर पालने का काम आवश्यक तौर पर अंतःसम्बद्ध नहीं थे; अन्न उत्पादन का कार्य संभवतः नवपाषाण संस्कृति से पहले शुरू हो गया था, आदि। देखें उपभाग 4.3.1
- 3 i) आत्मनिर्भर, ii) घर्षित पत्थर, iii) कच्ची किलेबंदी, iv) बड़ा, तुर्की

बोध प्रश्न 2

- 1 देखें उपभाग 4.4.1
- 2) i) ✓, ii) ×, iii) ✓, iv) ×, v) ✓, vi) ×
- 3 इसका उत्तर देने के लिए आपको अपनी कल्पना शक्ति का सहारा लेना होगा। ये सभी उस प्रक्रिया का संकेत करते हैं, जिसके दौरान मानव सीधे समाजों से जटिल समाजों की ओर बढ़ रहा था; श्रम का विभाजन, टेक्नोलॉजी में विकास, आवश्यकता पर आधारित अन्वेषण आदि आपके उत्तर के लिए कुछ संकेत हैं।

NOTES



उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04(N)

इतिहास
भारत : प्राचीन काल से
8वीं सदी ईस्वी

खंड

2

हड़प्पा की सभ्यता

इकाई 5

पूर्ववर्ती इतिहास, कालानुक्रमिक तथा भौगोलिक विस्तार

5

इकाई 6

भौतिक विशेषताएँ

18

इकाई 7

संपर्कों का रूप

35

इकाई 8

समाज एवं धर्म

47

इकाई 9

हास और विघटन

59

खंड 2 हड़प्पा की सभ्यता

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हड़प्पा और मोहनजोदड़ों में जो खुदाई हुई, उसने प्राचीन इतिहास की हमारी धारणा को बदल दिया। इन खुदाइयों से पहले लिखे गए ग्रंथ लगभग 12वीं शताब्दी ई.पू. के वैदिक समाज के इतिहास से प्रारम्भ होते थे। शहरों और सभ्यता के विषय में यह विचार था कि इनका छठी शताब्दी ई. पू. में ही उद्भव हुआ होगा। हड़प्पा की सभ्यता की खोज ने इस धारणा को पूर्णतः बदल दिया। ऐसा इसलिए हुआ कि अब जिन शहरों का पता चला था, वे लगभग 2500 ई. पू. के थे। जब से हड़प्पा की सभ्यता की खोज हुई तभी से भारतीय इतिहास में अनुसंधान के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र प्राप्त हुआ। नई वास्तियों की खोजों और खुदाइयों तथा अनुसंधान के लिए नए दृष्टिकोणों ने हड़प्पावासियों के संबंध में हमारे ज्ञान में वृद्धि की है। नए-नए स्थानों की खोज आज भी हो रही है और हो सकता है भविष्य में कोई और खोज होने पर हड़प्पावासियों के बारे में हमारे विचार बिल्कुल ही बदल जाएं।

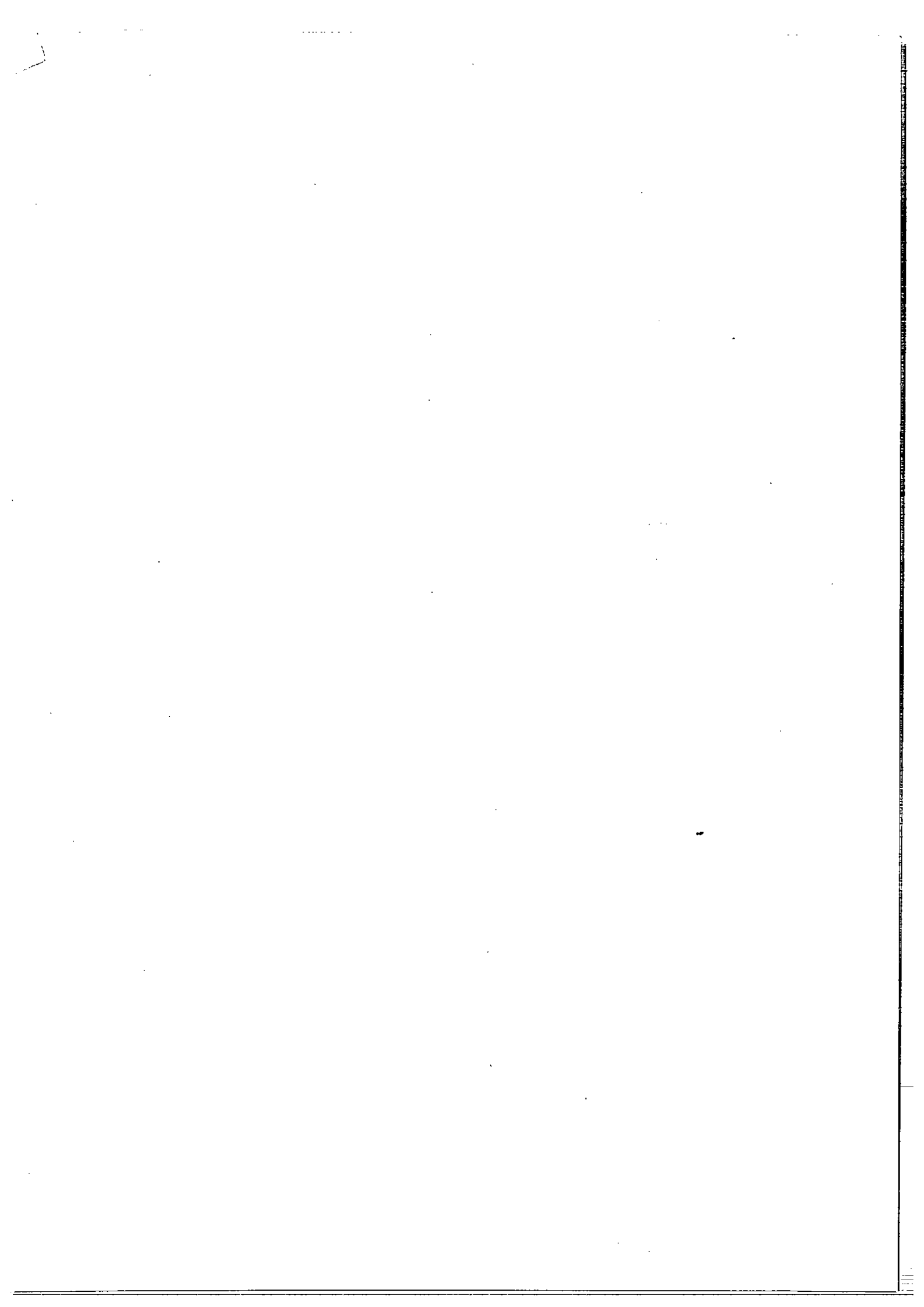
इकाई-5 में हमने उन प्रक्रियाओं पर चर्चा की है, जिनसे विद्वानों ने हड़प्पा की सभ्यता का कालक्रम निर्धारित किया है। पिछले बीस वर्षों में किए गए खुदाई कार्य से ज्ञात होता है कि हड़प्पा के शहरों का विकास एकाएक नहीं हुआ था, जैसा कि इसके बारे में पहले विश्वास किया जाता था। पूर्वकाल में कृषक-समुदायों का उद्भाव ही इसकी पृष्ठभूमि थी। इन कृषकों ने ई. पू. 4000 वर्ष पहले ही छोटे-छोटे नगर विकसित कर लिए थे।

इकाई-6 में हड़प्पावासियों की नगर योजना और सामाजिक ढांचे के विषय में प्रकाश डाला गया है। हड़प्पा की लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है, इसलिए जो भी सामग्री मिली है, उसी से लगाए गए अनुमानों को आधार मानकर तर्क दिए गए हैं।

इकाई-7 में हमने हड़प्पावासियों के दूर-दूर तक फैले व्यापार की चर्चा की है। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा के शहरों ने निकटवर्ती क्षेत्रों के संसाधनों से लाभ उठाया होगा। वे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-तंत्र में भी भाग लेते थे जो उनका संबंध मेसोपोटामियावासियों के साथ जोड़ता था।

धर्म तथा आध्यात्मिक चिंतन प्राचीन सभ्यताओं के प्रमुख लक्षण रहे हैं। धर्म को, जिससे आदर्श और आध्यात्मिक चिंतन जुड़े होते हैं, लिखित भाषा के बिना समझना कठिन है। इसलिए इकाई-8, जो हड़प्पावासियों के धर्म से संबंधित है, कुछ-कुछ अनुमान पर आधारित है। इसमें खोज पर चर्चा की गई है जिनके बारे में यह विचार है कि उनका कुछ धार्मिक महत्व है। किन्तु ये निष्कर्ष सामान्यतः सुझावों के रूप में हैं।

हड़प्पा शहरों का अंत विद्वानों के लिए एक कठिन समस्या रही है। इकाई-9 में हड़प्पा की सभ्यता के अंत को समझने के लिए हम उसके विभिन्न पक्षों पर विचार करेंगे। किन्तु इस इकाई में भी इतिहास के परवर्ती कालों में हड़प्पा की सभ्यता के जो भी अवशेष बचे हैं, उनका मूल्यांकन किया जाएगा।



इकाई 5 पूर्ववर्ती इतिहास, कालानुक्रमिक तथा भौगोलिक विस्तार

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 उद्देश्य
- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 एक प्राचीन शहर की खोज
- 5.3 हड़प्पा की सभ्यता का युग
- 5.4 इसे हड़प्पा की सभ्यता क्यों कहा जाता है?
- 5.5 पूर्ववर्ती इतिहास
- 5.6 भौगोलिक विशेषताएँ
- 5.7 कृषि की शुरुआत और बसे हुए गाँव
- 5.8 आरंभिक हड़प्पा काल
 - 5.8.1 दक्षिणी अफगानिस्तान
 - 5.8.2 नबेटा घाटी
 - 5.8.3 मध्य और दक्षिण बलूचिस्तान
 - 5.8.4 सिंधु क्षेत्र
 - 5.8.5 पंजाब और बहावलपुर
 - 5.8.6 कालीबंगन
- 5.9 हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय
- 5.10 सारांश
- 5.11 शब्दावली
- 5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- यह जान पाएंगे कि हड़प्पा की सभ्यता की खोज कैसे की गई?
- यह जान पाएंगे कि इसके कालक्रम का निर्धारण कैसे हुआ?
- यह समझ सकेंगे कि ग्रामीण समुदाय किस तरह धीरे-धीरे हड़प्पा की सभ्यता में परिवर्तित हुए?
- यह जान पाएंगे कि हड़प्पा की सभ्यता का भौगोलिक विस्तार किस प्रकार हुआ?

5.1 प्रस्तावना

खंड 1 में आपने पढ़ा कि किस प्रकार मानव समाज शिकारी संग्रहकर्ता से कृषि समाज की ओर अग्रसर हुआ। कृषि की शुरुआत के कारण ही मानव समाज में व्यापक परिवर्तन हुए। कृषि की शुरुआत का एक महत्वपूर्ण परिणाम था नगरों और सभ्यताओं का अभ्युदय। इस इकाई में आप एक ऐसी ही सभ्यता के उद्भव से परिचित होंगे, जिसे हड़प्पा की सभ्यता कहते हैं।

5.2 एक प्राचीन शहर की खोज

1826 में चार्ल्स मोसन नामक एक अंग्रेज पश्चिमी पंजाब (जो अब पाकिस्तान में है) में हड़प्पा नामक गाँव में आया। उसने वहाँ बहुत पुरानी बस्ती के बुर्जों और अद्भुत ऊँची-ऊँची दीवारों को देखा। उसने यह समझा कि यह शहर सिकन्दर महान् के समय का है। सन् 1872 में प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता, सर अलकजेंडर कनिंघम इस स्थान पर आया उसे आस-पास के क्षेत्रों के लोगों ने बताया कि हड़प्पा के ये ऊँचे-ऊँचे टीले हजार वर्ष पुराने शहर के अवशेष हैं। अपने राजा की दुष्टता के कारण यह शहर नष्ट हो गया था। कनिंघम ने इस स्थान से कुछ पुरातात्विक वस्तुएँ इकट्ठी कीं, लेकिन वह इन वस्तुओं का काल निर्धारण न कर सका। उसने सामान्य तौर पर यह माना कि संभवतः ये वस्तुएँ भारत से बाहर की हैं। इसलिए उसने गाँव के लोगों के इस मत से सहमति व्यक्त की कि यह शहर लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। फिर भी 1924 में एक अन्य पुरातत्वविद जॉन मार्शल ने हड़प्पा के विषय में रिपोर्ट दी और एक लम्बे समय से विस्मृत सभ्यता के बारे में बताया। यह सभ्यता उतनी ही प्राचीन थी जितनी मिश्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताएँ। है न विचित्र बात?

आस-पास के क्षेत्रों के लोग इस शहर के अवशेषों के प्रति उदासीन थे। फिर एक और पुरातत्ववेत्ता भारत आया और उसने हमें बताया कि यह शहर लगभग पांच हजार वर्ष पुराना है। इस संबंध में सामान्य लोगों और विद्वानों के मत इतने भिन्न क्यों थे? किसी बस्ती के काल निर्धारण के लिए इन्होंने क्या तरीके अपनाए?

5.3 हड़प्पा की सभ्यता का युग

पुरातत्ववेत्ता यह पता लगाने के लिए कि ये बस्तियाँ कितनी पुरानी हैं, अलग-अलग तरीके अपनाते हैं। अब हम मार्शल के उस मत की जांच करेंगे, जिसमें उन्होंने बताया है कि हड़प्पा की सभ्यता पांच हजार वर्ष पुरानी है। कनिंघम इस सभ्यता को एक हजार वर्ष पुरानी मानते हैं। मार्शल ने पता लगाया कि हड़प्पा में मिलीं मुहरें, ठप्पे, लिखित लिपि और कलाकृतियाँ उनसे बिल्कुल भिन्न थीं जिनसे विद्वान पहले से परिचित थे और जो बहुत बाद के समय की थीं। इसी प्रकार सिंध में मोहनजोदड़ो नामक स्थान से इसी प्रकार के तथ्य सामने आए हैं।

मोहनजोदड़ो में प्राचीन बस्तियाँ कृषाण युग से संबंधित बौद्ध विहार के नीचे दबी हुई पाई गईं। यह पाया गया है कि यदि प्राचीन काल में कोई मकान किसी कारणवश नष्ट हो जाता था तो लोग आमतौर पर उस मकान की ईंट और गारे का चबूतरा तैयार करने के लिए प्रयोग करते थे और उस पर दूसरा मकान बनाते थे। इसलिए यदि कोई पुरातत्ववेत्ता किसी क्षेत्र की खुदाई करता है और किसी मकान के नीचे उसे दूसरे मकान के अवशेष मिलते हैं तो वह पता लगा सकता है कि नीचे वाला मकान ऊपर वाले मकान से पुराना है। इसलिए वह जितनी गहरी खुदाई करता है, कालक्रम की दृष्टि से वह उतना ही पीछे पहुँच जाता है।

इस प्रकार मार्शल यह पता लगा सका कि बौद्ध विहार के नीचे जो मकान थे वे अवश्य ही कृषाणकाल से पहले के रहे होंगे। इसके बाद इस बात का भी प्रमाण मिल गया कि इन बस्तियों में रहने वाले लोग लोहे का प्रयोग करना नहीं जानते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि ये शहर उस युग के थे जब लोगों को लोहे के बारे में जानकारी नहीं थी।

लोहे का प्रयोग 2000 ई. पू. के शुरू में हुआ। जब मार्शल ने अपने खोजों द्वारा प्राप्त जानकारी को प्रकाशित किया तो कुछ अन्य लेखकों को मेसोपोटामिया में ऐसी वस्तुएँ मिलीं जो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की वस्तुओं से मिलती-जुलती थीं। मेसोपोटामिया के शहर 3000 ई. पू. के आरंभ में अस्तित्व में आए। इस प्रकार मेसोपोटामिया के प्राचीन शहरों में हड़प्पा की सभ्यता में पाई जाने वाली कोई वस्तु मिल जाती थी तो उससे यह पता चलता था कि हड़प्पा के निवासी और मेसोपोटामिया के निवासी समकालीन थे। इन साक्ष्यों से

विद्वान यह पता लगा कि स्थानीय लोगों और कनिष्क के निष्कर्ष गलत थे। मार्शल द्वारा प्रतिपादित हड़प्पा के काल क्रम को रेडियो कार्बन डेटिंग जैसे काल-निर्धारण के नए तरीकों, से और भी समर्थन मिला है। इसलिए विद्वानों ने हड़प्पा पूर्व (Pre Harappa) और हड़प्पा की संस्कृतियों के लिए निम्नलिखित कालक्रम सजाया है:

हड़प्पा पूर्व और हड़प्पा संस्कृति का कालानुक्रम

5500 ई. पू. से 3500 ई. पू. तक नवपाषाण युग

बलूचिस्तान और सिंधु के मैदानी भागों में स्थिति मेहरगढ़ और फीली गुलमुहम्मद जैसी बस्तियां उभरीं। यहां लोग पशु चराने के साथ-साथ थोड़ा बहुत खेती का काम भी करते थे। इस प्रकार स्थायी गांवों का उद्भव हुआ। इस युग के लोग गेहूँ, जौ, खजूर, तथा कपास की खेती की जानकारी रखते थे और भेड़ बकरियों और मवेशियों को पालते थे। साक्ष्य के रूप में मिट्टी के मकान, मिट्टी के बर्तन, और दस्तकारी की वस्तुएं मिली हैं।

3500 ई. पू. से 2600 ई. पू. तक आरम्भिक हड़प्पा काल

इस काल में पहाड़ों और मैदानों में बहुत सी बस्तियां स्थापित हुईं। इसी समय गांव सबसे अधिक संख्या में आबाद हुए। तांबा, चाक और हल का प्रयोग कर कई प्रकार के मिट्टी के अद्भुत बर्तन बनाए जाते थे जिससे कई क्षेत्रीय परम्पराओं के आरम्भ का पता चलता है। अन्न भंडार, ऊँची-ऊँची दीवारें और सुदूर व्यापार के प्रमाण मिले हैं। सारी सिंधु घाटी में मिट्टी के बर्तनों की एकरूपता के प्रमाण मिलते हैं। इसके साथ-साथ पीपल, कुबड़े बैलों, शोषनागों, सींगदार देवता आदि के रूपांकनों के प्रयोग के प्रमाण मिले हैं।

2600 ई. पू. से 1800 ई. पू. तक पूर्ण विकसित हड़प्पा युग

बड़े शहरों का अभ्युदय, समान आकार की ईंटें, तौलने के बाट, मुहरें, और मिट्टी के बर्तन, नियोजित ढंग से बसे हुए शहर और दूर-दूर स्थानों के साथ व्यापार।

1800 ई. पू. से आगे उत्तर-हड़प्पा युग

हड़प्पा की सभ्यता के बहुत से शहर खाली हो गए, अंतर-क्षेत्रीय विनिमय में हास हुआ, लेखन कार्य और शहरी जीवन का त्याग कर दिया गया। हड़प्पा की सभ्यता के शिल्प और मिट्टी के बर्तनों की परम्परा जारी रही। पंजाब सतलुज यमुना की ग्रामीण संस्कृतियों का विभाजन और गुजरात में हड़प्पा की शिल्प और मिट्टी के बर्तनों की परंपराओं का अपनाया जाना।

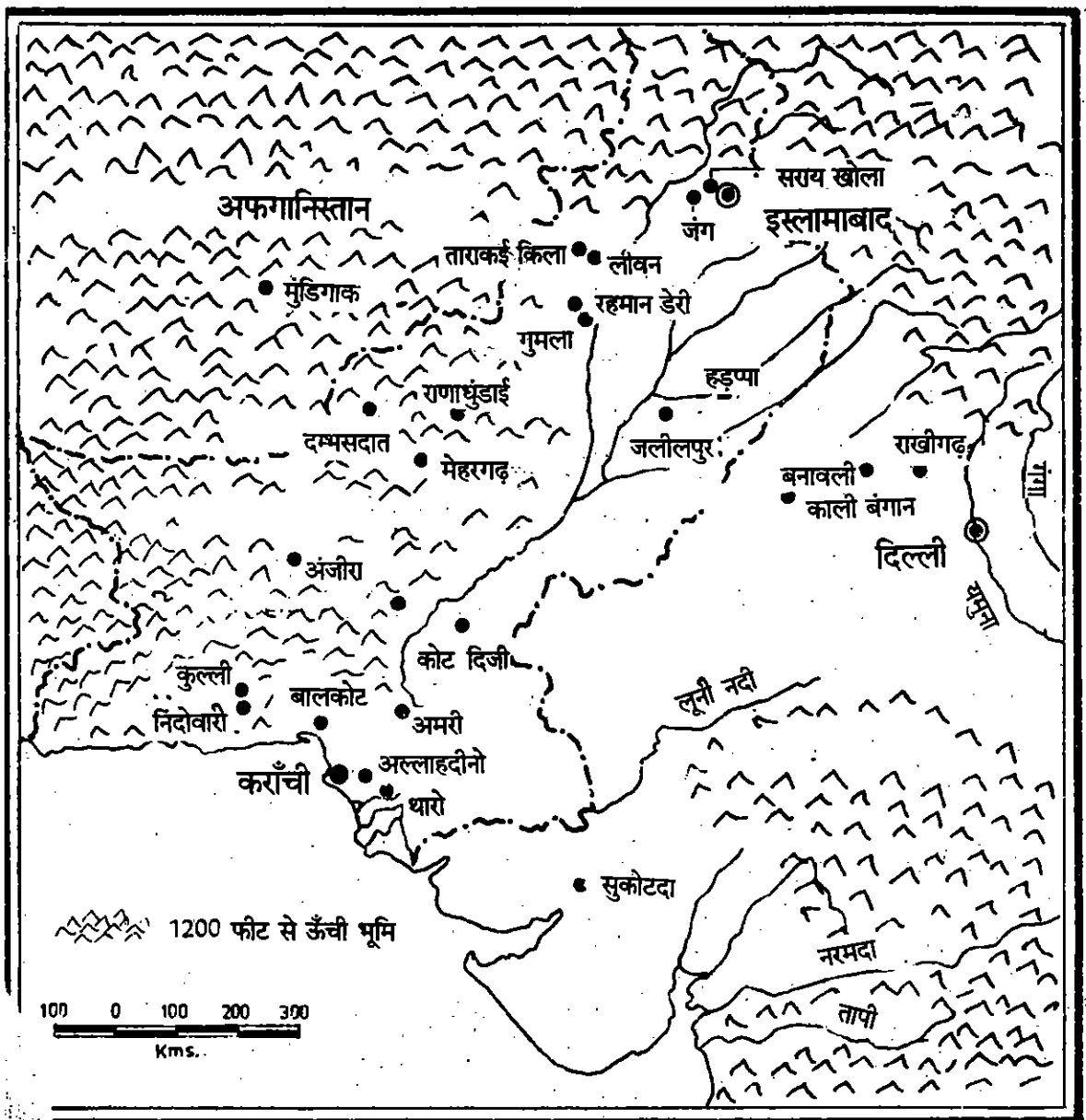
5.4 इसे हड़प्पा की सभ्यता क्यों कहा जाता है?

हड़प्पा की खोज के बाद से अब तक लगभग एक हजार बस्तियों की खोज की जा चुकी है जिनकी विशेषताएं हड़प्पा से मिलती हैं। विद्वानों ने इसे "सिंधु घाटी की सभ्यता" का नाम दिया क्योंकि शुरू में बहुत सी बस्तियां सिंधु घाटी और उसकी सहायक नदियों के मैदानों में पाई गई थीं। पुरातत्ववेत्ता इसे "हड़प्पा की सभ्यता" ही कहना पसंद करते हैं। ऐसा इसलिए है कि पुरातत्व-विज्ञान में यह परिपाटी है कि जब किसी प्राचीन संस्कृति का वर्णन किया जाता है तो उस स्थान के आधुनिक नाम पर उस संस्कृति का नाम रखा जाता है, जहां से उसके अस्तित्व का पता चला है। हमें यह मालूम नहीं है कि वे लोग अपने को क्या कहते थे क्योंकि हम उनकी लिखाई नहीं पढ़ पाये हैं। इसलिए हम आधुनिक स्थान हड़प्पा को आधार मानकर उन्हें हड़प्पावासी कहते हैं। क्योंकि इसी स्थान पर इस विस्मृत सभ्यता का प्रमाण सबसे पहले मिला था।

5.5 पूर्ववर्ती इतिहास

जब हम "हड़प्पा की सभ्यता" शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य अमंख्य शहरों,

कस्बों और गांवों से होता है जो 3000 ई. पू. में पूर्णतः विकसित हो चुके थे। एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत इन शहरों और गांवों में आपसी संबंध थे। इन भौगोलिक स्थानों के अंतर्गत मोटे तौर पर आज का राजस्थान, पंजाब, गुजरात, पाकिस्तान और कुछ आसपास के क्षेत्र आते हैं। यदि हम हड़प्पा की सभ्यता के उद्भव से इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों द्वारा छोड़े गए अवशेषों का अध्ययन करते हैं तो हमें शहरों के उद्भव की जानकारी मिल सकती है। विद्वानों का विचार है कि मानवजाति के अतीत में एक ऐसा समय था जब शहरों का अस्तित्व नहीं था और लोग छोटे-छोटे गांवों में रहते थे। अब प्रश्न यह उठता है कि हड़प्पावासियों के पूर्वज कस्बों और शहरों के उद्भव से पहले क्या किया करते थे। ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि हड़प्पावासियों के पूर्वज गांवों और छोटे-छोटे कस्बों में रहा करते थे। उनमें से घूम-फिरकर पशु चराने का काम करते थे और कुछ व्यापार के कार्य में लगे हुए थे। हड़प्पा की सभ्यता में कृषक और अर्ध यायावर समुदायों के एक लम्बे समय से चले आ रहे विकास के चरमोत्कर्ष का पता चलता है। अब हम हड़प्पा की सभ्यता के पूर्ववर्ती इतिहास की समीक्षा करेंगे। सबसे पहले हम हड़प्पा की सभ्यता के भौगोलिक क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे।



मानचित्र-1 प्रारम्भिक हड़प्पा सभ्यता की बस्तियाँ

5.6 भौगोलिक विशेषताएं

आज के पाकिस्तान और उत्तर पश्चिम भारत के क्षेत्र "हड़प्पा की सभ्यता" के प्रमुख क्षेत्र थे। इन क्षेत्रों में मौसम सूखा रहता है और वर्षा बहुत कम होती है। फिर भी इन क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण अंतर है। पंजाब और सिंधु के क्षेत्र में सिंधु नदी के कछारी मैदानों की प्रधानता है। इसी प्रकार बलूचिस्तान के क्षेत्र की एक विशेषता है उसकी दुर्गम चट्टानी पहाड़ियां। उत्तर पूर्वी बलूचिस्तान में घाटियों की तलहटी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां खेती होती होगी। इस क्षेत्र में पशुचारी तथा खानाबदोश जातियां भी रहती आई हैं। ये पशुचारी खानाबदोश जातियां अपने पशुओं के लिए चारे की खोज में ऊंचे स्थानों से निचले स्थानों पर आती जाती रहती थीं। वह सीमांत क्षेत्र जो सिंधु के मैदान में जा मिलता है, पूर्वी ईरान के पठार का ही विस्तारण है। इन पहाड़ी क्षेत्रों में खैबर, गोमाल, बोलन जैसे कई दर्रे बन गए हैं। खानाबदोशों, व्यापारियों, योद्धाओं और विभिन्न लोगों के लिए ये आने-जाने के मार्ग बन गए थे। एक तरफ बलूचिस्तान के ऊपरी भागों के लोगों और सिंधु नदी के मैदानों में बसे लोगों और दूसरी तरफ ईरान में रहने वाले लोगों के बीच अन्तरसम्बन्ध इस भौगोलिक विशेषता से जुड़ा प्रतीत होता है। हड़प्पा की सभ्यता की जलवायु और पहाड़, नदियां आदि तथा ईरान और ईराकी सीमांत प्रदेश की जलवायु और प्राकृतिक दृश्य में समानता होने के कारण। विद्वानों ने यह अनुमान लगाया कि इन क्षेत्रों में कृषक समुदायों का अभ्युदय मोटे तौर पर एक ही काल में हुआ होगा। ईरान और ईराक में खेतीबाड़ी का आरम्भ लगभग 8000 ई. पू. में हुआ है। अब हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि सिंधु के आस-पास के क्षेत्रों में कृषि की शुरुआत के विषय में प्रमाण मिले हैं।

5.7 कृषि की शुरुआत और बसे हुए गांव

कृषक समुदायों के उद्भव का सबसे प्राचीन प्रमाण मेहरगढ़ नामक स्थान से मिलता है जो पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में बोलन दर्रे के निकट स्थित है। (खंड 1 की इकाई 4 में भी देखें) यह स्थान अस्थायी शिविर के रूप में स्थापित हुआ तथा पांचवीं सहस्राब्दी ई. पू. में आबाद गांव बन गया। इस स्थान पर लोग गेहू, जौ और खजूर पैदा करते थे और भेड़-बकरियों और मवेशी पालते थे।

मेहरगढ़ उस स्थान पर स्थित है जहां सिंधु नदी के कछारी मैदान और भारत-ईरान सीमांत प्रदेश के ऊंचे-नीचे पहाड़ी पठार मिलते हैं। मेहरगढ़ के लोग कच्चे मकानों में रहते थे। कुछ मकानों में पांच-छह कमरे होते थे। तीसरी सहस्राब्दी ई. पू. के मध्य में बहुत से छोटे और बड़े गांव सिंधु नदी के आस-पास बलूचिस्तान और अफगानिस्तान के क्षेत्र में बस गए थे। इनमें से कुछ मशहूर हैं : बलूचिस्तान में कीली गुल मोहम्मद और अफगानिस्तान में मुंडीगक। सिंधु नदी के बाढ़ वाले मैदानों में हड़प्पा के पास जलीलपुर जैसे गांव बस गए थे। इन किसानों ने सिंधु नदी के अत्यधिक उपजाऊ मैदानों का उपयोग करना सीख लिया था, इसलिए गांवों के आकार और उनकी संख्या एकाएक बढ़ गई। इन किसानों ने सिंधु नदी के मैदानों का धीरे-धीरे उपयोग करना और सिंधु नदी की बाढ़ पर नियंत्रण करना सीख लिया था। इस प्रकार प्रति एकड़ भूमि पर खेती करने से प्रचुर मात्रा में उपज होती थी। इस कारण सिंधु, राजस्थान, बलूचिस्तान और अन्य क्षेत्रों में भी बस्तियों का काफी विस्तार हुआ। उन्होंने अपने लिए उपयोगी पत्थरों की खदानों और अन्य खदानों का उपयोग करना सीख लिया था। इस काल में अस्थायी बस्तियों में पशुचारी खानाबदोश समुदायों के मौजूद होने के संकेत मिलते हैं। कृषकों के इन खानाबदोश समूहों से संपर्क ने कृषकों को अन्य क्षेत्रों के संसाधनों का उपयोग करने में सहायता दी क्योंकि पशुचारी खानाबदोशों के बारे में यह माना जाता है कि जिन क्षेत्रों से वे गुजरते हैं वे वहां व्यापारिक गतिविधियों में लग जाते हैं। इन सभी कारणों से छोटे-छोटे कृषकों का विकास हुआ। सिंधु नदी के आस-पास के क्षेत्रों की सभ्यता में पाई गई कुछ समानताओं के कारण इस नए विकास के काल को "आरम्भिक हड़प्पा काल" कहते हैं।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

- i) जॉन मार्शल ने हड़प्पा की सभ्यता को पाँच हजार वर्ष पुराना माना है। ()
- ii) हड़प्पा की बस्तियों में रहने वाले लोग लोहे का उपयोग जानते थे। ()
- iii) इसे हड़प्पा की सभ्यता इसलिए कहा गया क्योंकि हड़प्पा पहला स्थान था, जिसकी खोज की गई। ()
- iv) हमारे पास इस बात के प्रमाण हैं कि हड़प्पा की सभ्यता के निवासियों के पूर्वज बड़े शहरों में रहते थे। ()

2 आरम्भिक हड़प्पा की सभ्यता की भौगोलिक विशेषताओं पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.8 आरम्भिक हड़प्पा काल

अब हम हड़प्पा सभ्यता के अभ्युदय के कुछ समय पहले की कुछ बस्तियों की समीक्षा करेंगे। बहुत से विद्वानों ने इसे आरम्भिक "हड़प्पा काल" कहा है क्योंकि उनका विश्वास है कि यह हड़प्पा की सभ्यता का निर्माण-युग था जिसमें सांस्कृतिक एकता की कुछ प्रवृत्तियों के प्रमाण भी मिले हैं।

5.8.1 दक्षिणी अफगानिस्तान

दक्षिणी अफगानिस्तान में मुंडीगक नामक स्थान है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान व्यापारिक मार्ग पर स्थित रहा होगा। सिंधु सभ्यता के आरम्भिक काल में इस स्थान के निवासी शिल्पकृतियों का प्रयोग करते थे जिनसे एक ओर ईरान के कुछ नगरों और दूसरी ओर बलूचिस्तान के कुछ नगरों के साथ संबंधों का पता चलता है।

खानाबदोश लोगों के कुछ समूहों द्वारा पड़ाव डालने की धीमी शुरुआत से यह स्थान एक घनी आबादी वाला नगर हो गया। इस बात के प्रमाण हैं कि यहाँ ऊँची दीवार होती थी जिसमें धूप में सुखाई गई ईंटों के वर्गाकार बुर्ज थे। एक विशाल भवन जिसमें खंभों की कतारें थीं महल के रूप में पहचाना गया है। दूसरा विशाल भवन मंदिर जैसा प्रतीत होता है। इसी स्थान पर मिट्टी के बर्तनों की अनेक किस्में भी मिली हैं। वे लोग प्राकृतिक सजावट के रूप में चिड़ियों, लम्बे सींग वाले जंगली बकरे, बैल और पीपल के पंड़ों को चित्रित करते थे। पक्की मिट्टी की बनी हुई मूर्तियों की छोटी छोटी मूर्तियाँ भी मिली हैं जो बलूचिस्तान की बस्तियों में पाई गई मूर्तियों से मिलती जुलती हैं। वे कामों की मजदूर

कुल्हाड़ियों और बसलों का प्रयोग करते थे। सेलखड़ी और लाजवर्द जैसे अल्प अमूल्य पत्थरों से ईरान और मध्य एशिया के साथ अनेक संबंधों का पता चलता है क्योंकि ये पत्थर स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं थे।

5.8.2 क्वेटा घाटी

मुंडीगक के दक्षिण पूर्व की ओर क्वेटा घाटी है। दंब सादात नामक स्थान में बड़े-बड़े ईंटों के घर पाए गए हैं जिनका संबंध तीसरी सहस्राब्दी ई. पू. के आरम्भ से है। कई प्रकार के चित्रकारी किए हुए मिट्टी के बर्तन भी पाए गए हैं जो मुंडीगक में पाए गए मिट्टी के बर्तनों जैसे ही हैं ये लोग पक्की मिट्टी की मोहरों और तांबे की वस्तुओं का भी प्रयोग करते थे। इन खोजों से उस समय के समुदायों की सम्पन्नता का संकेत मिलता है जिन्होंने अपनी खाद्य समस्या सुलझा ली थी और दूर के क्षेत्रों से व्यापारिक संबंध स्थापित कर लिए थे। इसी प्रकार आस-पास के क्षेत्रों से भी विशिष्ट कला और मिट्टी के बर्तनों की परंपरा के बारे में जानकारी मिली है। राना घुंदाई नामक स्थान में लोग बारीकी से बने हुए तथा चित्रकारी किए हुए मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे। इन पर काले कुबड़े बैलों के चित्र बने होते थे। इन मिट्टी के बर्तनों तथा क्वेटा घाटी में पाए गए मिट्टी के बर्तनों में सुस्पष्ट समानताएं पाई गईं। एक अन्य स्थान पेरिआनों घुंदाई जिसकी खुदाई की गई है, में भी एक विशिष्ट प्रकार की स्त्रियों की छोटी-छोटी मूर्तियां पाई गई हैं।

5.8.3 मध्य और दक्षिणी बलूचिस्तान

मध्य और दक्षिणी बलूचिस्तान में अजीरा तोगाऊ, निंदोवाड़ी और बालाकोट जैसी बस्तियां हमें आरम्भिक हड़प्पा सभ्यता के समाजों की जानकारी देती हैं। घाटी की व्यवस्था के अनुसार गांव और उपनगर विकसित हुए। बालाकोट में विशाल इमारतों के अवशेष पाए गए हैं। इस क्षेत्र की कई बस्तियों से फारस की खाड़ी से सम्पर्क का पता चलता है। बालाकोट में जो लोग सबसे पहले बसे उसी प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिस प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग बलूचिस्तान के समकालीन गांवों के लोग करते थे किंतु कुछ समय पश्चात् उन्होंने सिंधु नदी के कछारी मैदानों में प्रयुक्त किए जाने वाले मिट्टी के बर्तनों के समान ही मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। हमारे लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि सम्पूर्ण बलूचिस्तान प्रांत के लोग एक ही प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार उन पर एक ओर पारस की खाड़ी के नगरों का तथा दूसरी ओर सिंधु घाटी के नगरों के प्रभावों का पता चलता है। वे अपने मिट्टी के बर्तनों पर कुबड़े बैल और पीपल के चिन्हों का प्रयोग करते थे जो विकसित हड़प्पा काल में भी जारी रहा।

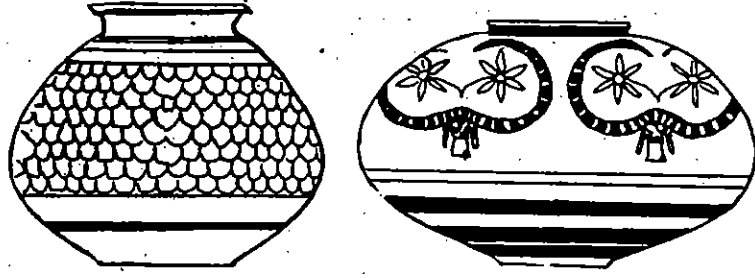
5.8.4 सिंधु क्षेत्र

चौथी सहस्राब्दी ई. पू. के मध्य तक सिंधु के कछारी मैदान परिवर्तन का केन्द्र बिंदु बन गए। सिंधु नदी और छगगर-हाकरा नदियों के किनारों पर बहुत सी छोटी और बड़ी बस्तियां बस गईं। यह क्षेत्र हड़प्पा की सभ्यता का मुख्य क्षेत्र बन गया। इस चर्चा में हम यह बताने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार इन घटनाओं से हड़प्पा की सभ्यता की अनेक विशेषताओं का पता चला।

1 आमरी

सिंधु घाटी के निचले मैदानों के समान सिंधु प्रांत के विकास का पता चलता है। आमरी में मिले मकानों के अवशेषों से पता चलता है कि लोग पत्थर और मिट्टी की ईंटों के मकानों में रहते थे। उन्होंने अनाज को रखने के लिए अनाज के कोठार (अन्नागार) भी बनाए थे।

वे मिट्टी के बर्तनों पर भारतीय कुबड़े बैलों जैसे जानवरों के चित्र बनाते थे। यह चित्र (चिन्ह) पूर्ण विकसित हड़प्पा काल में बहुत लोकप्रिय था। वे चाक पर बने मिट्टी के बर्तनों का भी प्रयोग करते थे। थारो और कोहत्रास बूथी जैसे स्थानों से भी ऐसी ही वस्तुएं पाई गईं। यहां पर हड़प्पा की सभ्यता के शुरू होने से पहले ही उन्होंने अपनी बस्तियों की किलेबंदी कर ली थी।



चित्र 1 प्रारम्भिक हड़प्पा सभ्यता के मिट्टी के बर्तन : कोट दीजी।

2 कोट दीजी

मोहनजोदड़ो के सामने सिंधु नदी के बाएँ किनारे पर कोट दीजी नामक स्थान है। आरंभिक हड़प्पा काल में यहाँ के निवासियों ने अपनी बस्ती के चारों ओर अति विशाल सुरक्षात्मक दीवार बना ली थी। उनकी सबसे बढ़िया खोज मिट्टी के बर्तन हैं। वे चाक पर बने मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिन पर गहरे भूरे रंग की साधारण धारियों की सजावट होती थी। इस प्रकार के मिट्टी के बर्तन राजस्थान में कालिबंगन और बलूचिस्तान में मेहरगढ़ जैसे दूर-दराज के स्थानों में बसे पूर्व हड़प्पा काल के निवासियों के बताए जाते हैं। कोट दीजी मिट्टी के बर्तनों की किस्में सिंधु नदी के आस-पास के सम्पूर्ण भू-भाग में पाई गई हैं जहाँ पर हड़प्पा के पूर्व-शहरी और शहरी अवस्था से संबंधित बस्तियों के बारे में जानकारी मिली है। मिट्टी के बर्तनों का समान रूप से सजावट की इस प्रवृत्ति से यह संकेत मिलता है कि सिंधु नदी के मैदानी भागों में रहने वाले लोगों के बीच घनिष्ठ संबंध थे। इससे हड़प्पा की सभ्यता में संस्कृतियों के मूल की प्रक्रिया का भी पूर्वाभास मिलता है। मिट्टी के बर्तनों के अनेक डिजाइन शहरी अवस्था तक शेष रहे। उसी समय के अन्य मिट्टी के बर्तन मुंडीगक में बने हुए मिट्टी के बर्तनों के समान थे। इससे आरंभिक हड़प्पा के स्थानों में विस्तृत आपसी संबंधों का पता चलता है। पुरातत्ववेत्ताओं ने मोहनजोदड़ो में इस मैदान की आधुनिक स्तर के 39 फुट नीचे तक खुदाई करके अधिभोग निक्षेप का पता लगाया है। इस प्रकार चान्हूदड़ो नामक स्थान पर आरंभिक हड़प्पा के मकानों का पता चला है। मोहनजोदड़ो में शुरू के स्तर तक खुदाई नहीं हो पाई है परंतु अनेक पुरातत्ववेत्ताओं का यह विश्वास है कि उनके रहन-सहन के ढंग से आरंभिक हड़प्पा की संस्कृति की जानकारी मिलती है जो संभवतः कोट दीजी की संस्कृति से मेल खाती है।

मेहरगढ़

इससे पहले भी हम मेहरगढ़ स्थल के बारे में बता चुके हैं। हड़प्पा के शहरीकरण के पूर्ववर्ती काल में मेहरगढ़ के लोगों ने एक संपन्न उपनगर बसाया था। वे पत्थरों की कई मार की मालाएं बनाते थे। वे एक कीमती पत्थर लाजवर्द मणि का प्रयोग करते थे जो बल मध्य एशिया के बदखशां क्षेत्र में पाया जाता है। बहुत सी मोहरों और ठप्पों का भी पता चला है। आपसी लेन-देन में प्राधिकार के चिन्ह रूप में इन मोहरों का प्रयोग होता

मेहरगढ़ की मोहरों का प्रयोग संभवतः व्यापारियों द्वारा दूर-दराज के क्षेत्रों को भेजे जाने वाले माल की गुणवत्ता की गारंटी देने के लिए किया जाता था। मिट्टी के बर्तनों के डिजाइन, मिट्टी की बनी मूर्तियों, तांबे और पत्थर की वस्तुओं से पता चलता है कि इन लोगों का ईरान के निकटवर्ती नगरों के साथ घनिष्ठ संबंध था। मेहरगढ़ के लोगों द्वारा बनाए गए अधिकतर मिट्टी के बर्तन दम्ब सादात और बवेटा घाटी की बस्तियों में पाए गए वस्तुओं से मिलते थे। इसके अतिरिक्त मिट्टी की बनी स्त्रियों की मूर्तियाँ भी मिली हैं। वे जोब घाटी में पाई गई मूर्तियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं इन समानताओं से उस क्षेत्र में रहने वाले समुदायों के बीच निकट आपसी संबंधों का पता चलता है।

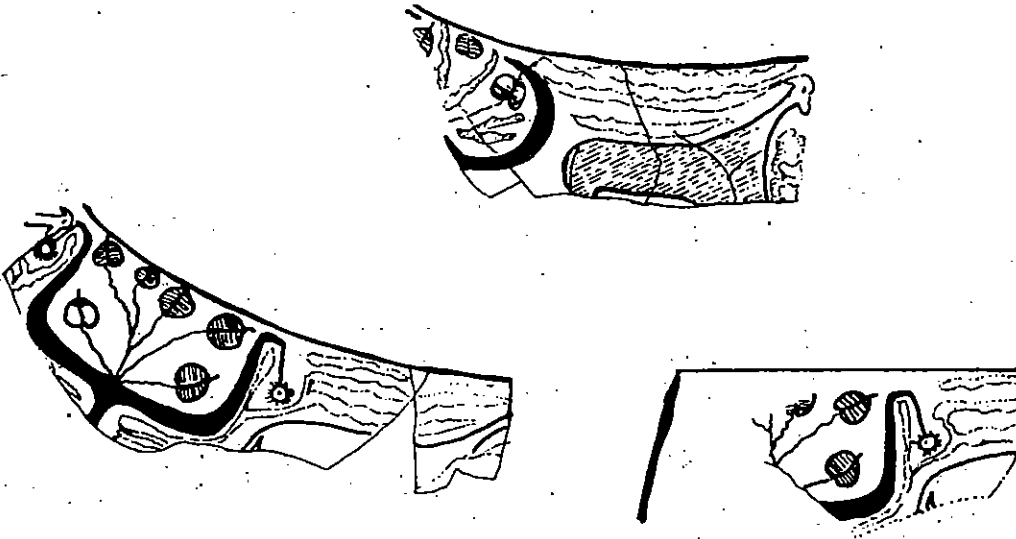
रहमान डेरी

यदि हम सिंधु नदी के उत्तर की ओर चलें तो हमें कुछ और बस्तियाँ मिलेंगी जिनसे हमें

यह पता चलता है कि आरंभिक हड़प्पा काल में लोग किस प्रकार रहते थे। रहमान डेरी नामक स्थान पर आरंभिक सिंधु उपनगर की खुदाई की गई है। यह उपनगर आयताकार था और इसमें घर, सड़कें, गलियां नियोजित ढंग से बने हुए थे। इस उपनगर की सुरक्षा के लिए एक विशाल दीवार थी- यहां भी फीरोजी और नीलम के मनके मिले हैं। इससे उनके मध्य एशिया के साथ संबंधों का पता चलता है। बर्तनों के टुकड़ों पर पाए गए असंख्य भित्ति चित्र हड़प्पालिपि के पूर्वसूचक हो सकते हैं। इस क्षेत्र में मिट्टी के बर्तनों की स्वतंत्र परंपरा धीरे-धीरे बदल गई और कोट दीजी के मिट्टी के बर्तनों के समान मिट्टी के बर्तनों ने स्थान ले लिया। पत्थर, तांबे और कांसे से बनी मोहरे और औजार भी मिले हैं।

5 तरकाई किला

बन्नू क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में तरकाई किले की किलेबंदी का प्रमाण भी मिला है। पुरातत्वविदों ने खाद्यान्नों के बहुत सारे नमूने खोज निकाले हैं जिनमें गेहूं और जौ, मूंग-मसूर की दालें और देसी मटर के नमूने शामिल हैं। फसल काटने के औजारों का भी पता चला है। उसी क्षेत्र में लीवान नामक स्थान पर पत्थर के औजार बनाने के एक बहुत बड़े कारखाने का पता चला है। हड़प्पा के निवासी और उनके पूर्वज लोहे और तांबे के बारे में बिल्कुल भी जानकारी नहीं रखते थे। अतः अधिकतर लोग पत्थर से बने औजारों का प्रयोग करते थे। इसलिए कुछ स्थानों पर जहां अच्छी श्रेणी का पत्थर उपलब्ध था, बड़ी संख्या में औजार बनाए जाते थे और उसके बाद उन औजारों को दूर-दूर के नगरों और गांवों में भेजा जाता था। लीवान में लोग पत्थर के कुल्हाड़े, हथौड़े, चक्कियाँ आदि बनाते थे। इस काम के लिए वे निकटवर्ती क्षेत्रों से भी उपयुक्त चट्टानी पत्थर मंगाते थे। नीलम और मिट्टी की बनी मूर्तियों के पाए जाने से मध्य एशिया के साथ संबंधों का पता चलता है। सरायखोला नामक स्थान पर जो पश्चिमी पंजाब के उत्तरी किनारे पर स्थित है एक अन्य आरंभिक हड़प्पा बस्ती का पता चला है। यहां पर भी लोग कोट दीजी जैसे मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे।



चित्र-2 लीवान में पाए गए रंगे हुए मिट्टी के बर्तन जिन पर पीपल के पत्तों तथा बैलों के सिर की आकृतियां बनी हुई हैं।

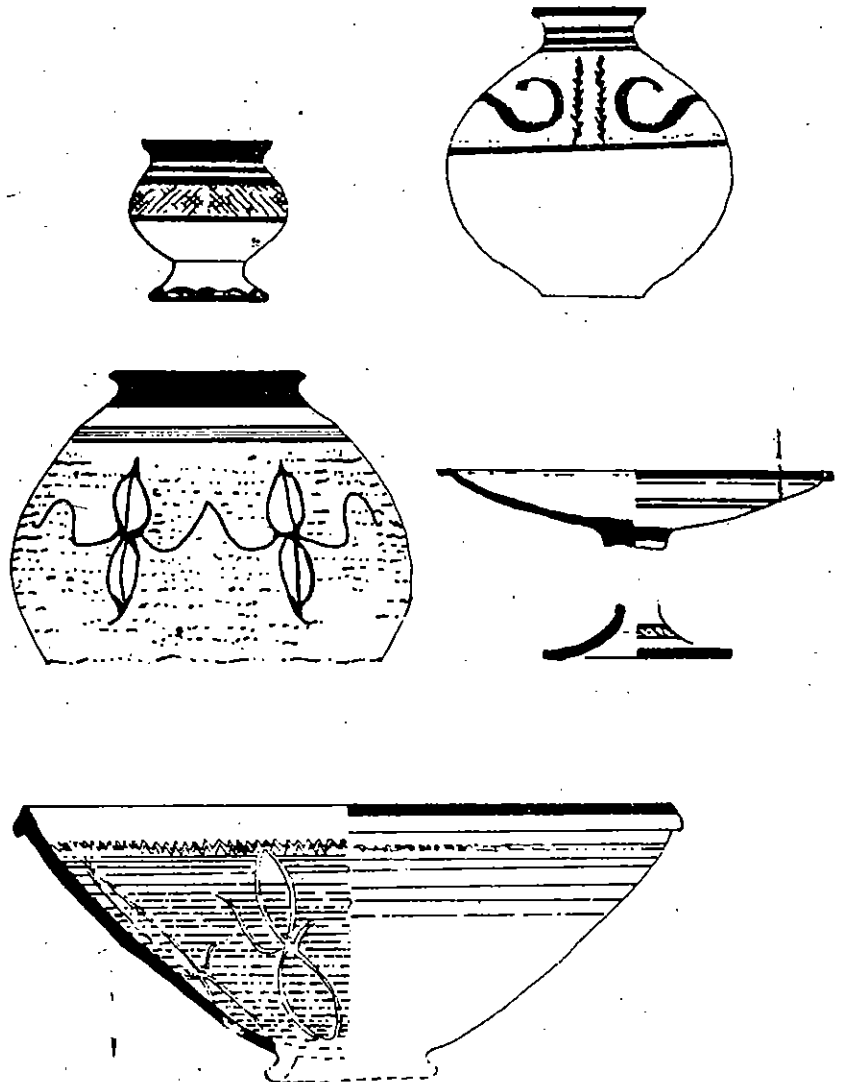
5.8.5 पंजाब और बहावलपुर

पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा प्रसिद्ध है। एक खुदाई के दौरान शहरीकरण की अवस्था से पहले की बस्तियों की खोज की गई है। दुर्भाग्यवश अभी तक उनकी खुदाई नहीं हुई है। यहां पाए गए मिट्टी के बर्तन कोट दीजी के बर्तनों के समान हैं। विद्वानों का विचार है कि ये बस्तियां हड़प्पा में 'आरंभिक हड़प्पा काल' में रही होंगी। बहावलपुर क्षेत्र में हाकरा नदी की सूखी तलहटी में आरंभिक हड़प्पा काल के लगभग 40 स्थानों का पता लगाया गया है। कोट दीजी में पाए गए मिट्टी के बर्तनों से यहां पर भी आरंभिक हड़प्पा सभ्यता का पता

चलता है। इन स्थानों का बस्ती के स्वरूप के तुलनात्मक विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि आरंभिक हड़प्पा काल में कई प्रकार के मकान बन गए थे। जबकि कई स्थानों में तो साधारण गांव ही थे और उनमें से कुछ स्थानों में विशिष्ट औद्योगिक कार्य हो रहे थे। इसलिए हम देखते हैं कि अधिकतर स्थानों का औसत आकार लगभग पांच से छह एकड़ था गमनवाला 27.3 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है। इसका अर्थ यह हुआ कि गमनवाला कालीबंगन के हड़प्पा उपनगर से बड़ा था। इन उपनगरों में कृषि कार्यों के अतिरिक्त अवश्य ही प्रशासनिक और औद्योगिक होते होंगे।

5.8.6 कालीबंगन

उत्तरी राजस्थान के कालीबंगन स्थान पर आरंभिक हड़प्पा काल के प्रमाण मिले हैं। यहां पर लोग कच्ची ईंटों के मकानों में रहते थे। इन कच्ची ईंटों का मानक आकार होता था। वे बस्ती के चारों तरफ चार दीवारी भी बनाते थे। उन लोगों द्वारा प्रयुक्त मिट्टी के बर्तनों का आकार और डिजाइन दूसरे क्षेत्रों में प्रयुक्त मिट्टी के बर्तनों के आकार और डिजाइन से अलग था। फिर भी मिट्टी के कुछ बर्तन कोट दीजी में पाए गए मिट्टी के बर्तनों से मिलते थे। बलि स्तंभ जैसे मिट्टी के बर्तनों के कुछ नमूनों का प्रयोग शहरी चरण के दौरान जारी रखा। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण खोज थी जुते हुए खेत का तल। इससे सिद्ध होता है कि उस समय भी किसान हल के बारे में पहले से ही जानते थे। पुराने हालात में किसान केवल बीज छितराकर बो सकते थे या खेतों की खुदाई के लिए फावड़े, कुदाली का प्रयोग करते थे। हल से कोई भी व्यक्ति बहुत कम मेहनत से अधिक गहरी खुदाई कर सकता है। इसलिए इसे खेती का उन्नत औजार समझा जाता है जिसमें खाद्य उत्पादन को बढ़ाने की शक्ति है।



चित्र-3 आरंभिक सिंधु सभ्यता के मिट्टी के बर्तन—कालीबंगन

घग्गर नदी, जो भारत में है सूखी तलहटी में आरंभिक हड़प्पा की अनेक बस्तियाँ पाई गई हैं। ये बस्तियाँ उन जलमार्गों के पास पाई गई हैं जो अब विलुप्त हो गए हैं। सोथी बाड़ा और सीसवाल जैसी बस्तियाँ में जो मिट्टी के बर्तनों की शैलियाँ प्रचलित थीं। वह कालीबंगन के मिट्टी के बर्तनों की शैलियों से मिलती जुलती थी ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान में खेतड़ी की तांबे की खानों का उपयोग आरंभिक हड़प्पा काल में ही शुरू हो गया होगा। हमने आरंभिक काल में सिंधु क्षेत्रों और उसके आस-पास रहने वाले विभिन्न कृषक समुदायों की सांस्कृतिक परंपराओं में पाई गई समानताओं का उल्लेख किया है।

बलूचिस्तान, सिंधु, पंजाब और राजस्थान में आरंभ में छोटी-छोटी कृषक बस्तियाँ थीं, इसके पश्चात् इन क्षेत्रों में अनेक प्रकार की क्षेत्रीय परंपराओं का अभ्युदय हुआ है। किंतु एक ही प्रकार के मिट्टी के बर्तन, सींग वाले देवता के चित्रण और मिट्टी की मातृदेवियों की मूर्तियों से पता चलता है कि एकीकरण की परंपरा शुरू हो चुकी थी। बलूचिस्तान के लोगों ने पारस की खाड़ी और मध्य एशिया के नगरों के साथ पहले ही व्यापारिक संबंध बना लिए थे। इस प्रकार आरंभिक हड़प्पा काल से हड़प्पा की सभ्यता की उपलब्धियों की जानकारी मिलती है।

हमने लगभग तीन हजार वर्षों में हुई घटनाओं को पढ़ा है। इस काल के दौरान किसानों ने सिंधु नदी के कछारी मैदानों में बस्तियाँ बसाईं। ये समुदाय तांबे, काँसे और पत्थर के औजारों का प्रयोग करते थे। श्रम से अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के लिए वे हल और पहिए वाली गाड़ी का प्रयोग करते थे। ईरान में भेड़-बकरियाँ पालने का प्रचलन था तो इसके विपरीत सिंधु घाटी के लोग गाय, भैंस आदि पशु पालते थे। इससे उन्हें यातायात और खेती के लिए पशु शक्ति का प्रयोग करने के लिए बेहतर अवसर मिल गये थे। इसी दौरान मिट्टी के बर्तनों को बनाने की परंपरा में धीरे-धीरे एकरूपता आई। कोट दीजी में जो विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन सबसे पहले पाए गए थे। आरंभिक हड़प्पा काल में वे बलूचिस्तान, पंजाब और राजस्थान के समस्त क्षेत्रों में भी पाए गए। मिट्टी की मातृदेवियों की मूर्तियाँ और सींगदार देवता के रूपांकन कोट दीजी और कालीबंगन में भी पाए गए। कुछ समुदायों ने अपने घरों के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें बना ली थीं। इन दीवारों के निर्माण के पीछे क्या प्रयोजन रहा होगा, यह हमें मालूम नहीं है। हो सकता है कि ये दीवारें दूसरे समुदायों से सुरक्षित रहने के लिए बनाई गई हों अथवा बाढ़ से बचने के लिए बनाई गई हों। ये सभी घटनाएँ पारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया की समकालीन बस्तियों के साथ अधिक व्यापक संबंधों के संदर्भ में घटित हो रही थीं।

5.9 हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय

प्रायोगिकीय और वैचारिक एकीकरण की इन प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि में हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय हुआ। इस सभ्यता की उत्पत्ति से संबंधित प्रक्रियाएँ अस्पष्ट हैं क्योंकि उनकी लिपि का अध्ययन नहीं किया गया है और अनेक बस्तियों की खुदाई की जाने की ज़रूरत है। ऊपर कुछ सामान्य प्रक्रियाओं की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उन्नत और सिंधु घाटी के उर्वर मैदानों में खेती करने तथा उन्नत प्रायोगिकीय के प्रयोग से खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी हुई होगी। इससे अतिरिक्त खाद्यान्न की संभावनाएँ पैदा हुईं। इसके कारण जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। इसके साथ-साथ समाज के धनी वर्ग बहुमूल्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए दूर-दराज के समुदायों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करते थे। अतिरिक्त खाद्यान्नों से गैर-कृषि कार्य करने के अवसर मिले। गांव का पुरोहित सम्पूर्ण क्षेत्र में फैले हुए पुरोहित-कुल का अंग बन सकता था। इसी प्रकार की प्रक्रियाएँ धातु विज्ञानियों, कुम्हारों और शिल्पियों के संबंध में भी सामने आईं। गांवों में अनाज रखने के चबूतरे बड़े-बड़े कोठारों में बदल गए।

कई कृषक समूहों और पशुचारों यायावर समुदायों का एक दूसरे के साथ निकट संपर्क होने से उनके बीच तनाव तथा परस्पर-विरोध उत्पन्न हो सकता था। कृषक एक समुदाय के रूप में स्थापित होने के पश्चात् अन्य कम खुशहाल समूहों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते थे।

पशुचारी यायावर जातियों के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे व्यापार और लूटपाट के कार्य में लगी थीं। अपनी आर्थिक दशा के अनुसार वे इन गतिविधियों में सम्मिलित होते थे। कृषक समुदाय में अधिक उपजाऊ भूमि को हथियाने के लिए संघर्ष होता था। संभवतः यही कारण है कि कुछ समुदायों ने अपने चारों ओर सुरक्षा के लिए दीवार बना ली थी। हम जानते हैं कि हड़प्पा की सभ्यता के अभ्युदय के समय कोट दीजी और कालीबंगन जैसी कई बस्तियां आग से नष्ट हो गयी थीं हमें इसका कारण मालूम नहीं है। फिर भी यह तथ्य अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है कि सिंधु क्षेत्र में विभिन्न प्रतियोगी समुदायों में लोगों के एक वर्ग ने दूसरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इससे 'विकसित हड़प्पा काल' के आरंभ का संकेत मिला। हड़प्पा सभ्यता एक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई थी। इस कारण विकसित हड़प्पा काल के आरंभ होने की कोई एक तिथि नहीं हो सकती।

यह संभव है कि विकास के केंद्र के रूप में इस शहर का कई सौ वर्षों की समयावधि में अभ्युदय हुआ होगा। परंतु यह शहर अस्तित्व में आया और यही कारण है कि इस शहर का अगले सात-आठ सौ वर्षों के लिए पूरे उत्तर-पश्चिम क्षेत्र पर प्रभुत्व रहा।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

- i) आरम्भिक हड़प्पा सभ्यता के लोगों के ईरान तथा मध्य एशिया के साथ व्यापारिक संबंध थे। ()
- ii) विकसित हड़प्पा काल की बहुत सी विशेषताएं सिंधु नदी के मैदान में विकसित हुईं। ()
- iii) सिंधु मैदानों के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संपर्क के प्रमाण नहीं मिले हैं। ()
- iv) आरम्भिक हड़प्पा काल में कालीबंगन तथा अन्य क्षेत्रों में इस्तेमाल किए जाने वाले मिट्टी के बर्तनों की बनावट तथा आकार में एकरूपता थी। ()

2 आरम्भिक हड़प्पा काल के विभिन्न क्षेत्रों में सभ्यता किस प्रकार विकसित हुई? लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.10 सारांश

भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए हड़प्पा की सभ्यता की खोज का विशेष महत्व है। यह खोज भारतीय इतिहास को और पीछे ले गई तथा यह वान मामने आई कि हड़प्पा की

सभ्यता मिश्र और मेसोपोटामिया जैसी विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं के समकालीन थी। हड़प्पा की सभ्यता की खोज का मुख्य श्रेय पुरातात्विक स्रोतों को जाता है।

पूर्ववर्ती इतिहास, पत्थरयुगीनक तम
की वैज्ञानिक विस्तार

इस इकाई में आपने उस प्रक्रिया के बारे में जिसके द्वारा इस सभ्यता की खोज हुई, जिन अवस्थाओं से आरंभिक हड़प्पा की सभ्यता गुजरी इन अवस्थाओं के ब्यारे, इसके क्रमिक विकास और अनेक क्षेत्रों में इसके विस्तार के बारे में पढ़ा। इस खंड की अगली इकाइयों में आप हड़प्पा के लोगों के समाज और अर्थव्यवस्था से संबंधित कई अन्य पक्षों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.11 शब्दावली

मोहर : लाख या पत्थर अथवा किसी अन्य वस्तु का टुकड़ा जिसमें कोई आकृति बनी होती है इसे प्रमाणीकरण के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

ठप्पा : वह वस्तु जिसमें मोहर की छाप हो।

रेडियो कार्बन डेटिंग : इसे सी-14 डेटिंग भी कहते हैं। यह निर्जीव कार्बनिक पदार्थ में रेडियोधर्मी आइसोटोप को मापने की विधि है। यह रेडियोधर्मी आइसोटोप ज्ञात एवं परिकल्पनीय दर से लुप्त हो जाता है।

खानाबोशी (यायावरी) : पशुचारी और चारे की तलाश में घूमने वाले समुदायों से जुड़ी जीवन-शैली। ये लोग एक ही स्थान पर नहीं ठहरते बल्कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं।

पशुचारी खानाबोशी : पशु और भेड़-बकरियां चराने वाले लोगों से जुड़ा सामाजिक संगठन जो चरागाहों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं।

कालक्रम : समय-निर्धारण करने की विधि।

कछरी मैदान : नदी किनारे के आस-पास का क्षेत्र जिस पर बाढ़ के समय नदी गाद जमा करती है।

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (i) ✓ (ii) × (iii) ✓ (iv) ×

2 भाग 5.6 देखें

बोध प्रश्न 2

1 (i) ✓ (ii) ✓ (iii) × (iv) ×

2 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए : अत्यंत उन्नत प्रौद्योगिकी। खाद्यान्नों की पैदावार, जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि, बढ़ती हुई विशेषज्ञता और व्यापार में वृद्धि। उपभाग 5.8.5 का अंतिम हिस्सा और भाग 5.9 देखें।

इकाई 6 भौतिक विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

- 6.0 उद्देश्य
- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 गांव से कस्बों और नगरों की ओर
- 6.3 हड़प्पा-सभ्यता : स्रोत
- 6.4 भौगोलिक विस्तार
- 6.5 महत्वपूर्ण केन्द्र
 - 6.5.1 हड़प्पा
 - 6.5.2 मोहनजोदड़ो
 - 6.5.3 कालीबंगन
 - 6.5.4 लोथल
 - 6.5.5 सुत्काजिन-दोर
- 6.6 भौतिक विशेषताएं
 - 6.6.1 नगर-योजना
 - 6.6.2 मिट्टी के बर्तन
 - 6.6.3 औजार और उपकरण
 - 6.6.4 कला और शिल्प
 - 6.6.5 सिन्धु-लिपि
 - 6.6.6 जीवन-यापन का स्वरूप
- 6.7 सारांश
- 6.8 शब्दावली
- 6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार और भौतिक विशेषताओं का विवरण है। इसमें हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य बस्तियों और उन भौतिक अवशेषों के बारे में बताया गया है जो इन बस्तियों की विशेषताओं को उजागर करते हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह समझ पाएंगे कि प्रारंभिक हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के बीच जनसंख्या और भौतिक परम्पराओं की निरंतरता कायम थी,
- हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के क्रमिक विकास के भौगोलिक तथा जलवायु संबंधी पहलुओं से परिचित हो सकेंगे,
- हड़प्पा-सभ्यता के महत्वपूर्ण केन्द्रों की विशिष्ट भौगोलिक, जलवायु और जीवन-निर्वाह संबंधी विशेषताओं का उल्लेख कर पाएंगे,
- यह जान सकेंगे कि हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य बस्तियों की भौतिक विशेषताएं क्या थीं और विशेषकर यह कि इन बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में किस तरह की एकरूपताएं पाई गई हैं।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम चरागाही और खेतिहर जातियों तथा छोटे-छोटे कस्बों की नींव पर पनपी हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार और इसकी भौतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

प्रारम्भिक हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के बीच जनसंख्या और भौतिक परम्पराओं की निरंतरता बनी हुई थी। इसमें हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार के अलावा कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रों के संबंध में भी विशेष चर्चा की गई है। इस इकाई में आपको हड़प्पा-सभ्यता की नगर योजना, महत्वपूर्ण इमारतों, कला एवं शिल्प, घरों की बनावट, मिट्टी के बर्तन, औजार तथा उपकरण और जीवन-निर्वाह के तरीकों आदि की जानकारी देने का प्रयास किया गया है। अन्त में, हड़प्पा की बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में पाई गई एकरूपताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

6.2 गांवों से कस्बों और नगरों की ओर

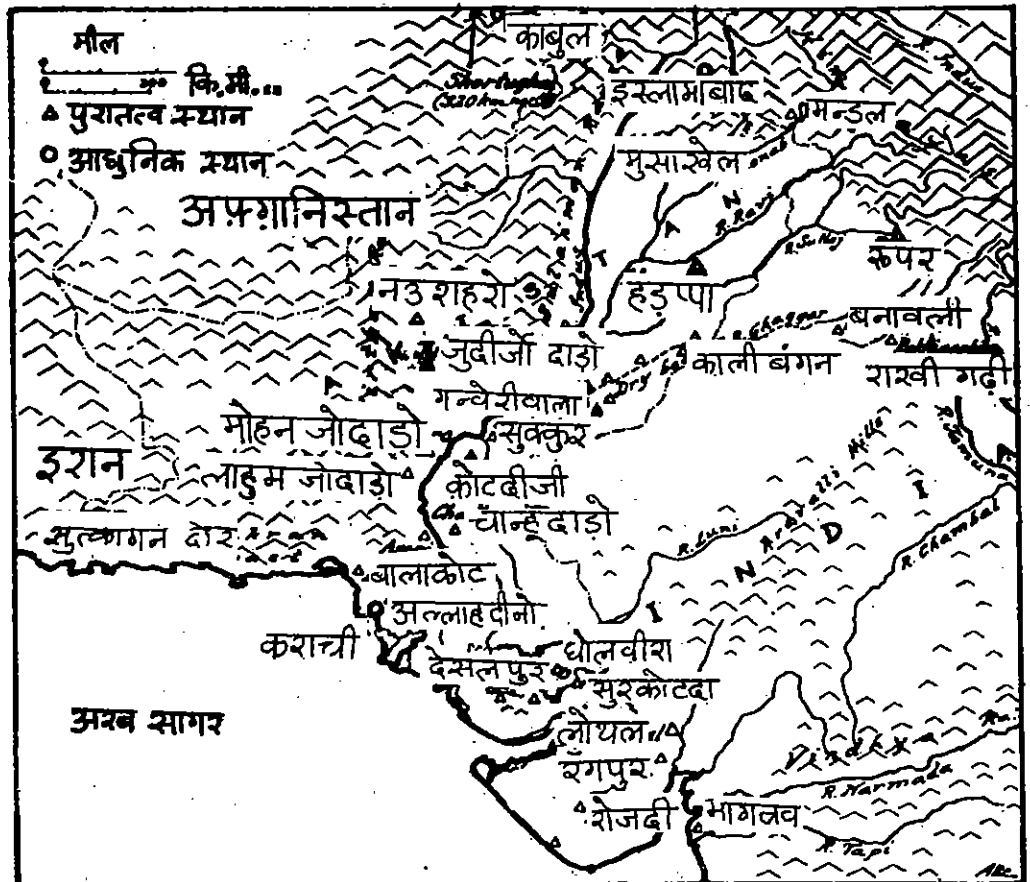
इकाई 5 में आप पढ़ चुके हैं कि किस तरह चरागाही घुमन्तु और खेतिहार समुदाय सिन्धु के मैदान में आकर बसे। किस तरह छोटे-छोटे नगर और कस्बे आबाद हुए जिन्होंने दूर-दूर के देश-प्रदेशों से सम्पर्क कायम किया। आगे चलकर इन्हीं खेतिहार समुदायों और छोटे-छोटे नगरों की नींव पर "हड़प्पा-सभ्यता" पनपी।

"हड़प्पा-सभ्यता" में बड़े-बड़े नगरों की मौजूदगी उसका एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसका अर्थ यह भी है कि उस समय कुशल कारीगर थे, दूर-दूर तक व्यापार होता था, समाज में धनी और निर्धन दोनों तरह के लोग रहते थे और राजा हुआ करते थे। ये विशेषताएं तो आम तौर पर सभी सभ्यताओं में पाई जाती हैं, किन्तु हड़प्पा-सभ्यता की अपनी कुछ अलग विशेषताएं भी थीं। हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष जिस भौगोलिक क्षेत्र में पाए गए हैं, उस क्षेत्र में रहने वाले समुदाय एक ही लिखित लिपि का प्रयोग कर रहे थे। हड़प्पा का कोई भी समुदाय, भले ही, उस समय वह राजस्थान में था या पंजाब में या सिंध में, नाप-तोल के लिए एक ही तरह के बाट और तराजू का इस्तेमाल करता था। वे तांबा और कांस से निर्मित जिन औजारों का प्रयोग करते थे; वे बनावट, शकल और आकार में एक जैसे होते थे। उनके द्वारा प्रयोग में लाई गई ईंटों का अनुपात 4:2:1 था। उनके कुछ नगरों में बनी इमारतों, किलों आदि की बनावट में भी एकरूपताएं थीं। उस पूरे भौगोलिक क्षेत्र में, जहां हड़प्पा-सभ्यता के नगर मौजूद थे, मोहरों (Seals), शंख से बनी चूड़ियों, लाल पत्थर के बने मनकों और सेलखड़ी से बने गोल चपटे मनकों की बनावट एक-सी होती थी। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों को अधिकतर गुलाबी रंग के मिट्टी के बर्तनों से पहचाना जाता है। इन मिट्टी के बर्तनों का ऊपरी भाग लाल रंग का होता था। मिट्टी के इन बर्तनों पर काले रंग से पेड़ों, पशु-पक्षियों के एक ही प्रकार के चित्र बने होते थे और ज्यामिती की आकृतियों को चित्रित किया जाता था। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में पाई जाने वाली ये एकरूपताएं ही हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य विशेषताएं थीं।

6.3 हड़प्पा-सभ्यता : स्रोत

हड़प्पा-सभ्यता के बारे में जानकारी हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नामक बस्तियों की खुदाई की रिपोर्टों से प्राप्त होती है। हड़प्पा में खुदाई 1921 में आरंभ हुई। तब से कई हड़प्पा की बस्तियों का पता लगाया जा चुका है और वहां खुदाई की गई है। सर जॉन मार्शल और सर मॉर्टिमर व्हीलर जैसे ख्याति-प्राप्त पुरातत्वविदों ने हड़प्पा की बस्तियों की खुदाई की है। इन विद्वानों ने वहां मिले भौतिक अवशेषों का गहराई से अध्ययन किया है तथा अतीत की कहानी को पुनः स्थापित किया है। चूंकि उन अवशेषों पर लिखे शब्दों को पढ़ा नहीं जा सकता, इसलिए हड़प्पा के लोगों द्वारा प्रयोग किए गए शिल्प-अवशेषों के अध्ययन के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अब तक 1000 से ज्यादा ऐसी बस्तियों की खोज की जा चुकी है जिनमें हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष मौजूद हैं। फिर भी, इनमें से अधिकांश बस्तियों की खुदाई नहीं की गई है। एक अनुमान के अनुसार, अब तक जितनी हड़प्पा की बस्तियों का पता लगाया गया है, उनमें से केवल तीन प्रतिशत की ही खुदाई की गई है। जिन स्थानों पर खुदाई का कार्य किया गया है, वहां भी अब तक कुल क्षेत्र के

पांचवें हिस्से के बराबर क्षेत्र में ही खुदाई की गई है। हाकड़ा घाटी में गंवेरीवाला और पंजाब में फुकस्लान नामक कुछ स्थान इतने बड़े हैं, जितना कि मोहनजोदड़ो लेकिन खुदाई करने वालों ने उन्हें अभी तक छुआ भी नहीं है। इसका कारण यह है कि खुदाई के कार्य में बहुत धन खर्च होता है और बहुत अधिक जन-शक्ति की जरूरत पड़ती है। फिलहाल, भारत या पाकिस्तान की सरकारों के पास इन खुदाई के कार्यों के लिए पर्याप्त धन नहीं है। फिर भी, एक बात साफ है और वह यह कि जब हड़प्पा-सभ्यता के बारे में सामान्य अनुमान लगाया जाता है तो बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए। कोई भी नई खोज या खुदाई की रिपोर्ट हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बारे में हमारे विचारों को बहुत हद तक बदल सकती है। उदाहरण के तौर पर, मार्टिंजर व्हीलर जैसे विद्वान का, जिन्होंने लगभग बीस वर्ष पहले लिखा था, यह विश्वास था कि सिन्धु घाटी में हड़प्पा सभ्यता पूरी तरह विकसित थी और उससे पहले की अवधि में जो लोग इन क्षेत्रों में रहते थे, उनके और हड़प्पा-सभ्यता के बीच कोई साम्य नहीं था। फिर भी, उपलब्ध सामग्री और नई उत्खनन रिपोर्टों का गहराई से विश्लेषण करने पर पुरातत्वविदों को यह मानना पड़ा है कि हड़प्पा-सभ्यता का विकास सिन्धु घाटी और उसके आस-पास ही हुआ था और उसे विकसित होने में काफी समय लगा था। पहले वाली इकाई में आप "प्रारंभिक हड़प्पा" काल में हुई उन्नति के बारे में पढ़ चुके हैं। यह पाया गया है कि "प्रारंभिक हड़प्पा" और हड़प्पा कालों के बीच आबादी और तकनीकी कौशल की निरंतरता थी। खेतिहर बस्तियों में विकास की प्रक्रिया जाहिर थी और बुनियादी शिल्प तथा विशिष्ट सिन्धु शैली संभवतः पहले की क्षेत्रीय परम्पराओं से प्रभावित थी। चूंकि हड़प्पा-सभ्यता का अध्ययन कई मानों में अभी तक अधूरा है, इसलिए यह प्राचीन इतिहास के छात्रों के लिए बहुत ही चुनौतीपूर्ण विषय बना हुआ है।



मानचित्र-2 हड़प्पा सभ्यता की बस्तियां

6.4 भौगोलिक विस्तार

हड़प्पा-सभ्यता का केन्द्र-बिन्दु रहा होगा। अधिकांश हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियां इसी क्षेत्र में हैं। इस क्षेत्र में कुछ खास किस्म की एकरूपताएं पाई जाती हैं। इस पूरे क्षेत्र की भूमि एकदम समतल और सपाट है, जो यह इंगित करती है कि यहाँ जीवन-यापन के तौर-तरीके एक जैसे थे। हिमालय से पिघली बर्फ और मानसून की वर्षा से यहाँ आने वाली बाढ़ के स्वरूप का पता लगता है। इससे खेती और चरागाही के लिए एक जैसी ही संभावनाएं पैदा हुई होंगी। सिन्धु व्यवस्था के पश्चिम में काछी मैदान ईरानी सीमा-भूमि के अंतवर्ती क्षेत्र में स्थित है। यह एक समतल कछारी हिमानी घात है जो बोलन दर्रे और मंचार झील के निचले भाग में स्थित है।

यह बंजर और शुष्क प्रदेश है, हरियाली कहीं-कहीं बाह्य इलाके में नजर आती है। नौशारो, जुदैरजोदड़ो और अली-मुराद जैसे स्थान इसी क्षेत्र में स्थित हैं। मकरन तट पर सुत्का-कोह और सुत्काजिन-दोर बस्तियां बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र के सबसे अधिक शुष्क भाग हैं। वे हड़प्पा-सभ्यता की पश्चिमी-सभ्यता सीमाएं हैं। उत्तरपूर्वी अफगानिस्तान में शार्तुघई में जो हड़प्पा की बस्तियां पाई गई हैं, वे हड़प्पा-सभ्यता की अलग-थलग बस्तियां रही होंगी।

हड़प्पा-सभ्यता की पूर्वी सीमाओं पर बड़गांव, मनपुर और आलमगीरपुर जैसी बस्तियां थीं। यह इलाका अब उत्तर प्रदेश में है। गंगा-यमुना दोआब में स्थित इन स्थानों में जीवन-निर्वाह की व्यवस्था, उनकी भौगोलिक स्थिति के अनुकूल थी। इस क्षेत्र में वर्षा अधिक होती थी और यहाँ घने जंगल थे। यह इलाका चरागाही और खानाबदोशी के क्षेत्र से बाहर है और गेहूँ उत्पादक क्षेत्र के अंतर्गत आता है। अतः इसमें बसने की समस्याएं दूसरी तरह की थीं। सम्भवतः इसीलिए कुछ विद्वानों का मानना है कि इस क्षेत्र की अपनी स्वतंत्र संस्कृति थी, जिसे हड़प्पा-सभ्यता से प्रोत्साहन मिलता था। जम्मू में मांडा और पंजाब में रोपड़ वे स्थान हैं, जो भारत में हड़प्पा-सभ्यता के उत्तरी छोर कहलाते हैं। महाराष्ट्र में दैमाबाद और गुजरात में भगत्रव की बस्तियां हड़प्पा की दक्षिणी सीमाएं रहीं होंगी।

गुजरात में भी बसावट का स्वरूप एक जैसा नहीं था। वहां कच्छ और काठियाबाद में छोटे-छोटे कटे हुए पठार थे और असमतल भूमि थी। दूसरी ओर, इस क्षेत्र में काम्बे की खाड़ी और कच्छ के रण से जुड़ा एक बहुत विशाल समुद्रतट था। गुजरात में हड़प्पा के लोग चावल और ज्वार-बाजरे का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सभ्यता बहुत बड़े क्षेत्र में फैली हुई थी। इसका क्षेत्र मेसोपोटामिया और मिश्र की समसामयिक सभ्यताओं से अधिक विस्तृत था। मेसोपोटामिया में बस्तियां नदीय मैदानों के पार घने समूहों में फैली हुई थीं। फिर भी, घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र में बसी बस्तियों को छोड़कर हड़प्पा-सभ्यता की अन्य बस्तियां बहुत कम घनी थीं और बिखरी हुई थीं। राजस्थान और गुजरात में हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के बीच सैकड़ों किलोमीटर तक फैला रेगिस्तान और दलदल भरा इलाका था। शार्तुघई का सबसे निकट का हड़प्पा पड़ोसी 300 कि. मी. दूर था। इन खाली स्थानों में आदिम जातियां रहती रही होंगी जो उस समय भी शिकार-संग्रहण या चरागाही-खानाबदोशी द्वारा अपना भरण-पोषण कर रहीं थी। इसी तरह, इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से हमें हड़प्पा-सभ्यता के किसी नगर में रहने वाली जनसंख्या के आकार का पता चलता है। विद्वानों का मत है कि हड़प्पा-सभ्यता के सबसे बड़े नगर मोहनजोदड़ो की जनसंख्या लगभग 35,000 थी। आधुनिक भारत के सबसे छोटे शहरों की भी आबादी बड़े से बड़े हड़प्पा-सभ्यता के शहरों की आबादी से अधिक होगी। यह याद रखने योग्य बात है कि हड़प्पा काल में परिवहन का सबसे तेज रफ्तार का माध्यम बैलगाड़ी हुआ करती थी, लोहे से लोग अनजान थे और हल के इस्तेमाल को क्रांतिकारी खोज समझा जाता था। ऐसी पुरातन तकनीक का सहारा लेकर जो सभ्यता दूर-दूर तक बिखरे क्षेत्रों को सामाजिक-आर्थिक संबंध के जटिल जाल में पिरोने में सफल रही, उसके लिए उन दिनों यह एक चमत्कारिक उपलब्धि थी।

6.5 महत्वपूर्ण केन्द्र

अब सवाल यह उठता है कि हड़प्पा के लोगों ने अफगानिस्तान में शार्तुधई या गुजरात में सुरकोटड़ा जैसे दूरवर्ती स्थानों को अपने कब्जे में लाने की कोशिश क्यों की? इस सवाल का जवाब हमें मिल सकता है यदि हम कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रों की भौगोलिक स्थिति और विशेषताओं से संबंधित विवरण की जांच करें।

6.5.1 हड़प्पा

हड़प्पा पहली बस्ती थी, जहाँ खुदाई की गई। सन् 1920 से आरंभ करके आगे के वर्षों में दयाराम साहनी, एम. एस. वेंट्स और मॉर्टिमर व्हीलर जैसे पुरातत्वविदों ने हड़प्पा में खुदाई का कार्य किया। यह बस्ती पश्चिमी पंजाब में रावी के तट पर स्थित है। इसके आकार और इधर पाई गई वस्तुओं की विविधता की दृष्टि से यह बस्ती-हड़प्पा-सभ्यता का प्रमुख नगर मानी जाती है। इस नगर के अवशेष लगभग 3 मील के घेरे में फैले हुए हैं। लेकिन हैरानी की बात यह है कि हड़प्पा के इधर-उधर या आस-पास बस्तियों का कोई नामो-निशान नहीं है। हड़प्पा में जनसंख्या का एक बड़ा भाग खाद्य उत्पादन से भिन्न क्रिया कलापों में लगा हुआ था। ये क्रियाकलाप प्रशासन, व्यापार, कारीगरी या धर्म से संबंधित रहे होंगे। चूंकि ये लोग अपने लिए अन्न का उत्पादन नहीं कर रहे थे, इसलिए किसी दूसरे को उनके लिए यह कार्य करना पड़ता था। उत्पादकता कम थी और परिवहन के साधन अविकसित थे। अतः खाद्य का उत्पादन न करने वाले इन लोगों के भरण-पोषण के लिए खाद्य उत्पादक क्षेत्रों से खाद्यान्न प्राप्त करने और ढोने के लिए बहुत लोगों को जुटाना पड़ता होगा। किन्तु ये क्षेत्र नगर से बहुत दूर नहीं रहे होंगे क्योंकि अनाज ढोने का काम बैलगाड़ियों और नावों द्वारा किया जाता था। कुछ विद्वानों का यह कहना है कि आस-पड़ोस के गांवों के लोग नदियों में बाढ़ वाले टेढ़े-मेढ़े मैदानों में जगह बदल-बदल कर खेती करते रहे होंगे। हड़प्पा की भौगोलिक स्थिति का सबसे अलग-थलग होने का कारण यही बताया जा सकता है कि यह कुछ ऐसे महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों के मध्य स्थित था, जो आज तक प्रयोग में है। इन मार्गों ने हड़प्पा को मध्य एशिया, अफगानिस्तान और जम्मू से जोड़ा। हड़प्पा की स्थिति इसलिए उत्कृष्ट मानी जाती थी क्योंकि यहां दूर-दूर से आकर्षक वस्तुएं आई जाती थीं।

6.5.2 मोहनजोदड़ो

सेन्धु नदी के तट पर बसे सिंध प्रांत के लरकाना जिले में स्थित मोहनजोदड़ो को हड़प्पा-सभ्यता की सबसे बड़ी बस्ती माना जाता है। इस सभ्यता की नगर-योजना, गृह-निर्माण, मुद्रा, मुहरों आदि के बारे में अधिकांश जानकारी मोहनजोदड़ो से प्राप्त होती है। इस जगह खुदाई का काम 1922 में, आर. डी. बेनर्जी और सर जॉन मार्शल की देख-रेख में शुरू किया गया। बाद में मैके और जार्ज डेल्स ने भी खुदाई की थोड़ी-थोड़ी खुदाई का काम और नक्शा तैयार करने का काम अस्सी के दशक तक चलता रहा।

खुदाई से पता चलता है कि लोग वहाँ बड़े लम्बे समय तक रहे और एक ही जगह पर मकानों का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करते रहे। इसी का यह परिणाम है कि इमारतों के अवशेषों और मलबे के ढेर की ऊंचाई लगभग पचहत्तर फीट है। मोहनजोदड़ो में बसावट के समय से बराबर बाढ़ आती रही। बाढ़ की वजह से वहाँ जलोढ़ मिट्टी इकट्ठी हो गई। सदियों से बराबर जमा होती गई गाद के कारण मोहनजोदड़ो के आस-पास की भूमि की सतह लगभग तीस फुट ऊंची हो गई। भू-जल तालिका का स्तर भी उसके अनुरूप बढ़ता चला गया है। अतः मोहनजोदड़ो में सबसे पुरानी इमारतें आजकल के मैदानी स्तर से लगभग 39 फुट नीचे पाई गई हैं। जल-तालिका में चढ़ाव के कारण पुरातत्व विशेषज्ञ इन स्तरों की खुदाई नहीं कर पाए हैं।

6.5.3 कालीबंगन

कालीबंगन की बस्ती राजस्थान में घग्घर नदी के सूखे तल के आस-पास स्थित है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस क्षेत्र में हड़प्पा की बस्तियों की संख्या सबसे अधिक थी।

कालीबंगन की खुदाई 1960 के दशक में बी. के. थापर के निर्देशन में की गई थी। इस स्थान से पूर्व-हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की मौजूदगी के प्रमाण मिले हैं। इससे पता चलता है कि पूर्व-हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बीच धार्मिक विचारों में काफी अन्तर था। कुछ विद्वानों का मत है कि कालीबंगन हड़प्पा-सभ्यता के "पूर्वी अधिकार क्षेत्र" का हिस्सा रहा होगा। आज के हरियाणा, पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में हड़प्पा युग के बाड़ा, सीसवाल और आलमगीरपुर जैसी बस्तियाँ पाई गई हैं। यहां हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तनों के साथ-साथ कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले हैं जिनसे पता चलता है कि मिट्टी के बर्तन बनाने में इन बस्तियों की अपनी अलग परम्पराएं भी मौजूद थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सांस्कृतिक क्षेत्र और पूर्वी प्रान्तों के बीच कालीबंगन की स्थिति एक मध्यस्थ की रही होगी।

6.5.4 लोथल

गुजरात में रंगपुर, सुरकोटडा और लोथल जैसी बस्तियाँ पाई गई हैं। लोथल काम्बे की खाड़ी के तट से लगे सपाट क्षेत्र में स्थित है। ऐसा लगता है कि यह स्थान समकालीन पश्चिम एशियाई समाजों के साथ समुद्री व्यापार के लिए सीमा-चौकी के रूप में महत्वपूर्ण रहा होगा। इसके उत्खनक, एस.आर. राव ने यहां एक जहाजी मालघाट (Dockyard) की खोज का दावा किया है।



चित्र-4 जहाजी मालघाट (लोथल)

6.5.5 सुत्काजिन-दोर

सुत्काजिन-दोर पाकिस्तान-ईरान सीमा से लगे मकरान समुद्रतट के समीप स्थित है। आजकल यह बस्ती सूखे बंजर मैदानों के बीच स्थित है। इस शहर में एक किला था जिसके चारों ओर रक्षा के लिए पत्थर की दीवार थी। बंजर भूमि में इसके स्थित होने का कारण यही हो सकता है कि यहां एक बन्दरगाह थी जिसकी व्यापार के लिए आवश्यकता थी।

बाध प्रश्न 1

1 हड़प्पा-सभ्यता के महत्वपूर्ण केन्द्रों की भौगोलिक स्थिति का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2 निम्नांकित स्थानों को उनकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति से मिलाइए।
- | | |
|-----------------|-----------------------------------|
| 1 हड़प्पा | क) राजस्थान |
| 2 कालीबंगन | ख) सिंध (पाकिस्तान) |
| 3 मोहनजोदड़ो | ग) मकरान तट (पाकिस्तान-ईरान सीमा) |
| 4 सुत्काजिन-दोर | घ) पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान) |

3 निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएं।

- i) हड़प्पा की सभ्यता का सबसे बड़ा केन्द्र हड़प्पा है जो पश्चिमी पंजाब में स्थित है। ()
- ii) मोहनजोदड़ो हड़प्पा की सभ्यता की वह बस्ती है, जहां सबसे पहले खुदाई की गई। ()
- iii) हड़प्पा में खुदाई का कार्य सबसे पहले आर.डी. बेनर्जी और जॉन मार्शल ने किया। ()
- iv) विद्वानों का मत है कि हड़प्पा, घग्घर और मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की सभ्यता के आधार-बिन्दु हैं। ()

6.6 भौतिक विशेषताएं

इस भाग में हड़प्पा-सभ्यता की भौतिक विशेषताओं पर चर्चा की जाएगी इसमें हम हड़प्पा-सभ्यता की नगर-योजना, मिट्टी के बर्तन, औजार और उपकरण, कला एवं दस्तकारी, लिपि और जीविका के स्वरूप पर विचार किया जाएगा।

6.6.1 नगर-योजना

मॉर्टिमर व्हीलर और स्टूअर्ट पिग्ट जैसे पुरातत्वविदों का मत था कि हड़प्पा-सभ्यता के नगरों की संरचना और बनावट में असाधारण प्रकार की एकरूपता थी। प्रत्येक नगर दो भागों में बटा होता था। एक भाग में ऊँचा दुर्ग होता था जिसमें शासक और राजघराने के लोग रहते थे। नगर के दूसरे भाग में शासित और गरीब लोग रहते थे। योजना की इस अभिन्नता का अर्थ यह भी है कि यदि आप हड़प्पा की सड़कों पर घूमने निकलें, तो आप पाएंगे कि वहाँ के घर, मन्दिर, खलिहान और गलियां बिल्कुल वैसी ही हैं जैसी मोहनजोदड़ो की या हड़प्पा-सभ्यता के अन्य किसी भी नगर की। संकल्पना की अभिन्नता का यह विचार उन विदेशी समुदायों से लिया गया था जिन्होंने अकस्मात हमला करके सिन्धु घाटी को जीत लिया और नए नगरों का निर्माण किया। इन नगरों की योजना ऐसी की गई थी जिसमें कि वहाँ के मूल निवासियों को शासकवर्ग से अलग रखा जा सके। इस तरह, शासकों ने ऐसे किलों का निर्माण किया जिनमें वे आम जनता से अलग-थलग, शान से रह सकें। आजकल विद्वान अब इन विचारों को अस्वीकार कर रहे हैं कि हड़प्पा सभ्यता के नगरों का निर्माण अकस्मात हुआ और उनकी योजना में एकरूपता थी। हड़प्पा-सभ्यता के शहर नदियों के बाढ़ वाले मैदानों, रेगिस्तान के किनारों पर या समुद्री तट पर स्थित थे। इसका मतलब है कि अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को तरह-तरह की प्राकृतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जब उन्होंने स्वयं को वातावरण के अनुकूल ढालना सीखा तो उन्हें अपनी नगर-योजना और जीवन शैली में भी विविधता लाने पर विवश होना पड़ा। बहुत सी बड़ी और महत्वपूर्ण इमारतें निचले नगर में स्थित थीं। अब कुछ महत्वपूर्ण बस्तियों की योजना पर फिर से विचार किया जाएगा।

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन बस्तियों की नगर-योजना में कुछ समानताएं हैं। ये शहर दो भागों में विभाजित थे। इन शहरों के पश्चिम में किला बना होता था और बस्ती के पूर्वी सिरे पर नीचे एक नगर बसा होता था। यह दुर्ग या किला ऊँचे चबूतरे पर, कच्ची ईंटों से बनाया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग में बड़े-बड़े भवन होते थे जो संभवतः प्रशासनिक या धार्मिक केन्द्रों के रूप में काम करते थे। निचले शहर में रिहायशी क्षेत्र होते थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में किलों के चारों ओर ईंटों की दीवार होती थी। कालीबंगन में, दुर्ग और निचले शहर दोनों के चारों ओर दीवार थी। निचले शहर में सड़कें उत्तर से

दक्षिण की ओर जाती थीं और समकोण बनाती थीं। स्पष्टतः सड़कों और घरों की पकितबद्धता से पता चलता है कि नगर-योजना के बारे में वे लोग कितने सचेत थे। फिर भी, उन दिनों नगर आयोजकों के पास साधन बहुत सीमित थे। यह पूर्वधारणा मोहनजोदड़ो और कालीबंगन से मिले प्रमाणों पर आधारित है, जहां गलियाँ और सड़कें अलग-अलग ब्लॉकों में अलग-अलग तरह की हैं और मोहनजोदड़ो के एक भाग मोनार क्षेत्र में सड़कों तथा इमारतों की पकितबद्धता शेष क्षेत्रों से बिल्कुल भिन्न है। मोहनजोदड़ो का निर्माण एक सी सपाट इकाइयों में नहीं किया गया था। वास्तव में, इसका निर्माण अलग-अलग समय में हुआ। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में भवनों और इमारतों के लिए पक्की ईंटों का इस्तेमाल किया गया। कालीबंगन में कच्ची ईंटें प्रयोग की गईं। सिंध में कोट-दीजी और अमरी जैसी बस्तियों में नगर की किलेबंदी नहीं थी। गुजरात में स्थित लोथल का नक्शा भी बिल्कुल अलग सा है। यह बस्ती आयताकार थी जिसके चारों तरफ ईंट की दीवार का घेरा था। इसका कोई आन्तरिक विभाजन नहीं था, अर्थात् इसे दुर्ग और निचले शहर में विभाजित नहीं किया गया था। शहर के पूर्वी सिरे में ईंटों से निर्मित कुण्ड सा पाया गया, जिसे इसकी खुदाई करने वालों ने बन्दरगाह के रूप में पहचाना है। कच्छ में सुरकोटड़ा नामक बस्ती दो बराबर के हिस्सों में बंटी हुई थी और यहां के निर्माण में मूलतः कच्ची मिट्टी की ईंटों और मिट्टी के ढेलों का इस्तेमाल किया गया था।



चित्र-5 कच्ची ईंट की दीवार

हड़प्पा-सभ्यता के निवासी पकी हुई और बिना पकी ईंटों का इस्तेमाल कर रहे थे। ईंटों का आकार एक जैसा होता था। इससे पता चलता है कि हर मकान मालिक अपने मकान के लिए ईंटें स्वयं नहीं बनाता था, बल्कि ईंटें बनाने का काम बड़े पैमाने पर होता था। इसी तरह, मोहनजोदड़ो जैसे शहरों में सफाई की व्यवस्था उच्चकोटि की थी। घरों से बहने वाला बेकार पानी नालियों से होकर बड़े नालों में चला जाता था जो सड़कों के किनारे एक सीध में होते थे। इस बात से फिर यह संकेत मिलता है कि उस जमाने में भी कोई ऐसी नागरिक प्रशासन व्यवस्था रही होगी जो शहर के सभी लोगों के हित में सफाई संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए निर्णय लेती थी।

कुछ विशाल इमारतें

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन में, किले के क्षेत्रों में बड़ी विशाल इमारतें थीं जिनका प्रयोग विशेष कार्यों के लिए किया जाता होगा। यह तथ्य इस बात से स्पष्ट होता है कि ये

इमारतें कच्ची ईंटों से बने ऊँचे-ऊँचे चबूतरों पर खड़ी की गई थीं। इनमें से एक इमारत, मोहनजोदड़ो का प्रसिद्ध "विशाल स्नान कुण्ड" है। ईंटों से बने इस कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई 12 मी. × 7 मी. और गहराई 3 मी. है। इस तक पहुँचने के लिए दोनों तरफ सीढ़ियाँ हैं। कुण्ड के तल को ऊपर से जलरोधी बनाया गया था। इसके लिए पानी पास ही एक कक्ष में बने बड़े कुएँ से आता था। पानी निकालने के लिए भी एक ढलवाँ नाली थी। कुण्ड के चारों तरफ मण्डप और कमरे बने हुए थे। विद्वानों का मत है कि इस स्थान का उपयोग राजाओं, या पुजारियों के धार्मिक स्नान के लिए किया जाता था।



चित्र-6 विशाल स्नान कुण्ड (मोहनजोदड़ो)

मोहनजोदड़ो के किले के टीले में पाई गई एक और महत्वपूर्ण इमारत है, अन्नभण्डार। इसमें ईंटों से निर्मित सत्ताईस खण्ड (Blocks) हैं जिनमें प्रकाश के लिए आड़े-तिरछे रोशनदान बने हुए हैं। अन्नभण्डार के नीचे ईंटों से निर्मित खाँचे थे जिनसे अनाज को भण्डारण के लिए ऊपर पहुँचाया जाता था। हालांकि कुछ विद्वानों ने इस इमारत को अन्न-भण्डारण का स्थान मानने के बारे में संदेह व्यक्त किया है किन्तु इतना निश्चित है कि इस इमारत का निर्माण किसी खास कार्य के लिए किया गया होगा।

विशाल स्नान-कुण्ड के एक तरफ एक लम्बी इमारत (230 × 78 फुट) है जिसके बारे में अनुमान है कि वह किसी बड़े उच्चाधिकारी का निवास स्थान रहा होगा। इसमें 33 वर्ग फुट का खुला प्रांगण है और उस पर तीन बरांडे खलते हैं। महत्वपूर्ण भवनों में एक सभा-कक्ष भी था। इस सभा-कक्ष में पाँच-पाँच ईंटों की ऊँचाई की चार चबूतरों की पंक्तियाँ थीं। यह ऊँचे चबूतरे ईंटों के बने हुए थे और उन पर लकड़ी के खंभे खड़े किए गए थे। इसके पश्चिम की तरफ कमरों की एक कतार में एक पुरुष की प्रतिमा बैठी हुई मुद्रा में पाई गई है।

हड़प्पा की प्रसिद्ध इमारतों में से एक अन्नभण्डार है। इसमें एक क्रम में ईंटों के चबूतरे (Platform) बने हुए थे जो अन्नभण्डारों के लिए नींव का काम देते थे। इन पर बने अन्नभण्डारों की दो कतारें थी और प्रत्येक कतार में छः अन्नभण्डार थे। अन्नभण्डार के दक्षिण में ईंटों के गोल चबूतरों की कई कतारें थीं। फर्श की दरारों में पाया गया गेहूँ और जौ का भूसा यह सिद्ध करता है कि इन गोल चबूतरों का इस्तेमाल अनाज गाहने (अनाज से भूसी अलग करने) के लिए किया जाता था।

कालीबंगन नगर मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की तुलना में छोटा था। यहाँ की गई खुदाई में सबसे महत्वपूर्ण खोज है अग्नि-कुण्डों का पाया जाना। यहाँ ईंटों के बने बहुत से चबूतरे पाए गए हैं। इनमें से एक चबूतरे पर एक पंक्ति में बने सात "अग्नि-कुण्ड" और एक गड्ढे में पशुओं की हड्डियाँ तथा मृगश्रंग पाए गए हैं।

औसत दर्जे के नागरिक निचले शहर में भयन-समूहों में रहा करते थे। यहां भी घरों के आकार-प्रकार में विविधताएं हैं। एक कोठरी वाले मकान शायद दासों के रहने के लिए थे। हड़प्पा में अन्नभण्डार के नजदीक भी इसी तरह के मकान पाए गए हैं। दूसरे मकानों में आंगन और बारह तक कमरे होते थे और अधिक बड़े मकानों में कुएं, शौचालय एवं गुसलखाने भी थे। इन मकानों का नक्शा लगभग एक जैसा था—एक चौरस प्रांगण और चारों तरफ कई कमरे। घरों में प्रवेश के लिए संकीर्ण गलियों से जाना पड़ता था। सड़क की तरफ कोई खिड़की नहीं होती थी। इसका मतलब यह हुआ कि मकान की ईंट की दीवारों का मुंह सड़क की ओर होता था।

हड़प्पा-सभ्यता के मकानों और नगरों के विवरण से पता चलता है कि ऐसे लोग भी थे जिनके पास बड़े-बड़े मकान थे। उनमें से कुछ तो विशिष्ट तरणताल में नहाते थे। अन्य लोग बैरकों (Barracks) में रहते थे। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े मकानों में रहने वाले लोग धनी वर्ग के थे जबकि बैरकों (Barracks) में रहने वाले लोग मजदूर और दास वर्ग के रहे होंगे।

निचले शहर के मकानों में काफी बड़ी संख्या में कर्मशालाएं भी थीं। कुम्हारों के भट्टों, रंगसाजों के हौजों और धातु का काम करने वालों, सीपी-शंख के आभूषण बनाने वालों और मनके बनाने वालों की दुकानों की पहचान कर ली गई है।

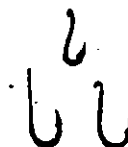
6.6.2 मिट्टी के बर्तन

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाए गए अवशेषों में मिट्टी के बर्तन विशेष स्थान रखते हैं। इनमें बलूचिस्तान की मृत्तिका-शिल्प की परम्पराओं और सिन्धु व्यवस्था के पूर्व की संस्कृतियों का मेल हुआ जान पड़ता है। हड़प्पा की सभ्यता के मिट्टी के बर्तनों में से अधिकांश बिल्कुल सादे हैं, लेकिन काफी बर्तनों पर लाल पट्टी के साथ-साथ काले रंग से की गई चित्रकारी भी पाई गई है।

रंग से की गई चित्रकारी में विविध मोटाई की सपाट लाइनें, पत्तियों के नमूने, तराजू, चारखाने, जाली का काम, ताड़ और पीपल वृक्ष शामिल हैं। पक्षियों, मछलियों और पशुओं को भी दर्शाया गया है। इन बर्तनों की आकृतियों में खास हैं पैडेस्टल (Pedestal), बर्तन, थाली, पानपात्र, चारों और छिद्रित बेलनाकार बर्तन और विभिन्न तरह के क्रोटोरे-कटोरियाँ। मिट्टी के बर्तनों पर बनी आकृतियों और चित्रकारी में एकरूपता के कारण स्पष्ट करना या बताना कठिन है। इस एकरूपता का सामान्यतः स्पष्टीकरण यही है कि मिट्टी के ये बर्तन स्थानीय कुम्हारों द्वारा बनाए जाते थे। किन्तु, गुजरात और राजस्थान जैसे क्षेत्रों में अन्य अनेक तरह के बर्तन भी बनाए जा रहे थे। मिट्टी के कुछ बर्तनों पर मुद्रा के निशान पाए जाने से संकेत मिलता है कि कुछ खास किस्म के बर्तनों का व्यापार भी किया जाता था। फिर भी, अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि इतने विशाल क्षेत्र में मिट्टी के बर्तनों की परम्परा में एकरूपता कैसे संभव हुई।

6.6.3 औजार और उपकरण

हड़प्पा-सभ्यता के निवासियों द्वारा इस्तेमाल किए गए औजारों और उपकरणों के आकार-प्रकार तथा उत्पादन की तकनीक में भी आश्चर्यजनक एकरूपता दिखाई पड़ती है। वे तांबा, कांसा और पत्थर के बने औजारों का प्रयोग करते थे उनके मूल औजार तांबे तथा कांसे के थे। इनमें चपटी कुल्हाड़ी, छैनी, चाकू हरावल और बाणाग्र मुख्य रूप से पाए जाते

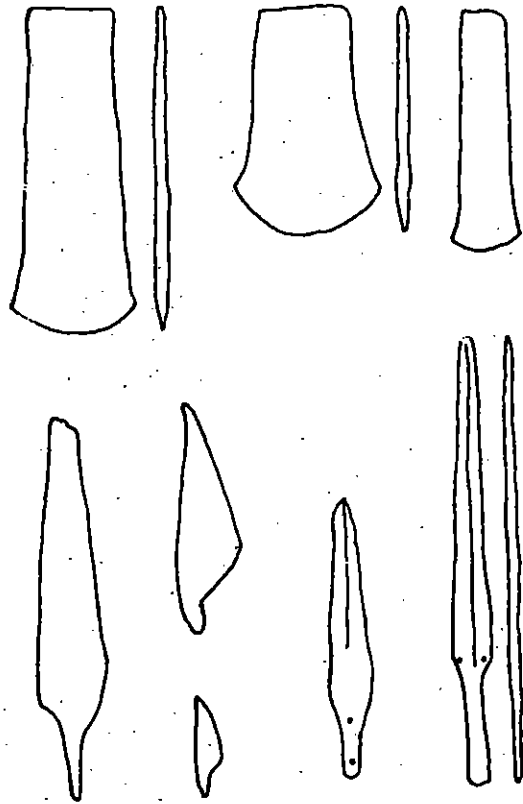


चित्र-7 मछली पकड़ने के लिए कांटा

हैं। सभ्यता के आगे के चरणों में वे छुरे, चाकू और चपटे तथा तीखी नोक वाले औजारों का भी प्रयोग करने लगे थे। वे कांसे और तांबे की ढलाई की तकनीक जानते थे। पत्थर के औजारों का भी आम इस्तेमाल होता ही था।



चित्र-8 पत्थर के औजार (मोहनजोदड़ो)



चित्र-9 हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा कम में लाए जाने वाले तांबे और कांसे के औजार।

सिंध में सुक्कर जैसे उद्योग क्षेत्रों में इन औजारों का निर्माण बड़े पैमाने पर किया जाता था और फिर ये औजार विभिन्न शहरी केन्द्रों को भेजे जाते थे। औजारों के आकार-प्रकार में एकरूपता का यही कारण था। "प्रारम्भिक-हड़प्पा" काल में औजार बनने की

परम्पराओं में विविधता थी, लेकिन बाद में हुई प्रगति के युग में हड़प्पा-सभ्यता के निवासियों ने लम्बे, पैनी धार वाले, सुव्यवस्थित औजारों का ही निर्माण किया जो उनकी उच्चस्तरीय क्षमता और विशिष्टता का संकेत देते हैं। पर, इन औजारों को सुन्दर बनाने और उनमें नवीनता लाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

6.6.4 कला और शिल्प

कलाकृतियों से यह जानकारी मिलती है कि समाज किस तरह अपने वातावरण, अपने परिवेश और परिस्थितियों से जुड़ता है या जुड़ने की कोशिश करता है। कलाकृतियां हमें यह भी बताती हैं कि समाज, प्रकृति, मानव और ईश्वर के प्रति क्या विचार रखता है। पूर्व आधुनिक समाजों के अध्ययन में कला और शिल्प को अलग करना कठिन काम है। अतः उनका एक साथ अध्ययन किया जाएगा।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में पाई गई हड़प्पा-सभ्यता की संभवतः सबसे प्रसिद्ध कलाकृति है नृत्य की मुद्रा में नग्न स्त्री की एक कांस्यमूर्ति। सिर पीछे की ओर झुकाए, आंखें झुकी हुई, दाईं भुजा कूल्हे पर टिकाए और बाईं भुजा नीचे लटकी हुई दर्शाने वाली यह मूर्ति नृत्य की स्थिर मुद्रा में है। स्त्री प्रतिमा ने बहुत सारी चूड़ियां पहनी हुई हैं और उसके बालों को सुन्दर वेणी बनी हुई है। इस मूर्ति को हड़प्पा-कला का अद्वितीय नमूना माना जाता है। जैसे और भेड़ की छोटी-छोटी कांस्य प्रतिमाओं में पशुओं की मुद्राओं को सुन्दर ढंग से पेश किया गया है। खिलौनों के रूप में कांसे की दो गाड़ियां भी बहुत आकर्षक एवं प्रसिद्ध हैं। हालांकि इनमें से एक हड़प्पा में पाई गई थी और दूसरी 650 कि. मी. दूर चान्हू-दारों में—फिर भी इन दोनों की बनावट एक जैसी है।



चित्र-10. नृत्य की मुद्रा में स्त्री की एक कांस्यमूर्ति (मोहनजोदड़ो)

मोहनजोदड़ो में पाई गई दाढ़ी वाले सिर की पस्तर प्रतिमा भी बड़ी प्रसिद्ध कलाकृति है। चेहरे पर दाढ़ी है परन्तु मूँछ नहीं हैं। अर्ध-मुदित आंखें शायद विचारमग्न मुद्रा को दर्शाती हैं। बाएं कंधे के दोनों ओर एक आवरण पड़ा है जिस पर तिपतिया पैटर्न की सुन्दर नक्काशी की हुई है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह पुजारी की अर्ध-प्रतिमा है।

हड़प्पा की खुदाई में पाई गई दो पुरुषों की अर्ध मूर्तियों के बारे में यह भी कहा जाता है कि वे बाद के युग की रही होंगी। प्रतिमा के मांसल भागों को इस खूबसूरती और वास्तविकता से तराशा गया है कि देख कर आश्चर्य होता है। फिर भी, ऐसा लगता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग अपनी कला-कृतियों के लिए प्रस्तर या कांसे का इस्तेमाल बहुत अधिक नहीं करते थे। इस तरह की कलाकृतियां बहुत कम संख्या में पाई गई हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों से पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियां बड़ी संख्या में पाई गई हैं। इनका प्रयोग खिलौनों या पूजा-उपासना के लिए किया जाता था। ये लघु मूर्तियां विभिन्न तरह के पक्षियों, बन्दरों, कुत्तों, भेड़ों, मवेशियों और कूबड़दार तथा कूबड़रहित सांडों को हैं। स्त्री और पुरुषों की छोटी-छोटी मूर्तियां भी बड़ी तादाद में मिली हैं। पक्की मिट्टी (Terracotta) की बनी तरह-तरह की गाड़ियों-ठेलों के नमूने भी मूर्ति कला में असाधारण सजीवता को प्रदर्शित करते हैं। इन नमूनों को देखकर लगता है कि आधुनिक काल में इस्तेमाल की गई बैलगाड़ियों का स्वरूप हड़प्पा-युग की बैलगाड़ियों का ही परिवर्तित रूप है।



चित्र-11 बाड़ी वाले सिर की प्रतिमा (मोहनजोदड़ो)

हड़प्पा-सभ्यता के लोग गोमेद, फीरोज़ा, लाल-पत्थर और सेलखड़ी जैसे बहुमूल्य एवं अर्थ-कीमती पत्थरों से बने अति सुन्दर मनकों का प्रयोग करते थे। इन मनकों को बनाए जाने की प्रक्रिया चान्ह-दारों में एक कारखाने के पाए जाने से स्पष्ट हो जाती है। इस प्रक्रिया में पत्थर को आरी से काट कर पहले तो आयताकार छड़ में बदल दिया जाता था, फिर उसके बेलनाकार टुकड़े करके पॉलिश से चमकाया जाता था। अन्त में, चर्ट बरमे या कांसे के नलिकाकार बरमे से उनमें छेद किया जाता था। सोने और चांदी के मनके भी पाए गए हैं। मनके बनाने के लिए सबसे अधिक सेलखड़ी का प्रयोग किया जाता था।

तिर्पतिया पैटर्न के बेलनाकार मनकों का संबंध विशेष रूप से हड़प्पा-सभ्यता से जोड़ा जाता है। लाल पत्थर के मनके भी बहुत संख्या में पाए गए हैं। मोहनजोदड़ो में गहनों का ढेर भी पाया गया है। जिसमें सोने के मनके, फीते और अन्य आभूषण शामिल हैं। चांदी की थालियां भी पाई गई हैं।

हड़प्पा की बस्तियों से 2000 से अधिक मुहरें (Seals) पाई गई हैं। इन्हें प्राचीन शिल्पकारिता के क्षेत्र में सिन्धु घाटी का उत्कृष्ट योगदान माना जाता है। ये आभ तौर पर चौकोर होती थीं और सेलखड़ी की बनी होनी थीं लेकिन कुछ गोल मुहरें भी पाई गई हैं। मुहरों पर अर्थ-चित्रलिपि में संकेत चिन्हों से सम्बद्ध अनेक तरह के जानवरों के आकार बने होते थे। कुछ मुहरों पर केवल लिपि उत्कीर्ण है जबकि कुछ अन्य पर मानव और अर्ध-मानव आकृतियां बनी हुई हैं। कुछ मुहरों पर ज्यामिति से संबंधित विभिन्न नमूने बने हुए हैं। दर्शाई गई पशु आकृतियों में भारतीय हाथी, गवल (Bish) ब्राह्मनी सांड, गैंडा और बाघ प्रमुख हैं। अनेक तरह के संयुक्त पशु भी दर्शाए गए हैं। इस तरह की एक आकृति में मनुष्य के चेहरे पर हाथी की सूंड और दांत बने हुए हैं, सिर पर सांड के सींग हैं, अग्रभाग मेष का है और पीछे का भाग बाघ का। अनेक मुहरों में यह आकृति पाई गई है। इस तरह की मुहरों को धार्मिक प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाता होगा। मुहरों का प्रयोग बड़े शहरों के बीच माल के विनिमय के लिए भी किया जाता होगा। पशुओं से घिरे और योग की मुद्रा में बैठे सींगयुक्त देवता को दर्शाने वाली मुहर को भगवान् पशुपति से संबंधित माना गया है। हड़प्पा-सभ्यता की कलाकृतियाँ हमें दो कारणों से निराश करती हैं:

- i) पाई गई कलाकृतियों की संख्या बहुत सीमित है और
- ii) उनमें अभिव्यक्ति की उतनी विविधता नहीं है जितनी मिश्र और मेसोपोटामिया की समकालीन सभ्यताओं की कलाकृतियों में पाई गई है।

हड़प्पा-सभ्यता की प्रस्तर मूर्तिकला मिश्र के लोगों की मूर्तिकला की तुलना में सीमित और अविकसित थी। पक्की मिट्टी की कलाकृतियां भी स्तर में उतनी अच्छी नहीं थीं जितनी कि वे जो मेसोपोटामिया में बनाई जाती थीं। संभव है कि हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने अपनी कला की अभिव्यक्ति के लिए कपड़ों पर आकृतियाँ बनाई हों और रंगचित्रों का प्रयोग किया हो जो कम टिकाऊ होने के कारण समय के साथ नष्ट हो गए हों।

6.6.5 सिन्धु-लिपि

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयोग की गई मुहरों (Seals) पर लिखावट होती थी। यह लिपि अभी तक पढ़ी न जा सकने के कारण रहस्य बनी हुई है। प्राचीन मिश्र की लिपियों जैसे अन्य विस्मृत लिपियों को दुबारा पढ़ना इसलिए संभव हो सका क्योंकि विस्मृत लिपि में लिखित कुछ लेख बाद में एक परिचित लिपि में पाए गए हैं। इस परिचित लिपि के कुछ अक्षर विस्मृत लिपि के अक्षरों से मिलते-जुलते थे। हड़प्पा में कोई द्विभाषिक लेख अभी तक नहीं मिले हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि हड़प्पा-निवासी कौन सी भाषा बोलते थे और उन्होंने क्या लिखा। दुर्भाग्यवश, अब तक पाए गए लेख बहुत संक्षिप्त हैं और मुहरों (Seals) पर खुदे हुए हैं। इस कारण उन्हें पढ़ पाना और भी कठिन हो जाता है। हड़प्पा-निवासी चित्राक्षरों का प्रयोग करते थे और दाईं से बाईं ओर लिखते थे। किन्तु, विद्वान अभी भी इस लिपि के रहस्य को खोलने की कोशिश में लगे हुए हैं। इस कार्य में सफलता मिलने पर हड़प्पा की सभ्यता के बारे में और भी जानकारी प्राप्त होगी।

6.6.6 जीवन-यापन का स्वरूप

हड़प्पा-सभ्यता की शहरी आबादी कृषि उत्पादन पर निर्भर करती थी। विभिन्न स्थानों पर की गई खुदाई के दौरान हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की आहार संबंधी आदतों के बारे में वृहत जानकारी प्राप्त हुई है। ऐसा लगता है कि भेड़ और बकरी के अलावा, कूबड़दार मवेशियों को भी पाला जाता था। बहुत सी बस्तियों में सूअर, भैंस, हाथी और ऊँट की हड्डियां भी पाई गई हैं। अभी तक यह निश्चित नहीं है कि ये जानवर पाले जाते थे या उनका शिकार किया जाता था। फिर भी, कुछ मुहरों पर एक सुसज्जित हाथी के चित्र से यह संकेत मिलता है कि इस जानवर को पालतू बना लिया गया था। मुर्गों की हड्डियां भी पाई गई हैं। संभवतः उन्हें पालतू बना लिया गया था। जंगली जानवरों की हड्डियां भी बड़ी तादाद में पाई गई हैं। उनमें हिरण, गैंडे, कछुए आदि की हड्डियां शामिल हैं। हड़प्पा काल में लोग घोड़ों के विषय में शायद नहीं जानते थे।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में गेहूँ की दो किस्में अधिक पाई गई हैं। अन्य फसलों में खजूर और फलदार पौधों की किस्में शामिल हैं, जैसे कि मटर। उनके अलावा इस काल में सरसों और निल की फसल भी होती थी। लोथल और रंगपुर में चिकनी मिट्टी में और मिट्टी के

बर्तनों में चावल की भूसी दबी हुई पाई गई है। यह नहीं कहा जा सकता कि चावल की ये किस्में जंगली थीं या नियमित रूप से उगाई जाने वाली किस्में।

भारत अपने परम्परागत सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध रहा है। मोहनजोदड़ो में सूती कपड़े का एक टुकड़ा पाया गया है जिससे पता चलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग कपास की खेती करने और कपड़े बनाने-पहनने की कला में निपुण हो चुके थे।

कालीबंगन में खांचेदार खेत के प्रमाण मिले हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग लकड़ी के हल का प्रयोग करते थे। इस क्षेत्र में अभी भी एक दिशा में काफी दूर-दूर और एक दिशा में बहुत पास-पास आड़े-तिरछे खांचे बनाने की पद्धति प्रचलित है। आधुनिक कृषक अपने खेत में इसी ढंग से खांचे बना कर एक तरफ कुलथी या तिल की खेती करता है और दूसरी तरफ सरसों की। हड़प्पा की सभ्यता के किसान भी शायद यही करते थे।

इस तरह, यह पाया गया है कि हड़प्पा-युग में जीवन-निर्वाह की व्यवस्था अनेक प्रकार की फसलों, पालतू पशुओं और जंगली जानवरों पर निर्भर थी। इस विविधता के कारण ही जीवन-निर्वाह व्यवस्था मजबूत बनी हुई थी। वे प्रति वर्ष एक साथ दो फसलें उगा रहे थे। इससे अर्थव्यवस्था इतनी मजबूत हो गई थी कि नगरों में रहने वाली और अपने लिए अन्न का उत्पादन खुद न करने वाली बड़ी जनसंख्या का भरण-पोषण किया जा सकता था।

बोध प्रश्न 2

1 लगभग 10 लाइनों में हड़प्पा-सभ्यता की भौतिक विशेषताओं का विवेचन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएं :

- i) हड़प्पा की खुदाई में पाया गया विशाल स्नान-कण्ड ईंटों का बना है। ()
- ii) मोहनजोदड़ो में खोजा गया विशाल अन्नभण्डार एक महत्वपूर्ण इमारत है। ()
- iii) अग्नि कण्ड लोथल में पाए गए हैं। ()
- iv) हड़प्पा-सभ्यता के लोग लोहे के बने औजारों का इस्तेमाल करते थे। ()
- v) हड़प्पा-सभ्यता की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। ()

3 रिक्त स्थानों को सही उत्तरों से पूरा करें:

- i)(मोहनजोदड़ो/हड़प्पा/कालीबंगन) में मिली नर्तकी की कांस्य मूर्ति को हड़प्पा-कला का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है।
- ii) लोथल में(चावल/गेहूँ/जौ) के दाने मिट्टी में धंसे पाए गए हैं।
- iii) हड़प्पा-सभ्यता के लोग पशुओं में(हाथी/ऊँट/घोड़े) में अनजान थे।

6.7 सारांश

इस इकाई में आपने हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की भौगोलिक स्थिति और भौतिक विशेषताओं के बारे में पढ़ा है। भौतिक विशेषताओं की एकरूपताओं के कारण हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और घग्घर क्षेत्र में जीवन-निर्वाह के एक जैसे तरीके सामने आए। किन्तु अन्य ऐसे स्थान भी थे, जहाँ जीविका के स्वरूप में वहाँ की परिवर्ती भौगोलिक विशेषताओं के कारण विविधता थी। हड़प्पा की सभ्यता के लोगों की नगर-योजना अत्यंत कुशल थी। हड़प्पा-सभ्यता के नगरों में मकान और वहाँ की जलनिकास प्रणाली को देख कर हड़प्पा की सभ्यता के लोगों की अनोखी भौतिक उपलब्धियों का पता चलता है। हड़प्पा युग के मिट्टी के बर्तनों, औजारों और उपकरणों में काफी हद तक एकरूपता पाई जाती है। हड़प्पा-सभ्यता की मुहरें (Seals) और मनके कारीगरी के सुन्दर नमूने हैं लेकिन उनकी प्रस्तर मूर्तिकला और पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियाँ तकनीकी उत्कृष्टता में समकालीन मिश्र और मेसोपोटामिया की कला का मुकाबला नहीं कर सकतीं। हड़प्पा-सभ्यता की जीवन-निर्वाह व्यवस्था अनेक फसलों की खेती और पालतू जानवरों पर निर्भर करती थी। इससे वहाँ की अर्थव्यवस्था नगरों में बसे लोगों का भरण-पोषण करने में समर्थ हो सकी। नगरों में रहने वाले लोग अपने अन्न का उत्पादन स्वयं नहीं करते थे। उनके लिए खाद्यान्न निकटवर्ती क्षेत्रों से आता था।

6.8 शब्दावली

शिल्प-अवशेष : मनुष्य की कारीगरी का नमूना।

छानू प्रणालि (chute) : गंदे पानी को बाहर निकालने का मार्ग।

दुर्ग : शहर में किला, नगर-दुर्ग।

हड़प्पा की सभ्यता का पूर्वी अधिकार क्षेत्र : विशेषकर राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश में स्थित हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियाँ।

उत्खनन : पुरानी या प्राचीन जगह पर खुदाई करना।

अन्नभण्डार : अनाज रखने के लिए भण्डार गृह।

ढेढ़े-मेढ़े बहना : नदी का मोड़, नदी का सर्प की भाँति बल खाते हुए बहना और क्षीण होते जाना जिसके कारण गाद जमा हो जाती है।

चित्रलिपि : जिस लिपि में चित्रों को किसी वस्तु आदि के प्रतीक के रूप में प्रयोग में लाया जाये।

पठार : ऊँचाई पर समतल विस्तृत भूमि।

पक्की मिट्टी (Terracotta) : मूर्तियाँ बनाने के लिए चिकनी मिट्टी और रेत का मिश्रण। इसे आग में पकाया जाता है और भूरे लाल रंग का होता है।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए :

हड़प्पा की भौगोलिक स्थिति और जीवन-निर्वाह के स्वरूप का वर्णन, मोहनजोदड़ो,

कालीबंगन, लोथल और सुत्काजिन-दोर की भौगोलिक स्थिति का विवेचन। देखें खण्ड 6.5 और उपखण्ड 6.5.1 से 6.5.5 तक।

- 2 1) घ 2) क 3) ख 4) ग
3 i) (×) ii) (×) iii) (×) iv) (✓)

बोध प्रश्न 2

- 1 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए :
हड़प्पा निवासियों की नगर योजना का विवेचन, मिट्टी के बर्तनों, औजार एवं उपकरण, कला और शिल्प, सिन्धु-लिपि और जीवन-यापन के स्वरूप का वर्णन। देखें खण्ड 6.6 और उपखण्ड 6.6.1 से 6.6.6 तक।
- 2 i) (×) ii) (×) iii) (×) iv) (×) v) (✓)
- 3 i) मोहनजोदड़ो ii) चावल iii) घोड़ा iv) मोहनजोदड़ो।

इकाई 7 संपर्कों के रूप

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 उद्देश्य
- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 व्यापारतंत्रों की स्थापना
- 7.3 अंतर्देशीय सम्पर्क
 - 7.3.1 शहर
 - 7.3.2 गांव
- 7.4 कच्चे माल के स्रोत
- 7.5 विनिमय प्रणाली
- 7.6 फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया के साथ व्यापार
 - 7.6.1 पुरातात्विक प्रमाण
 - 7.6.2 लिखित प्रमाण
- 7.7 परिवहन के साधन
- 7.8 सारांश
- 7.9 शब्दावली
- 7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह व्याख्या कर सकेंगे कि हड़प्पा निवासियों ने दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश क्यों की थी,
- हड़प्पाकालीन नगरों तथा आस-पास के क्षेत्रों के बीच सम्पर्क के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- हड़प्पा निवासियों के समकालीन पश्चिमी एशिया की संस्कृति के साथ व्यापार और विनिमय क्रियाकलापों के बारे में जान सकेंगे,
- इस सम्पर्क के स्वरूप और विनिमय तंत्र के बारे में जिन स्रोतों से पता चलता है उनके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

हड़प्पाकालीन संस्कृति की विशेषता वहाँ असंख्य छोटे बड़े नगरों की उपस्थिति थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे शहरों के अलावा अल्लाहदीनों (कराची के पास) जैसी बहुत सी छोटी बस्तियों से भी ऐसे प्रमाण मिले हैं जो शहरी अर्थव्यवस्था के सूचक हैं। शहरी अर्थव्यवस्था की विशेषता यह है कि इनमें अंतर्सम्बन्धों का तंत्र किसी क्षेत्रीय सीमा में बंधा नहीं होता। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि हड़प्पा से सैकड़ों मील दूर स्थित दूसरे शहरों और नगरों के लोगों से हड़प्पावासी किस प्रकार सक्रिय आदान-प्रदान में लगे रहते थे।

इस इकाई में इस बात की व्याख्या की गई है कि शहरों में व्यापारतंत्र क्यों स्थापित किया गया। साथ ही अंतर्देशीय व्यापार के तरीकों का भी जिक्र इसमें किया गया है। इसमें कच्चे माल के स्रोतों और समकालीन पश्चिमी एशिया के साथ सम्पर्क का भी उल्लेख है। विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों से हड़प्पा सभ्यता के विषय में पता चलता है और इस इकाई में इनके बारे में बताया गया है।

7.2 व्यापारतंत्र की स्थापना

यह माना जाता है कि पूर्व शहरी समाज में विभिन्न क्षेत्रों के बीच सक्रिय लेन-देन नहीं था। अब सवाल यह है कि नगरवासियों ने दूरस्थ देशों से सम्पर्क क्यों स्थापित किया और हमें इस विषय में कैसे पता चलता है। शहरी केन्द्रों में जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा खाद्यान्न उत्पादन में न लगाकर दूसरे अन्य प्रकार के कार्यकलापों में लगा होता है। ये लोग प्रशासनिक, व्यापार और विनिर्माणी कार्य करते हैं। साथ ही यदि वे स्वयं खाद्यान्न उत्पादन नहीं करते हैं तो वह काम दूसरे को उनके लिए करना पड़ता है। यही कारण है कि नगर, खाद्यान्न आपूर्ति के लिए आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र पर निर्भर हैं।

यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि शहर और गांव के बीच सम्बन्ध असमान हैं। शहरों को प्रशासनिक या धार्मिक केन्द्रों के रूप में विकास होने पर पूरे देश में संसाधन वहां एकत्र हो जाते हैं। यह सम्पत्ति करों, उपहारों, भेंटों या खरीदे हुये सामान के रूप में भीतरी प्रदेश से शहर में आती है। हड़प्पा समाज में इस सम्पत्ति का नियंत्रण शहरी समाज के सबसे अधिक प्रभावशाली लोगों के हाथ में था। साथ ही शहर के धनी और प्रभावशाली लोग आरामदायक जीवन बिताते थे। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा उनके द्वारा बनाए गए भवनों और उनके द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली भोग विलास की वस्तुओं के अभिग्रहण में प्रतिबिम्बित होती है जो स्थानीय रूप से अनुपलब्ध थीं। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि शहरों का दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने का मुख्य कारण इन अमीर और प्रभावशाली लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना था। हड़प्पावासियों के दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने के कारणों में से एक कारण यह भी हो सकता है।

हड़प्पा बहावलपुर और मोहनजोदड़ो वाला भू-भाग हड़प्पा सभ्यता का मूल क्षेत्र है। लगभग दस लाख अस्सी हजार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में पाई गई बस्तियों में हड़प्पा सभ्यता के प्रभाव के प्रमाण पाए गए हैं।

यहां पर एक प्राकृतिक प्रश्न उठाया जा सकता है कि अफगानिस्तान के शारतुघई और गुजरात के भगतराव जैसे दूर तक फैले हुए क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने बस्तियाँ क्यों बसाईं? इसका युक्तिसंगत उत्तर विभिन्न क्षेत्रों की आपसी आर्थिक अंतर्निर्भरता और व्यापारतंत्र है। मूल संसाधनों का अलग-अलग स्थानों पर उपलब्ध होना सिन्धु घाटी के विभिन्न क्षेत्रों को जोड़ने का महत्वपूर्ण कारण था। इन संसाधनों में कृषि संबन्धी संसाधन, खनिज संसाधन, लकड़ी आदि शामिल थे और ये व्यापार मार्गों की स्थापना करके ही प्राप्त किए जा सकते थे। उपजाऊ सिन्धु-हाकड़ा मैदान के धनी लोग अधिक से अधिक विलास की वस्तुएं प्राप्त करना चाहते थे। इस खोज में उन्होंने अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ पहले से विद्यमान सम्बन्धों को और मजबूत बनाया। उन्होंने गुजरात और गंगा की घाटी जैसी जगहों में भी बस्तियाँ बसाईं।

7.3 अंतर्क्षेत्रीय सम्पर्क

अब हम हड़प्पा नगरों के आपसी और उस समय के दूसरे शहरों और समाजों के साथ सम्पर्क के स्वरूप का मूल्यांकन करने की चेष्टा करेंगे। हमारे पास इस सम्पर्क के प्रमाण हड़प्पाकालीन नगरों की खुदाई द्वारा पाई गई वस्तुओं पर आधारित हैं। इनमें से कुछ प्रमाणों की पुष्टि समकालीन मेसोपोटामिया की सभ्यता के लिखित स्रोतों में पाए गए प्रसंगों द्वारा की गई है।

7.3.1 शहर

अब हम हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाए गए अन्नभंडारों से संबंधित प्रमाणों की चर्चा करेंगे। ये बड़ी इमारतें अनाज रखने के लिए बनाई गई थीं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, शहरी केन्द्र खाद्यान्न आपूर्ति के लिए गांवों पर ही निर्भर है। अन्नभंडारों की उपस्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि आगक खाद्यान्न के एक मर्यादित भाग

को अपने पास रखना चाहते थे। यह अनुमान है कि आस-पास के गांवों से अनाज लाकर यहां रखा जाता था। फिर यह शहरी निवासियों को पुनर्वितरित किया जाता था। अनाज ऐसा संसाधन है जिसकी रोज बड़ी मात्रा में खपत होती है। काफी मात्रा में अनाज एकत्रित करके बैलगाड़ियों और नावों द्वारा भेजा जाता था। दूरस्थ स्थानों के लिए अधिक मात्रा में खाद्य सामग्री ढोना मुश्किल काम है। यही कारण है कि नगर सर्वाधिक उपजाऊ क्षेत्रों में ही पाए गए हैं और सम्भवतया वहाँ अनाज आस-पास के गांवों से लाया जाता था।

उदाहरणस्वरूप, मोहनजोदड़ो जो कि सिन्ध के लरकाना जिले में स्थित था आज भी सिन्ध का सबसे उपजाऊ क्षेत्र है। परन्तु महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों या औद्योगिक क्षेत्रों में भी कुछ अन्य बस्तियां स्थापित हुईं। बस्तियों की अवस्थिति किसी क्षेत्र की कृषि से संबंधित उपजाऊ क्षमता पर उतना निर्भर नहीं करती जितना कि व्यापार और विनिमय की सम्भावनाओं पर निर्भर करती है।

यही कारण है कि बड़े शहरों की अवस्थिति के कारणों का विश्लेषण करते समय विद्वान इन बातों को ध्यान में रखते हैं।

- खाद्य उत्पादन के लिए उस स्थान की समर्थता और
- उसकी व्यापार मार्गों और खनिज स्रोतों से निकटता।

यदि हम उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखें तो हम पाएंगे कि हड़प्पा की अवस्थिति बहुत ही उत्तम है। इसके उत्तर पश्चिम के समूचे भौगोलिक क्षेत्र में किसी दूसरी हड़प्पाकालीन बस्ती के प्रमाण नहीं मिले हैं। यहां तक कि 19वीं शताब्दी में भी इस क्षेत्र में मुख्यतया खानाबदोश चरवाहे ही रहते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि हड़प्पा ऐसी जगह पर स्थित था जो दक्षिण की ओर स्थित कृषि बस्तियों और उत्तर पश्चिम की ओर स्थित खानाबदोश चरवाही बस्तियों को एक दूसरे से विभाजित करती थी। इस प्रकार हड़प्पा के लोग दोनों समुदायों के संसाधनों का उपयोग कर सकते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि यद्यपि खाद्य उत्पादन के सम्बन्ध में हड़प्पा का कोई भी महत्वपूर्ण योगदान नहीं था, यह एक बड़े शहर के रूप में इसलिए विकसित हो सका क्योंकि एक व्यापारिक बस्ती के रूप में इसकी अवस्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। यदि हम हड़प्पा को बीच में रखकर लगभग 300 किलोमीटर के क्षेत्र में उसके चारों ओर एक वृत्त बनाएं तो हम पाएंगे कि हड़प्पा की अवस्थिति बहुत ही उत्तम है।

- 1) हड़प्पा निवासियों की हिन्दुकुश और पश्चिमोत्तर सीमांत तक पहुँच थी। इसका अर्थ यह है कि लगभग दस दिन की यात्रा करके हड़प्पा निवासी उस क्षेत्र में पहुँच सकते थे जहाँ फीरोज़ा तथा वैदूर्यमणि जैसे बहुमूल्य पत्थर पाए जाते थे। ये बहुमूल्य पत्थर हिन्दुकुश तथा पश्चिमोत्तर सीमांत के मार्गों से लाए जाते थे।
- 2) वे नमक क्षेत्र से खनिज नमक भी प्राप्त कर सकते थे।
- 3) उन्हें राजस्थान से टिन और तांबा सुलभ रूप से प्राप्त था।
- 4) सम्भवतया वे कश्मीर में सोने और एमिथिस्ट के स्रोतों का भी उपयोग करते थे।
- 5) इस 300 किलोमीटर की परिधि में उस स्थान तक भी उनकी पहुँच थी जहाँ पंजाब की पांचों नदियां एक धारा में मिल जाती थीं। इसका अर्थ यह हुआ कि हड़प्पा निवासियों का पंजाब की पांचों नदियों के नदी परिवहन पर भी नियंत्रण था। उस समय जब पक्की सड़कें नहीं थीं। नदियों द्वारा परिवहन कहीं अधिक सुलभ था।
- 6) उनकी अवस्थिति उनको कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों से लकड़ी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती थी। हड़प्पा ऐसी जगह पर स्थित है जहाँ आधुनिक समय में भी पश्चिम और पूर्व के अनेक व्यापार मार्ग आपस में मिलते हैं।

अवस्थिति के संदर्भ में मोहनजोदड़ो और लोथल की बस्तियों का भी अपना महत्व था। कुछ विद्वानों का मानना है कि मोहनजोदड़ो में बड़ी इमारतों का धार्मिक स्वरूप इस ओर संकेत करता है कि यह एक धार्मिक केन्द्र था। यह धार्मिक केन्द्र हो या न हो, यहां के अमीर लोग सोना, चांदी और दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं का प्रयोग करते थे जो स्थानीय रूप से प्राप्य नहीं थीं। हड़प्पा की तुलना में मोहनजोदड़ो समुद्र के अधिक निकट था। इसके कारण मोहनजोदड़ो वासियों के लिए फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया पहुंचना आसान था। फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया वे क्षेत्र थे जो सम्भवतया चांदी के मुख्य

आपूर्तिकर्ता (Suppliers) थे। इसी प्रकार लोथल निवासी दाक्षिणी राजस्थान और दक्कन से संसाधन प्राप्त करते थे। सम्भवतः वे हड़प्पावासियों को कर्नाटक से सोना प्राप्त करने में मदद करते थे। कर्नाटक में सोने की खानों के पास समकालीन नवपाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं।

7.3.2 गांव

गांव आवश्यक अनाज और कच्चा माल नगरों को भेजते थे पर हड़प्पा सभ्यता के नगर बदले में उन्हें क्या देते थे? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें कुछ इने-गिने सुराग मिले हैं। एक तो यह कि नगरों के शासक अनाज को कर के रूप में बसूल करने के लिए बल प्रयोग करते थे। यह कर प्रशासनिक सेवाओं के बदले लोगों द्वारा दिया जाता था। इस ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध का एक महत्वपूर्ण अवयव उन समस्त वस्तुओं को प्राप्त करना था जो स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं थीं और उन्हें ग्रामीण भीतरी प्रदेश (Interland) में उपलब्ध कराना था।

हड़प्पा काल की दिलचस्प वस्तुएँ पत्थर के औज़ार थे। हड़प्पा-सभ्यता के लगभग सभी नगरों और गांवों के लोग समानान्तर आकार के पत्थर के ब्लेड का प्रयोग करते थे। ये पत्थर के ब्लेड बहुत ही उच्च स्तर के पत्थर से बनाए जाते थे जो हर स्थान पर नहीं पाए जाते थे। ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार का पत्थर सिंध में सुक्कूर (Sukkur) नामक स्थान से लाया जाता था। यह परिकल्पना इस तथ्य से सिद्ध होती है कि हड़प्पा-सभ्यता की शहरी अवस्था के दौरान गुजरात में स्थित रंगपुर के लोग दूर प्रदेशों से लाए गए पत्थर के औज़ारों का प्रयोग करते थे। जब हड़प्पा सभ्यता हास की ओर अग्रसर हुई तब इन क्षेत्रों के लोगों ने स्थानीय पत्थर से बने औज़ारों का प्रयोग करना शुरू कर दिया। हड़प्पा के लोग तांबे और कांसे जैसी धातुओं का भी प्रयोग करते थे। तांबा कुछ ही स्थानों पर उपलब्ध था। हड़प्पा-सभ्यता की लगभग सभी बस्तियों में तांबे और कांसे के औज़ार पाए गए हैं। हड़प्पा-सभ्यता की लगभग सभी बस्तियों में पाए गए इन औज़ारों की बनावट और प्रयोग में एकरूपता थी। इससे यह पता चलता है कि वहाँ उत्पादन और वितरण अवश्य ही केन्द्रीकृत संस्थाओं द्वारा किया जाता होगा। इन संस्थाओं में नगरों में रहने वाले प्रशासक या व्यापारी शामिल थे। जिन वस्तुओं का ऊपर उल्लेख किया गया है वे आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण थीं। इनके अलावा हड़प्पा-सभ्यता की छोटी अथवा बड़ी बस्तियों से सोने, चांदी और अनेक कीमती और अर्ध कीमती पत्थरों से बनी वस्तुएँ भी पाई गई हैं। ये धातु और पत्थर व्यापारियों या शहर के शासकों द्वारा लाए जाते थे। शहरीकरण की शुरुआत के साथ हड़प्पा-सभ्यता में व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। मोहनजोदड़ो से मनकों के प्रमाण मिले हैं। ये वस्तुएँ छोटे गांवों और नगरों के अमीर और प्रभावशाली लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाती थीं।

ऊपर की गई चर्चा से यह बात उभर कर सामने आती है कि :

- गांवों की अवस्थिति मुख्यतया भूमि की उपजाऊ क्षमता और सिंचाई की सुविधा की सुलभता पर निर्भर करती थी।
- नगरों की अवस्थिति ऊपर दिए गए घटक के अन्य अतिरिक्त घटकों जैसे खानों या व्यापार मार्गों से इन नगरों की निकटता पर निर्भर करती थी।

कभी-कभी नगरों की अवस्थिति व्यापार के घटक पर अन्य घटकों से अधिक निर्भर करती थी तथा कई नगर उन अनुपयोगी (Inhospitable) जगहों पर बसाए गए जहाँ कृषि उत्पादन बहुत कम था। उदाहरणस्वरूप मकरान समुद्र तट सुत्काजिन-दोर एक ऐसी ही बस्ती थी। वह कृषि उत्पादन की दृष्टि से अनुपयोगी (Inhospitable) क्षेत्र में स्थित है और इसकी मुख्य भूमिका हड़प्पा और मेसोपोटामिया के बीच व्यापार चौकी के रूप में थी।

अब हम हड़प्पा-सभ्यता के अन्य शहरों में घटित होने वाली गतिविधियों की चर्चा करेंगे।

- बलूचिस्तान, समुद्रतट के पास स्थित बालाकोट और सिंध में चहुंदड़ो सीपीशिल्प और चूड़ियों के लिए प्रसिद्ध थे,
- लोथल और चहुंदड़ो में लाल (Carnelian) पत्थर और गोमेद के मनके बनाए जाते थे।
- चहुंदड़ो में वैदूर्यमणि के कुछ अधबने मनके इस बात की ओर संकेत करते हैं कि

हड़प्पा निवासी दूर दराज स्थानों से बहुमूल्य पत्थर आयात करते थे और उन पर काम करके उन्हें बेचते थे।

- मोहनजोदड़ो में पत्थर की चिनाई करने वाले कुम्हार, तांबे और कांसे के शिल्पकार, ईंटें बनाने वाले, सील काटने वाले, मनके बनाने वाले आदि हस्त कौशल में निपुण लोगों की उपस्थिति के प्रमाण पाए गए हैं।

7.4 कच्चे माल के स्रोत

हड़प्पा-सभ्यता की विभिन्न बस्तियों की खुदाई द्वारा बहुत संख्या में चूड़ियां, मनके, मिट्टी के बर्तन और विभिन्न प्रकार की तांबे, कांसे और पत्थर की वस्तुएं पाई गई हैं। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाई अनेक प्रकार की वस्तुएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वे अनेक प्रकार की धातुओं और बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग करते थे जो प्रत्येक क्षेत्र में इमान रूप से उपलब्ध नहीं थे। रोचक बात यह है कि हड़प्पा-सभ्यता की छोटी-छोटी बस्तियों में भी बहुमूल्य पत्थरों और धातुओं के औजार पाए गए हैं। ये अमीर लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक विस्तृत विनिमय तंत्र की ओर संकेत करते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले खनिज स्रोत और धातुओं के क्या स्रोत थे?

- वे राजस्थान की खेतड़ी खानों से तांबा प्राप्त करते थे।
- मध्यवर्ती राजस्थान में जोधपुरा, बागोर और गणेश्वर बस्तियां जो हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के समकालीन मानी जाती हैं सम्भवतया हड़प्पा सभ्यता के लिए कच्चे तांबे का स्रोत रही होंगी।
- गणेश्वर में 400 से अधिक तांबे के तीर शीर्ष, 50 मछली पकड़ने के काटे और 58 तांबे की कुल्हाड़ियां पाई गई हैं।

इन बस्तियों में लोग खानाबदोशी चरवाहों तथा शिकार संग्रहकर्ताओं दोनों ही की तरह से जीवन-यापन करते थे। इन पर हड़प्पा-सभ्यता का प्रभाव शायद नहीं पड़ा था। इससे व्यापार सम्बन्धों, की समस्या की जटिलता और भी बढ़ जाती है। पुरातत्ववेत्ताओं का विश्वास है कि हड़प्पावासी उस क्षेत्र से तांबे के औजारों का आयात करते थे जहां के लोग चरवाहे और शिकारी के रूप में जीवन यापन करते थे। तथापि हम यह नहीं कह सकते हैं कि ये दोनों समुदाय एक जो विकसित शहरी सभ्यता और दूसरा जो चरवाह समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है, आपस में किस प्रकार आदान-प्रदान करते थे। सम्भवतया ये सम्बन्ध अप्रत्यक्ष थे।

शायद हड़प्पा-सभ्यता के लोग तांबा बलूचिस्तान और उत्तरी पश्चिमी सीमांत से प्राप्त करते थे। सोना सम्भवतया कर्नाटक के कोलार क्षेत्र और कश्मीर से प्राप्त किया जाता था। हड़प्पावासियों की समकालीन कुछ नवपाषाण युगीन बस्तियां भी इस क्षेत्र में पाई गई हैं। राजस्थान के जयपुर और सिरौही, पंजाब के हाजिरा कांगड़ा और झंग और काबुल और सिन्धु नदियों के किनारे सोने के मुलम्मों के प्रमाण मिले हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बहुत सी बस्तियों से चांदी के बर्तन पाए गए हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में चांदी के कोई विदित स्रोत नहीं हैं। चांदी शायद अफगानिस्तान और ईरान से आयात किया जाता होगा। सम्भवतया सिंध के व्यापारियों के मेसोपोटामिया से व्यापार संबंध थे तथा वे अपने माल के बदले में मेसोपोटामिया से चांदी प्राप्त करते थे। सीसा शायद कश्मीर या राजस्थान से प्राप्त किया जाता होगा। पंजाब और बलूचिस्तान में भी थोड़े बहुत सीसे के स्रोत थे।

वैदूर्यमणि जो कि एक कीमती पत्थर था उत्तरी पूर्वी अफगानिस्तान में बदकशां (Badakshan) में पाया जाता था। इस क्षेत्र में शोर्तुघई और अलतिन देपे (Altyn Depe) जैसी हड़प्पाकालीन बास्तियों का पाया जाना उस बात की पुष्टि करता है कि हड़प्पावासियों ने इस स्रोत का लाभ उठाया होगा। फ़िरोजा और जेड मध्य एशिया से प्राप्त किए जाते थे। गोभेद, श्वेतवर्ण स्फटिक और लाज पत्थर सौराष्ट्र या पश्चिमी भारत से

प्राप्त किये जाते थे। समुद्री सीपियां जो हड़प्पावासियों में बहुत लोकप्रिय थीं गुजरात के समुद्र तट और पश्चिमी भारत से प्राप्त की जाती थीं। जम्मू में मांदा (Manda) उस स्थान पर स्थित है जहां पर चेनाब नदी में नौपरिवहन संभव है। सम्भवतया अच्छी किस्म की लकड़ी अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों से प्राप्त होती थी और मध्य सिंधु घाटी में नदियों द्वारा पहुँचाई जाती थी। शर्तुघई (Shortughai) में हड़प्पाकालीन अवशेषों में काफी मात्रा में वैदूर्यमणि पाए गए हैं। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने दूरस्थ क्षेत्रों में पाए जाने वाले खनिज पदार्थों का उपयोग करने के लिए उपनिवेशीकरण की नीति अपनाई थी। इससे यह पता चलता है कि व्यापार और बाहर से नई प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त करने में हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की दिलचस्पी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापार विनिमय व्यापारियों का आपसी मामला न होकर एक प्रशासनिक कार्यकलाप था क्योंकि लगभग 500 किलोमीटर के क्षेत्र में उपनिवेश स्थापित करना किसी व्यापारी के लिए सम्भव नहीं था। हड़प्पा काल के प्रशासक दूरस्थ प्रदेशों के संसाधनों को नियंत्रित करना चाहते थे।

7.5 विनिमय व्यवस्था

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर और बाहर अंतर्देशीय व्यापार का एक बृहद तंत्र स्थापित किया था। लेकिन हमें यह मालूम नहीं है कि हड़प्पा-सभ्यता और अन्य क्षेत्रों के बीच किस प्रकार की विनिमय व्यवस्था प्रचलित थी। इतने बड़े क्षेत्र के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया में विभिन्न समुदायों का शामिल होना अवश्यम्भावी है। उस समय देश के एक बड़े भू-भाग में शिकारी संग्रहकर्ता रहते थे। कुछ क्षेत्रों में खानाबदोश चरवाहे थे। कुछ समुदायों ने कृषि उत्पादन शुरू कर दिया था। इनकी तुलना में हड़प्पा-सभ्यता अधिक विकसित थी। हड़प्पा-सभ्यता के लोग शिकारी संग्रहकर्ताओं या किसी और समुदाय के क्षेत्रों से खनिज पदार्थ प्राप्त करने के लिए क्या तरीके अपनाते थे? हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने ऐसे कुछ क्षेत्रों में अपनी बस्तियां बसाई थीं। सम्भवतया हड़प्पा-सभ्यता के लोगों से भिन्न समुदाय हड़प्पा-सभ्यता के लोगों से कीमती वस्तुएँ प्राप्त करते थे परन्तु विनिमय एक नियमित कार्यकलाप नहीं था। बल्कि यह इन समुदायों के मौसमी प्रवास या किसी एक जगह पर एकत्रित होने पर निर्भर था। हड़प्पा-सभ्यता के व्यापारी उन स्थानों पर जाते थे जहां ये समुदाय मौसमी डेरे डालते थे। मौसमी प्रवास की प्रक्रिया के दौरान खानाबदोश चरवाहे भी दूर-दराज के क्षेत्रों से सामान प्राप्त करते थे। हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की विनिमय प्रणाली के बारे में हमें बहुत कम जानकारी है।

हड़प्पा कालीन नगरों के बीच विनिमय पद्धति

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने आपसी व्यापार और विनिमय को नियंत्रित करने के प्रयास किए। दर फैली हुई हड़प्पा कालीन बस्तियों में भी नाप और तौल की व्यवस्थाओं में समरूपता थी। तौल निम्न मूल्यांकों में द्विचर प्रणाली के अनुसार है : 1, 2, 4, 8 से 64 तक फिर 150 तक और फिर 16 से गुणा होने वाले दशमलव 320, 640, 1600 और 3200 आदि तक। ये चकमकी पत्थर, चूना पत्थर, सेलखड़ी आदि से बनते हैं और साधारणतया घनाकार होते हैं। लम्बाई 37.6 सेंटीमीटर की एक फुट की इकाई पर आधारित थी और एक हाथ की इकाई लगभग 51.8 से 53.6 सेंटीमीटर तक होती थी। नाप और तौल की समरूप व्यवस्था केन्द्रीय प्रशासन द्वारा हड़प्पा-सभ्यता के लोगों में आपसी तथा अन्य लोगों के साथ विनिमय को व्यवस्थित करने के प्रयास की ओर इशारा करती है।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में काफी संख्या में मुहरें और मुद्रांकण पाए गए हैं। ये मुहरें और मुद्रांकण दूरस्थ स्थानों को भेजे जाने वाले उत्पादों के उच्च स्तर और स्वामित्व की ओर संकेत करते हैं। इनका प्रयोग व्यापारिक गतिविधियों में होता था। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि बहुत से मुद्रांकणों में पीछे की ओर रस्सी और चटाई के निशान हैं। इनमें पाए जाने वाले चिन्हों से यह पता चलता है कि ये मुद्रांकण तिजारती माल में ठप्पे की तरह प्रयोग में लाए जाते होंगे। लोथल में गोदामों में वायुमंचालन के गस्तों में गख में

अनेक मुद्रांकण पाए गए हैं। ये सम्भवतया आयातित माल के गट्ठों को खोलने के बाद निकल दिए जाते होंगे। इन मुहरों पर विभिन्न जानवरों की आकृतियाँ भी चित्रित हैं और इन पर जो लिपि उत्कीर्ण है वह अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। ऐसा लगता है दूरस्थ स्थानों के साथ व्यापार विनिमय में इनका प्रयोग होता था।

बोध प्रश्न 1

- 1 निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ।
 - क) हड़प्पाकालीन नगर आत्मनिर्भर थे।
 - ख) हड़प्पा-सभ्यता के लोगों का दूर तक फैले स्थानों में बस्तियाँ बसाने का उद्देश्य प्रधान रूप से आर्थिक था।
 - ग) बड़े शहरों की अवस्थिति को निर्धारित करने में किसी क्षेत्र की खाद्य उत्पादन क्षमता एक महत्वपूर्ण घटक थी।
 - घ) नदी परिवहन आवागमन का सबसे सस्ता और आसान साधन था।
 - ङ.) हड़प्पाकालीन बस्तियों में पाए गए औजारों की बनावट में समरूपता नहीं दिखाई देती।
 - च) सिन्धु के व्यापारी अपने माल का विनिमय मेसोपोटामिया की चांदी से करते थे।
- 2 खाली स्थानों को भरें।
 - क) हड़प्पा-सभ्यता के लोग सोना (स्वर्ण) (कश्मीर/राजस्थान) से प्राप्त करते थे।
 - ख) (लोहा/टिन) से हड़प्पा सभ्यता के लोग परिचित नहीं थे।
 - ग) वैदूर्यमणि (कालीबंगन/शोतुंधई) में अधिक मात्रा में पाया गया है।
 - ङ.) (सुत्काजिन-दोर/कालीबंगन) हड़प्पा-सभ्यता के लोगों और मेसोपोटामिया वासियों के बीच एक महत्वपूर्ण व्यापारिक बंदरगाह था।
- 3 हड़प्पाकालीन नगरों की विनिमय प्रणाली के बारे में विवेचन करें। दस पंक्तियों में उत्तर दें।

7.6 फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया के साथ व्यापार

अब तक हमने हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के अंतर्देशीय विनिमय कार्यकलापों की चर्चा की है। इन कार्यकलापों में हड़प्पा-सभ्यता के लोग प्रमुख भागीदार थे। अब हम हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की समकालीन पश्चिम एशिया की सभ्यताओं के साथ व्यापार और विनिमय के कार्यकलापों की चर्चा करेंगे। मेसोपोटामिया हड़प्पा-सभ्यता के मुख्य क्षेत्र से हजारों मील

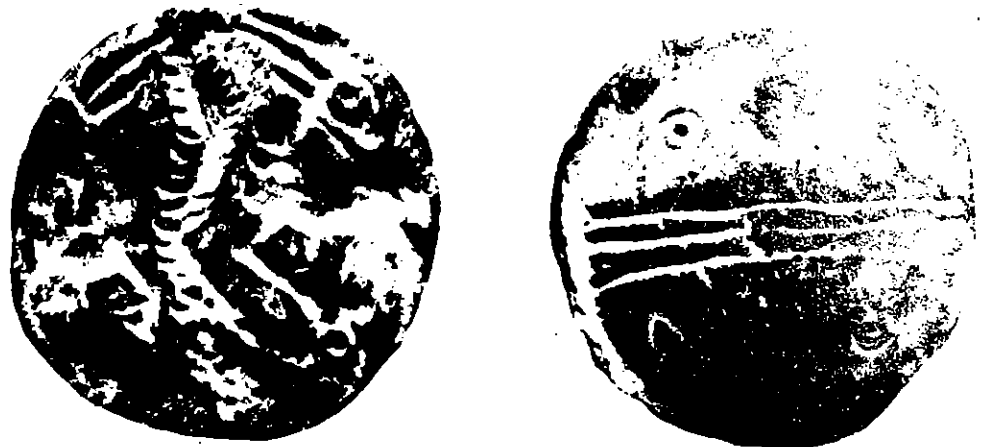
दूर स्थित था फिर भी इन दोनों सभ्यताओं के बीच व्यापार सम्बन्ध थे।

7.6.1 सम्पर्कों के पुरातात्विक प्रमाण

विनिमय के विषय में हमारी जानकारी का आधार मेसोपोटामिया में पाई गई विशिष्ट हड़प्पाकालीन मुहरें हैं। मेसोपोटामिया के सुसा (Susa) उर (Ur) आदि शहरों में हड़प्पा सभ्यता की, या हड़प्पाकालीन मुहरें से मिलती-जुलती लगभग दो दर्जन मुहरें पाई गई हैं। हाल ही में फारस की खाड़ी में फैलका (Failka) और बेहरैन (Behrain) जैसे प्राचीन स्थानों में भी हड़प्पाकालीन मुहरें पाई गई हैं। मेसोपोटामिया के निप्पुर (Nippur) शहर में एक मुहर पाई गई है जिस पर हड़प्पाकालीन लिपि उत्कीर्ण है और एक सींग वाला पशु बना हुआ है। दो चौकोर सिंधु मुहरें जिन पर एक सींग वाला पशु और सिन्धु लिपि उत्कीर्ण है, मेसोपोटामिया के किश (Kish) शहर में पाई गई हैं। एक अन्य शहर उम्मा (Umma) में भी सिंधु सभ्यता की एक मुहर पाई गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि सिंधु घाटी और इन क्षेत्रों के बीच व्यापार विनिमय संबंध थे।

तेल असमार (Tel Asmar) में हड़प्पाकालीन मृत्तिका शिल्प नक्काशी किये हुए लाल पत्थर के मनके और गुदों के आकार के हड्डी के जड़ाऊ काम पाए गए हैं। इनसे मेसोपोटामिया और हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बीच व्यापार सम्बन्ध के बारे में पता चलता है। पक्की मिट्टी की छोटी मूर्तियां, जो साधारणतया सिंधु घाटी में पाई गई हैं, मेसोपोटामिया में निप्पुर (Nippur) में भी पाई गई हैं। इन छोटी मूर्तियों में प्रमुख हैं—एक मोटे पेट वाला नग्न पुरुष, जानवरों जैसे चेहरे, गोलमटोल पूंछें और हिलने डुलने वाले हाथों का जोड़ने के लिए कंधों में खाली जगह। निप्पुर (Nippur) में इसी प्रकार की तीन छोटी मूर्तियां पाई गई हैं जिनसे निप्पुर पर हड़प्पा-सभ्यता के प्रभाव का पता चलता है। सिंधु के चौसर के नमूने (1/2, 3/6, 4/5) मेसोपोटामिया के उर (Ur), निप्पुर (Nippur) और तेल असमार शहरों में पाए गए हैं। इनके अलावा मेसोपोटामिया में विशिष्ट आकार के मनके पाए गए हैं और लगता है कि ये सिंधु घाटी से ही लाए गए थे। चहुंदड़ों में पाए गए इकहरे, दोहरे, तिहरे वृत्ताकार मनके, मेसोपोटामिया के किश (Kish) में पाए गए मनकों से बहुत मिलते जुलते हैं। फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया में हड़प्पाकालीन तौल (बाट) भी पाए गए हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में मेसोपोटामिया की बहुत ही कम वस्तुएँ पाई गई हैं। मोहनजोदड़ो में मेसोपोटामिया की सभ्यता के बेलनाकार मुहरों के नमूने पाए गए हैं। कुछ धातु की वस्तुएँ शायद मेसोपोटामिया से लाई गई थीं। लोथल में एक बेलनाकार छोटी मुहर पाई गई है। बेहरैन (Behrain) के बंदरगाह की खुदाई द्वारा इस प्रकार की अनेक मुहरें पाई गई हैं। लगता है कि ये मुहरें फारस की खाड़ी के बंदरगाहों से लाई गई थीं। लोथल में बन (bun) के आकार के तांबे के ढले हुए धातु पिंड भी पाए गए हैं। ये फारस



चित्र - 12 फारस की खाड़ी में पाई गई मोहर से मिलती-जुलती लोथल में पाई गई मोहर

की खाड़ी के द्वीपों और सूसा (Susa) में पाई गई मुहरों से मिलते-जुलते हैं। जिन वस्तुओं को हड़प्पा-सभ्यता और मेसोपोटामिया में पाया जाना हड़प्पा और मेसोपोटामिया वास्तियों के बीच प्रत्यक्ष व्यापार-विनिमय की ओर संकेत करता है, इनके कम मात्रा में पाए जाने के कारण विद्वानों को इन दो सभ्यताओं के बीच प्रत्यक्ष व्यापार की धारणा पर संदेह है। यह माना जाता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग अपने माल को व्यापार के लिए फारस की खाड़ी की बस्तियों में ले जाते होंगे। कुछ सामान बेहरैन जैसे फारस की खाड़ी के बंदरगाहों के व्यापारियों द्वारा मेसोपोटामिया के नगरों में भेजा जाता होगा।

7.6.2 विनिमय के लिखित प्रमाण

मेसोपोटामिया में कुछ प्राचीन लेख पाए गए हैं जिनसे उसके हड़प्पाकालीन सभ्यता के साथ व्यापार सम्बन्धों का पता चलता है। मेसोपोटामिया में स्थित अक्काड़ (Akkad) के प्रसिद्ध सम्राट सारगॉन (Sargon) (2350 ई. पू.) का यह दावा था कि दिलमुन, मगान (Dilmun, Magan और मेलुहा Meluha) के जहाज़ उसकी राजधानी में लंगर डालते थे। विद्वान साधारणतया मेलुहा तथा हड़प्पा-सभ्यता के समुद्रतटीय नगरों या सिंधु नदी के क्षेत्र को एक ही मानते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि मगान (Magan) तथा मकरान समुद्रतट एक ही हैं। उर (Ur) शहर के व्यापारियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ अन्य दस्तावेज़ भी पाए गए हैं। ये इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उर (Ur) के व्यापारी मेलुहा से तांबा, गोमेद, हाथी दांत, सीपी, वैदूर्यमणि, मोती और आबनूस आयात करते थे। ऐसा लगता है कि ये वस्तुएं हड़प्पाकालीन बस्तियों में काफी मात्रा में उपलब्ध थीं। हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली कुछ वस्तुओं जैसे तांबे के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं है। फिर भी हमें यह याद रखना चाहिए कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग मध्य एशिया तक के एक बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र के संसाधनों का उपयोग कर रहे थे। शायद उन्होंने आरम्भिक हड़प्पा काल में मध्य एशिया और अफ़गानिस्तान के व्यापार तंत्र पर अधिकार कर लिया था। मेसोपोटामिया के आरम्भिक साहित्य में मेलुहा के व्यापार समुदाय का जिक्र है जो मेसोपोटामिया में रहता था। मेसोपोटामिया के एक अन्य लिखित दस्तावेज़ में मेलुहा की भाषा के सरकारी दुभाषिए (Interpreter) का जिक्र है। इन सब उदाहरणों से संकेत मिलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों और मेसोपोटामिया के लोगों के बीच सम्बन्ध अप्रत्यक्ष नहीं थे। इन समाजों के बीच भौगोलिक दूरी को देखते हुए इनके बीच नियमित आदान-प्रदान की आशा नहीं की जा सकती। फिर भी इन दोनों सभ्यताओं के बीच बहुत नजदीकी संबंध थे। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि मेसोपोटामिया का राजा यह दावा करता था कि मेलुहा के जहाज उसके बंदरगाहों में लंगर डालते हैं।

हड़प्पा में मेसोपोटामिया की वस्तुओं का न पाया जाना इस तथ्य से स्पष्ट किया जा सकता है कि परम्परागत रूप से मेसोपोटामिया के लोग कपड़े, ऊन, खुशबूदार तेल और चमड़े के उत्पाद बाहर भेजते थे। ये सभी वस्तुएं जल्दी नष्ट हो जाती हैं इस कारण इनके अवशेष नहीं मिले हैं। शायद चांदी भी निर्यात किया जाता था। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में चांदी के स्रोत नहीं थे। लेकिन वहाँ के लोग इसका काफी मात्रा में प्रयोग करते थे। सम्भवतया यह मेसोपोटामिया से आयात किया जाता होगा।

7.7 परिवहन के साधन

सम्पर्क और विनिमय के स्वरूप की चर्चा के अंतर्गत परिवहन के साधनों का प्रश्न भी सामने आता है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाई गई मुहरों में जहाज़ों और नावों को चित्रित किया गया है। लोथल में पक्की भिट्टी से बने जहाज का एक नमूना पाया गया है जिसमें मस्तूल के लिए एक लकड़ी चिन्हित खोल तथा मस्तूल लगाने के लिए छेद हैं। लोथल में ही 219 × 37 मीटर लम्बाई का एक हौज मिला है जिसकी 4.5 मीटर ऊंची ईंटों की दीवारें हैं। इसके उत्खननक ने इसको एक जहाजी मालघाट के रूप में पहचाना है। इस स्थान के अलावा अरब सागर के समुद्रतट पर भी अनेक बंदरगाह थे। रंगपुर, सोमनाथ,

बालाकोट जैसे स्थान हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा बाहर जाने के रास्ते के रूप में प्रयोग में लाए जाते थे। मकरान समुद्रतट जैसे अनुपयोगी क्षेत्रों में भी सुत्काजिन-दोर और सुत्काकोह जैसी हड़प्पाकालीन बस्तियां पाई गई हैं। ऐसे अनुपयोगी क्षेत्रों में उनके स्थित होने का मुख्य कारण था कि वे पश्चिमी भारत और सिंधु के समुद्रतट पर टकराने वाली लहरों तथा तूफानी हवाओं से सुरक्षित थीं। बारिश के महीनों में वे हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा बाहर जाने के रास्ते के रूप में उपयोग में लाए जाते थे। सुत्काजिन-दोर (Sutkagendor) आधुनिक पाकिस्तान और ईरान की सीमा पर स्थित है। यह सम्भव है कि ईरान की तरफ भी कुछ हड़प्पाकालीन बस्तियां थीं। उनका अभी तक पता नहीं लगा है। इस प्रकार हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा समुद्रतट के पास बस्तियां बसाए जाने के कारण फारस की खाड़ी तक उनके जहाजों को लंगर डालने के स्थान उपलब्ध हो सके।

बैलगाड़ी अंतर्देशीय परिवहन का साधन थी। हड़प्पाकालीन बस्तियों से मिट्टी के बने बैलगाड़ी के अनेक नमूने पाए गए हैं। हड़प्पा में एक कांसे की गाड़ी का नमूना पाया गया है जिसमें एक चालक बैठा है तथा छोटी गाड़ियों के नमूने भी पाए गए हैं जो बहुत कुछ पंजाब के आधुनिक इक्कों से मिलते-जुलते हैं। जंगलों वाले क्षेत्र में लम्बे सफर के लिए भारवाही बैलों के काफिले परिवहन का मुख्य साधन रहे होंगे। ऐतिहासिक काल में खानाबदोश चरवाहे सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजते थे। सम्भवतया हड़प्पा-सभ्यता के लोग भी ऐसा ही करते होंगे। उस समय नौ परिवहन अधिक प्रचलित सुलभ तथा सस्ता था।



चित्र - 13 पक्की मिट्टी पर जहाज की आकृति

बोध प्रश्न 2

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ :

- क) मेसोपोटामिया के लिखित स्रोतों से इस बात का जिक्र नहीं है कि समकालीन हड़प्पा-सभ्यता से उसका कोई सम्पर्क था। ()
- ख) मेसोपोटामिया के शहरों में हड़प्पा-सभ्यता की मुहरों की खोज से सिद्ध होता है कि हड़प्पा और मेसोपोटामिया सभ्यताओं के बीच सम्पर्क था। ()
- ग) लोथल में जहाजी मालघाट की खोज से हड़प्पा-सभ्यता के समुद्रवर्ती व्यापार के बारे में पता चलता है। ()
- घ) हड़प्पा-सभ्यता में परिवहन के रूप में बैलगाड़ी प्रचलित नहीं थी। ()

ii) सही उत्तर पर (✓) का निशान लगाएँ।

हड़प्पाकालीन शहरों से मेसोपोटामिया को क्या निर्यात किया जाता था?

- क) कपड़े, खुशबूदार तेल, चमड़े का सामान।
- ख) चांदी, सोना, कांसा।
- ग) तांबा, हाथी दांत, वैदूर्यमणि।

iii) हड़प्पा काल के कुछ प्रमुख बंदरगाह थे -

- क) दिलमुन, मगान, मेलुहा।
- ख) कालीबंगन, बनवाली, लोथल।
- ग) उर (Ur), निप्पुर (Nippur), चहंदड़ो।

2) हड़प्पाकालीन परिवहन के विषय में पांच वाक्यों में लिखें।

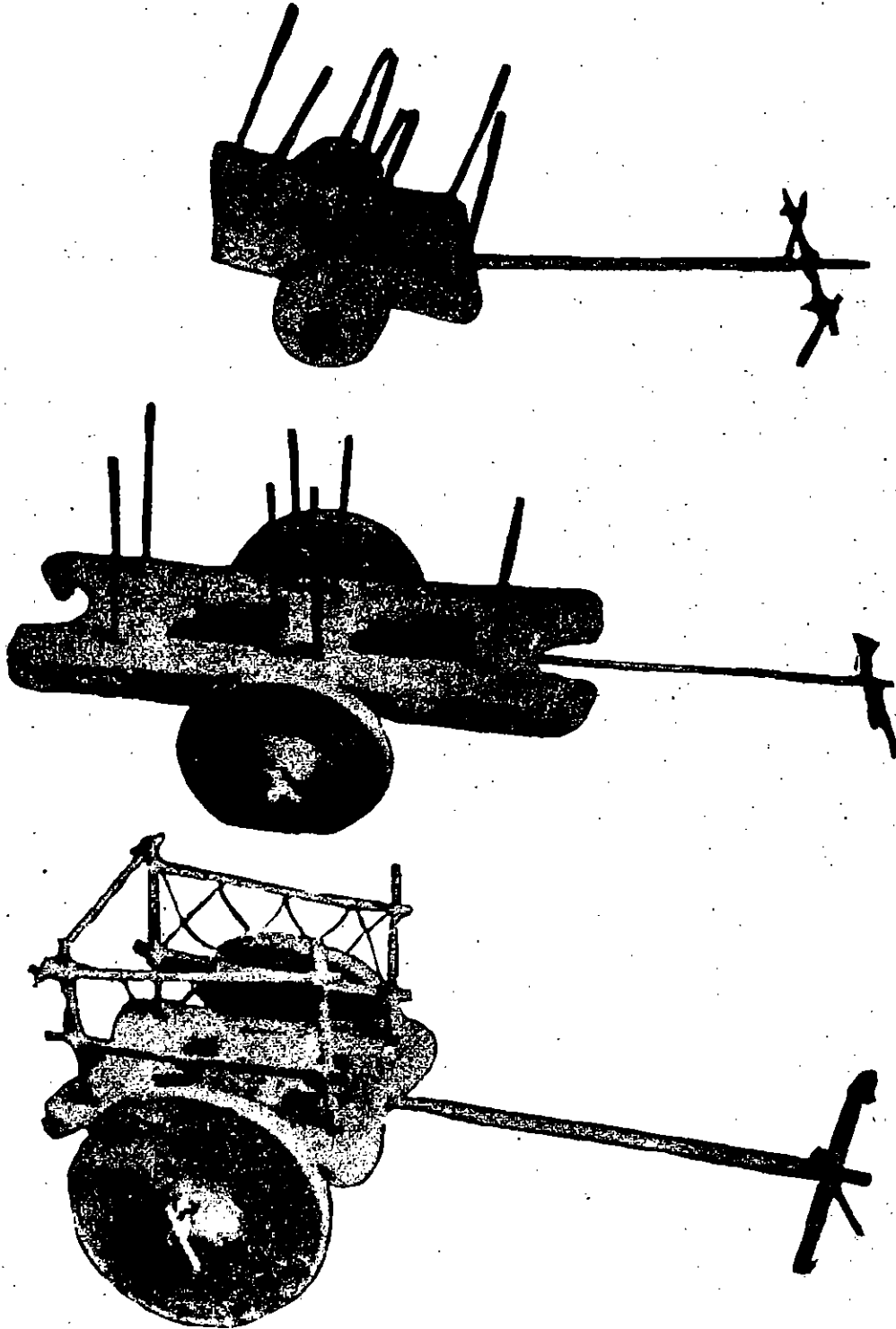
.....

.....

.....

.....

.....



चित्र- 14 खिलोना-गाड़ी

7.8 सारांश

उपर्युक्त बातों से हमें पता चलता है कि हड़प्पाकालीन सभ्यता में आंतरिक व्यापार काफी तेजी में था। आंतरिक व्यापार का अर्थ है कि विनिमय कार्यकलाप 10 लाख 30 हजार वर्ग किलो मीटर तक के क्षेत्र में होते थे। यह विनिमय कार्यकलाप इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाते हैं कि हड़प्पा-सभ्यता कि छोटी सी बस्ती अल्लादीनों में भी मुहरें, मुद्रांकण, अर्द्धकीमती पत्थरों के मनके और धातु के बर्तन पाए गए हैं। इनमें से अधिक वस्तुएं आयात की जाती थीं। नौगम्य जल-मार्गों तथा परम्परागत भू-भागों पर हड़प्पाकालीन बस्तियों का स्थित होना उस बात की ओर संकेत करता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग व्यापार विनिमय गतिविधियों में संलग्न थे। समकालीन पश्चिमी एशियाई संस्कृतियों के साथ उनके संबन्धों की पुष्टि की जा चुकी है। इसीलिए हम उन्हें नगर केन्द्रित समुदाय कहते हैं।

7.9 शब्दावली

मनकः : पत्थर का छोटा टुकड़ा जिसके बीच में तागा पिराने के लिए छेद होता है।

मेसोपोटामिया : ईराक का प्राचीन नाम।

प्रवेश (Region) : वह क्षेत्र जिसमें विशिष्ट भूदृश्य हो जो उसे अन्य क्षेत्रों से अलग करे।

भीतरी प्रवेश (Hinterland) : बंदरगाह या किसी प्रमुख क्षेत्र से दूर स्थित भीतरी क्षेत्र।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1 क) (×) ख) (✓) ग) (×) घ) (✓) ङ) (×) च) (✓)
- 2 क) कश्मीर, ख) ईरान, ग) शोर्तुघई, घ) राजस्थान, ङ) सुत्काजिन-दोर।
- 3 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए : नापतौल की समरूप व्यवस्थाएँ, तौल की दोहरी व्यवस्था, स्वामित्व और गुण का निश्चय करने के लिए उत्पादों पर मुहरें और मुद्रांकण आदि। देखें भाग 7.5

बोध प्रश्न 2

- 1 i) क) (×), ख) (✓), ग) (✓), घ) (×)
ii) ग,
iii) क
- 2 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए : परिवहन प्रणाली, नदी परिवहन, अंतर्देशीय परिवहन के समर्थन में पुरातात्विक प्रमाण, आदि। देखें भाग 7.7।

इकाई 8 समाज एवं धर्म

इकाई की रूपरेखा

- 8.0 उद्देश्य
- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 समाज
 - 8.2.1 वेश-भूषा
 - 8.2.2 खान-पान
 - 8.2.3 भाषा एवं लिपि
 - 8.2.4 युद्ध
 - 8.2.5 मुख्य शिल्प व्यवसाय
- 8.3 हड़प्पा के शासक
- 8.4 धर्म एवं धार्मिक रीतियां
 - 8.4.1 पूजा-स्वल्प
 - 8.4.2 आराध्य
 - 8.4.3 भूतकों का अंतिम संस्कार
- 8.5 सारांश
- 8.6 शब्दावली
- 8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हड़प्पा वासियों के समाज तथा उनकी विभिन्न धार्मिक रीतियों से अवगत हो सकेंगे, विशेषकर आप :

- उनकी वेश-भूषा एवं खान-पान के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उनकी भाषा एवं लिपि से संबंधित मतभेद पर चर्चा कर सकेंगे,
- उनके मुख्य व्यवसायों के प्रति अवगत हो सकेंगे,
- शासक वर्गों के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- उनकी धार्मिक रीतियों एवं मुख्य देवी देवताओं के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उनके अंतिम संस्कारों के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस खंड की पूर्व इकाइयों में आप हड़प्पा-सभ्यता के महत्वपूर्ण पक्षों का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम हड़प्पा समाज एवं धर्म पर चर्चा करेंगे।

हमारी यह जानने की जिज्ञासा हो सकती है कि हड़प्पा वासी देखने में कैसे लगते थे? क्या वे वैसे ही वस्त्र पहनते थे जैसे कि हम पहनते हैं। वे क्या पढ़ते-लिखते थे? नगरवासी किस प्रकार के व्यवसाय अपनाते थे? वे कौन सी भाषा बोलते थे? क्या खाते थे? क्या वे चाय के साथ आलू चिप्स खाते थे? क्या वे खेलना पसंद करते थे और युद्ध करते थे? उनके शासक कौन होते थे? उनके मंदिर एवं देवी देवता कैसे होते थे? क्या वे हम जैसे थे? यह सारे प्रश्न वस्तुतः काफी सरल प्रतीत होते हैं लेकिन विद्वानों के लिए इनके उत्तर देना अत्यंत कठिन होता है। इसका कारण उस युग की जानकारी प्राप्त के लिए उपलब्ध स्रोतों का स्वरूप है। इसका मुख्य स्रोत विभिन्न स्थानों पर हुई खुदाई में प्राप्त केवल पुरातात्विक जानकारी है।

इस सभ्यता के संदर्भ में हमारे वर्तमान ज्ञान को देखते हुए विचारों और भावनाओं से जुड़े विभिन्न प्रश्नों का उत्तर कठिनाईयाँ खड़ी करता है। कभी-कभी ऐसे प्रश्न जो प्रत्यक्षतः अत्यंत सरल नजर आते हैं उत्तर देते समय अत्यंत कठिन प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे प्रश्न का उत्तर कि क्या हड़प्पा के लोग अकीक पत्थर की मालायें बनाने में सुख का अनुभव करते थे, काफी मुश्किल हो सकता है। हम केवल हजारों वर्षों से पड़ी मूक, बेजान वस्तुओं के आधार पर विचारों से संबंधित कुछ प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं जिसका प्रयास इस इकाई में किया जायेगा।

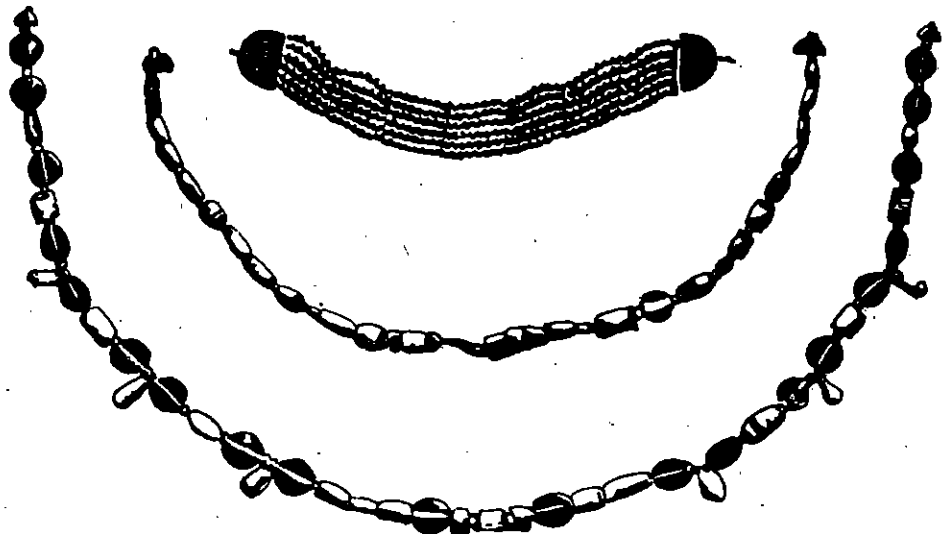
8.2 समाज

हड़प्पा से प्राप्त पुरातात्विक उपलब्धियों के आधार पर इस काल के समाज की कल्पना की जा सकती है। हम इस समाज के लोगों की वेश-भूषा और खान-पान, व्यापार, शिल्प कलायें तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आइए सबसे पहले हम हड़प्पा के लोगों की प्रकट आकृतियों एवं वेश-भूषा के संबंध में चर्चा करें।

8.2.1 वेश-भूषा

हड़प्पावासी देखने में कैसे लगते थे? इस प्रश्न का उत्तर इस काल की पकी हुई मिट्टी से बनी मूर्तियों तथा पाषाण शिल्प का अध्ययन से मिल सकता है। जानकारी प्राप्त करने का एक अन्य तरीका हड़प्पा बस्तियाँ की खुदाई में प्राप्त कंकालों का अध्ययन हो सकता है।

कंकालों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हड़प्पा के लोग वर्तमान उत्तर भारत के निवासियों जैसे दिखते थे। उनके चेहरे, रंग रूप एवं लम्बाई में इन क्षेत्रों के वर्तमान निवासियों से काफी कुछ समानता दिखती है। आधुनिक नर-नारियों की भाँति वे पैन्ट-शर्ट अथवा सलवार-कमीज नहीं पहनते थे। हम उनके पहनावे एवं फैशनों का अनुमान उस काल की शिल्प कला तथा पक्की मिट्टी की बनी मूर्तियों के अध्ययन से लगा सकते हैं। पुरुषों को बहुधा एक ऐसे पहनावे में दिखाया गया है जिससे उनके शरीर का निचला भाग लपेटा रहता था तथा वस्त्र का एक सिरा बायें कन्धे से लेकर दायें बाजू के नीचे पहुंच जाता था, जिस प्रकार आधुनिक साड़ी पहनी जाती है। पुरुष अपने बाल विभिन्न तरीकों से बनाते थे, कभी-कभी जूड़ा बनाकर माथे पर पट्टी बांधते थे। आधुनिक भारतीयों की अपेक्षा वे कहीं अधिक गहनों का प्रयोग करते थे। वे अंगूठियाँ पहनते थे, कंगन पहनते थे तथा गले और हाथों में काफी गहने पहनते थे। महिलायें कमर में गहने पहनती थीं। गले में वे कई प्रकार के हार पहनती थी, चूड़ियों का भी प्रयोग होता था तथा बाल काढ़ने के असंख्य तरीके थे। पुरुष और महिलायें दोनों ही लंबे बाल रखते थे वे सूती कपड़े पहनते थे तथा एक मूर्ति में वस्त्र लाल रंगों में त्रिदल पद्धति में दिखाया गया है। इन तमाम फैशनों के बावजूद यदि हड़प्पा-सभ्यता का कोई पुरुष हमें आज सड़क पर टहलता हुआ दिख जाय तो वह हमें किसी भिक्षु के स्वरूप ही दिखाई देगा।



चित्र-15 सोने और अर्ध-कीमती पत्थर के जेवर

8.2.2 खान-पान

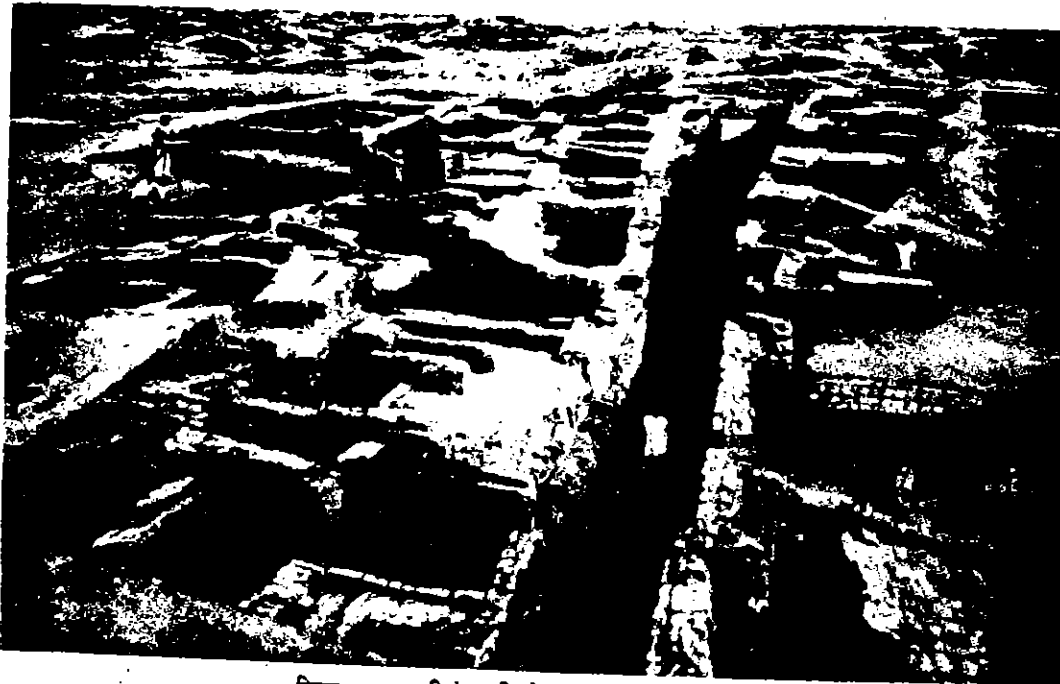
वे क्या खाते थे? इस संदर्भ में भी हमें बहुत कम जानकारी है। सिन्ध और पंजाब में हड़प्पा निवासी गेहूँ और जौ खाते थे। राजस्थान में रहने वाले लोगों को केवल जौ से ही संतुष्ट होना पड़ता था। गुजरात के रंगपुर, सुरकोटला आदि स्थानों के हड़प्पा निवासी चावल और बाजरा खाना पसन्द करते थे। आइए ये देखने का प्रयास किया जाय कि वे प्रोटीन और चर्बी युक्त भोजन कहां से प्राप्त करते थे?

वे तेल और चर्बी तिल, सरसों तथा संभवतः घी से प्राप्त करते थे। हमें इस बात की जानकारी नहीं है कि वे गन्ने की खेती करते थे या नहीं अतः चीनी के विषय में हमारे पास जानकारी नहीं है। सम्भव है कि वे अपने खाने को मीठा बनाने के लिए शहद का उपयोग करते हों। हड़प्पा स्थलों से मिलने वाले उन्नाव और खजूर के बीजों से यहां के लोगों की फल के प्रति प्राथमिकता का पता चलता है। संभवतः वे केले, अनार, खरबूजा, नीबू, अंजीर तथा आम भी खाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे विभिन्न प्रकार के जंगली फलों का भी सेवन करते थे लेकिन उन फलों की पहचान करना अत्यंत कठिन है। वे मटर भी खाते थे। इसके अतिरिक्त हड़प्पा निवासी मांसाहारी भोजन भी शौक से खाते थे। हड़प्पा बस्तियों के अवशेषों में हिरन, भालू, भेड़ तथा बकरियों की हड्डियां मिलती रही हैं। वे मछली, दूध तथा दही का भी सेवन करते रहे होंगे। लेकिन न तो उन्हें चाय का ज्ञान था न ही आलू के चिप्स का। क्या आप स्वयं इसका कारण ढूंढ सकते हो?

8.2.3 भाषा एवं लिपि

वे कौन सी भाषा बोलते थे और क्या लिखते पढ़ते थे। इसकी भी हमें स्पष्ट जानकारी नहीं है। हम केवल हड़प्पा निवासियों की लिपि को खोज सके हैं जैसा कि पहले कहा जा चुका है हम अभी तक इस लिपि को पढ़ने में असमर्थ रहे हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वहां लिखी जाने वाली भाषा द्रविड़ भाषा समूहों (जैसे तमिल) की जननी थी। अन्य विद्वान इसे किसी आर्य भाषा (जैसे संस्कृत) की जननी मानते हैं।

अभी तक किसी भी विद्वान ने सर्वमान्य तर्क प्रस्तुत नहीं किया है। हड़प्पा की लिपि के संदर्भ में एक बात स्पष्ट नजर आती है कि पूरी हड़प्पा-सभ्यता के काल में इस लिपि में कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं जबकि अन्य सभी प्राचीन लिपियों में समय के साथ-साथ परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इससे ये सिद्ध होता है कि हड़प्पा की लिपि का उपयोग विस्तृत नहीं था। संभवतः एक वर्ग विशेष लिखित शब्दों पर आधिपत्य जमाये बैठा था। वे क्या सीखते थे और कैसे सीखते थे इसका हमारे पास उत्तर नहीं है। समकालीन मेसोपोटामिया की भांति हड़प्पा में भी स्कूल थे अथवा नहीं इसकी भी जानकारी हमारे पास नहीं है।



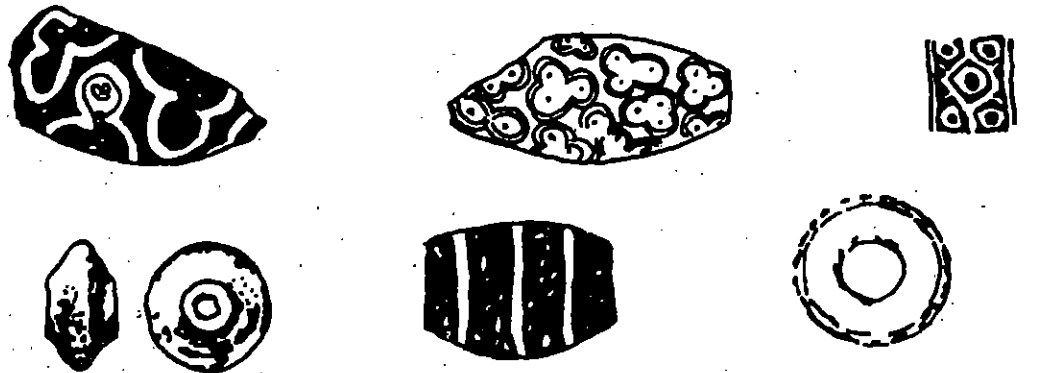
चित्र - 16 कसीबंगन किले का उत्तरी भाग

8.2.4 युद्ध

क्या वे खेल खेलते थे और युद्ध करते थे? हम जानते हैं कि वे चौसर खेलते थे लेकिन इसके आगे हमें जानकारी नहीं है। उनके युद्ध करने के काफी प्रमाण हमारे समक्ष हैं। संभवतः ऐसा इसलिए है कि विभिन्न हड़प्पा स्थलों की खुदाई में लगे पुरातत्व शास्त्री युद्ध के प्रमाण ढूँढ रहे थे न कि खेल कूद के। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रमाण यह भी मिलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के उद्भव के समय कई "आरंभिक हड़प्पा" स्थल (जैसे कोट दीजी तथा कालीबंगन) जला दिये गये थे। दुर्घटनापूर्ण अग्नि से बड़े नगरों का ध्वस्त हो जाना असंभव तो नहीं है। लेकिन इस बात की प्रबल संभावना है कि ये बस्तियाँ विजयी मानवीय समूहों द्वारा जलायी गयी होंगी। इसके अतिरिक्त मोहनजोदड़ो की गलियों में कंकालों के बिखरे पाये जाने के भी प्रमाण मिलते हैं। प्राचीनतम काल से लेकर अब तक के समाजों में नियमित रूप से अपने मृतकों का अंतिम संस्कार परम्परागत रूप से किया जाता रहा है। यह स्वाभाविक ही है कि हड़प्पा के लोग अपने मृतकों को सड़कों पर सड़ने के लिए नहीं छोड़ देते थे। अतः स्पष्ट है कि किसी असाधारण टकराव के कारण ही हड़प्पा के लोग अपने मृतकों का अंतिम संस्कार नहीं कर पाए। हड़प्पा के कई नगरों के चारों ओर किलेबंदी और दुर्ग बने होने से इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है कि इन लोगों को बाहरी तत्वों से सुरक्षा की आवश्यकता प्रतीत होती थी। कुछ सुरक्षा दीवारों का उपयोग बाढ़ से बचने के लिए बांध के रूप में भी हुआ होगा। हड़प्पा नगरों के आस-पास की ग्रामीण जनता की तुलना में नगरवासियों की संपन्नता को देखते हुए इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि अपनी बस्तियों की किलेबंदी करके अपने जान माल की सुरक्षा करना चाहते थे। यहां से तांबे एवं कांसे के काफी हथियार भी प्राप्त हुए हैं।

8.2.5 मुख्य शिल्प व्यवसाय

हड़प्पा निवासी अपने जीवन यापन के लिए क्या करते थे? इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षाकृत आसान है। इसका कारण यह है कि पूर्व आधुनिक समाजों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन समाजों के अधिकतर लोग कृषि से जुड़े हुए थे लेकिन हड़प्पा के काफी सारे लोग विभिन्न प्रकार की अन्य गतिविधियों में भी लगे हुए थे। मालाएं बनाना हड़प्पा के निवासियों का मन पसंद व्यवसाय था। मोहनजोदड़ो चानहुदाड़ो तथा लोथल बस्तियों में काफी बड़ी संख्या में हड़प्पावासी इस कार्य से जुड़े हुए थे। चूँकि मालाएं बनाने में अकीक, (Carnllion), सूर्यकांत (Lapistažuli), सुलेमानी पत्थर (Agate) तथा नीलम (Jasper) जैसे बहुमूल्य रत्नों का प्रयोग होता था अतः संभव है प्रत्येक रत्न की मालाएं बनाने के लिए भिन्न दक्ष कारीगर होते हों। कुछ अन्य हड़प्पावासी पत्थर के औजार बनाने में दक्ष थे। इनके अतिरिक्त हड़प्पा नगरों में कुम्हारों, कांसे एवं तांबे के कार्य करने वालों, पत्थर के काम करने वालों, घर बनाने वालों, ईंट बनाने वालों तथा मुहरों काटने वालों के होने की पूरी संभावना है। जब हम हड़प्पा-सभ्यता की चर्चा करते हैं तो हम बुनियादी तौर पर इस युग की मुहरों, ईंटों, बर्तनों तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं का सहारा लेते हैं इन वस्तुओं के पाए जाने का अर्थ है कि इनके बनाने वाले इस युग में मौजूद थे।



चित्र-17 हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाए गए अर्ध कीमती पत्थर के मनके



चित्र-18 मनके बनाने के लिए षट्टी

बोध प्रश्न 1

- 1 निम्नलिखित में से कौन से वाक्य सही (✓) हैं और कौन गलत (×) हैं?
 - i) हड़प्पा सभ्यता के पूरे युग में इस क्षेत्र की लिपि में काफी परिवर्तन आए।
 - ii) हड़प्पावासी शुद्ध शाकाहारी थे।
 - iii) साधारणतया हड़प्पा के नगर किले बंद होते थे।
 - iv) हड़प्पावासी पुरुष गहने पहनने के शौकीन थे।
- 2 निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
 - i) हमें हड़प्पा के लोगों की वेश-भूषा तथा फैशनों की जानकारी से प्राप्त होती है।
 - ii) हड़प्पा के लोग धातु औजार बनाने में धातु का प्रयोग करते थे।
 - iii) राजस्थान में पंजाब और सिंध में और गुजरात में हड़प्पावासियों का नियमित भोजन था।
 - iv) हड़प्पा बस्तियों में भारी मात्रा में पायी जाने वाली मालाएं की बनी हुई हैं।
- 3 हड़प्पा लिपि के विषय में पांच पंक्तियां लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

8.3 हड़प्पा के शासक

हड़प्पा समाज के शीर्ष पर तीन प्रकार के लोगों की अदृश्य श्रेणियां थी—शासक, व्यापारी तथा पुरोहित। सामाजिक संगठन की समस्याओं की समझ के आधार पर इन श्रेणियों की कल्पना की जा सकती है। सभ्यता के उदय का संबंध सीधे-सीधे केन्द्रीकृत निर्णय प्रणाली के अभ्युदय से है, जिसे राज्य कहा जाता है। हड़प्पा-सभ्यता के अन्तर्गत स्थानीय शासन

चलाने के लिए निर्णय लेने के अधिकार रखने वालों के अस्तित्व की प्रबल संभावना है। इसके कई कारण हैं।

- 1) व्यापक स्तर पर नीतियों की व्यवस्था तथा सड़कें बनाने एवं व्यवस्थित रखने के लिए शहरों में स्थानीय प्रशासन की आवश्यकता रही होगी।
- 2) अनाज गोदामों के होने से भी इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है। आस-पास से अनाज इकट्ठा करके नागरिकों के बीच बांटने के लिए प्रशासन अवश्य रहा होगा।
- 3) जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हथियारों, औजारों और ईंटों की बनावट में असाधारण समरूपता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हथियार तथा औजार किसी एक स्थान पर बड़े पैमाने पर बनाए जाते और विभिन्न नगरों एवं बस्तियों में वितरित किए जाते थे। हजारों मील के क्षेत्र में इन वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रेता के प्रबंध से वह वर्ग असाधारण रूप से शक्तिशाली बन गया होगा जो कि निर्णय लेता होगा कि कितना उत्पादन हो और कहां उसका वितरण हो। यदि यह लोग किसी नगर को वस्तुएं देना बंद कर दें तो वहां औजारों और हथियारों का अकाल ही पड़ जाय।
- 4) बड़े नगरों के निवासियों द्वारा उत्पादनों के प्रकार एवं मात्रा के उपभोग की दर से संकेत मिलता है कि वहां कोई शासक वर्ग रहता होगा। काफी वस्तुएं सूदूर प्रदेशों से लाई गयी दुर्लभ वस्तुएं होती थी बहुमूल्य पत्थरों एवं धातुओं से संपन्न होने से न केवल उनके मालिकों को बल्कि शोष जनता की भी प्रतिष्ठा बढ़ जाती थी।
- 5) इसी प्रकार नगरों के वृहत होने से केवल इस ओर ही संकेत नहीं मिलता कि वहां काफी बड़ी जनसंख्या रहती थी बल्कि इस तथ्य का भी पता चलता है कि वहां मन्दिरों तथा महलों जैसे भवन भी मौजूद थे। इन भवनों में रहने वाले लोग राजनैतिक, आर्थिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में अधिकार सम्पन्न रहे होंगे। यही कारण है कि वे मोहरें जिन पर व्यापारियों, पुरोहितों अथवा प्रशासकों के अधिकार चिन्ह अंकित हैं, सबसे अधिक संख्या में मोहनजोदड़ो से मिलते हैं। जहां कि सबसे अधिक संख्या में मन्दिरों और महलों के रूप में अवशेष पाये गये हैं।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मोहनजोदड़ो हड़प्पा-सभ्यता की राजधानी थी। यह भी संभव है कि हड़प्पा-सभ्यता में दो अथवा पांच स्वतंत्र राजनैतिक इकाईयां रही हों। हमारे कहने का तात्पर्य केवल यह है कि मोहनजोदड़ो नगर राजनैतिक आर्थिक शक्ति का केन्द्र बन गया था। हमें यह ज्ञात नहीं है कि हड़प्पा के शासक कौन थे, संभव है वे राजा रहे हों अथवा पुरोहित अथवा व्यापारी। हम जानते हैं, कि पूर्व आधुनिक समाजों में आर्थिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक इकाईयां में स्पष्ट रूप से भेद नहीं किया जाता था जिसका अर्थ यह है कि एक ही व्यक्ति प्रधान पुरोहित भी हो सकता था, राजा भी हो सकता था और धनी व्यापारी भी, लेकिन उपलब्ध प्रमाणों से संकेत मिलता है कि यहां शासक वर्ग अवश्य मौजूद था तथापि इस शासक वर्ग के स्पष्ट रूप से हम अवगत नहीं हैं।

बोध प्रश्न 2

- 1) हम किस आधार पर कह सकते हैं कि हड़प्पा-सभ्यता एक शहरी सभ्यता थी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) हड़प्पा की खुदायी में काफी तथ्य ऐसे मिले हैं जिनसे संकेत मिलता है कि वहां पर नागरिक तथा राजनैतिक प्रशासन विद्यमान था, वे तथ्य कौन से हैं?

.....

8.4 धर्म एवं धार्मिक रीतियाँ

हड़प्पा के लोग किसकी पूजा करते थे? यह प्रश्न विद्वानों के बीच काफी चर्चा का विषय रहा है। हड़प्पा के अतीत के अवशेष इस संदर्भ में कोई सूत्र नहीं देते हैं। अतः उनकी धार्मिक मान्यताओं को समझने के लिए हमें केवल अपनी बुद्धि और तर्क पर निर्भर होना पड़ेगा। मुख्य समस्या यह है कि लिखित स्रोतों के अभाव में उनकी लौकिक और अलौकिक गतिविधियों के बीच अन्तर करना कठिन है, इसलिए हड़प्पा से प्राप्त होने वाली प्रत्येक जानकारी पर अलौकिक गतिविधि होने का शक पैदा होता है। इस पृष्ठभूमि में उचित होगा कि हड़प्पा के लोगों की धार्मिक मान्यताओं को आधुनिक मान्यताओं के परिपेक्ष में रखकर उन्हें समझा जाय।

8.4.1 पूजा-स्थल

मोहनजोदड़ो के किले बंद नगर तथा निचले नगर की कई बड़ी इमारतें मन्दिरों के रूप में देखी गयी हैं। इस दृष्टिकोण से इस तथ्य को और भी बल मिलता है कि अधिकतर पत्थर की मूर्तियाँ इन्हीं इमारतों में मिली हैं।

मोहनजोदड़ो के निचले नगर में एक बृहत-इमारत मिली है। इस इमारत में संस्कारकीय द्वार तथा एक मंच की ओर ले जाने वाली दोहरी सीढ़ियों का रास्ता है। इस मंच पर 16-1/2 इंच ऊँची एक पाषाण शिल्प कृति प्राप्त हुई है। इस कृति में अपने घुटनों पर हाथ रखे हुए एक पुरुष बैठा है। पुरुष के चेहरे पर दाढ़ी है तथा माथे पर पट्टी बंधी हुई है जिसके दोनों सिरे पीठ की ओर लटके हुए हैं। इसी इमारत में एक और पत्थर की मूर्ति प्राप्त हुई है यही कारण है कि विद्वानों ने इस इमारत को मन्दिर माना है।

मोहनजोदड़ो में किले के खंडहरों पर कई ऐसी इमारतों के अवशेष प्राप्त हुये हैं जिन्हें देखकर प्रतीत होता है कि वे हड़प्पा के पवित्र स्थल रहे होंगे, इनमें विशाल स्नानगृह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। भारत के बाद के ऐतिहासिक युगों में इस प्रकार के विस्तृत स्नानगृहों का निर्माण पवित्र संस्कार स्थलों में होता था। अतः संभव है कि विशाल स्नानगृह कोई साधारण तरण ताल न रहा हो अपितु इसका पवित्र संस्कार स्थल के रूप में महत्व हो।

विशाल स्नानगृह के निकट ही एक अन्य विशाल इमारत (230 x 78 फुट) पाई गयी है जिसे किसी मुख्य पुरोहित का निवास स्थल अथवा पुरोहितों का मठ माना जाता है। इसी प्रकार किले बंद क्षेत्र में एक सभागार पाया गया है। इसके पश्चिम की ओर एक साथ कई कमरे बने हुए मिले हैं जिनमें से एक में एक बैठे हुए पुरुष की मूर्ति भी मिली है। इसे भी एक धार्मिक इमारत के रूप में देखा गया है। इन पवित्र धार्मिक इमारतों से मोहनजोदड़ो की धार्मिक रीतियों की ओर संकेत मिलता है। हम यह मान सकते हैं कि कुछ धार्मिक गतिविधियाँ इस विशाल मंदिर जैसी इमारत में की जाती रही होंगी।

8.4.2 आराध्य

आराध्य अथवा पूज्य वस्तुओं के विषय में प्रमाण हड़प्पा की मुहरों एवं पकी मिट्टी की मूर्तियों से प्राप्त होते हैं, मुहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सबसे प्रसिद्ध देवता की पहचान आदि-शिव के रूप में की गयी है, कई मुहरों में एक देवता जिसके सिर पर भैंस के सींग का मुकुट है, योगी की मुद्रा में बैठा हुआ है, देवता बकरी, हाथी, शेर तथा मृग से घिरा हुआ है मार्शल ने इस देवता को पशुपति माना है, कई स्थानों पर देवता के सींग के बीच से एक पौधा उगता दिखाया गया है, एक अन्य मुहर पर एक देवता जिसके सिर पर सींग और

लम्बे बाल हैं, नंगे बदन पीपल की शाखाओं के बीच खड़ा है। एक उपासक उसके समक्ष झुका हुआ है उपासक के पीछे जिसका सिर आदमियों जैसा है, तथा अन्य सात मानवीय आकृतियां हैं, इन मानवीय आकृतियों के लम्बी चोटियां हैं एवं सिर पर लम्बे वस्त्र बंधे हैं। यह मुहर में योगी के साथ एक सर्प की आकृति है। सींग वाली सभी आकृतियों को उत्तर भारतीय इतिहास के शिव के रूप में माना गया है। कुछ हड़प्पा बस्तियों से शिव लिंग भी प्राप्त हुए हैं। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने शिव को हड़प्पा का सबसे महत्वपूर्ण देवता माना है। संभवतः सारे मंदिरों में शिव की पूजा होती थी।

मातृ देवी

हड़प्पा बस्तियों में भारी संख्या में पक्की मिट्टी की मूर्तियां मिली हैं, इनमें महिलाओं की भी मूर्तियां हैं जो कि बड़ी सी मेखला सिंह वस्त्र तथा गले में हार पहने हुए दिखाई गयी हैं वे सिरों पर पंखे के रूप के मुकट धारण किए हैं। कभी-कभी उनके साथ शिशु भी दिखाये गये हैं। अभिजनन पंथ के आम तौर से गर्भ धारण के विभिन्न रूपों द्वारा चित्रित किया गया है। इन प्रमाणों से हड़प्पा सभ्यता में अभिजनन पंथ के प्रति विश्वास तथा देवियों की आराधना की ओर संकेत मिलते हैं।

वृक्ष आत्माएं

संभवतः हड़प्पा के लोग वृक्ष आत्माओं की पूजा करते थे, कई स्थानों पर वृक्षों की शाखाओं के बीच से झांकती हुई आकृतियां दिखाई गयी हैं विद्वानों का मत है कि यह आकृतियां वृक्ष आत्माओं को बिंबित करती हैं। कई चित्रों में आराधक पेड़ के सामने खड़े दिखाये गये हैं। कई अन्य स्थानों पर शेर अथवा किसी अन्य जानवर को वृक्ष के सामने बिंबित किया गया है। एक स्थान पर वृक्ष के सामने सात मानवीय आकृतियां खड़ी दिखाई गयी हैं और वृक्ष के अन्दर एक आकृति जिसके सिर पर सींग हैं, दिखाई गयी है जैसी कि पीछे चर्चा की गयी है सींग वाली आकृति संभवतः शिव की है। भारत में पीपल के पेड़ की पूजा युगों से होती रही है और कहीं-कहीं पीपल के पेड़ और शिव की पूजा साथ-साथ होती दिखाई गयी है। सात आकृतियां बहुधा सात महान् ऋषियों अथवा भारतीय मिथक की सात जननी मानी गयी हैं।

कुछ पौराणिक नायक

कुछ अन्य माननीय आकृतियां जिनका धार्मिक महत्व हो सकता है मुहरों और गण्डों पर पायी गयी है मुहरों के सिर पर सींग तथा लम्बी दुम वाली आकृतियां बड़ी मात्रा में पायी गयी है यदा कदा इन आकृतियों के खुर तथा पिछली टांगे जानवरों जैसी दिखाई गयी हैं। कुछ अन्य मुहरें मेसोपोटामिया के मिथकों से मिलती-जुलती हैं।

उदाहरण के लिए दो शेरों से लड़ता हुआ एक पुरुष हमारा ध्यान तुरन्त उस प्रसिद्ध योद्धा गिलगणेश की ओर ले जाता है जिसके विषय में दो शेरों को मारने की कथा प्रचलित है।

जानवरों की पूजा

ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा के लोग कई प्रकार के जानवरों की पूजा करते थे, इस सन्दर्भ में भी हमारी जानकारी का स्रोत मुहरें एवं पक्की मिट्टी की मूर्तियां हैं, चन्हुदाडो में एक मुहर मिली है जिसमें लिंग बाहर किए हुए सांड एक झकी हुई मानव आकृति के साथ संभोग कर रहा है। यह निश्चित रूप से अभिजनन के प्रति विश्वास का सूचक है। मुहरों पर बहुधा एक ब्राह्मणी बैल चित्रित मिलता है जिसके गले के नीचे भारी झालरदार खाल लटकती दिखाई देती है। संभवतः वर्तमान सभ्यता के बैलों एवं गायों के प्रति आदर भाव के बीज हड़प्पा-सभ्यता में रहे हों।

मिथकीय जानवर

मुहरों पर विभिन्न समष्टि आकृति वाले जानवर चित्रित किए गए हैं, मुहरों पर ऐसा जानवर रूपी जीव मिलते हैं जिनका अगला हिस्सा मनुष्य जैसा है तथा पिछला शेर जैसा दिखाया गया है। इसी प्रकार भेड़ों, बैलों तथा हाथियों की मिली-जुली आकृतियों वाले समष्टि काफी संख्या में प्राप्त हुई हैं। वे निश्चित रूप से पूज्य आकृतियां रही होंगी। हड़प्पा के बाद

के भारतीय परंपरा के मिथकों में समष्टि आकृति वाले जीवों जैसे "नर सिंह" का विशेष स्थान रहा है। हड़प्पा की मुहरों पर एक अन्य महत्वपूर्ण जानवर एक श्रुद्ध (Unicorn) चित्रित मिलता है। यह एक घोड़े जैसा जानवर है जिसके सिर के बीच एक सींग निकली हुई है। इस जानवर के सामने एक विचित्र वस्तु दिखाई देती है जो कि किसी अन्य जानवर से मिलती-जुलती नहीं है। इस चित्र में एक पिंजरे जैसी वस्तु एक दंड से लटक रही है। दंड के बीच में एक कटोरे जैसी वस्तु है। हमें इस वस्तु का प्रयोजन ज्ञात नहीं है। इसकी पहचान पवित्र हौदे अथवा धूपदान के रूप में की गयी है। एक अन्य मुहर में एक श्रुद्ध एक मिथकीय पशु था क्योंकि इस प्रकार का कोई पशु कहीं नहीं पाया जाता। संभवतः इसकी उपासना की जाती रही होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि कालीबंगन एवं लोथल के हड़प्पावासी भिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे कालीबंगन में किले में उभरी ईंटों के मंच मिले हैं जिनके ऊपर "अग्नि वेदिया" है जिनमें पशुओं की हड्डियां एवं राख है, इस स्थान पर भी कुआं और स्नानगृह हैं। यह स्थान पूजा क्रिया का केन्द्र रहा होगा जहा पशुओं की बलि धार्मिक पवित्रीकरण तथा अग्नि की पूजा की जाती रही होगी निचले नगर के कई मकानों में भी "अग्नि वेदी" वाल कमरे हैं। कई अन्य "अग्निवेदिया" होने की भी जानकारी मिली है, लोथल में भी "अग्निवेदिया" पायी गयी हैं यह प्रमाण अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि।

अ) इनमें यह संकेत मिलता है कि विभिन्न क्षेत्रों के हड़प्पावासी विभिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे, तथा

ब) वैदिक युग के धर्म में अग्नि पूजा का केन्द्रीय महत्व था।

वेद युग के आर्यजन भिन्न प्रकार के लोग थे, कालीबंगन से मिले प्रमाणों से ज्ञात होता है कि आर्यों ने हड़प्पा क्षेत्र में आकर बसने के बाद हड़प्पा के लोगों की ही धार्मिक रीतियों को अपनाया।

8.4.3 मृतकों का अंतिम संस्कार

मानव जाति अपने सगे सम्बन्धियों के मृत शरीरों के अंतिम संस्कार को महत्वपूर्ण धार्मिक गतिविधि के रूप में मानती रही है। इसका कारण मृतकों के प्रति दृष्टिकोण तथा इस जीवन तथा मृत्योपरांत जीवन के सम्बंध में मानव जाति के विश्वास से परस्पर जुड़ाव है, हड़प्पा सभ्यता से मृतकों का कोई ऐसा स्मारक नहीं प्राप्त हो सका है जो मिश्र के पिरामिड अथवा मेसोपोटमिया के उप नगर के राजकीय कब्रिस्तान के वैभव की बराबरी कर सकें। तथापि हमें हड़प्पा के लोगों में प्रचलित अंतिम संस्कार पद्धति के विषय में कुछ प्रमाण मिले हैं हड़प्पा में कई कब्रें मिली हैं। शव साधारणतया उत्तर-दक्षिण दिशा में रख कर दफनाए जाते थे। उन्हें सीधा लिटाया जाता था। कब्र में बड़ी संख्या में मिट्टी के बर्तन रख दिए जाते थे कुछ स्थानों पर शवों को गहनों जैसे सीप की चूड़ियों, हार, तथा कान की बालियों के साथ दफनाया जाता था कुछ कब्रों में तांबे के दर्पण, सीप, और सुरमें की सलाइयां भी रखी जाती थी। कई कब्रें ईंटों की बनी हुई मिली है। हड़प्पा में एक कब्र में तांबत भी प्राप्त हुआ है। कालीबंगन में अंतिम संस्कार की भिन्न रीतियां देखने को मिली हैं। यहा पर छोटे-छोटे वृत्ताकार गड्ढे देखे गए हैं। जिनमें बड़ी राखदानियां तथा मिट्टी के बर्तन मिले हैं। लेकिन यहां कंकालों के अवशेष नहीं मिले हैं। कुछ ऐसे भी गड्ढे मिले हैं जिनमें हड्डियां एकत्रित मिली हैं। लोथल में साथ-साथ दफनाए गए महिला एवं पुरुष के मुर्दों के कंकालों के जोड़े मिले हैं।

इन रीतियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हड़प्पा के लोगों में मुर्दों के अंतिम संस्कार की रीतियां भारत में बाद में आने वाले समय की रीतियों से भिन्न थीं। भारत के ऐतिहासिक चरणों में अंतिम संस्कार की मुख्य पद्धति दाह संस्कार प्रतीत होती है। साथ ही मुर्दों का सावधानीपूर्वक रखकर अंतिम संस्कार करना तथा आभूषण एवं शृंगार की वस्तुएं उनके साथ रखना इस तथ्य का द्योतक है कि वे लोग मरणोपरांत जीवन में विश्वास रखते थे। इस विश्वास के स्वरूप के विषय में हमें जानकारी नहीं है।

खुदाई से प्राप्त विभिन्न वस्तुओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सभ्यता के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की धार्मिक रीतियां प्रचलित थीं। कालीबंगन तथा लोथल में अग्नि पूजा प्रचलित थी किन्तु हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो में ऐसा प्रचलन नहीं

था। मोहनजोदड़ो में प्रचलित पवित्र स्नान की रीति संभवतः हड़प्पा में नहीं थी। अंतिम संस्कार में विस्तृत विभिन्नता देखने को मिलती है। एक साथ कई मुर्दे दफनाने से लेकर जोड़े दफनाने तथा मुर्दे के साथ कुछ वस्तुएं रखने तक की रीतियां पायी गयी हैं। कालीबंगन से प्राप्त जानकारी के आधार पर ऐसे तथ्य भी प्राप्त हुए हैं जो यह बताते हैं कि एक ही स्थान पर भी अंतिम संस्कार की भिन्न रीतियां प्रचलित थी। धार्मिक विश्वास एवं रीतियों की इस विभिन्नता से मुख्य नगरों के जटिल स्वरूप की ओर संकेत मिलता है जनजाति समाजों के विपरीत से जहां जनजाति का प्रत्येक सदस्य समान धार्मिक रीति का पालन करता है। मुख्य नगरों में यह विशेषता दिखाई देती है कि वहां के निवासी विभिन्न धार्मिक रीतियों का पालन करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुख्य नगरों का गठन विभिन्न सामाजिक समूहों के राजनैतिक एवं आर्थिक एकीकरण से हुआ होगा। इसके अतिरिक्त मुख्य नगरों में भिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारी निवास करते होंगे। वे लोग अपनी राजनैतिक तथा आर्थिक विशिष्टता तो बनाये न रख पाये होंगे। लेकिन अपनी सामाजिक तथा धार्मिक रीतियों का पालन करते रहे होंगे।

बोध प्रश्न 3

1 हड़प्पा की धार्मिक इमारतों में से किस इमारत से सामूहिक पूजा के प्रचलन की ओर संकेत मिलता है?

.....

.....

.....

.....

2 निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही हैं?

- i) संभवतः शिव हड़प्पावासियों के सबसे महत्वपूर्ण देवता हैं। ()
- ii) हड़प्पा के आराध्यों में कोई देवी नहीं है। ()
- iii) हड़प्पावासी संभवतः वृक्षों की भू पूजा करते थे। ()
- iv) हड़प्पावासी किसी पशु की पूजा नहीं करते थे। ()

3 क्या हमें हड़प्पा में अग्नि पूजा के प्रमाण मिले हैं?

.....

.....

.....

.....

4 हड़प्पावासियों में मुर्दे दफनाने की रीति के अध्ययन से उस समाज के विषय में से कौन से मुख्य बिन्दु उभरते हैं?

.....

.....

.....

.....

8.5 सारांश

इस इकाई में हमने हड़प्पावासियों के दैनिक जीवन से जुड़े सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों पर चर्चा की।

हड़प्पावासियों के मुख्य पहनावे आधुनिक साड़ियों जैसे बगैर सिले हुए वस्त्र होते थे जोकि शरीर पर लपेट लिए जाते थे। पुरुष एवं महिलाएं समान रूप से घाघरा एवं कमीज पहनते थे। विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का सेवन किया जाता था। मुख्य खाद्य पदार्थों में चावल, जौ, बाजरा तथा गेहूं का सेवन किया जाता था। विभिन्न प्रकार के फल, सब्जियां तथा मांसाहारी भोजन भी इस्तेमाल किए जाते थे। आशा है कि उपखण्ड 8.2.2 में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर आपको स्पष्ट हो गया होगा। यदि स्पष्ट नहीं हुआ तो उसका कारण यह है कि उस समय उस क्षेत्र में न चाय उगाई जाती थी और न ही आलू की खेती होती थी।

पुरातत्वशास्त्री तथा भाषाविद् अभी भी हड़प्पा की लिपि से जूझ रहे हैं वे अभी तक उसे पढ़ने में समर्थ नहीं हो पाए हैं।

उनकी बस्तियों की किले बंदी तथा प्राप्त हथियारों से उनके युद्ध करने की ओर भी संकेत मिलता है।

मिट्टी के बर्तन बनाना, धातुओं के काम, मालाएं बनाना तथा अन्य शिल्प कलाएं हड़प्पा सभ्यता का अंग थी। यह हड़प्पा में दस्तकार तथा नगर स्थित श्रमिकों के अस्तित्व का द्योतक है। संभवतः समाज वर्गों में विभाजित था ऐसे भी संकेत मिलते हैं कि हड़प्पा में किसी न किसी प्रकार की राजनैतिक संरचना विद्यमान थी। नगरों में प्रमुख सामाजिक वर्ग प्रशासक, पुजारी, व्यापारियों तथा बड़ी संख्या में श्रमिकों के सामाजिक वर्ग रहे होंगे।

कुछ बड़ी इमारतें सामूहिक पूजा अथवा धार्मिक संस्कारों की ओर संकेत करती हैं। भारी संख्या में देवी-देवताओं तथा अन्य आराध्यों की पूजा किए जाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। प्रमुख रूप से मात्र देवी, शिव तथा कई प्रकार के पशु एवं वृक्ष आराध्य थे कुछ समष्टि रूपी मिथकीय पशु भी धार्मिक विश्वासों का अंग थे।

मुर्दों के अंतिम संस्कार का सबसे प्रचलित तरीका दफनाना था न कि दाह संस्कार। कब्रों में कई प्रकार के आभूषण तथा अन्य वस्तुएं भी प्राप्त हुई हैं। इन सभी प्रमाणों से हमें हड़प्पा समाज के प्रति यदि पूरी नहीं तो संतोषजनक जानकारी अवश्य प्राप्त हो जाती है।

8.6 शब्दावली

लिपि : लिखने की पद्धति।

अभिजनन पंथ : पूजा की वह रीति जिसमें प्रकृति एवं मानव जाति के पुनरुत्पादकता के पक्ष पर बल दिया जाता है। इस पंथ का केन्द्र बिन्दु है ऐसा विश्वास कि पूजा से फसल अथवा बच्चे प्रचुर मात्रा में पैदा होंगे।

अग्निवेदियां : कालीबंगन में पाए गए ईंटों से बने गड्डे इनमें जानवरों की हड्डियां तथा राख मिली है विभिन्न समाजों में अग्नि पूजा होती रही है। वैदिक समाज में इसी प्रकार गड्डे खोदे जाते थे जिनमें अग्नि प्रज्वलित करके उनकी पूजा की जाती थी।

एक श्रृङ्ग : एक मिथकीय पशु जिसका शरीर घोड़े जैसा है और सिर पर एक सीधी सींग है।

उर के राजकीय कब्रिस्तान : मेसोपोटामिया के उर नगर में मिला कब्रिस्तान जो कि ईसा पूर्व तृतीय सहस्र युग का है इस कब्रिस्तान में कई राजाओं की कब्रें हैं।

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓

- 2 i) पक्की मिट्टी की बनी मानव मूर्तियां ii) तांबा iii) जौ, गेहूँ और जौ, चावल तथा बाजरा iv) पत्थर।
- 3 आपका उत्तर निम्न बातों पर आधारित होना चाहिए :
 - कौन सी वर्तमान भाषा हड़प्पा लिपि से निकली प्रतीत होती है?
 - इसमें क्या परिवर्तन आए हैं, और
 - क्या हम इसे पढ़ पाने में सक्षम हैं?

बोध प्रश्न 2

- 1 आपके उत्तर में काफी बड़े क्षेत्र में फैली ईंटों की बनी मिली कई इमारतें भारी संख्या में प्राप्त दस्कारी उत्पादन नगरों में नालियों की व्यवस्था आदि का विवरण होना चाहिए। खण्ड 8.3 भी देखें।
- 2 आपके उत्तर में सुनियोजित नगर, बड़े-बड़े निवास, अनाज गोदाम तथा उनका प्रबंधन तथा इसी प्रकार के अन्य तथ्यों का विवरण होना चाहिए। खण्ड 8.3 पुनः देखें।

बोध प्रश्न 3

- 1 मंदिरों जैसी बड़ी-बड़ी इमारतें जिनमें कई प्रकार के शिल्प, आम स्नानगृह, सभागार तथा अग्नि कुण्ड आदि। (खण्ड 8.4 तथा उपखण्ड 8.4.1) देखें।
- 2 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ×
- 3 कालीबंगन तथा लोथल जैसी हड़प्पा बस्तियों से प्राप्त जानकारी से यहां अग्निपूजा का प्रमाण मिलता है। सार्वजनिक पूजा स्थलों तथा घरों में भी अग्निवेदियों का पाया जाना इसके प्रमाण हैं। उपखण्ड 8.4.2 का अंतिम पैराग्राफ देखें।
- 4 सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि मृतकों को कुछ संस्कारों के साथ दफनाया जाता था ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पावासी मरणोपरांत जीवन में विश्वास रखते थे। क्योंकि मूर्तियों के साथ रोजमर्रा के इस्तेमाल की वस्तुएं अथवा आभूषण रख दिए जाते थे। कभी-कभी महिला तथा पुरुष के जोड़े साथ-साथ दफनाए जाते थे। कभी-कभी राखदानी जिसमें हड्डियां रखी होती थीं भी दफनायी जाती थीं।

इकाई 9 हास और विघटन

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 हड़प्पा का हास : पुरातात्विक साक्ष्य
- 9.3 आकस्मिक हास के सिद्धांत
 - 9.3.1 बाढ़ और भूकम्प
 - 9.3.2 सिंधु नदी का मार्ग बदलना
 - 9.3.3 वर्धित शुष्कता और घग्घर का सूख जाना
 - 9.3.4 बर्बर आक्रमण
- 9.4 पारिस्थितिक असन्तुलन
- 9.5 परम्परा बाद में भी जीवित रही
 - 9.5.1 सिंध
 - 9.5.2 भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश
 - 9.5.3 पंजाब, हरियाणा और राजस्थान
 - 9.5.4 कच्छ और सौराष्ट्र
- 9.6 हड़प्पा परम्परा का प्रसार
- 9.7 हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष
- 9.8 सारांश
- 9.9 शब्दावली
- 9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित के विषय में जानकारी मिलेगी :

- हड़प्पा सभ्यता के हास को समझ पाने में विद्वानों के समक्ष आई समस्याएं,
- हड़प्पा के हास के विषय में विद्वानों द्वारा दिये गये विभिन्न मत, विद्वानों के अनेक वर्षों से हड़प्पा के हास के कारण खोजना क्यों बंद कर दिया है, और
- अब विद्वान हड़प्पा-सभ्यता के काफी समय तक बने रहने के साक्ष्य खोज रहे हैं।

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हमने हड़प्पा-सभ्यता के उद्भव और संवृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया था। तथापि इसकी परिपक्वता के विभिन्न पहलुओं जैसे लेखन, नगर नियोजन आदि का प्राचीन भारत के बाद के चरण में लुप्त हो जाना एक रहस्य ही है। इस इकाई में हम इस रहस्य को सुलझाने की दिशा में प्रस्तुत विभिन्न तर्कों की परीक्षा करेंगे।

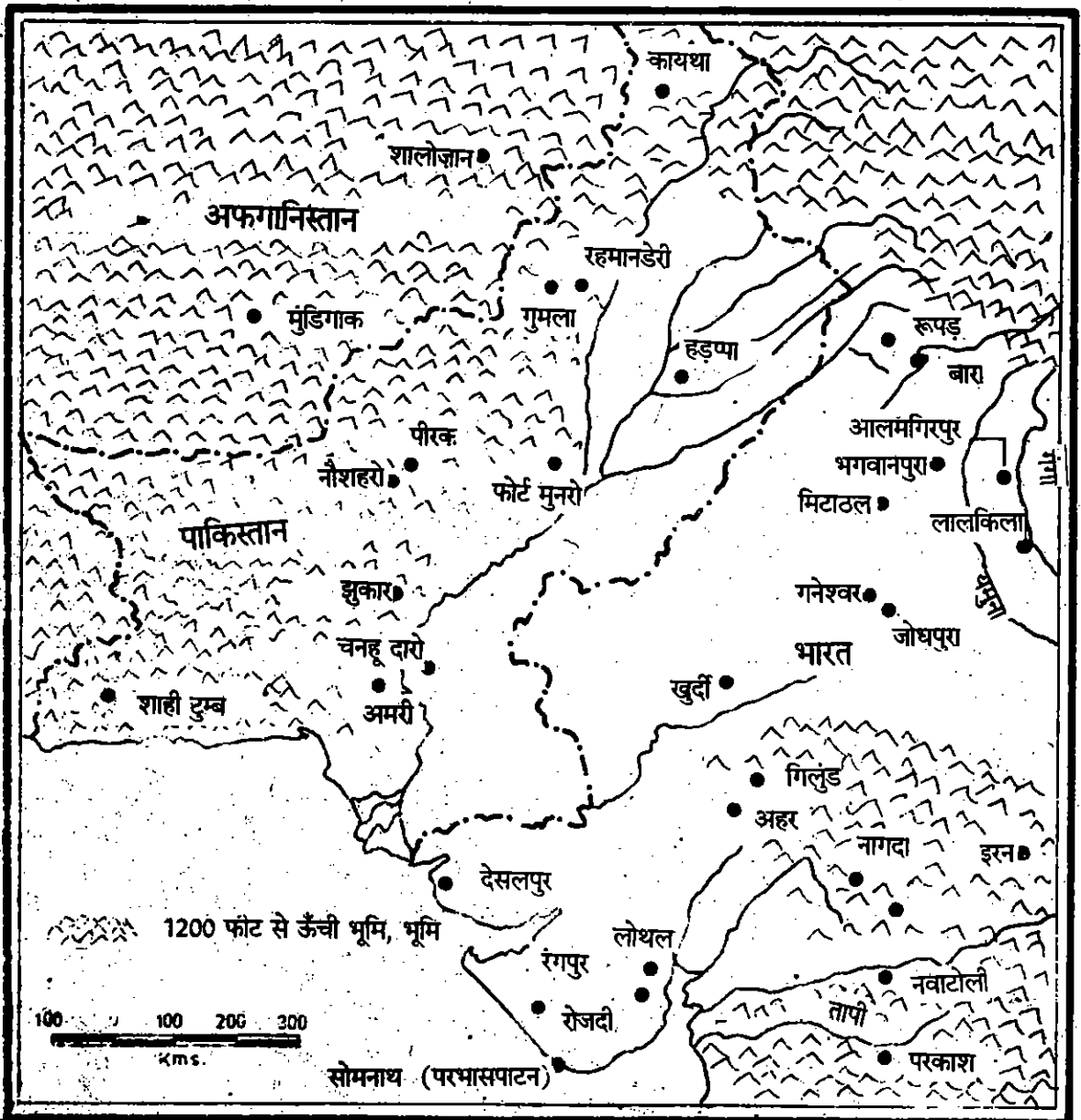
9.2 हड़प्पा का हास : पुरातात्विक साक्ष्य

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन जैसे नगरों का नगर नियोजन और निर्माण में क्रमिक हास हुआ। पुरानी जीर्ण ईंटों से बने और घटिया निर्माण वाले घरों ने नगरों की सड़कों और

गलियों पर भी कब्जा कर लिया। पतली विभाजक दीवारों से घरों के आंगनों का उपविभाजन कर दिया गया। शहर बड़ी तेजी से तंग बस्तियों में बदल रहे थे। मोहन-जोदड़ो के वास्तुकला के विस्तृत अध्ययन से पता चलता है कि विशाल स्नानागार के अनेक प्रवेश मार्ग अवरुद्ध हो गए थे। कुछ समय बाद "विशाल स्नानागार" और "अन्न भण्डार" का उपयोग पूर्णतः समाप्त हो गया। इसी समय मोहनजोदड़ो में अपेक्षाकृत बाद के निवास स्थानों में मूर्तियों और लघुमूर्तियों मनकाओं, चूड़ियों और पछचीकारी की संख्या में स्पष्ट कमी दिखाई देती है। अन्त में मोहनजोदड़ो नगर मूलतः पच्चासी हेक्टेयर से सुकड़ कर मात्र तीन हेक्टेयर की छोटी सी बस्ती रह गया।

हड़प्पा के परित्याग से पहले लगता है एक और जन समूह आया था जिनकी जानकारी हमें उनकी मृदों को दफनाने की पद्धतियों से चलता है। वे मिट्टी के जिन बर्तनों का इस्तेमाल करते थे वे बर्तन हड़प्पा निवासियों के बर्तनों से भिन्न थे। उनकी संस्कृति को "सिमेटरी-एच" (कब्रिस्तान-एच) संस्कृति कहा जाता है। कालीबंगन और चहुदाड़ो जैसे स्थानों में भी हास की प्रक्रिया स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। हम देखते हैं कि शक्ति और विचारधारा से सम्बद्ध और भव्यता प्रदर्शन के सामान अधिक से अधिक दुर्लभ हो रहे थे। बाद में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे नगरों का पूर्ण परित्याग हो गया।

बहावलपुर क्षेत्र में हड़प्पा कालीन और परवर्ती हड़प्पा कालीन स्थानों के शहरी तमूने के



आवृत्ति-3 उत्तर हड़प्पा काल की बस्तियां

अध्ययन से भी हास की प्रवृत्ति लक्षित होता है। नदी के हाकड़ी तटा के साथ परिपक्व काल में जहाँ 174 बस्तियाँ थी, वहाँ उत्तरवर्ती हड़प्पा काल में बस्तियों की यह संख्या घटकर 50 रह गई। इस बात की संभावना है कि अपने जीवन के बाद के दो-तीन सौ वर्षों में हड़प्पा-सभ्यता के मूल प्रदेश में बस्तियों का हास हो रहा था। जन समूह या तो नष्ट हो गए थे या अन्य क्षेत्रों में चले गए थे। जहाँ हड़प्पा, बहावलपुर और मोहनजोदड़ो के त्रिभुज में बस्तियों की संख्याओं में हास हुआ वहीं गुजरात, पूर्वी पंजाब, हरियाणा और ऊपरी दोआब के दूरस्थ क्षेत्रों में बस्तियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। इससे इन क्षेत्रों में लोगों की संख्या में अपूर्व वृद्धि का संकेत मिलता है। इन क्षेत्रों की जनसंख्या में आकस्मिक वृद्धि का कारण हड़प्पा के मूल क्षेत्रों से लोगों का आना हो सकता है।

हड़प्पा-सभ्यता के दूरस्थ क्षेत्रों में जैसे, जेरात, राजस्थान और पंजाब के प्रदेश में लोग रहते रहे। लेकिन उनके जीवन में परिवर्तन आ गया था। हड़प्पा-सभ्यता से संबद्ध कुछ महत्वपूर्ण लक्षण जैसे लेखन, तोलने के समान बाट, हड़प्पा कालीन मिट्टी के बर्तन और वास्तुकला शैली-लुप्त हो गए थे।

सिंधु नदी के नगरों का परित्याग स्थूल रूप से लगभग 1800 ई. पू. में हुआ। इस तारीख का समर्थन इस तथ्य से होता है कि मेसोपोटामिया साहित्य में 1900 ई. पू. के अंत तक मेलुहा का उल्लेख समाप्त हो गया था। तथापि आज भी हड़प्पा कालीन नगरों के अंत का कालानुक्रम स्थाई नहीं है। हम आज तक यह नहीं जान सके कि मुख्य बस्तियों का परित्याग एक ही समय हुआ अथवा भिन्न-भिन्न अवधियों में हुआ। तथापि यह अवश्य निश्चित है कि मुख्य नगरों के परित्याग और अन्य बस्तियों के विनगरीकरण से हड़प्पा-सभ्यता के हास का संकेत मिलता है।

9.3 आकस्मिक हास के सिद्धांत

विद्वानों ने इस प्रश्न के विभिन्न उत्तर दिए हैं कि यह सभ्यता नष्ट क्यों हुई? कुछ विद्वानों ने जिनका विश्वास है कि सभ्यता का नाटकीय अंत हो गया। उन्होंने आकस्मिक विपत्ति के ऐसे साक्ष्य खोजे हैं जिससे शहरी समुदायों का सत्यानाश हो गया। हड़प्पा-सभ्यता के हास के लिए कुछ अपेक्षाकृत अधिक भुक्ति युक्त सिद्धांत निम्न हैं :

- क) यह भयंकर बाढ़ से नष्ट हो गई।
- ख) हास नदियों का रास्ता बदलने से और घग्घर-हाकड़ नदी तंत्र के धीरे-धीरे सूख जाने के कारण हुआ।
- ग.) बर्बर आक्रमणकारियों ने शहरों को बर्बाद कर दिया।
- घ) केन्द्रों की बदली हुई मांगों तक क्षेत्र की पारिस्थितिकी भंग हो गई और उसे संभाला नहीं जा सका।

आइए, इन स्पष्टीकरणों पर उनके गुण-दोषों के आधार पर चर्चा करें।

9.3.1 बाढ़ और भूकम्प

हड़प्पा सभ्यता के हास के लिए विद्वानों ने जो कारण बताए हैं, उनमें उन्होंने मोहनजोदड़ो में बाढ़ आने के साक्ष्य भी शामिल किए हैं। प्रमुख खुदाई करने वालों के अभिलेखों तक पता चलता है कि मोहनजोदड़ो में रिहाइश की विभिन्न अवधियों में अत्यधिक बाढ़ के साक्ष्य मिले हैं, यह निष्कर्ष इस तथ्य से निकाला जा सकता है कि मोहनजोदड़ो में मकानों और सड़कों पर इसके लम्बे इतिहास में अनेक बार कीचड़युक्त मिट्टी भरी पड़ी थी और टूटे हुए भवनों की सामग्री और मलबा भरा पड़ा था। लगता है कीचड़युक्त यह मिट्टी उस बाढ़ के पानी के साथ आई जिस पानी में सड़कें और मकान डूब गए थे। बाढ़ का पानी उतर जाने के बाद मोहनजोदड़ो के निवासियों ने पहले के मकानों के मलबे के ऊपर फिर से मकान और सड़कें बना लीं। इस प्रकार की भयंकर बाढ़ और मलबे के ऊपर पुनःनिर्माण का सिलसिला कम से कम तीन बार चला।

रिहाइशी क्षेत्र में खुदाई से पता चला है कि 70 फुट ऊँचाई तक रिहाइशी तलों का सिलसिला था। यह ऊँचाई के बराबर है। आवासी क्षेत्र मिट्टी भर जाने के कारण अलग-अलग हो गए थे। आज के भूतल से 80 फुट ऊँचाई तक कई स्थानों पर मिट्टी के ढेर मिले हैं। इस प्रकार, कई विद्वानों का विश्वास है कि ये मोहनजोदड़ो में विनाशकारी बाढ़ आने के साक्ष्य हैं। इन बाढ़ों के कारण अपने पूरे इतिहास काल में शहर बार-बार अस्थायी रूप से वीरान हुआ और फिर बसा।

यह बाढ़ महा भयंकर थी। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि नदी की मिट्टी के ढेर आज के भूतल से 80 फुट ऊँचाई तक मिले हैं जिसका अर्थ है कि बाढ़ का पानी इस क्षेत्र में इस ऊँचाई तक पहुँचा। मोहनजोदड़ो के हड़प्पा निवासी इन बार-बार आने वाली बाढ़ों का मुकाबला करने में हिम्मत हार गए। एक अवस्था ऐसी आई जब कंगाल हड़प्पा निवासी इसे और सहन न कर सके और इन बस्तियों को छोड़कर चले गए।

रेईक्स (Raikes) की प्रकल्पना

महा भयंकर बाढ़ के सिद्धांत का विख्यात जलविज्ञानी आर.एल. रेईक्स ने भी समर्थन किया है। उसका मत है कि ऐसी बाढ़ जो बस्ति के भूतल से 30 फुट ऊँचे भवनों को छू सकती थी, सिंधु नदी में सामान्य बाढ़ आने का परिणाम नहीं हो सकती। उसका विश्वास है कि हड़प्पा सभ्यता का हास भयंकर बाढ़ के कारण हुआ। जिससे सिंधु नदी के तट पर स्थित नगर बहुत समय तक डूबे रहे। उसने बताया है कि भू-आकृति विज्ञान की दृष्टि से क्षेत्र अशान्त भूकम्प क्षेत्र है। भूकम्पों से हो सकता है, निम्न सिंधु नदी के बाढ़ मैदानों का स्तर ऊँचा हो गया हो। सिंधु नदी से लगभग समकोण पर एक घुरी के साथ-साथ मैदान के इस उत्थान से नदी का समुद्र की ओर मार्ग अवरुद्ध हो गया। इससे सिंधु नदी में पानी इकट्ठा होने लगा। उस क्षेत्र में एक झील सी बन गई जहां कभी सिंधु नदी के शहर आबाद थे। और इस प्रकार, नदी के बढ़ते हुए पानी के स्तर में मोहनजोदड़ो जैसे शहर डूब गए।

यह बताया जा चुका है कि करांची के पास बालाकोट और मकरान तट पर सतकाग्रदौड़ और सतका-कोह जैसे स्थान हड़प्पा निवासियों के समुद्री तट थे। तथापि आजकल ये समुद्र तट से दूर स्थित हैं। ऐसा संभवतः उग्र भूकम्प के कारण समुद्र तट पर भूमि के उत्थान के परिणामस्वरूप हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसे उत्थान दूसरी सहस्राब्दि ई. पू. में किसी समय हुए। इन उग्र भूकम्पों से जिन्होंने नदियों को अवरुद्ध कर दिया और शहरों को जला दिया, हड़प्पा-सभ्यता नष्ट हो गई। इससे नदी पर आधारित वाणिज्यिक गतिविधियों और तटीय संचार भंग हो गया।

आलोचना

हड़प्पा-सभ्यता के महा भयंकर विनाश का महान सिद्धांत कई विद्वानों को मान्य नहीं है। एच.टी. लैम्ब्रिक (H.T. Lambrick) का कहना है कि यह विचार कि एक नदी भूकम्पीय उत्थानों से इस प्रकार अवरुद्ध हो जाएगी, निम्नलिखित दो कारणों से सही नहीं है :

- 1) यदि किसी भूकम्प से अनुप्रवाह पर एक कृत्रिम बंद बन भी गया था, तो भी सिंधु नदी के अत्यधिक मात्रा में जल से वह आसानी से टूट गया होगा। सिंधु में हाल ही में 1819 के भूकम्प से जो टीला बन गया था, वह सिंधु की एक छोटी नदी नारा से उत्पन्न पहली बाढ़ में ही बह गया था।
- 2) जमा हो गई गाद (कीचड़) परिकल्पित झील में पानी के उठते हुए तल के समान्तर हो गई होती। यह नदी के पिछले मार्ग के तल के साथ जमा होगी। इस प्रकार मोहनजोदड़ो की गाद बाढ़ के कारण इकट्ठी नहीं हुई थी। इस सिद्धांत की दूसरी आलोचना यह है कि इस सिद्धान्त में सिंधु नदी तंत्र के बाहर की बस्तियों के हास का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

9.3.2 सिंधु नदी का मार्ग बदलना

लैम्ब्रिक ने इस हास के लिए अपना स्वयं का स्पष्टीकरण दिया है। उसका मत है कि सिंधु नदी के मार्ग में परिवर्तन मोहनजोदड़ो नगर के विनाश का कारण हो सकता है। सिंधु नदी एक अस्थिर नदी तंत्र है जो अपना तल बदलता रहता है, स्पष्टतः सिंधु नदी मोहनजोदड़ो

से लगभग 30 मील दूर चली गई। शहर और अरसपास के खाद्यान्न उत्पादक गांवों के लोग इस क्षेत्र से चले गए क्योंकि वे पानी के लिए तरस गए थे। मोहनजोदड़ो के इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ। शहर में देखी गई गाद वास्तव में हवा के कारण इकट्ठी हुई है क्योंकि हवा से बड़ी मात्रा में रेत और गाद उड़कर यहां आई। इस गाद और विघारित कीचड़, कच्ची ईंटों और पकी ईंटों की सरचनाओं तक वह गाद बन गई जिसे गली से बाढ़ से उत्पन्न गाद मान लिया गया।

इस सिद्धांत से भी हड़प्पा-सभ्यता के पूर्णतः हास के कारण स्पष्ट नहीं होते। अधिक से अधिक यह सिद्धांत मोहनजोदड़ो का वीरान हो जाना स्पष्ट कर सकता है और यदि मोहनजोदड़ो के निवासी नदी के मार्ग में इस प्रकार के बदलाव से परिचित थे तो वे स्वयं ही किसी नई बस्ती में जाकर क्यों नहीं बस सकते थे और मोहनजोदड़ो जैसा दूसरा शहर क्यों नहीं बसा सकते थे। स्पष्टतः ऐसा लगता है कि इसके कुछ और ही कारण थे।

9.3.3 बर्धित शुष्कता और घग्घर का सूख जाना

डी.पी. अग्रवाल और सुद ने हड़प्पा-सभ्यता के हास के लिए एक नया सिद्धान्त बताया है। उनका मत है कि हड़प्पा-सभ्यता का हास उस क्षेत्र में बढ़ती हुई शुष्कता के कारण और घग्घर नदी-हाकड़ा-के सूख जाने के कारण हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और राजस्थान में किए गए अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए उन्होंने बताया है कि द्वितीय सहस्राब्दि ई. पू. के मध्य तक शुष्कता की स्थितियों में बहुत वृद्धि हो गई थी। हड़प्पा जैसे अर्ध शुष्क क्षेत्रों में भी नमी और जल उपलब्धता में थोड़ी सी कमी के भी भयंकर परिणाम हो सकते थे। इससे कृषि उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता और इसके परिणामस्वरूप नगर की अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ता।

उन्होंने पश्चिम राजस्थान में अस्थिर नदी तंत्रों की समस्या पर चर्चा की है। जैसा पहले बताया जा चुका है। घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र हड़प्पा सभ्यता का एक मूल क्षेत्र था। घग्घर एक शक्तिशाली नदी थी जो समुद्र में गिरने से पहले पंजाब, राजस्थान और कच्छ के रन में से होकर बहती थी।

सतलुज और यमुना नदियां इस नदी की सहायक नदियां हुआ करती थीं। कुछ विवर्तनिक विक्षोभों के कारण सतलुज सिंध नदी समा गई तथा यमुना नदी गंगा नदी में मिलने के लिए पूर्व की ओर रास्ता बदल गई। नदी क्षेत्र में इस प्रकार के परिवर्तन से जिससे घग्घर जल विहीन हो गई, इस क्षेत्र में अवस्थित नगरों के लिए भयंकर उलझने हुई होंगी। स्पष्टतः बर्धित शुष्कता तथा जल निकासी स्वरूप में हुए परिवर्तन से आए पारिस्थितिक विक्षोभों से हड़प्पा-सभ्यता का हास हुआ।

यह सिद्धांत रोचक तो है, पर इसमें कुछ समस्याएं भी हैं। शुष्कता की परिस्थितियों के संबंध में सिद्धांतों का पूर्णतः अध्ययन नहीं किया गया है और इस संबंध में और सूचनाएं अपेक्षित हैं। इसी प्रकार घग्घर नदी सूख जाने का काल अभी तक उचित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सका।

9.3.4 बर्बर आक्रमण

वीलर का मत है कि हड़प्पा-सभ्यता आक्रमणकारी आर्यों ने नष्ट की थी। जैसा पहले बताया जा चुका है, मोहनजोदड़ो में आवास के अन्तिम चरणों में जनसंहार के साक्ष्य मिलते हैं। सड़कों पर मानव कंकाल पड़े मिले हैं। ऋग्वेद में इनके स्थानों पर दासों और दस्युओं के किलों का उल्लेख मिलता है। वैदिक देवता इन्द्र को पुरन्दर कहा जाता है, जिसका अर्थ है "किलों को नष्ट करने वाला"। ऋग्वेद कालीन आर्यों के आवास के भौगोलिक क्षेत्र में पंजाब तथा घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र शामिल थे। चूंकि इस ऐतिहासिक चरण में किसी अन्य संस्कृति समूहों के किले होने के कोई अवशेष नहीं मिलते। वीलर का मत है कि ऋग्वेद में जिसका उल्लेख है वे हड़प्पा के नगर ही हैं। वस्तुतः ऋग्वेद में एक स्थान का उल्लेख है जिसे हरियूपिया कहा गया है। यह स्थान रावी नदी के तट पर अवस्थित था। आर्यों ने यहां एक युद्ध लड़ा था। इस स्थान के नाम से हड़प्पा नाम के बहुत समान ध्वनि निकलती है। इन साक्ष्यों से वीलर ने निष्कर्ष निकाला कि हड़प्पा के शहरों को नष्ट करने वाले आर्य आक्रमणकारी ही थे।

यह सिद्धांत आकर्षक तो है, पर अनेक विद्वानों को मान्य नहीं है। उनका कहना है कि हड़प्पा-सभ्यता के हास का अनुमानित समय 1800 ई. पू. माना जाता है। पर इसके विपरीत आर्य यहां लगभग 1500 ई. पू. से पहले आए नहीं माने जाते। जानकारी की आज की स्थिति के अनुसार दोनों में से किसी भी समय को बदलता कठिन है और इसलिए संभावना यही है कि हड़प्पा निवासी, हड़प्पा निवासियों और आर्यों का कभी एक दूसरे से मिलन नहीं हुआ। साथ ही, न तो मोहनजोदड़ो में और न ही हड़प्पा में किसी सैन्य आक्रमण के साक्ष्य मिले हैं। सड़कों पर मनुष्यों के शव पड़े मिलने का साक्ष्य महत्वपूर्ण है। तथापि ऐसा आस-पास के पहाड़ी स्थानों से आए लुटेरों के हमलों से हो सकता है। बहरहाल बड़े शहरों का तो पहले से ही अपकर्ष हो रहा था। इसके लिए आक्रमण प्राक्कल्पना उचित स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

बोध प्रश्न 1

सही उत्तर पर निशान लगाइये।

1 हड़प्पा-सभ्यता का हास बाढ़ और भूकम्प सिद्धांत द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि :

- i) यह सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के हास को स्पष्ट करता है। ()
- ii) सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के हास को स्पष्ट नहीं कर सकता। ()
- iii) हड़प्पा निवासी बाढ़ों और भूकम्पों का सामना करना जानते थे। ()
- iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं। ()

2 हड़प्पा क्षेत्र में वर्धित शुष्कता हड़प्पा का हास स्पष्ट नहीं कर सकती, क्योंकि

- i) इस सिद्धांत पर पूरी तरह विचार किया गया है।
- ii) इस सिद्धांत पर पूरी तरह विचार नहीं किया जा सका है।
- iii) घग्घर नदी के सूखने का काल निर्धारण अभी तक ही हो सका है।
- iv) दोनों (ii) और (iii)।

3 बर्बर आक्रमणों ने हड़प्पा को तबाह किया, इस सिद्धांत के पक्ष और विपक्ष में साक्ष्यों पर लगभग 50 शब्दों में चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.4 पारिस्थितिक असंतुलन

फेयर सर्विस जैसे विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता का हास पारिस्थितिकी की समस्याओं के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उसने हड़प्पा नगरों की आबादी की गणना की है और नगर निवासियों की खाद्य जरूरतों का हिसाब लगाया है। उसने गणना की है कि इन क्षेत्रों में ग्राम निवासी अपनी उपज की लगभग 80% खपत स्वयं करते हैं और लगभग 20% बाजार में बिकने के लिए बचती है। यदि कृषि का सही प्रतिमान पहले भी विद्यमान रहा होता तो मोहनजोदड़ो जैसे नगर को, जिसकी आबादी लगभग 35 हजार थी, खाद्यान्न उगाने के लिए बहुत बड़ी संख्या में ग्राम निवासियों की आवश्यकता थी। फेयर सर्विस की गणना के अनुसार इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों में नाजुक पारिस्थितिक संतुलन इस लिए बिगड़ रहा था क्योंकि इन क्षेत्रों में मनुष्यों और मवेशियों की आबादी अपर्याप्त जंगलों, खाद्यान्न और

हास के सिद्धांत I

आकस्मिक (महासंकट) सिद्धांत

बाढ़ और भूकम्प

बाढ़ : साक्ष्य

- क) गाद जमा होने से अवास तल अलग हो गए।
- ख) मकानों और सड़कों पर भूतल से 30 फुट तक गाद जमा हो गई।
- ग) गाद वाले मलबे पर मकान बनाए गए।

भूकम्प साक्ष्य

- क) सिंधु क्षेत्र अशान्त भूकम्प क्षेत्र है।

- ख) भूकम्प से बाढ़ के मैदानों का स्तर ऊंचा हो गया, जिससे नदी के पानी का समुद्र में जाने का रास्ता अवरुद्ध हो गया और पानी शहरों में घुस गया।
- ग) भूकम्प से भूमि समुद्र तट से दूर चली गई, जिससे वाणिज्य नगरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

आलोचना

- क) इस सिद्धांत से सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के हास के संबंध में स्पष्टीकरण नहीं मिलता।
- ख) दिवर्तनिक विशोभ से कोई नदी अवरुद्ध नहीं हो सकती।

मोहनजोदड़ो सिंधु नदी के मार्ग बदलने के कारण नष्ट हुआ

साक्ष्य

हड़प्पा में जो गाद मिली है, उसका कारण हवा है। जिसके साथ रेत और गाद आईं। रेतीली गाद बाढ़ों के कारण नहीं आईं।

आलोचना

इससे यह तो स्पष्ट किया जा सकता है कि लोग मोहनजोदड़ो को छोड़कर चले गए पर इससे इसका हास स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

वर्धित शुष्कता से हास हुआ

साक्ष्य

- क) द्वितीय सहस्राब्दि ई. पू. का मध्य-वर्धित शुष्कता की अवधि।
- ख) ऐसी स्थिति में अर्ध शुष्क क्षेत्र (जैसे हड़प्पा) पर सबसे अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा होगा—कृषि में हास हुआ होगा।
- ग) दिवर्तनिक दिक्षेभ से घग्घर जैसा नदी तंत्र प्रभावित हुआ होगा जो सूख गया।

आलोचना

- क) पूरी तरह परिणाम नहीं निकाले गए।

- ख) घग्घर नदी के सूखने का अभी तक काल निर्धारण नहीं हो सका है।

बर्बरी अथवा आर्य आक्रमणकारियों ने हड़प्पा को बर्बाद किया।

साक्ष्य

- क) सड़कों पर नर कंकाल पड़े हुए मिले हैं।
- ख) ऋग्वेद में "दासों" के किलों का वर्णन है, जिन्हें देवता पुरन्दर नष्ट करता है।
- ग) ऋग्वेद कालीन आर्यों के भौगोलिक क्षेत्र में पंजाब और घग्घर का क्षेत्र शामिल है।
- घ) वेदों में रावी नदी पर एक स्थान हरियरिया का उल्लेख मिलता है। जहाँ आर्यों ने युद्ध किया था। यह नाम हड़प्पा के नाम के समान है।

आलोचना

- हड़प्पा का हास 1800 ई. पू. के आस पास हुआ जबकि आर्य 1500 ई. पू. से पहले नहीं आए। अतः हड़प्पा निवासियों और आर्यों का संघर्ष स्वीकार करना कठिन है।

ईधन के स्रोतों को तेजी से समाप्त कर रही थी। हड़प्पा के नगर निवासियों, किसानों और पशुचारकों की सम्मिलित आवश्यकताएं इन क्षेत्रों में सीमित उत्पादन क्षमताओं से अधिक थीं। इसलिए मनुष्यों और पशुओं की बढ़ती हुई आबादी के कारण जिसे अपर्याप्त स्रोतों का सामना करना पड़ रहा था, प्रकृति की छटा मद्धम पड़ने लगी।

जंगल और घास के मैदान धीरे-धीरे लुप्त होते जाने के कारण अब अधिक बाढ़ आ रही थी और अधिक सूखा पड़ रहा था। जीविका के इस आधार के नष्ट हो जाने के कारण इस सभ्यता की समस्त अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ा। लगता है कि धीरे-धीरे लोग उन क्षेत्रों में बसने के लिए जाने लगे जहां जीविका की बेहतर संभावनाएं थी। यही कारण है कि हड़प्पा समुदाय सिंधु से दूर गुजरात और पूर्वी क्षेत्रों की ओर चले गए। अब तक जिन सिद्धांतों पर चर्चा हुई है, उन सभी में से फेयर सर्विस का सिद्धांत सर्वाधिक युक्ति-युक्त लगता है। संभवतः नगर नियोजन और जीवन स्तर में क्रमिक हास हड़प्पा निवासियों का जीविका आधार समाप्त हो जाने के कारण था। हास की यह प्रक्रिया आस-पास के समुदायों के आक्रमणों और छापों से पूरी हुई। तथापि पर्यावरण संकट के सिद्धांत में भी कुछ समस्याएं हैं।

- भारतीय उपमहाद्वीप की भूमि की उर्वरता बाद के सहस्राब्दों तक बनी रही, इससे इस क्षेत्र में भूमि की क्षमता समाप्त होने की प्राक्कल्पना उचित सिद्ध नहीं होती।
- साथ ही हड़प्पा निवासियों की जरूरतों की गणना अल्प सूचनाओं पर आधारित है और हड़प्पा निवासियों की जीविका संबंधी अपेक्षाओं की गणना करने के लिए काफी अधिक और सूचना अपेक्षित है।

इस प्रकार हड़प्पा निवासियों की आवश्यकताओं की एकता अल्प अपर्याप्त सूचना पर आधारित गणना तब तक मात्र प्राक्कल्पना ही रहेगी जब तक इसके पक्ष में और अधिक साक्ष्य नहीं जुटाए जा सकेंगे।

हड़प्पा-सभ्यता के आविर्भाव में नगरों कस्बों और गांवों, शासकों, किसानों और खानाबदोशों के बीच संबंधों का नाजुक संतुलन था। उनका पड़ोस के क्षेत्रों के उन समुदायों से भी दुर्बल लेकिन महत्वपूर्ण सम्बंध थे। इसी प्रकार, उनका समकालीन सभ्यताओं और संस्कृतियों से भी संपर्क बना हुआ था। इसके अतिरिक्त, हमें प्रकृति से संबंध के लिए पारिस्थितिक घटक पर भी विचार करना होगा। संबंध की इन शृंखलाओं की कोई भी कड़ी टूटने से नगरों के हास का पथ प्रशस्त हो सकता था।

9.5 परम्परा बाद में भी जीवित रही

सिंधु-सभ्यता का अध्ययन करने वाले विद्वान अब इसके हास के कारण नहीं खोजते। इसका कारण है कि जिन विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता का अध्ययन 1960 के दशक तक किया था। उनका मत था कि सभ्यता का अंत अचानक हुआ। इन विद्वानों ने अपना कार्य नगरों, नगर नियोजन और बड़ी संरचनाओं के अध्ययनों पर ही केन्द्रित किया। ऐसी समस्याएं, जैसे हड़प्पा नगरों के समकालीन गांवों से संबंध और हड़प्पा-सभ्यता के विभिन्न तत्वों की निरन्तरता अनदेखी कर दी गई। इस प्रकार हड़प्पा-सभ्यता के हास के कारणों के संबंध में वाद-विवाद अधिक से अधिक अमूर्त बनता गया। 1960 के दशक के अन्तिम चरण में जाकर ही मलिक और पौसेल जैसे विद्वानों ने अपना ध्यान हड़प्पा परम्परा की निरन्तरता के विभिन्न पहलुओं पर केन्द्रित किया। इन अध्ययनों के परिणाम हड़प्पा-सभ्यता के हास के कारणों के संबंध में वाद-विवाद से मुकाबला कहीं अधिक उत्तेजक निकला है। यह सत्य है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो को उनके निवासी खाली कर गए थे और नगर चरण समाप्त हो गया था। तथापि यदि हम हड़प्पा सभ्यता के सम्पूर्ण भौगोलिक प्रसार के परिप्रेक्ष्य में देखें तो काफी वस्तुएं उसी पुरानी शैली में चलती दिखाई देंगी। पुरातात्विक दृष्टि से कुछ परिवर्तन ध्यान देने योग्य हैं। कुछ बस्तियां तो खाली कर दी गईं पर अधिकतर और बस्तियों में रिहाइश जारी रही। तथापि, एकरूप लेखन, मुहर बांट और मिट्टी के बर्तनों की परम्परा समाप्त हो गईं। दूर-दराज की बस्तियों के बीच घनिष्ठ अंतःक्रिया सूचक

वस्तुएं नष्ट हो गईं। अन्य शब्दों में नगर केंद्रित अर्थव्यवस्थाओं से संबद्ध कार्यकलाप समाप्त हो गए। इस प्रकार जो परिवर्तन आए वे केवल नगर चरण की समाप्ति के ही सूचक थे। छोटे-छोटे गांव और कस्बे तब भी बने रहे और इन स्थानों की पुरातात्विक खोजों में हड़प्पा-सभ्यता के अनेक तत्व मिले हैं।

सिंध में अधिकतर स्थानों में मृद्भांड परम्परा में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। वस्तुतः गुजरात, राजस्थान और हरियाणा क्षेत्र के बाद के कालों में प्रवासी कृषि समुदायों का बहुत बड़ी संख्या में आविर्भाव हुआ। इस प्रकार क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में नगर चरण के बाद का काल समृद्ध गांवों का काल था। जिसमें नगर चरण के मुकाबले कहीं अधिक गांव थे। यही कारण है कि विद्वान आज सांस्कृतिक परिवर्तन, क्षेत्रीय प्रवयप और बसने और जीविका के तंत्र में संशोधन जैसे विषयों पर चर्चा करते हैं। तथापि कोई भी प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत में प्राचीन भारतीय सभ्यता नष्ट होने के बारे में बात नहीं करता जबकि गंगा घाटी के अधिकतर नगरों का हास हुआ था। आइए देखें नगर चरण की समाप्ति के बाद भी किस प्रकार के पुरातात्विक अवशेष विद्यमान थे।

9.5.1 सिंध

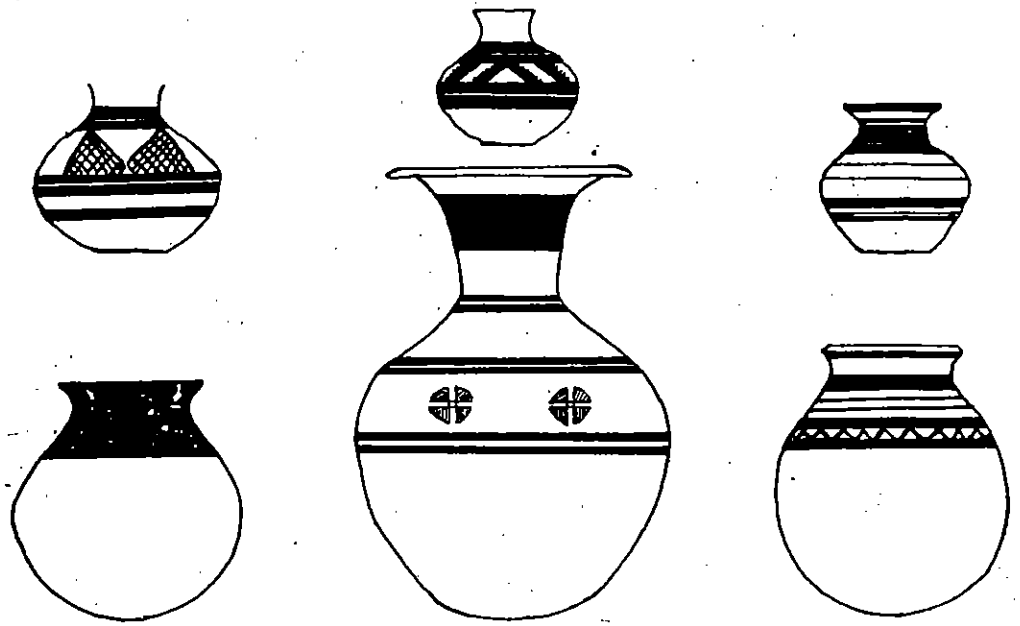
सिंध में, आमरी और चान्हुदाड़ों झकर जैसे हड़प्पा कस्बों में लोग ऐसे ही रहते रहे जैसे पहले रहते थे। वे अब भी ईंटों के मकानों में रहते थे पर उन्होंने सुनियोजित विन्यास त्याग दिया था। वे मामूली भिन्न मृद्भांड उपयोग में ला रहे थे जिसे भूकर मृद्भांड कहा जाता था। यह पांडुबतैन थे जिनमें लाल पट्टी थी और काले रंग में चित्रकारी थी। हाल ही के अध्ययनों से पता चला है कि यह "मृद्भांड प्रौढ़ हड़प्पा" मृद्भांड से विरसित किए गए थे और इसलिए इसे कोई नई चीज नहीं माना जाना चाहिए। झकर में कुछ विशिष्ट धातु की वस्तुएं मिली हैं जो ईरान के साथ व्यापार संबंधों की सूचक हो सकती हैं और इससे अधिक इस बात की भी संभावना प्रदर्शित करती हैं कि ईरानी अथवा मध्य एशिया प्रभावों वाले प्रवासियों का बड़ी संख्या में आगमन हुआ। दंड विवर, कुल्हाड़ियां, और तांबे की पिनें, जिनके सिरें कुड़लाकार अथवा अलकृत थे, जैसी यहां मिली हैं वैसी ईरानी वस्तुओं में भी मिली हैं। पत्थर अथवा प्रकाशित वस्तु की गोलाकार मुहरें और कांस्य प्रसाधन जार सिंधु के पश्चिम की संस्कृतियों से सम्पर्क के सूचक हैं।

9.5.2 भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश

सिंधु नदी के पश्चिम के क्षेत्र-बलूचिस्तान और भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश में भी उन लोगों के रहने के प्रमाण मिले हैं जो ठप्पेदार ताम्रमुद्रा और ताम्र दंड विवर कुल्हाड़ियां इस्तेमाल करते थे। शाही टम्प मुंडीगाक, नौ शहरों और पीराक जैसे स्थलों पर लोगों के ईरान से आवागमन और सम्पर्कों के प्रमाण मिले हैं। दुर्भाग्यवश हम बस्तियों का काल निर्धारण अभी तक स्पष्ट रूप से नहीं किया जा सका है।

9.5.3 पंजाब, हरियाणा और राजस्थान

पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों में ऐसी अनेक बस्तियों की सूचना मिली हैं जहां नगरों के हास के बाद भी लोग उसी पुराने तरीके से रहते आ रहे थे। तथापि, मृद्भांड परम्परा पर हड़प्पा-सभ्यता के प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण हो रहे थे और स्थानीय मृद्भांड परम्पराओं ने हड़प्पा मृद्भांड परम्परा का पूरी तरह स्थान ले लिया। इस प्रकार, इन क्षेत्रों में प्रादेशिक परम्पराओं के अक्षुण्ण बने रहने से नगर रूप का हास प्रतिबिम्बित होता है। मीराथल, बाड़ा, रोपड़ और सीसवाल के स्थल सुप्रसिद्ध हैं। बाड़ा और सीसवाल में ईंटों के मकान मिले थे। इनमें से कई स्थलों में गैरिक मृद्भांड मिले हैं। प्राचीन भारत में अनेक प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थलों में ऐसे मृद्भांड मिले हैं इसलिए पंजाब, हरियाणा और राजस्थान की ये ग्राम्य संस्कृतियां परवर्ती हड़प्पा परम्परा से संबद्ध हैं और प्रारम्भिक भारतीय परम्परा का पूर्व ज्ञान कराती हैं। इन पर परवर्ती हड़प्पा प्रभाव अल्प मात्रा में दिखाई देते हैं। यह केन्द्र भारतीय सभ्यता के बाद के चरण का केन्द्र बिन्दु बना।

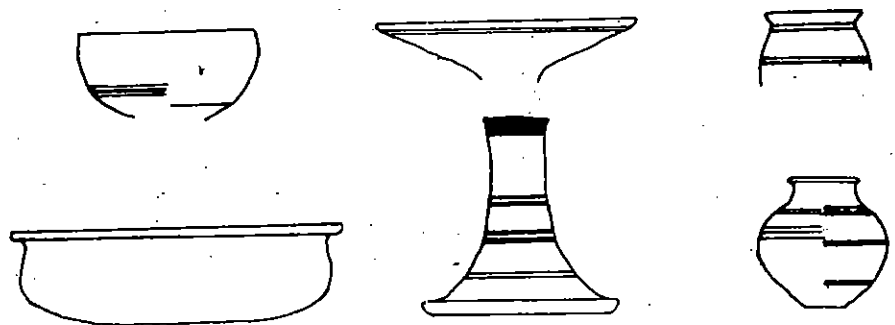


चित्र-19 उत्तर हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तन हरियाणा से

9.5.4 कच्छ और सौराष्ट्र

कच्छ और सौराष्ट्र में नगर चरण का अंत रंगापुर और सोमनाथ जैसे स्थानों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। नगर चरण में भी उनकी हड़प्पा मृद्भांड परम्परा के सह अस्तित्व में स्थानीय मृत्तिका परम्परा थी। यह परम्परा बाद के चरणों में भी बनी रही। रंगापुर जैसे कुरु स्थल बाद के काल में अधिक समृद्ध हो गए प्रतीत होते हैं। वे जिन मृद्भांडों का उपयोग करते थे उन्हें "चमकीले लाल भांड" कहा जाता है तथापि लोगों ने दूरस्थ क्षेत्रों से आयातित औजार तथा सिंधु कालीन बाट और लिपी का उपयोग बंद कर दिया। अब वे स्थानीय रूप से उपलब्ध पत्थरों से बने पत्थरों के औजार काम में ला रहे थे।

"प्रौढ़ हड़प्पा" चरण में गुजरात में 13 बस्तियां थी। परवर्ती हड़प्पा चरण में जिसका काल लगभग 2100 ई. पू. है, बस्तियों की संख्या 200 या इससे और अधिक तक पहुंच गई। बस्तियों की संख्या में यह वृद्धि जो जनसंख्या की वृद्धि की द्योतक है, केवल जैविक कारणों से ही नहीं हुई थी। पूर्व आधुनिक समाजों में जनसंख्या कुछ ही पीढ़ियों में इतनी अधिक नहीं बढ़ सकती थी कि 13 बस्तियां बढ़कर 200 या और अधिक हो जाएं। इस प्रकार इस बात की निश्चित संभावना है कि इन नई बस्तियों में रहने वाले लोग अन्य क्षेत्रों से आए होंगे। परवर्ती हड़प्पा बस्तियां महाराष्ट्र में भी बताई गई हैं जहां उनकी संस्कृति उभरने वाले कृषि समुदायों की संस्कृतियों में विलीन हो गई।



चित्र-20 उत्तर हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तन-रंगापुर से

9.6 हड़प्पा परम्परा का प्रसार

नगरों की आमरूपिता का यह अर्थ नहीं था कि हड़प्पा समुदाय आसपास के कृषि समूहों में फैली हो गए। तथापि राज्य व्यवस्था और अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय निर्णायक कार्य समाप्त हो गया था। जो हड़प्पा समुदाय नगर चरण के बाद भी बने रहे उन्होंने अवश्य ही अपनी पुरानी परम्पराओं को बनाए रखा होगा। इस बात की संभावना है कि हड़प्पा निवासी किसानों ने अपनी पूजा का रूप बनाए रखा होगा। हड़प्पा नगर केन्द्रों के पुरोहित अत्यन्त संगठित शिक्षित परम्परा के अंग थे। साक्षरता समाप्त हो गई थी, तब भी संभावना है, उन्होंने अपनी धार्मिक प्रथाएं बनाए रखी होंगी। बाद के प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के प्रभावी समुदाय ने अपने आप को "आर्य" कहा। ऐसा लगता है कि इन लोगों की अपनी कोई शिक्षित परम्परा नहीं थी। संभवतः हड़प्पा निवासियों के पुरोहित समूह आर्यों के शासक समूहों के साथ घुल-मिल गए। इस प्रकार हड़प्पा कालीन धार्मिक परम्पराओं का ऐतिहासिक भारत में प्रसार हुआ। लोक समुदायों ने दस्तकारी की अपनी परम्पराएं भी बनाए रखी, जो मृद्भांड और औजार निर्माण परम्पराओं से स्पष्ट होता है। इस बार फिर जब शिक्षित नागर संस्कृति प्रारंभिक भारत में उदय हुई। इसने लोक संस्कृतियों के मूल तत्व समाविष्ट कर दिए। इससे हड़प्पा परम्परा के प्रसार का अधिक कारगर माध्यम मिला।

हास-के सिद्धान्त²

क्रमिक हास के सिद्धांत

पारिस्थितिक असंतुलन के कारण हास

संक्षेप

- 1 यह गणना कि इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन इस लिए बिगड़ रहा था, क्योंकि मनुष्यों और मवेशियों की आबादी से बनों, खाद्य और ईंधन के अल्प साधन समाप्त होते जा रहे थे।
- 2 बनों के नष्ट होने से बाढ़ और सूखों की संख्या में वृद्धि हो रही थी।
- 3 कस्बों से लोग गुजरात और पूर्व के क्षेत्रों में चले गए।
- 4 हास की यह प्रक्रिया आसपास की बस्तियों से हुए हमलों और धावों से पूरी हुई।

आलोचना

- 1 इस क्षेत्र में जमीन आज भी उपजाऊ है। इससे जमीन की शक्ति क्षीण हो जाने की प्राक्कल्पना उचित सिद्ध नहीं होगी।
- 2 यह प्राक्कल्पना प्रमाणित किए जाने से पहले हड़प्पा कस्बों की जरूरतों की गणना के लिए और अधिक सूचना जरूरी है।

हास नहीं हुआ अथवा निरन्तरता प्राक्कल्पना

पारिस्थितिक तर्क सिंधु घाटी में मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंधों पर ही केन्द्रित है। हास को स्पष्ट करने में आई समस्याओं के कारण विद्वानों ने—

- क) हास के कारणों की खोज बन्द कर दी।
- ख) हड़प्पा-सभ्यता की निरन्तरता को भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में देखा।
- ग) स्वीकार किया कि नगरों का हास हुआ और मुहरों, लेखन, मृद्भांड जैसी कुछ परम्पराएं समाप्त हो गईं।

9.7 हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष

पशुपति (शिव) और मातृ देवी की उपासना और लिंग पूजा हम तक संभवतः हड़प्पा परम्पराओं से पहुँची है। इसी प्रकार पवित्र स्थानों, नदियों या वृक्षों या पवित्र पशुओं की उपासना स्पष्टतः भारत में बाद की ऐतिहासिक सभ्यता में भी जारी रही। कालीबंगन और लोथल में अग्नि पूजा बलि का साक्ष्य भी महत्वपूर्ण है। यह वैदिक धर्म के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य थे। क्या आर्यों ने यह प्रथाएं हड़प्पा के पुरोहित वर्ग से सीखी थीं? इस प्राक्कल्पना के लिए और अधिक साक्ष्य की आवश्यकता है, पर ऐसा होने की संभावना तो है ही।

मकानों के नक्शे, जल-पूर्ति व्यवस्था और स्नान पर ध्यान जैसे घरेलू जीवन के अनेक पहलू इन बस्तियों में बाद के कालों में भी जारी रहे। भारत की पारम्परिक तोल और मुद्रा की प्रणाली जो इकाई के रूप में सोलह के अनुपात पर आधारित थी, हड़प्पा-सभ्यता काल में भी विद्यमान थी। ये उन्हीं से ली गई प्रतीत होती है। आधुनिक भारत में कुम्हार का चाक बनाने की प्रविधि हड़प्पावासियों द्वारा अपनाई गई प्रविधियों के समान ही है। आधुनिक भारत में इस्तेमाल की जाने वाली बैल गाड़ियाँ और नावें हड़प्पा के नगरों में भी विद्यमान थीं। अतः हम कह सकते हैं कि हड़प्पा-सभ्यता के अनेक तत्व परवर्ती ऐतिहासिक परम्परा में भी जीवित रहे।



चित्र-21 छिन्नित बर्तन

बोध प्रश्न 2

- 1 पारिस्थितिक असंतुलन का सिद्धांत स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि: (सही उत्तर पर (✓) का निशान लगाएं।)
 - i) इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि भूमि सिंधु घाटी क्षेत्र में आज भी उपजाऊ बनी हुई है। ()
 - ii) हड़प्पा कस्बों की जरूरतों के संबंध में बताने के लिए हमारे पास पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं। ()
 - iii) कस्बों के लोग हड़प्पा में रहते रहे। ()
 - iv) (i) और (ii) दोनों सही हैं। ()

2. सही विवरण पर (✓) निशान लगाएं।

विद्वान आजकल :

- i) हड़प्पा-सभ्यता के हास के नए कारण खोज रहे हैं। ()
- ii) उन्होंने हड़प्पा-सभ्यता के हास के नए कारण खोजना बंद कर दिया है। ()
- iii) इस बात की खोज कर रहे हैं कि परवर्ती बस्तियों में हड़प्पा-सभ्यता का क्या-क्या बचा? ()
- iv) (ii) और (iii) दोनों। ()

3. हड़प्पा-सभ्यता में क्या-क्या बचा है उसके महत्व का लगभग 50 शब्दों में प्रकाश डालें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.8 सारांश

हमने देखा है कि विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता के आकस्मिक हास के विभिन्न सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं। लेकिन इन सभी सिद्धांतों को पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में छोड़ना पड़ेगा। धीरे-धीरे विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता के हास के कारण खोजना बंद कर दिया है। अब हड़प्पा-सभ्यता के परवर्ती चरण को समझने पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। इसका इसलिए अध्ययन किया जा रहा है ताकि हड़प्पा-सभ्यता की वे निरन्तरताएं प्रकाशित की जा सकें जो उस समय के समृद्ध कृषि समुदायों में जीवित रही होंगी। और निस्संदेह हड़प्पा-सभ्यता की कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जो ऐतिहासिक चरण में भी चलती रहीं।

9.9 शब्दावली

परिस्थितिकी : पौधों का पशुओं या मनुष्यों या संस्थाओं का पर्यावरण के संबंध में अध्ययन।

विवर्तनिक उत्पादन : वह प्रक्रिया जिससे पृथ्वी के धरातल के बहुत बड़े क्षेत्र ऊपर उठ जाते हैं।

आर्य : एक जन समूह जो संस्कृत लैटिन और ग्रीक आदि यूरोपीय भाषाएं बोलता था।

दास और दस्यु : ऋग्वेद में उल्लिखित लोग। आर्यों का उनके सरदारों के साथ संघर्ष रहता था।

गैरिक मृद्भांड : उच्च गंगा मैदानों में पाए जाने वाले मृद्भांड। ये उन तलों पर पाए गए हैं जो प्रारंभिक भारतीय ऐतिहासिक मृद्भांड के आधार हैं।

परवर्ती तल : जिन पुरातात्विक स्थलों की खुदाई की जाती है वे अपने कालों के अनुसार परतों अथवा आवास तलों में विभक्त किए जाते हैं। अतः परवर्ती अथवा सबसे कम पुराना बस्ती तल स्थल के शीर्ष के पास होगा और सबसे पुराना सबसे नीचे की परत पर होगा।

रिहायशी संचय : जिस स्थल की खुदाई हो गई है, उसके प्रत्येक तल पर मृद्भांड आदि के रूप में यह दर्शाने के लिए साक्ष्य होंगे कि उस स्थल पर रिहायशी थी। ये संचय रिहायशी संचय कहलाते हैं।

पाद : बहती हुई नदी के तटों पर जमा तलछट।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

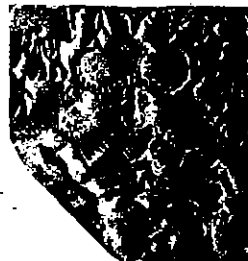
बोध प्रश्न 1

- 1 ii)
- 2 iv)
- 3 उपभाग 9.3.4 देखें। आपके उत्तर में भौतिक साक्ष्य और लिखित साक्ष्य दोनों शामिल होने चाहिए।

बोध प्रश्न 2

- 1 iv)
- 2 iv)
- 3 भाग 9.7 देखें। आपको अपने उत्तर में यह बताना है कि इससे हड़प्पा परम्परा की निरन्तरता का संकेत कैसे मिलता है।

हड़प्पा-सभ्यता की कुछ मोहरें





उत्तर प्रदेश

राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04(N)

इतिहास

भारत : प्राचीन काल से
आठवीं सदी ईसवीं

संख्या

3

प्राचीन भारतीय समाज का विकास : 2000 से 1000 ई. पू.

इकाई 10

ताम्र पाषाण युग और आरंभिक लौह युग-I 5

इकाई 11

ताम्र पाषाण युग और आरंभिक लौह युग-II 33

इकाई 12

प्रारंभिक वैदिक समाज 47

इकाई 13

उत्तर वैदिक युग में परिवर्तन 60

खंड 3 प्राचीन भारतीय समाज का विकास : 2000 से 1000 ई. पू.

खण्ड एक और दो में आपका परिचय भौगोलिक रूप से परिभाषित भारत देश से हुआ और आपने यह भी जाना कि पर्यावरण सम्बंधी विभिन्नताओं को किस प्रकार से प्रारम्भिक मानव समूहों ने ग्रहण किया। आप देख चुके हैं कि किस प्रकार मानव का प्रारम्भिक सांस्कृतिक विकास सम्भव हुआ। प्रारम्भ में मानव शिकार द्वारा अथवा संग्रह करके अपना भोजन प्राप्त करता है। आपने पढ़ा कि कैसे भोजन इकट्ठा करने की स्थिति के बाद मानव ने किस प्रकार स्वयं भोजन का उत्पादन करना सीखा। इस परिवर्तन की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों के द्वारा होती है। अग्रिम परिवर्तनों की पुष्टि भी पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है। इन परिवर्तनों की ओर दोनों नगरीय तथा गैर नगरीय बस्तियाँ इशारा करती हैं और इनमें से बहुत से अवशेष हड़प्पा संस्कृति में मिलते हैं जो उस समय के प्राचीन विश्व में सबसे अधिक फैली हुई संस्कृति थी तथा जिसके विषय में आप पहले ही जान चुके हैं। यह याद रखा जाना चाहिये कि सांस्कृतिक परिवर्तन की यह प्रक्रिया न सार्वभौम थी और न ही समान। जिन क्षेत्रों में हड़प्पा संस्कृति फैली थी उनमें महत्वपूर्ण विभिन्नताएं विद्यमान थीं। उपमहाद्वीप के दूसरे भाग हड़प्पा संस्कृति के सम्पर्क में थे या फिर इसके प्रभाव क्षेत्र से दूर। इन क्षेत्रों में बड़े या छोटे नगरों का अस्तित्व नहीं था और इन क्षेत्रों की सांस्कृतिक विशेषताएं हड़प्पा संस्कृति की विशेषताओं से भिन्न थी। आप खण्ड 3 में इन क्षेत्रों की सांस्कृतिक रूप रेखाओं के बारे में पढ़ेंगे यद्यपि इस खण्ड में हड़प्पा क्षेत्र में हुए सांस्कृतिक परिवर्तनों का संक्षिप्त चित्रण किया जायेगा (खण्ड 2 के साथ इसको पढ़ना आपके लिये उपयोगी होगा)।

यह खण्ड यह भी स्पष्ट करेगा कि हमको विकास की ओर लगातार गतिशीलता के रूप में परिवर्तन को सावधानी पूर्वक समझना होगा क्योंकि पुरातत्व और इतिहास अतीत की ओर गतिशीलता के उदाहरण हैं। आप देख चुके हैं कि उच्च नगरीयकरण वाली हड़प्पा संस्कृति का किस तरह से क्रमिक पतन हुआ। आप इस खंड में पढ़ेंगे कि पश्चिम भारत के स्थायी कांस्य पाषाण कृषि समुदाय कैसे पतन से ग्रस्त हुए और पर्यावरण के बिगड़ने के कारण उनको अपनी जीवन प्रणाली में कैसे परिवर्तन करना पड़ा।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न क्षेत्रों की सांस्कृतिक रूपरेखाओं का दूसरी सहस्राब्दी ई. पू. के प्रारम्भ से और प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. के बीच का अध्ययन कई कारणों से महत्वपूर्ण है। प्रथमतः यह वह युग था जब इस उपमहाद्वीप के सभी बड़े प्रदेशों में कृषि पर आधारित ग्रामीण संस्कृतियों के केन्द्र बिन्दु का उदय हुआ। आप जानते हैं कि शताब्दियों से गाँव भारतीय सभ्यता के मुख्य आधार रहे हैं और गाँव का आधार ग्रामीण आबादी एवं कृषि उत्पादन था। कुछ क्षेत्रों को छोड़कर बाद के काल में छोटी बस्तियाँ जो लघु कृषि प्रणाली पर आधारित थीं स्थायी ग्रामीण, बस्तियों में परिवर्तित हो गईं। प्रारम्भ में लघु कृषि बस्तियों की संस्कृतियाँ ताम्र पाषाणकालीन संस्कृतियाँ थीं। परन्तु प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. से विभिन्न संस्कृतियों में लोहे का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। उदाहरणार्थ गंगा की ऊपरी घाटी की चित्रित घूसर मृद्भांड संस्कृति और भारत में प्रायद्वीपीय भारत की महापाषाण कालीन संस्कृति।

लोहे के प्रयोग का विभिन्न संस्कृतियों पर क्या प्रभाव हुआ इसका उचित मूल्यांकन होना शोष है परन्तु यह निष्कर्ष निश्चित रूप से निकाला जा सकता है कि ग्रामीण जीवन के महत्वपूर्ण उपकरणों में इसका उपयोग होने लगा था। जैसे कि जुताई करने की तकनीकों के लिये (सिंचाई हेतु भी) इसका उपयोग होने लगा था। उपमहाद्वीप की दूसरी सहस्राब्दी ई. पू. एवं प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. के बीच की प्रादेशिक संस्कृतियों में विभिन्न किस्म की फसलें जिनका उत्पादन अब भी होता है, के उत्पादन के साथ पशुपालन किया जाता था, जिसका प्रचलन आज भी है। इस व्यापक सांस्कृतिक

विशेषता के साथ-साथ अन्य सांस्कृतिक विशेषताएं भी सह अस्तित्व में थीं जैसे कि कृषि समुदायों के उदय के साथ-साथ पशु चरवाही। शिकार एवं भोजन संग्रहित करके जीवन यापन का तरीका भी अस्तित्व में था।

द्वितीय, आप इस खण्ड से सीख पायेंगे (खण्ड 4 में विस्तृत रूप से) कि वर्णित बहुत से कारणों से गंगा घाटी में ऐतिहासिक परिवर्तन की गति प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. से काफी तीव्र हो गई। प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. के मध्य में इन परिवर्तनों के ठोस उदाहरण विशाल क्षेत्रों या महा जनपदों, राजशाही और गणों, बड़े नगरों आदि की उपस्थिति के रूप में मौजूद हैं। ऊपरी मध्य गंगा क्षेत्र में इन ऐतिहासिक परिवर्तनों का उद्भव क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। काफी लम्बे समय से ऐसा विश्वास किया जाता है कि आर्य जो बाहर से आये थे और जिनकी गतिविधियों के विषय में हम वेदों का अध्ययन करके जानकारी प्राप्त कर सकते हैं इन वेदों की रचना भी उन्हीं के द्वारा की गई थी और उन्हीं के साथ सभ्यता संबंधी प्रभाव आये। लेकिन आधुनिक इतिहासकारों के द्वारा किया गया गहन शोध यह स्पष्ट करता है कि :

- अ) अगर आर्यों या आर्य भाषाओं को बोलने वाले समूहों का आगमन इस उपमहाद्वीप में हुआ तो विस्थापन विशाल स्तर पर नहीं हुआ और न ही उनकी विजय के कारण स्थानीय आबादी दूसरी जगहों पर गई।
- ब) ऋग्वेद में, जो आर्यों द्वारा रचित प्रथम ग्रंथ है, उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस समाज का अपनी प्रारम्भिक अवस्था में आधार पशु चराना था न कि कृषि पर आधारित जीवन।
- स) ऋग्वेद में जिन कबीलों का वर्णन हुआ है, उनके क्षेत्र का गंगा घाटी के साथ संबंध नहीं था। बाद के समय में कुछ कबीले या कबीलों के समूह इस क्षेत्र की ओर आये।

तीसरे, आप इस खण्ड के द्वारा जान पायेंगे कि इतिहास के किसी युग के विषय में सूचना विभिन्न स्रोतों से प्राप्त की जा सकती है। खण्ड 1 या खण्ड 2 में आप देख चुके हैं कि शिकार व भोजन संग्रहित करने वाले समुदायों या पुरापाषाण युग के समुदायों के विषय में हमारा ज्ञान उस काल के पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित है। इस खण्ड में आप पायेंगे कि वैदिक साहित्य का प्रयोग भी साक्ष्यों के रूप में किया गया है। विभिन्न स्रोतों की भिन्न-भिन्न विशेषता होने के कारण उनका लगातार उपयोग आवश्यक है अन्यथा आप भ्रम में पड़ जायेंगे और फिर संतोषजनक व्याख्या करना कठिन हो जायेगा। आइये हम इसे वैदिक साहित्य के उदाहरण से देखें। जिसको वैदिक साहित्य के नाम से जाना जाता है वह वास्तव में एक लम्बे काल में रची गयी रचनाओं का संग्रह है जो कि मौखिक परम्परा में रहे और काफी लम्बे समय के बाद उसको लिखित रूप दिया गया। अगर इन संकलनों को एक ही रचना मान लिया जाये तो इससे जो परिणाम निकलेंगे वह बड़े भ्रामक होंगे। इसलिए इतिहासकार प्रारम्भिक वैदिक काल जो ऋग्वेद के सुक्तों से स्पष्ट होता है तथा उत्तर वैदिक काल जिसको बाद के वैदिक साहित्य संकलन में अभिव्यक्त किया गया है के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा खींच लेते हैं। आप इकाई 12 व 13 में पायेंगे कि ऋग्वैदिक साहित्य में वर्णित समाज तथा उत्तर वैदिक साहित्य में वर्णित समाज में बहुत विभिन्नताएं हैं। ये रचनाएं जिनको हम साहित्यिक स्रोत भी कह सकते हैं न केवल हमको समाज में हो रहे भौतिक परिवर्तनों के विषय में बताती हैं बल्कि लोगों के धार्मिक विश्वासों एवं विचारों में हो रहे परिवर्तनों के विषय में भी जानकारी देती हैं। जब इतिहासकारों को साहित्यिक स्रोत उपलब्ध होते हैं तो वे धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक जीवन के ऐसे विभिन्न आयामों पर लिखते हैं जिनके विषय में केवल पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर नहीं लिखा जा सकता।

इकाई 10 ताम्र पाषाण युग तथा आरंभिक लौह युग-I

इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति
- 10.3 ताम्र भंडारों की समस्या
- 10.4 काले एवं लाल मृद्भांड संस्कृति
- 10.5 चित्रित घूसर मृद्भांड (Painted Grey Ware) संस्कृति
- 10.6 उत्तरी काले पॉलिश वाली मृद्भांड (Northern Black Polished Ware) संस्कृति
 - 10.6.1 भवनों के अवशेष
 - 10.6.2 बर्तन
 - 10.6.3 अन्य वस्तुएँ
 - 10.6.4 गहने
 - 10.6.5 मिट्टी की मूर्तियाँ
 - 10.6.6 जीवन-यापन अर्थव्यवस्था एवं व्यापार
- 10.7 पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ
 - 10.7.1 बर्तन : पहचान के लक्षण
 - 10.7.2 अर्थव्यवस्था
 - 10.7.3 घर एवं बस्तियाँ
 - 10.7.4 अन्य विशेषताएँ
 - 10.7.5 धर्म एवं विश्वास
 - 10.7.6 सामाजिक संगठन
- 10.8 सारांश
- 10.9 शब्दावली
- 10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

खण्ड II में आपने हड़प्पा-सभ्यता के विभिन्न चरणों तथा समाज एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त की। आपने इसके भौगोलिक विस्तार तथा इसके पतन एवं फैलाव के प्रति भी जानकारी प्राप्त की।

इस इकाई में हम उत्तरी, पश्चिमी, मध्य एवं पूर्वी भारत में उत्तर हड़प्पा ताम्र पाषाण सभ्यता के बारे में चर्चा करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे :

- इन संस्कृतियों की भौगोलिक स्थिति तथा यहाँ के लोगों द्वारा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालना,
- किस प्रकार के घरों में लोग रहते थे, वे कौन से अन्न उगाते थे और किस प्रकार के औजारों का प्रयोग करते थे,
- किस प्रकार के बर्तनों का प्रयोग में लाया जाता था,
- लोगों के क्या धार्मिक विश्वास थे, और
- आरम्भिक लौह युग में कौन-कौन से परिवर्तन आये।

10.1 प्रस्तावना

दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व तक भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियाँ अस्तित्व में आयीं। यह संस्कृतियाँ न तो शहरी थीं और न ही हड़प्पा संस्कृति की तरह थीं बल्कि पत्थर एवं ताँबे के औजारों का इस्तेमाल इन संस्कृतियों की अपनी विशिष्टता थी। अतः यह संस्कृतियाँ ताम्र पाषाण संस्कृतियों के नाम से जानी जाती हैं।

ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ अपनी भौगोलिक स्थितियों के आधार पर पहचानी जाती हैं। इस प्रकार हम इन्हें निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत करते हैं :

- राजस्थान में बानस संस्कृति (बानस थाले में स्थित)
- कायथ संस्कृति (काली सिंध (चम्बल की सहायक नदी) के तट पर स्थित कायथ) जो मध्य भारत (नर्मदा, तापती तथा माही घाटी में) में कई स्थलों पर पाई जाती है
- मालवा संस्कृति (मालवा तथा मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के अन्य भागों में बिखरी संस्कृति)
- जोर्वे संस्कृति (महाराष्ट्र)।

इन संस्कृतियों से सम्बन्धित स्थलों की खुदाई से हम इनके निम्न पक्षों के बारे में विस्तृत अनुमान लगा सके हैं:

- बस्तियों का फैलाव
- अर्थव्यवस्था का ढाँचा
- शव गृह और शवदाह के तरीके
- धार्मिक विश्वास।

खुदाई स्थलों में इस संस्कृति से सम्बन्धित वस्तुओं के साथ-साथ उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा एवं कर्नाटक के विभिन्न भागों में ताम्र/कांस्य की वस्तुओं के भंडार प्राप्त हुए हैं। चूँकि यह वस्तुएं भंडारों (उपरोक्त राज्यों के 85 स्थानों पर लगभग एक हजार वस्तुएं प्राप्त हुई हैं) के रूप में प्राप्त हुई हैं अतः इन क्षेत्रों के एक भिन्न ताम्र भंडार संस्कृति से सम्बद्ध होने का अनुमान लगाया गया। साईपई (इटावा जिला) उत्तर प्रदेश में ताम्र मत्स्यभाला तथा उसके साथ गेरुए चित्रित बर्तन (OCP) प्राप्त हुए हैं। यद्यपि कुछ अन्य ताम्र वस्तुओं के भंडार स्थलों में भी गेरुए चित्रित बर्तन मिले हैं किन्तु इस ताम्र भंडार का चित्रित बर्तनों के साथ सीधा सम्पर्क नहीं है। चूँकि गंगा-यमुना दोआब में एक सौ से अधिक स्थानों पर ये विशिष्ट प्रकार के बर्तन प्राप्त हुए हैं अतः इन्हें गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति से सम्बद्ध माना जाता है। गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति के बाद काले एवं लाल मृद्भाण्डों की संस्कृतियाँ तथा चित्रित घूसर मृद्भाण्डों की संस्कृतियाँ जो कि विशिष्ट प्रकार के बर्तनों के आधार पर पहचानी जाती हैं, का युग आता है। उत्तर भारत में हरियाणा तथा ऊपरी गंगा घाटी में चित्रित घूसर मृद्भाण्ड के स्थलों की बड़ी संख्या

इस बिन्दु पर काले एवं लाल मृद्भाण्ड, पॉलिश किए घूसर मृद्भाण्ड तथा उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड जैसी शब्दावलिओं की व्याख्या आवश्यक है। यह संस्कृतियाँ बर्तनों की विशिष्ट किस्मों के आधार पर निर्धारित की जाती है क्योंकि बर्तनों की विशिष्ट किस्म उक्त संस्कृति का विशिष्ट लक्षण होती है यद्यपि उक्त संस्कृति के कई अन्य पक्ष भी हो सकते हैं। विशिष्ट मृद्भाण्डों अथवा बर्तनों का प्रयोग किसी विशिष्ट संस्कृति की पहचान अथवा उसे नाम देने के उद्देश्य से किया जाता है। उदाहरणार्थ किसी विशेष क्षेत्र में यदि चित्रित घूसर मृद्भाण्ड पाए जाते हैं तो वहाँ की संस्कृति को चित्रित घूसर मृद्भाण्डों की संस्कृति कहा जाता है।

मिलती है जिनमें से 30 की अब तक खुदाई हो चुकी है लोहे का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम चित्रित घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति में होता है, जो कि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की संस्कृति के नाम से जानी जाती थी तथा आगे के चरणों में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत पाया जाता है। 600 ईसा पूर्व से शहरीकरण का आरंभ दिखाई पड़ता है।

हड़प्पा सभ्यता के पतन के बाद के सांस्कृतिक विकास को समझने के लिए हमें चर्चा उत्तर भारत, विशेषकर गंगा-यमुना दोआब से आरंभ करनी चाहिए।

10.2 गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति

1950 में उत्तर प्रदेश में बिसौली (बदायूं जिला) तथा राजपुर परसू (बिजनौर जिला) जो कि दोनों ही ताम्र भंडार क्षेत्र हैं, की परीक्षण दृष्टि से खुदाई में नए किस्म के बर्तन प्राप्त हुए। बर्तन मध्यम स्तर की दानेदार मिट्टी से बनाकर कर्म तपाए गए हैं। इन्हें नारंगी से लेकर लाल रंग तक के गेरुए जो कि प्रायः घिसने पर धूमिल हो जाता है, रंग से रंगा गया है। इस प्रकार के मृद्भाण्डों से सम्बद्ध क्षेत्र गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति वाले क्षेत्र कहलाते हैं। मायापुर (सहारनपुर जिला) से लेकर साईपई (इटवा जिले) तक लगभग 110 स्थल इस विशिष्ट संस्कृति के हैं।

गेरुए चित्रित बर्तनों के क्षेत्र सामान्यतः नदियों के तटों पर मिले हैं। यह क्षेत्र आकार में छोटे हैं तथा कई क्षेत्रों (जैसे बहादुराबाद, बिसौली, राजपुर परसू, साईपई) में टीलों की ऊँचाई काफी कम है। इससे इन बस्तियों के जीवन काल अवाधि अपेक्षाकृत कम होने की ओर संकेत मिलता है। बस्तियों के बीच की दूरी 5 से 8 किलोमीटर के बीच पायी गयी है। कुछ गेरुए चित्रित बर्तनों के क्षेत्रों (जैसे अम्बखेरी, बहेरिया, बहादुराबाद, झिंझाना, लाल किला, अतरंजीखेड़ा, साईपई) की खुदाई से यहां नियमित बस्तियाँ होने के लक्षण नहीं मिले हैं। हस्तिनापुर तथा अहिक्षेत्र में गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति तथा इसके बाद आने वाली चित्रित घूसर बर्तनों की संस्कृति के बीच की प्रक्रिया अवरोधित प्रतीत होती है जबकि अतरंजीखेड़ा में गेरुए चित्रित बर्तनों के स्तर के बाद काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों के स्तर आते हैं।

गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति के भौतिक अवशेष मुख्य रूप से बर्तन हैं। इनमें जार (भंडारण करने वाले जार सहित), प्याले, गोल आधार वाले प्याले, सुराही, दस्तेवाले बर्तन, छोटे बर्तन, पात्र, टोटी वाले बर्तन आदि शामिल हैं।

अन्य वस्तुओं में, पक्की मिट्टी की चूड़ियाँ, पक्की मिट्टी के मनके तथा इन्द्रगोप, पक्की मिट्टी की जानवरों की मूर्तियाँ एवं गाड़ी के पहिए जिनके केन्द्र में एक गुमटा है, पत्थर की चक्की एवं मूसल तथा हड्डियों के हरावल प्राप्त हुए। साईपई में गेरुए चित्रित बर्तनों के क्षेत्र में एक ताम्र मत्स्यभाला भी प्राप्त हुआ है।

घरों के ढांचों से सम्बंधित अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। पुराना किला से प्राप्त प्रमाणों, जो कि अपर्याप्त हैं, के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि फर्श थापी हुई मिट्टी के बनाए जाते थे। घर सरपट एवं उस पर मिट्टी की लिपाई के साथ बनाए जाते थे। ऐसा अनुमान पुराना किला में प्राप्त तपी मिट्टी के प्लास्टर एवं मिट्टी पर सरकड़े एवं बांस के निशानों के आधार पर लगाया गया है।

इस संस्कृति से सम्बंधित अतरंजीखेड़ा से प्राप्त पुरातात्विक-वानस्पतिक अवशेषों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में धान, जौ, दालें तथा घिसारी की फसल उगाई जाती थी। बर्तनों के प्रकारों में समानता के आधार पर कुछ विद्वानों का विचार है कि गेरुए रंगे बर्तन हड़प्पा सभ्यता के अंतिम काल के बिगड़े हुये रूप की तरह के हैं।

गेरुए चित्रित बर्तनों से प्राप्त ताप संदीप्ति परीक्षा के आधार पर यह संस्कृति 2000 ईसा पूर्व से 1500 ईसा के बीच मानी गयी है।

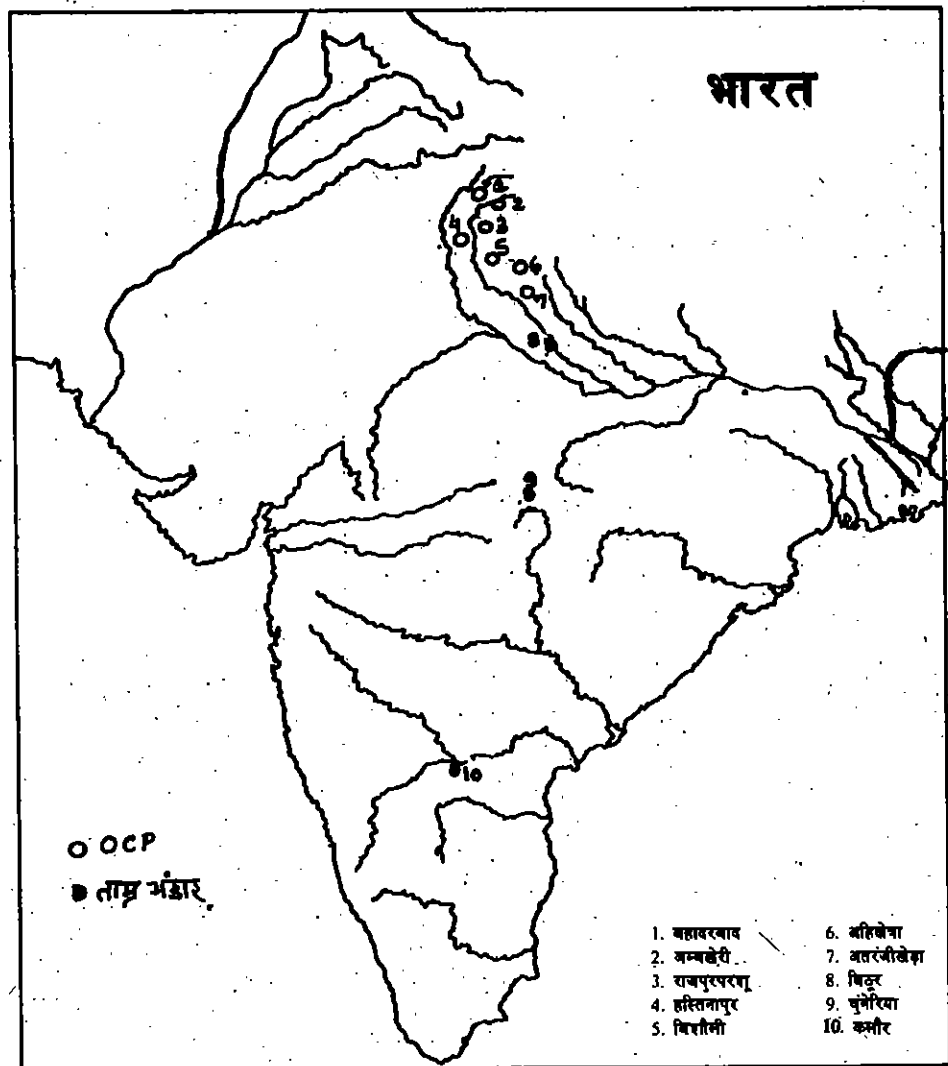
10.3 ताम्र भंडारों की समस्या

ताम्र भंडार संस्कृति से सम्बद्ध प्रथम ताम्र वस्तु (ताम्र मत्स्यभाला) 1822 में ही कानपुर जिले के बिठूर नामक स्थान पर प्राप्त हुई। तब से लेकर अब तक 85 विभिन्न क्षेत्रों में लगभग एक हज़ार ताम्र वस्तुएं भंडारों में मिली हैं।

विभिन्न राज्यों में ताम्र भंडार क्षेत्र

राज्य	क्षेत्रों की संख्या
हरियाणा	5
राजस्थान	6
उत्तर प्रदेश	33
बिहार	19
पश्चिमी बंगाल	6
उड़ीसा	7
मध्य प्रदेश	8
कर्नाटक	1

यह संभव है कि ऐसे ताम्र भंडार गुजरात और आंध्र प्रदेश में मिले हों परन्तु इनकी विधिवत सूचना उपलब्ध नहीं करायी गयी है।



मध्य प्रदेश में गुगेरिया को छोड़कर, जहां कि केवल एक भंडार से 424 ताम्र वस्तुएं प्राप्त हुई हैं, भंडारों में ताम्र वस्तुएं पाए जाने की औसत 1 से 47 के बीच है। यह ताम्र भंडार हल चलाते समय, नहर खोदते अथवा सड़क बनाते समय प्रकाश में आए एवं सभी उपलब्धियां संयोगिक रही हैं। केवल साईपई में ही गेरुए चित्रित बर्तनों से सम्बंधित क्षेत्र की खुदाई में एक ताम्र मत्स्य भाला प्राप्त हुआ था।

इन ताम्र भण्डारों में निम्न वस्तुयें विशिष्ट हैं

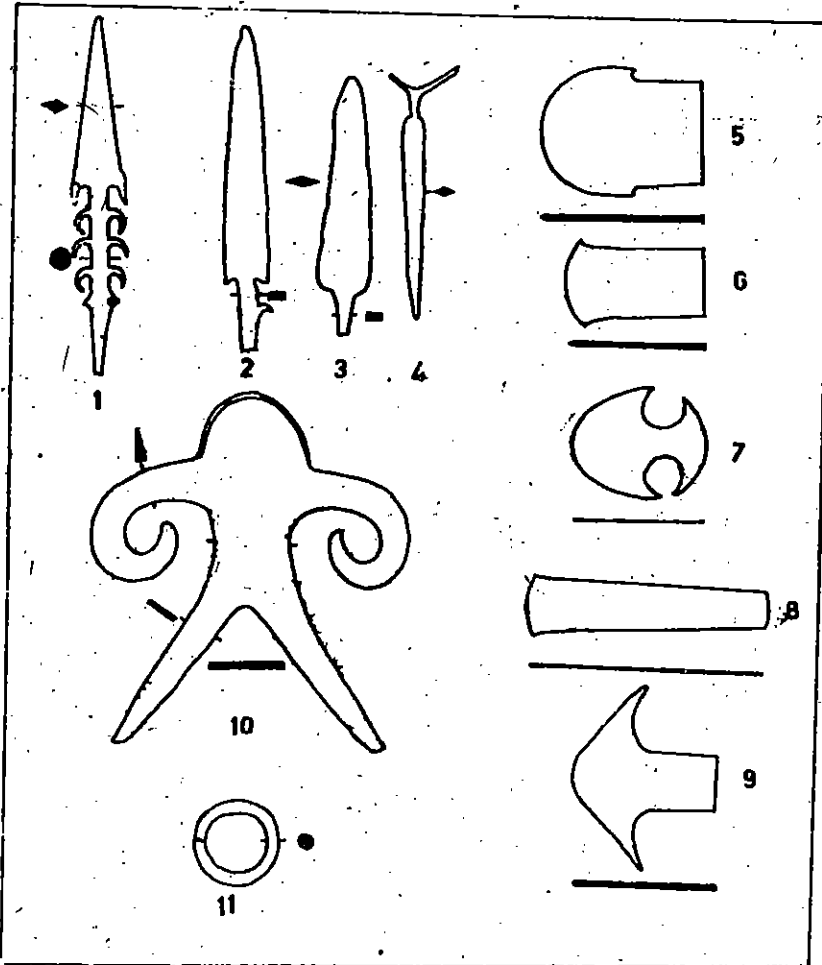
शृंगिका तलवार : शृंगिका तलवार (जिसकी लम्बाई 40 से.मी. से 50 से.मी. के बीच है) में एक फलक तथा एक दस्ता है। दस्ता किसी कीटाणु के शृंगिका की भांति विभक्त है। शृंगिका तलवार के फलक का मध्य वक्र काफी स्पष्ट है।

बेघनी तलवार : इन तलवारों में फलक के बजाए दस्ते पर कांटेदार बेघनी हैं।

मानवरूप : मानवरूप विशालकाय मानवरूपी वस्तु है जिनके हाथ मुड़े हुए हैं तथा बाहरी सिरा धारदार है। बाजू सर की अपेक्षा पतले हैं। लम्बाई में 25 से.मी. से 45 से.मी. तथा चौड़ाई में 30 से. मी. से 43 से.मी. के बीच है। इनका वजन 5 किलोग्राम तक है।

(इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख वस्तुयें नीचे दिये गये चित्र में दर्शायी गयी हैं।)

साईपई में गेरुए चित्रित बर्तनों के साथ ताम्र मत्स्यभाले के पाए जाने तथा अन्य गेरुए चित्रित मृद्भाण्ड क्षेत्रों में ताम्र भंडार पाए जाने (यद्यपि यह प्रत्यक्ष पुरातात्विक संबंध पर आधारित नहीं हैं) के आधार पर इन्हें गेरुए चित्रित मिट्टी के बर्तनों की संस्कृति से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार ताम्र भंडारों का काल 2000 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व के बीच रखा जा सकता है।



2. लंबे की वस्तुएं-1. बेघनी तलवार 2. कांटेदार तलवार 3. तलवार 4. शृंगिका-तलवार 5-6. आभिन कुल्हाड़ी 7. बाहरी कुल्हाड़ी 8. शृंगिका आभिन कुल्हाड़ी 9. लंबे कुल्हाड़ी 10. मानवरूप 11. छल्ला

बोध प्रश्न 1

1. गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति की मुख्य विशेषताओं पर दस पंक्तियाँ लिखें

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है
- क) गेरुए चित्रित बर्तन पहाड़ी क्षेत्रों में पाए गए हैं। ()
- ख) गेरुए चित्रित बर्तनों के भौतिक अवशेष मुख्यतः घरों के ढांचे हैं। ()
- ग) ताम्र भंडारों का काल 2500 ई. पू. है। ()
- घ) अधिकतर ताम्र भंडार संयोगिक रूप से प्राप्त हुए हैं। ()

10.4 काले एवं लाल मृद्भाण्ड संस्कृति

1960 के दशक के आरंभ में अतरंजीखेड़ा में खुदाई के दौरान एक विशिष्ट प्रकार के, गेरुए चित्रित बर्तनों एवं चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के स्तरों के बीच के, मृद्भाण्ड प्रकाश में आए। इस स्तर के विशिष्ट बर्तन काले एवं लाल मृद्भाण्ड कहे जाते हैं। जोधपुरा एवं नोह (राजस्थान) से 1970 के दशक में इसी प्रकार के स्तरीय क्रम प्रकाश में आए। किंतु अहिक्षेत्र, हस्तिनापुर एवं आलमगीरपुर में काले एवं लाल मृद्भाण्ड रंगे घूसर मृद्भाण्डों के साथ प्राप्त हुए हैं।

बर्तन

इन बर्तनों के विशिष्ट लक्षण यह हैं कि बर्तनों के अन्दर के भाग तथा बाहर के भाग में किनारा काले रंग तथा शेष बर्तन लाल रंग से चित्रित हैं। ऐसा विश्वास है कि रंग का यह समायोजन बर्तनों को उल्टा करके तपा कर लाया गया है। बर्तन अधिकतर चाक पर बनाये गये हैं, यद्यपि कुछ हाथ से बनाए हुए बर्तन भी हैं। महीन मिट्टी के बने इन बर्तनों की बनावट काफी सुगठित हैं तथा किनारे पतले हैं। काले एवं लाल मृद्भाण्ड राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में भी पाए गए हैं, किंतु दोआब के काले एवं लाल मृद्भाण्डों पर रंगाई नहीं की गयी है।

अन्य वस्तुएं

अतरंजीखेड़ा में खुदाई के दौरान पत्थर के टुकड़े, पत्थर तथा टुकड़े, स्फटिक, सिकथस्फटिक, अकीक तथा इन्द्रगोप के मूलभाग, इन्द्रगोप सीप तथा ताम्र, ताम्र का एक चक्र, तथा हड्डी से बनी एक कंधी का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है। पत्थर अथवा धातु के कोई औजार नहीं मिले हैं। जोधपुरा में हड्डी की नुकीली कील मिली है। नोह में आकृति रहित लोहे का टुकड़ा, पक्की मिट्टी का एक मनका तथा एक हड्डी की कील मिली है।

दोआब तथा अन्य क्षेत्रों में काले एवं लाल मृद्भाण्ड

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि अतरंजीखेड़ा तथा दक्षिणी राजस्थान में गिलुंद तथा आहर में मिले काले एवं लाल मृद्भाण्डों में स्वरूप, बनावट एवं चमक के आधार पर समानता है। लेकिन इन स्थानों से प्राप्त बर्तनों के आकार और रूपरेखा में भिन्नताएं भी हैं जो निम्न हैं :

- दोआब के (तथा नोह के) काले एवं मिट्टी के लाल बर्तनों की मुख्य विशेषता उनका सादा पृष्ठभाग है जो कि चित्र रहित है। जबकि गिलुंद एवं आहर में मिट्टी के बर्तन काले पृष्ठभाग पर सफेद रंग से चित्रित किए गए हैं।
- इनमें किस्मों का भी अंतर है। आहर के चित्रित काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों में स्पष्ट रूप से कोणिक अवतल किनारे हैं तथा बनावट खुरदुरी है। दोआब के काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों में कोणिक किनारे नहीं हैं तथा बनावट चिकनी है।
- स्वरूप विहीन किनारे तथा अवतल भाग वाली तश्तरियाँ दोआब के काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों में प्रचुर संख्या में मिलती हैं जबकि आहर एवं गिलुंद में ऐसी तश्तरियाँ नहीं प्राप्त हुईं।
- रोटी वाले प्याले तथा स्टैंड वाली तश्तरियाँ आहर एवं गिलुंद में प्राप्त हुईं लेकिन दोआब क्षेत्रों में नहीं प्राप्त हुईं।

यह तथ्य काफी महत्वपूर्ण है कि काले एवं लाल मृद्भाण्ड विभिन्न क्षेत्रों में थोड़ी बहुत भिन्नताओं के साथ काफी बड़े क्षेत्र में फैले पाए गए हैं। यह मृद्भाण्ड उत्तर में रोपड़ से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तथा पश्चिम में आमर तथा लाखबवाल से लेकर पूर्व में पांडु-राजार ढिबी तक प्राप्त हुए हैं। इनका समय परिप्रेक्ष्य भी काफी लम्बा है जो कि 2400 ईसा पूर्व से लेकर ईसवीं युग की आरंभिक शताब्दियों तक फैला हुआ है।

10.5 चित्रित घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति

1946 में अहीक्षेत्र में चित्रित घूसर मृद्भाण्डों की खोज के बाद से उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों से ये बड़ी संख्या में प्रकाश में आए हैं। इनमें से 30 स्थानों की खुदाई हुई है। इनमें से मुख्य रोपड़ (पंजाब), भगवानपुरा (हरियाणा), नोह (राजस्थान), आलमगीरपुर, अहिक्षेत्र, हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा, जखेड़ा, तथा मथुरा (सभी उत्तर प्रदेश) हैं।

काले एवं लाल मृद्भाण्डों के क्षेत्र भारत-गांगेय विभाजन, सतलुज के थाले तथा गंगा के ऊपरी मैदानों में केन्द्रित हैं। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की औसत दूरी 10 से 12 कि.मी. की है यद्यपि कुछ क्षेत्र 5 कि.मी. की दूरी पर भी हैं। इन क्षेत्रों की बस्तियाँ अधिकतर छोटे-छोटे गांव हैं (जिनका क्षेत्रफल 1 से 4 हेक्टेयर के बीच है)। केवल हरियाणा में बुखारी (अम्बाला जिला, हरियाणा) इसका अपवाद है जो कि 96, 193 वर्ग मीटर में फैला हुआ है। आइए, अब हम उन वस्तुओं पर दृष्टि डालें जिन्हें चित्रित घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति से संबंधित समझा गया है।

बर्तन

बर्तन चाक पर बनाए गए हैं। मिट्टी काफी चिकनी है तथा बर्तनों का आधार काफी पतला है।

- इनका पृष्ठभाग चिकना है तथा रंग घूसर से लेकर राख के रंग के बीच है।
- इनके बाहर तथा अन्दर के तल दोनों ही काले और काफी गहरे चॉकलेटी रंग में रंगे गए हैं।
- इनकी लगभग 42 किस्में हैं जिसमें सबसे सामान्य किस्म प्याले एवं तश्तरियों की है।



3. जेलाखर प्रोपड़ी-जखेझ



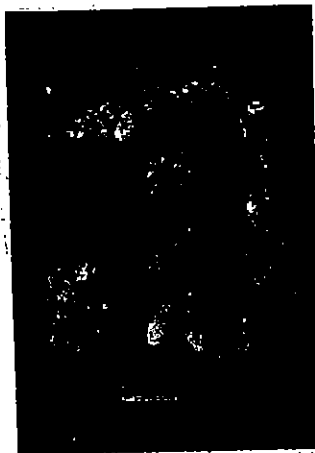
4. मट्टी की बीखर-जखेझ



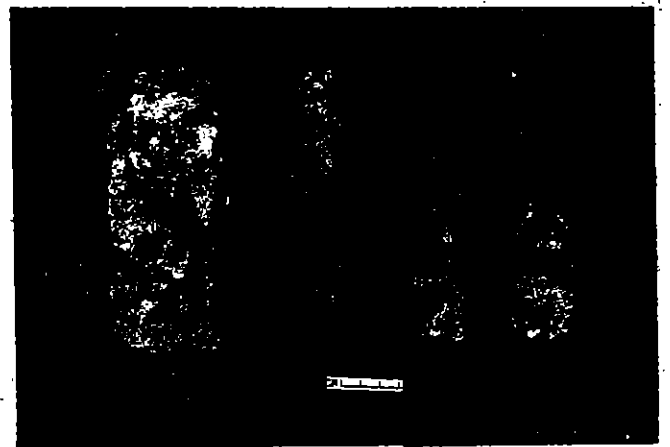
5. फर्ग-जखेझ



6. बंदारब-जखेझ



7. हंसिया-जखेझ



8. कुवांसिया-जखेझ



ताम्र पत्राण युव और
आरंभिक लोह युव-1

9. पंच मार्कंड सिफके

घरों के ढांचे

अहिक्षेत्र, हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा तथा जखेड़ा की खुदाई के बाद घरों तथा अन्य ढांचों के सरपत एवं मिट्टी से पाये होने की जानकारी मिलती है। तपाई मिट्टी, मिट्टी की ईंटों, तपाई ईंटों, मिट्टी के चबूतरे तथा मिट्टी के प्लास्टर के साथ-साथ सरकण्डे एवं बांस के निशान पाए जाने के आधार पर यह जानकारी मिलती है।

भगवानपुरा (हरियाणा) क्षेत्र में खुदाई से घरों के ढांचों के भिन्न चरणों की ओर संकेत मिले हैं।

प्रथम चरण में खंभों के गड्ढे घरों के गोलाकार एवं आयताकार होने की ओर संकेत करते हैं। दूसरे चरण में एक घर में 13 कमरे तथा दो कमरों के बीच बरामदा पाया गया है। इस घर में एक आंगन भी है।

अन्य वस्तुएं

खुदाई के दौरान, ताम्र, लोह, कांच तथा हड्डियों की कई प्रकार की वस्तुएं मिली हैं। इनमें कुल्हाड़ियाँ, छेनियाँ, मछली के कांटे तथा बाण के फल मुख्य हैं। बरछे के फल केवल लोहे के हैं। खेती के उपकरणों में जखेड़ा में लोहे की बनी हंसिया और कुदाली प्राप्त हुई हैं। हस्तिनापुर के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में लोहे की वस्तुएं मिली हैं। केवल अतरंजीखेड़ा से ही 135 वस्तुएं मिली हैं, जिनमें एक भट्टी, सतह पर लोहे का बुरादा तथा दो चिमटे मिले हैं। जोधपुरा में दो भट्टियाँ मिली हैं।

अकीक, सूर्यकांत, इन्द्रगोप, सिक्थस्फटिक, लाजवर्द, कांच तथा हड्डी के मनकों की मालाएं पाई गयी हैं। हस्तिनापुर में दो कांच की चूड़ियाँ तथा जखेड़ा में ताम्र की चूड़ियाँ मिली हैं।

मिट्टी की वस्तुओं में मानवीय (पुरुष और स्त्री दोनों) तथा पशुओं (बैल और घोड़े) की मूर्तियाँ, चपटी गोलाकृतियाँ (डिस्क), गेंद, कुम्हार की मोहरें आदि पाई गई हैं।

फसलों और पशुओं के अवशेष

केवल हस्तिनापुर और अतरंजीखेड़ा में ही उगाई जाने वाली फसलों के प्रमाण मिले हैं। हस्तिनापुर में केवल चावल और अतरंजीखेड़ा में गेहूं और जौ के अवशेष मिले हैं। घोड़े, गाय, भैंसों, सुअर, बकरी और हिरन की हड्डियाँ हस्तिनापुर, अल्लापुर और अतरंजीखेड़ा से प्राप्त हुई हैं। इनमें जंगली और पालतू दोनों प्रकार के पशुओं की हड्डियाँ हैं।

व्यापारिक तरीके तथा संबंध

विभिन्न प्रकार के अर्धबहुमूल्य पत्थरों (जैसे अकीक, सूर्यकांत, इन्द्रगोप, सिक्थस्फटिक, लाजवर्द) की मालाएं दोआब के विभिन्न चित्रित घूसर मृद्भाण्ड क्षेत्रों से प्राप्त हुई हैं। जहां तक इन पत्थरों के कच्चे खनिक के रूप में प्राप्त होने का प्रश्न है, इनमें से दोआब में एक भी पत्थर उपलब्ध नहीं है। अकीक एवं सिक्थस्फटिक कश्मीर, गुजरात तथा मध्यप्रदेश में तथा लाजवर्द अफगानिस्तान के बदखशां प्रांत में पाया जाता है। अतः रंगे घूसर मृद्भाण्ड क्षेत्रों के निवासियों ने इन पत्थरों को इन क्षेत्रों से व्यापार के द्वारा अथवा विनिमय के रूप में प्राप्त किया होगा।

उत्तर पश्चिमी भारत के बर्तनों तथा सलेटी मिट्टी के बर्तनों (PGW) में आकार और रूप के आधार पर कुछ समानताएं मिलती हैं विशेषकर लोहे के साथ पाए गए सलेटी बर्तनों का घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति से सम्बन्ध दिखलाई देता है।

बोध प्रश्न 2

- 1 काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों की मुख्य विशेषताएं क्या हैं? विभिन्न क्षेत्रों में पाए गए काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों की क्षेत्रीय भिन्नता पर दस पंक्तियाँ लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2 किन आधारों पर यह कहा जा सकता है कि चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का अन्य क्षेत्रों के साथ सम्पर्क था? पांच पंक्तियों में लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

10.6 उत्तरी काले पॉलिश वाली मृद्भाण्ड संस्कृति

पूर्व संस्कृतियों की भांति ही उत्तरी काले पॉलिश वाली मृद्भाण्ड संस्कृति की पहचान इसके विशिष्ट बर्तनों के आधार पर की जाती है। यह मृद्भाण्ड सर्वप्रथम 1930 में तक्षिला में मिले। इन मृद्भाण्डों की काली चमक के कारण इनके खोजने वालों ने उस समय इन्हें ग्रीक काले मृद्भाण्ड समझा। तब से लेकर अब तक उत्तर पश्चिम में तक्षिला तथा उदग्राम से लेकर पूर्वी बंगाल में तालमुक एवं दक्षिण में अमरावती (आंध्र प्रदेश) तक लगभग 1500 उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों के क्षेत्रों की पहचान की जा सकी है जिसमें से 74 क्षेत्रों की खुदाई हो चुकी है।

उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों के खुदाई किए गए मुख्य क्षेत्र

क्षेत्र के नाम	राज्य जिनमें क्षेत्र स्थित हैं
रोपर	पंजाब
राजा कर्नका किला	हरियाणा
जोधपुरा/नोह	उत्तरी राजस्थान
अहिलेख/हस्तिनापुर/ अतरजीबेड़ा/कोशाम्बी/ आवस्ती	उत्तर प्रदेश
वैशाली/पाटलिपुत्र/सोनपुर	बिहार
चन्द्रकेतुगढ़	पश्चिमी बंगाल

खुदाईयों से पता चलता है कि :

- कई क्षेत्रों में उत्तरी काले, पॉलिश किए मृद्भाण्डों का उदय चित्रित घूसर मृद्भाण्डों स्तरों के उपरांत हुआ।
- कई स्थानों पर उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड काले एवं लाल मृद्भाण्डों के उपरांत मिलते हैं तथा लाल धारी/वाले मृद्भाण्ड उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों के बाद मिलते हैं।

इस किस्म के बर्तनों तथा अन्य वस्तुओं का विभिन्न कालों से संबंधित होने के आधार पर ऐसा माना गया है कि उत्तरी काले पॉलिश किए बर्तनों की संस्कृति के दो भिन्न चरण रेखांकित किए जा सकते हैं।

चरण I

यह चरण 'प्रिडिफेंस' चरण भी कहा जाता है। इस चरण की विशेषता उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की प्रचुरता तथा इनके साथ काले एवं लाल मृद्भाण्डों व चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के अवशेषों का भी पाया जाना है। यद्यपि यह अवशेष कम मात्रा में ही मिले हैं।

इस चरण में पंच मार्कड सिक्के तथा तपाई गई ईंटों के मकान नहीं थे जिसका अर्थ उच्च स्तरीय विकास का होना है। इसका प्रतिनिधित्व अतरंजीखेड़ा, श्रावस्ती तथा प्रहलादपुर करते हैं।

चरण II

इस चरण में काले एवं लाल मृद्भाण्ड तथा चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के बर्तनों के नमूने नहीं मिलते हैं। उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड न तो अच्छी कोटि के हैं (इनकी बनावट मोटी है) और इनकी संख्या भी कम है। पंच मार्कड सिक्के तथा तपाई गई ईंटें इस चरण में पहली बार सामने आती हैं। इस चरण का प्रतिनिधित्व हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा, श्रावस्ती II और प्रहलादपुर करते हैं।

उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों तथा चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के बीच समानता को देखते हुए कुछ विद्वानों ने मत प्रकट किया है कि चित्रित घूसर मृद्भाण्ड उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों का परिष्कृत रूप हैं तथा दोनों के बीच भिन्नता केवल ऊपरी तौर पर है।

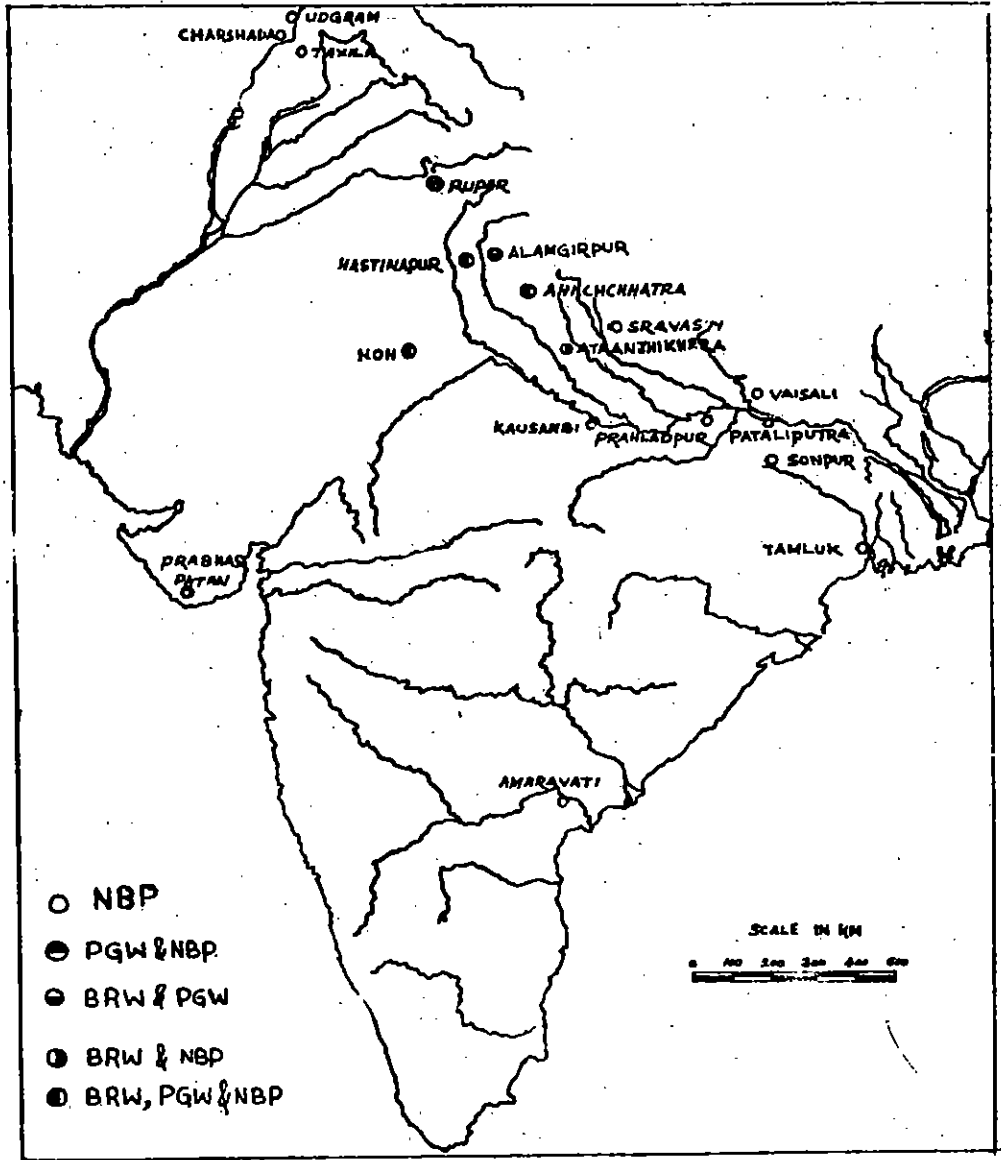
चित्रित घूसर मृद्भाण्डों, काले एवं लाल मृद्भाण्डों तथा उत्तरी काले पॉलिश किये मृद्भाण्डों के रासायनिक विश्लेषण से इस तथ्य की पुष्टि भी की जा चुकी है।

चूंकि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में बहुतायत है अतः संभव है इनका उद्भव इसी क्षेत्र में हुआ हो। बाद के दिनों में यह गंगा के मैदानों के परे फैल गए होंगे जिसका कारण बौद्ध भिक्षुओं तथा व्यापारियों की गतिविधियाँ हैं।

10.6.1 भवनों के अवशेष

हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा तथा कौशाम्बी में खुदाई से यह स्पष्ट हो गया है कि इस काल के दौरान मकान बनाने का कार्य बड़े पैमाने पर शुरू हो गया था और शहरों का बनना आरंभ हो चुका था।

कौशाम्बी में बस्तियों के स्वरूप के प्रमाण काफी स्पष्ट रूप में उपलब्ध हुए हैं। इसी स्थान पर ईंटों के फर्श वाले रास्ते और गलियाँ मिली हैं। एक सड़क जो पहली बार लगभग 600 ईसा पूर्व में बनाई गयी थी उसकी कई बार मरम्मत की गयी (इसकी चौड़ाई 5.5 मीटर से 2.5 मीटर के बीच रही) और 300 ईसवी तक प्रयोग में रही। घरों के ढांचे तपाई ईंटों के होते थे। खंभों के गड्ढों एवं दरवाज़े के बाजू के लिए बने कोष्ठों से इमारतों में लकड़ी के प्रयोग के प्रमाण भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। घरों की छतें खपरैल लगा कर ढकी जाती थी। कमरे वर्गाकार तथा आयताकार होते थे।



10. बी.आर.डब्ल्यू., पी. बी.डब्ल्यू. तथा एन. बी.पी. बर्तनों के स्थलों को दर्शाता मानचित्र

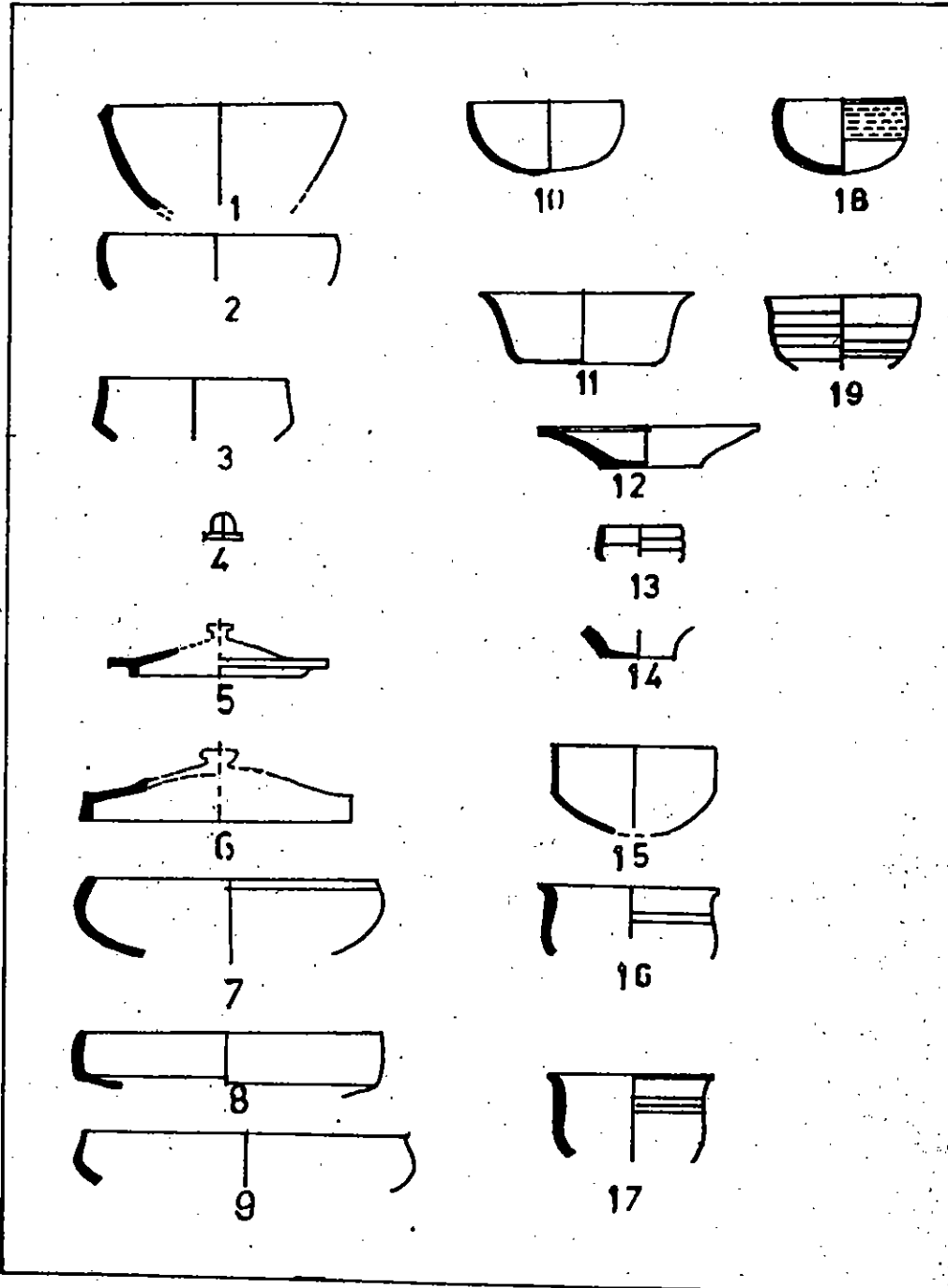
इन सभी प्रमाणों से पता चलता है कि इमारतों की बनावट काफी योजनाबद्ध तरीके से होती थी। हस्तिनापुर की खुदाई के साथ, जहाँ नालियों की विस्तृत व्यवस्था पायी गयी है, इस तथ्य की ओर भी पुष्टि हो जाती है। कुछ बस्तियाँ मिट्टी और ईंट की दीवारों के द्वारा किलेबन्द की गयी थीं और इस किलेबन्दी के चारों ओर खाइयाँ बना दी गयी थीं। कौशाम्बी में किले की दीवार के साथ जगह-जगह पर चौकीदारों के कमरे, बुर्ज तथा दरवाजे बने पाए गए हैं।

इस बिंदु पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या इन ढांचों से इस काल के सामाजिक अथवा राजनैतिक जीवन के प्रति कोई जानकारी मिलती है? ऐसा अवश्य है। उदाहरण के लिए :

- किलेबन्दी से आक्रमणों के विरुद्ध सुरक्षा उपायों तथा राजनैतिक तनावों पर प्रकाश पड़ता है।
- नालियों की व्यवस्था से न केवल लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता की जानकारी मिलती है बल्कि इस दिशा में इन लोगों द्वारा की गयी प्रगति की भी जानकारी मिलती है।
- यह पता चलता है कि बड़ी इमारत बनाने और किलेबन्दी करने के लिये बड़ी संख्या में कामगारों की आवश्यकता रही होगी तथा इन लोगों से काम लेने के लिए अधिकारी और सत्तावर्ग भी रहे होंगे।

10.6.2 बर्तन

उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की मुख्य विशेषता इसका चमकदार ऊपरी भाग है। चाक पर बनाए गए इन बर्तनों के लिए मिट्टी अच्छी तरह गूंध कर तैयार की गयी है। कुछ बर्तनों का तल 1.5 मिलीमीटर तक पतला है। चमकदार काले ऊपरी भाग के अतिरिक्त, उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड सुनहरे, रुपहले, सफेद, गुलाबी, इस्पाती नीले, चाकलेटी तथा भूरे रंग में भी पाए गए हैं। कुछ क्षेत्रों (जैसे—रोपर, सोनपुर) से रिपिट लगे बर्तनों (टूटे हुए टुकड़ों को जोड़कर बनाए गए) से पता चलता है उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड कितने मूल्यवान थे। इन मृद्भाण्डों तथा साथ-साथ अन्य बर्तनों की उपलब्धता से संकेत मिलता है कि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड बहुत कीमती होते थे और सभी के पास नहीं होते थे। यह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि इस काल में समाज असमान वर्गों में विभाजित था। यद्यपि उत्तरी काले मृद्भाण्ड सामान्यतः रंगे नहीं जाते थे लेकिन कुछ चित्रित मृद्भाण्डों के टुकड़े भी मिले हैं। मृद्भाण्ड पीले तथा हल्के सिंदूरी रंग से चित्रित किए जाते थे। इनकी सामान्य डिजाइनों में सादी पट्टियाँ, लहरदार रेखाएँ, बिंदियाँ, संकेदी गोले,



11. उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड

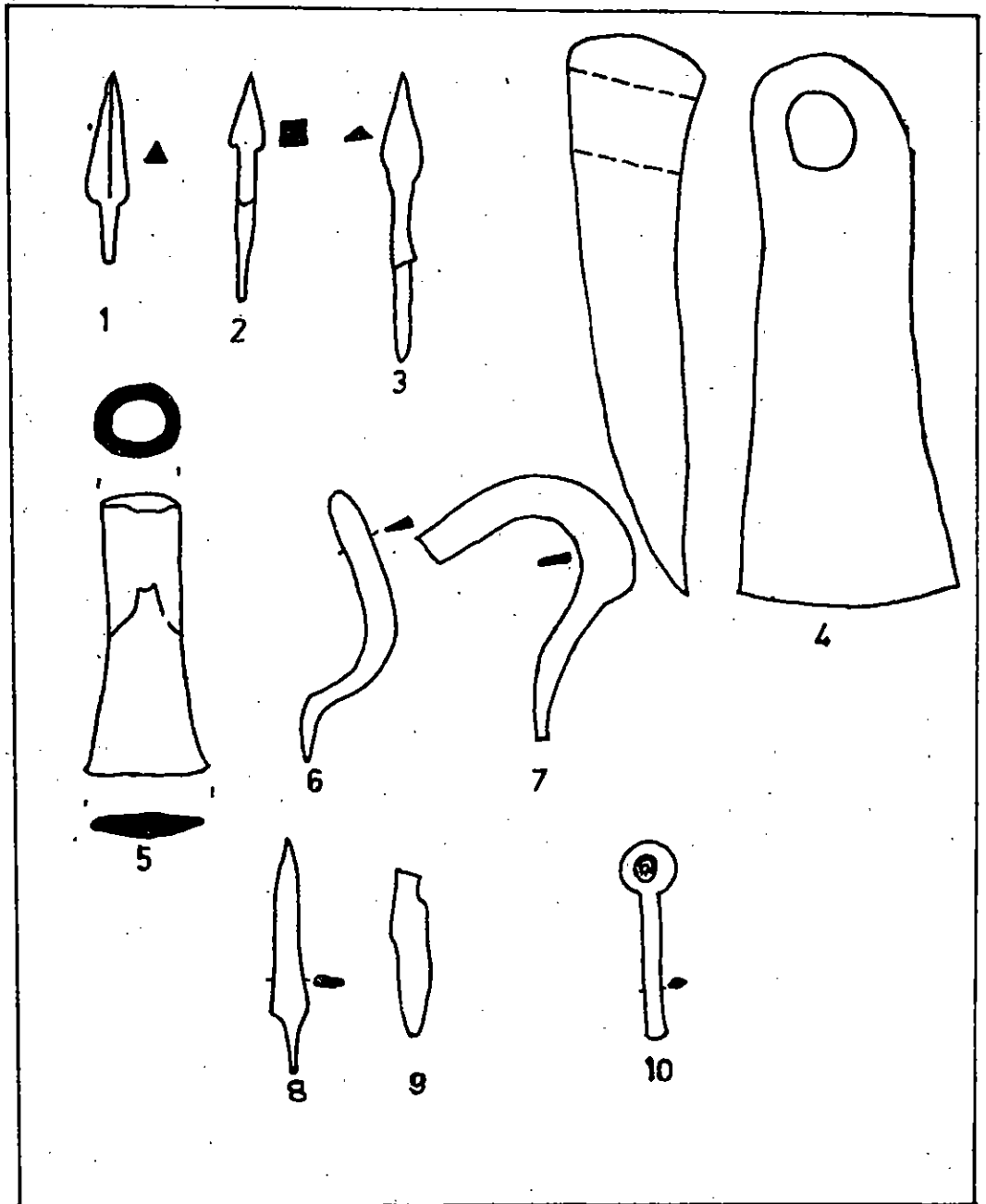
प्रतिच्छेदी गोले, अर्धवृत्त, चाप तथा फंदों की आकृतियाँ पाई गयी हैं। सबसे सामान्य बर्तन की किस्म प्याले तथा विभिन्न प्रकार की तश्तरियाँ हैं।

10.6.3 अन्य वस्तुएँ

उत्तरी पालिश किए मृद्भाण्डों के क्षेत्रों से ताम्र, लोहे, सोने, चाँदी, पत्थर, कांच तथा हड्डी के बने विभिन्न प्रकार के औज़ार, हथियार, गहने तथा अन्य वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इन उपलब्धियों से इस काल की तकनीकी प्रगति की ओर संकेत मिलता है। बौद्ध साहित्य, जोकि कई प्रकार की कलाओं और शिल्पों का उल्लेख करता है, से इस तथ्य की ओर भी पुष्टि हो जाती है। जातक कथाओं में लकड़ी, धातु, पत्थर, बहुमूल्य तथा अर्धबहुमूल्य पत्थर, हाथी दाँत, कपड़े आदि के कामगारों के लगभग 18 समूहों का उल्लेख मिलता है।

कई क्षेत्रों से प्राप्त ताम्र वस्तुओं में छोनियाँ, चाकू, बेधक, पिनें, सुइयाँ, सुरमें की सलाइयाँ, काटने का औज़ार, जोड़ चूड़ी, चरखियाँ तथा चूड़ियाँ मुख्य हैं।

लोहे की वस्तुओं की न केवल इस संस्कृति में प्रधानता है बल्कि रंगे घूसर मृद्भाण्ड युग की तुलना में इनमें काफी विविधता भी है। केवल कौशाम्बी से ही 800 ईसा पूर्व



12. सोहे के औज़ार, 1-3. तीर के फलक, 4. बसूला, 5. कुबानी 6-7. हँसिया, 8. छुरा 9. छेनी 10. कलछुनी

से 550 ईसवी के बीच की 1.115 लोहे की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इन वस्तुओं में मुख्य हैं :

- अ) खेती के उपकरण जैसे : कुदालें और हंसिया, तथा शिल्पकारों के औजार जैसे कुल्हाड़ियाँ, बसूला, छैनियाँ तथा पेच दंड।
- ब) हथियार जैसे : तीर के फल, बरछे व भाले के फल।
- स) अन्य वस्तुएँ जैसे : चाकू, विभिन्न प्रकार के दस्ते, कांटे, कीलें, रिपिट, जोड़ पट्टी, अंगूठियाँ तथा छोटी घंटियाँ।

चाँदी के पंच मार्कड सिक्के उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड संस्कृति के मध्य चरण से मिलना आरंभ होते हैं। इसका अर्थ वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था से घातु मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था की ओर संभावी बदलाव है।

10.6.4 गहने

अर्ध बहुमूल्य पत्थरों, कांच, चिकनी मिट्टी, ताम्र पत्तियों तथा हड्डियों की मालाएँ सबसे अधिक सामान्य थीं। इनकी आकृति सामान्यतः, वृत्ताकार, गोलाकार, द्विकोणीय, बेलनाकार, ढोलाकार तथा चौकोर होती थी। कुछ मालाएँ निष्कारित भी हैं। कौशाम्बी IB (300 ईसा पूर्व) से एकमात्र सोने की माला प्राप्त हुई है।

अन्य गहनों में पक्की मिट्टी, रंगीन चमकाई मिट्टी, कांच, सीप, पत्थर एवं ताम्र की चूड़ियाँ थीं। ताम्र, लोहे, सींग, तथा भूरी मिट्टी की अंगूठियाँ, चिकनी मिट्टी, अकीक तथा इन्द्रगोप के झुमके भी पाए गए हैं। इन सभी वस्तुओं से हमें निम्नलिखित जानकारी मिलती है:

- समाज में गहनों का इस्तेमाल,
- गहने बनाने वाले विशेषज्ञ शिल्पकारों का मौजूद होना,
- गहने बनाने की तकनीक की जानकारी के स्तर, तथा
- विभिन्न अर्धबहुमूल्य पत्थरों की उपलब्धता के लिए अन्य क्षेत्रों के साथ व्यापार अथवा विनिमय गतिविधियाँ।

10.6.5 मिट्टी की मूर्तियाँ

मिट्टी की मूर्तियों में मानवीय तथा पशुओं की मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ शामिल हैं। मानवीय मूर्तियाँ अधिकतर ढाल कर बनाई गयी हैं। पुरुषों की मूर्तियाँ, कुछ को छोड़कर जिनके सिरों पर पहनावा है, सामान्यतः सादी हैं। महिलाओं की मूर्तियाँ सर के पहनावों, कान के गहनों, हार, कमर के लटकों से सुसज्जित हैं।

पशुओं की मूर्तियाँ यद्यपि हाथ से गढ़ी गयी हैं लेकिन उनकी बनावट काफी अच्छी है। इनमें घोड़े, बैल, भेड़ तथा हाथियों की मूर्तियाँ हैं।

मिट्टी की अन्य वस्तुएँ खिलौनों की गाड़ियाँ, साधारण तथा पशुओं के सर वाले खिलौने, डिस्क, गंद तथा कुम्हार की मुहरें हैं। इसी संस्कृति के अगले चरण में मुहरें जिन पर ब्रह्मी लिपि में लिखावट मौजूद है, भी पायी गई हैं। इन तथ्यों से इन क्षेत्रों के निवासियों के संबंध में काफी जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए खिलौने की गाड़ी से हमें पता चलता है कि यह लोग वाहन के साधन के रूप में गाड़ियों का प्रयोग करते थे।

10.6.6 जीवनयापन अर्थव्यवस्था तथा व्यापार

पुरातात्विक वानास्पतिक अवशेषों से संकेत मिलता है कि इन क्षेत्रों में धान, गेहूँ, जौ, बाजरा, मटर, तथा काला चना उगाया जाता था। कुछ क्षेत्रों से मिले पशुओं के अवशेषों से लोगों के गाय, बैलों, भेड़, बकरियों, सुअरों तथा मछलियों पर निर्भर होने की जानकारी मिलती है।

विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य रूप से पाई गई विविध प्रकार की मालाएँ व्यापारिक

गतिविधियों की ओर संकेत करती हैं। इसी आधार पर अनुमान लगाया गया है कि तक्षिला, हस्तिनापुर, अहिक्षेत्र, श्रावस्ती तथा कौशाम्बी के बीच, 600 ईसा पूर्व से 200 ईसा पूर्व के दौरान व्यापारिक संबंध रहे होंगे। बौद्ध साहित्य में व्यापार समूहों तथा ऊंटों, घोड़ों, खच्चरों, बैलों तथा भैंसों के कारवां के संबंध में उल्लेखों से इस विचार की पुष्टि होती है। छठवीं तथा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच भारत, बेबीलोनिया, सीरिया तथा सुमेर (मध्य एशिया) के बीच व्यापार होता था। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ कपड़े, मसाले तथा सम्भवतः लोहे और इस्पात के बने सामान थे। अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्रतीत होता है कि राज्य न केवल व्यापार पर नियंत्रण रखता था बल्कि सौने, ताम्र, लोहे, सीसा, टिन, चाँदी, हीरे, जवाहरात तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों के उद्योग पर भी उसका प्रभुत्व था।

बोध प्रश्न 3

1 उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की संस्कृति को यह नाम कहाँ से मिला? तीन पंक्तियों में लिखें।

.....
.....
.....

2 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है, निशान लगाएं।

- क) उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड विलासिता की वस्तु थे। ()
- ख) विद्वानों का मत है कि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड संस्कृति के चार चरण थे। ()
- ग) साहित्यिक प्रमाण पुरातत्व शास्त्रियों के इस मत की पुष्टि करते हैं कि इस काल में व्यापारिक गतिविधियाँ होती थीं। ()
- घ) उत्तरी काले पॉलिश मृद्भाण्ड संस्कृति की बस्तियों में किलेबन्दी नहीं होती थी। ()

10.7 पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ

पश्चिमी पूर्वी एवं मध्य भारत में दूसरी एवं प्रथम सहस्राब्दी ईसा पूर्व के दौरान कई स्थानीय ताम्र पाषाण आरंभिक खेतिहर संस्कृतियाँ मौजूद थीं। यह संस्कृतियाँ मूलतः ग्रामीण बस्तियाँ हैं तथा उनमें कई तत्व समान हैं। इन संस्कृतियों के विशिष्ट लक्षण निम्नलिखित हैं:

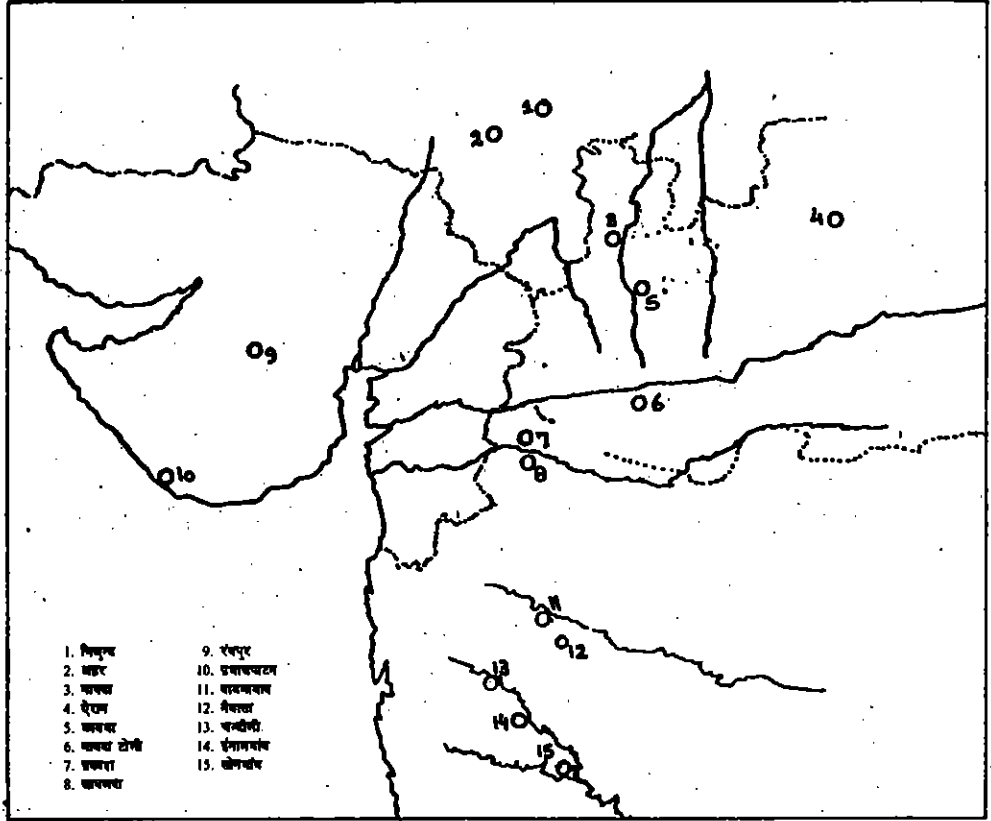
- चित्रित बर्तन जो मुख्यतः लाल पर काले रंगे हुए हैं, तथा
- सिलिकामय पत्थर के ब्लेड तथा पत्थरों का अत्यधिक विकसित उद्योग।

ताम्र की जानकारी इस समय थी लेकिन चूँकि यह धातु प्रचुर मात्रा में नहीं थी, अतः इसका इस्तेमाल सीमित पैमाने पर होता था। बस्तियों की संरचना गोल एवं आयताकार मॉपड़ियों से होती थी। कई स्थानों पर पत्थरीय आवास के भी प्रमाण मिले हैं। अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन पर आधारित थी। इन संस्कृतियों के नाम उनके विशिष्ट क्षेत्रों के नाम पर रखे गए हैं।

संस्कृति का नाम	काल
कायथ	2000-1800 ईसा पूर्व
आहर अथवा बानस	2000-1400 ईसा पूर्व
सवालदा	2000-1800 ईसा पूर्व
मालवा	1700-1200 ईसा पूर्व (मध्य भारत) 1700-1400 ईसा पूर्व (महाराष्ट्र)
प्रभास	1800-1500 ईसा पूर्व
रंगपुर	1400-700 ईसा पूर्व
चिरान्द	1500-750 ईसा पूर्व

महाराष्ट्र की तापती घाटी में उत्तर हड़प्पा सभ्यता की लगभग 50 गैर नगरीय बस्तियाँ अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं (1800-1600 ईसा पूर्व)। दायमाबाद की खुदाई से पता चला है कि उत्तर कालीन हड़प्पा के लोग दक्षिण की ओर प्रवारा घाटी (महाराष्ट्र) की ओर बढ़ गए।

कायथ संस्कृति का नाम कायथ (उज्जैन से 25 कि.मी. पूर्व की ओर), चम्बल नदी की एक उप नदी काली सिंध के तट पर स्थित, क्षेत्र के नाम पर रखा गया है। आहर अथवा बानस संस्कृति का नाम बानस नदी के नाम पर रखा गया है तथा इसका विशिष्ट क्षेत्र आहर है (राजस्थान में उदयपुर)। दक्षिण पूर्व राजस्थान में बानस और बेराच घाटियों में इस संस्कृति की पचास से अधिक बस्तियाँ पायी गई हैं। सवालदा संस्कृति का नामकरण सवालदा (धुलिया जिला, महाराष्ट्र) बस्ती के नाम पर हुआ है। यद्यपि यह संस्कृति अधिकतर तापती घाटी तक सीमित है लेकिन दायमाबाद से मिले प्रमाणों से इस संस्कृति के प्रवारा घाटी तक पहुंचने के संकेत मिलते हैं। मालवा संस्कृति नर्मदा नदी के तट पर माहेश्वर एवं नवादा टोली (निमार जिला, मध्य प्रदेश) की खुदाई के दौरान प्रकाश में आई। चूँकि इस संस्कृति की अधिकतर बस्तियाँ मालवा क्षेत्र के अंतर्गत प्रकाश में आई इसलिए इस संस्कृति का नाम मालवा संस्कृति रखा गया। लगभग 1600 ई. पू. के दौरान मालवा के लोग महाराष्ट्र की तरफ बढ़ना शुरू हो गए और तापती, गोदावरी और भीम घाटियों में इनकी कई बस्तियाँ प्रकाश में आई हैं। महाराष्ट्र में प्रकाश (धुलिया जिला), दायमाबाद (अहमदनगर जिला), इनाम गांव (पुणे जिला) सबसे बड़ी बस्तियाँ थीं। प्रभास और रंगपुर संस्कृतियाँ क्रमशः प्रभास पातन और रंगपुर (गुजरात) क्षेत्र के नामों से जानी जाती हैं। जोर्वे संस्कृति की विशिष्ट बस्ती महाराष्ट्र में स्थित जोर्वे (अहमदनगर जिला) है। प्रकाश, दायमाबाद तथा इनाम गांव में मालवा संस्कृति के बाद जोर्वे संस्कृति विस्तृत रूप में फैली। पाषाण और तांबे का प्रयोग करने वाले कई समूहों की जानकारी पूर्वी भारत में भी मिली है। उत्तरी बिहार में चिरान्द नामक स्थान पर एक प्राचीन ग्रामीण बस्ती के अवशेष मिले हैं। यहाँ लोग मिट्टी से थापे हुए बाँस के घरों में रहते थे। उनका प्रमुख भोजन चावल और मछली था तथा ये लोग जंगली जानवरों का शिकार भी करते थे। यह लोग भी काले व लाल रंग के मिट्टी के बरतनों का प्रयोग करते थे। इसी प्रकार की कुछ बस्तियाँ गोरखपुर के सहगोरा (उ. प्र.) और गया के सोनपुर (बिहार) नामक स्थानों पर भी मिली हैं। यहाँ लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। बंगाल के बुर्दबान जिले में पंडु-रंजर-ढीबी और मिदनापुर जिले में माहिसदाल नामक स्थानों पर भी इसी तरह की बस्तियों के संकेत मिले हैं। यह सारी बस्तियाँ लगभग 1500 से 750 ईसा पूर्व की प्रतीत होती हैं।



13. परिवर्तन तथा मध्य भारत में लाल चित्रित मृत्पात्र वस्तुएँ

आइए, इस संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं पर दृष्टि डालें।

10.7.1 बर्तन : पहचान के लक्षण

इन ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों के बर्तनों पर हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे। कथय के मृद्भाण्डों की बनावट की तीन मुख्य विशेषताएँ हैं:

- गहरी भूरी डिजाइन में चित्रित मोटी तथा गहरी लाल धारी वाले मृद्भाण्ड
- लाल रंग में चित्रित हल्के भूरे मृद्भाण्ड (यह मृद्भाण्ड पतले हैं तथा काफी सफाई से गढ़े गए हैं), और
- बगैर धारी वाले खरोचे गए मृद्भाण्ड। गहरी तथा मोटी लाल धारी वाले अधिकतर बर्तनों का आधार गोल है। यह गोल आधार पूर्व हड़प्पा सोठी मृद्भाण्डों के समरूप है।

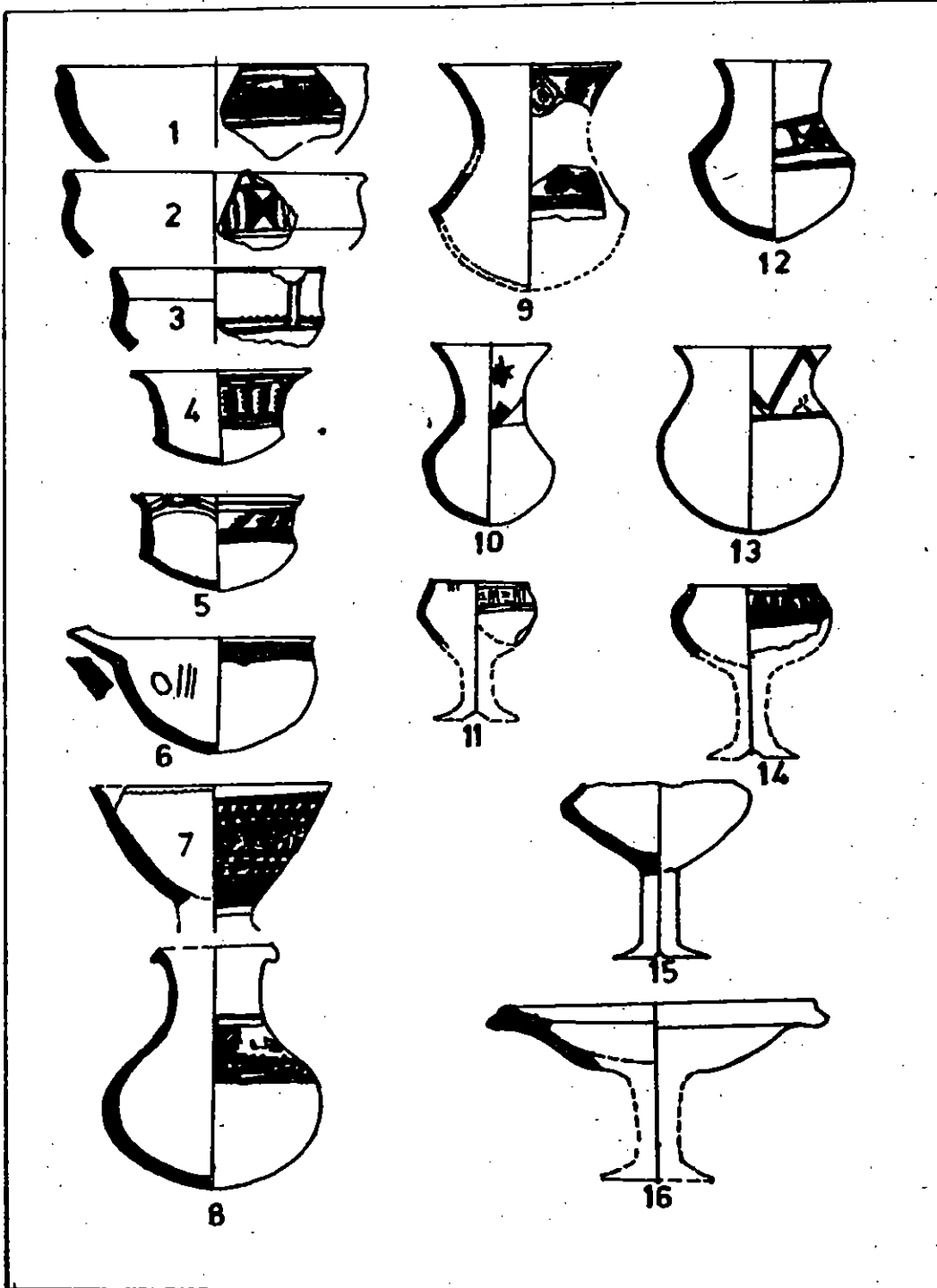
सोठी संस्कृति (राजस्थान) घग्गर घाटी (श्रावस्ती) के विभिन्न क्षेत्रों में फैली पायी गयी है। यहाँ पाए गए बर्तन कालीबंगन के पूर्व हड़प्पा बर्तनों के समरूप हैं।

आहर के बर्तनों में सात प्रकार के मृद्भाण्ड पाए गए हैं लेकिन इनमें मुख्य सफेद चित्रित काले एवं लाल मृद्भाण्ड हैं। सवालदा संस्कृति की विशेषता यहाँ के लाल पर काले चित्रित बर्तन हैं जिनको प्राकृतिक प्राणियों जैसे चिड़ियाँ, जानवर तथा मछलियों के चित्र बनाकर सुसज्जित किया गया है। मालवा के मृद्भाण्ड कुछ हद तक खुरदरे हैं

तथा इन पर मोटी हल्की भूरी धारी है जिस पर काले अथवा गहरे भूरे रंग से डिजाइन बनाए गए हैं। प्रभास तथा रंगपुर दोनों के मृद्भाण्ड हड़प्पा के लाल पर काले चित्रित मृद्भाण्ड के समरूप हैं लेकिन चूँकि इनको चमकाया भी गया है, अतः इन्हें चमकदार लाल मृद्भाण्ड कहा जाता है।

जोर्वे मृद्भाण्ड लाल पर काले चित्रित हैं तथा इनकी बनावट समतल, चमकरहित है, एवं इन पर लाल रंग की पुताई की गयी है।

इन विशिष्ट किस्मों के अतिरिक्त इन संस्कृतियों में अन्य मृद्भाण्ड भी मौजूद थे जो कि अधिकतर लाल अथवा घूसर हैं। बर्तन चाक गढ़ित हैं लेकिन हाथ के बनाए हुए बर्तन भी पाए गए हैं।



इन संस्कृतियों के सामान्य बर्तन प्याले, अन्दर की ओर धंसती गोल गर्दन वाले गोलाकार मर्तबान, तश्तरियाँ, लोटे आदि। मालवा के बर्तनों के विशिष्ट लक्षण ठोस आधार वाले छोटे-छोटे गिलासों में परिलक्षित होते हैं। जोर्वे संस्कृति के विशिष्ट बर्तन कैटिनेटेड प्याले, चौड़े मुँह वाले टोटीदार जार तथा गोल कलश हैं।

10.7.2 अर्थव्यवस्था

यह ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ जिन क्षेत्रों में फैलीं उनका अधिकतर भाग काली कपास उगाने के लिए उपयुक्त मिट्टी वाला क्षेत्र है। यहां का मौसम अर्धखुशक है तथा वर्षा औसत 400 से 1000 मिलीमीटर के बीच है। इन ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों की अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन पर आधारित थी। कुछ क्षेत्रों में जंगली जानवरों तथा मछली आदि जैसे अन्य भोजन स्रोतों पर निर्भरता के प्रमाण मिले हैं।

फसलें

कुछ क्षेत्रों से खुदाई में प्राप्त बीजों के कार्बनयुक्त अवशेषों से यहां के कृषक समुदायों द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने के प्रमाण मिलते हैं। मुख्य फसलें—जौ, गेहूँ, धान, बाजरा, ज्वार, मसूर, फलियाँ, मटर, काला चना, तथा मूंग थीं। अन्य पेड़ जिनके फलों का उपयोग किया जाता था वे थे—जामुन, बहेड़ा, जंगली खजूर, बेर आदि।

इस काल में जौ मुख्य अन्न था। इनामगांव से प्राप्त प्रमाणों से क्रमिक रूप में फसल उगाने, गर्मी तथा सर्दी की फसलों की कटाई तथा कृत्रिम सिंचाई की परंपरा का पता चलता है। आरंभिक जोर्वे युग (1400-1000 ईसा पूर्व) में इनामगांव में नहर द्वारा (200 मीटर लम्बी, 4 मीटर चौड़ी तथा 3.5 मीटर गहरी) बाढ़ के पानी की दिशा परिवर्तन के लिए एक विशाल बांध (240 मीटर लम्बा तथा 2.40 मीटर चौड़ा) बनाया गया था।

काली कपास उगाने के लिए उपयुक्त जमीन की जुताई के संकेत इनामगांव के समीप ही बालकी में मिले बैल के कंधे की हड्डी से बने अर्द (हल के फल का आरंभिक रूप) से मिलते हैं।

पशु

खुदाई से यहां पालतू तथा जंगली दोनों प्रकार के जानवरों के प्रमाण मिले हैं।

1 ताम्र पाषाण युग के दौरान पालतू पशुओं में गाय-भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता, सुअर तथा घोड़े मुख्य थे। गाय-भैंसों तथा भेड़-बकरियों की हड्डियाँ यहां के अधिकांश क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक मिली हैं। हड्डियों पर चोट पड़ने तथा कटने के निशानों से पता चलता है कि यह पशु भोजन की दृष्टि से काटे गए होंगे। इन हड्डियों की आयु निर्धारण से संकेत मिलता है कि इन पशुओं को कम आयु (तीन महीने से लेकर 3 वर्ष के बीच) में ही काटा गया होगा।

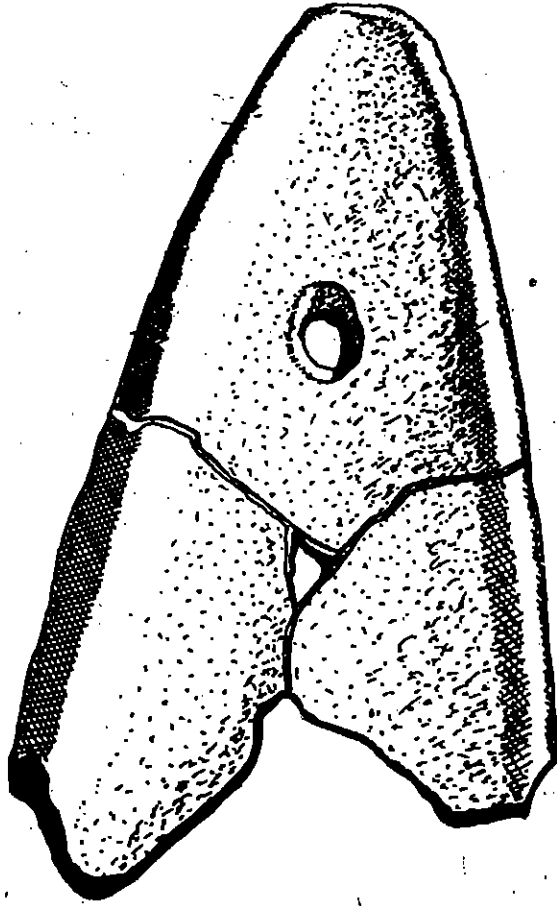
2 जंगली जानवरों में मृग, चार सींगों वाला हिरन, नीलगाय, बारहसिंगा, सांबर, चीतल, जंगली भैंस तथा गैंडे थे।

कुछ क्षेत्रों में जलमृगियों, समुद्री कछुआ तथा चूहों की भी हड्डियाँ मिली हैं। इनामगांव में समुद्री मछलियों की भी हड्डियाँ मिली हैं। यह मछलियाँ कल्याण अथवा हमद खाड़ी बंदरगाहों जो कि इनामगांव के समीपतम 200 कि.मी. पश्चिम की ओर स्थित थे से प्राप्त की गयी होगी।

पालतू तथा जंगली दोनों ही प्रकार के पशुओं की झुलसी हड्डियों के प्राप्त होने से पता चलता है कि इन पशुओं का मांस खुली आग में पकाया जाता था।

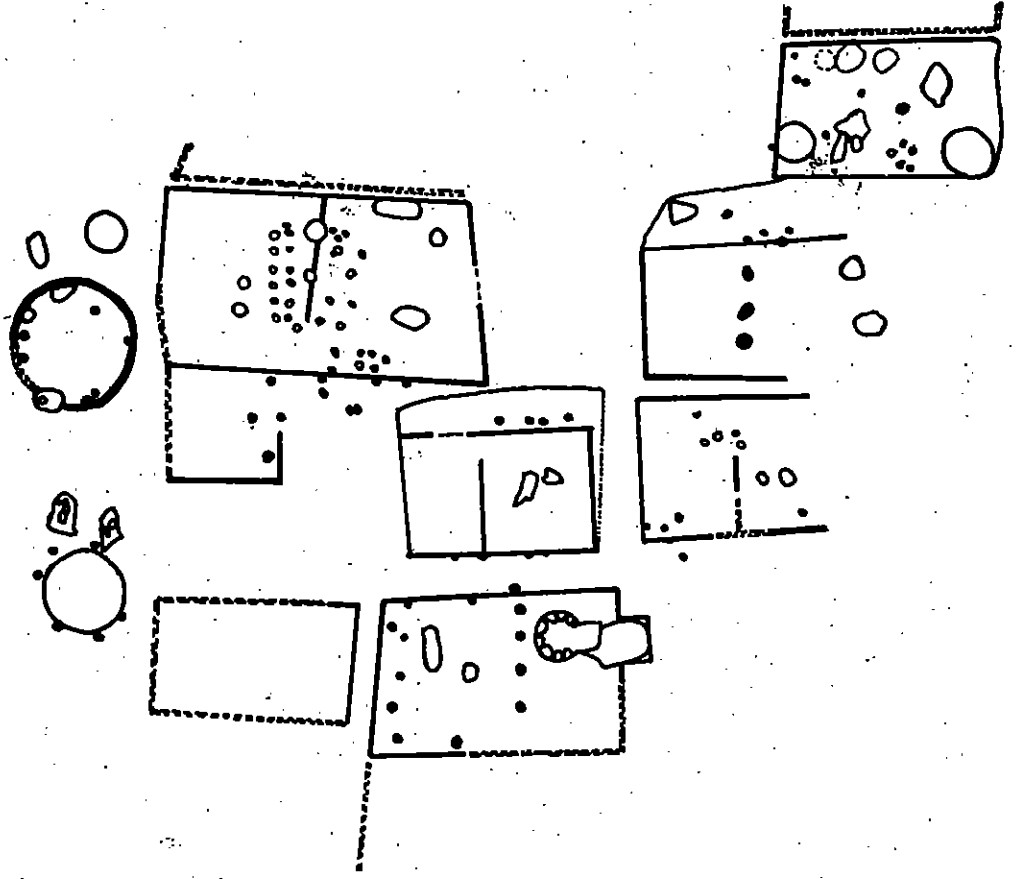
10.7.3 घर एवं बस्तियाँ

आइए, अब हम इन संस्कृतियों की गृह-निर्माण परंपराओं को संक्षिप्त रूप में विश्लेषित करें। मिट्टी की दीवारों तथा छप्पर की छतों वाले आयताकार एवं गोलाकार घर इन संस्कृतियों में सामान्य थे, यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में घर के आकारों में भिन्नता थी।



15. मालवी से प्राप्त हड्डी का आर्क

1. सवालदा संस्कृति में अधिकतर घर आयताकार तथा एक कमरों वाले थे लेकिन कुछ घरों में दो अथवा तीन कमरे भी थे। आहर के लोग पलमा पत्थरों की सिलो पर आधारित घर बनाते थे। इन्हीं सिलो पर मिट्टी अथवा मिट्टी की ईंटों की दीवारें बनाई जाती थीं तथा उन्हें स्फटिक की रोड़ी से सजाया जाता था। फर्श तपाई मिट्टी अथवा मिट्टी में नदी के कंकड़ मिलाकर तैयार किया जाता था।
2. आहर के घरों का आकार 7 मीटर × 5 मीटर अथवा 3 मीटर × 3 मीटर होता था। यहाँ मिले सबसे बड़े घरों का आकार 10 मीटर से भी अधिक लम्बा है। बड़े घरों में विभाजन दीवारें, चूल्हे तथा रसोई में चक्कियाँ होती थीं।
3. मालवा की बस्तियाँ, जैसी कि नवादाटोली, प्रकाश, दायमाबाद तथा इनामगांव में मिली हैं, काफी बड़ी थीं। इनामगांव से मिले प्रमाणों से संकेत मिलते हैं कि बस्तियाँ बनाने का काम योजनाबद्ध तरीके से होता था। इनामगांव में मिले लगभग 20 घरों में से अधिकतर पूर्व पश्चिम दिशा में नियोजित किए गए हैं। यद्यपि यह घर एक दूसरे से काफी निकट बनाए गए हैं लेकिन इनके बीच लगभग 1-2 मीटर की दूरी अवश्य रखी गयी है जो संभवतः गली के रूप में इस्तेमाल की जाती रही होगी। इनामगांव में मिले इन घरों का आकार काफी बड़ा (7 मीटर × 5 मीटर) और आयताकार है। इनमें विभाजन करती हुई दीवारें मौजूद हैं। घरों की दीवारें मिट्टी की बनी हैं तथा काफी नीची हैं एवं इनकी छतें ढलवाँ हैं। घरों के अन्दर आग जलाने के गोलाकार गड्ढे हैं जिनके किनारे दीवारों के रूप में ऊपर की ओर उठे हैं, जिससे आग पर नियंत्रण रखा जा सके। नवादाटोली के घरों में रसोई के अन्दर एक मुँह अथवा दो मुँह वाले चूल्हे होते थे। अनाज का भंडारण गहरे बने अन्न भंडारण गड्ढों (एक मीटर व्यास तथा एक मीटर गहरे) में होता था। घरों के अन्दर मिट्टी के गोल चबूतरे (1.5 मीटर व्यास के) संभवतः अनाज के टोकरों को रखने के काम आते होंगे।



चित्र 16. मालवा संस्कृति के अंतर्गत इनामगांव में गृह-निर्माण योजना

- 4 जोर्वे संस्कृति (जिसके अब 200 से अधिक क्षेत्र प्रकाश में आ चुके हैं और इनमें से अधिकतर को एक से चार हैक्टेयर के बीच के गावों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है) की मुख्य विशेषता यहां के प्रत्येक क्षेत्र में एक बड़े केन्द्रीय क्षेत्र का पाया जाना है। यह केन्द्र प्रकाश, दायमाबाद तथा इनामगांव है जो कि क्रमशः तापती, गोदावरी तथा भीमा की घाटियों में हैं। दायमाबाद जोर्वे बस्तियों में सबसे बड़ी बस्ती थी जो लगभग 30 हैक्टेयर में फैली थी जबकि प्रकाश एवं इनामगांव पांच-पांच हैक्टेयर में फैले थे।
- 5) इनामगांव में जोर्वे (पूर्वकालीन एवं उत्तर दोनों) की बस्ती की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि दस्तकारों, जैसे कुम्हार, सुनार, हाथीदांत के शिल्पकार आदि के घर मुख्य निवास क्षेत्र की पश्चिमी सीमा की ओर होते थे जबकि समृद्ध किसान केन्द्रीय भाग में रहते थे। दस्तकारों के घरों का आकार समृद्ध किसानों के घरों की अपेक्षा छोटा होता था। घर बनाने के स्थान तथा आकार के आधार पर इस समाज में दस्तकारों के निचले सामाजिक स्तर की जानकारी मिलती है।

कृछ ताम्र पाषाण बस्तियों के चारों ओर किलाबंदी भी की जाती थी। उदाहरण के लिए, मालवा संस्कृति की एरान तथा नगदा (मध्य प्रदेश) तथा इनामगांव (जोर्वे युग) में पत्थर के रोड़ों की बुर्ज युक्त मिट्टी की दीवार तथा बस्ती के चारों ओर खुदे हुए गड्ढे मिले हैं।

इनामगांव में घरों की बनावट में पूर्वकालीन जोर्वे युग (1400-1000 ईसा पूर्व) के घरों तथा उत्तरकालीन जोर्वे युग (1000-700 ईसा पूर्व) के घरों में भिन्नता दिखाई देती है।

पूर्व कालीन जोर्वे घरों के ढांचे आयताकार होते थे, इनकी मिट्टी की दीवारें नीची (लगभग 30 सेंटीमीटर ऊंची) होती थीं तथा चारों ओर सरपत एवं मिट्टी से बने ढांचे होते थे। यह घर पक्वियों में बनाए जाते थे तथा दिशा लगभग पूर्व से पश्चिमी की ओर होती थी, इन घरों के बीच में लगभग 1.5 मीटर चौड़ा खुला स्थान भी होता था जोकि संभवतः गली अथवा सड़क का काम देता था। इसके विपरीत उत्तर कालीन जोर्वे के घर यहां की निर्धनता का चित्रण करते हैं। बड़ी-बड़ी आयताकार झोपड़ियाँ इस युग में नहीं दिखाई देतीं। इनकी जगह मिट्टी की छोटी दीवारों वाली गोल झोपड़ियाँ बनाई जाती थीं। अन्न

भण्डार गड्डों की जगह चार पत्थरों पर रखे चौपाए भंडारण जार का उपयोग होता था।

तमाम प्रमाणों से संकेत मिलते हैं कि पूर्व कालीन जोर्वे से उत्तर कालीन जोर्वे में इस प्रकार का परिवर्तन वर्षा की दर में कमी आने के परिणामस्वरूप खेती का पतन होने के कारण हुआ। पश्चिमी एवं मध्य भारत में खोजबीन से पता चलता है कि दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के अंतिम चरण में इस क्षेत्र में मौसम में भारी परिवर्तन आने के कारण पूरा क्षेत्र खुश्क होने लगा जिसके परिणामस्वरूप लोगों को बाध्य होकर अर्ध खानाबदोश जीवन की ओर लौटना पड़ा। यह निष्कर्ष विभिन्न स्तरों से प्राप्त पशुओं की हड्डियों की प्रतिशत मात्रा के आधार पर निकाला गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जोर्वे युग में जलवायु में शुष्कता बढ़ने के कारण कृषि का ह्रास हुआ जिससे कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था भेड़-बकरी पशुपालन अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई।

10.7.4 अन्य विशेषताएं

यह सभी संस्कृतियां पत्थर के ब्लेडों, पत्थरों के उद्योग, जो कि सिक्थस्फटिक, चकमकी, सूर्यकांत तथा अकीक जैसे सिलिकामय पत्थरों पर आधारित थे, द्वारा रेखांकित होती हैं। औजारों में समानांतर किनारे वाले फलक, कुण्ठित किनारे वाले फलक, दंतुर फलक, चाकू, नवचन्द्राकार, तिकोने तथा समलंबाकार औजार पाए गए हैं। इन फलकों वाले औजारों में कुछ की धार पर चमक है, जिसका अर्थ यह हुआ कि यह औजार फसल की कटाई के काम में इस्तेमाल किए जाते थे।

पोलिश की गयी पत्थर की कुल्हाड़ियाँ भी जो कि विशिष्ट रूप से कर्नाटक, आंध्र के नव पाषाण-ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों में सम्बद्ध हैं, कुछ क्षेत्रों में प्राप्त हुई हैं यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं है।

ताम्र वस्तुओं में चपटी कुल्हाड़ियाँ अथवा काटने की उतल धार वाली कुठारें, तीर के फल, बरछों के फल, छेनियाँ, मछलियों के काटे, मध्य पशुका वाली तलवार, फलक, चूड़ियाँ, अंगठियाँ तथा मालाएँ हैं। कायथ में मिली वस्तुओं में एक बर्तन में ताम्र की 28 चूड़ियाँ मिली हैं। कुल्हाड़ियों जैसी कुछ वस्तुएं गढ़ी जाती थीं जबकि अन्य वस्तुएं हथौड़ों से पीट कर निरूपित की जाती थीं।

गहनों में सबसे अधिक इन्द्रगोप, सूर्यकांत, सिक्थस्फटिक, अकीक, सीप आदि के मनके पाये गये हैं। कायथ संस्कृति से सम्बद्ध एक बर्तन में सेलखड़ी के 40,000 छोटे-छोटे मनकों की एक कण्ठी मिली है। इनामगांव में सोने तथा हाथी दांत के मनके, सोने की एक कुंडलित आकार वाली कान की बाली तथा ताम्र की पहुंची प्राप्त हुई है।

इनमें से अधिकतर क्षेत्रों में मिट्टी की बनी वस्तुएं प्रचुर मात्रा में मिली हैं। यह वस्तुएं मानवीय एवं पशुओं की मूर्तियों के रूप में हैं। पारंपरिक शैली के मिट्टी के सांड (जो कि अधिकतर छोटे आकार के हैं) कायथ के ताम्र पाषाण स्तर से मिले हैं। इनमें कुछ में स्पष्ट ककुद हैं, कुछ की सींगें पीछे की ओर मुड़ी हुई हैं तथा कुछ की सींगें आगे की ओर समतलीय रूप में निकली हुई हैं। इन ताम्र पाषाण क्षेत्रों के अधिकतर क्षेत्रों में मिट्टी के बने सांडों के पाए जाने से यह पता चलता है कि सांड पूजनीय पशु था। यद्यपि इनके खिलौनों के रूप में इस्तेमाल की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

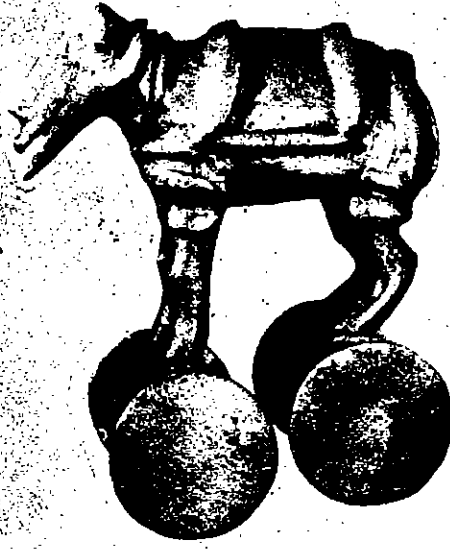
दायमाबाद भंडार

एक संयोगिक उपलब्धि के रूप में दायमाबाद में टीले के ऊपर (इसके नीचे जोर्वे युग का 1.2 मीटर संग्रह है) चार वस्तुएं मिली हैं। यह सभी वस्तुएं ठोस ढली हैं तथा इनका वजन 60 कि. ग्रा. से ऊपर है।

- 1 हाथी—यह सबसे भारी है (ऊचाई 25 सें.मी. तथा लम्बाई 27 सें.मी.) तथा ताम्र के आधार पर, जिसके नीचे घुरियाँ समाने के लिए चार कोष्ठ हैं, खड़ा है।
- 2 गेंडा—यह कुछ छोटा है तथा यह भी एक आधार पर खड़ा है। कोष्ठों में ताम्र की दो ठोस घुरियाँ तथा गढ़े हुए पहिए लगे हैं। गेंडा कुछ उसी प्रकार का है जैसा कि सिंधु की मुहरों पर बना है।

- 3 सवार सहित दो पहियों वाला रथ—रथ एक लम्बे ध्रुव के सहारे जुआ युक्त बैलों से, जो कि दो ताम्र की ढली दो पट्टियों पर खड़े हैं, जुड़ा हुआ है। लेकिन इसमें पहियों के लिए कोष्ठ नहीं है। रथ में एक दंड है, जिसे दो समानांतर दंड संभाले हुए हैं। इस दंड पर सवार खड़ा है। इस कृति जैसा अन्य कोई उदाहरण नहीं है।
- 4 भैंस—इस कृति में भी दो पहिए एवं घुरी मौजूद है। इस कृति जैसी ही भैंस की मिट्टी एवं ताम्र अथवा कांस्य दोनों की ही मूर्तियां मोहनजोदड़ो से भी प्राप्त हुई हैं।

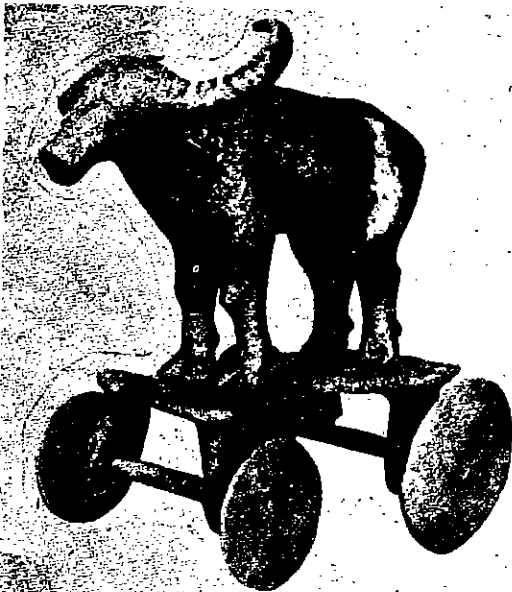
दायमाबाद के भंडार की ताम्र की तुलना खुदाई में मिली अन्य ताम्र वस्तुओं से की जा सकती है। इस धातु के स्पेक्ट्रोमेट्रिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें टिन अथवा कोई अन्य धातु की मिलावट नहीं की गयी थी। एक मत के अनुसार, दायमाबाद के भंडार का काल उत्तर कालीन हड़प्पा काल (1600-1300 ईसा पूर्व) है। एक अन्य मत के अनुसार, तकनीक के आधार पर इनका काल कल्लूर भंडारों वाला काल हो सकता है।



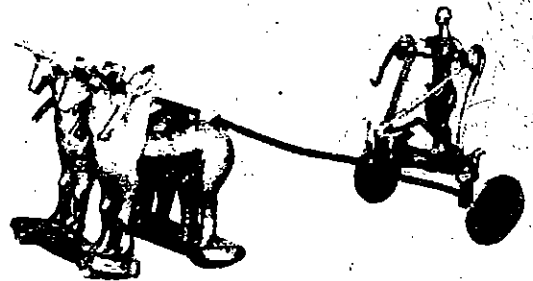
17. ताम्बे का रथ (दायमाबाद)



18. ताम्र हाथी—दायमाबाद



19. ताम्र भैंसा—दायमाबाद



20. सवार सहित दो पहियों वाला रथ

10.7.5 धर्म एवं विश्वास

खुदाई से प्राप्त जानकारियों से लोगों के धार्मिक विश्वासों एवं रीतियों पर भी प्रकाश पड़ता है।

- 1 **बेवियां:** ताम्र पाषाण समुदाय के लोगों के देवियों में विश्वास तथा उनकी पूजा के प्रमाण नारी प्रतिमाओं (जो तपाए तथा गैर तपाए दोनों रूपों में मौजूद थीं) के पाए जाने से प्राप्त होते हैं। इन प्रतिमाओं में कुछ के सर हैं और कुछ के नहीं हैं। बस्तियों के निचले तलों में नेवासा (दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य में) में शीर्ष रहित बड़े आकार की एक नारी प्रतिमा मिली है जो कि बगैर किसी विशिष्ट शारीरिक लक्षणों की है। इनामगांव में भी इसी प्रकार की मिट्टी की प्रतिमाएं मिली हैं जिनमें स्तनों के अतिरिक्त अन्य शारीरिक लक्षण नहीं हैं।

इनामगांव में एक आरंभिक जोर्वे घर (1300 ईसा पूर्व) की खुदाई से देवी पूजा के प्रमाण मिले हैं। यहां पर एक कोने में फर्श के नीचे दबा अंडाकार मिट्टी का पात्र ढक्कन सहित मिला है। इस पात्र के अन्दर एक नारी प्रतिमा मिली है जिसके स्तन बड़े एवं लटके हुए हैं। साथ एक सांड की मूर्ति भी मिली है।

इनामगांव से मिले प्रमाण तथा सभी नारी प्रतिमाओं से उर्वरता की देवी की पूजा के संकेत मिलते हैं। यह प्रतिमाएं (विशेषकर शीर्ष रहित प्रतिमाएं), एक मतानुसार, सकम्भारी देवी (पूर्व ऐतिहासिक युग) जो कि कृषि उर्वरता की देवी थी तथा सूखे से छुटकारा पाने के लिए पूजी जाती थी, की प्रतीत होती है।

- 2 **बेबता:** ताम्र पाषाण बस्तियों में पुरुष प्रतिमाएं काफी कम हैं। ऐसा मत है कि इनामगांव में उत्तर जोर्वे तलों (1000-700 ईसा पूर्व) में मिली दो मिट्टी की पुरुष प्रतिमाएं (जिनमें एक तपाई गयी है तथा दूसरी गैर तपाई है) देवताओं की प्रतिमाएं होंगी। इसी संदर्भ में मालवा काल (1600 ईसा पूर्व) का एक चित्रित जार धार्मिक महत्व का माना गया है। इस बर्तन में दो भाग हैं। ऊपरी भाग में एक चित्र बना है, जिसमें एक मानवीय आकृति टहनियों का वस्त्र पहने हुए एक शेर पर आवृत है और उसके चारों ओर कुछ निश्चित शैली में ढले हुए पशु जैसे सांड, हिरन तथा मोर आदि खड़े हैं। निचले भाग में छलांग लगाते चीते अथवा तेंदुए हैं और यह भी निश्चित शैली में ढले हुए हैं। अच्छी तरह चित्रित करके सजायी गयी तश्तरी भी सम्भवतः कर्मकाण्डीय प्रयोगों के लिए होगी। इसी प्रकार दायमाबाद से प्राप्त ठोस ताम्र हाथी और भैंस की प्रतिमाएं आदि भी सम्भवतः धार्मिक महत्व रखते होंगे।

- 3 **मृतकों को बफनाने की प्रथा:** मृतकों को दफन कर के विन्यास करना एक सामान्य रीति थी। वयस्क तथा बच्चे दोनों ही उत्तर-दक्षिण क्रम में दफनाए जाते थे। सर उत्तर की ओर होता था तथा पैर दक्षिण की ओर। वयस्क अधिकतर लिटा कर दफनाए जाते थे जबकि बच्चे कलशों में दफनाए जाते थे। यह कलश कभी एक और अधिकतर दो होते थे जिनका मुंह जोड़ कर उन्हें गड्ढे में लिटा दिया जाता। वयस्क और बच्चे दोनों ही गड्ढों में दफनाए जाते थे जो घर के फर्श में खोदे जाते थे और कभी-कभी घर के आंगन में भी खोदे जाते थे। इस संदर्भ में रुचिकर तथ्य यह है कि जोर्वे युग में वयस्क मृतकों के टखनों के नीचे का पैर काट दिया जाता था। मृतकों को घर के अहाते में दफनाने तथा टखने के नीचे का भाग काट देने की प्रथा सम्भवतः इस विश्वास की ओर संकेत करती है कि ऐसा करने से मृतक भूत नहीं बनेंगे जो कि दुष्ट हो सकते हैं।

विभिन्न स्थानों पर वयस्क शवाधान में शव के साथ कुछ वस्तुएं भी रखी जाती थीं जो कि सामान्यतः दो और कभी-कभी दो से अधिक पात्र होते थे। उत्तर जोर्वे युग के एक शवाधान में पंद्रह पात्र रखे मिले हैं। मृतकों को उनके गहनों के साथ दफनाना भी सामान्य था। उत्तर जोर्वे युग के एक शवाधान में मनुष्य के अस्थिपंजर की गर्दन के निकट एक ताम्र का गहना प्राप्त हुआ है। इसी युग में दो कलशों में दफनाए गए एक बच्चे के साथ ताम्र का गहना प्राप्त हुआ। इसी युग में दो कलशों में दफनाए गए एक

बच्चे के साथ ताम्र एवं लाल इंद्रगोप के मनकों की क्रम में गुथी बारह मनकों की एक कण्ठी मिली है।

इनामगांव से प्राप्त जानकारी से जोर्वे युग में कुछ असामान्य शवाधान के तरीकों का भी पता चला है। यहां पर एक चार पायों वाला कलश, जो कि गैर तपाई मिट्टी का बना है और इसका दक्षिणी भाग मानवीय शरीर की तरह है, प्राप्त हुआ है। इस कलश (इसकी ऊंचाई 80 सें.मी. तथा चौड़ाई 50 सें.मी. है) का मुख चौड़ा और स्वरूप विहीन है और इसमें एक 30 से 40 वर्ष की आयु के पुरुष का ढांचा मिला है। यह ढांचा बैठने की मुद्रा में रखा मिला है। इसके टखने नहीं काटे गए हैं। कब्र की वस्तुओं में एक टोटीदार पात्र, जिस पर एक नाव, जिसके लम्बे चप्पू हैं का चित्र बना है, रखा मिला है। इस नाव के चित्र से आज हिन्दुओं के उस विश्वास का स्मरण आता है जिसमें वे मानते हैं कि मृतक की आत्मा को नाव में जलसागर पार करना होता है और तभी वह स्वर्ग पहुंचती है। इस प्रकार के भव्य शवाधान का गौरव प्राप्त करने वाला व्यक्ति संभवतः

- समाज में उच्च स्तर का व्यक्ति रहा होगा, अथवा
- बस्ती का प्रधान शासक रहा होगा, अथवा
- किसी ऐसे सामाजिक समूह का सदस्य होगा जिनके शवाधान का तरीका भिन्न था।

10.7.6 सामाजिक संगठन

ताम्र पाषाण संस्कृति के क्षेत्रों में पाये गये विभिन्न स्थलों के फैलाव के अध्ययन से यह लगता है कि स्थल दो प्रकार के थे, एक वह जो क्षेत्रीय केन्द्रों का प्रतिनिधित्व करते थे तथा दूसरे गांवों की बस्तियों का। यह अन्तर अथवा स्तरीकरण ताम्र पाषाण काल में किसी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था के मौजूद होने की ओर संकेत करता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि ताम्र पाषाण सामाजिक संगठन श्रेणीबद्ध था। इसके साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों में मिली सुरक्षा दीवारों, खाइयों, अनाज के गोदाम, बांध तथा नहरों (जो कि इनामगांव में काफी स्पष्ट हैं) आदि सार्वजनिक व्यवस्थाओं को समग्र रूप में देखने से किसी न किसी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था के विद्यमान होने के विचार को और भी बल मिलता है।

उत्तर हड़प्पा में हुए विकास के विस्तृत संदर्भ में देखने पर ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ हड़प्पा संस्कृति के प्रभाव को आंशिक रूप में दर्शाती हैं। तथापि इन संस्कृतियों में अपने विशिष्ट क्षेत्रीय प्रभाव मौजूद हैं और एक दूसरे के साथ व्यापारिक संपर्क तथा सांस्कृतिक संबंध के प्रमाण मौजूद हैं।

धातु का इस्तेमाल करने वाले यह खेतिहर समुदाय दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के आसपास फैले और प्रथम सहस्राब्दी ईसा के लगभग अदृश्य हो गए (केवल उत्तर कालीन जोर्वे 700 ईसा पूर्व तक विद्यमान रहा)। इस पतन का एक संभावनी कारण (जो कि इन ताम्र पाषाण क्षेत्रों की मिट्टी के नमूनों के विश्लेषण के आधार पर व्यक्त किया गया है) बढ़ती हुई खुश्की तथा मौसम की विपरीत परिस्थितियाँ हैं। गोदावरी, तापती तथा अन्य घाटियों की कई बस्तियाँ निर्जन हो गयीं और पाँच अथवा छः शताब्दियों के अंतराल के बाद पांचवी/चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में शहरीकरण के साथ फिर से बसीं।

बोध प्रश्न 4

1. निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है अथवा कौन सा गलत (×) है।
 - क) पश्चिमी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ शहरी बस्तियों पर आधारित थीं। ()
 - ख) खुदाई में मिले कार्वनयुक्त बीज इन (ताम्र पाषाण) लोगों द्वारा उगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की फसलों के द्योतक हैं। ()
 - ग) इनामगांव में मिले दस्तकारों के छोटे आकार के घर सामाजिक विभिन्नता की ओर संकेत करते हैं। ()

- घ) देवी की पूजा के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। ()
ङ) कुछ क्षेत्रों में दफनाने के लिए कलशों का प्रयोग किया जाता था। ()

2 मालवा बस्तियों की क्या विशेषताएँ हैं। दस पंक्तियों में लिखें।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

3 दायमाबाद के भंडार की विशेषताओं पर पांच पंक्तियाँ लिखें।

.....
.....
.....
.....
.....

10.8 सारांश

लगभग 2000 ई.पू. तक भारत के विभिन्न भागों में खेतिहर समुदाय स्थापित हो चुके थे। यह खेतिहर समुदाय ताम्बे और पत्थर के बने औजारों का प्रयोग करते थे। उत्तर भारत में यह समुदाय विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। विशेषकर गेरुए रंग वाले मिट्टी के बर्तन (OCP) तथा काले व लाल रंग वाले मिट्टी के बर्तन (BRW)। विभिन्न प्रकार के ताम्बे के औजार भी प्राप्त हुये हैं। मध्य भारत तथा महाराष्ट्र के काली मिट्टी वाले क्षेत्रों की खुदाई से कायथ, मालवा और जोर्वे संस्कृतियों की उपस्थिति का पता चलता है। लगभग 750 ई. पू. तक बहुत से खेतिहर समुदायों ने लोहे का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। ताम्र पाषाण समुदायों में मिट्टी के बर्तनों के प्रयोग में बहुत भिन्नता दिखायी देती है। लौह युग के घूसर रंग वाले मृद्भाण्ड तथा उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड बहुत विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग किये जाते थे। उत्तरी काले पॉलिश मिट्टी के बर्तन लगभग पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रयोग किये जाते थे। इस काल में विभिन्न समुदायों के बीच आदान-प्रदान और एक दूसरे पर प्रभाव डालने की प्रक्रिया बढ़ी। इसी काल में शहरी सभ्यता का भी प्रारम्भ हुआ। विभिन्न संस्कृतियों के खुदाई स्थलों से प्राप्त वस्तुएं बस्तियों की बनावट, व्यापारिक संबंध, औजारों की किस्मों, आभूषणों और धार्मिक विश्वासों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

10.9 शब्दावली

पुरातात्विक वानस्पति : पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त पेड़-पौधों के अवशेषों का अध्ययन।

अर्धशास्त्र : एक ऐतिहासिक ग्रन्थ जो परम्परागत रूप से चंद्रगुप्त के (चौथी-तीसरी शती ई. पू.) मंत्री कौटिल्य द्वारा रचित माना जाता है।

ब्रह्मी लिपि : भारत की प्राचीनतम ज्ञात लिपि। सम्राट अशोक के शिलालेख अधिकांशतया इसी लिपि में लिखे गये हैं। भारत की अधिकांश आधुनिक लिपियाँ जैसे—तमिल, देवनागरी आदि, इसी से ली गई हैं।

ताम्र पत्राण युगीन समूह : वह समूह अथवा समुदाय जो तांबे और पत्थर के औजारों का प्रयोग करते हैं।

जातक कथाएं : गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित कथाएं।

पंचमार्कंड सिक्के : तांबे और चांदी के सिक्के जो पाँचवीं, छठी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रयोग हुए। यह भारत के प्राचीनतम ज्ञात सिक्के हैं।

ताम्र संबंधित परीक्षा : चीनी मिट्टी के बर्तनों के निर्माण की तिथि ज्ञात करने की एक वैज्ञानिक पद्धति।

मृदभाण्ड : इसका प्रयोग मिट्टी के बर्तनों के लिये किया गया है। दोनों ही शब्दों का प्रयोग इसलिये किया गया है ताकि आप इस शब्द से परिचित हो सकें क्योंकि अधिकांश प्राचीन इतिहास की पुस्तकों में मिट्टी के बर्तनों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1 आपके उत्तर में बर्तनों के प्रकार, इनकी विशेषताएं, भवनों की बनावट, फसल और इस संस्कृति का प्रभाव क्षेत्र सम्मिलित होना चाहिये। देखें भाग 10.2
- 2 क) × ख) × ग) × घ) ✓

बोध प्रश्न 2

- 1 आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहिए। मिट्टी के बर्तनों का रंग, इनको बनाने की पद्धति, तथा विभिन्न क्षेत्रों के काले व लाल रंग के बर्तनों के अंतर जैसे कि दोआब के काले व लाल रंग के बर्तन सादे हैं जबकि गिलुन्द तथा आहर के काले व लाल बर्तन रंगे हुये हैं। देखें भाग 10.4
- 2 यहाँ अर्द्ध बहुमूल्य (Semi precious) रत्नों के पाये जाने का उदाहरण ले सकते हैं। चूँकि यह रत्न यहाँ नहीं पाये जाते अतः व्यापार द्वारा आये होंगे। देखें भाग 10.5

बोध प्रश्न 3

- 1 उत्तरी काले पॉलिश किए बर्तनों की संस्कृति को यह नाम उन विशिष्ट बर्तनों के कारण मिला जो इस काल से जुड़े हुये हैं। देखें भाग 10.6
- 2 क) ✓ ख) × ग) × घ) ×

बोध प्रश्न 4

- 1 क) × ख) ✓ ग) ✓ घ) ✓ ङ) ✓
- 2 ये काफी बड़ी वस्तियाँ हैं जो योजनाबद्ध तरीके से बनायी गयी हैं। आप इनकी योजना और अन्य विशेषताएं जैसे—अण्डाकार अग्निकुण्ड तथा जमीन के नीचे बनी अनाम्र की छतियों आदि की चर्चा करें। देखें उपभाग 10.7.3
- 3 इसकी खोज संयोगवश हुई। यहाँ प्राप्त वस्तुओं और उनकी विशेषताओं के बारे में बताएं। देखें उपभाग 10.7.4

इकाई 11 ताम्र पाषाण युग तथा आरंभिक लौह युग-II

इकाई की रूपरेखा

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 आरंभिक कृषक बस्तियाँ
 - 11.2.1 सांस्कृतिक चरण
 - 11.2.2 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था
 - 11.2.3 भौतिक संस्कृति
 - 11.2.4 दाह संस्कार के तरीके
- 11.3 नवपाषाण युगीन धरातल की उपलब्धियाँ
- 11.4 दक्षिण भारत में लौह युग
 - 11.4.1 महापाषाण युगीन संस्कृतियाँ
 - 11.4.2 महापाषाण युगीन संस्कृतियों की उत्पत्ति
 - 11.4.3 भौतिक संस्कृति
 - 11.4.4 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था
- 11.5 सारांश
- 11.6 शब्दावली
- 11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों तथा उसके बाद के लौह युग का विवरण दिया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे:

- दक्षिणी भारत की प्रारंभिक कृषि संस्कृति के क्रमिक चरण तथा उनकी बुनियादी विशेषताएँ,
- इन संस्कृतियों की बस्तियों, अर्थव्यवस्था तथा अन्य पक्षों का स्वरूप,
- इस क्षेत्र में प्रारंभिक लौह युग की विशिष्टताएँ।

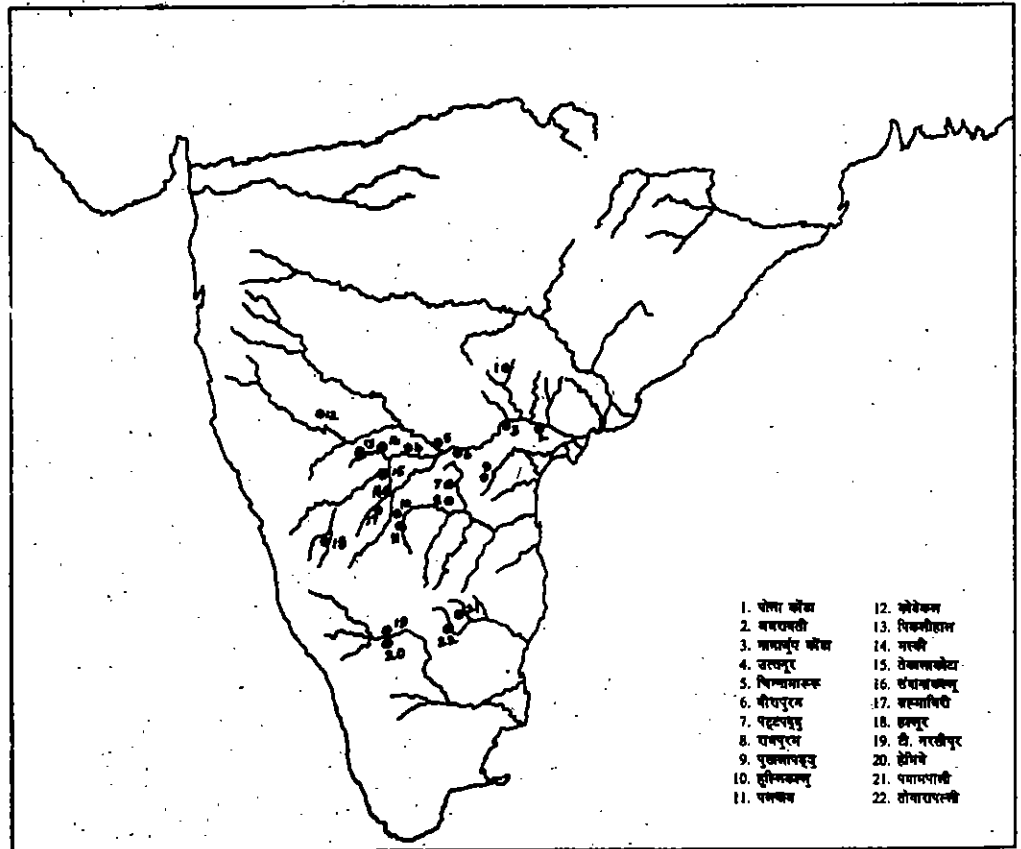
11.1 प्रस्तावना

अब तक आप मानव जाति के आखेटन संग्रहण अवस्था से स्थायी कृषिगत् समुदाय की अवस्था में विकास से भली-भाँति परिचित हो चुके होंगे। आपने हड़प्पा सभ्यता तथा उससे सम्बद्ध विभिन्न पक्षों की भी जानकारी प्राप्त की है। तदुपरांत, पिछली इकाई में आपने यह भी देखा कि हड़प्पा सभ्यता के पतन के पश्चात् किस प्रकार द्वितीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व से लेकर प्रथम सहस्राब्दी ईसा पूर्व के समय के दौरान विभिन्न संस्कृतियों का उदय हुआ। इस इकाई में इसी काल के दौरान दक्षिण भारत में हुए विकासों पर प्रकाश डाला जाएगा। इस इकाई में अध्ययन के केन्द्र बिन्दु इस काल की भौतिक संस्कृति, बस्तियों के स्वरूप में आए परिवर्तन तथा सामाजिक संगठन होंगे।

11.2 आरंभिक कृषक बस्तियाँ

दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदायों की बस्तियाँ तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में अज्ञानक अस्तित्व में आती हैं। आखेटन संग्रहण अर्थव्यवस्था से खाद्योत्पादन अर्थव्यवस्था की ओर क्रमबद्ध विकास (जैसा कि पश्चिमी एशिया में हुआ) के कोई प्रमाण नहीं मिले। इन क्षेत्रों से मिलने वाले प्रमाण इस दिशा की ओर संकेत करते हैं कि गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्र, पेनेरु तथा कावेरी नदियों के निकट खेती तथा जानवरों के लिए उपयुक्त क्षेत्रों का एक प्रकार से उपनिवेशीकरण हो गया था। अधिकतर स्थानों पर यह बस्तियाँ अर्धवसर कम वर्षा वाले तथा चिकनी मिट्टी के बालू वाले क्षेत्रों में फैली हुई थी। ये क्षेत्र खुशक खेती तथा चरवाही (गाय, बैल तथा भेड़, बकरी) के लिये उपयुक्त थे। इन बस्तियों की विशिष्टताएँ निम्नलिखित हैं:

- 1 स्थिर ग्रामीण बस्तियाँ जिनके घर तथा अन्य भवन अर्धस्थायी और स्थायी दोनों ही प्रकार के थे। स्थायी इमारतों में सरपत से बने ढांचों पर लिपायी की जाती थी।
- 2 पत्थरों की कुल्हाड़ियाँ (भूरी चट्टानों जैसे सख्त पत्थरों से बनी) जो कि घिसाई तथा चमका कर बनायी जाती थी। इस तकनीक के कारण आरंभिक कृषक संस्कृतियों के पत्थर के औजारों के उद्योग को चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग कहा जाता है।



चित्र 21. दक्षिण भारत में प्रमुख नद्यक्षेत्र तथा ताल पाषाण बस्तियाँ

- 3 चकमकी, सूर्यकांत, सिक्थस्फटिक तथा अफीक जैसे पत्थरों से बनाए गए लम्बे एवं पतले फलक। इन औजारों में काटने की धार चमकाई गयी प्रतीत होती है जिससे पता चलता है कि यह औजार फसल काटने के लिए प्रयोग किए जाते थे।
- 4 आरंभिक चरणों में हाथ से बनाए गए बर्तन तथा बाद के चरणों में चाक पर बनाए जाने वाले बर्तन।
- 5 ज्वार बाजरे की खेती तथा गाय बैल एवं भेड़ बकरियों के पालन पर आधारित अर्थव्यवस्था। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पशुपालन पर आधारित है।
- 6 भोजन की आवश्यकताएँ जंगली जानवरों से पूरी की जाती थीं।

11.2.1 सांस्कृतिक चरण

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर हम दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदाय के विकास के मोटे तौर पर तीन चरण इंगित कर सकते हैं।

चरण I

इन खेतिहर समुदायों की प्राचीनतम बस्तियाँ प्रथम चरण का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखरों अथवा पहाड़ियों के निकट समतल स्थानों अथवा दो या दो से अधिक पहाड़ियों के बीच की घाटियों में बनी थीं। इस चरण की भौतिक संस्कृति चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग, फलक, फलक युक्त औजार तथा हाथों से गढ़े बर्तनों पर आधारित थी।

बर्तनों में घुसर अथवा सलेटी रंग के मिट्टी के बर्तनों की अधिकता है। चमकाए हुए चिकनी मिट्टी के लाल अथवा काली धारी वाले बर्तन कम संख्या में हैं यह बर्तन अक्सर बैंगनी रंग से अलंकृत किए जाते थे। यह प्राचीनतम बस्तियाँ राख के टीलों से संबंधित थी जिनमें से कुछ में खुदाई की गई हैं। उनमें प्रमुख हैं—उतनूर, कूपयाल, कोडेकाल, पालावाय, पिकलीहाल मस्की, यह स्थल इन कृषक पशुपालक समुदाय की बस्तियों के प्रथम चरण के विशिष्ट उदाहरण हैं। रेडियोकार्बन तिथियों के आधार पर इस चरण का काल 2500-1800 ईसा पूर्व रखा जा सकता है।

चरण II

इस चरण में भी प्रथम चरण की बस्तियों की यथास्थिति बनी रहती है। अभी भी बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों से जुड़े समतल स्थान पर बसती थीं। तथापि कुछ महत्वपूर्ण प्रगति अवश्य दिखायी देती है। बस्तियों में गोलाकार झोंपड़ियाँ लकड़ी के ढांचे पर सरपत लगाकर बनाई जाती थी और उस पर लिपाई होती थी तथा फर्श मिट्टी के गारे से तैयार किया जाता था। नर्गाजून कोडा (तटीय आंध्र में) में मिले कुछ बड़े गड्डे जोकि गोलाकार, चौकोर, तथा अनियमित हैं। यह गड्डे अर्धभूतलीय आवासी के रूप में देखे जाते हैं। भूतलीय आवासी पद्धति पर्यामपाली एवं वीरापुरम में मिलती हैं। इस चरण में नए प्रकार के बर्तन बनाने की परंपरा आरंभ होती है जैसे टोटी वाले तथा छिद्रित बर्तन। इस प्रकार के बर्तनों के प्राप्त होने से इस क्षेत्र के उत्तरी क्षेत्रों के साथ संबंध की ओर संकेत मिलता है क्योंकि इसी प्रकार के बर्तन उत्तरी क्षेत्रों में भी प्राप्त हुए हैं। इस चरण में बर्तनों के बाह्य तल के खुरदरे करने की तकनीक आरंभिक हड़प्पा युग की तकनीक अपनाए जाने का प्रतीक है। इस चरण में चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों के उद्योग का प्रसार हुआ। ताम्र एवं कांस्य की वस्तुएं प्रथमतः इसी चरण में मिलती हैं जिनकी संख्या चरण की समाप्ति तक काफी बढ़ जाती है। कुछ स्थल जहां चरण II की बस्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे हैं, पिकलीहाल, ब्रह्मागिरी, संगानाकाल, तेकालाकोटा, हल्लूर तथा टी. नारसीपुर, रेडियो कार्बन तिथियों के अनुसार इस चरण का काल 1800-1500 ईसा पूर्व निश्चित किया जा सकता है।

चरण III

इस चरण की महत्वपूर्ण प्रगति ताम्र तथा कांस्य के औजारों में वृद्धि है। यह वृद्धि तेकाला कोटा, हल्लूर, पिकलीहाल, संगानाकाल, ब्रह्मागिरी तथा पर्यामपाली में देखने

को मिलती हैं। पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों का उद्योग यथावत बना रहता है। बर्तनों में सख्त पार्श्व वाले सलेटी एवं घूसर बर्तनों का उपयोग काफी सामान्य प्रतीत होता है।

एक अन्य प्रकार के मृदभाण्ड, जो कि चाक से बनाए गए हैं, बैंगनी रंग से रंगे गए तथा बगैर चमकाए गए रूप में मिलते हैं। यह बर्तन महाराष्ट्र के ताम्र पाषाण युगीन जार्वे बर्तनों से मिलते-जुलते हैं। इस आधार पर इस चरण का काल 1400-1550 ईसा पूर्व रखा जा सकता है।

यह तीनों चरण दक्षिण भारत में आरंभिक खेतिहर पशुपालक बस्तियों के उदय एवं विस्तार को दिखाते हैं। चरण I से चरण III के बीच व्यवसायों में निरंतरता दिखाई देती है (जैसा कि कई स्थलों पर खुदाई से प्रमाण मिले हैं) और अर्थव्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नजर नहीं आता। अंतर केवल इतना है कि चरण I में ताम्र एवं कांस्य के औजार नहीं मिलते। चूंकि चरण II तथा चरण III के व्यवसायों में इन धातु औजारों का प्रथमतः प्रयोग किया गया अतः इन्हें नवपाषाण—ताम्र पाषाण युगीन कहा जाता है।

बस्तियों के फैलाव से पता चलता है कि निचली पहाड़ियों के निकट मुख्य जल स्रोतों से हट कर किंतु नदियों से निकट के स्थलों को प्राथमिकता दी जाती थी तथा गर्म काली मिट्टी वाली भूमि लाल तथा काली मिट्टी वाली बलुई उपजाऊ भूमि, बलुई उपजाऊ भूरी भूमि तथा डेल्टा की बाढ़ की मिट्टी वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी। जहाँ यह बस्तियाँ मौजूद थीं वहाँ आज एक वर्ष में औसत वर्षा दर 600-1200 मिली मीटर है। यह स्थान सामान्यतः दीवारनुमा पहाड़ियों पर प्राकृतिक रूप से उभरे जगहों पर पाए जाते हैं तथा निवास स्थल पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों के एकदम नीचे होता है।

11.2.2 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था

प्राकृतिक दृष्टि से स्थलों के चुनाव में ऐसे क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी जो ढलान वाले क्षेत्र हों जिससे कि सिंचाई की सुविधा स्वतः बनी रहे। तथापि ऐसे भी स्थल पाए गए हैं जहाँ नहर द्वारा सिंचाई करके पानी का उपयोग किया जा सकता था जैसे कृष्णा नदी के तट पर वीरपुरम, तुंगभद्र के तट पर हल्लूर, कावेरी तथा कपिल के संगम पर टी. नरसीपुर तथा कृष्णा के निकट बाढ़ की मिट्टी वाले क्षेत्र।

उपलब्ध पुरातत्व वानस्पतिक प्रमाणों से पता चलता है कि मुख्य फसलें बाजरा एवं दालें थीं। रामापुरम् में हाल में ही बाजरे की विभिन्न किस्में जैसे ज्वार, चना, उड़द, मूंग, फलियाँ तथा जौ पायी गयी हैं।

जानवरों के संदर्भ में नवपाषाण तथा ताम्र पाषाण युग के स्थलों से खुदाई में प्राप्त सभी अवशेष पालतू एवं जंगली दोनों ही प्रकार के जानवरों के अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं।

पालतू जानवरों में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर, कुत्ते तथा मुर्गी शामिल हैं। बैल लगभग हर स्थान पर पाए गए हैं, जिससे इन समुदायों की अर्थव्यवस्था में इनके महत्व की ओर संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए, वीरपुरम् के जानवरों के अवशेष जिन पर गहन अध्ययन किया गया है। यहाँ गाय, बैलों की संख्या कुल पालतू जानवरों की संख्या का 48.68% है जबकि भेड़/बकरी केवल 5.4% पाए गए हैं। यदि कृष्णा के दाहिने तट पर, जोकि सिंचाई वाली खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान हैं, यह स्थिति थी तो अपेक्षाकृत ऊपरी स्थानों पर बैलों का महत्व निश्चित रूप से और अधिक रहा होगा। चूंकि इन समुदायों की अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन (गाय, बैल अधिक तथा भेड़/बकरी कम) पर आधारित थी, इसलिये इस व्यवस्था को खेतिहर पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

इन पालतू जीवों के साथ-साथ इन बस्तियों से जंगली जानवरों के भी अवशेष मिले हैं। यह जानवर साही, नीलगाय, चिकारा, काले हिरन, सांबर और चीतल हैं। इससे यह पता चलता है कि भोजन में मांस की आवश्यकताएं जंगली जानवरों से भी पूरी होती थीं।

11.2.3 भौतिक संस्कृति

इस युग की भौतिक संस्कृति बर्तनों, पत्थर के औजारों, ताम्र/कांस्य की वस्तुओं तथा अन्य वस्तुओं पर आधारित थी।

1 **बर्तन** : चरण I (2500 से 1800 ई.पू.) के बर्तन मुख्यतः हाथ से बनाए गए सलेटी अथवा मटमैले भूरे होते थे। सलेटी बर्तनों की विशेषता बर्तनों को पकाने के बाद उन पर लाल गेरू से रंगाई करना थी। रुचिकर तथ्य यह है कि इन बर्तनों में से कुछ ऐसे हैं जिनके पाए खोखले तथा वृत्ताकार हैं जो कि हड़प्पा पूर्व आमरी तथा काली बंगन में मिले बर्तनों की किस्मों से मिलते-जुलते हैं। चरण I से संबंधित मृद्भाण्ड की एक अन्य किस्म में चमकाए हुए काले एवं लाल बाह्य भाग वाले बर्तन जो बैंगनी रंग से रंगे जाते थे, मिलते हैं।

चरण II (1800-1500 ई. पू.) में चमकाए हुए काली एवं लालधारी वाले बर्तनों का चलन समाप्त हो जाता है और एक अन्य किस्म सामने आती है। यह किस्म छिद्रित तथा टोटी वाले बर्तनों की है। मृद्भाण्ड तैयार करने में बाहरी भाग को खुरदरा बनाने की तकनीक अपनाई जाती थी जोकि हड़प्पा पूर्व बलूचिस्तान के इलाकों में सामान्य थी।

चरण III (1400-1050 ई. पू.) में जो नए मृद्भाण्ड चलन में आए वे हैं :

अ) सख्त ऊपरी भाग वाले सलेटी एवं धूसर मृद्भाण्ड।

ब) चाक से बनाए गए बैंगनी रंग से रंगे बगैर चमकाए मृद्भाण्ड।

यह दूसरी किस्म के बर्तन महाराष्ट्र के जोर्वे किस्म से मिलते-जुलते हैं जो कि दक्षिणी दक्कन तथा उत्तरी दक्कन के बीच सांस्कृतिक संबंधों की ओर संकेत करता है। बर्तनों की किस्मों में विभिन्न प्रकार के प्याले (उड़ेलने के लिए विशिष्ट मुख वाले प्याले, टोंटी वाले प्याले, दस्ता लगे हुए तथा खोखले पाए वाले प्याले) जार, स्टैंड युक्त डोंगें तथा छिद्रित एवं टोंटी वाले बर्तन मिलते हैं।

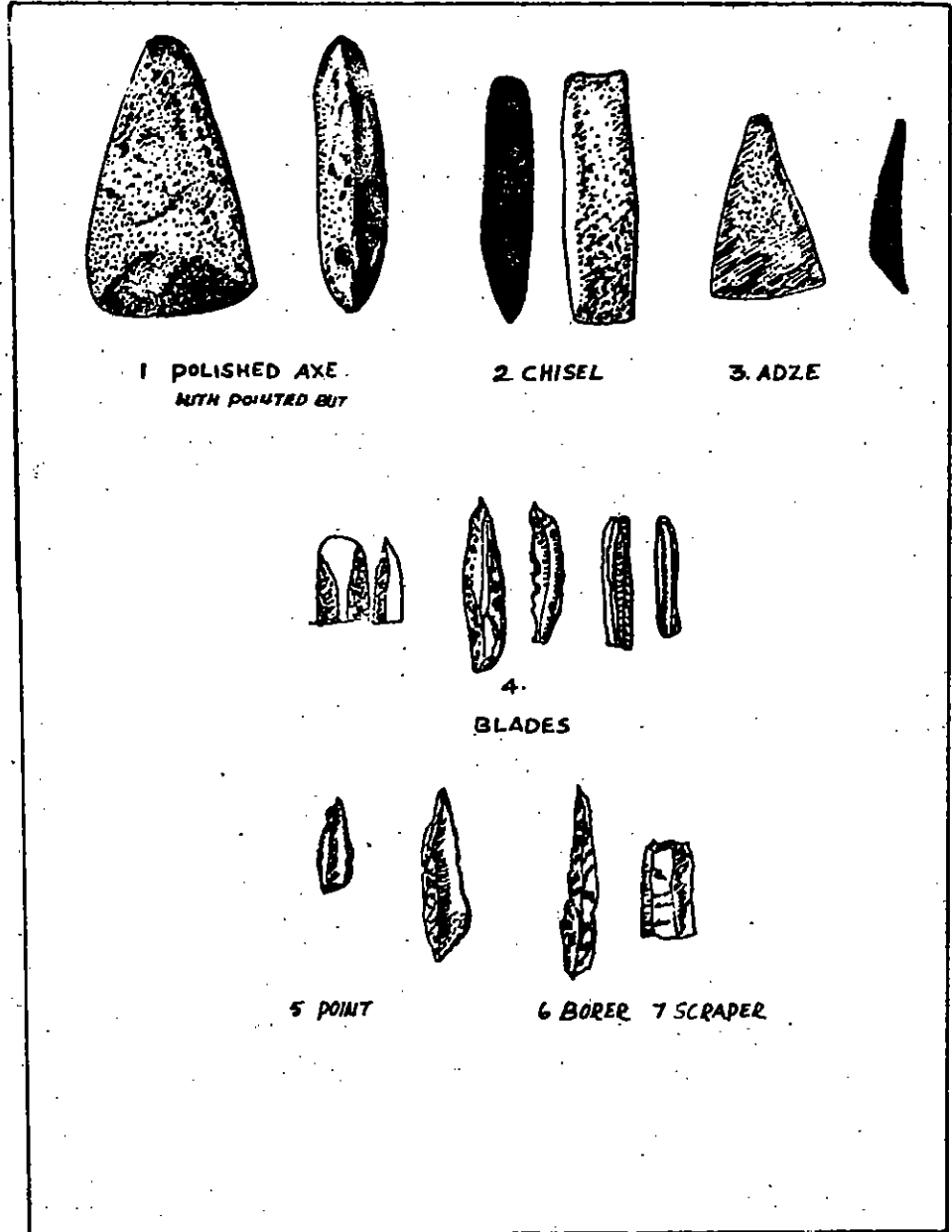
2 **पत्थर के औजार तथा हड्डियों की शिल्पकृति** : पत्थर के फलकों के उद्योग में लम्बे, पतले, समानांतर दिशा वाले फलक, जिनमें से कुछ अतिरिक्त शिल्प कार्य के द्वारा अन्य रूप ले लेते थे, मिले हैं। अतिरिक्त शिल्प वाले इन रूपों में चांदनुमा फलक, 90 अंश के दो कोण बनाते फलक त्रिकोणीय फलक तथा आरी वाले फलक शामिल हैं। समानांतर दिशा वाले कुछ फलकों में काटने की धार के पास कांच लगा पाया गया है जिसके कारण इन फलकों का फसल की कटाई में इस्तेमाल किया जाता था। कई पत्थर के औजारों पर पॉलिश की गई प्रतीत होती है। पॉलिश की गयी अथवा पत्थर की कुल्हाड़ी के उद्योग की सबसे सामान्य किस्म त्रिकोणीय कुल्हाड़ी है जिसका एक सिरा अंडाकार तथा दूसरा नुकीला है। अन्य किस्में हैं—बसुला, फाल, छेनी, रंदा तथा नुकीले औजार (जिन्हें कृदाल कहा गया है)।

इनके अतिरिक्त पत्थर के अन्य औजार हैं—हथौड़े, गोफने के पत्थर, पीसने वाले पत्थर, घिसाई के पत्थर तथा हस्तचलित चक्की। हस्तचलित चक्की खाद्य अनाज तैयार करने के काम आती थी।

हड्डियों के शिल्पकृति में शिल्पकृत हड्डियाँ, सीगें तथा प्रायः शाखायुक्त सीगें एवं सीप मिली हैं। सबसे सामान्य शिल्पकृति नुकीले छेनी के उपकरणों का है, एक स्थान पर (पालावय) बैलों के कंधे की हड्डी को घिसकर तैयार की गयी हड्डी की कुल्हाड़ी भी प्राप्त हुई है।

3 **धातु की वस्तुएँ** : जैसा कि पीछे देखा गया है, ताम्र एवं कांस्य औजार चरण II में प्रकट होते हैं और चरण III तक उनकी संख्या में काफी बढ़ोतरी हो जाती है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण सीधी कुल्हाड़ियाँ तथा छेनियाँ हैं जो मालवा एवं महाराष्ट्र की पद्धति का अवशेष हैं। अन्य रुचिकर उपलब्ध कल्लूर में मिली श्रृंगिका तलवार है जिस पर (इकाई 10 में) ताम्र भंडारों के संदर्भ में चर्चा की गयी है।

विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुई ताम्र/कांस्य की अन्य वस्तुएँ चूड़ियाँ, लच्छेदार कान की



चित्र 22. बलिष्ठा भारत में मध्यकालीन युगीन पत्थर के औज़ार 1. नुकीले बस्ते वाली चमिकाकार कुम्हारकी
2. छेनी 3. बसूल 4. ब्लेड 5. नुकीले औज़ार 6. बोरर 7. खुरचनी

बालियाँ तथा सुरमें की सलाईयाँ हैं, हल्लूर से एक मछली पकड़ने का कांटा भी मिला है। तेकालोकोटा में एक लच्छेदार कान की सोने की बाली भी मिली है।

4. मनके एवं मिट्टी की प्रतिमाएँ: कुछ स्थानों पर अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए, नागार्जुन कोंडा में लुगदी एवं स्टीटाइट पत्थर की चपटी गोलाकार मनकों की मालाएँ, मिट्टी की प्रतिमाएँ, जो कि हड़प्पा के उभरी हुई पीठ वाले बैलों की हैं पिकलीहाल जैसे कुछ स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

इन्हें यदि कुपगाल, मस्की, पिकलीहाल आदि बस्तियों से प्राप्त बैलों के चित्रों के संदर्भ में देखा जाए तो इन संस्कृतियों में बैलों के महत्व की ओर संकेत मिलता है। इन चित्रों में बैलों को समूह में प्रसन्न मूद्रा में दर्शाया गया है तथा उभरी पीठ वाले सांड एवं लम्बे सींगों वाले बैलों को चित्रित किया गया है। कुछ बैलों की पीठें अलंकृत की गयी दर्शायी गयी हैं।

11.2.4 दाह संस्कार के तरीके

सामान्यतः शव घर के अन्दर दफनाए जाते थे, वयस्क दाह संस्कार में और शिशु कलशों में दफनाए जाते थे। तेकालाकोटा में खुदाई से (चरण III में) शवों को विभिन्न बर्तनों के साथ दफनाने के प्रमाण मिले हैं जो कि महाराष्ट्र में जोर्वे दाह संस्कार के अनुरूप था। नागार्जुन कोंडा में नवपाषाण युगीन कब्रिस्तान की पहचान की गयी है। कब्रों में शवों के साथ टोटी वाले बर्तनों सहित कुछ अन्य बर्तन तथा कुछ स्थानों पर पत्थर के फलक एवं कुल्हाड़ियाँ भी दफनाई जाती थीं।

11.3 नवपाषाण युगीन धारातल की उपलब्धियाँ

बस्तियों के अतिरिक्त पॉलिश की गयी पत्थर की कुल्हाड़ियाँ जंगली इलाकों के निर्जन स्थानों पर, जहाँ लोग कभी-कभी इकट्ठे होते होंगे मिली हैं। दक्षिण भारत में इस प्रकार के कई स्थान मिले हैं, बहुधा ऐसे स्थानों के निकट बस्तियाँ भी होती थी। यह वस्तुस्थिति किस तथ्य की ओर संकेत करती है? संभवतः यह स्थान गतिविधि केन्द्रों के रूप में प्रयोग होते होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि औजारों (जैसी पेड़ काटने की कुल्हाड़ियों) के इस्तेमाल को देखते हुए यह चयनित स्थल पहाड़ी जंगली क्षेत्रों को साफ करके खुशक खेती योग्य बनाने के लिए चुने गए होंगे।

तमिलनाडु के जंगली पहाड़ी क्षेत्र जैसे—स्लेवॉरी, जवाड़ी तथा तीरुमलाई पहाड़ी क्षेत्रों में इस प्रकार की नवपाषाण युगीन पत्थर की कुल्हाड़ियाँ पाया जाना सामान्य है। पश्चिमी तटों के दक्षिणी विस्तार के जंगली ढलानों से लेकर के निचले तमिल मैदानों तक नवपाषाण युगीन कुल्हाड़ियों का समानरूप से पाया जाना, झूम खेती (shifting cultivation) के तरीकों जो कि अभी कुछ समय पूर्व तक पश्चिमी तटों के दक्षिणी भाग में प्रचलित थे, के प्रचलन का द्योतक है।

दक्षिण भारतीय नवपाषाण युग में भी राख के टीले मिलते हैं जो कि भीम-कृष्णा तृगभद्र दोआब के अर्ध ऊसर भागों तक फैले हुए हैं। 60 से अधिक राख के टीले खोजे जा चुके हैं और इनमें से कुछ काफी बड़े हैं। पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, राख के यह टीले नवपाषाण युगीन समुदायों द्वारा गाय के गोबर को जलाने के कारण बने। उनके कथनानुसार, ये वे स्थान थे जो कि गाय बैलों के बांडों के रूप में प्रयोग किए जाते थे जहाँ गोबर इकट्ठा किया जाता था। रेमंड अलचिन ने उत्तूर (राख का एक टीला) की खुदाई से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह परिणाम निकाला कि राख के टीले नवपाषाण युगीन लोगों के जानवरों के जंगली पड़ाव थे तथा गोबर का जलाया जाना संभवतः कर्मकांडी महत्व रखता था।

जैसा कि पहले कहा गया है कि दक्षिण भारत में शिकारी संग्रहकर्ता अर्थव्यवस्था से ग्रामीण खेतिहर समुदाय की ओर विकास को प्रमाणित करने के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। जैसा कि हमने देखा कि इन क्षेत्रों में तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के लगभग मध्य में अचानक ग्रामीण बस्तियाँ अस्तित्व में आ गयीं। यह खेतिहर बस्तियाँ कैसे अस्तित्व में आयीं?

कुछ पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, दूसरे मृद्भाण्ड उत्तर-पूर्वी ईरान में हिसार, तुरंग तेप तथा शाह तेप स्थलों पर प्राप्त हुए मृद्भाण्ड से मिलते-जुलते हैं और लाल एवं काले रंगे हुए बर्तन बलूचिस्तान तथा हड़प्पा पद्धति के पूर्व हड़प्पा बर्तनों के समरूप हैं। इन समानताओं तथा कुछ अन्य विशिष्टताओं के आधार पर इन पुरातत्व शास्त्रियों ने माना है कि दक्षिण भारतीय नवपाषाण युगीन संस्कृतियों का संभवतः कुछ भारत ईरान सीमांती क्षेत्रों के साथ संबंध रहा होगा।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (X) का चिह्न लगाएं।

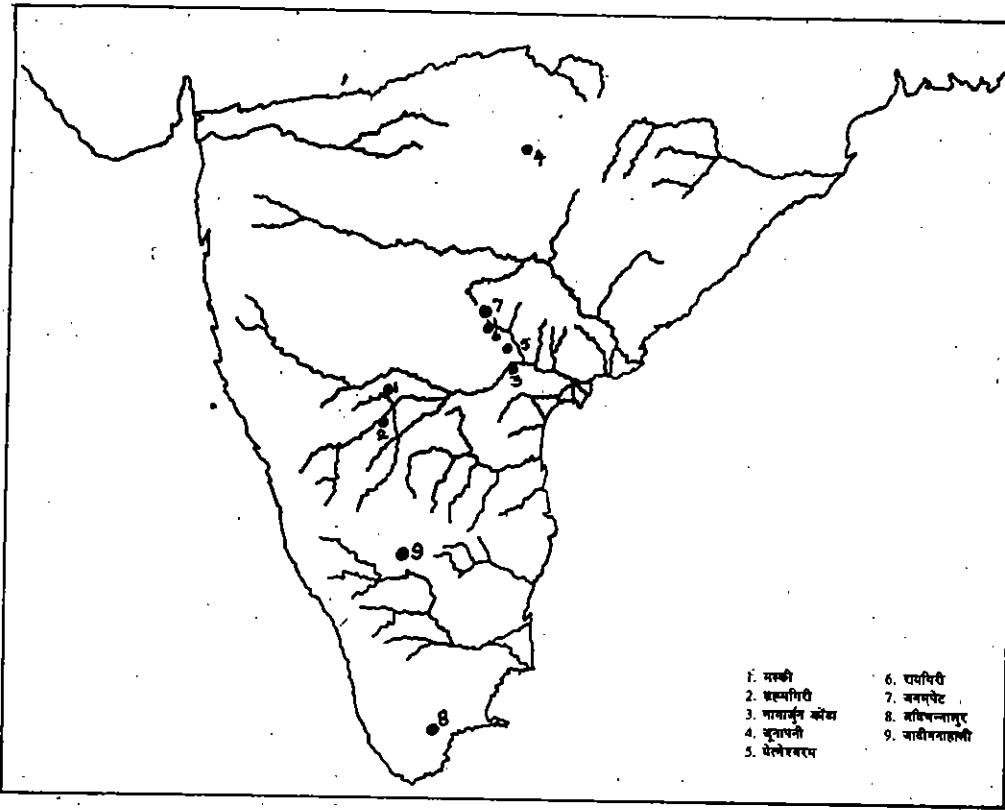
- i) दक्षिण भारत की भौतिक संस्कृति को विभिन्न चरणों में विभाजित करना संभव नहीं है। ()
 - ii) पालतू जानवरों में गाय, बैल दक्षिण भारतीय आरंभिक कृषक समुदायों की अर्थव्यवस्था में काफी महत्वपूर्ण थे। ()
 - iii) शिशु तथा वयस्कों दोनों के दाह संस्कार के तरीके एक जैसे थे। ()
 - iv) किसी भी खुदाई से हड्डी निर्मित उपकरणों के पाए जाने के प्रमाण नहीं मिले हैं। ()
- 2 दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों के सांस्कृतिक चरणों पर दस पंक्तियाँ लिखें।

क्या दक्षिण भारतीय कृषक समुदाय की अर्थव्यवस्था को खेतिहर पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है?

- 4 विभिन्न स्थानों पर मिले राख के टीलों से क्या संकेत मिलते हैं? पाँच पंक्तियाँ लिखें।

11.4 दक्षिण भारत में लौह युग

दक्षिणी भारत में लोहे का प्रयोग लगभग 1100 ईसा पूर्व के आस-पास आरंभ हुआ। समय का यह अनुमान हल्लूर में प्राप्त वस्तुओं के रेडियो कार्बन विश्लेषण के आधार



चित्र 23. दक्षिण भारत के महत्वपूर्ण लौह युगीन स्थल

पर लगाया गया है। तथापि कुछ अन्य स्थानों पर, जिनकी पीछे चर्चा की जा चुकी है, नवपाषाण युगीन तथा ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ लौह युग तक अपना अस्तित्व बनाए रहती हैं। उत्तरी दकन (महाराष्ट्र) में भी कई ताम्र पाषाण युगीन बस्तियाँ लौह युग में भी बनी रही। दक्षिणी दकन के ब्रह्मगिरी, पिकलीहाल, संगानाकालु, मस्की, हल्लूर, पयमवाली आदि में भी ऐसी ही स्थिति थी।

दक्षिण भारत में लौह युग का प्राचीनतम चरण पिकलीहाल तथा हल्लूर की खुदाई और संभवतः ब्रह्मगिरी के शव दफनाने व गड्ढों के आधार पर निश्चित किया गया है। इन शवाधान के गड्ढों में पहली बार लोहे की वस्तुएँ काले एवं लाल मृद्भाण्ड तथा फीके रंगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड प्राप्त हुए। कुछ हद तक फीके रंगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड जावेँ मृद्भाण्डों के समरूप हैं। इसी प्रकार के प्रमाण टेकवाड़ा (महाराष्ट्र) से भी प्राप्त हुए हैं। कुछ बस्तियों में पत्थर की कुल्हाड़ियाँ एवं फलक प्रयोग में बने रहें।

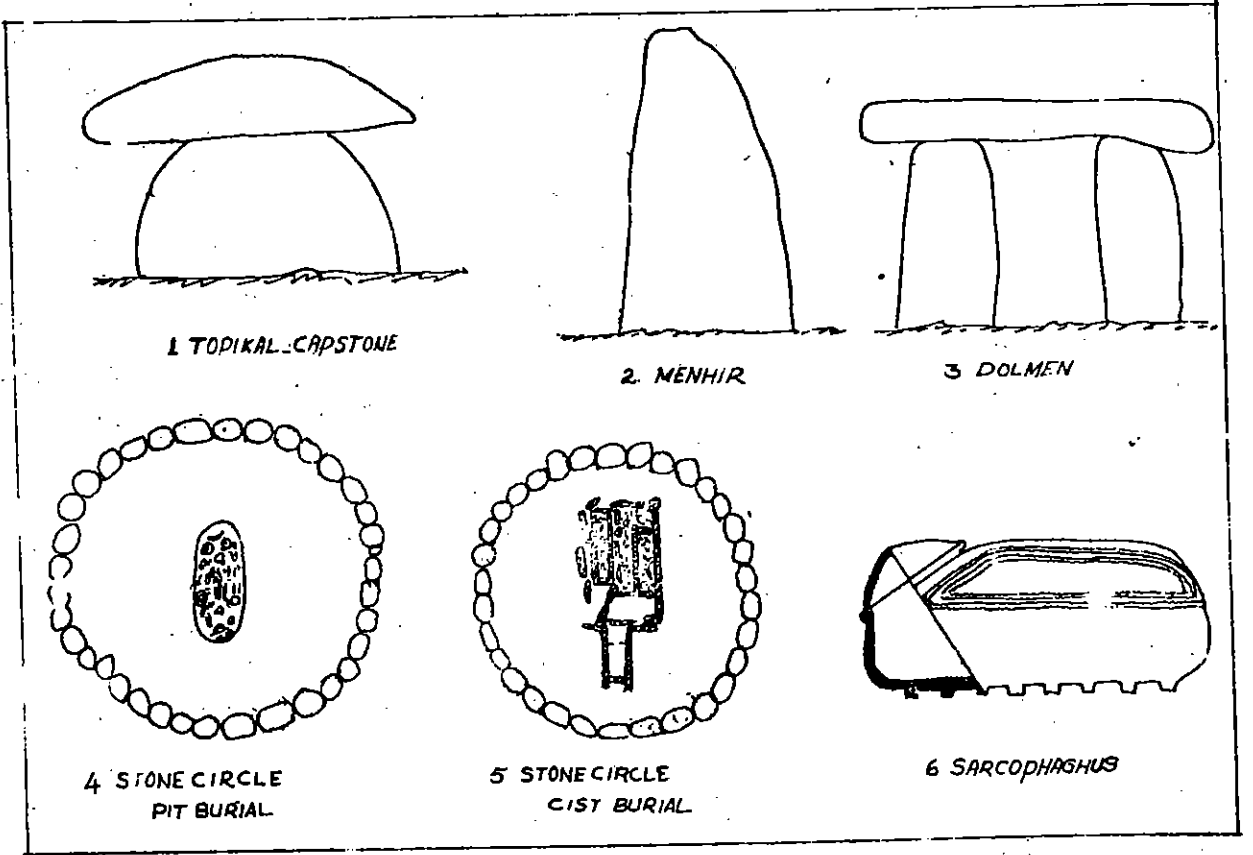
इसके बाद के चरण की विशेषता घिसकर चमकाए बगैर रंगे काले एवं लाल मृद्भाण्डों तथा लाल एवं काले मृद्भाण्डों की बहुतायत है।

11.4.1 महापाषाण युगीन संस्कृतियाँ

दक्षिण भारत से लौह युग के विषय में अधिकांश जानकारी महापाषाण कालीन कब्रों की खुदाई से मिलती हैं। महापाषाण से तात्पर्य उस काल से है, जब मृतकों को आबादी क्षेत्र से दूर कब्रिस्तानों में पत्थरों के बीच दफनाया जाता था। दक्षिण भारत में इस प्रकार के दफनाने की परंपरा लौह युग के साथ आरम्भ हुई। महापाषाण कालीन दफन करने के इस तरह की जानकारी बड़ी संख्या में निम्न स्थानों जैसे—महाराष्ट्र (नागपुर के पास), कर्नाटक (मस्की), आंध्रप्रदेश (नागार्जुन कोण्ड), तमिलनाडु (अदिचनाल्लूर) तथा केरल में पायी गयी हैं।

महापाषाण कालीन शवों के दफनाने में कई तरीके देखने में आते हैं। कभी-कभी मृतकों की हड्डियाँ बड़े कलशों में जमा करके गड्ढे में दफनाई जाती थीं। इस गड्ढे के ऊपर पत्थरों से घेरा बनाया जाता था या केवल एक पत्थर से ढक दिया जाता था कभी-कभी दोनों ही चीजें की जाती थी, कलश और गड्ढों में कुछ वस्तुएँ भी रखी जाती थीं। कुछ जगह शवों को पकाई हुई मिट्टी की शवपेटिकाओं में भी रखा गया

हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण देखने में आते हैं, जहाँ मृतक दफनाने के गड्ढे पत्थरों से बनाये गये हैं। ग्रेनाइट पत्थर की पट्टिकाओं से बने ताबूतनुमा कब्रों में भी शवों को दफनाने के उदाहरण मिलते हैं। केरल में पत्थर की चट्टानों में शव दफनाने के कुछ उदाहरण मिले हैं। कुछ जगह पत्थर को सीधा गाढ़ कर आयताकार या वर्गाकार छेदों में भी शव दफनाये गये हैं।



चित्र 24. महापाषाण काल में मृतकों को दफनाये जाने के तरीके 1 से 3 पत्थर से ढकी विभिन्न प्रकार की कब्रें 4. पत्थर के घेरे में बड़े वाली कब्र 5. पत्थर के घेरे में पथरीले ताबूत वाली कब्र 6. मिट्टी की शवपोटक वाली कब्र

11.4.2 महापाषाण युगीन संस्कृतियों की उत्पत्ति

महापाषाण कालीन संस्कृति का प्रारम्भ दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के अंत और प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. के प्रारम्भ में हुआ, बाद की कई शताब्दियों तक यह परम्परा जारी रही। कुछ विद्वानों का मत है कि महापाषाण युग के लोग एक ही सांस्कृतिक समूह के नहीं थे तथा दक्षिण भारतीय कब्रों पर कई क्षेत्रों के प्रभाव के कारण यह कब्रें कई संस्कृतियों का मिश्रण प्रतीत होती हैं। प्रथमतः महापाषाण युग के कुछ शवाधान मध्य एशिया, ईरान अथवा काकेशस क्षेत्र के अवशेष हैं और हिन्द-यूरोपीय भाषाएँ बोलने वाले इन क्षेत्रों के लोगों ने ऐसी परम्परा की शुरुआत की होगी। इसके अतिरिक्त कुछ शवाधानों में दकन के स्थानीय नवपाषाण युगीन ताम्र पाषाण युगीन शवाधान के तरीके अपनाये गए प्रतीत होते हैं।

कुछ विद्वानों ने महापाषाण स्थलों को आर्यों अथवा द्रविड़ों के अवशेषों के रूप में माना है। परन्तु इस विचार को स्वीकार करना सम्भव नहीं है, यह तथ्य लगभग निश्चित है कि यह कब्र स्थल एक ऐसी स्थिति में अस्तित्व में आये जब उत्तर व दक्षिण भारत के विभिन्न समुदायों में मेल-जोल की प्रक्रिया काफी अधिक थी जैसी कि पहले चर्चा की गई इन क्षेत्रों में खेतिहर पशुपालक समुदाय लोहे के प्रयोग से काफी पहले से मौजूद थे। इन समुदायों की मृतकों को दफनाने की बहुत सी रस्में लौह युग तक जारी रहीं, मिट्टी के पात्रों में शवों को दफनाने की परम्परा ताम्र पाषाण युगीन इनामगांव में प्रचलित थी। महापाषाणीय दफनाने के बहुत से तरीके सम्भवतया स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं से लिए गये थे। कब्रों से प्राप्त बहुत सी वस्तुएं भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित क्षेत्रों के साथ संबंधों की ओर संकेत करती हैं। कुछ विशेष प्रकार के बर्तन जैसे

कि पायों वाले प्याले जो इन कब्रों में पाये गये हैं बहुत कुछ उन प्यालों की तरह हैं जो भारत के उत्तर-पश्चिम में और ईरान में इससे भी पुरानी कब्रों में मिले हैं। इसी तरह घोड़ों की हड्डियाँ और घोड़ों के प्रयोग से संबंधित अन्य वस्तुओं का यहाँ मिलना इस ओर संकेत करता है कि घुड़सवारी करने वाले लोग इस क्षेत्र में पहुँच गये थे। निश्चित ही घोड़े मध्य एशिया से लाये गये होंगे क्योंकि भारत में जंगली घोड़े भी नहीं पाये जाते थे। घोड़ों के दफनाने का उदाहरण, नागपुर के निकट जुनापनी से प्राप्त होता है, मस्की और पिकलीहाल से प्राप्त शिला चित्रों में बहुत से घुड़सवार धातु की कुल्हाड़ियाँ ले जाते दिखाये गए हैं। यह सब तथ्य इन क्षेत्रों को भारत के उत्तर-पश्चिम में रहने वाले समुदायों के साथ संबंधों पर प्रकाश डालते हैं। अतः लौह युग के मृतकों के अंतिम संस्कार के तरीके आंतरिक और विदेशी रस्मों का मिश्रण दर्शाते हैं।

11.4.3 भौतिक संस्कृति

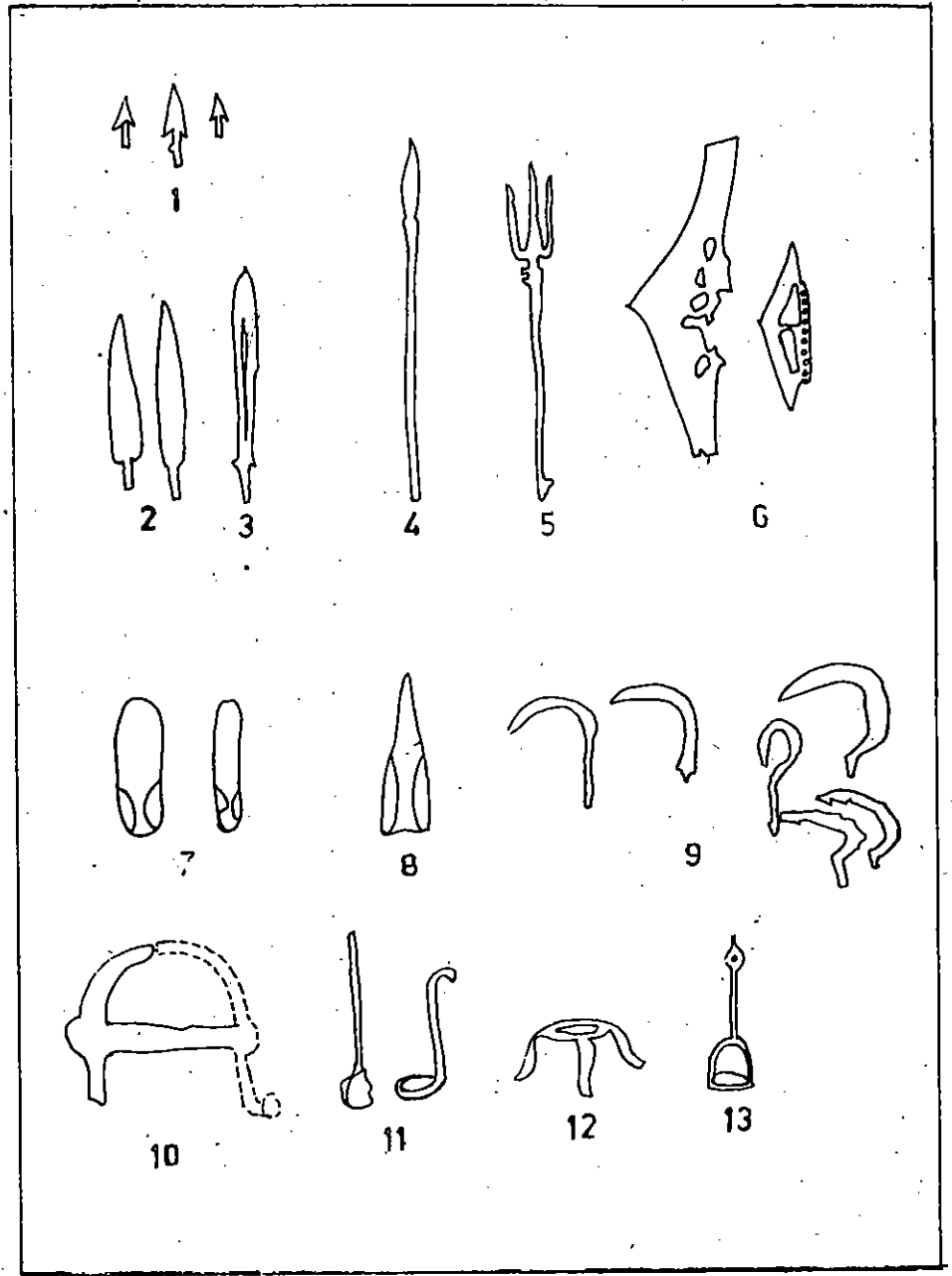
पूर्व की भांति ही लौह युग की भौतिक संस्कृति लोहे तथा अन्य धातु की वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट किस्म के बर्तनों के आधार पर रेखांकित होती है।

- 1 **बर्तन:** कब्रों की खुदाई से प्राप्त बर्तन काले एवं लाल मृद्भाण्ड हैं। विशिष्ट बर्तनों में छिछली तश्तरी, प्याले, गहरे प्याले जो कि गोल आधार वाले तथा कोन के आकार वाले हैं जिनके ऊपर दस्ता अथवा घुंडी वाले ढक्कन थे, बर्तन रखने के गोलाकार स्टैंड तथा गोल आधार वाले पानी के बड़े मटके हैं।
- 2 **लोहे तथा अन्य धातुओं की वस्तुएँ:** महापाषाण युग के सभी स्थलों, विदर्भ (मध्य भारत) में नागपुर के समीप जुनापनी से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तक लगभग 1500 कि.मी. के क्षेत्र में लोहे की वस्तुएँ समान रूप से पायी गयी हैं। लोहे की विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ : चपटी लोहे की कुल्हाड़ियाँ जिसमें पकड़ने के लिए लोहे का दस्ता होता था, उभरे हुए चपटे किनारे के विभिन्न फावड़े, बेलचे, खुरची, कुदालें, हँसिए, फरसे, फान, सब्बल, बरछे, छुरे, छेनी अथवा बसुले, तिपाइयाँ बर्तन के स्टैंड, तश्तरियाँ, लटकाने वाले लैम्प, कटारें, तलवारें (जिनमें से कुछ के दस्तों में कांस्य के आभूषण जड़े हैं) तीर के फल तथा बरछे के फल जिनके पात्र खोखले हैं, विशेष अवसरों के लिए सीप जड़ी कुल्हाड़ियाँ, लोहे के त्रिशूल आदि हैं। इन औजारों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। जैसे घोड़े के सामान जिनमें लगाम का लोहे का वह हिस्सा जो घोड़े के मुँह में होता है तथा फंदे के आकार वाले किनारों वाली दो छड़ें (जो कि जुनापनी से प्राप्त हुई हैं), फंदे के आकार वाली नाक तथा मुँह पर लगाने वाली छड़ें (जो कि सनूर से प्राप्त हुई हैं) आदि। धातु की अन्य वस्तुओं में सबसे अधिक संख्या में ताम्र एवं कांस्य की घंटियाँ पाई गयी हैं जो कि घोड़े अथवा गाय, बैलों की घंटियों के रूप में इस्तेमाल की जाती रही होंगी, सोने अथवा अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके भी इन स्थानों से मिले हैं।

11.4.4 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था

खुदाई में लौह युग की बस्तियाँ काफी कम संख्या में प्राप्त हुई हैं अतः दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था की स्पष्ट स्थिति का अनुमान लगाना कठिन है। कुछ स्थानों पर भेड़/बकरी तथा गाय, बैलों के अवशेष तथा बाजरा और दालें प्राप्त हुई हैं।

कब्रों की खुदाई से प्राप्त कब्रों में रखी जाने वाली लोहे की वस्तुओं की समरूपता इन वस्तुओं की विशेषता है। नागपुर के निकट जुनापनी से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तक एक ही प्रकार की लोहे की वस्तुओं का पाया जाना लोहे का काम करने वाले कारीगरों के काफी हद तक संगठित होने की संभावना को सिद्ध करता है। एक विद्वान के अनुसार, तमिलनाडु एवं कर्नाटक में यह मध्यपाषाण युगीन लोग कच्चे लोहे की खानों का पता लगाने तथा विभिन्न लोहे की वस्तुएँ तैयार करने में दक्ष थे, वे अन्य वस्तुओं के साथ लोहे की चीजों का व्यापार भी करते थे तथा धीरे-धीरे सामुदायिक जीवन के रूप में गांवों में बस गए। लेकिन एक अन्य विद्वान का मत है कि यह समूह खानाबदोश पशुपालक समूह थे जो



चित्र 25. दक्षिण भारत की महापाषाण युगीन कब्रों से प्राप्त लोहे के औजार 1. तीर के फलक 2. छुरे 3. तलवार 4. जाले के फलक 5. विशूल 6. खड्ग 7. कुदासी 8. हल का फाल 9. हँसिया 10. रक्तब नुषा वस्तु 11. कस्की 12. तिवर्द 13. सैम्प

कि भेड़/बकरी पालने पर अधिक निर्भर थे। महापाषाणीय स्थलों के पास जो बस्तियाँ पाई गई हैं उनमें पुरातात्विक अवशेष बहुत कम संख्या में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के लोग किसी एक स्थान पर बहुत कम समय तक रहते थे। ऐसा भी संभव है कि लोहे की जानकारी होने के बाद यह लोग नये क्षेत्रों में बस गये। इस प्रकार यहाँ कुछ लोग तो घुमक्कड़ पशुपालकों का जीवन व्यतीत करते रहे जबकि कुछ लोग नये क्षेत्रों को बसाकर स्थायी जीवन पद्धति पर चलने लगे जहाँ भी नई बस्तियाँ पुरानी बस्तियों की परम्परा में बसी लोग अपने पुराने तरीकों से ही रहते रहे, लोहे के औजारों के प्रयोग से यह लोग ग्रेनाइट पत्थर का उपयोग भी कब्रों के लिए कर सके। यही वह खेतिहर पशुपालक समुदाय हैं जिन्होंने ईसा बाद की प्रारंभिक शताब्दियों के ऐतिहासिक चरण में प्रवेश किया, इनका प्रारंभिक विवरण हमें संगम साहित्य में मिलता था। कुछ कब्रों में रोमन सिक्के मिले हैं जिनसे ऐसा आभास होता है कि यह एक बड़े क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधियों में भाग ले रहे थे।

बोध प्रश्न 2

1 दक्षिण भारत में लौह युग के विषय में लगभग 100 शब्दों में लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था पर पांच पंक्तियाँ लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 सारांश

ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में दक्षिण भारत में खेतिहर समुदायों का उदय हुआ। इसी काल में बड़ी संख्या में घुमक्कड़ पशुपालक समुदायों का भी उदय हुआ। खेतिहर वर्ग अधिकांशतया: चना, जौ, और कई किस्मों का बाजरा उगाया करते थे, पशुपालक समुदाय भेड़, बकरी तथा गाय, बैल आदि पालते थे। लगभग दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के प्रारम्भिक काल में इन समुदायों ने तांबे और कांस्य के औजारों का प्रयोग आरम्भ किया। इन लोगों के कांस्य के बहुत से औजार उत्तर पश्चिमी भारत के औजारों से मिलते-जुलते हैं। दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के अंत तक इस क्षेत्र में लोहे का प्रयोग भी होने लगा। इसी काल में महापाषाणीय दफनाने के तरीके भी शुरू हुए। इसने बस्तियों की योजना को भी प्रभावित किया क्योंकि इन समुदायों ने अपने मृतकों को बस्तियों के अलग हट कर दफन करना शुरू किया। परन्तु खेतिहर उन्हीं फसलों को उगाते रहे और पशुपालक भी पुरानी जीवन पद्धति पर चलते रहे। लेखन की परम्परा शुरू होने पर धीरे-धीरे विकास के इस चरण का विलय दक्षिण भारत के इतिहास में हो गया।

11.6 शब्दावली

शुष्क कृषि : खेती की ऐसी पद्धति जिसमें ऊपर भूमि की हमेशा गुड़ाई की जाती है, जिससे थोड़ी वर्षा के पानी का लाभ पौधों को मिलता है और पानी को जल्दी भाप बनने से रोकता है शुष्क देशों में यह पद्धति अधिक अपनाई जाती है।

जोर्वे बर्तन : द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. के लाल रंगे हुये मिट्टी के बर्तन जो सबसे पहले महाराष्ट्र में जोर्वे नामक स्थान पर मिले।

आर्य : वह समुदाय जो इंडो यूरोपी (Indo European) भाषाएँ बोलते थे और जिन्होंने वेदों की संरचना की।

दक्षिण : वह लोग जो दक्षिण की भाषाएँ बोलते थे।

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1 i) (×)
- ii) (✓)
- iii) (×)
- iv) (✓)

2 देखें उपभाग 11.2.1

3 चूँकि अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन दोनों पर ही आधारित थी, अतः इसे पशुपालन अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

4 आपके उत्तर में निम्न तथ्य होने चाहिए :

यह टीले मूलतः गाय, बैलों के बाड़े थे जहाँ गोबर इकट्ठा होता था; टीले गोबर जलाए जाने के कारण बने तथा गोबर जलना संभवतः नवपाषाण युगीन समुदायों के कर्मकांड का एक अंग था। भाग 11.3 भी देखें।

बोध प्रश्न 2

- 1 देखें उपभाग 11.4.1 एक चरण को दूसरे चरण से भिन्न करने वाली विशेषताएं लिखें।
- 2 देखें उपभाग 11.4.3

इकाई 12 प्रारम्भिक वैदिक समाज

इकाई की रूपरेखा

- 12.0 उद्देश्य
- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 स्रोत
 - 12.2.1 साहित्यिक स्रोत
 - 12.2.2 पुरातात्विक साक्ष्य
- 12.3 आयों का आक्रमण : कल्पित या वास्तविक
- 12.4 अर्थव्यवस्था
- 12.5 समाज
- 12.6 राजनैतिक व्यवस्था
- 12.7 धर्म
- 12.8 सारांश
- 12.9 शब्दावली
- 12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- उन अनेक स्रोतों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, जिनसे हम प्रारम्भिक वैदिक काल के विषय में जान सकते हैं,
- इन स्रोतों के माध्यम से भारतीय-आर्यों के व्यापक स्तर पर स्थानांतरण के सिद्धांत का परीक्षण कर सकेंगे, और
- प्रारम्भिक वैदिक काल की अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति एवं धर्म की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

इकाई 10 और 11 में आपने देखा कि लगभग 2000-1000 ई. पू. में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से असमान विकास वाली सभ्यताएं पायी जाती थीं। ये सभ्यताएं अनिवार्यतः कृषि-पशुपालन पर आधारित थीं और चूंकि इन सभ्यताओं ने सिवाय हड़प्पा सभ्यता के कोई लिखित प्रमाण नहीं छोड़ा है, अतः इनके बारे में केवल पुरातात्विक अवशेषों से ही जानकारी मिलती है। इस और अगली इकाई में हम धार्मिक अभिलेखों के उस विशाल भण्डार का अवलोकन करेंगे, जिसे भारत का प्राचीनतम साहित्यिक प्रमाण माना जाता है। इस प्रमाण की पुष्टि हम पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा यथासम्भव करेंगे। ऋग्वेद को प्राच्य मंत्रों का प्राचीनतम संग्रह माना जाता है अतः हम पहले ऋग्वेद का ही अध्ययन करेंगे ताकि प्रारम्भिक वैदिक काल के विषय में जानकारी मिले। इसके बाद अन्य वेदों और उनसे सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन करेंगे। इस प्रकार के अध्ययन के दो लाभ हैं।

आर्यों को वेदों का रचयिता माना जाता है और साथ ही यह बहुत समय तक समझा गया कि भारतीय उपमहाद्वीप में संस्कृति के विकास में आर्यों की प्रमुख भूमिका रही। ऋग्वेद की सामग्री के सूक्ष्म परीक्षण से यह नहीं लगता कि उस समय की भौतिक सभ्यता बहुत

विकसित थी। बल्कि इसके विपरीत भारतीय सभ्यता की तमाम विशिष्ट भौतिक विशेषताएं ऐसी हैं जो भारत के विभिन्न भागों में पायी गयी ऐसी पुरातात्विक संस्कृतियों में मौजूद थीं जिनका वैदिक काल से कोई संबंध नहीं था।

दूसरा, ऋग्वेद और उसके बाद के वेदों और सम्बद्ध साहित्य से प्राप्त सामग्री की तुलना करने से यह पता चलता है कि वैदिक समाज के अंदर भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। तात्पर्य यह है कि कोई ऐसा सुनिश्चित सांस्कृतिक ढांचा नहीं था जिसे वैदिक संस्कृति या आर्य संस्कृति कहा जा सके। ऋग्वेद के प्रमाण सप्त सिन्धु अर्थात् सात नदियों की भूमि वाले भौगोलिक क्षेत्र से सम्बद्ध हैं। यह क्षेत्र पंजाब और निकटवर्ती हरियाणा का है। किन्तु ऋग्वेद के भूगोल में गोमती के मैदान, दक्षिणी अफगानिस्तान और दक्षिणी जम्मू कश्मीर भी सम्मिलित हैं।

प्रारंभिक व्याख्याओं के अनुसार, भारतीय आर्यों के स्थानांतरण का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि वे पश्चिम एशिया से भारतीय उप-महाद्वीप में आये। ये प्रवासी "वेदों" के रचयिता माने जाते हैं इसलिये इनको वैदिक जन कहा गया है। इस ऐतिहासिक व्याख्या के अनुसार, आर्य कई झुंडों या चरणों में भारत आये। आर्यों को एक भाषाई समूह जो कि यूरोपीय भाषाओं को बोलने वाला था समझा गया है। परम्परागत इतिहासकारों एवं पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा उनको गैर आर्य हड़प्पावासियों से भिन्न प्रकार का माना गया है।

तथापि प्रारंभिक वैदिक समाज की टीका करने के लिये यह देखना लाभदायक होगा कि, साहित्यिक रचनाओं और पुरातात्विक साक्ष्यों में पूरकता है या नहीं। यदि ये दोनों प्रकार के स्रोत एक ही काल और क्षेत्र से सम्बद्ध हों तो इन्हें मिला कर आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन के बारे में अधिक विस्तृत जानकारी और विचार मिल सकते हैं। आइए, हम इन स्रोतों का अवलोकन करें।

12.2 स्रोत

प्रारंभिक वैदिक समाज के अध्ययन के लिये मुख्यतः हमारे पास दो प्रकार के स्रोत हैं— साहित्यिक तथा पुरातात्विक। आइए, पहले हम साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन करें।

12.2.1 साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोत के रूप में हमारे पास चार वैदिक ग्रंथ हैं—

- ऋग्वेद
- सामवेद
- यजुर्वेद, और
- अथर्ववेद।

इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन रचना है।

"वेद" शब्द को संस्कृत के "विद से लिया गया है जिसका भावार्थ है "ज्ञान होना"।

"वेदों" में प्रार्थनाओं और श्लोकों का संकलन है और इनकी रचना बहुत से कवियों तथा महाऋषियों के परिवारों ने देवताओं के सम्मान में की। इन चारों वेदों को "संहिता" भी माना जाता है क्योंकि ये उस समय की मौखिक परम्परा के प्रतीक हैं। चूंकि श्लोक का तात्पर्य था उसका पाठ करना, उसको कंठस्थ करना तथा मौखिक रूप से उसको स्थान्तरित कर देना अतः जिस समय इनको संकलित किया गया उस समय इनको लिखा नहीं गया। इसी कारणवश किसी भी संहिता के रचना काल को पूर्ण निश्चय के साथ नहीं बताया जा सकता। वास्तव में प्रत्येक संहिता कई शताब्दियों के दौर में हुए संकलन का प्रतिनिधित्व करती है। इन चारों संहिताओं में वर्णित विषय वस्तु के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ऋग्वेद की रचना लगभग 1500 ई. पू. से 1000 ई. पू. के मध्य में हुई होगी। और इसी समय को प्रारंभिक वैदिक काल भी कहा जाता है।

ऋग्वेद संहिता में 10 सर्ग या मंडलों का संकलन है। दूसरे तथा सातवें को सबसे पहले की रचना माना गया है और यह विशेषकर प्रारम्भिक वैदिक काल से संबंधित है। ऐसा समझा जाता है कि एक, आठ, नौ एवं दस मंडलों को संहिता में बाद के काल में जोड़ा गया।

विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद और ईरान के प्राचीनतम ग्रंथ अवेस्ता जो ऋग्वेद से भी पहले की रचना है, में समान भाषा का प्रयोग हुआ है। इन भाषाई समानताओं के आधार पर तथा कालक्रम में अवेस्ता को ऋग्वेद का अग्रगामी बताते हुए विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं—

- 1) इन दोनों ग्रंथों में वर्णित लोग एक समान बहु-भाषा समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनका स्थानांतरण पश्चिम एशिया एवं ईरान से भारतीय उप-महाद्वीप की ओर हुआ। ये लोग "आर्य" कहलाये।
- 2) आर्यों का मूल स्थान एक ही था जहां से वे विभिन्न समूहों में यूरोप एवं पूर्व की ओर स्थानांतरित हुए।

तथापि, आर्यों के उत्पत्ति-स्थल के विषय में वाद-विवाद की वैधता अब समाप्त हो चुकी है क्योंकि समान जातीय पहचान की अवधारणा को गलत साबित किया जा सकता है। परंतु एक समान भाषाओं की अवधारणा के आधार पर इतिहासकार आर्यों के स्थानांतरण के सिद्धांत पर विश्वास करते हैं और कुछ इतिहासकार इस पर विशेष जोर देते हैं।

12.2.2 पुरातात्विक साक्ष्य

पिछले 40 वर्षों में सिंधु व घग्गर नदियों के किनारे, पंजाब, उत्तर प्रदेश, तथा उत्तरी राजस्थान में उत्खनन के द्वारा इन क्षेत्रों से हड़प्पा काल के बाद के अन्नत ताम्र पाषाण संस्कृति के अवशेषों को खोद निकाला गया है। इनका समय 1700 ई. पू. से 600 ई. पू. के मध्य का है। आपने इकाई 10 में इस बारे में पढ़ा है। आपने देखा है कि इन ताम्र पाषाण संस्कृतियों को उत्तर हड़प्पा, ओ.सी.पी. (गेरु रंग के मृद्भांड), बी.आर.डब्लू. (काले और लाल मृद्भांड) और पी.जी. डब्लू. (स्लेटी मृद्भांड) के नामों से (अपनी विशेषताओं के कारण) पुकारा जाता है।

तथापि, हमें यह याद रखना चाहिये कि मिट्टी के बर्तन (मृद्भांड) बनाने वाली शैली उस समय के लोगों की सम्पूर्ण संस्कृति का प्रतीक नहीं है। विभिन्न प्रकार के मृद्भांड निर्मित करने की शैलियों का अनिवार्यतः यह अर्थ कदाचित् नहीं है कि इन बर्तनों का प्रयोग करने वाले लोगों में भी अन्तर था। विश्लेषण किसी सांस्कृतिक संग्रह के एक विशेष लक्षण को ही परिभाषित करता है, इससे अधिक नहीं। कुछ विद्वानों ने वैदिक साहित्य और उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तरी भारत में प्राप्त इन संस्कृतियों के संकेतों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

12.3 आर्यों का आक्रमण—कल्पित या वास्तविक

क्या आर्यों का आक्रमण एक कल्पना मात्र थी या वास्तविकता? अब हमें यह देखना है कि किस सीमा तक पुरातात्विक साक्ष्य इस प्रश्न का उत्तर जानने में हमारी मदद कर सकते हैं। पुरातात्विक विद्वानों ने बहुत सी उत्तर-हड़प्पा संस्कृतियों को आर्यों से जोड़ने का प्रयास किया है। स्लेटी बर्तनों की संस्कृति को बार-बार आर्यों की शिल्पकारिता के साथ जोड़ा जाता है और इसको लगभग 900 ई. पू. से 500 ई. पू. के मध्य का माना गया। उनका तर्क उन अनुमानों पर आधारित है, जिनको इतिहासकारों ने साहित्यिक रचनाओं के विश्लेषण के द्वारा निकाला था। तथापि, ऋग्वेद एवं अवेस्ता के बीच पाई जाने वाली भाषागत समानता का अनुसरण करते हुए, पुरातत्वविदों ने, बर्तनों की किस्म, मिट्टी के बर्तनों पर चित्रण और तांबे आदि की वस्तुओं के बीच समानता दिखा कर उत्तर-हड़प्पा तथा पश्चिम एशिया/ईरानी ताम्र पाषाण संग्रह के मध्य समानता के चिन्ह खोजने की चेष्टा की है। इस प्रकार की अतिरिक्त समानताओं ने इतिहासकारों के इस निष्कर्ष को बढ़ावा दिया है कि

आर्य उन लोगों का समूह था जिन्होंने पश्चिम एशिया से भारत की ओर स्थानांतरण किया था। इस प्रकार साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक दूसरे का पूरक बना कर स्थानांतरण के सिद्धांत की वैधता को पुष्ट किया गया।

ऋग्वेद तथा अवेस्ता के मध्य भाषागत समानताओं को लेकर कोई विवाद नहीं है। परंतु इस प्रकार की समानता ये नहीं दर्शाती कि विशाल स्तर पर लोग भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानांतरित हुए। दूसरा ये कि भारत में ताम्र पाषाण शिल्प अवशेषों और पश्चिम एशिया में पाए गए शिल्प अवशेषों के बीच समानता कम ही पायी जाती है। यह भी विशाल स्तर पर लोगों के स्थानांतरण को नहीं दिखाता। "आर्य" अवधारणा की जैसा कि पहले कहा गया, मृद्भांड की किसी एक शैली के आधार पर पहचान नहीं की जा सकती और न ही इसका नस्लीय या जातीय आधार पर अब कोई महत्व है। "आर्य" एक खोखली अवधारणा है जो लोगों के बीच भाषागत समानता से संबंधित है। इस विषय में आपको उत्खनन द्वारा प्रस्तुत किये गये निम्नलिखित निष्कर्षों का ध्यान रखना चाहिए।

- 1 प्रारम्भिक विद्वानों का विश्वास था कि इंडो-आर्य हड़प्पा सभ्यता के पतन का कारण थे। उन्होंने हड़प्पा के नगरों तथा शहरों का सर्वनाश किया। उन्होंने ऋग्वेद के उस श्लोकों को उद्धृत किया जिसमें इंद्र को घर-मकान नष्ट करने वाला बताया गया है लेकिन पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते कि हड़प्पा कालीन सभ्यता का पतन इसलिए हुआ कि उस पर किसी बाहरी शक्ति ने कोई व्यापक आक्रमण किया था। खंड 2 की इकाई 9 देखें।
- 2 चित्रित दूसरे मृद्भांड (पी.जी.डब्ल्यू.-स्लेटी बर्तन) के प्रयोग करने वालों को आर्यों से जोड़ने के प्रयासों को पुरातात्विक साक्ष्य भी प्रमाणित नहीं करते। अगर मृद्भांड संस्कृतियां आर्यों के विषय में सूचित करती हैं तो उनके आक्रमण की अवधारणा को मस्तिष्क में रखते हुए ये मृद्भांड बंहावलपुर तथा पंजाब में भी मिलने चाहिए क्योंकि आर्यों के स्थानांतरण का रास्ता भी यही था। लेकिन, हमें यह एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र जैसे हरियाणा, ऊपरी गंगा के थाल और पूर्वी राजस्थान में प्राप्त होते हैं।
- 3 दोनों संस्कृतियों में समय के अंतर के विषय में भी सोचा गया जिसका तात्पर्य यह लगाया गया कि उत्तर हड़प्पा और हड़प्पा काल के बाद की ताम्र पाषाण कालीन सभ्यता के बीच एक अंतराल था। परंतु भगवानपुर, दधेरी, हरियाणा और माडा में की गई हाल की खुदाइयों से पाया गया कि उत्तर हड़प्पा और स्लेटी बर्तनों (पी.जी.डब्ल्यू.) की संस्कृति के अवशेषों को बिना किसी रूकावट के एक साथ पाया गया है। इस प्रकार "आक्रमण" की अवधारणा को भी खुदाइयों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता।
- 4 1750 ई.पू. के बाद नगर एवं शहर, साधारण बनावटी औजार जैसे मोहरें, तोल-माप के साधन आदि जो व्यापार एवं नगरीकरण से संबंधित थे, लुप्त हो गये। प्रारम्भिक काल का ग्रामीण ढांचा ई. पू. द्वितीय तथा पहली सहस्राब्दी ई.पू. में भी स्थिर बना रहा। पुरातात्विक खोजों के द्वारा खोजी गई उत्तर हड़प्पा काल के बाद की वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तन, धातु के औजार तथा अन्य वस्तुएं वास्तव में भारत की ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति की क्षेत्रीय विभिन्नता दिखाती हैं।

इस प्रकार ईसा पूर्व दूसरी और पहली सहस्राब्दी के पुरातात्विक प्रमाणों ने वैदिक आर्यों के विषय में आजकल प्रचलित दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रथमतः, पुरातत्व में ऐसा कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिला है, जिससे यह सिद्ध हो कि 1500 ई.पू. के आस-पास मध्य या पश्चिमी एशिया से भारतीय उपमहाद्वीप में बड़े पैमाने पर लोगों का स्थानान्तरण हुआ। दूसरा, इस बात का कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिला है कि आर्यों ने हड़प्पा की सभ्यता का विनाश करके एक नयी भारतीय सभ्यता की स्थापना की। वस्तुतः, यद्यपि ऋग्वेद में बार-बार विभिन्न दलों के बीच संघर्ष और लड़ाइयों का वर्णन आया है, किंतु आर्यों और अनार्यों तथा उनकी संस्कृतियों के बीच कथित मुठभेड़ों का कोई भी विवरण पुरातत्व में नहीं मिलता।

फिर भी चूंकि ऋग्वेद धार्मिक श्लोकों का प्राचीनतम उपलब्ध संग्रह है अतः इसका

12.4 अर्थव्यवस्था

प्रारंभिक वैदिक समाज पशुपालन पर आधारित था, पशुओं को पालना ही मुख्य पेशा था। एक चरवाही समाज कृषि उत्पादों की तुलना में पशुधन पर अधिक निर्भर करता है। पशु चराने के काम आजीविका का साधन है और इसको वे लोग अपनाते हैं जो ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहां पर बड़े स्तर पर खेती-बाड़ी का कार्य सम्भव नहीं जिसके कारण पर्यावरण संबंधी और कुछ सीमा तक सांस्कृतिक विवशताएं हैं।

प्रारंभिक वैदिक काल में पशुपालन के महत्व का ऋग्वेद साक्ष्यों में काफी बड़े स्तर पर वर्णन हुआ है। ऋग्वेद में बहुत सी भाषागत अभिव्यक्तियां गाय (गौ) से जुड़ी हैं। पालतू पशु सम्पन्नता के प्रधान प्रतीक थे और एक सम्पन्न आदमी जो पालतू पशुओं का स्वामी होता था "गोमत" कहलाता था। इस काल में संघर्ष एवं लड़ाइयों के लिये जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता था, वे थे गविष्टि, गवेशना, गवयत आदि। पहले शब्द का अर्थ है गाय की खोज करना और ये शब्द यह स्पष्ट करते हैं कि इन पालतू पशुओं पर अधिकार समुदायों के मध्य असंतोष का आधार होता था तथा कभी-कभी इसको लेकर कबीलों के बीच संघर्ष एवं युद्ध छिड़ जाते थे। ऋग्वेद में पानि शब्द का प्रयोग हुआ है, जो वैदिक जनो के शत्रु थे तथा वे आयों के धन विशेषकर गायों को पर्वतों एवं जंगलों में छिपा लेते थे। इन पशुओं को छुड़ाने के लिये वैदिक देवता इंद्र की पूजा की जाती थी। यह संदर्भ यह भी बताता है कि पशुओं का अपहरण सामान्य बात थी। राजा या मुखिया को "गोपति" कहा जाता था, जो गायों की रक्षा करता था। ऋग्वेद में "गोधुली" शब्द का प्रयोग समय को मापने के लिये हुआ है, दूरी को गवयुती नाम दिया गया है, पुत्री को दुहिता कहा गया है क्योंकि वह दूध दूहन का काम करती थी, तथा जो लोग अपनी गायों के साथ एक ही गोष्ठ में रहते थे उनको उसी गोत्र का माना जाने लगा। ये सारे शब्द गौ से बने हुये हैं और इससे लगता है कि ऋग्वेदकालीन जीवन में महत्वपूर्ण कार्य गौ-पालन था। चरागाह, गौशाला, दुग्ध उत्पादन और पालतू जानवर के साहित्यिक संदर्भ श्लोकों एवं प्रार्थनाओं में पाये गये हैं।

ऋग्वेद में पशुपालन से संबंधित अनगिनत भाषागत साक्ष्यों की तुलना में कृषि गतिविधियों से जुड़े संदर्भ बहुत ही कम मिलते हैं। अधिकतर कृषि संदर्भ बाद के काल से संबंधित हैं। "यव" या जौ के अतिरिक्त अन्य किसी अनाज का वर्णन नहीं किया गया है। प्रारंभिक वैदिक काल के लोग लौह तकनीकी का प्रयोग नहीं करते थे। यद्यपि उनको तांबे की जानकारी थी, परन्तु ये औजार लोहे के औजार की तुलना में कम उपयोगी थे। पत्थर के औजारों (कुल्हाड़ी) का प्रयोग किया जाता था और इसका वृतांत ऋग्वेद में हुआ है। आग का प्रयोग जंगल जलाने के लिये किया जा रहा था और परिवर्तित खेती का प्रयोग प्रारंभ हो गया था। इस क्षेत्र में वर्षा कम होती तथा ऋग्वेद में वर्णित नदियां सतलुज, सिंधु, घग्गर और रवि आदि के बहाव में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता रहता था। उच्च स्तर की सिंचाई प्रणाली के बिना, जिसका विकास इस काल में नहीं हुआ था, नदियों के किनारों की कछारी (जलोढ़) भूमि की सिंचाई स्थायी तौर पर नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार ग्रंथों में वर्णित हसिया, कुदाल और कुल्हाड़ी का प्रयोग शायद जंगलों को काटकर साफ करने या परिवर्तित खेती के लिए किया गया।

पशुचारण एवं परिवर्तित खेती के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग खानाबदोश या अर्ध-खानाबदोश की स्थिति में पशु झुंडों को लेकर कुछ निश्चित समय के लिये अपने पशुओं को चराने के लिये घूमते थे। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन नहीं बिता रहे थे। आबादी के गतिशील चरित्र के बारे में, "विश" शब्द से भी समझा जा सकता है जिसका तात्पर्य बस्ती था। पुनर (विश), उपा (विश) और प्रा जैसे प्रत्ययों के लगातार प्रयोगों से बस्तियों के उपविभाजन का बोध होता है और जिनका तात्पर्य है पास बसना (एक बस्ती के), पुनः प्रवेश करना (एक बस्ती में) या वापस आना (एक बस्ती को)।

भेंट विनिमय एवं पुनर्वितरण की समाज में महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिका थी। कबीलाई-संघर्ष



के कारण पराजित या अधिन समूहों द्वारा विजित सरदारों को बलि के रूप में नजराना या अदायगी देनी पड़ती थी। विजयी कबीले के अन्य सदस्यों को युद्ध में बल-पूर्वक प्राप्त किये गये एवं लूट-पाट के सामान का भाग या हिस्सा मिलता था। उत्सव के अवसरों पर कबीले का मुखिया अपने कबीले के सदस्यों को भोज कराता था तथा उनको उपहार देता था। इसका आयोजन सम्मान प्राप्त करने के लिये किया जाता था। इस काल में व्यापार एवं व्यवसाय की हालत कमजोर थी। भू-स्वामित्व के आधार पर व्यक्तिगत संपत्ति का कोई सिद्धांत नहीं था। भूमि का अधिग्रहण व्यावसायिक आधार पर था।

12.5 समाज

प्रारम्भिक वैदिक समाज कबीलाई समाज था तथा वह जातीय एवं पारिवारिक संबंधों पर आधारित था। समाज जाति के आधार पर विभाजित नहीं था और विभिन्न व्यावसायिक गुट अर्थात् मुखिया, पुरोहित, कारीगर आदि एक ही जन समुदाय के हिस्से थे। कबीले के लिये 'जन' शब्द के दस राजाओं के संदर्भ मिलते हैं। जनों के पारस्परिक संघर्ष सामान्य थे, जैसे "दाशराज युद्ध" का वर्णन ऋग्वेद में हुआ है और इसी वर्णन से हमें कुछ जनों के नाम प्राप्त होते हैं जैसे भरत, पुरु, यदु, द्रुहयु अन् और तुरवासू। ये जनों के युद्ध जैसा कि पहले भी कहा गया है पशुओं के अपरहय एवं पशुओं की चोरी को लेकर होते रहते थे। जन का मुखिया "राजा" या "गोपति" होता था। वह युद्ध में नेता तथा जन का रक्षक था। उसका पद अन्य व्यावसायिक समूहों की भांति ही पैतृक नहीं था बल्कि उसका जन के सदस्यों में से चुनाव होना था। योद्धा को "राजनय" कहा जाता था। बहुत से कुटुम्ब (विश) मिलकर एक जन, (कबीला) बनता था। विश एक गांव या ग्राम में बस जाते थे। कुल या परिवार समाज की प्राथमिक इकाई था और "कुलप" अर्थात् परिवार का सबसे बड़ा पुरुष परिवार का मुखिया था जो परिवार की रक्षा करता था।

कबीला (जन), कबीलाई इकाई (विश), गांव (ग्राम), परिवार (कुल), परिवार का मुखिया (कुलप)।

समाज, पितृसत्तात्मक था। पुत्र की प्राप्ति लोगों की सामान्य इच्छा थी। पुरुष को महत्व दिया जाता था और इसका पता उन श्लोकों से लगता है जिनको पुत्र प्राप्ति के लिये लगातार प्रार्थना में प्रयोग किया जाता था। यद्यपि पूरा समाज पितृसत्तात्मक था, फिर भी समाज में महिलाओं का भी काफी महत्व था। वे शिक्षित थीं और वे सभाओं में भी भाग लेती थीं। कुछ ऐसी महिलाओं के भी दृष्टांत मिले हैं जिन्होंने श्लोकों का संकलन किया। उनको अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार था और वे देर से विवाह कर सकती थीं। इन सबके बावजूद महिलाओं को पिताओं, भ्राताओं और पतियों पर सदैव निर्भर रहना पड़ता था। शिक्षा का मौखिक रूप से आदान-प्रदान किया जाता था, परंतु शिक्षा की परम्परा इस काल में अधिक लोकप्रिय नहीं थी।

ऋग्वेद के रचनाकारों में स्वयं को अन्य मानव समुदायों, जिन्हें उन्होंने दास और दस्यू कहा, से पृथक् रखा। दासों को काला, मोटे होठों वाला, चपटी नाक वाला, लिंग पूजक और अशिष्ट भाषा वाला कहकर वर्णन किया गया है। वे सुरक्षित दीवारें बना कर रहते थे और प्रचुर पशुधन के स्वामी थे। हमें एक अन्य वर्ग, पाणि, के विषय में जानकारी मिलती है जो धन और पशुओं के स्वामी थे। कालांतर में पाणि शब्द व्यापारियों और धन संपत्ति से जुड़ गया। इन समुदायों में आपसी झगड़े और मैत्रियां होते रहते थे और उन्हें विभिन्न जातियों या भाषाई वर्गों के रूप में नहीं बाटें जा सकता। उदाहरणतः ऋग्वेद का सबसे प्रमुख नेता सुदास था जिसने "10 राजाओं" की लड़ाई में भरत कुल का नेतृत्व किया था। उसके नाम के अंत में प्रयुक्त दास शब्द से लगता है कि उसका दासों से कुछ संबंध था। एक ही क्षेत्र में कई समुदायों की उपस्थिति के कारण ही सम्भवतः वर्ण व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

विभिन्न व्यावसायिक समूहों जैसे कि कपड़ा बुनने वाले, लोहार, बढई, चर्मकार, रथ बनाने

वाले, पुजारी आदि का वर्णन हुआ है। सारथी का समाज में विशेष स्थान था। ऋग्वेद में भिखारियों मजदूरी पर काम करने वालों या मजदूरी का कोई दृष्टांत नहीं मिलता। परन्तु समाज में आर्थिक असमानता थी और हमें ऐसे संदर्भ मिलते हैं जिनके अनुसार कुछ धनी लोग रथों, पालतू पशुओं (गाय-बैलों) आदि के स्वामी थे और दूत वस्तुओं को भेंट या उपहार में देते थे।

बोध प्रश्न 2

- 1 आप "पशुपालक समाज" से क्या समझते हैं? पशुपालन प्रारम्भिक वैदिक लोगों का प्रधान व्यावसायिक कार्य क्यों था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2 प्रारम्भिक वैदिक समाज में पशु का क्या महत्व था? 50 शब्दों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

- 3 प्रारम्भिक वैदिक समाज की पांच महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन कीजिए। पांच वाक्यों में लिखिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 4 उचित शब्द से रिक्त स्थानों को भरिये।

- प्रारम्भिक वैदिक समाज में राजा या मुखिया को (गोमत/गोपती) कहा जाता था।
- इस काल में समय-समय पर होने वाले कबीलों के युद्ध एवं संघर्षों का मुख्य कारण (गायों/भूमि) पर अधिकार करना था।
- (यव/चावल) के अतिरिक्त किसी अन्य अनाज का ऋग्वेद में वर्णन नहीं है।
- आधारभूत सामाजिक इकाई (कुल/विश) था।
- प्रारम्भिक वैदिक समाज (बहुविवाह/एकपत्निक) पर आधारित था।

12.6 राजनैतिक व्यवस्था

कबीलाई राज्य व्यवस्था पूर्णतः समानतावादी नहीं थी। ऋग्वेद में दोहरा सामाजिक विभाजन मिलता है, जिसको दो वंशीय समूहों के रूप में देखा गया है—प्रथम "राजनय" या वे जो युद्ध करते थे तथा जिन्होंने उच्चवंशीय परम्परा प्राप्त की, और शेष कबीले के साधारण सदस्य या विश जिन्होंने छोटीवंशीय परम्परा प्राप्त की। यद्यपि सामाजिक क्रम में किसी गुट ने विशिष्ट स्थान नहीं पाया था, परंतु लगातार कबीलों के पारस्परिक संघर्षों एवं युद्धों ने सामाजिक विभाजन की रचना की। चरागाहों, पशुओं की बढ़ती आवश्यकता और लोगों तथा बस्तियों की सुरक्षा आदि के कारण आंतरिक एवं बाह्य कबीलाई संघर्षों में वृद्धि हुई।

युद्ध में योद्धासमूह की सहायता के लिये "कबीले" विशाल स्तर पर यज्ञ या बलि का आयोजन करते थे। इन यज्ञों में पुजारी या पुरोहित जनसमुदाय तथा देवताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। वह देवताओं की स्तुति करता था जिससे कि देवताओं का आशीर्वाद कबीले के मुखिया को युद्धों में सफलता पाने के लिये मिल जाये। प्रारम्भ में, सारा जन समुदाय इन यज्ञों में समानता के आधार पर भागीदारी करता था। बड़े स्तर पर इन यज्ञों के समय धन, खाने आदि का वितरण किया जाता और जन समुदाय के प्रत्येक सदस्य को बराबर हिस्सा मिलता था। लेकिन संघर्षों एवं युद्धों में वृद्धि होने के कारण यज्ञ या बलि का महत्व बढ़ गया और पुरोहित ने समाज में एक विशेष दर्जा हासिल कर लिया। इस काल के अंतिम भाग में, वे राजाओं या मुखियाओं से प्राप्त होने वाले उपहारों का बड़ा हिस्सा पाने लगे, और इस प्रकार जन के अन्य सदस्यों की तुलना में उनको विशेष स्थान प्राप्त हुआ।

युद्ध आदि होने के कारण राजा के पद का भी विशेष महत्व हो गया और उच्च तथा छोटी वंशीय परम्पराओं के बीच विभाजन अधिक स्पष्ट होने लगा। ये राजनैतिक असमानताएँ किस समय दिखायी पड़ी इसको स्पष्ट रूप से बता पाना कठिन है परंतु हमें याद रखना चाहिये कि ऋग्वेद के 10वें सर्ग में "पुरुष सूक्त" का वर्णन है और उत्तर वैदिक काल के ग्रंथों में हमें उन उच्च राजनय समूहों के वर्णन मिलते हैं, जो क्षत्रिय का स्तर ग्रहण कर रहे थे तथा जो स्वयं में एक अलग जाति थी। ये परिवर्तन 1000 ई. पू. के बाद हुए। इसका तात्पर्य यह कदाचित् नहीं है कि जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं वह अपरिवर्तनीय था वास्तव में यह परिवर्तन धीमी गति से हो रहा था लेकिन यह एक मुश्किल सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था की ओर बढ़ रहा था जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति "उत्तर वैदिक काल" में हुई (इकाई 13 को देखें)।

ऋग्वेद में कबीलाई सभाओं के लिये गण, विदाया, सभा और समिति जैसे शब्दों का वर्णन है। यह निश्चित नहीं है कि इनकी कार्यप्रणाली वास्तव में इस काल में क्या थी। "सभा" कबीले के चुनिंदा सदस्यों की परिषद और "समिति" सम्पूर्ण कबीले की परिषद होती होगी। इन सभाओं का कार्य सरकारी एवं प्रशासनिक दायित्वों को पूरा करना था और यही अपने जन समुदाय के किसी एक सदस्य को राजा निर्वाचित करने का भी कार्य करती थी। इस प्रकार वे योद्धाओं की शक्ति पर नियंत्रण रखते थे। जैसा हम पहले ही बता चुके हैं कि यद्यपि हम प्रारम्भिक वैदिक व्यवस्था में अच्छी प्रकार से परिभाषित राजनैतिक श्रेणीबद्धता नहीं पाते हैं फिर भी परिवर्तनों के इस काल में सामाजिक राजनैतिक श्रेणीबद्धता को जन्म दिया और जो "उत्तर वैदिक काल" में जातीय व्यवस्था के रूप में परिलक्षित हुई। उत्तरवैदिक कालीन समाज कबीलाई मूल्यों एवं नियमों से शासित होता था जिसके कारण मोटे तौर पर वर्ग विभेदीकरण नहीं हुआ।

12.7 धर्म

वैदिक लोगों के धार्मिक विचार ऋग्वेद के श्लोकों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। वे चतुर्विध

प्राकृतिक शक्तियों (जैसे वायु, जल, वर्षा, बादल, आग आदि) जिन पर वे नियंत्रण नहीं कर सकते थे और उन पर दैवी शक्ति का आरोपण करके, मानव के रूपों में, जिनमें अधिकतर पुलिंग थे, उपासना करते थे। बहुत कम देवियों की अराधना होती थी। इस तरह से धर्म पैतृसत्तात्मक समाज को दर्शाता है और वह प्रारम्भिक जीववाद था।

इंद्र शक्ति का देवता था और उसकी उपासना शत्रुओं का नाश करने के लिए होती थी। वह बादलों का देवता था और वर्षा करने वाला था तथा उससे समय-समय पर वर्षा के लिये कहा जाता था। उसको पराजित नहीं किया जा सकता था। बादल एवं वर्षा (प्राकृतिक नियति) शक्ति से सम्बन्धित थे जिसको पुरुष के रूप में मानवीयकरण किया गया तथा जिसका प्रतिनिधित्व इंद्र देवता करता था। गण का मुखिया जो युद्ध में सबसे आगे रहता था उसका प्रतिनिधित्व भी इंद्र के चरित्र में मिलता है। अग्नि आग का देवता था और इंद्र के बाद उसका महत्व था। उसको पृथ्वी एवं स्वर्ग के बीच मध्यस्थ माना जाता था अर्थात् देवताओं और मनुष्यों के बीच। वह परिवार के चूल्हे का अधिकारी था, और उसकी उपस्थिति में ही विवाह सम्पन्न होते थे। आग गंदगी एवं जीवाणुओं को नष्ट करती है इसलिये अग्नि को पवित्र माना जाता है। प्रारम्भिक समाज में अग्नि के महत्व को यज्ञ या बलि से भी संबन्धित किया जा सकता है जो आहूतियां अग्नि को समर्पित की जाती थी उनसे ऐसा माना गया कि वे धुएं के रूप में देवताओं तक पहुंचायी जाती थी।

वरुण को जल का देवता माना जाता था और वह विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था का रक्षक था।

यम मृत्यु का देवता था और उसका प्रारम्भिक वैदिक समान में विशेष महत्व था।

दूसरे अन्य बहुत से देवता थे जैसे सूर्य, सोम (जो एक पेय भी था), सावित्री, रुद्र आदि और अनेक प्रकार के दिव्य देहधारी देवता थे जैसे गंधर्व, अप्सरा, मरुत तथा जिनको सम्बोधित करते हुए ऋग्वेद में प्रार्थना एवं श्लोक लिखे गये हैं।

वैदिक धर्म बलि देय था। बलि या यज्ञों को निम्न कार्यों को सम्पन्न करने के लिये किया जाता था :

- देवताओं की उपासना करने,
- मनोरथ पूरा करने के लिये युद्ध में विजय,
- पशुओं, पुत्रों आदि की प्राप्ति के लिये।

हमें कुछ ऐसे श्लोक मिले हैं जिनको बलि के औजारों में शक्ति संचयन के लिये समर्पित किया गया जैसे कि बलि वेदी सोम के पौधे को पीसने वाले पत्थरों, ओखली, युद्ध के हथियारों, एवं नगाड़ों आदि। श्लोकों एवं प्रार्थनाओं को इन बलि यज्ञों के अवसरों पर गाया जाता था और सामान्यतः पुरोहित ही इन यज्ञों को सम्पन्न करते थे। प्रारम्भिक वैदिक काल में बलि यज्ञों का बहुत महत्व हो गया जिसके परिणामस्वरूप, पुरोहितों का महत्व भी बढ़ने लगा। बलिदान अनुष्ठानों के कारण गणित एवं पशु शरीर संरचना ज्ञान के विकास में भी वृद्धि हुई। बलिदान वाले क्षेत्र में बहुत सी वस्तुओं को उचित स्थिति में स्थापित करने के लिये प्रारम्भिक गणित की आवश्यकता गणना करने के लिये पड़ती थी। बलिदान बारबार होने के कारण पशुओं के शरीर का ज्ञान भी बढ़ा। वैदिक लोगों का विश्वास था कि जगत् का उद्भव एक विशाल ब्रह्मांडी यज्ञ से हुआ और यज्ञों के समुचित सम्पादन से ही उसका प्रतिपालन हो रहा है। धर्म काल्पनिक-अनुष्ठान पर आधारित नहीं था बल्कि इसके द्वारा बलिदान व श्लोकों के माध्यम से देवताओं से सीधे सम्पर्क स्थापित करने पर बल दिया गया था। आत्मिक उत्थान करने के लिये देवताओं की उपासना नहीं की जाती थी और न ही निराकार दार्शनिक अवधारणा के लिये। अपितु इनकी उपासना भौतिक उपलब्धियों के हेतु की जाती थी।

बलि पर आधारित धर्म पशु-पालक (चरवाहें) लोगों का धर्म है। इस समाज में पशु की बलि सामान्य बात है। जब पशु बूढ़ा हो जाए, जब वह न दूध दे सकता है और न मांस, न प्रजनन के लिये ही उपयुक्त रह जाता है, अर्थात् जो पशु आर्थिक लाभ के नहीं होते उनको मारकर उनके मालिकों का बोझ हल्का कर दिया जाता है। इस तरह से पशुबलि बूढ़े

जानवरों को नष्ट करने का एक तरीका है और इसका समाज में एक महत्वपूर्ण योगदान है। लेकिन कृषि प्रधान समाज में, पुराने पशुओं का उपयोग खेती-बाड़ी में किया जाता है और वे हल आदि खींचने के काम आते हैं तथा इसीलिये खेती-बाड़ी वाले समुदाय जानवरों के नष्ट होने के काम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार वैदिक धर्म पैतृकसत्तात्मक पशुपालक समाज को उजागर करता है और वह दृष्टिकोण में भौतिकतावादी था।

बोध प्रश्न 3

1 प्रारम्भिक वैदिक राजनैतिक व्यवस्था में राजन की क्या स्थिति थी? पांच वाक्यों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

2 प्रारम्भिक वैदिक लोगों के धर्म की प्रकृति का वर्णन पांच वाक्यों में कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

3 निम्नलिखित कथनों को पढ़िये और सही (✓) या गलत (x) के निशान लगाओ।

- i) पुरोहित या पुजारी का समाज में कोई विशेष स्थान नहीं था। ()
- ii) "सभा" और "समिति" को राजा के चुनाव में कोई अधिकार नहीं था। ()
- iii) प्रारम्भिक वैदिक समाज में, शक्ति का देवता, इंद्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। ()
- iv) देवताओं की पूजा लोगों के आत्मिक उत्थान के लिये होती थी। ()
- v) धर्म मायावी अनुष्ठान के सिद्धांत पर आधारित नहीं था। ()

12.8 सारांश

आपने इस इकाई में उन साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोतों के बारे में जानकारी प्राप्त की जो उत्तर वैदिक समाज के पुनर्निर्माण में हमारी सहायता करते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के प्रकाश में "आर्यों" के वृहत पैमाने पर स्थानांतरण की अवधारणा को स्वीकार करना कठिन है।

प्रारम्भिक वैदिक अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से पशुपालन की थी और गाय संपत्ति की सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक थी। प्रारम्भिक वैदिक लोगों के जीवन में खेती का स्थान गौण था।

प्रारम्भिक वैदिक समाज कबीलाई और मुख्यतः समानतावादी था। कूटुम्ब और परिवार के संबंधों ने समाज का आधार निर्मित किया था और परिवार समाज की आधारभूत इकाई था। व्यवसाय पर आधारित सामाजिक विभाजन प्रारम्भ हो चुका था परंतु उस समय जातिगत विभाजन नहीं था।

प्रारम्भिक राजनैतिक व्यवस्था में जन के मुखिया या राजा और पुजारी या पुरोहित के महत्वपूर्ण स्थान थे। अनेकों गण सभाओं में से "सभा" व "समिति" प्रशासन में विशेष योगदान करती थीं। यद्यपि प्रारम्भिक वैदिक व्यवस्था में स्पष्ट रूप से परिभाषित कोई राजनैतिक पदानुक्रम नहीं था फिर भी कबीले की राजनैतिक व्यवस्था पूर्णतः समतावादी नहीं थी।

प्रारम्भिक वैदिक लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों जैसे वायु, जल, वर्षा आदि को मूलरूप दिया और उनकी देवता की तरह पूजा करते थे। वे देवता की उपासना किसी अमूर्त दार्शनिक अवधारणा के कारण नहीं बल्कि भौतिक लाभों के लिये करते थे। वैदिक धर्म में बलिदान या यज्ञ का महत्व बढ़ रहा था।

यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि यह समाज स्थिर नहीं बल्कि गतिशील था। इन पांच सौ वर्षों के दौरान (1500 ई. पू. से 1000 ई. पू.) समाज का लगातार विकास हो रहा था और आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में नये-नये तत्व सामाजिक संरचना को रूपांतरित कर रहे थे।

12.9 शब्दावली

शिल्पकृति : मानव द्वारा निर्मित वस्तुएं जैसे पुरातात्विक रुचि का कोई मामूली औजार या हथियार।

कुटुम्ब : कबीलाई समुदायों में पाया जाने वाला बड़ा परिवार समूह।

नातेबारी : खून का संबंध।

जीवशास्त्र : आत्मा के लिये प्राकृतिक वस्तुओं और क्रियाओं को श्रेय देना।

खानाबदोश : ऐसे कबीले का सदस्य जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकता हो तथा जिसका कोई स्थाई घर न हो।

पितृसत्तात्मक : पुरुष प्रधान परिवार या कबीला।

अर्ध-स्थायीत्व : ऐसे लोग जो स्थायी रूप से एक स्थान पर न बसे हों और दूसरी नयी बस्ती की खोज में घूमते हों।

परिवर्ती खेती : एक भूमि का कुछ समय के लिये खेती-बाड़ी हेतु प्रयोग करके इसको छोड़ देना तथा नयी भूमि का प्रयोग करना।

स्तर विन्यास (Stratigraphy) : भूमि की वे परतें जिनको खुदाई करके निकाला गया हो। इन परतों की खुदाई के कार्य का आधार भूमि की किस्मों पर निर्भर करता है या उत्खनन में प्राप्त होने वाली विभिन्न शिल्पकृतियों पर।

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1 ऋग, साम, यजुर, अथर्व। ऋग्वेद प्रारम्भिक वैदिक काल से संबंधित हैं।
- 2 पुरातात्विक स्रोत आयों के आक्रमण या स्थानांतरण की अवधारणा का समर्थन नहीं करते। आयों के द्वारा हड़प्पा की सभ्यता का सर्वनाश करने की अवधारणा के विरोध में पुरातत्वविदों के तर्क, ताम्र पाषाण काल एवं उत्तर हड़प्पा संस्कृतियों के बीच पाई जाने वाली सांस्कृतिक असंगति, अपने उत्तर में लिखिये। देखिए 12.3
- 3 i) नहीं
ii) हां

- iii) हां
- iv) नहीं

बोध प्रश्न 2

1. ऐसा समाज जो प्रधानतः पालतू पशुओं रूपी सम्पदा पर निर्भर हो क्योंकि बड़े स्तर पर खेती-बाड़ी पर्यावरण और सांस्कृतिक विवशताओं के कारण सम्भव नहीं थी। देखिये भाग 12.4
2. प्रारम्भिक वैदिक समाज में पालतू पशु संपत्ति का प्रमुख स्रोत थे। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आपको गाय या पालतू पशुओं के महत्व पर लिखना होगा। देखिए भाग 12.4
3. आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिये कि यह एक कबीलाई समाज था, समाज पितृसत्तात्मक था, परिवार समाज की मूल इकाई थी, जाति विभाजन वहां पर नहीं था आदि। देखिये भाग 12.5
4. i) गोपति
ii) पालतू पशु (मवेशी)
iii) यव
iv) कुल
v) एक पत्नीत्व

बोध प्रश्न 3

1. आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिये कि राजा कबीले का मुखिया था, बार-बार होने वाले युद्धों ने उसको महत्वपूर्ण बनाया, वह कबीले का रक्षक था, उसका पद सदैव पैतृक नहीं होता था, आदि। देखिये भाग 12.6
2. वैदिक लोग अनेक प्राकृतिक शक्तियों की उपासना देवता के रूप में करते थे, बलिदान पर बल देते थे परंतु मायावी-अनुष्ठान के सिद्धांत पर नहीं, धर्म भौतिक उपलब्धियों पर आधारित था आदि। देखिये भाग 12.7
3. i) ×
ii) ×
iii) ✓
iv) ×
v) ✓

इकाई 13 उत्तर वैदिक युग में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

- 13.0 उद्देश्य
- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 स्रोत
 - 13.2.1 साहित्य स्रोत
 - 13.2.2 पुरातात्विक स्रोत
- 13.3 लौह तकनीकी एवं इसका प्रभाव
- 13.4 अर्थव्यवस्था का स्वरूप
 - 13.4.1 पशुपालक जीवन के महत्व में कमी
 - 13.4.2 अनुष्ठानों में परिवर्तन
 - 13.4.3 भूमि का बढ़ता महत्व
- 13.5 राजनीति और समाज
 - 13.5.1 राजनीति
 - 13.5.2 समाज
- 13.6 धर्म
 - 13.6.1 पुरोहितवाद
 - 13.6.2 उत्तर वैदिक काल के देवता
 - 13.6.3 लोक परम्परा
- 13.7 सारांश
- 13.8 शब्दावली
- 13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप यह जान पाएंगे कि:

- उत्तर वैदिक समाज के अध्ययन के लिये कौन-कौन से स्रोत उपलब्ध हैं,
- उत्तर वैदिक काल की सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्था में किस प्रकार परिवर्तन हुए, और
- नव धातु या लोहे के प्रचलन से तकनीकी परिवर्तन के आर्थिक एवं सामाजिक आयाम क्या थे?

13.1 प्रस्तावना

आप जिस समय का अध्ययन करने जा रहे हैं वह 1000 ई. पू. से 600 ई. पू. के मध्य का समय है। इस युग में वैदिक कबीले "सप्त सिन्धु" क्षेत्र में गंगा की उपरी घाटी तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में फैल गये थे। क्षेत्रीय परिवर्तन के इस काल में आर्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में कई परिवर्तन आये। इस इकाई में हम इन परिवर्तनों के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की चर्चा करेंगे।

13.2 स्रोत

इस युग का अध्ययन करने के लिये हमारे पास साहित्यिक तथा पुरातात्विक दोनों ही प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं।

13.2.1 साहित्यिक स्रोत

ऋग्वेद संहिता में बाद में जोड़े गये 10 मंडल तथा साम, यजुर एवं अथर्वेद संहिता इस काल के मुख्य साहित्यिक स्रोत हैं। सामवेद संहिता प्रार्थना तथा श्लोकों की पुस्तक है जो ऋग्वेद से है। इनको उपासना एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर स्पष्ट तथा लयबद्ध गाने के लिये संकलित किया गया।

- यजुर्वेद यज्ञ संबंधी अनुष्ठानों को स्पष्ट करता है और इसमें स्तुतिगीतों का भी संग्रह है। इस संहिता में संकलित अनुष्ठानिक एवं स्तुतिगीत उस युग की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर भी प्रकाश डालते हैं।
- अथर्वेद उस काल की लोक परम्पराओं का संकलन है तथा वह लोकप्रिय धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्य जनता की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानने का यह एक अच्छा उत्तर वैदिक कालीन स्रोत है।

इन ग्रंथों के बाद कुछ अन्य ग्रंथ सामने आते हैं। इन ग्रंथों को हम ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं। ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक संहिताओं पर टीका टिप्पणियाँ हैं; यह अनुष्ठानों के सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों को भी उजागर करते हैं और उनसे उत्तर वैदिक समाज की भी जानकारी मिलती है।

संस्कृत में लिखे गये रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्यों में प्रारम्भिक भारतीय समाज के बारे में काफी जानकारी मिलती है। तब भी भारतीय इतिहास के किसी भी काल को महाकाव्यों का काल कहना बहुत उपयुक्त नहीं होगा। इतिहासकारों का मत है कि इन महाकाव्यों में जो जानकारी मिलती है वह अधिकांशतया उत्तर वैदिक काल से संबंधित है। इस काल का प्रमुख केन्द्र बिन्दु ऊपरी गंगा और मध्य गंगा घाटियाँ हैं। थोड़ा बहुत अन्य क्षेत्रों का भी विवरण है। महाकाव्यों के अनुसार भी अधिकांश महत्वपूर्ण घटनायें इसी क्षेत्र में घटीं। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन महाकाव्यों में जिन कहानियों का वर्णन है उनको ऐतिहासिक घटनायें मानने का हमारे पास कोई सबूत नहीं है। साथ ही यह जानना भी जरूरी है कि इन महाकाव्यों को अपने वर्तमान रूप में पहुँचने में कई सौ साल लग गये इसलिये इन महाकाव्यों में विभिन्न प्रकार के समाजों के दर्शन होते हैं।

13.2.2 पुरातात्विक स्रोत

साहित्यिक स्रोत स्थान-स्थान पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों की चर्चा करते हैं। उत्तर वैदिक काल का समय लगभग 1000 ई. पू. से 600 ई. पू. तक का है। समकालीन ग्रंथों में बहुत से समुदायों तथा सांस्कृतिक समूहों के बारे में जानकारी मिलती है। परन्तु विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन किसी विशेष प्रजाति अथवा समूह से सम्बद्ध नहीं किये जा सकते। इसी क्षेत्र में लगभग इसी काल में कुछ खेतिहर समूह भी फले-फूले। ये खेतिहर समूह एक विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे जिन्हें रंगे हुए धूसर मृदभाण्ड (PGW) कहा जाता है। यह बर्तन और अन्य पुरातात्विक अवशेष उत्तर वैदिक काल की भौतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं।

अब तक ऊपरी गंगाघाटी में 700 से अधिक चित्रित धूसर मृदभाण्ड के स्थलों की खुदाई की गई है ये बाहवलपुर, धामर नदी के सूखे क्षेत्रों, सिन्धु व गंगा के तराई वाले क्षेत्रों तथा गंगा यमुना दोआब में फैले हुए हैं। इन स्थलों की पूर्वी सीमा गंगा के उत्तरी पश्चिमी मैदान तथा सरस्वती नदी (जो अब राजस्थान के मरुस्थल में विलीन हो चुकी है) तक फैली है। अतरंजीखेड़ा, अछिछत्र, नूह, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, भगवानपुर, तथा जखेड़ा चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति के मुख्य स्थल हैं।

2000 ई. पू. से 1400 ई. पू. की दक्षिणी राजस्थान की बांस संस्कृति का विस्तार संभवतः गंगा घाटी में 800 ई. पू. तक हो चुका था। इस तरह काले एवं लाल मृद्भांडों का प्रयोग करने वाले लोगों को भी उत्तर वैदिक संस्कृति के साथ जोड़ा जा सकता है। वैदिक साहित्य के अनुसार आर्यों का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ परन्तु पुरातात्विक स्रोत "वैदिक आर्यों" के पूर्व दिशा में फैलने को सिद्ध नहीं करते। पुरातात्विक साक्ष्य, पूर्व दिशा में फैलने वाली किसी भी संस्कृति के साक्ष्य नहीं हैं। इस प्रकार साहित्यिक व पुरातात्विक ऐतिहासिक स्रोतों में एक बड़ी दूरी दिखाई पड़ती है। हालांकि साहित्यिक स्रोतों से इंगित उत्तर वैदिक समाज और पुरातात्विक साक्ष्यों से इंगित समाज दोनों में लोहे के प्रयोग का आरम्भ पता चलता है।

चित्रित घुसर मृद्भांड क्षेत्रों में लोहे की चीजें सामान्यता प्रचलित थी। अतरंजीखेड़ा, नूह एवं जोधपुर से प्राप्त वस्तुओं की कार्बन 14 की पद्धति से निकाली गई तिथियाँ बताती हैं कि इस धातु का गंगा के मैदानों में 1000 ई. पू. से 800 ई. पू. के बीच प्रचलन शुरू हो गया था। लोहे को उत्तर प्रदेश, हिमाचल, पंजाब तथा बाद में दक्षिण बिहार से इकट्ठा किया जाने लगा। ऋग्वेद में वर्णित आयस शब्द लोहे के अर्थ में हो सकता है परन्तु पुरातात्विक खोजों के आधार पर लोहे का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में मिलता है। साहित्यिक स्रोत इस की पुष्टि करते हैं। यजुर्वेद में "आयस" को "श्याम आयस" लिखा गया है तथा ब्राह्मण ग्रंथों में लोहे को "कृष्ण आयस" के नाम से पुकारा गया है।

किन्तु हाल ही के उत्खनन से पता लगता है कि दक्षिण भारत के महापाषाणी लोग लोहे के प्रयोग से अच्छी तरह से परिचित थे। इसलिये अब हम प्रवासी आर्यों को भारत में लोहे का प्रयोग प्रारम्भ करने का श्रेय नहीं दे सकते।

13.3 लौह तकनीकी तथा इसका प्रभाव

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है क्या लोहे की जानकारी ने इस समय की धातु तकनीकी में कोई विकास किया? इसी प्रकार आप यह भी जानना चाहेंगे कि नई तकनीकी के प्रचलन से समाज की भौतिक परिस्थितियों में किस प्रकार के परिवर्तन हुए?

उत्तर वैदिक काल के ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह धारणा बनती है कि घुमकड़ पशुपालक समाज एक स्थायी समाज में परिवर्तित हो रहा था। यह पहले भी बताया जा चुका है कि स्थायी रूप से खेती करने के लिये वनों एवं गंगा के दोआब को साफ करने के लिये लोहे की कुल्हाड़ी का प्रयोग किया गया। ऐसा समझा जाता है कि लोहे के नोक वाले हल एवं कुदाल ने कृषि यन्त्रों की क्षमता को बढ़ाया जिससे कृषि के कार्यों का फैलाव हुआ। इसलिये विद्वानों का मत है कि लोहे के प्रयोग ने कृषि अर्थव्यवस्था को और विकसित करने में विशेष योगदान दिया। फिर भी, इस तथ्य से हम भली प्रकार परिचित हैं कि उत्तर वैदिक काल कृषि तथा लोहे के प्रयोग में पूर्णतः विकसित नहीं था। बिहार से लोहे के खनन का कार्य बड़े स्तर पर नहीं किया जाता था तथा लोहा पिघलाने की विधि भी अति प्राचीन थी।

खुदाई से जो चीजें उपलब्ध हुई हैं उनमें मुख्य रूप से नुकीले लोहे के तीर, नुकीले भाले आदि हथियार हैं, इन में अधिक चीजें अहिच्छत्र की खुदाई से प्राप्त हुई हैं। उत्खनन से हौसिया, कुदाल व कुल्हाड़ी बहुत कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। जखेड़ा से हल का एक फाल प्राप्त हुआ है जो शायद इस युग के अंत का है। इस प्रकार उत्खनन से ऐसा लगता है कि लोहे का प्रयोग केवल हथियार बनाने तक ही सीमित था। लोहे के प्रयोग ने पहली सहस्राब्दी ई.पू. के उत्तरार्ध तक कृषि तकनीकी को तब तक प्रभावित नहीं किया जब तक गंगा घाटी की दलदली तथा अन्य वनों को खेती के लिये साफ नहीं कर लिया गया। उत्तर वैदिक काल में गंगा दोआब के ऊपरी जंगलों को जलाकर साफ किया गया। महाभारत में वर्णित है कि खांडव नाम के जंगल को जलाकर इन्द्रप्रस्थ नगर को बसाया गया था। लोहे के नुकीले हथियारों तथा घोड़े वाले रथों ने सैनिक कार्यों में मुख्य भूमिका अदा की एवं इस युग में सैनिक कार्यों में इनका खूब प्रयोग होने लगा था जिसकी चर्चा महाभारत में विस्तृत

रूप से हुई है। लेकिन जीविकोपार्जन के कार्यों में लोहे का विशेष प्रयोग शुरू नहीं हुआ था।

बोध प्रश्न 1

1 सही वाक्य पर (✓) का निशान लगाओ:

- हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि वैदिक समाज का फैलाव पूर्व दिशा की ओर हुआ। ()
- यह कहना असम्भव है कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ()
- हम अनुमान कर सकते हैं कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ()
- उपरोक्त में कोई भी नहीं। ()

2 अथर्ववेद के द्वारा :

- हम उत्तर वैदिक काल की लोक परम्पराओं को समझ सकते हैं। ()
- हम उत्तर वैदिक काल की अभिजात वर्ग की परम्पराओं को समझ सकते हैं। ()
- हम सामान्य जनता की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों को जान सकते हैं। ()
- दोनों (i) और (iii) ()

3 उत्तर वैदिक काल में :

- लोहे का मुख्य रूप से कृषि के लिये प्रयोग किया गया। ()
- लोहे का मुख्य रूप से युद्ध के हथियारों के लिये प्रयोग किया गया। ()
- लौह तकनीकी वहां पर बिल्कुल नहीं थी। ()
- स्टील का प्रयोग किया जाता था। ()

4 उत्तर वैदिक काल में लोहे के प्रयोग के प्रभाव पर 50 शब्द लिखें :

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.4 अर्थव्यवस्था

गंगा यमुना दोआब एवं मध्य गंगा घाटी में उर्वरक भूमि के विशाल मैदानों की उपलब्धता से उत्तर वैदिक काल में कृषि का विकास सम्भव हुआ तथा इस क्षेत्र में प्रथम शताब्दी ई.पू. में, धीरे-धीरे स्थायित्व कायम हो सका। उत्तर वैदिक साहित्य में ऐसे संकेत मिलते हैं कि पशुपालन का महत्व बना रहा। इसी के साथ-साथ कृषि पर आधारित स्थायी जीवन प्रणाली का भी प्रारम्भ हो चुका था। दोनों तरह के साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोत यह बताते हैं कि लोग खाने में चावल का प्रयोग करने लगे थे। चित्रित घूसर मृदभांड तथा बांस संस्कृति के खुदाई किये गये स्थलों से चावल के काले पड़े हुए दाने मिले हैं। वैदिक साहित्य में चावल के लिये ब्रीही, तन्दूला तथा सलि जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है यह लगता है कि इस समय फसल चक्र का प्रयोग होने लगा था तथा जौ व चावल की खेती की जाने लगी थी। इस काल में खेती की अच्छी पैदावार तथा आर्थिक सम्पन्नता के लिये राजसुय यज्ञ में दूध, घी व पशुओं के साथ-साथ अनाज भी चढ़ाया जाने लगा। अथर्ववेद में ऐसी 12 बलियों का वर्णन है

जिससे कि भौतिक लाभ की प्राप्ति होती थी तथा इसी के साथ ब्राह्मणों को गाय, बछड़े, सांड, सोना, पके चावल, छप्पर वाले घर तथा अच्छी पैदावार देने वाले खेतों को उपहार के रूप में दिया जाने लगा। उपहार में दी जाने वाली ये वस्तुएं इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि कृषि तथा कृषि पर आधारित स्थायी जीवन का महत्व बढ़ रहा था। उत्तर वैदिक काल के साहित्य में वर्णन है कि 8, 12, व 20 बैल तक हल को जोतते थे। यहाँ पर बैलों की संख्या का वर्णन प्रतीक के रूप में हुआ है। परन्तु इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि खेती करने के लिये हल बैल का प्रयोग खूब होने लगा था।

13.4.1 पशुपालक जीवन के महत्व में कमी

पशुपालन का कार्य अब जीवन यापन का मुख्य साधन नहीं था जैसा कि यह प्रारम्भिक वैदिक काल में था। इस काल में मिश्रित कृषि व्यवस्था का प्रचलन था जिसमें खेती तथा पशुपालन दोनों का संयुक्त रूप से प्रयोग था। कृषि श्रम प्रधान नहीं थी। जिन जगहों की खुदाई से चावल प्राप्त हुआ है वे स्थान दोआब के पूर्वक क्षेत्रों में स्थित हैं। रोपाई के द्वारा धान पैदा करने का तरीका अभी शुरू नहीं हुआ था।

मिश्रित कृषि व्यवस्था के कारण खेती पर आधारित स्थायी जीवन का उदय हुआ। दूसरे मृदाभांड संस्कृतिक अवशेष 2 से 3 मीटर की गहराई पर हैं जिससे यह पता लगता है कि लोग एक ही स्थान पर लम्बे समय तक रहते थे। भगवानपुर तथा जखेड़ा की खुदाइयों से स्पष्ट है कि टहनियों, दूब व लकड़ी से बनी गोल झोंपड़ियों का स्थान मिट्टी के परकोटे से बने अधिक टिकाऊ घरों ने ले लिया था इन टिकाऊ घरों के बनाने में प्रयोग की गई सामग्री से स्पष्ट है कि अब उत्तर वैदिक काल के लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन शैली को अपना रहे थे।

13.4.2 अनुष्ठानों में परिवर्तन

प्रारम्भिक वैदिक काल में पूर्ण समुदाय को लाभ पहुँचाने के लिये अनुष्ठान किये जाते थे, देवताओं की पूजा दूसरे समुदायों पर विजय पाने, पशु प्राप्त करने अथवा पुत्र लाभ के लिये की जाती थी। यह अनुष्ठान और पूजा ऐसे अवसर होते थे जब मुखिया या समुदाय के प्रमुख धन भी बाँटते थे। उत्तर वैदिक काल में अनुष्ठानों का उद्देश्य बिलकुल बदल गया। अब अनुष्ठान बहुत जटिल हो गये जो कई सालों तक चलते रहते थे। इसलिये अब केवल धनी लोग यह अनुष्ठान कर सकते थे। सामूहिकता की भावना में कमी आ गई बलि देने के पीछे प्रमुख उद्देश्य समुदाय पर नियंत्रण प्राप्त करना हो गया। अब पूरे समुदाय को उपहार नहीं दिये जाते थे। मुखिया केवल ब्राह्मणों को उपहार देता था जो उसके लिये हवन अथवा बलि आदि के अनुष्ठान करते थे। अनुष्ठान अत्यधिक जटिल हो गये केवल अत्यन्त निपुण ब्राह्मण ही उन्हें कर सकते थे। क्योंकि ऐसा विश्वास था कि एक मामूली गलती भी अनुष्ठान करने वाले का विनाश कर देगी। ऐसा भी विश्वास था कि बलि देने से मुखिया या समुदाय के प्रमुख महामानव ही शक्ति प्राप्त कर के समुदाय में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। इस कार्य के लिये मुखिया अपनी साधन सम्पत्ति का एक बड़ा भाग ब्राह्मण पुरोहित को देता था। इस प्रकार अनुष्ठान मुखिया के लिये भौतिक और आध्यात्मिक प्रभुता स्थापित करने का साधन बन गये।

13.4.3 भूमि का बढ़ता महत्व

जमीन की जुताई पारिवारिक श्रम तथा घरेलू नौकरों और दासों की मदद से की जाती थी। इस युग में, पहले भूमि का स्वामित्व पूरे समुदाय या विश के पास होता था परन्तु धीरे-धीरे भूमि पर परिवार का स्वामित्व हुआ इससे परिवार का प्रमुख या गृहपति धनी हो गया। वैश्य (जो मूलतः विश से बना था) समाज में उत्पादक वर्ग था। क्षत्रिय तथा ब्राह्मण उत्पादन के कार्यों में सीधी हिस्सेदारी नहीं लेते थे और इनके जीवन यापन के लिये खाद्यानों व सम्पत्ति का उत्पादन वैश्य ही करते थे। वैश्य जो भूमिकर या अन्य खाद्य सामग्री क्षत्रियों को देते थे उसके बदले में क्षत्रिय उनकी भूमि की रक्षा करते थे। ब्राह्मणों को वैश्य जो दान दक्षिणा देते थे उसके बदले में ब्राह्मण उनके जीवन में नैतिक उत्थान के लिये कार्य करते थे। विश-वैश्य इस घरेलू अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार थे। जीवन निर्वाह

करने वाले खाद्य पदार्थ क्षत्रिय व ब्राह्मणों के बीच क्रमशः भूमिकर और दान दक्षिणा में बंट जाते थे। भूमि को बेचने, या क्रय करने की कोई प्रथा नहीं थी। पृथ्वी द्वारा भवाना विश्वकर्मा नाम के एक शासक की इस बात के लिये निंदा की गई कि उसने भूमि का अनुदान देने की कोशिश की। इस संदर्भ से यह स्पष्ट है कि भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व का सिद्धांत माना जाता था तथा विश्व की भी भूमि में भागीदारी थी।

13.5 राजनीति और समाज

पशुपालन से मिश्रित कृषि की ओर संक्रमण का उत्तर वैदिक राजनीति तथा समाज के चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ा। परिवर्तन की मुख्य धारयाँ थीं—

- प्रारम्भिक वैदिक समाज की कबीलाई संस्था का स्थान क्षेत्रीय पहचान ने ले लिया तथा इसके फलस्वरूप मुखिया की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ।
- सामाजिक ढांचा जो प्रारम्भिक वैदिक काल में कबीलाई संबंधों पर आधारित समानतावादी था अब काफी जटिल हो गया यह समाज असमानता पर आधारित था एक कबीला कई समूहों में बंट गया समाज में कुछ समूह उच्च समझे जाते थे और कुछ निम्न।

13.5.1 राजनीति

ऋग्वैदिक काल में जन का प्रयोग जनता या कबीले के लिये किया जाता था। लेकिन अब जनपद का प्रयोग जस्तिव में आया जनपद का तात्पर्य उस स्थान से था जहाँ पर कबीला बस गया था। उत्तर वैदिक काल के साहित्य में "राष्ट्र" शब्द का प्रयोग होने लगा था परन्तु इस शब्द को अभी तक उस अर्थ में परिभाषित नहीं किया गया था जिससे यह एक निश्चित, क्षेत्र का घोटक हो।

कौरव (कुरु) कबीले का उदय वैदिक काल के दो बड़े कबीलों भरत तथा पुरु के संयुक्त होने पर हुआ था इनका अधिकार गंगा/यमुना दोआब के ऊपरी भू-भाग पर था इसी प्रकार पांचाल कबीला उन लोगों को कहा गया जिनका अधिकतर प्रभाव दोआब के मध्य भू-भाग पर था और "पांचाल देश" के नाम से जाना जाता था। इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि अब कबीले की पहचान क्षेत्रीय पहचान में बदल गई थी यह भी कहा जाता है कि कुरु तथा पांचाल कबीलों का एक दूसरे में विलय हो जाने के कारण उनका अधिकार गंगा-यमुना दोआब के ऊपरी तथा मध्य भू-भाग पर हो गया था। इस प्रकार "जन" तथा क्षेत्र के सम्बन्धों में परिवर्तन और क्षेत्र के नियंत्रण ने छठी शताब्दि ई. पू. तक महाजनपद तथा जनपद के गठन में सहायता की।

कबीलों के मुखिया और योद्धा

जब कबीले किसी क्षेत्र विशेष से सम्बंधित हो गये और उस क्षेत्र के रूप में जाने जाने लगे तो कबीलों के मुखिया के पद एवं कार्य शैली में भी परिवर्तन हुआ। राजा या मुखिया अब केवल पशुओं की लूट में सम्मिलित नहीं होता था बल्कि वह उस क्षेत्र का रक्षक बन गया था जिसमें उसके कबीले के लोग रहते थे। राजन्य जो ऋग्वैदिक काल से अभिजात्य समझा जाता था अब वह क्षेत्रीय वर्ग में बदल गया। "क्षत्रिय" शब्द का साहित्यिक अर्थ है राज्य या क्षेत्र पर अधिकार होना। क्षत्रिय वर्ग का मुख्य कार्य था अपने कबीले के लोगों तथा उस क्षेत्र की रक्षा करना जिसमें वे बस गये थे। विश्व या जनता को क्षत्रियों को एक कर देना होता था जिसके बदले में क्षत्रीय जनता की रक्षा करते थे और विश्व धीरे-धीरे क्षत्रिय वर्ग के सहायक बन गये। भूमिकर तथा बलि अब इच्छानुसार देने वाले उपहार नहीं थे बल्कि अब नियमित कर व सजराना देने वाली प्रथाओं का उदय हुआ।

कबीलाई सभाएं

क्षत्रिय तथा योद्धा वर्ग की स्थिति में परिवर्तन के कारण गण या कबीलाई सभाओं के चरित्र

में भी परिवर्तन हुआ। समिति की अपेक्षा सभायें इस समय अधिक शक्तिशाली हो गईं।

सभा राजा को उसके कर्तव्य निर्वाह में सहायता करती थी राजा या मुखिया का पद जन्म पर आधारित नहीं था परन्तु राजा का चुनाव केवल क्षत्रिय वर्ग के मध्य से ही होता था।

राजा की वैधता

पैतृक उत्तराधिकार के स्पष्ट सिद्धांतों के अभाव में राजा के लिये राजतिलक के समय होने वाले अनुष्ठानों का महत्व और भी बढ़ गया था। इसी के माध्यम से वह अपने प्रभुत्व के लिये आम लोगों की सहमति प्राप्त करता था इसीलिये राजसूय, अश्वमेध तथा वाजपेय जैसे यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर किया जाने लगा था। ऋग्वैदिक काल में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन छोटे स्तर पर ही होता था। लेकिन इस काल में इसका आयोजन दूसरे स्थानों पर अधिकार करने तथा दूसरे स्थानों पर शासक की वैधता स्थापित करने के लिए किया जाता था। दूसरे यज्ञों द्वारा राजा के स्वस्थ होने की कामना की जाती थी और राजा की वैधता, उसकी संप्रभुता व शक्ति को स्थापित करने के लिये इन तीनों यज्ञों का आयोजन किया जाता था। उदाहरण के लिये राजसूय यज्ञ के बाद आयोजक राजा (सम्राट) घोषित किया जाता था। बाद के काल में भी जब नये राज्य या राजा बनते थे तब भी इनका महत्व बना रहा। राजाओं द्वारा इनका उपयोग अपनी सत्ता को धार्मिक वैधता प्रदान करने के लिये हुआ।

साधनों, आर्थिक उत्पादन एवं वितरण के द्वारा राजा क्षेत्रीय एकता को प्राप्त करता था जिससे कि उसका स्तर मात्र लुटेरे या केवल युद्धों के नेता से कुछ अधिक हो जाता था। तब भी, वह एक संप्रभुता सम्पन्न शासक नहीं था। उसका चुनाव होता था तथा वह अपने कबीले के प्रति उत्तरदायी था। वह दूसरे ऐसे राजाओं की नियुक्ति भी नहीं कर सकता था जो उसके कार्यों में उसकी सहायता करते वे स्वयं में अधिकार सम्पन्न मुखिया थे। यह काफी महत्वपूर्ण है कि इस समय में क्षत्रिय वंश का स्तर अधिक ऊंचा हो गया था, इसका कारण क्षेत्रीय पहचान के सिद्धांत की स्थापना है। इस प्रकार क्षेत्र के भौतिक आधार ने राजा को शासन करने की शक्ति दी।

कबीलाई संघर्ष

कबीले के आन्तरिक व बाह्य संघर्ष की प्रकृति में भी परिवर्तन हुए। अब लड़ाईयाँ पालतू पशुओं के छुटपुट झगड़े नहीं रह गई थी, बल्कि भूमि पर आधिपत्य स्थापित करना इन झगड़ों का मुख्य तत्व था। क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता का सम्बन्ध कबीले की बढ़ती हुई जनसंख्या से था। लोहे के हथियार और घोड़ों द्वारा चलने वाले रथों ने युद्धों के कौशल को बढ़ावा दिया। महाभारत में कबीले के आन्तरिक युद्ध को (कौरव और पांडव समुदायों के) दिखाया है।

पुरोहित

राजन्य क्षत्रिय के बढ़ते हुये महत्व ने ब्राह्मण के महत्व को भी बढ़ा दिया क्योंकि वे अनुष्ठानों द्वारा राजा के पद को वैधता प्रदान करते थे। ऐसे अवसर पर दान-दक्षिणा द्वारा धन सम्पत्ति का बाँटा जाना मुख्य रूप से क्षत्रिय यजमान द्वारा ब्राह्मण, पुरोहित को देना था बड़े स्तर पर पवित्र अनुष्ठान करना यह दिखाता है कि राजा अपने को पद पर बहुत सुरक्षित नहीं पाता था और शासन करने की अपनी योग्यता ऐसे अनुष्ठानों द्वारा दिखाना चाहता है। बाद के काल में राज्य के पुरोहित का दर्जा देवताओं के समतुल्य हो गया, यह समझा जाता था कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ की आवश्यकता है इसी प्रकार राज्य पुरोहित अथवा ब्राह्मण दान से प्रसन्न होता है। इस प्रकार धन सम्पत्ति का बटवारा मुख्यता शासक और पुरोहित दो उच्च वर्गों में था और राजनैतिक शक्ति क्षत्रिय के अधिकार में आ रही थी।

13.5.2 समाज

हम विश या जन की घटती हुई स्थिति और क्षत्रिय की बढ़ती हुई हैसियत के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। समाज की रचना अब असमानता पर आधारित थी। एक स्रोत के अनुसार चार वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड के रचयिता प्रजापति के शरीर से हुई। "आदिकालीन मनुष्य का स्रोत" नाम श्लोक ऋग्वेद के उत्तरार्द्ध

में हैं। यह श्लोक पहली बार चार वर्णों की उत्पत्ति के बारे में बताता है।

"जब मनुष्य को विभाजित किया गया उसे कितने भागों में बाँटा गया? उसका मुख क्या था, उसके हाथ क्या थे, उसकी जंघा क्या थी और उसके पाँव क्या कह गये?"

ब्राह्मण उसका मुख था
क्षत्रिय उसके हाथ से बनाये-गये
उसकी जंघा से वैश्य बने
उसके पाँव से शूद्र उत्पन्न हुये"

इन स्रोतों में प्रतीकात्मक रूप से यह दिखाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समाज के अंग हैं। हालांकि यह अंग समान स्तर के नहीं हैं। ब्राह्मण, की तुलना सिर या मुख से की गई है तबकि शूद्र की तुलना पाँव से। ब्राह्मण सर्वोच्च समझे गये क्योंकि ऐसा माना गया कि समाज देवताओं से सम्पर्क केवल उनके द्वारा ही स्थापित कर सकता था जब कि शूद्र निम्न कार्य करता था और इस श्रेणी में वह दास भी रखे गये जो युद्ध में पकड़े जाते थे।

वर्ण की अवधारणा

वर्ण की अवधारणा की निम्नलिखित विशेषतायें हैं:

- क) जन्म के आधार पर सामाजिक स्तर।
- ख) वर्णों का श्रेणीबद्ध तरीके से गठन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) जिसमें ब्राह्मण समाज में सबसे उच्च और शूद्र सबसे निम्न स्थान पर थे।
- ग) सगोत्र विवाह एवं अनुष्ठानों की पवित्रता के नियम।

वर्ण व्यवस्था को आगे धर्म से या सार्वभौमिक नियम की अवधारणा से प्रतिबद्ध किया गया है और वर्ण धर्म की स्थापना सामाजिक नियम रूप में इसलिये की गई जिससे कि समाज को व्यवस्थित ढंग से चलाया जा सके। लेकिन उत्तर वैदिक समाज में वर्ण धर्म का पूर्णतः विकास नहीं हो पाया था।

इस समय में समाज का विभाजन व्यवसाय के आधार पर था और समाज में अभी काफी लचीलापन था जिसमें किसी का व्यवसाय जन्म पर आधारित नहीं होता था।

वैदिक काल के बाद के काल में भी वर्ण धर्म प्रत्येक समूह के अनुष्ठानिक महत्व मात्र की ओर संकेत करता था। वर्ण व्यवस्था में गैर क्षत्रिय लोग भी क्षत्रिय हो सकते थे और शासक भी (उदाहरण के लिये नंद और मौर्य) न ही ब्राह्मणों को राजनैतिक सर्वोच्चता स्थापित करने से वंचित किया गया (जैसे कि शुंगराजा) (आप इसके विषय में खण्ड 5 में पढ़ेंगे)।

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के सिद्धांत को व्यावहारिक स्तर पर वैदिक काल के बाद भी कठोरता के साथ कभी भी लागू नहीं किया जा सका।

ऐसा समझा जाता है कि उत्तर वैदिक काल में भौगोलिक केन्द्र परिवर्तन के साथ वैदिक लोगों का सामना बहुत से गैर वैदिक कबीलों के साथ हुआ इनके साथ लम्बे आदान-प्रदान के बाद एक मिला-जुला समाज अस्तित्व में आया। कम से कम अथर्ववेद में कई गैर वैदिक धार्मिक परम्पराओं का चित्रण है जिसे पुरोहितों द्वारा स्वीकार किया गया था। यहाँ पर विवाह के कठोर नियमों को लागू करने का उद्देश्य सगोत्र विवाह के द्वारा कबीले की पवित्रता को बनाये रखना था। क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों का महत्व समाज में बढ़ जाने के कारण उनके लिये यह अनिवार्य हो गया कि अन्य लोगों की तुलना में वे स्पष्टतः अपनी सर्वोच्चता कायम रखें। उत्तर वैदिक काल में फिर भी वर्णों की अवधारणा अपनी प्रकृति में बनावटी थी। उदाहरणतः अस्पृश्यता की अवधारणा अनुपस्थित थी।

गोत्र

इस समय में गोत्र (साहित्यिक अर्थ गौशाला) संस्था का भी उदय हुआ। कबीलाई सगोत्र विवाह (कबीले के अन्दर विवाह) के विरुद्ध लोग असगोत्रीय विवाह (कबीले के बाहर

विवाह) करते थे। गोत्र ने एक समान पूर्वज के वंशक्रम को महत्व दिया और इसी कारण एक ही गोत्र के लड़के लड़कियों का आपस में विवाह नहीं होता था।

परिवार

इस काल में पितृसत्तात्मक परिवार अच्छी प्रकार से स्थापित था तथा गृहपति को एक विशेष स्थान प्राप्त था। घरेलू अर्थव्यवस्था के विशिष्टता प्राप्त कर लेने से गृहपति की स्थिति महत्वपूर्ण हो गयी। भूमि पर स्वामित्व का अधिकार परम्परागत प्रयोग के आधार पर था तथा भूमि के सामुदायिक स्वामित्व को भी सुरक्षित रखा गया। गृहपति धनी थे और अनुष्ठान में उनका मुख्य कार्य यज्ञमान (जो बलि करने की आज्ञा देता हो) का था। उन्होंने धन उपहारों के द्वारा प्राप्त नहीं किया था। परन्तु उन्होंने इसको अपने विशेष प्रयासों से उत्पादित किया। यज्ञों का सम्पन्न कराना उनका कार्य था जिससे कि उनके विशेष दर्जा मिलता और उनके धन में से कुछ भाग ब्राह्मणों को भी जाता था। कुछ महिलाओं को दार्शनिक का दर्जा प्राप्त हुआ था तथा रानियाँ राजतिलक के अनुष्ठानों के अवसर पर पुरुषों के साथ उपस्थित रहती, फिर भी महिलाओं को पुरुषों का सहायक ही समझा जाता और नीति निर्धारण में उनका कोई योगदान नहीं होता था।

जीवन के तीन आधार

तीन आश्रम, अर्थात् जीवन को तीन भागों में विभाजित किया गया। यह निम्न प्रकार थे।

ब्रह्मचर्य (विद्यार्थी जीवन) : गृहस्थाश्रम (घरेलू जीवन), वान प्रस्थाश्रम (घरेलू जीवन का परित्याग कर के वन में निवास करना), संभवतः चतुर्थ, सन्यासी (अनिवार्य रूप से संसारिक जीवन को छोड़ देना) था जिसके विषय में हमें उपनिषदों के लिखने के समय तक कोई जानकारी नहीं मिलती। उत्तर वैदिक काल में सन्यासी या तपस्वी व्यक्तिगत स्तर पर होते थे परन्तु इन्होंने वैदिक काल के बाद की सामाजिक व्यवस्था का सक्रिय या निष्क्रिय तरीके से विरोध किया।

बोध प्रश्न 2

- 1 निम्नलिखित में से सही कथन पर (✓) का निशान लगायें। उत्तर वैदिक काल में :
 - i) पशुपालन जीवनयापन का मुख्य साधन कहा जा सकता है ()
 - ii) मिश्रित कृषि व्यवस्था जिसमें खेती तथा पशुपालन सम्मिलित थे, जीवन यापन का मुख्य साधन थी (✓)
 - iii) केवल श्रम प्रधान खेती की जाती थी ()
 - iv) उद्योग मुख्य कार्य था। ()
- 2 उत्तर वैदिक काल में :
 - i) संगठित समाज के लिये केवल कबीला ही आधार था ()
 - ii) भूमि अधिक महत्वपूर्ण हो गई तथा भूमि पर कबीलाई स्वामित्व धीरे-धीरे पारिवारिक स्वामित्व में परिवर्तित हो गया ()
 - iii) भूमि का स्वामित्व कबीले से बाहर था ()
 - iv) इनमें से कोई भी नहीं। ()
- 3 उत्तर वैदिक काल में:
 - i) समिति की अपेक्षा सभा अधिक महत्वपूर्ण हो गई ()
 - ii) समिति सभा से अधिक महत्वपूर्ण हो गई ()
 - iii) सभा तथा समिति दोनों के महत्व में गिरावट आई ()
 - iv) उपरोक्त से कोई भी नहीं। ()
- 4 उत्तर वैदिक कालीन लोगों ने:
 - i) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने शुरू किये ()
 - ii) अपने गोत्र से बाहर विवाह किये ()
 - iii) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने या न करने की परवाह नहीं की ()
 - iv) उपरोक्त में से कोई नहीं। ()

.....

.....

.....

.....

.....

13.6 धर्म

इस समय के ग्रंथ दो विभिन्न धार्मिक परम्पराओं की ओर इशारा करते हैं :

- वैदिक जिसका वर्णन साम और यजुर्वेद संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में हुआ है, और
- गैर वैदिक या शायद लोक परम्परा जिसको विस्तृत रूप से अथर्ववेद में संकलित किया गया।

वास्तव में, अथर्ववेद में वर्णित धार्मिक परम्परा से साफ पता लगता है कि यह विभिन्न संस्कृतियों और वैदिक धार्मिक व्यवस्था में प्रचलित मान्यताओं का मिला जुला रूप है। यजुर्वेद संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में इस काल के बलिदान विषयक धर्म का संकलन है। इस युग में बलियों का बड़ा महत्व हो गया था तथा उन्होंने सार्वजनिक व व्यक्तिगत विशेषता प्राप्त भी कर ली। सार्वजनिक बलि अर्थात् राजसूय, वाजपेय व अश्वमेध यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर होने लगा जिसमें पूरा समुदाय भाग लेता है। इन आहुति (बलि) यज्ञों के कुछ अनुष्ठानों में फलादत्त पूजा के तत्व भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, अश्वमेध यज्ञ में इस बात की आवश्यकता होती थी कि पटरानी बलि के घोड़े के पास रहती थी यहाँ पर रानी पृथ्वी का प्रतीक मानी जाती थी और इस अनुष्ठान के विषय में ऐसा सोचा जाता था कि इससे राजा की सम्पन्नता बढ़ती थी। राजसूय एवं वाजपेय यज्ञों के समय अनेक कृषि अनुष्ठान किये जाते। पृथ्वी के नियमित रूप से तरुण व उर्वरक होने जैसे विषयों के लिये भी यज्ञों का आयोजन किया जाता था।

13.6.1 पुरोहितवाद

उत्तर वैदिक ग्रंथ अनुष्ठानों के सुसम्पादन को स्पष्ट करते हैं तथा जो जटिल थे उनको सम्पन्न करने के लिये ऐसे व्यवसायिक लोगों की आवश्यकता थी जो उनके आयोजनों की कला में निपुण हों। बलि यज्ञों को सम्पन्न करने के लिए विधि या नियमों को रचा गया वैदिक बलि यज्ञों का यह तात्पर्य नहीं था कि खाद्य सामग्री को अग्नि की भेंट चढ़ाकर साधारण तरीके से उनको सम्पन्न किया जा सके। भेंट चढ़ाने एवं बलि आदि देने के तरीकों में संरक्षक या यजमान की आवश्यकता के अनुसार अन्तर किया जाता। अब बलि यज्ञों को अदृश्य प्रतीक से सम्पन्न किया जाता और प्रत्येक अनुष्ठान को किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा। पुरोहितवाद की एक नयी पद्धति का उदय हुआ क्योंकि इन यज्ञों के सम्पादन में बहुत सी जटिलतायें आ गई थी फिर चाहे वह सार्वजनिक यज्ञ हो या व्यक्तिगत इस प्रकार यज्ञोपासना करने के लिये पुजारियों का एक वर्ग विशेषज्ञ हो गया। यहाँ तक कि एक ही यज्ञ के दौरान उसके विभिन्न चरण पूरे करने के लिये अलग-अलग पुरोहितों की आवश्यकता होती थी।

13.6.2 उत्तर वैदिक काल के देवता

प्रारम्भिक वैदिक काल के दो महत्वपूर्ण देवता इन्द्र तथा अग्नि का महत्व कम हो गया। प्रजापति या स्रष्टा अधिक महत्वपूर्ण हो गया। यह इस तथ्य का भी प्रतीक है कि कृषक

समाज में स्रष्टा की काल्पनिक रचनाओं का कितना महत्व है। रुद्र जो ऋग्वेद में एक छोटा देवता था, अब एक महत्वपूर्ण देवता हो गया तथा विष्णु को भी सृष्टि का रचयिता तथा रक्षक समझा जाने लगा। पूषण जो पहले पालतू पशुओं की रक्षा करता था अब शूद्रों का देवता हो गया। देवताओं की स्थिति में होने वाले परिवर्तन इस तथ्य के प्रतीक हैं कि घुमकड़ कबीलों के स्थायी रूप से बसने पर उनके चरित्र में भी किस प्रकार परिवर्तन हुआ। प्रारम्भिक वैदिक देवता जो प्राकृतिक विशेषताओं के प्रतीक थे इनके गुणों को धीरे-धीरे त्याग दिया गया और प्राकृतिक तत्वों को देवता के रूप में देखना जटिल हो गया। उत्तर वैदिक काल के श्लोकों में वर्णित होने वाले विशेष देवता में प्राकृतिक तत्व को ढूँढ पाना कोई सरल कार्य न था।

13.6.3 लोक परम्परा

अथर्वेद लोक परम्पराओं से सम्बन्धित सूचनाओं का विशाल भण्डार है इनका सार तत्व वैदिक बलि विषयक धर्म से अधिक उग्र है और यह मायात्री धर्म से सम्बन्धित है इस वेद की विषय वस्तु मानव जीवन के प्रत्येक हिस्से का वर्णन करती है। इसके सुक्त निम्न बातों का वर्णन करते हैं :

- रोग का प्रतिकार
- स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना
- घर तथा सन्तान की सम्पन्नता के लिये मन्त्र
- पालतू पशु और खेत
- सौहार्दता बनाने के लिये मन्त्र
- प्रेम और विवाह या बातचीत तक सीमित विरोध तथा ईर्ष्या आदि से सम्बन्धित मन्त्र।

इस प्रकार इसमें उस समय में व्याप्त अन्धविश्वास तथा विश्वासों का संकलन है। अथर्व शब्द एक मायावी सूत्र की ओर इशारा करता है और अथर्व पुरोहित इस धर्म की औपचारिकता पूरी करते थे। वैदिक देवताओं की स्तुति की जाती थी लेकिन जिस कारण से उनकी स्तुति की जाती थी वे कारण बहुत छोटे तथा व्यक्तिगत होते थे। बहुत सारे देवता राक्षस, तथा पिशाच (कुछ अपकारी और परोपकारी) सब की स्तुति की जाती थी इसका उद्देश्य सौभाग्य प्राप्त करने एवं भिन्नों का लाभ अथवा दुश्मनों का सर्वनाश करने के लिये होता था। बहुत से मन्त्र और स्तुतियां परिवार से सम्बन्धित थी और आम आदमी के दैनिक जीवन के नजदीक थी। उदाहरण के लिये, इन्द्र को, घर को लूटने वालों, नागों तथा असुरों को मारने वाला कहा गया है। ऐसा विश्वास किया गया कि अस्विन कृषि रक्षा करते तथा चूहों को मारते। सावित्री को उस जगह पर रखा जाता था जहाँ पर नया घर बन सके। पूषण की पूजा सौहार्द प्राप्त करने तथा बच्चों के सुरक्षित जन्म के लिये जाती थी जबकि सूर्य भूत-प्रेत को भंगता था।

इस युग के अंत में ब्राह्मणों के विरुद्ध एक कड़ी प्रतिक्रिया हुई। यज्ञों में जटिलता आने का परिणाम यह हुआ कि दर्शन में एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ जिसका मूर्तरूप उपनिषदों में दिखायी दिया इन्होंने अनुष्ठानिक कार्यक्रमों व बलि के रूप में किये जाने वाले निरर्थक खर्च का विरोध किया तथा आत्मिक ज्ञान पर बल दिया। इस प्रकार धर्म के भौतिक आधार का बहिष्कार कर दिया गया और धर्म को दर्शन विषय तक उठाया गया। उपनिषदों ने आत्म की परिवर्तन विहीनता एवं अमरत्व पर जोर दिया। इस प्रकार से वे राजनीतिक स्थिरता तथा एकता पर जोर देते दिखायी पड़ते हैं क्योंकि यह वह समय है जबकि जनपदों एवं महाजनपदों अर्थात् गणतन्त्र व राजशाही का उदय हो रहा था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल के बीच में धार्मिक मतों तथा कार्यक्रमों में एक महान् परिवर्तन हो चुका था। यह परिवर्तन अंशतः पशुपालन से कृषि की ओर बदलाव से संबन्धित था। ये धार्मिक परिस्थितियां उस काल की उन बदलती हुई सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का प्रतीक थे जो पूर्व वैदिक से उत्तर वैदिक काल में आये।

बोध प्रश्न 3

- 1 उत्तर वैदिक काल में : (निम्नलिखित में सही कथन पर (✓) का निशान लगाओ)।
 - i) सार्वजनिक एवं घरेलू बलि यज्ञ बड़े महत्वपूर्ण हो गये ()
 - ii) बलि यज्ञ की कोई भूमिका नहीं थी ()
 - iii) बलि यज्ञों का महत्व हो गया क्योंकि पुरोहित एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने को आ गये ()
 - iv) दोनों (i) और (iii) सही हैं ()

- 2 यह कहा जा सकता है कि :
 - i) महत्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता एक समान थे ()
 - ii) महत्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता अलग अलग थे ()
 - iii) घुमकड़ से स्थायी तौर पर बसने के साथ सामाजिक चरित्र में आये परिवर्तन का उत्तर वैदिक देवता मूर्तरूप थे ()
 - iv) दोनों (ii) और (iii) सही हैं ()

- 3 उत्तर वैदिक काल के देवताओं की स्थिति में परिवर्तन क्या इंगित करते हैं (50 शब्दों में उत्तर दें)।

.....

.....

.....

.....

.....

13.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपने जाना :

- कि उत्तर वैदिक समाज पशुपालन शैली से एक स्थायी कृषि समाज में परिवर्तित हो रहा था परन्तु लोहा कृषि में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सका था। लोहे के औजारों ने आगे चलकर ही इस क्षेत्र में भूमिका अदा की।
- कि इस प्रक्रिया में ठीक तरीके से परिभाषित राजनैतिक संस्था की स्थापना हुई, आचार संहिताओं को लिखा गया और एक विशेष सामाजिक विभाजन का उदय हुआ।
- कि वैदिक धर्म और इस काल की लोक परम्परा में, अपनी पहिचान बनाये रखते हुए भी, मेल-मिलाप बढ़ रहा था।
- कि इस परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रारम्भिक वैदिक काल के रुद्र जैसे छोटे देवता अधिक महत्वपूर्ण हो गये जब कि पहले के महत्वपूर्ण इन्द्र जैसे देवताओं का महत्व कम हो गया, और
- इस युग के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये जिससे कि उस समय के समाज का पूर्ण चित्र सामने आ सके।

13.8 शब्दावली

बोहरी फसल : एक ही खेत में एक समय दो या दो से अधिक फसल पैदा करना।

सगोत्र विवाह : एक ही कबीले, जाति व गोत्र आदि के अन्दर विवाह।

असगोत्र विवाह : जाति, गोत्र आदि से बाहर विवाह।

फलावत उत्सर्ण (पूजा) : अनुष्ठान/धार्मिक कार्य जिसमें मानव जन्म या जन्म की प्रक्रिया पर जोर दिया जाये।

भेंट अर्थव्यवस्था : ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें इसको तथा इसकी संस्थाओं को बनाये रखने में उपहार अथवा भेंट विशेष योगदान करते हैं।

श्रम प्रधान : वह कार्य जिसमें तकनीकी के स्थान पर मानव श्रम अधिक योगदान करे।

स्थायी रूप से बसना : ठहराव या एक ही स्थान पर रहना।

विभाजन : तहों में विभाजन, सामाजिक विभाजन का तात्पर्य है कि समाज में धन, जाति आदि के आधार पर विभाजन होना।

जीवन यापन गतिविधि : आर्थिक रूप से जीवित रहने के लिये कार्य, इसमें मिश्रित खेती आती है।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (iv)

2 (iv)

3 (ii)

4 भाग 13.3 को देखें (आप अपने उत्तर में यह बतायें कि क्या लोहा-युद्ध के लिये महत्वपूर्ण हो गया था या रोजमर्रा उपयोग के लिये और क्यों?)

बोध प्रश्न 2

1 (ii)

2 (ii)

3 (i)

4 (ii)

5 उपभाग 13.5.2 को देखें (आपको अपने उत्तर में परिवार के महत्व, गृहपति के महत्व तथा महिला की परिवार में स्थिति के बारे में बताना चाहिये)।

बोध प्रश्न 3

1 (iv)

2 (iv)

3 उपभाग 13.6.2 को देखें (आप अपने उत्तर में बतायें कि क्या नये देवता एक नये समाज की ओर इशारा करते थे?)।

इस खण्ड के लिये उपयोगी पुस्तकें

शिव शंकर मिश्र—प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास।

ए.एल. वाशम—अदभुत भारत

डी.डी. कोशाबी—प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता

Allchin, Raymond and Bridget, *Rise of Civilization in India and Pakistan*, Delhi, 1983.

48	बौद्ध धर्म, चीन धर्म तथा अन्य धार्मिक विचार	इकाई 17
34	समान और अर्थव्यवस्था	इकाई 16
21	नागरिक कर्तव्य का उदय	इकाई 15
5	जनपद और महाजनपद	इकाई 14

भारत: छठी से चौथी शताब्दी ई. पू. तक

4

४२

खण्ड 4 भारत: छठी से चौथा शताब्दी ई. पू. तक

इस खण्ड में हमें लगभग 600 ई. पू. से 400 ई. पू. तक के काल का अध्ययन करना है। इस काल की भारतीय इतिहास में अति महत्वपूर्ण माना गया है। इस काल के महत्व को ठीक प्रकार से समझना या समझना ही संभव है यदि हम यह समझ लें कि इससे पहली शताब्दियों में होने वाले परिवर्तन इस समय में किस प्रकार से परिपक्व हुए और इस काल ने चौथी ई. पू. के बाद में होने वाले घटनाक्रम को कैसे प्रभावित किया। खण्ड 3 में आप पढ़ चुके हैं कि 2000 ई. पू. के लगभग भारत के विभिन्न क्षेत्रों में छोटी-छोटी बस्तियाँ जैसे कृषि पर आधारित थीं और इनमें पशुपालन का प्रारम्भ हुआ था। इन सभ्यताओं में पहले लोहे का प्रयोग शुरू हुआ तथा बाद की शताब्दियों में लगभग 1000 ई. पू. के आस-पास लोहे के उपयोग के साथ-साथ लोहे एवं अन्य वस्तुओं का भी प्रयोग होने लगा था। हमें यह रचना चाहिए कि इन सभ्यताओं का उदय भारत के विभिन्न भागों में एक साथ नहीं हुआ था। उदाहरण के लिये, 1860 ई. पू. में दक्षिणी राजस्थान में लोह पाषाण काल में धार नाम का समुदाय था। अखिल में था जबकि बंगाल में लोहपाषाण कालीन गाँवों का उदय बाद की शताब्दियों में हुआ। दूसरे, लोहे का उपयोग जो औजार बनाने के लिये सबसे सामान्य धातु है, विभिन्न भागों में 1000 ई. पू. के आस-पास प्रारम्भ हो गया था परन्तु समान में इसका कार्य एक काल से दूसरे काल तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न-भिन्न था। ऐसा मान्य होता है कि प्रारम्भ में गाँवों की बाँटों में लोहे का प्रयोग दक्षिण के बसाने के लिये किया जाता था और बाद में इसका प्रयोग सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी फैल गया। मानव समाज का कृषि उत्पादन पर आधारित स्थायी समाज में परिवर्तन (जिसमें कृषि भी मुख्य व्यवसाय था) की स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रारम्भिक उपलब्ध ग्रंथों में हुई है। इन ग्रंथों की संयुक्त रूप से वैदिक साहित्य के रूप में जाना जाता है, हम देख चुके हैं (खण्ड 3, पृ. 13) कि उत्तर वैदिक कालीन समाज प्रारम्भिक वैदिक काल के समाज से मूल रूप से अलग था। इस कृषि परिवर्तन के सन्दर्भ में एक नये प्रकार के समाज का उद्भव माना जायेगा और इस नए समाज के प्रारम्भ का समय खड़ी सदी ई. पू. एवं चौथी सदी ई. पू. के काल के बीच में ही माना जा सकता है। दक्षिण इतिहासकार भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल का प्रारम्भ इसी समय में मानते हैं। इस नये, प्रारम्भिक ऐतिहासिक समाज की विशेषतायें इस प्रकार हैं (इनके विषय में आप विस्तार से इस खण्ड की अलग-अलग इकाइयों में पढ़ें):

1) जिस साहित्य में इस काल के सन्दर्भ हैं, उनमें तथा महाजनपदों का वर्णन हुआ है। इनमें से कुछ जनपदों का वर्णन उत्तर वैदिक काल के साक्ष्यों में हुआ है और महाजनपदों की सूची बाद के काल में दक्षिण में महत्वपूर्ण है कि भारतीय इतिहास में प्रथम बार विभिन्न प्रकार की मानव बस्तियों के क्षेत्र विशेष प्रकार के भौगोलिक नामों को प्राप्त करते दिखायी दिये और यह भी कि एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों से स्पष्ट रूप से अलग था। यह सम्भवतः अभिप्राय था क्योंकि जनपदों तथा महाजनपदों पर एक राजा या शासकों के समूह के द्वारा शासन किया जाता था और उनके नियन्त्रण का क्षेत्र, तथा विन समुदायों पर उनका शासन था, वे भिन्न-भिन्न थे। महाजनपदों के शक्तिशाली शासकों के बीच जनपदों को मिलाने के लिये राजनैतिक संघर्ष होता था बाद के समय में माघ साम्राज्य की स्थापना के लिये ऐसा ही हुआ (खण्ड 5 में देखें)। इसका यह भी तात्पर्य था कि गणसभाओं की शक्ति का धीरे-धीरे क्षय होने लगा (उदाहरण के लिये, उत्तरी बिहार का लिच्छवि गण) और एक राजा या एक शासक का शासन एक सामान्य बात हो गई।

2) राजा या क्षत्रियों के समूहों के मुखिया जो स्वयं को शासक (राजा) कहते थे, ऐसे जनपदों या महाजनपदों पर शासन करते थे विनमें विभिन्न प्रकार की बस्तियाँ थीं जैसे कि गाँव, कस्बे और नगर। एक लम्बे अन्तराल के बाद नगरीय केंद्रों के दिखायी पड़ने का तात्पर्य ऐसे विभिन्न सामाजिक समूहों का उदित होना है जो विभिन्न व्यवसायों में संलग्न थे। क्योंकि नगरों के अखिल में होने में यह तथ्य निहित है कि नगरों में आबादी के विभिन्न हिस्से विद्यमान थे जो न केवल प्राथमिक रूप से खाद्य उत्पादन के कार्यों में लगे थे बल्कि वे अन्य गतिविधियों में भी संलग्न थे। इसका यह भी तात्पर्य है कि लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवसायों को करते थे और एक बड़े स्थान में रहते थे जिससे स्पष्ट है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में अन्तर था।

प्रकाशित करने की अनुमति थी।

आचार: हम एकलक्ष्य शिक्षाभाष्य (म. प्र.) के आगरी हैं कि उन्होंने हमें अपने कुछ विन

विशेषकर बौद्ध तथा जैन धर्मों का सेवा से विस्तार हुआ।

में समाज के विभिन्न वर्गों का समर्थन मिला जिसके कारण जाने वाली शक्तियाँ में
 धार्मिक अनुष्ठानों एवं समाज में शक्तियों की सर्वोच्चता को चुनौती दी। उनको अपने इस कार्य
 लोगों के द्वारा व्यक्त किया गया जो शक्तियों से सम्बन्धित नहीं थे तथा जिन्होंने आत्मसम्पूर्ण
 जीवन से जुड़ी इन समस्याओं का हल खोजने की कोशिश की। प्रारम्भ में इन विचारों को उन
 ब्रह्म एवं महावीर के उपदेशों और इस काल के विभिन्न प्रकार के अन्य विचारों में ब्रह्म जिन्होंने
 विषय में बहुत सी समस्याओं को उत्पन्न किया। इन समस्याओं की अभिव्यक्ति उपनिषदों,
 हुआ था, समाज में विभिन्न सामाजिक समूहों की स्थिति के बारे में एवं सामान्यतः जीवन के
 इस जटिल सामाजिक व्यवस्था में जिसका उत्तम उत्तर धार्मिक काल में गंगा घाटी के क्षेत्र में
 समाजों का हल खोजने में असमर्थ थे जब कि वे एक ही समाज के सदस्य थे। इस प्रकार
 स्वामी एवं स्वतन्त्र शिक्षकों के साथ रहते हुए भी एक जन-समाज के माध्यम से अपनी
 का एक समूह नगर में शक्तियों तथा कारिगारों के साथ रहते हुए, तथा गाँवों में बास अपने
 नये धर्म उठे, जीवन में कुछ अर्थ ढूँढे और नई आकाशवाणी रखें। उदाहरण के लिये व्यापारियों

6) नये समाज की स्थापना के समय सामाजिक धर्म कि लोगों के मन में जीवन के विषय में
 व्यवस्था के आधार पर समाज के विभाजन की नहीं नकार पाये।
 विचारक, जिन्होंने शक्तियों के प्रयत्न एवं शक्तियों के अनुष्ठानों का विशेष किया इस वर्ग
 शक्तियों तथा धार्मिक व्यवस्थाओं के आधार पर स्वीकार करें। यहाँ तक कि ब्रह्म जैसे प्रजातिशक्ति
 समर्थ हुआ कि विभिन्न सामाजिक समूह, वर्ग विभाजन की प्रतिस्थापना को विभिन्न प्रथाओं
 लेकर, उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्यों के विषयों में भी परिमाणित किया गया। इसी से यह
 सम्बन्धित बनाते हुए सभी वर्गों के लिये एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध की विशेषाधिकारों से
 अन्तर्गत परिमाणित नहीं किया गया था, लेकिन सामान्यतः वर्ग व्यवस्था को जन्म से
 प्रथा सभी सामाजिक समूहों की स्थिति को, जैसे कि दासों की स्थिति को, इस व्यवस्था के
 काल में हुआ। यह एक ऐसा वैज्ञानिक दार्वा या जिसमें समाज को संशोधित किया गया था।
 परिमाणित किया गया। अनुष्ठानों व्यवस्था या समाज का बार वर्गों में विभाजन उत्तर धार्मिक
 सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न हुई जिसके अन्तर्गत विभिन्न सामाजिक समूहों के सम्बन्धों को
 से अपने तथा दूसरों के लिये आर्य उत्पादन में संलग्न थे। इसी प्रक्रिया के कारण एक ऐसी

5) परन्तु फिर भी यह सत्य है कि इस समाज की बहुसंख्यक आबादी ग्रामीणों में रहती थी और
 विधिवत व्यापार प्रणाली का भी उदय हुआ।
 व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा। इसी काल में विभिन्न नगरों एवं कस्बों से सम्बन्धित
 प्रथम बार इस काल में धातु के सिक्कों का प्रचलन शुरू हुआ जिनका विनिमय के लिये
 सभी व्यापारियों (सर्वों) का महत्त्व समाज में बड़े सू-स्वामियों की मूर्ति हो गया। भारत में
 प्रधान की प्रक्रिया के कारण व्यवसायिक विचारधाराओं और व्यापारियों का उदय हुआ। प्रचुर
 प्रक्रिया हो गई। इसलिये अधिवासों के बीच एवं विभिन्न क्षेत्रों के बीच वस्तुओं के आदान-
 4) वस्तुओं के विनिमय की प्रकृति में भी इस काल में परिवर्तन हुआ और यह एक जटिल

दूसरे के उत्पन्न के एक माग को संशोधित करने का उद्देश्य हुआ।
 नहीं लगे थे, इसलिये इनकी उत्पन्न का एक माग प्राप्त होता था। इसी से कर प्रणाली या
 3) शासक एवं कुछ अन्य सामाजिक समूह (उदाहरणार्थ, शक्तियों) आर्य उत्पादन के कार्यों में

आपने देखा होगा कि आपके आस-पास के लोग एक ही भाषा बोलते हैं। यही नहीं, पूरे क्षेत्र के ही प्रकार के स्त्रोत्र माना है तथा उनकी शाही-भाषा की टीथिया भी एक जैसी होती है। उनके ज्ञान-पान की आदतें भी लगभग समान ही होती हैं। सांस्कृतिक एकताएँ खूब पाते हैं और केवल अस्तित्व में आए ? इस प्रक्रिया का आरंभ जनपदों के उदय से ही हो गया था। जनपदों के उदय के साथ ही भारतीय मूलों का जन्म भी माना जा सकता है। आपकी ध्यान दें कि वैदिक समाज पर यहाँ करने हुए हमने विशिष्ट मौखिक क्षेत्रों पर बहस नहीं की थी। इसका कारण यह था कि लोग किसी विशेष क्षेत्र से जुड़े हुए नहीं थे। किसानों की भक्तियाँ कायम होने के साथ भक्तियों के निवासी आस-पास के क्षेत्र से मातृनात्मक रूप में जुड़े गए। उन्होंने इन क्षेत्रों की नदियाँ, पहाड़ियाँ एवं पशुओं तथा फलों को देखा। यही नहीं, बल्कि समय उन्होंने किसी विशेष मौखिक क्षेत्र को अपना मानना शुरू किया। यह मौखिक क्षेत्र अन्य समुदायों के क्षेत्रों (जनपदों) से पृथक थे जो कि इन क्षेत्रों से भिन्नता अपना सकते हैं। आचारिक रूप से संभल तथा भाइय आन से अलग होने की विशेषता को माय रख सकते हैं।

14.1 प्रस्तावना

- विभिन्न मूल जनपदों तथा महाजनपदों के विषय में जान सकते हैं।
- शही शाही देखा पूर्व के दौरान समाज में नये समूहों के उदय के संघर्ष में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, तथा
- शही शाही देखा पूर्व के समाज, तथा उससे पूर्व के समाज के क्षेत्र को समझ सकते हैं, इस प्रकार की पढ़ने के बाद आए:

14.0 उद्देश्य

14.10	बांध प्रश्नों के उत्तर
14.9	शाहीवर्षी
14.8	शाही
14.7	शाही महाजनपद
14.6.3	कल और शाही
14.6.2	गांध
14.6.1	बांध की कथा
14.6	भक्तियों के प्रकार-II : महाजनपद
14.5.3	शाही और शाही
14.5.2	आपरी
14.5.1	गंध
14.5	नए समूहों का उदय
14.4	भक्तियों के प्रकार-I : जनपद
14.3	हमारी जानकारी के क्षेत्र
14.2	वैदिक युग तथा शही शाही देखा पूर्व
14.1	प्रस्तावना
14.0	उद्देश्य

इकाई की रूपरेखा

इकाई 14 जनपद और महाजनपद

जानकारी प्राप्त हो जाती है।
 से हमें खूबी शताब्दी है. पू. तथा चौथी शताब्दी है. पू. के बीच के भारतीय समाज की सम्पूर्ण
 के दौरान पाए गए हैं। इस प्रकार पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोतों की मिली-जुली जानकारी
 इस्तेमाल बड़े पैमाने पर करना आरंभ किया। सम्पन्न खतिहर बस्तियाँ और कस्बे भी खूब
 विशेष अवसरों पर ही इस्तेमाल करते थे। खूबी शताब्दी ईसा पूर्व में लोगों ने लोहे का
 वा ब्रुका है। पूर्वकालीन बस्तियों में लोग या तो लोहे के इस्तेमाल से अनभिज्ञ थे अथवा इसे
 मरमाह कह जाते बाले उत्कृष्ट बर्तनों का उपयोग करते थे, जिसका उल्लेख खंड 3 में किया
 पुरातात्विक उपलब्धियों से पता चलता है कि इस युग के लोग उत्तरी काले पालिश किए
 बस्तुओं, घरे, इमारतों, कस्बों आदि के अवशेष प्राप्त किए हैं। उदाहरण के लिए इस युग की
 खूबों की है जिनका इन ग्रंथों में उल्लेख है। उन्होंने यहां के लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली
 उन्होंने अधिष्ठान, हस्तिनापुर, कोशांबी, उज्जैन, श्रावस्ती, वैशाली तथा अन्य कई स्थलों की
 यह हुआ कि इस युग के प्रति हमारी जानकारी में पुरातत्त्वशास्त्री भी काफी योगदान करते हैं।
 इन ग्रंथों में विभिन्न क्षेत्रों तथा भौगोलिक विभाजनों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। इसका अर्थ

जग है। वे हमें उस समय के समाज की स्पष्ट जानकारी देते हैं।
 में जानकारी देते हैं। ब्रह्म के पूर्व जन्मों के विषय में बताने वाली जातक कथाएं सुन पिटक का
 पिटक हमें इस युग के उपदेशक राजकुमारों, धनी एवं निर्धनों तथा गांवों एवं कस्बों के विषय
 के उपदेशों का स्पष्ट सुल पिटक तथा जलौकिक समस्याओं का उल्लेख करने वाली अभियमम
 सौर शौरी द्वारा रचित साहित्य है। संघ के नियमों को रेखांकित करने वाली विनय पिटक, ब्रह्म
 के विषय में विविध जानकारी प्राप्त होती है। इस युग के विषय में जानकारी का एक अन्य
 हमें कई जगहों और महाजनपदों का उल्लेख है जिससे हमें खतिहर समुदायों की बस्तियों
 वैदिक साहित्य का अंग माना जाता है। यह ग्रंथ 800 ईसा पूर्व के बाद से लिखे जाते रहे हैं।
 का उल्लेख है। इसी प्रकार दार्शनिक समस्याओं को रेखांकित करने वाले उपनिषदों को भी
 होती है। ब्राह्मण सौर एक वैदिक ग्रंथ का उल्लेख करते हैं जिसमें वैदिक अनुष्ठान के तरीकों
 हमें जगहों और महाजनपदों के विषय में जानकारी कुछ वैदिक तथा बौद्ध साहित्य से प्राप्त

14.3 हमारी जानकारी के सौर

प्रकाश में लाएगा।
 समाज में (उस युग के बाद जिसका हमने खंड 3 में अध्ययन किया) हुए निरंतर परिवर्तनों को
 पूर्व से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व) का हम अध्ययन करेंगे वह कई अर्थों में हमारे समक्ष भारतीय
 व्यापारी इतिहास के पन्नों पर फैल गए। इस प्रकार, जिस युग (जामाम खूबी शताब्दी ईसा
 बौद्ध मत, जैन मत और कई अन्य अखनारनी सम्प्रदाय इसी समय उभरे। भिक्षु, राजाई तथा
 राजाई इतिहास में पर्याप्त करते हैं। इसी समय ही गहन दार्शनिक विचारों का उदय हुआ।
 किया था, यद्यपि वे सामान्य बस्तियों में निवास करते थे। यही वह समय है, जबकि राजे-
 बर्षों की थी तो हमने गांव कस्बे और शहर जैसी इकाइयों में लोगों के रहने का उल्लेख नहीं
 हुआ करते थे। आपको ध्यान होगा कि जब हमने आरंभिक वैदिक तथा उत्तर वैदिक-काल की
 पूर्व रूप में प्रकट हुए। जिन क्षेत्रों में लोग जनपदों में रहे थे वहां गांव, कस्बे और शहर
 हम कह सकते हैं कि जिन क्षेत्रों में यह जनपद अस्तित्व में आए, वहां काफी बड़े परिवर्तन
 उल्लेख करना होगा है। चूंकि जनपद खूबी शताब्दी ईसा पूर्व तक अस्तित्व में आ चुके थे, अतः
 जनपदों के विषय में बर्षा करते समय हमें जनपदों के उदय से संबंधित अनेक बस्तुओं का

14.2 वैदिक युग तथा खूबी शताब्दी ईसा पूर्व

14.4 बस्तियों के प्रकार-I : जनपद

समाकालीन ग्रंथों से मुख्यविश्वरत्न भौगोलिक क्षेत्रों में समाज तथा अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों की ओर संकेत मिलता है। इस समय के साहित्य में बस्तियों की विभिन्न प्रकारों का उल्लेख मिलता है। इनमें महाजनपद, जनपद, नगर, निगम, ग्राम आदि मुख्य हैं। आर्य, हम पहले जनपदों के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

जनपद, जिसका शाब्दिक अर्थ है "जहाँ लोग अपने पैर रखते हैं", इस युग के ग्रंथों में अक्सर उल्लेखित है। आपकी जन का अर्थ याद होगा। वैदिक समाज में इसका अर्थ होता था "एक कुल के सदस्य"। आरंभिक वैदिक समाज में जन के सदस्य पशु-पालक समूह होते थे जोकि चारगाहों की तलाश में विचरण किया करते थे। लेकिन उत्तरकालीन वैदिकचरण में जन सदस्यों ने खेती करना आरंभ किया और स्थायी रूप से बसने लगे। यह खेतिहर बस्तियाँ जनपद कहलाती थीं। आरंभिक चरणों में इन बस्तियों का नाम क्षेत्रों में बसे प्रमुखजन क्षेत्रिय क्षेत्रों के नाम पर रखा जाता था। उदाहरण के लिए हिजरी एवं ऊपरी उत्तर प्रदेश कुछ एवं पंचाल जनपद कह जाते थे, जो प्रमुखजन क्षेत्रिय क्षेत्रों के नाम थे। उनके एक स्थान पर बसे जाने पर खेती का विस्तार, विशेषकर जोह की कुल्हाड़ियों एवं हल के फलों के इस्तेमाल द्वारा, आरंभ हो जाता था। इन जोह के औजारों से पूर्व-शागाहियों के किसानों के साम एवं पत्थर की कुल्हाड़ियों की अपेक्षा अब अधिक सुविधा से बगलों की सफाई की जा सकती थी तथा खेती अधिक गहरी हो सकती थी। मध्य गंगीय घाटी, जोकि इलाहाबाद के पूर्व की ओर का क्षेत्र है, यान की फसल के लिए उपयुक्त थी। यान की प्रति एकड़ की उपज की दर गेहूँ की तुलना में कहीं अधिक है। इसके कारण धीरे-धीरे खेती एवं जनसंख्या में बड़ीतरती अवश्यमापी थी। धारा के मुखियाओं के पास एक-दूसरे से युद्ध के दौरान सुरक्षा तथा लूट-पाट के लिए काफी कुछ था। अब पशु धन के आतिरिक्त खेतिहर उत्पादन माटी भाग में मौजूद था। बलि समारोहों की मध्य रूप देने के उद्देश्य से भी लूट-खसोट की उनकी इच्छाएं तीव्र होने लगी थीं। कृषि विस्तार, युद्ध तथा विधियों की प्रक्रिया में वैदिक जनजातियाँ एक दूसरे के तथा अनाथ जनसंख्या के समर्पक में आईं। इसके कारण विस्तृत क्षेत्रीय इकाइयों का गठन आरंभ हो गया। उदाहरण के लिए पंचाल एवं छोटी-छोटी जनजातियों के विषय का प्रतिनिधित्व करते थे। कुछ जनपद छोटी शाखाएँ हैं। पूर्व तक आते-आते महाजनपदों के रूप में विकसित हो गए। यह जनपदों की आतिरिक्त सामाजिक-राजनीतिक संरचना में होने वाले निरंतर परिवर्तनों का परिणाम था। इनमें से एक मुख्य परिवर्तन खेतिहर समुदायों का फैलाव था। इसकी जानकारी इस तथ्य से प्राप्त होती है कि समाकालीन ग्रंथों में खेतिहर जमीन को महत्वपूर्ण सम्पत्ति बताया गया है। इन ग्रंथों में बावलों की किस्मों पर उतने ही विस्तार से व्याख्या की गई है, जितने विस्तार से वैदिक ग्रंथों में गाय की किस्मों पर की गई है। आर्य अब हम इन परिवर्तनों की ओर ध्यानपूर्वक करें।

14.5 नए समूहों का उदय

एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन समाज में नई श्रेणियों एवं समूहों का उदय था। आर्य एवं विस्तार से देखें।

14.5.1 गहपति

गहपति मुख्यतः पारिवारिक इकाई का मालिक होता था। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण गहपति के पास देवनी जमीन थी कि उसे जमीन की जुलाई के लिए पांच सौ हलों की आवश्यकता होती थी। उत्तर वैदिक समाज में "विष" खेतिहर गतिविधियाँ सम्पन्न करवा था। ग्राम कुल की सामूहिक सम्पत्ति होती थी। खेतिहर समाज के उदय के साथ जमीन सम्पत्ति का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई। क्षत्रिय एवं ब्राह्मणों के शासक कुलों ने इसे अपने नियंत्रण में कर लिया। इन समूहों से गहपति का उदय हुआ जो कि सामूहिक मिलजुलकर के विस्तार और

एक महत्वपूर्ण व्यापारी वर्ग का उदय संभवतः गहपति वर्ग से ही हुआ। उत्पादनों को बेचकर इन्होंने कुछ धन इकट्ठा कर लिया, जिसे व्यापार के लिए इस्तेमाल किया गया। बाह्य शक्ति से व्यापारियों के लिए एक शब्द, जिसका भार-भार प्रयोग किया गया है, यह "सेठी" है जिसका अर्थ "जिसके पास संपत्ति है" है। इससे यह सिद्ध होता है कि धन का लेन-देन करने वाले व्यापारियों को समाज में काफी प्रतिष्ठा एवं शक्ति प्राप्त हो गई थी। शायदों के शर्त में सामान्यतः व्यापारियों एवं श्रेणियों, जोकि व्यापारी वर्ग था, को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। छठी शताब्दी तक व्यापार एवं गणित्य आर्थिक गतिविधियों का एक स्वतंत्र क्षेत्र बन चुका था। व्यापारी शब्दों में रहते थे। इनके उदय को इस काल में कच्छों एवं शहरों के उदय से जोड़ा जा सकता है। यह व्यापारी काफी विस्तृत क्षेत्र में अपना व्यापार फैलाए हुए थे। विभिन्न प्रदेशों में व्यापार फैलाकर इन्होंने यह संभावना तैयार कर दी, कि राजा व्यापारियों द्वारा पूर्व गांधियों को अपने निधरण में करने का प्रयास करें। इस प्रकार छठी शताब्दी तक किसानों एवं व्यापारियों का एक मुक्त वर्ग अस्तित्व में आ गया था। इन्होंने पूर्व स्थिति के विपरीत, स्वयं को कुल के अन्य सदस्यों के साथ अधिकृत खाद्य अथवा धन बाँटने की शक्त से मुक्त कर लिया। इस काल में खेती में प्रयुक्त होने वाले मवेशियों, मूँस तथा बाखरा से उपज का अंश में खेती में प्रयुक्त होने वाले मवेशियों, मूँस तथा

14.5.2 व्यापारी

गहपति को मिलता था।

सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में विकास के साथ-साथ महानगरों के राजनैतिक स्वयं में भी परिवर्तन हुए। पूर्व काल में राजा शब्द का प्रयोग कुल के मुखिया के लिए होता था। उदाहरण के लिए, राम जिनकी किंवदंतियाँ इस युग से जोड़ी जाती हैं, बहुत ही स्पष्टता के साथ कहे जाते हैं जिसका अर्थ है वह व्यक्ति जो रज कुल अथवा धंधा पर शासन करता है। वही प्रकार, मुनिष्ठिर कुल राजा कहे जाते हैं। वे अपने धंधों पर शासन करते थे, किन्तु किसी क्षेत्र पर शासन की संकल्पना अभी तक नहीं उभरी थी। जातियाँ अथवा जातेधारी से कर वसूली सामान्यतः स्थानिक आधार पर सम्पन्न होती थी। राजा एक उच्च पिता-पुत्र्य व्यक्ति समझा जाता था, जिसका कर्तव्य धंधा की सम्पन्नता सुनिश्चित करना था। उसके पास स्वतंत्र कर वसूली की व्यवस्था तथा धंधे के साथ धंधा है। किसानों (कुसक) जो राजा को कर देते थे तथा एक धंधा का उल्लेख भी मिलता है। अब किसान तथा धंधे के बीच की सीमा के संशोधन नहीं होते थे। अब राजा तथा धंधा के बीच भिन्नता स्पष्ट हो चुकी थी। प्रजा में गैर-धंधी समूह भी होते थे। धंधे के मीठों धंधे का अर्थ स्थानीय किसानों पर अलग-अलग निधरण तथा पेशेवा

14.5.3 शासक एवं शासित

राज्यों एवं जनता से निरंतर सगाई होते रहना था। पूर्वकालीन मवेशियों के लिए खपानारी के स्थान पर अब संगठित एवं बोलकर धंधों को हस्त लेना तथा किसानों एवं व्यापारियों से अलग-अलग कर वसूल करना आरंभ हो चुका था। कर वसूली के लिए नियुक्त कर्मचारियों को उल्लेख भार-भार मिलता है। खतिबर उदाहरण से माग वसूली के लिए मारुव नाम से एक कर्मचारी होता था। खतिबर मूँस के संधरण के लिए राजगणिक नाम से एक अन्य कर्मचारी होने का उल्लेख मिलता है। जातकों में राजा के अनाज गोदाम में भंडार के लिए राजकर्मियों द्वारा अनाज लेने का उल्लेख मौजूद है। अधिकतर स्थानों पर महानगरों का नामकरण शक्ति कुल के नाम के आधार पर नहीं होता था। उदाहरण के लिए कोशल, मगध, आंध्र तथा अन्य किसी शक्ति कुल के नाम पर आधारित नहीं है।

नई राजनैतिक-मौलिक हकदारी, जिनमें गहरी व्यापारी तथा शैक्षिक एवं शक्ति के बीच संबंध के नए प्रतिमान दिखाई पड़े, महाजनपद कहलाए। महाजनपद का वास्तव्य माण, कौशल

14.6 अस्तित्वों के प्रकार-II: महाजनपद

(iv) कुछ महाजनपद शीघ्र जनपद के रूप में विकसित हो गए।

नाम पर होता था।

(iii) जनपद मूलतः अतिरिक्त अस्तित्वों थीं, जिनका नामकरण उक्त क्षेत्र के क्षत्रिय वंशों के

थे।

(ii) समकालीन ग्रंथों के अनुसार उस काल के समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो रहे

1) छठी शताब्दी ईसा पूर्व के लोग जोड़े के इस्तेमाल से अनभिज्ञ थे।

जमाएँ:

3) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (X) का चिह्न

2) इस युग में उमरने वाले प्रत्येक नए समूह पर दो परिवारों का होना

1) छठी शताब्दी ईसा पूर्व की मौलिक संस्कृति के विषय में इतिहासकारों ने किस प्रकार
पुरातात्विक तथा साहित्यिक प्रमाणों को संयोजित किया है ? पाँच परिवारों में लिखिए।

कोष प्रश्न 1

इस प्रकार हम देखते हैं कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक एक नए प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था
पनप चुकी थी। पहले जनजाति का मुखिया शत्रु क्षेत्रों पर आक्रमण करके घात का माल अपने
साथियों में बाँट लेता था, लेकिन अब इसके स्थान पर एक राजा आतीन था जिसके पास
जाति स्वामित्व से अप्रभावित एक सेना थी। सेना को बतान कि सैन्य से बचने गए राजस्व
हारा दिया जाता था। वैदिक मुखियाओं की गौरव एवं बलिदान की इच्छा ने उन्हें वंश परम्परा
से काट दिया। जनजातियाँ सुदूर क्षेत्र में युद्ध नहीं कर सकती थी तथा सेना की आवश्यकता है
निर्माण कर देना उनके लिए मान्य न होता। राजा के लिए गौरव तथा शक्ति की इच्छा से यह
सब कुछ आवश्यक था। राजा की शक्ति जनजाति के अपने साथियों के बीच घन के बटवारे
पर आधारित नहीं थी। अब राजा की शक्ति संवद वंश समूहों को जोड़ने तथा धनोत्पादन में
सक्षम अस्तित्वों एवं समूहों को मान्यता देने पर आधारित थी। इस घन का कुछ हिस्सा कर
स्वरूप उत्पादनकर्ता से ले लिया जाता था। वंश आधारित समाज में, जहाँ कि हर व्यक्ति
दूसरे व्यक्ति का सम्बन्धी सम्बन्ध होता था, इस प्रकार मुखिया द्वारा मनमाने ढंग से घन ले
लेना स्वीकार न किया जाता। मुखिया के स्थान पर आतीन राजा किसानों एवं व्यापारियों से
कर वसूल करता था तथा उन्हें आर्थिक एवं आर्थिक इमालों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता था।

महाजनपदों में मूल बस्तियों की इकाइयाँ गाँव थीं (जोकि गाँवों एवं प्राकृत में संस्कृति के ग्राम शब्द का समानार्थी है और इसका अर्थ भी गाँव है)। आपकी आरंभिक वैदिक युग के ग्राम याद

14.4.2 गाँव

हम छोटी शताब्दी ईसा पूर्व के गाँवों पर एक दृष्टि डालें।
 हुए। गाँव महाजनपदों के सामाजिक-राजनीतिक संगठन की मूल इकाई थी। अब: आइए अब
 जीविक बस्तियों की एक नई व्यवस्था, शहर में रहा। शहर सम्पन्न गाँवों के आधार पर उदित
 ऐतिहासिक परिस्थिति के प्रतिमान है।
 किशोरीतर से अधिक रास्ता तय किया। नई बस्तियाँ, नए व्यवसाय तथा नए मार्ग परिवर्तित
 तक माना करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आयुर्वेद विद्या सीखने के लिए उसने दो हजार
 में पञ्जाब के मैदानों में मटक रहे थे। जीविक बिहार से लेकर उत्तर-पश्चिमी पञ्जाब की सीमा
 आप भौगोलिक क्षेत्र पर दृष्टि डालें तो पाएँगे कि आरंभिक वैदिक आर्य वाराणसी की तलाश
 पसंद करता है, व्यापारी (श्रद्धिन्), एक राजा (बिम्बसार) तथा नए दर्शन का प्रवर्तक बुद्ध।
 बस्तियों की ओर संकेत करती है तथा कथा के मुख्य पात्र है एक बच्चा जोकि वैश बनना
 पालने, बलि चढ़ाने तथा पुरोहितों का कहीं उल्लेख नहीं है। कहानी विकसित शहरी
 अब आप इस कथा-सारा की आरंभिक वैदिक समाज के घटनाक्रम से जुटना कीजिए। मवेशी
 भोजने लगा। इस प्रकार जीविक बुद्ध के संपर्क में आया। उसने बौद्ध भिक्षुओं की काफी संतुष्टि
 बिम्बसार जीविक की विद्या से इतना प्रभावित हुआ कि वह जीविक को बुद्ध के इलाज के लिए
 दिया। इस प्रकार जीविक राजगृह पहुँचा। राजगृह में राजा बिम्बसार का निर्वाण वैश बन गया।
 पत्नी काफी बीमार है। जीविक ने उसे ठीक कर दिया। व्यापारी ने जीविक को काफी सारा धन
 धन समर्पित हो गया। वह काम खोजने में लग गया। उसे पता चला कि एक धनी व्यापारी की
 जीविक राजगृह की ओर चल पड़ा। अभी वह आधे रास्ते तक ही पहुँचा था कि उसका सारा

पूरी हो गई।

तो किसी औषधि के काम न आ सके।" गुरु अलि प्रसन्न हुए और कहा कि उसकी शिक्षा अब
 किशोरी बुद्धी-बुद्धि। भिक्षु ?" जीविक ने कहा "श्रीमान बुद्ध एक भी ऐसी बुद्धी-बुद्धी नहीं मिली
 जोकि दवाओं की दृष्टि से बेकार हो। उसके बापस आने पर उसके गुरु ने उससे पूछा, "बुद्ध
 किसी काम की न हो। जीविक ने जाकर बुद्धी साधना-पूर्वक ऐसी बुद्धी-बुद्धियाँ ढूँढनी शुरू की,
 कहा कि वह तक्षशिला के चारों ओर घूमकर कुछ ऐसी बुद्धी-बुद्धियाँ लाए जोकि दवाओं के
 अध्ययन किया। शिक्षा के अन्त में उसके गुरु ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। उसने जीविक से
 जीविक तक्षशिला में सारा वर्षों तक रहा। वहाँ उसने प्रसिद्ध आयुर्वेदविद् की देख-रेख में गहन

जीविक ने आयुर्वेद सीखने के लिए वहाँ जाने का निर्णय लिया।

वैश बनने का निर्णय लिया। उन दिनों तक्षशिला शिक्षा का प्रसिद्ध केंद्र हुआ करता था।
 अब जीविक बुद्धा हुआ तो उसने सोचा कि जीविका के लिए उसे क्या करना चाहिए। उसने

नाम जीविक पड़ा।

देखा। वह उसे घर ले आया और बाई की बच्चे की देखभाल करने का आदेश दिया। बच्चे को
 राजगृह) शहर में अमय नामक राजकुमार रहता था। उसने सड़क पर एक परिवर्तित शिक्षा
 प्रसिद्ध वैश जीविक की कथा हमें बुद्ध के समय से प्राप्त होती है। राजगृह (पटना के निकट

14.6.1 जीविक की कथा

समझने के लिए पढ़ते हैं।

कथाओं की उस युग के मानवों की आशाओं, अभिलाषाओं, संघर्षों तथा सामाजिक माहौल की
 बौद्ध ग्रंथों में नए समाज का प्रतिबिम्बन जीविक कथाओं में देखा जा सकता है। इतिहासकार इन
 में इसके साम्राज्य बनने से भी पहले अंग, बावी आदि जनपद शामिल हो चुके थे। समकालीन
 मिलकर बने। उदाहरण के लिए कौशल महाजनपद में साक्य, कोशी तथा माघ महाजनपद
 थे। परजसल छोटी शताब्दी ईसा पूर्व में कई महाजनपद पूर्व काल में स्थापित जनपदों की
 आदि ऐसे विशाल जनपदों से था जिनपर शक्तिशाली राजा अथवा अभिजात वर्ग राज करते

.....

शब्दों में लिखिए।

1) यदि आप इतिहासकार होते तो आप जीवक कथा से क्या निष्कर्ष निकालते ? लगभग दो

बाँव प्रश्न 2

आरंभ होने के बाद इन्हीं केन्द्रीय में रहकर व्यापार नियंत्रित करते थे।
 हुआ। राजा शहरों से शासन करते थे। नवोदित व्यापारी वर्ग, विशेषकर सिक्के का प्रयोग
 है कि शहरों का उदय शक्ति के केन्द्र तथा महाजनपद पर नियंत्रण के रूप में परिलक्षित
 चारों ओर सख्त किलेबंदी के प्रमाण मिलते हैं। साहित्य में मिलते उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता
 में निरंतर वृद्धि होती रही। कोशाख्या, उज्जैनी, राजघाट (बाराणसी) तथा राजगीर शहरों के
 बर्तनों का इस्तेमाल करने वाली इन बस्तियों से है। इन बस्तियों में व्यापार तथा जनसंख्या
 नहीं था। इतिहास के इस चरण का उत्तर काले पाणिनीय कृष्ण मूद्रमाह (NBPW) जैसे उत्कृष्ट
 होने की जानकारी मिलती है। किसी भी काल में यह क्षेत्रफल पाँच वर्ग किलोमीटर से अधिक
 बर्तन-वर्द्धकर बनाए गए हैं क्योंकि इन शहरों की खूबसूरत से इस काल में साधारण बस्तियाँ
 क्षेत्रफल जैसे वर्ग किलोमीटर से पचास वर्ग किलोमीटर के बीच बढ़ती गयी है। यह तथा
 समकालीन साहित्य में अयोध्या तथा बाराणसी जैसे शहरों का उल्लेख मिलता है, जिनका
 अंतर स्पष्ट नहीं है। यह कस्बे और शहर गाँवों की अवस्था काफी बढ़े हुआ करते थे।
 नगर के रूप में अलग-अलग प्रकार से उल्लेखित की जाती रही है। इन बस्तियों के बीच
 विजातीय जनसंख्या वाले कस्बों एवं शहरों का उदय हुआ। यह इकाइयाँ पुर, निगम तथा
 इस काल में नई प्रकार की बस्तियों के रूप में राजाओं तथा व्यापारियों द्वारा नियंत्रित किन्तु

14.6.3 कस्बे और शहर

दिशा में संकेत मिलता है कि उन शिल्पकारों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की काफी मांग रही होगी।
 अधिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था। कलाओं में उनकी विशिष्ट रक्षणा से भी इस
 प्राप्त करते रहे होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तुओं का परस्पर विनिमय जन-साधारण के
 है। इसका कारण यह है कि जो ग्रामीण स्वयं अपने नहीं उगाते थे, वे अन्य ग्रामीणों से अन्य
 गाँवों द्वारा विशिष्ट कौशल प्राप्त करना बढ़ते हुए व्यापार तथा समान अव्यवस्था का सूचक
 लोहारों तथा लकड़हारों के उल्लेखों से प्राप्त होते हैं। कृषि के अतिरिक्त अन्य कलाओं में
 की भी गतिशीलता बढ़ी। शिल्प में विशेषज्ञता में वृद्धि के प्रमाण गाँव के पशु-पालकों
 ग्राम नेता गतिशील कह जाते थे। सिपाहियों, हाथियों तथा अश्व प्रशिक्षकों एवं मंत्र प्रवचकों
 मिलते हैं। कसक तथा क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग शुरू जाति के आम किसानों के लिए होता था।
 गाँव अस्तित्व में आए। मूर्त्तिसमूह एवं विभिन्न प्रकार के काष्ठवर्तकी अधिकार के भी उल्लेख
 वाले परिवारों के उदय तथा उनके वास, कर्मकार तथा पौरिस रखने के साथ ही गैर-सामाजिक
 थे और सारा गाँव एक-दूसरे से नातेदारी से जुड़ा होता था। किन्तु बड़े पैमाने पर जमीन रखने
 था और कई परिवार एक साथ भी। ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार एक ही गोन से जुड़े होते
 करता है। गाँव छोटे और बड़े, दोनों ही प्रकार के होते थे जहाँ एक परिवार भी बस सकता
 जहाँ के लोग होती करते थे। (यह पशुपालन से अतिरिक्त समुदाय में परिवर्तन की ओर संकेत
 मवेशी डीनर के प्रवास करते थे। इन्हीं शताब्दी ईसा पूर्व के गाँव ऐसी मानवीय बस्तियाँ थीं,
 मलती-फिरती इकाइयाँ होने के कारण जब दो शताब्दी ईसा पूर्व के गाँव मिलते थे तो एक-दूसरे के
 जाते थे तो संयाम (जिसका शाब्दिक अर्थ गाँवों का एक दूसरे के पास आना है) अवधि शुरू होता था।
 होंगे। यह ग्राम लोगों की मलती-फिरती इकाइयाँ होती थीं और जब दो गाँव आस-पास पहुँच

मध्य दक्षिण बिहार में पटना तथा गया के निकटवर्ती क्षेत्रों में स्थित था। इसके उत्तर तथा उत्तर की ओर और दक्षिण बिहार में पड़रव स्थलों में से एक था। माघ के राजा विजयसिंह तथा अजातशत्रु उनके मित्र तथा बौद्ध मत का काफी महत्व था। बौद्ध को ज्ञान की प्राप्ति इसी क्षेत्र में हुई। राजगृह बौद्ध के प्रिय निवासों का व्यवस्था तथा शास्त्रीय अनुष्ठान के अनुयायी नहीं थे। इसके विपरीत, इस क्षेत्र में श्रेणी का बलाया गया है। इसका कारण संभवतः यह है कि पूर्व ऐतिहासिक युग में यहां के माघ राजाओं की शक्ति की छाप है। शास्त्रीय युगों में माघ की जनता को मिश्रित तथा हीन शताब्दी ईसा पूर्व के आस-पास राजधानी पाटलिपुत्र स्थानांतरित कर दी गई। इन पर आरंभिक था। राजगृह की बीजारे भारत के इतिहास में किलेबंदी का प्राचीनतम उदाहरण है। पार्वी राजधानी मिश्रित अथवा राजगृह कहलाती थी। राजगृह पार्व पहाड़ियों से घिरा अमध्य शहर हुआ था। इसके पूर्व की ओर चम्पा नदी बहती थी, जो इसे जंग से अलग करती थी। इसकी पश्चिम में कमलेश्वर नदी तथा गंगा नदियां थीं। पूर्व में यह छोटा नागपुर के पठार तक फैला था। दक्षिण बिहार में पटना तथा गया के निकटवर्ती क्षेत्रों में स्थित था। इसके उत्तर तथा

4) माघ

(NBPW) किए मद्राह मारी माया में मिले हैं।

माघ ने हर्ष लिया। मगधपुर के निकट चम्पा में खुदाई के दौरान उत्तरी काले पालिश व्यापारी यहां से सुंदर पूर्व गंगा पार करके जाते थे। छोटी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में जंग की महान नगरी में से एक था। यह अपने व्यापार एवं वाणिज्य के लिए विख्यात था तथा थी। यह गंगा नदी के संगम पर स्थित थी। चम्पा छोटी शताब्दी ईसा पूर्व के छः यह माघ के पूर्व तथा राजमहल पहाड़ियों के पश्चिम में स्थित था। जंग की राजधानी चम्पा उत्तर की ओर कोसी नदी तक हुआ ही और इसमें पूर्णिया जिंले के कुछ भाग भी जुड़ गए हैं। जंग में दक्षिण बिहार के मगधपुर तथा मुंगेर जिंले शामिल थे। संभव है कि इसका विस्तार

3) जंग

साशाय का सबसे कहर शत्रु बन गया।

प्रसन्नचित्त बौद्ध का समकालीन तथा मित्र था। परवर्ती चरण में कोशल उदीयमान माघ कब्जा कर लिया। कोशल के राजा ब्राह्मणवाद तथा बौद्ध मत, दोनों को प्रोत्साहन देते थे। राजा निराला में लेकर कोशल एक समान राज्य हो गया। कोशल ने काशी तथा उसके क्षेत्र पर भी शासन करते थे। इस प्रकार तीन बड़े शहरों — अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती — की अपने राजाओं ने सभी अन्य कबीलाई सरदारों की अपने नियंत्रण में कर लिया। वे श्रावस्ती से शासन करते थे। छोटी शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम वर्षों में प्रसन्नचित्त तथा विदुषान जैसे कोशल का नियंत्रण कई छोटे-छोटे कबीलायी सरदारों के हाथ में था जो छोटे-छोटे कस्बों में अथवा श्रावस्ती से शासन करने का अनुमान है। संभवतः छोटी शताब्दी ईसा पूर्व के आरंभ में महाकोशल, प्रसन्नचित्त तथा सुदीर्घन है। इन राजाओं के बारे में अयोध्या, साकेत, कपिलवस्तु शताब्दी ईसा पूर्व में माघ के शासकों में जिन राजाओं का उल्लेख है वे हिरण्यनाम,

राजतंत्र ने केन्द्रीकृत नियंत्रण करके साक्ष्यों की स्थापना नष्ट कर दी थी। छोटी दिया था। जिसका अर्थ यह हुआ कि साक्ष्य वंश कोशल के नाममात्र नियंत्रण में था। नवविदित है। इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि कोशल के राजा विदुषान ने साक्ष्यों को नष्ट कर शाक्ष्य कोशल के नियंत्रण में थे। महिषम निकय में बौद्ध स्वयं को कोशल का निवासि बनाते इकाइयों एवं वंशों के सामंजस्य से हुआ। उदाहरण के लिए हम जानते हैं कि कपिलवस्तु के स्थानिका नदी बहती थी। साहित्यिक प्रमाण बताते हैं कि कोशल का उदय कई छोटे-छोटे जो इसे विदेह जनपद से अलग करती थी। इसके उत्तर में नेपाल की पहाड़ियां तथा दक्षिण में कोशल महाजनपद पश्चिम में गोमती से घिरा हुआ था। इसके पूर्व में सदानिरा नदी बहती थी,

2) कोशल

कब्जा कर लिया था और काशी माघ एवं कोशल के बीच युद्ध का कारण बना हुआ था। अपना साम्राज्य बनारस से जोड़ते हैं। लेकिन बौद्ध के काल तक कोशल ने काशी महाजनपद पर उपदेश बनारस के निकट सारनाथ में दिया। इस प्रकार, प्राचीन भारत के तीनों मुख्य धर्म गुरु पाठ्य के पिता (दीर्घकर) को बनारस का राजा बताया गया है। बौद्ध ने अपना पहला आदि को अयोध्या के बजाए काशी का राजा उल्लिखित कराया है। जैन समुदाय के त्रेहसुव

जिले में स्थित थी। इस क्षेत्र के अन्य मुख्य नगर सहजालि एवं त्रिपुरी थे।

निकट समकक्ष में थे। इसकी राजधानी सोधीवती (सुखिममति) संभवतः उत्तर प्रदेश के बाबा अनुसूत, बौद्ध बजल के पार मन्दा, बनारस के काशिया तथा सोन नदी की घाटी में कच्छी के पठार तक ही गया हो। कृष्ण का प्रसिद्ध शत्रु शिशुपाल बौद्धों का शासक था। महाभारत के

7) बहि

ही उनका अंतिम संस्कार किया।

कबीलाधी सरदारों का शासन रहा होगा। बृह की मृत्यु कुशीनार के निकट हुई और मज्जा से क्षेत्र साक्य क्षेत्र के दक्षिण पूर्व तथा पूर्व की ओर स्थित था। अनुमान है कि मज्जा पर पांच हजार में कश्चित् क्षेत्र को माना गया है। पाषाण के क्षेत्र के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। मज्जा का जिनमें से दो का मूल स्थान पाषाण तथा कुशीनार था। कुशीनार उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले प्राचीन ग्रंथों में उल्लेखित मज्जा एक अन्य क्षत्रिय वंश था। इस वंश की विभिन्न शाखाएं थीं,

6) मज्जा

में धीरे का भीज बोया और उसके बाद लिखितियों पर आक्रमण कर दिया।

इस संगठन को गठ कर दिया था। अपने मंत्री परस्कार की सहायता से उसने वंश के सरदारों को राजस्व प्राप्त करने की कोड़े व्यवस्था थी। माना जाता है कि माघ के राजा अजातशत्रु ने एक महत्त्वपूर्ण शक्ति प्राप्त की थी। लेकिन इनके पास न तो सेना थी और न ही इनके पास राज्याधी पर इनके वंशों के सरदार शासन करते थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में यह महाजनपद केन्द्र था। वे अपने मामलों आपसी समझौते में तय करते थे। एक जातिक कथा के अनुसार संगठन के अन्य समुदाय उग्र, माग, कोरव तथा ऐशवाक थे। वैशाखी संभवतः पूरे संगठन का वैशाली के उपनगरों की भक्तियों में रहते थे। इसी कबीले में जैन गुरु महावीर का जन्म हुआ। के एक विशाल एवं सम्पन्न शहर होने का अनुमान है। एक अन्य कबीले के रूप में आनक प्राचीन भारतीय गणसभों में सर्वाधिक विख्यात, लिखितियों की राजधानी वैशाली थी। वैशाली

है।

में इसे राजा अन्ध के साथ जोड़ा गया है, बौद्ध धर्मों में इसे कबीलाधी परंपरा से जोड़ा गया की राजधानी लिखिता थी। इसे नेपाल का आधुनिक जनकपुर माना जाता है। यद्यपि रामायण पठित आठ कबीलों के संगठन का प्रतीक था, जिनमें विदेह, लिखिता, आनक मुख्य हैं। विदेहों

अथ गैर-क्षत्रिय समूहों से प्रथक हो गए।

द्वितीय ब्राह्मण संयुक्त रूप से होता था। यह शासक वर्ग, जिसके सदस्य राजा कह जाते थे, सर्वशासितमान राजा द्वारा शासन का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे बल्कि यह शासन क्षत्रिय लिखिता व्याख्या गणतंत्र या कुलतंत्रीय राज्य के रूप में की गई है। इस युग के गणसभ किसी एक राज्याधी का राजनीतिक संगठन भिन्न था। समकालीन ग्रंथों में उन्हें गणसभ कहा जाता था। यह नदी इस क्षेत्र कोशाल से अलग करती थी। पूर्व उल्लेखित महाजनपदों के विपरीत (है) माग के उत्तर में स्थित था। यह महाजनपद उत्तर में नेपाल की पहाड़ियों तक फैला हुआ विहार के वैशाली जिले के आस-पास असा पठार (जिसका शाब्दिक अर्थ पशु-पालक समुदाय

5) पठार

मौख साक्षात् के रूप में हुई।

साक्षात् के रूप में माघ की सम्पन्नता बढ़ती गई। इसकी परिणति चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में देकर मार डाला। पठार तथा वैशाली पर माघ के विजय का विस्तार होने के साथ एक संरक्षितों की कृपा पर आधारित नहीं थी। अजातशत्रु ने विहासन पर कब्जा करके उसे यालाना उसके नातेदार नहीं बल्कि माघों के मुखिया तथा प्रतिनिधि थे। इस प्रकार उसकी शक्ति उसके है कि लिखितार के प्रशासन में माघ संगठन की हकौत के रूप में उभर आए थे। गामिनी सुनाई थी। हो सकता है कि संख्या बढ़ा-बढ़ाकर बनाई गई हो, लेकिन इससे यह पता लगता था। कहा जाता है कि माघ के राजा लिखितार ने 80,000 गांवों के गामिनीयों की एक सभा तथा सोन नदी के व्यापार मार्गों पर इसके विजय के कारण इसे बाकी राजस्व प्राप्त हो जाता माघ उत्तरकालीन इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण राज्य के रूप में प्रकट होता है। माग, गडक कब्जे लोहे के पहाड़ों पर विजय तथा अधिकांशतः खूनी सामाजिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि में

अर्थात् छोटी शताब्दी ईसा पूर्व के सबसे शक्तिशाली महाजनपदों में से एक था। इस राज्य का मुख्य क्षेत्र मोटे तौर पर मध्य प्रदेश के उत्तरी हिस्से में निकर नदी तक फैला हुआ था। इस राज्य में एक अन्य महत्वपूर्ण नगर महिसमति था जिसे अक्सर इसकी राजधानी के रूप में

14) अर्वाच

अस्सक महाराष्ट्र में आधुनिक पठान के निकट गोदावरी के तट पर फैले हुए थे। पठान को अस्सकों की राजधानी, प्राचीन प्रतिष्ठान माना जाता है। दक्षिण पश्चिम प्रतिष्ठान को उत्तरी शक्ति से जोड़ता था। अस्सकों के राजाओं के अस्पष्ट उल्लेख अवश्य मिलते हैं। किन्तु अभी तक हमारे पास इस क्षेत्र की जानकारी काफी सीमित है।

13) अस्सक

सुरसेनों की राजधानी यमुना तट पर मथुरा में थी। महामारत और पुराण में मथुरा के शासक वंश को यदु कहा गया है। यादव वंश कई छोटे-छोटे वंशों जैसे अंधक, वृष्णि, महामौज आदि में बंटा हुआ था। इनकी राज व्यवस्था भी संघ व्यवस्था थी। महाकाव्यीय नायक कृष्ण इन्हीं शासक परिवारों से संबंधित है। मथुरा से विख्यात प्राचीन भारतीय व्यापार मार्ग — उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम के बीच में स्थित था। इसका कारण यह था कि मथुरा स्थानी कृषि वाले गाँवों और शक्तिशाली वनसंरक्षण वाले शारागाहों, जो मालवा पठार तक पहुँचते थे, के अंतर्गत क्षेत्रों के बीच स्थित था। इसीलिए मथुरा एक महत्वपूर्ण नगर बन गया। लेकिन स्थिति राजनीतिक संरचना तथा प्राकृतिक विभिन्नताओं के कारण इस क्षेत्र के शासक इसे शक्तिशाली राज्य न बना सके।

12) सुरसेन

मत्स्य राजस्थान के अय्यपुर-मरतपुर-अजमेर क्षेत्र में स्थित थे। उनकी राजधानी विराट नगर थी, जोकि पांडवों के छिपने के स्थान के रूप में विख्यात है। यह क्षेत्र पशु-पालन के लिए उपयुक्त था। इसीलिए महामारत कथा में जब कौरवों ने विराट पर आक्रमण किया तो वे मर्वेशियों को हाक कर ले गए। स्वभाविक है कि स्वामी कृषि पर आधारित शक्तिशाली से मत्स्य मुकाबला न कर सके।-मगध साम्राज्य ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। अशोक के कुछ सर्वाधिक विख्यात आदेश-पत्र प्राचीन विराट, बौरा (जिला जयपुर) में पाए गए हैं।

11) मत्स्य

पंचाल महाजनपद कहलखंड तथा मध्य दोआब के कुछ भागों (मोटे तौर पर बरौली, पीलीभीत, बदायूँ, बुलंदशहर, अलीगढ़ आदि) पर स्थित था। प्राचीन ग्रंथों में पंचालों के दो वंशों: उत्तर पंचाल तथा दक्षिणी पंचाल, जिन्हें मगिरवी नदी पृथक करती थी, का उल्लेख मिलता है। उत्तरी पंचालों की राजधानी उत्तर प्रदेश के बरौली जिले में अहिखन में स्थित थी। दक्षिणी पंचालों की राजधानी कपिलवस्तु थी। संभवतः वे कुलुओं से निकट संबंध रखते थे। यद्यपि एक था दो पंचाल शासकों का उल्लेख मिलता है, लेकिन हमारे पास उनके विषय में बहुत कम जानकारी है। वे भी संभव-कह जाते थे। छोटी शताब्दी तक वे गुप्त हो चुके थे।

10) पंचाल

पंचाल एक पूर्व मूल पाठ अभी भी सामयिक है, जबकि वर्तमान महाकाव्य में एक लाख छन्द प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि महामारत के प्राक्कथन में कहा गया है कि 24,000 छन्द इस प्रकार यह महाकाव्य आधुनिक व्यवस्था के विस्तार का साधन बन गया। इसका रजवाड़े यह सोचकर गर्व का अनुभव कर सकते थे कि उनके पूर्वज महामारत युद्ध में लड़े थे। शाल्या ने मारत के प्रत्येक क्षेत्र की महामारत की कथा में शामिल कर लिया। इससे राज-महाजनपदों में आमस में सामयिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सम्पर्क: बढ़ा। मादों तथा गायन परंपरा का एक हिस्सा बन गयी। आधुनिक ऐतिहासिक युग की शुरुआत के साथ संभवतः महामारत की कहानी दो दक्षिण वंशों के आपसी युद्ध की कहानी है, जोकि मादों की प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के बाद ही आए। अतः यूनानियों के साथ युद्ध की संभावना केवल पंचवी शताब्दी ईसा पूर्व में ही हो सकती थी।

हमने छोटी शताब्दी देना पूर्व के भारत में विद्यमान राजनीतिक परिस्थितियों की समीक्षा की। नए सामाजिक-राजनीतिक विकासों से गुजर रहे क्षेत्रों के रूप में उचित हुए महाजनपद विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में स्थित थे। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये सात महाजनपद — अंग, मगध, वज्जि, कोशल, कौशली, कौशिक तथा कंस-मगध गौतम वादी में स्थित थे। यह वाक्य

14.8 सारांश

- 2) महाजनपदों को उनसे संबंधित राजधानी के क्रम में रखिए:
- i) कौशली
 - ii) अंग
 - iii) वज्जि
 - iv) कंस
- 1) शासकों को उनसे संबंधित महाजनपदों के क्रम में रखिए:
- i) अजातशत्रु
 - ii) प्रद्योत
 - iii) उदयन
 - iv) प्रसेनजित
 - v) कौशल
 - vi) मगध
 - vii) अवधि
 - viii) कंस

बाय प्रश्न 3

कौशल गंधार के निकट, संभवतः आज के पंज क्षेत्र में स्थित था। सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में ही कौशल को आर्याण्य ग्रंथों में असम्य लोगों की संज्ञा दी गई थी। अर्थशास्त्र में इन्हें संस्कृतशास्त्राचार्यविरचन संघ, अर्थात् कणको, बरवाहो, व्यापारियों तथा योद्धाओं का संगठन कहा गया है।

16) कौशल

एक शहर का उदय हुआ। उदय हुआ। छोटी शताब्दी ईसा पूर्व तक आते-आते गौतम वादी के शासकों के समरूप यहाँ भी कि इस स्थान पर 1000 ईसा पूर्व में ही लोग बस चुके थे और बाद के दिनों में नारों का गंधार पर काल से विजय प्राप्त कर ली। आधुनिक तक्षशिला की खुदाई से पता चलता है शासन कर रहा था। वह बिम्बिसार का मित्र था। छोटी शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में व्यापार के उद्देश्य से जाते थे। छोटी शताब्दी ईसा पूर्व में गंधार पर पुष्कसती नामक राजा इसकी राजधानी तक्षशिला एक महत्त्वपूर्ण शहर था, जहाँ सभी जनपदों के लोग शिक्षा तथा किन्तु आर्याण्य और बौद्ध परंपरा के उत्तरकालीन चरणों में इसके महत्त्व में कमी आयी। इसमें कश्मीर का भी कुछ भाग रहा है। यद्यपि वैदिक युग में यह एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था। गंधार भारत के उत्तर पश्चिम में कौशल और रावलपिंडी के मध्य का क्षेत्र था। संभव है कि

15) गंधार

यही नहीं, अजातशत्रु भी उससे मय खाता था। शाकशास्त्री राजा प्रद्योत अवधि का शासक था। संभवतः उसने कंस पर विजय प्राप्त की थी। मरुओं ने यहाँ एक केन्द्रीकृत राज्य की स्थापना कर ली। छोटी शताब्दी ईसा पूर्व में एक मगध पर स्थित होने तथा वज्जिणी और वीने वाले व्यापार पर नियंत्रण होने के फलस्वरूप की आधारशिला रखने का श्रेय मरुओं के उद्देश्य वंश को दिया गया है। कृषि के लिए उपजाऊ माना जाता है। अवधि क्षेत्र में कई छोटे बड़े कस्बों का उल्लेख मिलता है। पुराणों में अवधि

- 1) एक इतिहासकार के रूप में आपकी:
 अ) व्यापारियों तथा अखबारों की संख्याओं के उदय,
 ब) नई अखबारों के उदय; तथा
 स) जन-साधारण द्वारा की गई जासूसी कार्यों का उल्लेख करना चाहिए।

बाय प्रश्न 2

- 3) i) iii)
 ii) iv)
 2) भाग 14.5 देखिए।
 भाग 14.3 देखिए।
 1) आप अपने उत्तर में यह दर्शाइए कि विश्व भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति साहित्यिक उल्लेख किस प्रकार परिवर्तनशील हैं और उन युग के नगरों की संख्या में क्या परिवर्तन होते हैं।

बाय प्रश्न 1

14.10. बाय प्रश्नों के उत्तर

परिचय — बौद्ध साहित्य में नीची जाति के लिए प्रयोग किया जाने वाला एक शब्द।
 पाकृत — अशोक के काल में माघ में बोलने वाले जाति भाषा। ऐतिहासिक भारत में प्रथम लिखित सामग्री इसी भाषा में मिली है।
 भाषा — माघ तथा कौशल के क्षेत्र में बोलने वाले भाषा। बौद्ध साहित्य इसी भाषा में रचा गया है।
 शब्दी अक्षरों — वे स्थान जहाँ की काफी बड़ी जनसंख्या ब्राह्मणिक मान्यताओं का अनुसरण करती थी।
 बौद्ध धर्म की उत्पत्ति — छोटी शलाबी ईसा पूर्व के दौरान उत्तरांचल प्रांतिक आंदोलन जिसने

14.9 शब्दावली

उत्पन्न का क्षेत्र है, जबकि ऊपरी गंगोत्री क्षेत्र में उत्पन्न किया गया।
 है कि भारत में परंपरागत कृषि प्रणाली में बावल की उपज में अधिक रही है।
 बावल उत्पादक क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व भी अधिक रहा है। इसके अतिरिक्त माघ जैसे महाजनपदों के पास बाहु जैसे महत्वपूर्ण साधन भी मौजूद थे। इन तथ्यों को मध्य गंगोत्री घाटी के राजनैतिक-आर्थिक शक्ति के केंद्र बनने का कारण माना जा सकता है। इस क्षेत्र में कई महत्वाकांक्षी शासक सम्पन्न पड़ोसी क्षेत्र को हड़पने का प्रयास कर सकते थे। साथ ही पड़ोसी क्षेत्र पर नियंत्रण बनाए रखना भी आसान था। पंजाब और मालवा के महाजनपदों के शासकों को सम्पन्न क्षेत्रों में पहुँचने के पूर्व विश्व भौगोलिक क्षेत्रों को पार करना पड़ा होगा। इस प्रकार मध्य गंगोत्री घाटी के शासकों को अपनी शक्ति सुदृढ़ बनाने में सपाट मैदानी भूमि तथा पानी अक्षरों ने भी काफी सहायता की। फिर यह स्वाभाविक ही है कि इस क्षेत्र की शक्ति, माघ, बावल के काल में सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उत्पन्न।

- 1) i) अ
- ii) अ
- iii) अ
- iv) अ
- 2) i) अ
- ii) अ
- iii) अ
- iv) अ

सही उत्तर 3

2) उत्तर 14.6.3 में दिए गए उत्तरों को देखिए।

सही उत्तर है
सही उत्तरों में 7. 14

के बीच का माना जा सकता है।
 शास्त्र ग्रंथ से लिया गया है। इस ग्रंथ का समय मोटे तौर पर आठवीं सदी से नवीं सदी ई. पू.
 लिए प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ पर उनकी प्राथमिक कठिनाई का वर्णन कर रहे हैं जिसको ऐतरेय
 थी। अपने राजा हरिश्चन्द्र का नाम तो सुना ही होगा जो अपनी सत्यनिष्ठा तथा वचनबद्धता के
 सब राजाओं और व्यापारियों के प्रमुख और भाजार स्थलों के कोलाहल एवं कलकल से मुक्त
 में बस गए। साधारण घरेलू वाली छोटी ग्रामीण स्त्रियाँ हर तरह के ही जा सकती थीं। यह
 विद्यु घाटी के नारों की समाप्ति के पश्चात् खिन्न और घुमक्कड़ संप्रदाय भारत के शैवों
 नार के लोगों को ही सम्बोधित किया।

आवृत्ती, काशी आदि नारों के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। कुछ एवं महावीर ने अधिकांशतया
 लोग इस काल से अपने धर्मों की स्थापना का काल मानते हैं। तत्कालीन साहित्य में राजग्रन्थ
 हिन्दू धर्म के कई मठों में इस परम्परा का समावेश हुआ है तथा उपरोक्त धार्मिक धर्मों के
 व्यवस्था रही और इसी काल में साहित्य की लेखन परम्पराओं का प्रारम्भ हुआ। जैन तथा
 हुआ। यह नारीकरण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि काफी लम्बे समय तक यह नारीय
 छोटी शताब्दी ई. पू. से प्रारम्भ होने वाले काल में भारतवर्ष में हुई थी और नारों का उदय

15.1 प्रस्तावना

- एक शहर के वास्तविक अर्थ तथा ग्रामीण क्षेत्रों से इसकी भिन्नता को समझ सकेंगे।
- उन मुख्य कारणों को जान सकेंगे जिनसे छोटी शताब्दी ई. पू. के दौरान नारीकरण हुआ।
- यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि उस समय किस प्रकार के नार अस्तित्व में थे, और
- छोटी शताब्दी ई. पू. में नारीय जीवन की बहुत-सी विशेषताओं को समझ सकेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

15.0 उद्देश्य

- 15.8 ऋषि प्रश्नों के उत्तर
- 15.7 शब्दावली
- 15.6 सारांश
- 15.5 पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार नार
- 15.4 विनिमय की प्रकृति
- 15.3 नार का अर्थ
- 15.2 प्राचीन भारत में नार की स्ति
- 15.1 साहित्य में नारों तथा कस्बों के प्रकार
- 15.4 छोटी शताब्दी ई. पू. के नार
- 15.3 छोटी शताब्दी ई. पू. की पृष्ठभूमि
- 15.2 नार कौन क्या है ?
- 15.1 प्रस्तावना
- 15.0 उद्देश्य

इकाई की रूपरेखा

इकाई 15 नारीय क्षेत्रों का उदय

नगर केन्द्र को परिमार्णित करने का प्रयास बहुत से विद्वानों ने किया है। जैसे दो किरी नगर केन्द्र को परिमार्णित करना काफी सरल कार्य लगता है। लेकिन जब हम यह काम शुरू करते हैं तो यह प्रश्न काफी उठित हो जाता है। जैसे कि कुछ विद्वानों का विश्वास है कि पानी आबादी होने नगर केन्द्र का एक लक्षण है। तथापि हम देखते हैं कि कुछ भारतीय आधुनिक गाँवों की आबादी अस्टैलिया के कुछ नगरों से भी अधिक है। इसी प्रकार, कुछ विद्वानों का तर्क है कि नगर केन्द्रों का आकार गाँवों से बड़ा होता है। फिर भी, नगरों के आकार स्तर को निर्धारित करना कठिन है। हम जानते हैं कि आधुनिक गाँवों का आकार इटली/कालीन

15.2 नगर केन्द्र क्या है ?

चित्र 2 प्राचीन भारत के नगर की विन्यास की परिकल्पना



भविष्य में भी अस्तित्व में आ चुकी थी।

पर आधुनिक गाँव के साथ-साथ आज नगर केन्द्र, छोटे कस्बे, बड़े कस्बे और अन्य प्रकार की नगरों में रहते थे। इस समय तक केवल बड़े नगर ही अस्तित्व में नहीं आए थे, किन्तु कुछ राजा एवं गाँव-संघों के शक्तिय मुखिया कोशास्त्री, चम्पा, श्रावस्ती, राजगृह और वैशाली जैसे में काफी परिवर्तन हुआ। आप इकाई-14 में पढ़ते ही पढ़ चुके हैं कि राजशाही महानगरों के वह एक ऐसे गाँव में रहते थे जो जंगल के समीप था। छोटी शताब्दी ई. पू. आते-आते इस सब यह महत्त्व है कि राजा हरिश्चन्द्र किरी नगर में नहीं रहते थे, न किसी छोटे कस्बे में बल्कि राजा का जलोदर राज भी समाप्त हो गया। नारीकरण के इतिहासकार के लिए इस कहानी का कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया जिससे बच्चा अति प्रसन्न हुए और उसको भवा-लिया गया। बच्चा के लिए बलि दी जाने वाली थी। जब सुनहरेप की बलि दी जाने वाली थी तो उसने लिया। इसके पश्चात् वह हरिश्चन्द्र के गाँव वापस लौट आया जहाँ पर सुनहरेप की मयादान सातवें वर्ष उसने सुनहरेप नाम के बालक जड़के की उसके पिता से सी सिक्कों में खरीद

भार जंगल वापस जाने के लिए बाध्य किया।

हू: नगर गाँव को वापस आने का प्रयास किया परन्तु इन्द्र ने उस पर दयाव डालकर उसको हर दिया। रोहित ने जब यह सुना तो उसने जंगल से गाँव वापस जाने का निश्चय किया। उसने बच्चा को खिच डी गया और हरिश्चन्द्र को रोहित करने के लिए जलोदर राज का अभिशाप है

और एक वर्ष तक वह जंगल में घूमता रहा।

गुम्हारी बलि दूंगा।” “नहीं”, उसने कहा और अपना धनुष लेकर वह जंगल की बला गया। भवलाया, “ओ भरे प्रिय पुत्र, बच्चा मयादान ने तुमको मुझे प्रदान किया है। इसलिए उनको भ्रष्ट से बचाने बनाये और बलि को टालते रहें। जब रोहित भड़ा हुआ तो हरिश्चन्द्र ने उसको उनको यहाँ रोहित नाम के पुत्र का जन्म हुआ। बच्चा ने उसकी बलि की मांग की। राजा ने पास गए और प्रार्थना की, “आर भरे पुत्र की उत्पत्ति हो तो उसकी बलि में आपकी दूंगा।” कहानी इस प्रकार बगती है, — राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं था। वह मयादान बच्चा के

भारत: छोटी से
कीर्ती शास्त्री ई. पू. शक

इस प्रकार की विभिन्न सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों के कारण उन लोगों में उचित गोलमोल करने में कठिनाई होती है जो लोग इन गतिविधियों में व्यस्त हैं। उदाहरण के लिए, गृह्यर क्षेत्र को ले जाने में गृह्यर से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में जहाँ प्रत्येक समूह दूसरे समूह के बिना जीवित नहीं रह सकता वहाँ उनकी गतिविधियों में गोलमोल रखने के लिए एक केन्द्रित संगठन की आवश्यकता होती है। गरीब व धनी के बीच शर्जला पर विचार करने की आवश्यकता और नगर के उपभाग के लिए कृषि उत्पाद को गतिशील बनाने की आवश्यकता में केन्द्रित शक्ति की उत्पत्ति की संभावनाओं को ध्यान में रखना। केन्द्रित निर्माण होने वाले गृह्यर की उत्पत्ति सामान्य उद्योग क्षेत्रों में शक्ति पर एकाधिकार रखने

इस कह सकते हैं कि नगर उन स्थलों को कहा जा सकता है जहाँ पर आबादी का महत्वपूर्ण भाग साबित उत्पादन के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों में संलग्न है।

उपस्थिति नगर की एक विशेषता है। है परन्तु गृह्यर, राजनीति या बहरे गरीब ही होती है। इस प्रकार, धनी और गरीब, दोनों की विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते। उदाहरण के लिए, व्यापारी और प्रशासक काफी धनी हो सकते हैं परन्तु वे भी नगर के लिए विकास की चीजों एवं शहर से बाहर के लोगों के लिए राजाओं, पूजार्थियों और व्यापारियों तथा किसानों के अलावा नगरों में दलकार और कारीगर हैं।

को आयोजन करते हैं। अन्य लोगों की लक्ष्य मूल्यमान धारुओं व पत्थरों को रखने में होती है। सामान्य लोग बड़े-बड़े महल बनाते हैं तो कुछ सुन्दर मन्दिर बनाते हैं और कुछ महाबलि यज्ञों समाज में धनी व ताकतवर लोगों के दिखावट के अपने-अपने तरीके होते हैं। कुछ समाजों में अपने धन का उपयोग अधिक धन, सम्मान एवं ताकत प्राप्त करने में करते हैं। अब, प्रत्येक पुजार्थियों तथा व्यापारी वर्गों के पास साधारण आदर्शों की गुलामी में अधिक धन है। ये वर्ग (विनियोग करने में) सक्षम हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शहरों में रहने वाले राजाओं, आपूर्ति को नियंत्रित करके ग्रामीण क्षेत्रों के संसाधनों के एक हिस्से को हड़प करने में जा सकता है। नगर में रहने वाला व्यापारी धारुओं, खनिजों और विकासों की संसाधनों का प्रयोग करने में सक्षम है। इस कार्य को बर्तु कर या नजारा बर्तुल करके किया जाना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि शहर के निवासी प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले लोगों के उपलब्ध करा सकते हैं। प्रभाव क्षेत्र की जनसंख्या के साथ यह सम्बद्धता नगर केन्द्र के लिए अपनी भौतिक सीमा के बाहर रहने वाले लोगों को भी प्रशासनिक, आर्थिक और धार्मिक सेवाएं प्रदान करने वाली अधिकतर जनसंख्या के संबंध में भी काम करता है। इस प्रकार नगर सक्षम थे। नगर केन्द्र की दूसरी विशेषता यह है कि अपने क्षेत्र-साथ यह अपने प्रभाव क्षेत्र के भूदरों के स्थानीय व क्षेत्र से आने वाले वीथ यात्रियों के संसाधनों को प्राप्त करने में गरीबों मन्दिर में देवी देवताओं पर विभिन्न प्रकार के उपहार चढ़ाते थे। इस तरह से जो लोग केन्द्र क्षेत्र के कारण हैं। बनारस सम्पूर्ण भारत के वीथ यात्रियों को आकर्षित करता था। ये वीथ प्रसिद्धि अच्छी किस्म का बाबल उत्पादन करने के कारण नहीं परन्तु एक बहुत महत्वपूर्ण वीथ है। इस उदाहरणार्थ बनारस को लेते हैं जो भारत के वीथिव प्राचीनतम नगरों में से एक है। इसकी

के लिए कृषि के अतिरिक्त गतिविधियों का होना आवश्यक है। भी बहुत से लोग कृषि से संबंधित कार्यों में संलग्न हैं। परन्तु नगर को परिभाषित करने शासनकल्पों या पुजार्थियों या व्यापारियों की प्रधानता होती है। यह संभव है कि नगर में सामाजिक व्यवस्था पर किसानों व खेतों की प्रधानता होती है। दूसरी ओर, नगरों में है। गाँव में अधिकतर लोग साबित उत्पादन के काम में लगे हुए होते हैं। इसलिए गाँवों की है। इसलिए उन कार्यों की विशेषताओं की पहचान करना महत्वपूर्ण है जिनको वे पूरा कर रहे हैं। नगर या गाँव केन्द्र को परिभाषित करने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता नहीं माना जा सकता। कारीबान जैसे नगरों से काफी अधिक है। इस प्रकार, लोगों की संख्या या भूदरों की आकार

ऐसे सामाजिक समूह अस्तित्व में आये जो ख़ासान उत्पादन में लिप्त नहीं थे।
 प्रायः हुए पुरातात्विक साक्ष्यों में भी होती है। अधिक अन्न उत्पादन ने यह संभावना बनाई कि
 उत्पादन के कारण जनसंख्या के बढ़ने में सहायता मिली, जिसकी अभिव्यक्ति उस समय के
 स्तर पर बावल की खेती की ओर निर्णायक परिवर्तन को स्पष्ट करता है। अधिक ख़ास
 प्राथमिक बौद्ध साहित्य में बावल व खेती की किस्म का बार-बार वर्णन हुआ है। यह व्यापक
 में, गेहूँ उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी की तुलना में अधिक अनाज का उत्पादन होता था।
 अनाजों की परम्परागत कृषि से पर्याप्त मात्रा में अधिक थी। बावल उत्पादक मध्य गंगा घाटी
 गया था। यह सर्वविदित तथ्य है कि तब ही बावल की खेती वाले क्षेत्र में पैदावार गेहूँ या मोह
 पर रोपाईं द्वारा धान की खेती की जाती थी। धान की रोपाईं की भी इस काल में सीख लिया
 यह मध्य गंगा घाटी में (इलाहाबाद और मागलपुर के मध्य का क्षेत्र) काफी उपयोगी था जब
 साफ़ किया जा सका और लोहे की फाल वाले हल से कृषि कार्यों को करने में सुविधा हुई।
 लोहे के प्रयोग का अव्यवस्था पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। लोहे की कुल्हाड़ी से जंगलों को

को और बढ़ाया।
 अधिक धन को बचल किया। लोहे के हथियारों ने उनकी युद्ध, विजय और लूट-पाट की मूल्य
 किसानों की शक्ति में बढ़ि हुई। शक्ति धर्म ने लोहे के हथियारों की सहायता से किसानों से
 के हथियारों का प्रयोग काफी बढ़े स्तर पर होने लगा था। जिसके कारणवश शक्तियों तथा
 और इतिहासपुर से बड़ी संख्या में लोहे के उपकरण एवं औजार प्राप्त हुए हैं। विशेषकर लोहे
 आने वाली चीन या बार शक्तिधर्मों में लोहे का प्रयोग बढ़ता गया। इसलिए उर्वर, शक्ति
 1000 ई. पू. के आस-पास भारतीयों ने लोहे को पिघलाने की कला को सीख लिया था। आगे

लोहे का प्रयोग और रोपाईं द्वारा खेती

मिली।
 तथा रोपाईं द्वारा की खेती ऐसे दो कारणों व निम्न कृषि उत्पादन में बढ़ि करने में काफी मदद
 ई. पू. के बीच अस्तित्व में आयी। मध्य गंगा घाटी में पहले हुए लोहे के औजारों का प्रयोग
 पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि बहुतेक-सी कृषि बस्तियाँ 6वीं शताब्दी ई. पू. से 7वीं
 खेती करने तथा बरबादी एवं बार खोजकर लाने वालों को बसाने के लिए बाध्य किया।
 वा सकता था। शासकों की अधिक से अधिक धन की लालसा में अधिक से अधिक धर्म पर
 की धर्म की बढ़ाकर और अधिक उत्पादन करने वाले कृषि के तरीकों को अपनाकर प्राप्त किया
 प्रतीक था। विशेष कर, कृषि उत्पाद इस प्रकार की सम्पत्ति थी जिसकी साल दर साल ज़रूरी
 व्यवस्था कृषक समाज में कृषि उत्पाद और पालतू पशु सम्पत्ति के सबसे अधिक महत्वपूर्ण
 होने लगी जिससे कि वे अधिक से अधिक लूट, कर व नज़राना प्राप्त करने लगे। इस
 पिशाल से पिशाल स्तर पर बलि यज्ञों के आयोजन करने से सदस्यों के बीच प्रियोगिता
 अपनी सम्पत्ति को खर्च करना और विवरित करना प्रारम्भ कर दिया। अधिक से अधिक
 कर लगाना प्रारम्भ किया। उत्तर वैदिक काल में सरदारों ने बलि अनुष्ठानों के अवसर पर
 घोड़ों और मृत्सामियों का धन आया जिसने कृषिक रूप से किसानों तथा व्यापारियों पर
 धर्म (धर्म) में कैसे उद्भव हुआ और जो अनुष्ठानिक कार्य के विशेषज्ञ हो गये। फिर शक्ति
 के उद्भव के विषय में बताया था। हम देख चुके हैं कि एक समय में ब्राह्मणों का एक जाति
 इससे पूर्व की इकाई में हमने प्राचीन भारत में महाजनपदों और केन्द्रकव राजनीतिक प्रणालियों

15.3 खेती शक्तियों ई. पू. की पृष्ठभूमि

इस तरह की शक्तियों, धनी व गरीब लोगों और प्रशासन की उपस्थिति शक्ति समाज
 की विशेषता है।

बाले गेटों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में यह तथ्य निहित है कि एक
 प्रकार का राज्य समाज अस्तित्व में आया।

भारत: खेती से
 की शक्तियों ई. पू. तक

छठी शताब्दी ई. पू. के नगरों के विषय में हमारी सूचना बहुत से शिलों पर आधारित है क्योंकि यह समय है जब प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा का शीर्षोर्ष हुआ। प्राचीनक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में उस समय की परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। इस काल

15.4 छठी शताब्दी ई. पू. के नगर

- 1) सभी उत्तरों पर निशान लगाइए:
 - क) पुन रोहित की अवस्था में
 - ख) सुनेहसेय की खोजारी में
 - ग) राजा हरिश्चन्द्र के शहर में नहीं बल्कि गांध में रहने के तथ्य में
 - घ) मगधान वज्जु तथा कुन्द द्वारा खोजी गई विभिन्न मुम्भिकाओं में
- 2) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) या गलत (X) का निशान लगाइए:
 - ii) आबादी की संख्या और बस्ती के आकार के आधार पर प्राचीन केन्द्र से अलग नगर केन्द्र की पहचान की जा सकती है।
 - iii) लोहे के औजारों के बढ़ते प्रयोग ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद की।
 - iii) बाबल उत्पादक मध्य गंगा-घाटी की सुलना में गेहूँ उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी आदि के साथ अनाजों का उत्पादन करती थी।
 - iv) लोहे के हथियारों के निर्माण से शासक वर्गों की ताकत में वृद्धि हुई।

बोध प्रश्न 1

के नगरों की उत्पत्ति हुई।
 नवीनतम राज्यों के शासक वर्ग बन गए और सभी धर्म की आधारशिला पर छठी शताब्दी ई. पू. खूब नहीं होता था। जिन बड़े हुए समूहों का इस अतिरिक्त धर्म पर नियंत्रण था वे ही अतिरिक्त उत्पादन को सरकारी द्वारा एकत्रित किया जाता था वह बलि यज्ञों के अक्षर पर आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों से मिलता था। जिसका अर्थ था कि जिस क्षेत्र में आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों का स्वरूप ऊपरी गंगा घाटी क्षेत्र में जाता था वह यज्ञों के आयोजन के समय उपहारों के रूप में बलि जाता था। मध्य गंगा घाटी क्षेत्रिक बलि यज्ञों से गलत था कि सरकारी के द्वारा जो अतिरिक्त उत्पाद एकत्रित किया

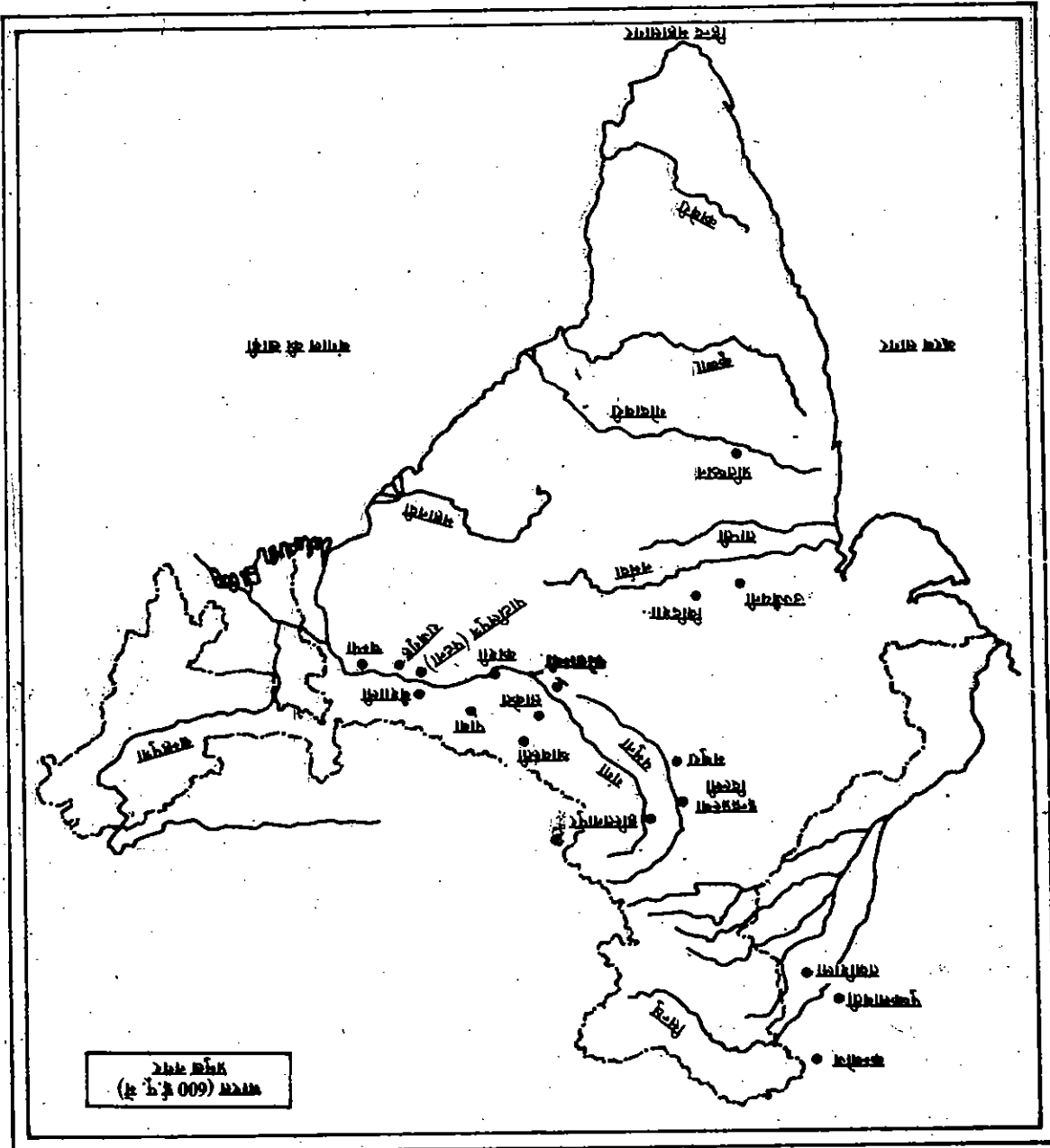
चित्र 3 रोपड़ द्वारा बन की खेती



परिभाषित करते हैं।
 प्राचीन भारतीय साहित्य में शहरों के प्रतीक रूप में पुरा, दुर्ग, विमान, नगर आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। अब हम यह देखेंगे कि प्राचीन भारतीय शहरों को किस प्रकार से परिभाषित करते हैं।

15.14.1 साहित्य में नगरों और कस्बों के प्रकार

चित्र 2 प्राचीन नगर



के शहर से नगरों और गाँवों के उद्भव से प्राप्त विवरण हमारी जानकारी को और पूरा करे
 है।
 नगर: शहर से
 और नगरों के प्रकार

भांगारों में उपयोगी वस्तुओं की विष्ठी एवं खरीदारी बढ़े पैमाने पर होती थी। लोगों को गोबर, चिन् व बाँदी आदि घासुओं के बने उपकरणों तथा औजारों को खरीदते हुए देखा जा सकता था। नमक के उपार्जन तथा बेचने के विशेषज्ञ व्यापारियों के गुटों को सड़क के उस टुकड़े पर, जो उनकी दे दिया गया था, देखा जा सकता था। काशी के सूती कपड़ों की और खरीदने वालों की काफी बड़ी संख्या आकर्षित होती थी। उत्तर-पश्चिम गंगार प्रदेश से आने वाले ऊनी कम्बलों को केवल धनी लोग खरीदते थे। सिन्ध और काश्मीर से आयात होने वाले धाड़ों की धी-विष्ठी की जाती थी। यहाँ पर उन दिनों केवल समाज के उच्च धनी लोग खरीदार होते थे। शीश से बनी बूँदियाँ, सोने से बने सुन्दर आभूषण, कपियाँ, कपियाँ, हाथी दाँत से निर्मित आभूषण और कीमती पत्थरों की बहुत अधिक मात्रा कुलीन वर्ग में थी।

समकालीन स्त्रोत इस और धी संकेत करते हैं कि प्रत्येक सामान को अलग सड़क पर बेचा जाता था। जो उसका उत्पादन करते थे या उसकी लाते थे वही बेचते भी थे। विभिन्न प्रकार के सामानों को बेचने की कोई दुकान नहीं थी। विभिन्न प्रकार के व्यापारी होते थे, जैसे कि दुकानदार (अध्यापिका), खुरा (क्रम-विक्रय) और धन विनियोगवा (सेठी-गहपति)। धनी लोग सिक्के का उपयोग भी करते थे। बाँदी का सिक्का सर्वमन अधिकतम मूल्य का था। उसके भार कर्षण का महत्त्व था। गोबर के माशाल और ककण कम मूल्य के सिक्के थे।

नगरों की इस बमक-दमक के बीच गरीब लोगों का यह वर्ग था जिसके विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। एक बौद्ध जातिक कथा में वर्णन है कि एक व्यापारी की बेटी के द्वारा एक बन्दार (जो लोग जाति व्यवस्था से बाहर थे) को देखने पर प्रदुषण के डर से उसकी आँखों को धोया गया। नगरों के उदय के साथ-साथ धोवियाँ, मेहरतरी, मिखारियाँ तथा धनियाँ का वर्ग भी अस्तित्व में आया। धनियाँ और धावों को दफनाने वालों की सेवाएँ शहरों के लिए आवश्यक थीं। फिर भी ये लोग समाज के सबसे निर्धन तथा अधिकार-विहीन लोग थे। जाति व्यवस्था से बहिष्कृत ये लोग नगरों के बाहर अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार की किसी आशा के बिना रहते थे। सामुदायिक समाज के पतन और शासकों द्वारा उत्पादन पर बढ़ती हुई धनियों के कारण मिखारियों के गुटों की संख्या बढ़ी। एक कहानी में बताया गया है कि दिन में राधा के कारिन्द गीब को गुटते थे और रात को गुटते।

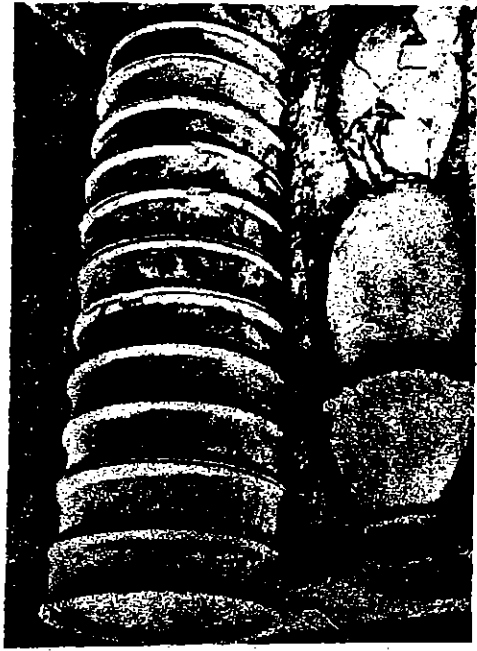
15.5 पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार नगर

हमें जो साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं उनमें आगामी पुरातात्विक साक्ष्यों में बहुत से परिवर्तन हुए और उनमें कुछ न कुछ जोड़ा गया। हमें जो लिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं वे एक हजार वर्ष से भी कम पुराने हैं। इसलिए इन ग्रंथों में से प्राथमिक काल के इतिहास के विवरण को बार के काल के विवरण को अलग करना कठिन है। जो सूचनाएँ हमें उत्खनन से उपलब्ध विवरणों से प्राप्त हुई हैं वे इस काल के नगरों के विषय में कुछ अधिक ठोस आधार प्रदान करती हैं। क्योंकि पुरातात्विक आँकड़ों की अधिक निश्चिन्ता के साथ कालबद्ध किया जा सकता है। यह भी है कि साहित्यिक विवरणों में नगरों की ऐश्वर्यता एवं बमक-दमक को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। उत्खनन से प्राप्त सामग्री में इस प्रकार की पक्षता नहीं होती है। अब हमें यह देखना है कि उत्खनन से प्राप्त विवरण से किस प्रकार की सूचना प्राप्त हुई है।

700 ई. पू. के लगभग, अयोध्या, कोशांबी और श्रावस्ती जैसी छोटी-छोटी बस्तियाँ अस्तित्व में आईं। इन बस्तियों में रहने वाले लोग, विभिन्न प्रकार की मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जो आसपास इस स्तर क्षेत्र के निवासी इस शैली के मृदमालों के साथ-साथ एक विशेष प्रकार के बमकदार परत वाले मृदमालों का उपयोग करने लगे। इस प्रकार मृदमाल की उत्तरी काली पालिश वाले मृदमाले (NBPW) कहते हैं। यह उच्च किस्म के मृदमाले इस बात का प्रमाण है कि छोटी शताब्दी ई. पू. में गंगा घाटी के नगरों में व्यापक सांस्कृतिक समन्वयता थी। श्रावस्ती मृदमालों का कुछ ही स्थानों पर निर्माण होता था और दूसरे स्थानों को इसका व्यापारियों के द्वारा निर्यात किया जाता था। पुरातात्विक स्थलों पर :

उत्खनन से जो सामग्री मिली है उससे स्पष्ट है कि इस काल के लिए साहित्य में नगरी से संबंधित जो विवरण है उसको काफी बड़ा-बड़ाकर दिया गया है या फिर वह बाद के समय के नगरी के लिए है। नगरी के विषय में प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि किसी भी नगर को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था, जबकि सांख्यिक विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के नगरी को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था। तथाजिना शहर के विशाल स्तर पर किए गए उत्खनन से स्पष्ट होता है कि इस नगर को शायद आठवीं-सातवीं शताब्दी ई. पू. में बसाया गया था। योजनाबद्ध नगर बसाने का काम इसी शताब्दी ई. पू. में ही अस्तित्व में आया। इसी तरह साहित्य में बार-बार वर्णन आया है

चित्र 5 प्राचीन नगरी से प्राप्त पानी सोखने के गड़े



चित्र 4 धनुष आकार के सिक्के



इस समय की बड़ी अस्त्रियां में धनुष आकार के सिक्के बसाने के लिए पक्की ईंटों का प्रयोग होने लगा था। धरों से निकले गड़े पानी के लिये गड़े बनावे जाते थे जिनमें पकी मिट्टी के बड़े पात्र रखे जाते थे। यह एक नियोजित तरीके की ओर संकेत करते हैं। इससे पहले काल में लोग कच्ची ईंटों से निर्मित झोपड़ियां में रहते थे। बड़े आकार की अस्त्रियां के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आबादी का घनत्व बढ़ रहा था। कुछ स्थानों से गली तथा मल स्थलों के भी प्रमाण मिले हैं।

इसका अर्थिक संरक्षण था। धन प्रणाली के लागू होने के कारण अन्ततः महाजन धन का उद्भव माने जाते थे। कोई भी वस्तु खरीदने के लिए गाय ले जाने की अपेक्षा सिक्कों को ले जाना भी लागू नहीं किया जा सकता। जबकि सिक्के खरीदने और बेचने के लिए एक निश्चित मूल्य लेकिन वह मूल्य के बदले बाबल खरीदना चाहता है। अतः इस मामले में वस्तु विनिमय को जिसके विनिमय से वह मूँसा खरीदना चाहता है और एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास मूँसा है व्यक्ति अपने उत्पन्न के माध्यम से विनिमय करते हैं। मानों कि किसी व्यक्ति के पास गाय है कुछ ऐसे सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर कुछ नहीं लिखा है। वस्तु विनिमय व्यवस्था में दो बड़ाया, मिला। उत्खनन वाले स्थलों पर ताल-तोह के मिश्रित इस काल के धनुष आकार के व्यापारियों ने जारी किया। सिक्कों की प्रणाली के लागू होने के कारण संगठित व्यापार की विभिन्न प्रकार के प्रतीकों को बनावया गया है प्रारम्भ में धन सिक्कों को संभवतः धातु और धन सिक्कों को सामान्यतः धनुष आकार के सिक्के कहा जाता है। धन पर एक और में प्रथम बार सिक्कों का प्रयोग होने शुरू हुआ। बाँधी और ताल से सिक्कों का निर्माण होता है इसी वस्तु प्रकार की प्रारम्भ होती है वह इस काल के सिक्के हैं। प्राचीन भारत में इस काल

iii) प्राचीन ग्रंथों से नगरों का पता प्राप्त नहीं होता है।

i) जैसे बृक्षों के नाम पर नगरों का नामकरण होता था उसी प्रकार राजाओं के नाम पर भी नगरों के नामकरण की प्रथा थी।

3) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (✓) या गलत (x) का चिन्ह लगाइए:

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

2) प्रागैतिहासिक साक्ष्य नगरों के विषय में क्या बताते हैं ? इस पर विचारपूर्वक लिखिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

1) समकालीन साहित्य में वर्णित नगरों पर इस पर विचारपूर्वक लिखिए।

बाय प्रश्न 2

जब ऐसा विषयसूची दिया जाता है कि विशाल महलों के साथ समृद्ध नगरों में भी बाल के जंगल अस्तित्व में आते हैं। इससे भी साहित्य उल्लेख है जैसे ऐसा मार्ग पढ़ता है कि मौर्य काल के नगरों को स्तर मानकर उसके पूर्व के काल के नगरों का वर्णन किया गया है।

नगरीय परिवर्तनों के रूप में।

बाँटे हैं विषयों पर का तात्पर्य बस्ती की किलोमीटर से था और जो प्राचीन भारत में प्राथमिक सरलता के साथ निर्माण कर सकता था। इसके द्वारा साहित्य में वर्णित उस समय की भी पुष्टि बनाने का आभास के शेष भाग से स्पष्ट विभाजन हो जाता था। इससे जनता पर राजा से किलोमीटर की जाती थी। नगरों की किलोमीटर से यह भी लगता है कि इसके द्वारा नगरीय कि उर्वर, कोशाली, राजगुह और की किलोमीटर की गई थी। ऐसा लगता है कि पूर्व के मय इस काल का कोई भी ऐतिहासिक मयन नहीं मिलता है। प्राथमिक काल के अनेक नगरों जैसे महल की संरचना का विवरण नहीं मिलता। अधिकतर पर सामान्य संपत्तियों की प्रति है। होता है। कोशाली के महल की संरचना के अतिरिक्त बड़ी बस्ती है। पृ. के अन्य किलों की अधिक नहीं था। इसी प्रकार, विशाल महलों एवं बौद्ध संरक्षकों का वर्णन भी अतिरिक्त मार्ग उल्लेख से प्राप्त होता है कि इनमें से कोई भी नगर 4 से 5 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल से कि अयोध्या और वैशाली जैसे नगरों का क्षेत्रफल 30 से 50 वर्ग किलोमीटर था। लेकिन

15.8 गोध प्रश्नों के उत्तर

रोपाई गारा खेती — इस विधि के अनुसार धान के पौध को एक जगह पर उगाया जाता है और वहाँ से उखाड़ कर उसकी पानी पर खेतों में लगा दिया जाता है, वहाँ पर वह बढ़ता है और फसल देता है। बावजूद की शुष्क खेती में बीज खेतों में बिखारा कर बोये जाते हैं। रोपाई गारा धान की खेती से उपज अधिक होती है।

राज्य-समाज — ऐसा समाज जिसमें शासक और शासित, अमीर और गरीब की उपस्थिति नजराना — परतंत्रता का बोध कराने के लिए कमी-कमी दिया जाने वाला कर।

दैनिक (कर) — वह धन जिसको शासक, व्यक्तियों या गृहों से शक्ति के बल पर स्थायी आधार पर प्राप्त करते हैं।

पीछरी प्रवेश — वह क्षेत्र जो शहर के प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आता है और दोनों एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।

15.7 शब्दावली

दूसरे प्रकार में आपने छोटी शताब्दी है. पू. में नगरों के उद्भव के विषय में पढ़ा। नगर की उत्पत्ति से निर्णायक प्रक्रियाओं का परिणाम भी जिसमें प्रथम है मनुष्य का प्रकृति के साथ- रिश्ता अर्थात् लोहे का उपयोग और धान की रोपाई की तकनीक की जानकारी हो जाना जिसके कारण गंगा घाटी के क्षेत्र में लोगों ने कृषि पैदावार बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली। इसी प्रक्रिया थी, छोटी शताब्दी है. पू. में समाज की आंतरिक संरचना में परिवर्तन होना। इसका तात्पर्य यह था कि शासक जातियाँ जैसे कि क्षत्रिय और ब्राह्मण, व्यापारिक वर्ग के साथ मिलकर अतिरिक्त लाभ उत्पादन और अन्य सामाजिक उत्पाद पर अधिकार प्राप्त कर लेते थे। जिन स्थानों पर पानी व लोकतंत्र लोग रहते थे, उनको शहर या नगर कहा जाता था। यह निश्चय है कि इन लोगों की उपस्थिति का अर्थ था कि उन स्थानों पर बड़ी संख्या में गरीब लोगों की उपस्थिति होना। इसी कारणवश कुछ विद्वानों का मत है कि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति इस भारतीय बरिदला के कारण हुई थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में नगरों को पुर, पाटन व नगर जैसे विभिन्न शब्दों के रूप में वर्णित किया गया है। फिर भी साहित्य में नगरों के शान-शौकत एवं आकार के लिए जो विवरण मिलता है, वह अतिरिक्त प्रतीत होता है। प्राचीन नगर स्थानों की सुवार्द से भी लगता है कि यह साहित्यिक विवरण अतिरिक्त है।

15.6 सारांश

- iii) नगरों के अस्तित्व में आने से भिखारियों, भंगियों और अन्य दरिद्र लोगों के गुर समारं हो गए।
- iv) जिसको की प्रणाली लागू हो जाने से बरूद विभिन्न समाज हुआ तथा समाजों आधार साम्य हुआ।

संसार: छोटी व
 चौकी शताब्दी है. पू. लक

- 2) i) ii) iii) iv)
- 3) i) ii) iii) iv)
- 3) आपको अपने उत्तर में निम्नलिखित मुख्य-मुख्य बातें बतानी चाहिए:
- शेर कूपक आबादी का प्रमुख, नगर के पास के बड़े क्षेत्र के साथ सम्बन्ध से लाभ उठाना, धार्मिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करने का केन्द्र, धन और स्वयं से व्यापक क्षेत्र और केन्द्रीकृत प्रशासनिक इकाई का अस्तित्व। भाग 15.2 को देखिए।
- बायें पृष्ठ 2
- 1) आपको अपने उत्तर में बहुत से शब्दों की व्याख्या करनी चाहिए (जैसे कि पुर, दुर्ग, निगम, नगर) इनका प्रयोग साहित्य में किया गया है और इनके अन्तर भी बताइए। भाग 15.4 देखिए।
- 2) आपको नये प्रकार की मिट्टी के बर्तनों के इस्तेमाल देने चाहिए (उत्तर वाली पॉलिथीन वाले बर्तन)। सिक्कों का प्रारंभ, और घरे के लिए पक्की हटों का उपयोग। यह भी बताइए कि साहित्य में किस प्रकार से नगरों का विनाश बढ़ा-बढ़ाकर किया गया है और उसको पुरातात्विक साक्ष्य में कैसे शुरू किया है। देखिए भाग 15.5

इससे पहले कि हम छूटी सही इ. पू. के चौथी सही इ. पू. तक होने वाले सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के मुख्य आयामों के विषय में विस्तृत रूप से बर्ता करें, यह अनिवार्य है कि प्रस्तावना के रूप में उन बिन्दुओं का संक्षेप में विवरण करें जिनके विषय में पिछली इकाइयों में आप पर बर्ते हैं।

16.1 प्रस्तावना

- समाज के मुख्य अंग, सामाजिक व्यवस्था और श्रमों के ऊपर लगाए गए नियंत्रण, साथ उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के प्रमाण एवं कारक तत्व,
- ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं, और
- इस काल की मुख्य दस्तकारियां तथा व्यवसाय और व्यापार की प्रकृति एवं व्यापारिक मार्ग।

बादें समझ सकेंगे:
 इस इकाई की पढ़ने के बाद आप इस काल के समाज और अर्थव्यवस्था के विषय में निम्न बिन्दुओं पर इस काल में ठीक रूप में प्रज्ञा किया।
 इस इकाई में मुख्य रूप से उन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों का विवरण किया गया है

16.0 उद्देश्य

- 16.0 उद्देश्य
- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 भारतीय जनजातों के बारे में
- 16.3 समाज
- 16.3.1 शक्ति
- 16.3.2 शक्ति
- 16.3.3 शक्ति और महत्त्व
- 16.3.4 शक्ति
- 16.3.5 उपभोक्ता संयोजन
- 16.3.6 विद्यार्थी की शक्ति
- 16.4 अर्थव्यवस्था
- 16.4.1 साथ उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के कारण
- 16.4.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था
- 16.4.3 शहरी अर्थव्यवस्था
- 16.4.4 शहरी व्यवसाय
- 16.4.5 व्यापार और व्यापारिक मार्ग
- 16.5 शक्ति
- 16.6 शक्ति
- 16.7 शक्ति प्रयोग के उत्तर

इकाई की रूपरेखा

इकाई 16 समाज और अर्थव्यवस्था

वर्कालीन साहित्य में शक्तिय लोग समाज के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली वर्ग के रूप में प्रकट होते दिखाई पड़ते हैं। बुद्ध और महावीर समाज के इसी समूह में संश्लिषित थे।

16.3.1 शक्तिय

जिनकी परिवर्तन के प्रयास ने प्रभावित किया।
बल सजा कि परिवर्तन कब और क्यों हुए। आर्य, अब समाज के उन वर्गों के विषय में पढ़ें, के काल में विचारों एवं विषयों में होने वाले परिवर्तन लोगों को साफ़ दिखाई दिए और पुराने विषयों में समय के परिवर्तन निहित थे। जब एक बार चीजों को लिखा गया तो बार-बार। इस तथ्य ने परिवर्तन की वेतना को और प्रबल बनाया क्योंकि सामाजिक व्यवस्था तथा जानकारी प्राप्त हो जाने का तात्पर्य था कि ज्ञान को बिना बौद्ध-मराई-संश्लिषित किया जा सकता था। कुछ तथ्यों को भुला दिया जाएगा या परिवर्तित कर दिया जाएगा। लिखाई की कला की पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता था। जिसमें यह संभवना बनी रहती थी कि कुछ समय पर ज्ञान को फिरार किया। इससे पहले समाज में प्रह्लाप किए गए ज्ञान को केवल कटाके एक मारत की प्रांभिक लिपि की आदमी लिपि कहा जाता है। लिखने की जानकारी ने बड़े स्तर पर प्रारंभ हुआ। इस काल के अंत तक समाज में लेखन की कला को जान लिया गया था। प्राचीन आप इसकाई 15 में पढ़ चुके हैं। यह वह समय भी था जब पढ़ाई-लिखाई की परम्परा का काल था जबकि ऐतिहासिक मारत में प्रथम बार नगर अस्तित्व में आते हैं (इसके विषय में रखा था। समाज में प्रचारक, राजकुमार और व्यापारी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। यह वह खड़ी सदी है, पू. का समाज एक ऐसा समाज था जो अति-महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर

16.3 समाज

उत्तरी काली पाणिशा वाले मद्रमहो से संश्लिषित पुरातात्विक स्थलों का अध्ययन इस काल के समाज की काफी जानकारी प्रदान करते हैं।
बौद्ध धार्मिक ग्रंथों को खड़ी सदी ई. पू. से चौथी सदी ई. पू. के मध्य में लिखा गया।
बौद्ध धर्म से संश्लिषित ग्रंथ प्राथमिक स्रोत हैं। इनकी पाली भाषा में लिखा गया है। प्रांभिक सम्प्रदायों के संश्लिषित संदर्भ मिलते हैं। फिर भी, इस काल की सूचना के लिए हमारे लिए कि अपरतीम्ना ग्रंथ इस काल से संश्लिषित हैं। पाणिनी की व्याकरण में इस समय के बहुत से को बताते हैं। उनको गृह-सूत्र, श्रौत सूत्र और धर्म सूत्र कहा जाता है। इनमें से कुछ ग्रंथ जैसे श्राद्धाधिक ग्रंथ हैं जो दिन-प्रतिदिन के संस्कारों एवं अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के तरीके लोगों तक के समाज एवं अर्थव्यवस्था के विषय में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। ऐसे बहुत से हमारे पास ऐसे विभिन्न प्रकार के साहित्यिक ग्रंथ हैं जो खड़ी सदी ई. पू. से चौथी सदी ई. पू.

16.2 हमारी जानकारी के स्रोत

प्रथम, ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर वैदिक काल में कृषि अर्थव्यवस्था के ठोस आधार प्रह्लाप करने के साथ-साथ नये भौगोलिक क्षेत्र अर्थात् ऊपरी और मध्य गंगा वादी क्षेत्र की ओर वैदिक कालीन संस्कृति का फैलाव हो गया था। दूसरे, समाज में शासकों और एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ था जो स्वयं किसी प्रकार का उत्पादन नहीं करता था, बल्कि समाज के अन्य वर्गों द्वारा किए गए उत्पादन का उपभोग करता था। समाज में असमानता को संस्थागत रूप में दिया गया। संस्थागत असमानता का तात्पर्य राज्य और उसकी व्यवस्था की स्थापना होना था। इसी के साथ समाज को बार-बार में विभाजित करने वाले सिद्धान्त का और अधिक कड़ा होना था। क्योंकि वर्ग सिद्धान्त ने यह स्पष्ट किया कि समाज के विभिन्न वर्ग किस प्रकार अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकते थे।

विशेषाधिकारों का उपनाम करते थे। उनका सम्मान किया जाता था, उनको घट्टे ही जाती थी और व्यापार, परिधि की प्राप्ति और मनुष्य की शिक्षा का विचार करना। ऐसा होने के कारण वे कुछ श्रेष्ठ शब्दों पर आस्था में आने के बाद लक्ष्यों का उल्लेख है। आस्था कुल, उचित आचरण करते थे, जिससे कि अधिन मोजन एवं निवास स्थानों से बचा जा सके। तत्कालीन आस्था थे। यह गुरु इस वेदना से प्रस्तुत था कि वे ही सर्वश्रेष्ठ जाति के थे। वे ऐसे नियमों का पालन मनुष्यता का काम करते हैं। बलि यज्ञों को सम्पूर्ण करने के लिए पूर्ण अधिकार उनके पास आस्तिक श्रमों में उनको विशेषाधिकार दिया गया है कि वे देवदत्त व आदमी के बीच रहता। वह अपना व्यापार परिवर्तित कर सकता है, परन्तु वह सर्वेष्ट आस्था ही रहता।

वे एक जाति समूह के रूप में थे। जो कोई आस्था परिवार में जन्म लेता, वह सर्वेष्ट आस्था ही समकालीन साहित्य में आस्थाओं के विषय में जो सर्वप्रथम मिलते हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि

16.3.2 आस्था

नहीं था। बल्कि वहाँ पर विभिन्न सामाजिक समूह स्वयं को शत्रिय कहते थे। देख-भाल करने के कार्य आदि। विशेषकर पूर्वी भारत में क्षत्रियों का अस्तित्व जाति के रूप में विभिन्न प्रकार के कार्यों को करते थे, जैसे कि धर्म प्रचारक का कार्य, व्यापार एवं खेती की उपरी व मध्य गण घाटी के कुछ राजवंत परिवारों के विषय में लागू किया जा सकता था। वे कहा जा सकता है कि क्षत्रियों के विषय में आस्थाओं की यादों जाति की अवधारणा को केवल कुछ क्षत्रियों को विद्वान अत्यापकों एवं विचारकों की श्रेणी में रखा गया है इस प्रकार यह भी तक प्रतिबल ही जाता है, वह तब भी सबसे अच्छा है और उसकी तुलना में आस्था निम्न है।” स्तर पर रहते हैं। एक प्रवचन में महात्मा बुद्ध कहते हैं — “आर क्षत्रिय सबसे निम्न स्तर आस्तिक श्रमों से निम्न बौद्ध साहित्यिक श्रम चार वर्णों जातीय संरचना में क्षत्रियों को प्रथम कोशल, काशी आदि के राजाओं का कई स्थानों में क्षत्रिय के रूप में विवरण आता है।

समाज व्यवहार लेकर गुरु करता था। धर्म तो मूर्ति-कर देते थे और न ही उनके पास संगठित सेना होती थी। गुरु के समय पूर्ण समाज उनके समाज की अधिकतर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के विषय में नियंत्रण करती सुरक्षित रहते थे परन्तु इन स्थानों पर अन्य लोगों को भाग लेने की आज्ञा नहीं देते थे। वे इसी प्रकार के अन्य गण अपनी समाजों में भाग लेने के अधिकार को पूर्ण सजाता के साथ लोग अपने स्तर एवं वैशाली के लिए बड़ा अभिमान करते थे। शाक्य, लिच्छवि, मल्ल और कि जिस रूप में हम जाति व्यवस्था को समझते हैं क्षत्रिय उस रूप में जाति नहीं थे। क्षत्रिय दोनों क्षत्रिय थे, परन्तु उनके बीच वैवाहिक संबंधों की प्रथा नहीं थी। इससे संकेत मिलता है का पता लगा तो उसने कोष में उनको नष्ट कर दिया। यद्यपि कोशल का राजा और शाक्य सन्तान राजविशेषन की उत्तराधिकारी होती। जिस समय राजा को शाक्यों की इस चालाकी में भ्रम दिया और जिसके साथ राजा ने विवाह कर लिया। इस कन्या से उत्पन्न होने वाली की अवहेलना न कर सके। इसलिए उन्होंने एक शाक्य दास लड़की को कोशल नरेश के पास के राजा ने किसी शाक्य लड़की से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। शाक्य लोग इस प्रस्ताव कि शाक्य लोग इसी कारण समाज ही गए। एक कहानी के अनुसार प्रसन्नचित्त नामक कोशल के किसी साथ कर या किसीके साथ न करे, इसके लिए वे बड़े सजा थे। ऐसा समझा जाता है का प्रवचन था, जिसमें बड़े माई-बहन का आपस में विवाह भी सम्मिलित है। विवाह आस्था और शूद्र इस विभाजन में नहीं थे। इन क्षत्रिय जातियों में बहूत-सी वैवाहिक प्रथाओं आस्तिक जातीय व्यवस्था के अनुसार चार भागों में होने के स्थान पर, केवल दोहरा था। गया है और वे उच्च जाति एवं छोटी जाति हैं। इन गण संघों के क्षेत्र में समाज का विभाजन नहीं करते थे। बौद्ध साहित्य में गण संघ के केवल दो सामाजिक समूहों के विषय में ही लिखा गिनको दास तथा कर्मकार कहा जाता था। ऐसा लगता है कि वे आस्तिक अनुष्ठानों को भी से मूर्ति के स्वामी थे। उनकी मूर्ति पर खेती का कार्य गुलामी एवं मजदूरी द्वारा किया जाता था उनको शाक्य, लिच्छवि, मल्ल आदि कहा गया। वे ऐसे सामाजिक समूह थे जो संयुक्त रूप उनको वैशाली एवं कपिलवस्तु जैसे गण संघों के शासक वर्गों का पूर्वज बताया गया है। उनके विवाह के नियम दृढ़ एवं कठोर नहीं थे, जो किसी जाति की एक विशेषता होती है। माना जाता था। किन्तु, बौद्ध साहित्य में क्षत्रियों का दूस्तरा ही विन प्रस्तुत किया गया है। अर्थात् क्षत्रियों का दूस्तरा स्तर की जाति के रूप में स्थान है। उनको समाज का शासक वर्ग

“वे जगत् में सौपडिया के घर बनाते हैं, वे ऐसे जालों को निर्मित करते हैं जिनसे बिरागी, बिरागी, छिपकलियाँ, मछलियाँ और कछुओं का वे घब करते हैं। वे शिकारी हैं.....”

“उबड़-खाबड़ सड़कों पर से। वे गायों के झुंड एवं निवालों के अन्तर्ग है.....”
“तलवार की दियारा के रूप में धारा किए और बमकरी कुल्हाड़ी को हाथ में लिए, वे वेस की सड़क (ब्यापार वाली सड़क) पर खड़े रहते हैं, वे काफिरों को नरान्त करते बराते हैं

अन्तर्ग है.....”
पर भड़ों को काटा जाता है (पुरोहितों के घरों में), वे भैंस, सुअर एवं बकरी काटने वालों के (शकुन के लिए), वे पशुओं को बधिया करते हैं और शकुन के चिन्तों को तैयार करते हैं। वहाँ “कुछ पुरोहित बाहर से लाये हुए मांजन का सेवन करते हैं, बहुत से लोग उनसे पूछते हैं

के अन्तर्ग है.....”
के लिए बचते हैं, वे बंटी और बंटों के विवाहों का आयोजन करते हैं। वे अखाय और वेस “वे खेती व व्यापार, दोनों करते हैं, वे बकरियाँ एवं भड़ों को पालते हैं, उनके बच्चों को धन के अन्तर्ग है.....”

विभिन्न प्रकार की विक्रम-सामग्रियों को बचते हैं। वे महाराज, वे व्यापारी के अन्तर्ग है “वे आबला, आम और कटहल आदि फलों, मिर्ची, सुगन्धित वस्तुएँ, शहद, उबटन और लणघ, वे मिर्छारियों की भाँति घूमते हैं। वे लकड़ी काटने वालों के अन्तर्ग है.....”

“शरीर पर लंबे बालों व लंबे नाखूनों के साथ, गंदे धात, गंदे बाल, घूल और गंदगी से रिया गया तो हम गीब या जगल को नहीं छोड़ेंगे। वे देवस हकटला करने वालों के अन्तर्ग है.....”
लोगों की भाँति गीब और देश के नगरीयों में विवरण करते हुए कहते हैं, अगर हमको कुछ न “वे एक जल का बर्तन और घुमावदार बेंत लेकर चलते हैं, राजाओं की पीठ पीछे वे विराक्षण

परियों की गण्डियों को भी खींचना जानते हैं.....”
लिए आपके समक्ष आते हैं, जिससे वे अपना सन्देश देते हैं, और वे नौकरी की भाँति चार “कुछ कुल के राजा ने उत्तर दिया, वे विवरण करते रहते हैं” “वे छोटी घंटियाँ

बादल वाहते हैं, उनको कैसे खोजा जाए।”
विक्रमिक की भाँति कार्य करते हैं, आप उनको जाते हैं। वे महान राजा। आप जिस प्रकार के श्लोकों का उच्चारण करते रहते हैं। वे स्वयं को बाह्यण कहते हुए भी एक आधार पर इस प्रकार पाया जाता है, वे जड़ी-बूटियों को एकत्रित करते हैं, स्नान करते और “वे राजन, बाह्यणों के रस वर्ग हैं, वे विभिन्न प्रकार के हैं। उनकी गुणों एवं वर्गीकरण के

इन्दीय सुखों का परिचय कर, आपके द्वारा दिए गए उपहारों से आनन्द ले सकें”।
“वे राजन, ऐसे बाह्यणों को खोज पाना अति कठिन है, जो सदावारी एवं विद्वान हो, जो जाणा, उससे अति आनन्द की प्राप्ति होगी”।

उपहार भेंट कहेगा, उपहार, जो मित्र, वह जहाँ भी हो उसकी खोज करो, उसको जो भी दिया खोजो जो सदावारी एवं विद्वान हो, वह इन्दीय सुख का परिचय कर चुका हो, उसको में था.....”। उसको बैठने के लिए स्थान देते हुए राजा ने कहा, “विधुर एक ऐसा बाह्यण था। उसकी सांसारिक एवं आध्यात्मिक मामलों पर सलाह देने के लिए उसका एक मंत्री विधुर

“प्राचीन काल में कुछ राज्य की राजधानी इन्द्रपट्टे थी और कुछ परिवार का राजा युधिष्ठिर विवरण है जो हमें बाह्यणों के प्रति बौद्ध लोगों का दृष्टिकोण बताती है। कहानी इस प्रकार है, है कि बाह्यणों ने भी अन्य व्यापारों को अपनाया। इस बाह्यण जातक में एक कहानी का

अधिक संख्या बाह्यणों की थी। किन्तु पाली साहित्य में ऐसे विवरण भी हैं जिनसे पता लगता स्वीकार किया। इसलिए ऐसा पता गया था कि महात्मा बुद्ध के प्रारम्भिक अनुयायियों में सबसे अनुष्ठानों तथा बाह्यणों के जालोचन की भी आलोचना की। बहुत से बाह्यणों ने बौद्ध धर्म को उनकी आलोचना की कि वे धार्मिक नैतिक जीवन से विमुख हो गए थे। उन्होंने आह्वारपूर्ण जीवन व्यतीत किया। बौद्ध धर्म सामान्यतः बाह्यण वर्ग के आलोचक हैं। इन्होंने इस कारण भी और उन्हें मृत्यु वृद्ध नहीं दिया जा सकता था। बहुत से बाह्यणों ने सन्यासी एवं शिक्षक का

यह धनी मू-स्वामियों का ही जग था जिससे कि कुछ धनी व्यापारियों का विकास हुआ। गहपतियों का विवरण व्यापारिक नगरों में भी किया गया है। सम्पत्ति पर अधिकारिता स्थापित और बाह्यवाद के कमजोर प्रभाव के कारण गहपतियों ने अपनी सम्पत्ति का उपयोग व्यापार में किया। परिवर्णी भाग घाटी में इस सम्पत्ति का उपयोग बलि यज्ञों के लिए किया जाता होगा। मू-स्वामी और व्यापार की इस तरह की सी शोषण हो जाने से धनी वर्ग की उत्पत्ति हुई। धनी का शाब्दिक अर्थ है "वह व्यक्ति जिसके पास सर्वश्रेष्ठ है" "सेठी-गहपति का अर्थ था बहुत धनी व्यापारी या साहूकार जिसके राजा से निकट के संबंध थे। अनाथपिण्डिका, जिसने श्रावस्ती में बृह को जेतावन दिया ऐसा ही अभीर सेठी था। बनारस के एक सेठी का विवरण मिलता है जो व्यापार करता था और उसके पास 500 गाहियों का कॉफला था। जिसको के प्रबलन के साथ उनका साहूकारी का पेशा जोर-शोर से चला। समकालीन साहित्य में शातामना, कर्षण आदि नाम के सिक्कों का विवरण मिलता है। पुरातात्विक खोजों से भी पता चलता है कि उस समय सिक्के प्रबलन में आ चुके थे। दर-दराज के क्षेत्रों के साथ व्यापार के भी विवरण मिलते हैं।

मू-स्वामी, साहूकार या अनाज का व्यापार करते हुए दिखाया गया है। प्रयोग परिहार (कुटुम्ब) के स्वामी के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है। उनको धनी बहुरिशी, दवाई आदि के व्यवसायों से जुड़े थे। पाली ग्रंथों में एक बहुरिशी शब्द कुटुम्बिका का और राजाओं के लिए लगान के सौत थे। गहपतियों में वे धनी लोग भी सम्मिलित थे जो मध्य भाग घाटी के राजतंत्रों में मिलता है। वे कृषि संसाधनों का मुख्य उपयोग करने वाले थे यहाँ पर मूिम का स्थापित वंशावलिओं के पास था। इनका विवरण प्रचुरता के साथ विशेष रूप से ज्ञान देने की बात यह है कि यह गण संघों में बहुत कम मिलते हैं क्योंकि जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि गहपति मू-स्वामियों के एक मुख्य वर्ग के रूप में थे समूहों का अध्ययन करें।

विद्यमान नहीं थी। इसकी अवस्था बहुत से समूह जातियों के रूप में बन गए। अब हम उन ग्रंथों में जिस प्रकार से वैश्य जाति का विवरण किया गया है, उस रूप में यह जाति कभी भी उनकी स्थानीय मौलिकता के आधार पर ही विधायित्व किया जाता था। परन्तु ब्राह्मणिक अवस्थाओं और व्यापारियों का विवरण मिलता है, जिसका वर्गीकरण ब्राह्मणिक ग्रंथों में वैश्यों कबीले का संयुक्त स्थापित था। बौद्ध साहित्य में गहपति शब्द के अतिरिक्त अनेकों प्रकार के स्थापित के उल्लेख की ओर संकेत करता है। इससे पहले के काल में सम्पत्ति पर सम्पूर्ण वंशित राजन्य और विशेष गृहों से हुई थी। उनकी उत्पत्ति सम्पत्ति पर परिहार एवं अधिकारिता अपनी मूिम पर होती करती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी उत्पत्ति वैदिक साहित्य में का स्वामी। यह समुदाय मूिम का स्वामी था और वे परिवार भ्रम, दसों और नौकरों के भ्रम से गहपति शब्द का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया गया है। गहपति का शाब्दिक अर्थ है कि घर कार्य पशुओं की पालना, कृषि करना तथा व्यापार करना था। बहुरिशी और, बौद्ध साहित्य में ब्राह्मणिक वर्ग व्यवस्था में वैश्य अनुष्ठानिक क्रम में तीसरे स्थान की जाति थी। उनका मुख्य

16.3.3 वैश्य और गहपति

जाति के रूप में पहले ही स्थापित हो चुकी थी। करती थी या गुलामी तथा नौकरों की मदद से कराते थे। किन्तु, उनकी मुख्य पहचान एक विद्य ब्राह्मण अहिंसा थी। ऐसे भी विवरण हैं, जिनके अनुसार ब्राह्मण कृषक थे, जो अपनी खेती स्वयं थे। वे अपनी जातीय पहचान को नहीं खोते थे। ऐसे विवरण मिलते हैं जिनके अनुसार विद्यान है। वे अपने व्यवसायों में परिवर्तन करने के बावजूद भी अकारण्य रूप से ब्राह्मण समझे जाते। यह हमें समकालीन समाज में होने वाले विभिन्न व्यवसायों की भी एक सलक प्रदान करती है। यह कहानी ब्राह्मणों के द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यकलापों का विवरण प्रस्तुत करती है। (अधिकृतियों तथा स्थानों के नाम और उच्चारण मूल स्रोत पर आधारित है।)

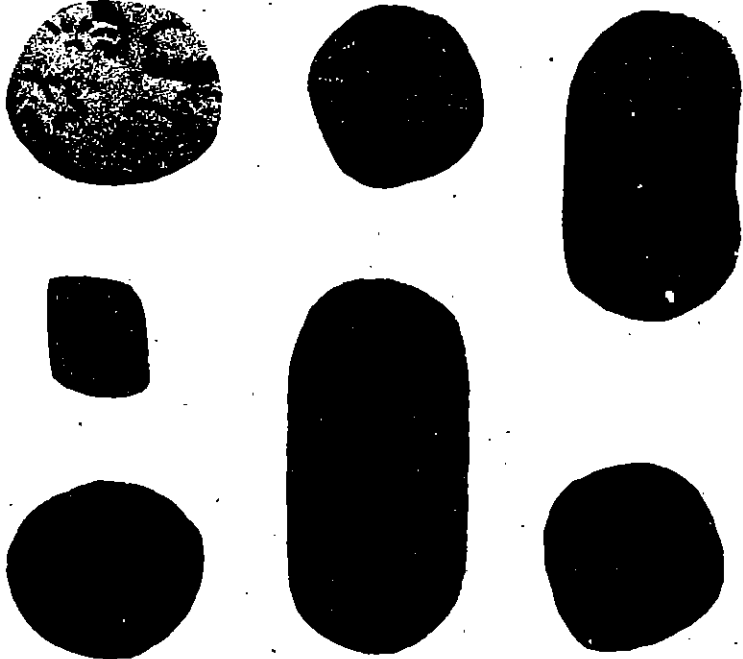
"राजा के पलायन के नीचे ही वे धन के लिए झूठ बोलते हैं, सोमरस की प्रस्तुति देवार के बाद ही वे स्नान करते हैं। स्नान कराने वालों के अनुक्रम ही है।"

शुद्धि के विभिन्न समूहों के उदय के लिए संकीर्ण जाति की परिचयना को उत्तरदायी मानते सामान्यतः कारीगर और वस्त्रकार भी शुद्धी में मान लिए जाते थे। अधिकतर पूर्वसूत्र शुद्ध वर्ग के लोग दूसरों की सेवा और धनी लोगों की भूमि पर काम करने के लिए मजदूर थे। भूमि और अन्य संसाधनों पर अधिकार कर लिया था। सभी तरह के संसाधनों के अभाव में वर्ण के अस्तित्व में आने का कारण शायद यह था कि समाज के धनी और शक्तिशाली वर्ग ने धनों के बारे में विवरण मिलता है। समाज के कुछ समूहों का अन्तर्गत गरीब होना तथा शुद्ध नहीं होना था। इस तरह पहली बार हमें विभाषिता में रहने वाले धनी और अन्तर्गत गरीब, लिए होता है जो बहुत गरीब थे और जिनके पास खाने के लिए या उन दंडकों के लिए कुछ कामगार (मजदूरी पाने वाले) लोगों का विवरण आता है। दलित शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के दलित समूहों की वर्ण करते हैं जो शुद्ध कहे जाते थे। पाली साहित्य में बहुधा वास और करना ही उनका कर्तव्य था। आधुनिक प्रथा के अलावा अन्य प्रथा बहुत से ऐसे गरीब और आधुनिक व्यवस्था में शुद्ध सबसे निम्न स्तर पर समझे जाते थे। अन्य धनों वर्णों की सेवा

16.3.4 शुद्ध

अंतर ही विवाह संबंध किए जाते थे। समूह के नियम भी नहीं बदले जा सकते थे। और अपने व्यवसायों से ही पहचाने जाते थे। यह समूह एक जाति की ही भांति थे। समूहों के इससे यह भी पता चलता है कि व्यवसायों पर आधारित कुछ समूह अस्तित्व में आ गए थे कर। श्रेणी संघों का संगठित रूप यह बताया है कि व्यापार और उद्योग का भी विकास था। यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह श्रेणी संघों के नियमों को स्वीकार करे और उनकी रक्षा दिया। इन संघों का एक मुखिया होता था जो उनके हितों की देखभाल करता था। राजा का परिवार में सीमित रहने की परम्परा ने इन व्यवसायिक श्रेणियों या शिल्पी संघों का रूप व्यवसाय नहीं कर सकता था। कार्यों का यह स्थानीय विभाजन और व्यवसायों की निश्चित अपने व्यावसायिक संघ बना लिए थे। परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त कोई और वह बनाने वाले, माला बनाने वाले और धातु का काम करने वाले आदि शामिल हैं। इन लोगों ने इनमें फुटकर हुकानदार, व्यापारी, कृषी करके बर्तन बेचने वाले, बहड़े, हाथी दांत की बस्तुएँ बड़े व्यापारियों और मूल्यामियों के अतिरिक्त छोटे व्यापारियों का भी विवरण मिलता है।

चित्र 6 छठी शताब्दि ई. पू. के सिक्के



पुत्र के नियंत्रण में रहना होता था। संघ (बीट) में भी उन्हें पुत्रों से नीचा समझा जाता था। सामान्य समा में बैठने के योग्य नहीं समझा जाता था। स्त्रियों को हमेशा पिता, माई अथवा बही थी। महिलाओं को आदिमियों की तुलना में देखा जाता था। उन्हें किसी भी श्रद्धा नहीं थी जो अपने स्वामी और स्वामिनियों की सेवा करने में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देव स्थान को जन्म देने का साधन मान थी। परन्तु साध ही ऐसी महिलाओं की संख्या थी थी। परन्तु यह बात मुख्यतः अधीर लोगों को पत्नियों पर लागू होती थी। उनके लिए पत्नी करने वाली को देख देना। निरीह दास को मातृ रहने वाली पत्नी को आस्था पत्नी कहा जाता गया है कि राजा के दो प्रमुख कर्तव्य हैं — स्थिति और परिवार की मर्यादा का उल्लंघन स्थापित करने पर श्रद्धा और दिया जाता था। समकालीन साहित्य में स्थान-स्थान पर कहा प्रभावित किया। चूंकि पिता की सम्पत्ति पर पुत्र को अधिकार प्राप्त होता था इसलिए छोटी शताब्द देना पूर्व के समाज और अव्यवस्था के परिवर्तनों ने स्त्रियों की स्थिति को भी

16.3.6 स्त्रियों की दशा

समाज और आध्यात्मिकता पर बर्दाश्त और श्रद्धा करते थे। महावीर और बुद्ध इसी प्रकार के लोगों में थे। धर स्थान दिए थे। यह लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे और जीवन के अपने इस काल का एक प्रमुख समूह परिश्रमक और श्रमण का था। यह वह लोग थे जिन्होंने अपने

16.3.5 वृषभकण्ड सन्ध्या

गाँवों का भी वर्णन आता है। गाँवों से छूटते जाते थे। वे या तो दास बन जाते थे या ब्राह्मण। समकालीन साहित्य में ब्राह्मणों के धन-मानस की रक्षा करता था। यह वह पिछड़े हुए कबीले थे जो जंगलों में रहते थे और रूप में रहने का समर्थन यह कहकर किया जाता था कि वह ब्रह्मण्य करने वाली कबीलाइयाँ मुकूट, निवार और वन इसी प्रकार के अन्य वर्णित समूहों में आते थे। राजा के शासक के आदेशों के शरीर से उत्तार वस्त्र पहन सकते थे और टूटे हुए बर्तनों में खाना खा सकते थे। धन अगर उसे छू गई तो वह (शास्त्र) अपवित्र हो जाएगा। वाण्डाल लोग केवल मरे हुए पशु। इसी प्रकार एक शास्त्र देस बात से विनित था कि वाण्डाल के शरीर को छूने वाली माना जाता था। यहाँ तक कि एक सेठी की लड़की को वाण्डाल देखने पर अपनी आँखें धोनी पड़ा कि छुआछूत अस्वित्त्व में आया। वाण्डाल अलग गाँवों में रहते थे। उन्हें अत्यधिक अशुभ गरीब शूद्रों के शहर के बाहर निवास करने का विवरण मिलता है। इसका सीधा प्रभाव यह मरे पड़े है।

देखा जाता था। कमी-कमी यह समूह जिह्वा भी करते थे। जातक कथाओं में शूद्रों के विवरण कृषि पर आधारित नये समाज के प्रभाव क्षेत्र से बाहर थे। सामान्यतः उन्हें वर्णा की दृष्टि से श्रेणियों में रख पाना कठिन है। शापद यह वर्ण व्यवस्था के बाहर थे। इनमें से अधिकतर सामाजिक समूह है जिनके विषय में हम जानकारी मिलती है। इनको समकालीन जातीय करतब दिखाने वाले, सूर्यवार, सैनिक, लोखक, धनुर्धरी, शिकारी और माई आदि कुछ ऐसे प्रदर्शन करते थे। इनके अतिरिक्त करतब और हाथ की सफाई दिखाने वाले, मसखरे, बाघी के वृषभकण्ड नाचने और गाने वाले, जो एक गाँव से दूसरे गाँव घूमते फिरते थे, अपनी कला का उपयोग समूहों के अतिरिक्त बुद्ध के काल की सामाजिक श्रेणियों की सूची बहुत लम्बी है।

आने से अधीर और गरीब के बीच की खाई और बढ़ गई। शोष में दास, कर्मकार तथा कसक (कृषक) मजदूरों के प्रमुख शोष थे। नगरों के अस्वित्त्व में नहीं कर पाते थे। धनी लोगों की मूर्ति पर उनसे अक्षरदस्ती काम कराया जाता था। श्राद्धा देवता नहीं थी। शूद्र मजदूर अधिकांशतया युद्धवीर होते थे अथवा ऐसे लोग थे जो श्रमण यास समकालीन साहित्य में वाण्डाल का काफी विवरण मिलता है। यह ऐसे दास थे, जिनकी कोई शक्ति नहीं थी।

कोरीगरी की तरह थे। वैदिक समाज के कुटुम्बीय संबंधों के अंत से यह वर्ण सबसे अधिक के शोषों। कर्मकाण्डों के नियम यह लोग सामाजिक व आर्थिक स्तर में किसानों, शोषों और है। इस संकल्पना के अनुसार अगर कोई अवर्जातीय विवाह करेगा तो उसके वंशज निम्न जाति

आइए, इस काल के आर्थिक जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर डीटेल दें।

- 3) साध ही इस काल में ऐसे प्रमुख नगर बन चुके थे जो व्यापार मार्गों पर स्थित थे तथा जिनमें विविध प्रकार के उच्च स्तर के व्यवसाय थे। नदी घाटियों के विशाल मैदानी क्षेत्रों में ऐसे नगरों का होना भी कृषि द्वारा आर्थिक साध उत्पादन का संघटन है।
- 2) अगर कृषि उत्पादन इतना न होता कि समाज के अन्य वर्गों को साध आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाता तो सोलर महाजनपद, उनके महत्वपूर्ण नगर और स्थायी सेनाओं का अस्तित्व संभव नहीं होता।
- 1) पूर्वतया दान-दक्षिणा पर आधारित मठ-व्यवस्थाओं का विकास भी आर्थिक कृषि उत्पादन को दर्शाता है।

आतिथ्यः

उत्पादन को पुनः करते हैं (इन शब्दों का उल्लेख इकाई-17 में किया गया है)। इसके बसा पर प्रकाश डालने वाले साहित्यिक और पुरातात्विक शोध उस काल के बड़े हुए कृषि युद्ध हुआ नहीं था, यह साधन उपलब्ध करा सकी। छठी-पांचवीं शताब्दि ई. पू. की आर्थिक साधन के साधन प्रदान कर सकी। साध ही यह समाज के उस वर्ग को भी, जो सीधे कृषि से आपस में संबंधित थी, इसलिए अस्तित्व में आई क्योंकि नई कृषि व्यवस्था कृषकों को जीवन सहसाह्वित ई. पू. के मध्य तक काफी महत्वपूर्ण स्थान ले चुकी थी। यह दोनों प्रक्रियाएँ, जो हमने देखा कि राज्य वर्ग की स्थापना और समाज में श्रेणीबद्धता, दोनों प्रक्रियाएँ पहली

16.4 अर्थव्यवस्था

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) ब्रह्म के काल में शूद्रों की पतनशील बसा का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) ब्राह्मणों और क्षत्रियों में क्या असमानताएँ हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

1) इस ब्राह्मण जातक की कथा से आप किस प्रकार का निकर्ष निकाल सकते हैं ? पांच प्रक्रियाओं में आपका उत्तर लिखिए।

.....

.....

.....

.....

अधिक थे।

1) ऐसे गांव विनये विभिन्न जातियों व समुदायों के लोग रहते थे। इस प्रकार के गांव

विवरण मिलता है। पाली साहित्य में तीन प्रकार के गांवों का विवरण मिलता है:

अर्थव्यवस्था का अपना एक रूप था। विभिन्न ग्रामीण समुदायों के मूल पर अधिकारों का बहुत से समकालीन साहित्यिक स्रोतों से यह जानकारी मिलती है कि बहुत से ग्रामीण कर्मों की

विकास हुआ।

बढ़ाया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि एक जटिल ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था का

व्यवसायों और व्यापार की विकास प्रदान किया तथा एक बड़े क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों को

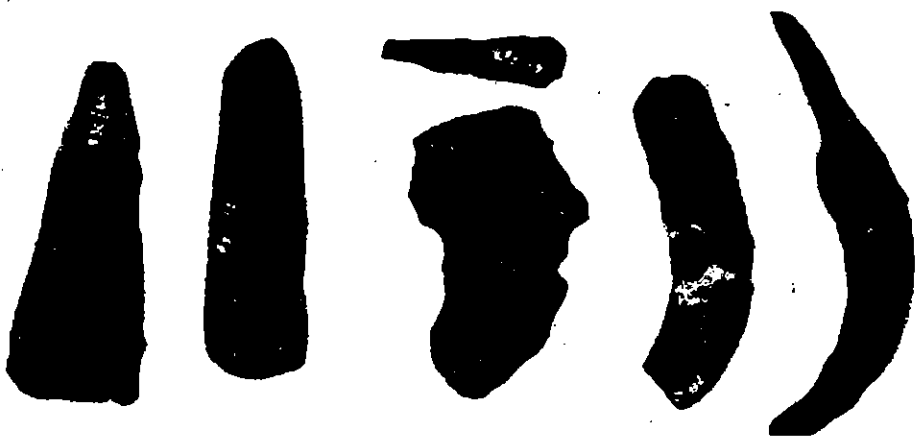
विकसित के प्रचलन में इस प्रक्रिया में बहुत योगदान किया। इसने आर्थिक गतिशीलता तथा

परम वीक्षण पर आधारित अर्थव्यवस्था का आज़ार की अर्थव्यवस्था में संक्रमण हो रहा था।

शहरों के आस पास की उपजाऊ मृत्ति की अधिक उपज के कारण व्यवसाय भी विकसित हुए।

16.4.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था

चित्र 7 कृषि में प्रधान होने वाले औजार



भी था।

और सामान होने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि समाज का एक वर्ग सम्भवतः मासोष्ठी

और सूअर की हडिडिया बड़ी मात्रा में प्राप्त हुई है। पशुओं का उपयोग केवल हल चलाने

जीवन यापन का साधन था। जनेकों पुरातात्विक स्थलों से मवेशी, भेड़, बकरी, घोड़े

पालन और शिकार किया जाता था। यह उनकी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख साधन और

4) धान अथवा बाजल का उत्पादन करने वाली अर्थव्यवस्था की कमी की पूर्ति के लिए पशु-

कारण रोपाईं द्वारा धान की पैदावार करना था।

3) उत्तर वैदिक काल की तुलना में बुढ़ के काल में अधिक अनाज के उत्पादन का एक

की रक्षा करने पर बल दिया जाता था।

2) ओह लोग पशुओं की रक्षा पर बहुत बल देते थे। सुलनिपव के अनुसार पशुओं को नहीं

मारना चाहिए क्योंकि वह अनाज प्रदान करते हैं। इस प्रकार, कृषि कार्यों के लिए पशुओं

बाजरे की खेती होती थी।

1) छोटी शताब्दि ई. पू. के बाद के काल में लोहे के औजारों ने मृगा के मैदानों में जागलों को

साफ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्षेत्र के बड़े मृगमग में धान, गेहूँ, जौ और

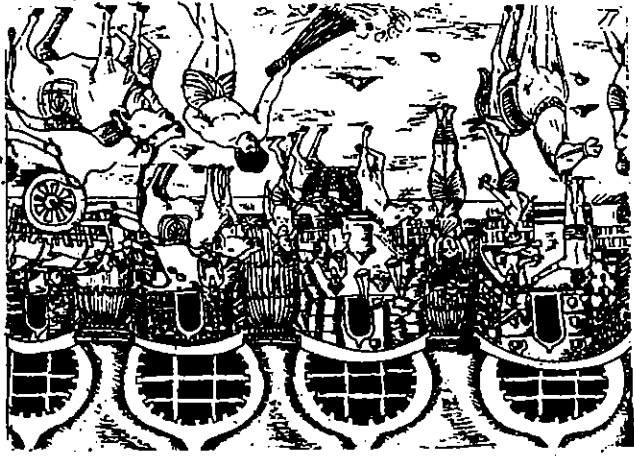
उत्तरवासी थे। समकालीन स्रोतों का अध्ययन निम्न कारकों को दर्शाता है:

आइए पहले यह देखें कि इस बड़े हुए कृषक और खान उत्पादन के लिए कौन से तत्व

16.4.1 खान उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के कारण

भारत: छोटी व

और शताब्दी ई. पू. तक



रम प्रत्येक का अलग-अलग अध्ययन करें।

- ii) शहर का आंतरिक तथा अन्य शहरों के साथ व्यापार।
- i) ऐसा औद्योगिक उत्पादन, जिसमें बहुत प्रकार के व्यवसायी और कारीगर लगे हुए थे।

शहरी अर्थव्यवस्था-मुख्यतः दो कारकों पर निर्भर थी:

- पहा-लिखा सामाजिक वर्ग।
- कानून और व्यवस्था स्थापित करने वाली राजनीतिक व्यवस्था
- धातु मुद्रा का प्रचलन
- व्यापारिक विनिमय के केन्द्र
- विशिष्ट कारीगर उत्पादन
- अतिरिक्त आन उत्पादन (जिसकी पूर्ति पास के गांवों से होती थी)

विकास के लिए निम्न चीजें आवश्यक थीं।

लिए वस्तुओं का भारी मात्रा में उत्पादन और विनिमय करते थे। शहरी अर्थव्यवस्था के शहरी अर्थव्यवस्था पर उन व्यापारियों तथा कारीगरों का प्रभाव था जो एक विशिष्ट क्षेत्र के

16.4.3 शहरी अर्थव्यवस्था

अन्य विशेषताएँ थीं।

उत्पादन, बंगल और स्थानीय आवश्यकता के लिए पशुओं की आपूर्ति शामिल अर्थव्यवस्था की खेती के प्रमुख व्यवसाय होने के साथ-साथ पशु-पालन, खेती से संबंधित छोटे कारीगर

आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ गांवों तक पहुँचाते थे।

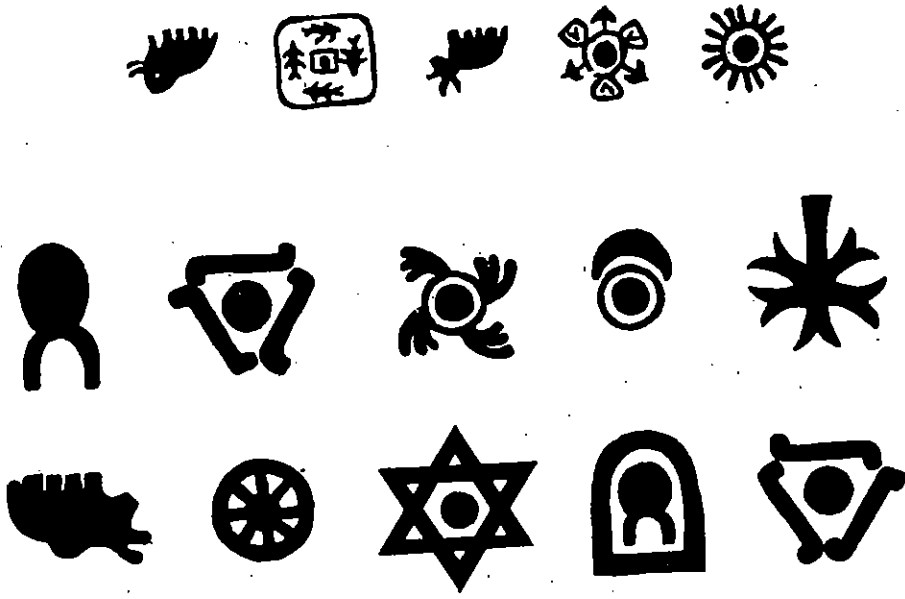
प्रमुख व्यवसाय खेती करना था। गांवों की अतिरिक्त उपज शहरों में पहुँचती थी तथा शहर सबका समान अधिकार था। इन गांवों की अपनी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था थी। ग्रामीण क्षेत्रों का क्षेत्रों की भूमि को बेचना, गिरवी रखना और उत्तराधिकार में देना मना था। बरामगहों पर अवकाश प्राप्त अधिकारियों और पुरोहितों को भी नये क्षेत्रों में भूमि प्रदान की जाती थी। इन साधन प्रदान करार जाते थे। इन लोगों को करों में छूट और अन्य सुविधाएँ भी दी जाती थीं। विकास किया। नये स्थानों पर बसने के लिए राज दरार पशु, बीज, धान और सिंचाई के अर्थव्यवस्था विकसित हुई। नए ही रहे गांवों को फिर से बसाने में भी इस अर्थव्यवस्था का पनी जनसंख्या वाले क्षेत्रों की अतिरिक्त जनसंख्या द्वारा नई भक्तियों की स्थापना से ग्रामीण

जाते थे। यह बहुत सरल जीवन व्यतीत करते थे।

3) बंगलों की सीमाओं पर स्थित गांव भी थे, जिनमें शिकारी तथा बहेलिये (विडिया पकड़ने

का काम करते थे और शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बीच समूह के रूप में कार्य करते थे।

2) अर्ध-शहरी गांव एक प्रकार के व्यावसायिक केन्द्र थे। यह अन्य गांवों के लिए एक बाजार



विश्व काठीगर उत्पादन के साथ व्यापार का विकास भी जुड़ा हुआ है। उस काल में देश के अंदर और विदेशों से व्यापार काफी फल-फूल रहा था। अनेक व्यापारी अनेकों वस्तुओं के व्यापार से समृद्ध हो रहे थे। चित्तक, मलमल, हथियार, सुगन्धित द्रव्य, हाथी दांत, हाथी दांत

16.4.5 व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग

रुज, तेल व धातु यंत्र थे।

- 7) अन्य मिश्रित प्रकार के उद्योगों में माला बनाना, सिर व धनुष बनाना, कंबी, टोकरिया,
- 6) हथियों और हाथी दांत की वस्तुओं की कला
- 5) काच निर्माण कला
- 4) पत्थर तराशने की कला
- 3) धातु कला
- 2) बरतणियाँ और लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण सम्मिलित है।
- 1) मिट्टी के बर्तन बनाना, जिनमें पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियाँ और ईटे

काठीगर उत्पादन निम्न वर्गों में बाँटे जा सकते हैं :

मनके, ताँबे और लोहे की वस्तुएँ आदि अनेक प्रकार के काठीगर उत्पादन के साक्षी हैं। यह तथा मनोरंजन की वस्तुएँ, हथी और हाथी दांत की वस्तुएँ; चित्तक, पत्थर व शीशे की वस्तुएँ, (विशेषकर उत्तरी काली पालिश वाले), पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियाँ और खेत मृत्तिका निर्माता थे। उत्तरी भारत में अनेक स्थलों की खूबाई से प्राप्त मिट्टी के बर्तन आता था, परन्तु वह वस्तुओं के विवरण और विनिर्माण द्वारा अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण सौधा प्रभाव नहीं पड़ता था। यह सेवाओं की श्रेणी में आता था। व्यापारी वर्ग भी इस श्रेणी में था। द्वितीय वर्ग मुख्यतः प्रशासनिक अधिकारियों का था और इसका अर्थव्यवस्था पर कोई किसी प्रक्रिया से जुड़े थे और दूसरे यह जिनका किसी प्रकार के उत्पादन से कोई संबंध नहीं शहरी व्यवसायों को थे श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पड़ते वह जो उत्पादन की किसी न

16.4.4 शहरी व्यवसाय

इस इकाई में आपने जो अध्ययन किया वह अधिकतर प्रारम्भिक पाठों और उत्तरी कोशी

.....
.....
.....
.....

3) इस इकाई के अध्ययन काल के प्रमुख व्यापार मार्ग कौन-कौन से थे ?

.....
.....
.....
.....
.....

2) ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास किस प्रकार हुआ ?

.....
.....
.....
.....
.....

1) यह कौन-से प्रमुख कारक थे, जिन्होंने कृषि के विकास को प्रभावित किया ?

बाद्य पद्यन 2

वस्तु-विनिमय के साथ-साथ अब विनिमय के नये तरीके सामने आ रहे थे। अब बस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिए कहण (कर्षण) नामक सिक्का प्रचलन में आ गया था। यह चाँदी और तांबे का सिक्का था जिस पर व्यापारी अथवा शिल्पी संघ की छाप रहती थी, जो इन सिक्कों के मानदंड का प्रतीक थी। बैंकों की परिकल्पना भी नहीं थी। अतिरिक्त धन से तो सोने के जेवर आदि खरीदे जाते थे या इस धन को बर्तनों में रखकर जमीन में दबा कर रखा जाता था या किसी भिन्न के पास सुरक्षित रख देते थे।

सुरक्षित थे।

व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। क्योंकि यह उत्पादन और वितरण के प्रमुख केन्द्र थे और अधिक से जोड़ता था, चौथा प्रमुख मार्ग काशी को पश्चिमी तटों से मिलता था। नगर ही वृद्धि राजमह से जोड़ता था, तीसरा मार्ग हिमालय की तलहटी से घूमता हुआ तथाशिला को श्रावस्ती श्रावस्ती से प्रतिस्थान (आधुनिक पृथ्वी नजी महाराष्ट्र में है) तक था, दूसरा मार्ग श्रावस्ती को जाते थे। देश के अंदर यह लोह कूट निरिवन मार्गों का प्रयोग करते थे। इनमें से एक मार्ग पूर्व में बाल्यक और पश्चिम में महीव से समुद्री यात्राओं से विदेशों में श्रीलंका और बर्मा तक की बस्तुएं तथा जेवर आदि थे। यह व्यापारी पूरे देश में नदी मार्गों से यात्रा करते थे और

1) उपमा 16.4.1 देखें। आप के उत्तर में बड़े बड़े कृषि उत्पादन के लिये उत्तरदायी नस्लों जैसे लोहे के औजारों का प्रयोग कृषि के लिये पशुधन की रक्षा और रोपाईं द्वारा धान की

बोध प्रश्न 2

हुई रक्षा के लिये उत्तरदायी थे।

3) देखें उपमा 16.3.4 आपको अपने उत्तर में यह दिखाना चाहिए कि किस प्रकार शक्तिशाली नगी द्वारा मृमि पर अधिकार, शृणुबद्धता, कानूनी अधिकार का अभाव, उच्च वर्ग के लोगों के जन्म की परिवर्तता और शूद्रों के जन्म की अपरिवर्तता आदि शूद्रों की गिरती

कलाओं पर भी ध्यान दीजिये।

2) उपमा 16.3.1 देखें। आपके उत्तर में दोनों समूहों की यह मृमिका सम्मिलित होनी चाहिए जो समकालीन साहित्य में मिलती है इनके द्वारा किये जाने वाले विभिन्न क्रिया

1) उपमा 16.3.2 देखें। अपने उत्तर में आप को यह बताना चाहिए कि जातक के अनुसार कैसे शाहणों को अपना व्यवसाय चुनने की छूट थी और वे कौन-कौन से वर्गों में जाते थे।

बोध प्रश्न 1

16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

देस शाहण जातक — जातक कथाओं की एक पुस्तक का नाम।

जातक कथाएँ — शूद्र के पिछले जन्मों से जुड़ी हुई कहानियों का संग्रह।

सुत्तनिघण्टु — एक बौद्ध ग्रंथ।

पुत्रकृत्य, निघण्टु, वेन — तीन अछूत जातियाँ।

वेतवान — शूद्र को एक व्यापारी द्वारा दान में दी गई यादिका।

वैश्य — पाली भाषा में "वैश्य" के लिये प्रयोग किया जाने वाला शब्द।

16.6 शाब्दावली

प्रादेशीय बर्तनों के काल के पुरातात्विक स्तूपों के आधार पर लिखा गया है। इसी काल में राज्य के गठन और सामाजिक श्रेणीबद्धता की प्रक्रिया अस्तित्व में आई और पहली सहरासिद्ध ई. पू. के मध्य तक इसने काफी महत्त्व प्राप्त कर लिया। समाज में बारी बारी, शाहण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सामाजिक कार्य कलाओं पर नये सिरे से बल दिया गया उत्तर वैदिक काल अथवा सखेरी रंग के मद्रमाण्डों की संस्कृति, जिसमें शाहण और क्षत्रिय मुख्य मृमिका निमाते थे, में कई परिवर्तन हुये। यह परिवर्तन विशेष कर व्यापारी या वैश्य वर्गों के कारण थे, जिन्होंने बड़े बड़े व्यापार से काफी धन कमा लिया था। शूद्रों पर तरह-तरह के नियंत्रण लगाये जा रहे हैं। शाहणों का उत्पादन काफी बढ़ गया था। उत्पादन में वृद्धि के प्रमुख कारण लोहे के औजारों का प्रयोग, रोपाईं द्वारा धान की खेती तथा धार्मिक आधार पर पशुओं की रक्षा करना था। सामान्य मरण घोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था का स्थान अब शाहण अर्थव्यवस्था ने ले लिया था। व्यापार तथा धातु के सिक्कों के प्रचलन ने शाहणी अर्थव्यवस्था का विकास किया। जहाँ एक ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार पशु पालन और मृमि, धन और पशु पालन से सम्बन्धित साधारण कारीगर उत्पादन या दूधारी और शाहणी अर्थव्यवस्था पर बड़े वर्गों का प्रभुत्व था। इससे व्यापार और व्यापारिक मार्गों का विस्तार हुआ और एक जटिल ग्रामीण व शाहणी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

खेती आदि तथा, सम्मिलित होने चाहिए।

2) उपभाग 16.4.2 देखें। आप अपने उत्तर में यह दिखायें कि नई शक्तियों की स्थापना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का किस प्रकार विकास हुआ।

3) उपभाग 16.4.5 देखें। आप अपने उत्तर में तमलुक और मडोब से बर्मा और श्री लंका के मार्गों की चर्चा करें साथ ही देश के चार आन्तरिक प्रमुख मार्गों — श्रावस्ती से प्रस्थान, श्रावस्ती से राजगृह, वीशला से श्रावस्ती और काशी से पश्चिमी घाटों तक के विषय में भी लिखें।

- इन धार्मिक आंदोलनों का महत्त्व क्या था।
 - कि छोटी शाखाएँ ई. पू. में प्रचलित अन्य अनीश्वरवादी विचार क्या थे, और
 - कि इन धर्मों का समकालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा,
 - कि इन धर्मों के मुख्य सिद्धान्त क्या थे,
 - कि बौद्ध मत एवं जैन धर्मों का उद्भव और विकास कैसे हुआ,
 - कि छोटी शाखाएँ ई. पू. में नये धार्मिक विचारों के उदय की पृष्ठभूमि क्या थी,
- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान पाएंगे:

17.0 उद्देश्य

17.0	उद्देश्य
17.1	प्रस्तावना
17.2	नये धार्मिक विचारों का उद्भव
17.3	गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म की उत्पत्ति
17.4	बुद्ध के उपदेश
17.5	बौद्ध धर्म का विकास
17.5.1	बौद्ध धर्म का विस्तार
17.5.2	बौद्ध संघ (संस्था के रूप में)
17.5.3	बौद्ध मत की समाधि
17.6	जैन धर्म की उत्पत्ति
17.6.1	पाश्वनाथ
17.6.2	महावीर
17.7	महावीर के उपदेश
17.8	जैन धर्म का विकास
17.8.1	जैन धर्म का विस्तार
17.8.2	जैन धर्म
17.8.3	विभिन्न सम्प्रदाय
17.9	अन्य अनीश्वरवादी विचार
17.9.1	आर्षिक
17.9.2	अन्य विचार
17.10	नये धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव
17.11	सारांश
17.12	शाखाएँ
17.13	बाह्य प्रश्नों के उत्तर

इकाई की रूपरेखा

इकाई 17 बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा अन्य धार्मिक विचार

मार्तीय इतिहास में छठी शताब्दी ई. पू. का बड़ा महत्व है क्योंकि यह काल नये धर्मों के विकास से सम्बन्ध है। हम पाते हैं कि इस काल में शास्त्रों के अनुष्ठानिक इतिहासी विचारों का विशेष बल रहा था। फलतः बहुत सारे अनीश्वरवादी धार्मिक आंदोलनों का उद्भव हुआ। इनमें से और मन एवं तीन मत संगठित तथा लोकप्रिय धर्मों के रूप में विकसित हुए। इस इकाई में इन नये धार्मिक विचारों के उद्भव और महत्त्व को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई में सबसे पहले, अनीश्वरवादी विचारों के उद्भव तथा फैलाव के लिए उत्तरवादी कारणों को विश्लेषित किया गया है। फिर यह बताया गया है कि ब्रह्म तथा महावीर ने किस प्रकार से मानव के दुःख को समाधान खोजने के लिए अपने तरीके से प्रयास किए। दोनों धर्मों के उद्भव के कारणों में समानता है, वहीं पर दोनों धर्मों के कुछ विद्वान भी समान हैं। परन्तु कुछ मूल विद्वानों में भिन्नता भी है। इन्हीं मुद्दों पर इस इकाई में विवेचन किया गया है। इस इकाई में छठी शताब्दी ई. पू. में उभरे अन्य अनीश्वरवादी विचारों के विषय में भी बताया गया है। अन्त में इस तथा का विवेचन किया गया है कि इन नये धार्मिक आंदोलनों का सामाजिक आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा।

17.2 नये धार्मिक विचारों का उद्भव

- 1) बलि तथा अर्ध-विहीन हो गयी थी। बलि एवं अनुष्ठान अपसर बढ़े पैमाने पर आयोजित किए जाने लगे। बड़े समुदायों के विखरने के साथ-साथ इनके आयोजनों में लोगों की भागीदारी कम हो गई और समाज के कई समूहों के लिए अर्धहीन हो गई।
- ii) बलि-यज्ञों तथा अनुष्ठानों के बढ़ते महत्त्व ने समाज में शास्त्र, समुदाय के प्रयत्न को स्थापित किया। वे पुजारी तथा अध्यापक, दोनों का कार्य करते थे और धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन पर अपने-एक-एककार के कारण वे चार वर्गों में विभाजित समाज में अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते थे।
- iii) सामकालीन आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने भी नए सामाजिक समुदायों के उद्भव में मदद की। ये समुदाय आर्थिक रूप से समान थे। शहर में रहने वाले व्यापारियों तथा अमीर खेतिहर समुदायों के पास प्रचुर सम्पत्ति थी। धार्मिक समुदाय, चाहे वे राजतंत्र में हों चाहे गणतंत्र में, के साथ में अब पहले से अधिक राजनीतिक शक्ति थी। ये सामाजिक समुदाय उस सामाजिक व्यवस्था का विरोध कर रहे थे, जो शास्त्रों ने वंश के आधार पर नियंत्रित की थी। और मन तथा तीन मत ने जन्म के आधार पर सामाजिक व्यवस्था की व्यवस्थाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया जिसके कारण वैश्य इन समुदायों की ओर आकर्षित हुए। इसी तरह से शास्त्रों के प्रयत्न से धार्मिक समुदाय अर्थात् शासक वर्ग भी गराज था। संक्षेप में, समाज में शास्त्रों की सर्वोच्चता ने अस्तित्व उत्पन्न किया और इसी ने नवीन धार्मिक विचारों के उदय में सामाजिक सहयोग प्रदान किया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दोनों ब्रह्म तथा महावीर धार्मिक समुदाय से थे। मगर बलि सामाजिक समुदायों से जुड़े हुए थे जिन द्वारा नियंत्रित समाजों को पार कर गए। जब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि उस समय के समाज में इनके विचार किन-किन लोकप्रिय हुए

अजातशत्रु (मगध), प्रसेनजीत (कोसल) और उदायन (कोशाची) के राजाओं ने उनके सिंहासन करना शुरू कर दिया। वे सारनाथ, मथुरा, राजगिरि, गया और पाटलिपुत्र गये। विभिन्नसौर, बान दिया। जल्द ही उन्होंने अपने धर्म प्रवचन के प्रचार के लिये बहुत से स्थानों का प्रयाग का धनी व्यापारी अनयापिण्डिका ब्रह्म का शिष्य हो गया और उसने बौद्ध मत के लिए उदार ने बौद्ध धर्म का संचार किया। उन्होंने अपने अधिकतर धर्मापदेश आर्यस्त्री में किए। आर्यस्त्री अश्वजित, उपालि, मंगालजना, श्रमण और आनन्द — ये ब्रह्म के पहले पाँच शिष्य थे। ब्रह्म जाता है।

यहाँ से प्रस्थान करके वे सारनाथ के मृगद्वार गारावासी के पास पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने अपना धर्मापदेश दिया जिसको "धर्मचक्र प्रवर्तन" (धर्म के चक्र को घुमाना) के नाम से जाना पुला) या "दधामार" (ब्रह्म जो सत्य को प्राप्त करे) कहा जाने लगा। समाधि के उनवासव दिन उन्हें "सर्वज्ञ ज्ञान" की प्राप्ति हुई। तब से उनको "बुद्ध" (ज्ञानी के किनारे) गये और एक पीपल के वृक्ष (बौद्ध वृक्ष) के नीचे ध्यान मान हो गये। अन्ततः अपनी सहन की। अन्ततः इसकी त्याग करके वे उरुवेला (आधुनिक बोध गया) के पास निरंजना नदी उन्होंने कठोर संयम को अपनाया और सत्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न कठोर यतनाएँ सन्ध्यासियों के साथ उनका भी परित्याग कर दिया।

उनकी यह शिक्षा गौतम को अन्तिम भिक्षु के लिए राह न दिखा सकी, तो उन्होंने पाँच ब्राह्मण किए। उन्होंने वैशाली के अजाला कालमा से ध्यान करने और उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त की। तथा बेटे का परित्याग कर दिया। गौतम ने सन्ध्यासी की मति धर्म-धर्मकर छः वर्ष व्यतीत मानवता को दुखों से मुक्त करने की खोज में उन्होंने 29 वर्ष की आयु में अपने धर्म, पत्नी दुखों ने गौतम पर गहरा प्रभाव डाला।

अपित, एक मृत शरीर तथा एक सन्ध्यासी की देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। मानव जीवन के आकर्षित करने में असफल रहा। पारम्परिक धर्मों के अनुसार, एक बूढ़े आर्य, एक बीमार यद्यपि उनका जीवन शांति ठाठ-बाट में व्यतीत हो रहा था लेकिन यह गौतम के मस्तिष्क को 566 ई. पू. माना गया है।

वास्तविक जन्म तिथि बाद-विचार का विषय है परन्तु अधिकतर सिद्धान्त द्वारा इसको लगभग स्थान पर रखा था। यह जानकारी हमें अशोक के एक स्तम्भ लेख के द्वारा मिलती है। ब्रह्म की की राजकुमारी थी। उनका जन्म नेपाल की राई में स्थित लुम्बिनी (आधुनिक लुम्बिनी) नामक उनके पिता शुद्धोधन शाक्यगण के मुखिया थे तथा उनकी माँ का नाम माया था जो कोलिपयगण बौद्ध मत की स्थापना गौतम ब्रह्म ने की थी। उनके मा-भाग ने उनका नाम सिद्धार्थ रखा था।

17.3 गौतम बुद्ध और धर्म की उत्पत्ति

उद्भव तथा विकास का अलग-अलग विवेचन करेंगे। सबसे अधिक लोकप्रिय और अच्छी तरह से समीक्षित थे। अब हम बौद्ध मत और जैन मत के और स्थापना हुई। इन सभी नवीन धार्मिक सम्प्रदायों में बौद्ध सम्प्रदाय तथा जैन सम्प्रदाय यह वह पूर्वमूर्ति थी जिसमें छोटी शताब्दी ई. पू. में नवीन धार्मिक व्यक्तियों की उत्पत्ति किया। प्रचारित किया गया। परन्तु ब्रह्म और महावीर ने नये वैकल्पिक धर्मों की व्यक्तियों को प्रस्तुत उन्होंने भी देवर एवं जीवन के विषय में नवीन विज्ञान प्रस्तुत किए। नये दर्शनों को भी पकड़ कात्यायन ने वैदिक धर्म में सुधार के लिए उसकी सुधारों को उजागर किया था। उनसे पहले दूसरे धार्मिक उपदेशकों जैसे कपि, मखलिन, गोसाल, अजिता केशकपलिन और प्रवर्तित धार्मिक सम्प्रदायों की आजीवना करने वालों में ब्रह्म एवं महावीर ही पहले नहीं थे। इनके विचारों के प्रति उत्साह दिखाया।

अन्ततः छोटी से छोटी शताब्दी ई. पू. तक

तो हम पाते हैं कि राजाओं, बड़े व्यापारियों, अमीर गृहस्थों, शालियों तथा वैश्याओं ने भी

- iii) सारं दुःखों का कोई न कोई कारण है। इच्छा, अज्ञान और मोह मुख्यतः दुःख के कारण हैं।
 i) सारं दुःखों से परिपूर्ण है।
 क) निम्नलिखित चार पंक्तियाँ सत्य हैं:

ख) अष्टांगिक मार्ग

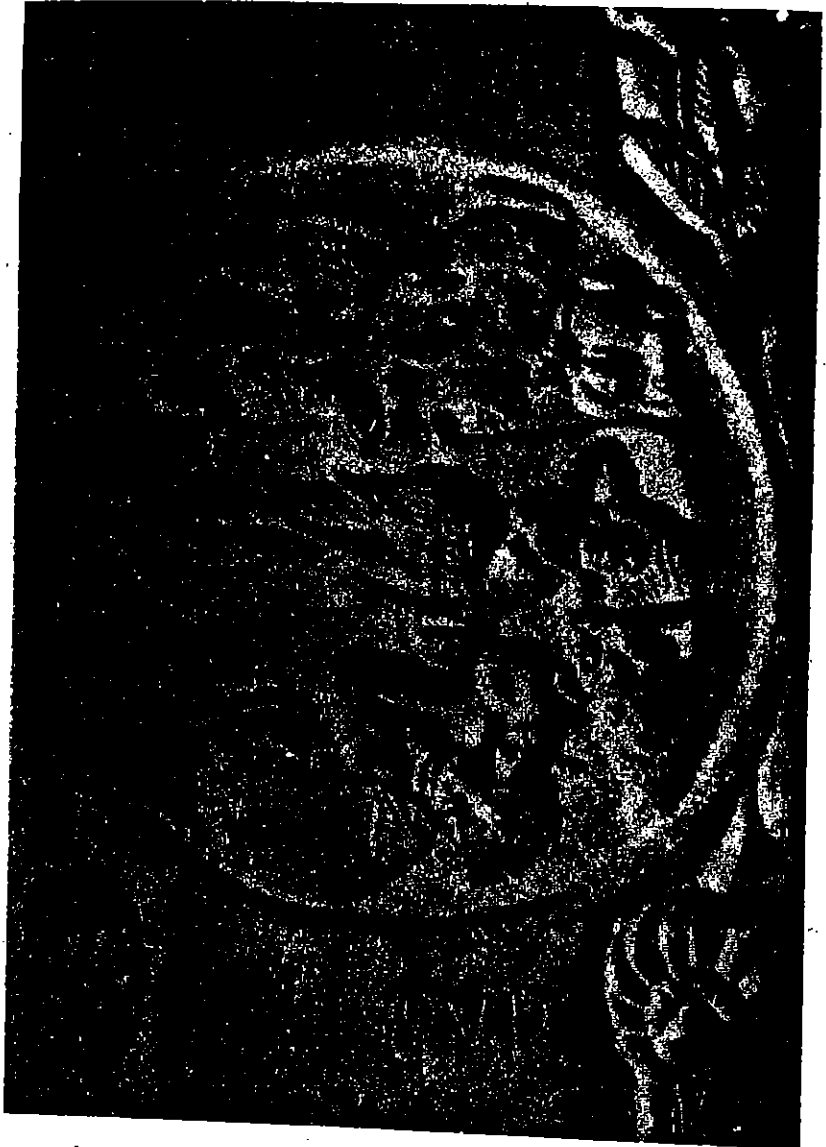
क) चार पंक्तियाँ सत्य, और

बुद्ध के मूलमंत्र उपदेश निम्नलिखित में संकलित हैं:

17.4 बुद्ध के उपदेश

मूल गुरु की राजधानी कुंमि नगर (उत्तर प्रदेश के जिले देवरिया में स्थित कसगा) में 80 वर्ष की आयु में (486 ई. पू.) बुद्ध की मृत्यु हो गई। आइए अब बुद्ध की उन शिक्षाओं का विवेचन करें जिन्होंने उस समय के धार्मिक विचारों को नवीन शिक्षा प्रदान की।
 बुद्ध की शिक्षाओं का विचार को भी अपने सम्प्रदाय में परिवर्तित कर लिया।
 को स्वीकार किया तथा वे सब बुद्ध के शिष्य हो गये। वे कपिलवस्तु भी गये और उन्होंने अपनी धार्य माता व बेटे सहित को भी अपने सम्प्रदाय में परिवर्तित कर लिया।

चित्र 10 बुद्ध का चित्र



- i) ब्रह्म के उद्धार व लौकिकवैदिक विचारों ने सभी समुदायों के लोगों को तेजी से आकर्षित किया। ब्राह्मण व्यवस्था और पुण्यविचारों की सर्वोच्चता पर ब्रह्म के द्वारा किये गये हमलों का समाज की नीची आँखें ने स्थापित किया। सभी जाति तथा विभिन्न वर्गों के लोग ब्रह्म प्रवृत्त की।
- महात्मा ब्रह्म की शिक्षा ने उस समय के शासकवर्गीय विचारों के सामने एक गम्भीर चुनौती प्रस्तुत की।
- व्यक्ति का मध्य मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। कठोर सत्यास एवं उन्नी प्रकार विनासी जीवन से बचना चाहिए।
- ब्रह्म ने प्रेम की भावना पर बल दिया। अधिकांश का अनुसरण करके प्रेम को सभी प्राणी मात्र पर अभिव्यक्त किया जा सकता है। यद्यपि अधिकांश के सिद्धांत को ब्रह्म मत में अच्छी तरह से समझा गया था, परन्तु ब्रह्मको इतना महत्व नहीं दिया गया जितना कि वेन मत में।

इनके अतिरिक्त ब्रह्म ने अन्य पक्षों पर भी बल दिया:

ब्रह्म ने न श्रम के अतिवृत्त को स्वीकारा और न ही नकारा। यह व्यक्ति और उसके कार्यों के विषय में अधिक विनियम थे। ब्रह्म मत ने आत्मा के अतिवृत्त को भी स्वीकार नहीं किया।

अनुष्ठानों एवं पक्षों के विपरीत ब्रह्म ने व्यक्तिगत नीतिकला पर बल दिया।

पूजा और बलि इत्यादि को समाप्त नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार, वैदिक धर्म में होने वाले सुधारों में ब्रह्म ने उद्देश्य दिया कि इच्छा को समाप्त करना ही वास्तविक समाप्ति है। पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है। इच्छाओं की समाप्ति की प्रक्रिया के द्वारा कोई भी "निर्वाण" या उद्देश्य है। इसका तात्पर्य है सभी इच्छाओं से छुटकारा, दुःखों का अन्त निरास अन्तः ब्रह्म ने निर्वाण का प्रचार किया। उनके अनुसरण यही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। इस प्रकार ब्रह्म के उद्देश्यों का अन्तिम लक्ष्य तब तक नहीं है।

ब्रह्म ने कर्म के सिद्धांत पर बल दिया। वर्तमान का निर्णय पूर्वकाल के कर्मों पर ही निर्भर करता है। ब्रह्म मत ने कर्म के सिद्धांत को भी तब तक का पण नहीं कराया है जो उसका पुनर्जन्म नहीं लेते हैं। अगर कोई व्यक्ति किसी भी तरह का पाप नहीं करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं प्रत्येक व्यक्ति अपने माय का निर्माता है। अपने कर्मों को मोचने के लिए हम बार-बार जन्म किसी व्यक्ति की इस जीवन और आगे जीवन की दशा उसके कर्मों पर निर्भर करती है।

- viii) सत्यास समाधि: इसका अनुसरण करने से शान्ति प्राप्त होती। ध्यान से ही वास्तविक सत्य प्राप्त किया जा सकता है।
 - vii) सत्यास स्मृति: इसका अर्थ है कि शरीर नश्वर है और सत्य का ध्यान करने से ही एवं मोह को नष्ट कर सकता है।
 - vi) सत्यास प्रयास: इससे तात्पर्य है कि किसी को भी ब्रह्म विचारों से छुटकारा पाने के लिए शिष्टियों पर नियंत्रण होना चाहिए। कोई भी मानसिक अस्वास्थ्य के द्वारा अपनी इच्छाओं को नष्ट कर सकता है।
 - v) सत्यास जीविका: अर्थात् आदमी को ईमानदारी से अर्जित साधनों द्वारा जीवन-यापन करना चाहिए।
 - iv) सत्यास कर्म: इसका तात्पर्य है स्वार्थ रहित कार्य करना।
 - iii) सत्यास ध्यान: अर्थात् सदैव सब भोलाना, मानवता को धार करना और दूसरों को प्रसन्न रखना है।
 - ii) सत्यास संकल्प: यह लिप्सा और विनाशिता से छुटकारा दिलाता है। इसका उद्देश्य का परिष्कार ही मुक्ति का मार्ग है।
 - i) सत्यास श्रद्धा: इसका अर्थ है इच्छा के कारण ही इस संसार में दुःख प्राप्त है। इच्छा का परिष्कार ही मुक्ति का मार्ग है।
- ख) अष्टांगिक मार्ग में निम्नलिखित सिद्धांत समाहित हैं:
- iv) मुक्ति (दुःखों से छुटकारा पाना) अष्टांगिक मार्ग द्वारा प्राप्त की जा सकती है।
 - iii) इच्छाओं का अन्त मुक्ति का मार्ग है।

- राजाओं के द्वारा संरक्षण प्रदान किये जाने के कारण बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी के साथ हुआ। उदाहरण के लिए ऐसी घातना है कि अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र तथा पुत्री संगमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। उसने, बहुत से बौद्ध विहारों को स्थापित किया और सब के लिए उदार भाव से दान आदि भी दिया।
- बौद्ध धर्म में संकलित सामाजिक समानता के विचारों के कारण साधारण जनता ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया।
- समाधान और साधारण दर्शन ने जनता को बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित किया।
- व्यावहारिक नैतिकता पर बल देना, मानव जाति की समस्याओं का सहज स्वीकृत समाधान और साधारण दर्शन ने जनता को बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित किया।
- अनाथपिण्डिका जैसे व्यापारी और आमप्राणी जैसे देवदासी ने इस मत को स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने इस धर्म में उचित सम्मान प्राप्त किया।
- विचारों को अपनाने के लिए लोकप्रिय भाषा पाली के प्रयोग ने भी धर्म के विस्तार में मदद दी। संस्कृत का प्रयोग करने के कारण साधारण धर्म सीमा में बंध गया था क्योंकि यह जन-भाषा नहीं थी।

बौद्ध मत जनता के बड़े हिस्से में लोकप्रिय होने के निम्नलिखित कारण थे:

इससे, संस्थापक के जीवन काल में ही बड़ी संख्या में लोगों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था। उदाहरण के लिए, माघ, कोषल, और कौशांबी की जनता ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। शाक्य, बलि और मल्ल जनपदों की जनता ने भी इसका अनुसरण किया। अशोक एवं कनिष्क ने बौद्ध धर्म को राज्य धर्म बनाया और यह मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और श्रीलंका में फैल गया।

17.5.1 बौद्ध धर्म का विस्तार

अब हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जिन्होंने बौद्ध धर्म के विकास में योगदान दिया और इसको एक लोकप्रिय धर्म बनाया।

17.5 बौद्ध धर्म का विकास

- i) धर्म-पिटक में पांच निकाय हैं जिनमें धार्मिक सम्भाषण तथा बौद्ध धर्म के संवाद संकलित हैं। पाचवें निकाय में जातक कथाएँ (बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित कहानियाँ) हैं।
 - ii) धर्म के उपदेशों को संग्रहित कर लिया गया।
 - iii) धर्म-पिटक में भिक्षुओं के अनुशासन से संबंधित नियम हैं।
 - iv) अभियम-पिटक में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का विवरण है। इसकी प्रथम-उत्तर के रूप में लिया गया है।
- बौद्ध धर्म के उपदेशों को संग्रहित कर लिया गया।
- बौद्ध धर्म का कोई भी समय में एक संगठित धर्म के रूप में उदभव हुआ और बुद्ध विद्वानों पर बल दिया।
- करने से किसी पापी को लाभ होता है। इस प्रकार बुद्ध ने सामाजिक समानता के को बलि देने से पापों को नहीं छोड़ा जा सकता और न ही किसी पुजारी के पूजा अर्प-विहीन तथा व्यर्थ अनुष्ठानों का बहिष्कार किया। उन्होंने कहा कि देवताओं बुद्ध ने वेदों की सर्वोच्चता के सिद्धान्त तथा पशु-बलि का विरोध किया। उन्होंने ब्राह्मी धर्म को प्राप्त करने के लिये किसी पुजारी या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं रह अर्द्धे कार्य के द्वारा ही सम्भव है। इसलिये, "निर्वाण" अर्थात् जीवन के अन्तिम समयावधि को अपना सकते थे। बौद्ध धर्म के अनुसरण व्यक्तित्व की मुक्ति उसके



बौद्ध धर्म, तीन धर्म तथा अन्य धार्मिक विचार

चित्र 11 उपदेश देते हुए बुद्ध (ग्रन्थ काल)

निबटा गया।
को परिभाषित किया गया तथा आधिकारिक तौर पर विनय प्रदान करने वाली प्रवृत्तियाँ से भी
मिथुनों को बौद्ध मत से इस समाज द्वारा निष्कासित कर दिया गया। सप्त उपदेशों के साहित्य
अनुसंधान एवं नये परिवर्तनों से मूल्य कराने का प्रयास किया गया। 60,000 "पद्यसूत्र"
गया तथा इसको अभिषम-पिटक के नाम से जाना जाता है। इस समाज में बौद्धमत को
पाटलिपुत्र में किया गया। इस समाज में सिद्धान्तों की बार्थनिक विवेचना को संकलित किया
दीर्घी समाज का आयोजन अशोक के शासनकाल में मोगालिपुरास्स की अध्यक्षता में

परिवर्तन किए।

कठिवादी विचारों को अपनाया और दूसरे ने नये नियमों का समर्थन किया और फिर उनमें
सम्प्रदायों-स्वयं-चर्या व महासाधिका में हो गया। पहले सम्प्रदाय ने विनय-पिटक में वर्णित
समाप्तता करने में समाज अक्षय्य रही। बौद्ध धर्म का विभाजन स्वयं-चर्या और दो बौद्ध
द्वारा बौद्ध धर्म की शिक्षा के प्रतिकूल वर्णित कर दिया गया। दोनों विरोधी गुटों के बीच कोई भी
ने कुछ नियमों का निर्धारण किया परन्तु इन नियमों को कौशाब्धी व अवन्ति के मिथुनों के
द्वारा समाज का आयोजन 483 ई. पू. में वैशाली में हुआ। पाटलिपुत्र तथा वैशाली के मिथुनों

नेत्व में की गई।

विनय-पिटक की रचना उपरोक्त के नेत्व में की गई और सूत्र-पिटक की रचना आनन्द के

ख) सूत्र-पिटक।

क) विनय-पिटक, और

की शिक्षा को पिटकों में विभाजित किया गया, जिनके नाम इस प्रकार हैं:

अनुसंधानियों के अनुसार बौद्ध धर्म की मूल्य के धार्मिक समय बाद 483 ई. पू. में राजगृह के पास
सम्प्रदाय गुप्त में बौद्ध मत की प्रथम समाज हुई। इस समाज की अध्यक्षता महाकस्सप ने की। बौद्ध

17.5.3 बौद्ध मत की समाज

था।

सहित था और वे इसका पालन करते थे। गलती करने वाले सदस्य को संघ से हटाने का संकल्प
करने की शक्ति भी इसी में निहित थी। यहाँ पर मिथुनों एवं मिथुनियों के लिए एक आचार-
संघ का संवाहन जनताधिक सिद्धान्तों के अनुसार होता था और अपने सदस्यों को अनुशासित
प्रकार शिक्षा समाज के काफी तबकों में फैल गई।

वर्षित कर दिया था उनको बौद्ध मत में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया और इस
कर सकते थे। स्वामाधिक रूप से विनय-पिटक को ब्राह्मणों ने शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से
का भी काम करता था। ब्राह्मणवाद के विपरीत बौद्ध मत में समाज के सभी लोग शिक्षा ग्रहण
तथा समाधि करते थे। इसको आश्रम या "वशा" कहा जाता था। संघ-लोगों की शिक्षा देने
जायगी और शिक्षा प्राप्त करेगी। वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे एक निश्चित विस्तार लाने
पहनना पड़ता था। मिथुनों से आशा की जाती थी कि वे विनय बौद्ध मत के प्रचार के लिए
मिथुनों को प्रवेश देने पर विधिपूर्वक अपना मुंडन कराना एवं पीले या गेरू रंग का लिबास

प्रवेश दिया।

उनकी धार्य में महाप्रजापति गौतमी के लगातार निवेदन करने पर उन्होंने उनको संघ में
महिजाओं को संघ का सदस्य बनाने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन उनके मुख्य शिष्य आनन्द एवं
संक्रामक रंग से पीड़ित लोगों को संघ की सदस्यता नहीं दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बौद्ध
लिए इसकी सदस्यता सुनी थी चाहे वे किसी भी वर्ण के हों। अपराधी, कुछ रोगी तथा
थी और इसने बौद्ध मत को लोकप्रिय बनाया। 15 वर्ष से अधिक आयु वाले सभी नागरिकों के
संघ बौद्ध मत की धार्मिक व्यवस्था थी। यह अच्छी प्रकार से संगठित एवं शांतिपूर्ण संस्था

17.5.2 बौद्ध-संघ (संस्था के रूप में)

दिया।

● बौद्ध मत की प्रभावशाली रंग से फैलाने में संघ की संस्था ने संगठित रूप से योगदान

की शक्ति ई. पू. तक

आर्यः बौद्ध सं

- (v) बौद्ध ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने थे।
 - (iv) बौद्ध पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते थे।
 - (iii) बौद्ध ने कठोर सन्यासी जीवन का प्रचार किया।
 - (ii) बौद्ध ने अपना प्रथम उपदेश बोध गया में दिया।
 - (i) बर्तले व्यापार एवं वाणिज्य ने अनीश्वरवादी विचारों के उद्भव में मदद की।
- 3) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (X) का निशान लगाइए:

.....

.....

.....

.....

2) बौद्ध धर्म के विकास के लिए उत्तरदायी कारण क्या थे ? पांच परिवर्तनों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

1) "निर्वाण" एवं "कर्म" के बौद्धवादी दर्शन की विवेचना पांच परिवर्तनों में कीजिए।

बांध प्रश्न 1

कुछ सैनिकों के परिवर्तन किए गए।
 प्रतिमा बनायी और ईश्वर की मूर्ति उसकी पूजा की। प्रथम सदी ई. क्रि.पू. के शासन काल में विचारों को स्वीकार किया, वे लोग महायान सम्प्रदाय के समर्थक कहलाये। उन्होंने बौद्ध की शिक्षा में विश्वास करता था, का जिस गुट ने विरोध किया और जिन्होंने नये महायान सम्प्रदाय का विकास बोधी बौद्ध समाज के बाद हुआ। हीनयान सम्प्रदाय जो बौद्ध की

- यह समूह जिसने संशोधित नियमों को माना, वह महासाधक कहलाया।
- स्थाविरवादी कठोर मिक्षुक जीवन और मूल निर्देशित कड़े अनुशासित नियमों का अनुसरण करते थे।
- अठारह सम्प्रदाय "हीनयान" मत में संगठित हुए।

स्थाविरवादी धीरे-धीरे यारह सम्प्रदायों और महासाधक सात सम्प्रदायों में बंट गए। ये (ख) महासाधक (क) स्थाविरवादी

देशाधी में आयोजित हुयी समा में बौद्ध धर्म का निम्न दो सम्प्रदायों में विभाजन हुआ:

17.5.4 बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय

गये थे।
 निरंतरता किया जो श्रावस्तीवासियों एवं काशमीर तथा गन्धार के प्रचारकों के मध्य उत्पन्न हो (पाषाण) का संकलन इस समाज द्वारा किया गया। इसने उन विचारप्रवृत्तियों को प्रदर्शित किया जो भारत के हीनयान सम्प्रदाय को मानने वाले एकत्रित हुए। तीन पित्रकों पर तीन टीकाओं की भी समा का आयोजन काशमीर में कनिक के शासन काल में हुआ। इस समा में उत्तरी

(ख) अहिंसा

(क) धर्म

पाश्वर्नाथ ने निम्नलिखित चार सिद्धांतों का प्रचार किया था:

महावीर ने पाश्वर्नाथ द्वारा प्रतिपादित किए गए धार्मिक विचारों को ही अधिकतर स्वीकार किया। तब भी उन्होंने उसमें कुछ संशोधन किया और कुछ जोड़ा।

17.7 महावीर की शिक्षाएं

के समीप गया नामक स्थान पर 486 ई. पू. में हुई।
 शिक्षाधार तथा अजातशत्रु के दरबारों में भी जाते थे। उनकी मृत्यु 72 वर्ष की आयु में पटना और वर्षा ऋतु के चार माह पूर्वी भारत के किसी प्रसिद्ध नगर में व्यतीत करते। वह अक्सर अन्य पूर्वी क्षेत्रों में अपने विचारों का प्रचार किया। वह एक वर्ष में आठ माह विवर्ण करते थे आगे 30 वर्षों तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे और कोसल, मागध तथा से हुई। उनको "निग्रह" (बन्धनों से मुक्त) के नाम से भी जाना जाता था।
 प्राप्ति हुई। बाद में उनकी प्रसिद्धि "महावीर (सर्वोच्च योग)" या "विन" (विजयी) के नामों अपनी तपस्या के 13वें वर्ष में, 42 वर्ष की आयु में, उनको "सर्वोच्च ज्ञान" (केवलिय) की वर्ष तक एक सन्यासी का जीवन व्यतीत किया।

दिया तथा बाद में वे "नान भिक्षु" की भाँति भ्रमण करने लगे। चार तपस्या करते हुए 12 पहले उन्होंने एक वस्त्र धारण किया और फिर उसका भी तेरह मास के उपरान्त परित्याग कर 30 वर्ष की आयु में महावीर ने अपने चार का परित्याग किया और वह सन्यासी हो गये।

उनके एक पुत्री थी।
 शिक्षा था। वर्धमान ने अच्छी शिक्षा प्राप्त की और उनका विवाह यशोदा के साथ हुआ। उससे सिद्धार्थ नामक क्षत्रिय गण के मुखिया थे। उनकी माता लिच्छवि राजकुमारी थी, जिसका नाम (विशाल) मुजफ्फरपुर, बिहार) में 540 ई. पू. में क्षत्रिय परिवार में हुआ था। उनके पिता चौबीसवें तीर्थकार वर्धमान महावीर थे। उनका जन्म कुंडग्राम (बासुकण्ड), वैशाली के पास

17.6.2 महावीर

था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महावीर से पूर्व भी किसी न किसी रूप में जैन धर्म का अस्तित्व

सकल वस्तुओं की धारण करते थे।
 करते थे। वह अपने पीछे अपने समर्थकों की काफी बड़ी संख्या छोड़ गए। पाश्वर्नाथ के शिष्य लगभग 250 वर्ष पहले ही वर्ष की आयु में हुई। पाश्वर्नाथ "पार्व" की आनन्दता में विप्रवास गए। 84 दिन की तपस्या के उपरान्त उनको ज्ञान की प्राप्ति हुई। उनकी मृत्यु महावीर से के पुत्र थे। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में सिद्धासन का परित्याग कर दिया और वे सन्यासी हो जैन श्रितियों के अनुसरण तेरहवें तीर्थकार पाश्वर्नाथ बनारस के राजा अश्वमेधन एवं राजी बामा

17.6.1 पाश्वर्नाथ

और महावीर की ऐतिहासिकता को बड़े प्रयोगों ने प्रमाणित किया है।
 थे। इनमें से पहले बाँदिस की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। परन्तु अन्तिम दो तीर्थकार पाश्वर्नाथ जैन श्रितियों के अनुसरण, जैन धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के लिये 24 तीर्थकार उत्तरदायी

17.6 जैन धर्म की उत्पत्ति

भारत: एन ई से
 डॉ. रामकृष्ण ई. ए. राव

iii) उचित कर्म।

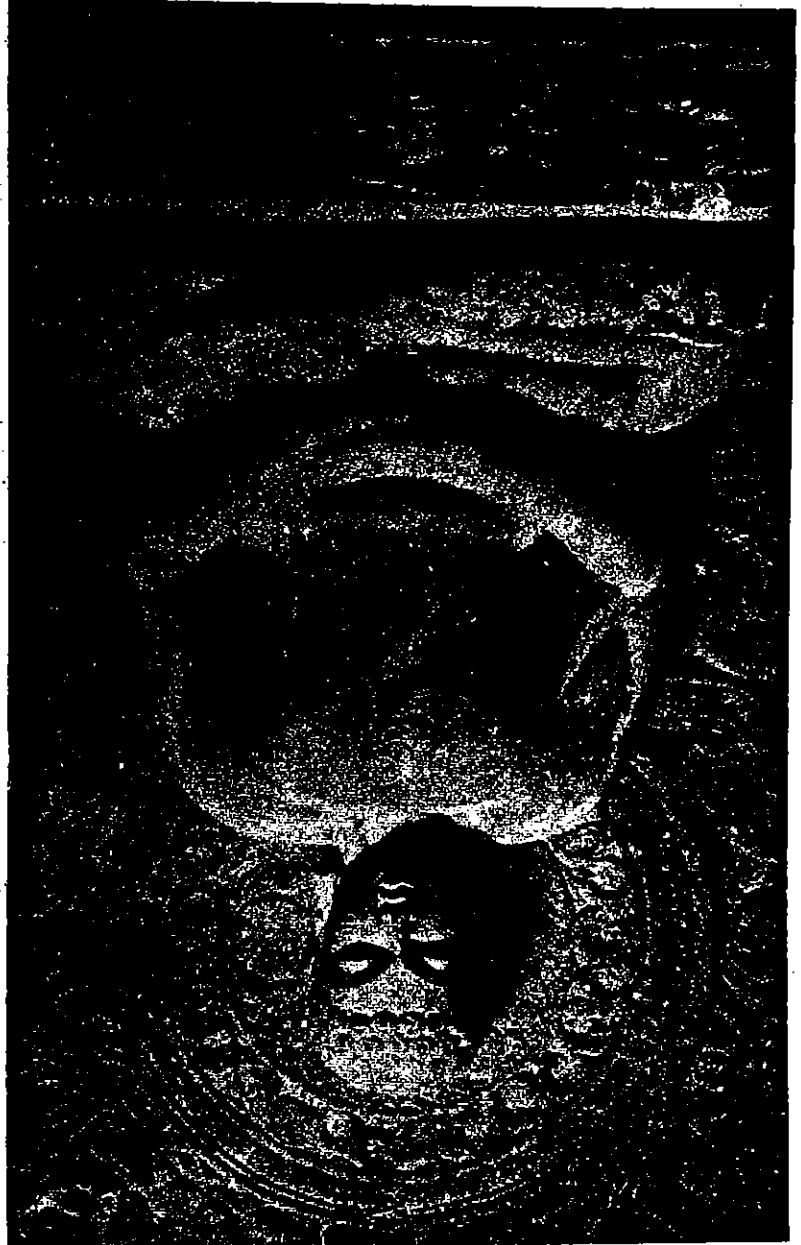
ii) उचित ज्ञान और

i) उचित विश्वास

विद्वानों (वीन गुरुवर) का अनुसरण करके मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त किया जा सकता है।
 आत्म-स्वामी जीवन का अनुसरण करके ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। निम्नलिखित तीन
 जैन धर्म के अनुसार, मानव अपने मान्य का स्वयं रक्षित है और वह पवित्र, सदाचारी एवं
 मुक्ति या मोक्ष है। यह मुख्य आत्मा "पवित्र आत्मा" ही जाती है।
 प्रयासों के माध्यम से आत्मा को मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यही आत्मा की अन्तिम
 उनके अनुसार, पूर्व जन्मों की इच्छाओं के कारण आत्मा वास्तव की स्थिति में है। जगत्कार
 महावीर का विश्वास था कि आत्मा (जीव) व परार्थ (अजीव) अस्तित्व के दो मूलभूत तत्त्व हैं।

- ग) किसी प्रकार की कोई सम्पत्ति न रखना
- घ) किसी दूढ़ या पड़ी दूढ़ सम्पत्ति को ग्रहण न करना। इसी में महावीर ने "अहमवचनं व्रत
 का पालन" करना भी जोड़ दिया।

चित्र 12 जैन तीर्थंकर (गुरु ज्ञान)



17.8.1 जैन धर्म का विस्तार

महावीर के 11 शिष्य थे जिनको गन्धर्व या सम्प्रदायी का प्रमुख कहा जाता था। आर्य सूर्यमा अकला ऐसा गन्धर्व था जो महावीर की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहा और जो जैन धर्म का प्रथम "धरा" या मुख्य उपदेशक हुआ। उसकी मृत्यु महावीर की मृत्यु के 20 वर्ष पश्चात् हुई। राजा नन्द के काल में जैन धर्म के संचालन का कार्य दो "धरे" (आचार्य) द्वारा किया जाता था:

i) सम्मूलाविजय, और

ii) मद्रबाहू।

छठे धरा (आचार्य) मद्रबाहू, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे।

धीरे-धीरे महावीर के समर्थक सारे देश में फैल गए। जैन धर्म को शाही संरक्षण की कृपा भी रही। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार, अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयन, जैन धर्म का अनुयायी था। सिकन्दर के मारत पर आक्रमण के समय जैन सिद्धों की सिन्धु नदी के किनारे भी पाया गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्म का अनुयायी था और उसने मद्रबाहू के साथ दक्षिण की ओर प्रवास किया तथा जैन धर्म का प्रचार किया। पहली सदी ई. में मथुरा एवं उज्जैन जैन धर्म के प्रधान केन्द्र बन गए।

बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म की सफलता शानदार थी। इसकी सफलता का एक मुख्य कारण था कि महावीर एवं उसके अनुयायियों ने संस्कृत के स्थान पर लोकप्रिय भाषा (प्राकृत, धार्मिक साहित्य को अर्ध-माघी में लिखा गया) का प्रयोग किया। जनता के लिए सरल एवं सरल निर्देशों ने लोगों को आकर्षित किया। जैन धर्म को राजाओं के द्वारा संरक्षण दिये जाने के कारण भी लोगों के मस्तिष्क में इसका स्थान बना।

17.8.2 जैन धर्म

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन की समाप्ति के समीप दक्षिण बिहार में मयूरक अकाल पड़ा। यह 12 वर्षों तक चला। मद्रबाहू और उनके शिष्यों ने कर्नाटक राज्य में श्रावण बेल गोल की ओर विस्थापन किया। अन्य जैन मुनि स्थूलबाहुमद के नेतृत्व में माघ में ही रह गये। उन्होंने पाटलिपुत्र में 300 ई. पू. के आस-पास समा का आयोजन किया। इस समा में महावीर की पवित्र शिखाओं को 12 जगों में विभाजित किया गया।

दूसरी जैन समा का आयोजन 512 ई. में गुजरात में वल्लभी नामक स्थान पर देवर्षिमाणा क्षमा श्रमण की अध्यक्षता में किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक शास्त्रों को एकत्र एवं उनको पुनः क्रम से संकलित करना था। किन्तु प्रथम समा में संकलित बारहवां अंग इस समय खो गया था। शेष बचे हुए अंगों को अर्धमाघी में लिखा गया।

17.8.3 सम्प्रदाय

जैन धर्म में छूट पड़ने का समय लगभग 300 ई. पू. माना जाता है। महावीर के समय में ही एक वस्त्र धारण करने की लोकर मत्स्य स्वरूप होने लगे थे। श्रावणबेलगोल से माघ बाणस गौटमे के बाद मद्रबाहू के अनुयायियों ने इस निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया कि 14 वर्ष खी गये थे। माघ में ठहरने वालों तथा प्रस्थान करने वालों में मतभेद बढ़ते ही गये। माघ में ठहरने वाले संधर वस्त्रों को धारण करने के अग्रस्त हो चुके थे और वे महावीर की शिखाओं से दूर होने लगे जबकि पहले वाले नान अवस्था में रहते और कठोरता से महावीर की शिखाओं का अनुसरण करते। जैन धर्म का प्रथम विभाजन दिगम्बर (नान रहने वाले) और श्वेताम्बर (संधर वस्त्र धारण करने वाले) के बीच हुआ। आगती शतिकावियों में पुनः दोनों सम्प्रदायों में कई विभाजन हुए। इनमें महत्त्वपूर्ण यह सम्प्रदाय था जिसने मूर्ति-पूजा को त्याग दिया और प्रथा की पूर्णा करने लगे। वे श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नेरापन्थी" कहलाये और दिगम्बर सम्प्रदाय में सम्मारास कहलाये। यह सम्प्रदाय छठी शताब्दी में अस्तित्व में आया।

यह एक महान् श्रेणी थी। शीघ्र व्यवस्था में महिलाओं को स्वीकार करने का समाज पर लोगों को अपने धर्म में स्वीकृत किया। युगों से समाज में श्राद्धों के स्थापित प्रयत्न को तथा श्रानियों में वाणि-व्यवस्था को कोई महत्व नहीं दिया। उन्होंने विभिन्न जातियों के 1) इस काल में सामाजिक समानता के विचार को लोकप्रिय किया गया। शीघ्र महालक्षियों परिवर्तन किए। उनमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं:

नये धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव एवं विकास ने समकालीन सामाजिक जीवन में कुछ विशेष

17.10 नवीन धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव

योगदान नहीं करते। शरीर अन्ततः इन सार तत्वों में विहीन हो जाता है। इसके अनुसार, सार तत्व है जो स्थिर है और जो किसी भी प्रकार से दुःख या सुख में भी कोई पाप नहीं है। पापकेव कात्यायनायन ने अशाश्वतवाद के सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया। इस सम्प्रदाय के अनुसार, सांसारिक सुखों को भोगने में कोई बुराई नहीं है और बंध करने में अच्छा या बुरा कार्य करता है या किसी के अधिकार में उच्च तथा आलोचिक शक्तिवर्षा है। के बाद आगे कोई जीवन नहीं होता। वह इस बात में कोई विश्वास नहीं करता था कि कोई शकम्भरिन ने भी प्रचारित किया कि मृत्यु के साथ प्रत्येक वर्ग, समाज हो जाती है और मृत्यु शानता और सत्यवादिता उसके लिए कोई भी गुण प्राप्त करने में सहायक नहीं होगी। अतिव के भी अच्छे कार्य करे यहाँ तक कि वह गंगा के किनारे भी खड़ा रहे। इसी प्रकार, आत्म-निर्धन, किसी पाप का मागीदार नहीं होगा। इसी भाँति वह कोई पुण्य नहीं प्राप्त करेगा चाहे वह कितने उसके अनुसार, अगर कोई आदमी सृष्टि के सभी जीव-जन्तुओं का बंध कर दे तब भी वह शिक्षक था और उसका मुख्य सिद्धान्त था कि कार्य गुण या दोष का निश्चय नहीं करता। शाना वाहिण्। पुराण कल्प ने अक्रिय या सांख्य दर्शन का प्रचार किया। वह एक श्राद्धा और सिद्धि में मिल जाएगा। इसलिए मानव जीवन का उद्देश्य मौरिक सुख का भोग करना चावक सम्प्रदाय के लोग पूर्ण मौरिकवादी थे। उनका विचार था कि मृत्यु सिद्धि का भोग है

17.9.2 अन्य विचार

की मृत्यु हो गई। चारों ओर केन्द्रित हो गये और वहीं पर वह प्रचार करते थे। महावीर से 16 वर्ष पूर्व गोसाँज कर सकता है और न भला सकता है। गोसाँज के अनुयायी कोसल की राजधानी आनन्दो की निश्चय ब्रह्म को पूरा करने पर ही होगा। कोई भी मानव प्रयास समय की परिधि को न कम अवस्था है। गोसाँज ने कहा कि सभी को दुःखों से होकर गुजरना पड़ता है और इसका अन्त विषय नहीं करते थे और उनका विचार था कि सभी प्राणी मात्र अपने भाग्य के समर्थ विशेष करता है या फिर इन दुःखों से मुक्ति मिल सकती है। वे मानव के प्रयासों में भी जाते हैं (जन्म से पूर्व निश्चय होना)। वे विश्वास नहीं करते थे कि मानव के दुःखों का कोई है। आजीवक विश्वास करते थे कि किसी व्यक्ति के विचार एवं कार्य पहले ही निश्चय हो जाया। उसने "कर्म" की अवधारणा को नकारा और तर्क दिया कि मृत्यु निश्चय के अधीन हीस्य इस धर्म का मुख्य प्रवर्तक महाकालिपुर गोसाँज था, जिसने इस सम्प्रदाय को लोकप्रिय सम्प्रदाय का संस्थापक नन्द धरा था और जिसका अनुसरण किषसंक्षिका के द्वारा किया गया। आजीवकों के विषय में कहा जाता है कि वे शीघ्र सत्यासी थे। ऐसा कहा जाता है कि इस

17.9.1 आजीवक

अधिक थी-और वे मली प्रकार से संगठित थे। सम्प्रदायों के रूप में सामने आये। उनमें आजीवक सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या काफी इस काल में वैदिक धर्म से भिन्न रूपरे अन्य विचार भी प्रचलित थे। बाद में यह जोड़े

17.9 अन्य अनिश्चरवादी विचार

- 3) अतीव्यवसायी समाचारों के प्रादुर्भाव के कारण स्थानीय भाषाओं के साहित्य के विकास में
- (i) महोदय के चर सिद्धान्तों के साथ महोदय ने बलवर्धन का सिद्धान्त जोड़ा।
 - (ii) महोदय सर्वोच्च रचना में विज्ञान में विज्ञान नहीं करते थे।
 - (iii) "निर्वाण" की अवधारणा बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म में एक ही है।
 - (iv) महोदय के सिद्धान्तों के मूल ग्रंथों को "धर्म" के नाम से जाना जाता है।

समाह्वयः

3) निम्न कथनों में कौन-सा कथन सही (✓) है और कौन-सा गलत (X), निशान

.....

.....

.....

.....

2) आजीवक कौन है ? उनके विचार क्या हैं ? पांच परिवारों में उत्तर लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1) जैन धर्म के मूलमूल सिद्धान्त क्या हैं ? 100 शब्दों में उत्तर लिखिए।

जीव प्रश्न 2

- iii) नये धर्मों ने प्राकृत, पाली और अर्ध-मगधी जैसी भाषाओं को महत्व दिया। बौद्ध एवं जैन धर्मों को इन भाषाओं में विवेचना की गई और बाद में धार्मिक पुस्तकों को स्थानीय भाषाओं में लिखा गया। इसने स्थानीय भाषाओं के साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। जैनियों ने अपने धार्मिक उपदेशों को अर्ध-मगधी भाषा में लिखकर प्रथम बार साहित्य को मिश्रित भाषा में लिखने का स्वरूप प्रदान किया।
 - ii) शैक्षणिक साहित्य में व्यवसाय करने वाले लोगों को खोल स्थान दिया गया था। समृद्ध यात्रा की भी निन्दा की गई थी। लेकिन बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने जाति व्यवस्था को कोई महत्व नहीं दिया और न ही समृद्ध यात्रा को गलत समझा। इसलिए इन नये धर्मों ने व्यापारिक समुदाय को काफी उत्साहित किया। इससे भी अधिक इन दोनों धर्मों के द्वारा "कर्म" की अवधारणा पर मविष्य के जीवन के लिए बल देना अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारी समुदाय की गतिविधियों के लिए अनुकूल था।
- एक विशेष प्रभाव हुआ क्योंकि इस कार्य ने महिलाओं को पुरुषों के समान स्थान समान में प्रदान किया।

बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं अर्थ धार्मिक विचार

1) आपकी पाँच विद्वानों अर्थात् सत्य, अहिंसा, कोई सम्पत्ति नहीं रखना, कुछ प्रहला न करना, प्रसवार्थ का विवेचन करना — बताना है और फिर उचित विप्रवास, उचित ज्ञान और उचित कार्य जैसे विद्वानों का अनुसरण करके कोई कैसे निर्वाण प्राप्त कर सकता है का भी विवेचन देना है। देखिए भाग 17.7

बोध प्रश्न 2

- 3) i) ✓
ii) X
iii) X

- iv) ✓
v) X

2) आपको अपने उत्तर में बौद्ध धर्म के व्यावहारिक पक्ष, इसका सामाजिक समानता पर भाव, लोकप्रिय भाषा आदि को सम्मिलित करना चाहिए। देखिए उपभाग 17.5.1

1) आपको यहाँ लिखना है कि बूढ़ का "निर्वाण" व "कर्म" से क्या तात्पर्य था। देखिए भाग 17.4

बोध प्रश्न 1

17.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

दीर्घाकर: जैन धर्म के वे विद्वान या गुरु, जो सर्वोच्च ज्ञान रखते हैं।

सम्प्रदाय: मत एवं विप्रवास के आधार पर लोगों या गुटों का एकीकरण।

पर्व: जैनियों के धार्मिक प्रथ।

पितृक: बौद्ध धर्म के धार्मिक प्रथ।

मीतिकवाद: मीतिक वस्तुओं पर अधिक बल देना।

अनीश्वरवादी: जो ईश्वर में विप्रवास न रखें।

अहिंसा: किसी को न मारना और न ही हिंसा करना।

17.12 शब्दावली

लगाना प्रारम्भ कर दिया।

हुआ और परिणामतः उन्होंने युगों लम्बी ब्राह्मणिक धर्म की सर्वोच्चता के प्रमुख पर प्रश्न के विषय में भी आपन ज्ञान। इन सबके कारण लोगों के बुद्धिकोण में एक विशेष परिवर्तन घनीवी थी। इसके अतिरिक्त अन्य अनीश्वरवादी सम्प्रदायों जैसे आजीवक और उनके विचारों और ईश्वर के विचार के दोनों ही कठोर आलोचक थे। स्थापित वैदिक धर्म के लिए यह सीधी जाँच, "कर्म" और "अहिंसा" पर जोर दिया। जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणिक प्रमुख, पशु-बलि लोगों में बड़े लोकप्रिय हुए। आपसी मतभेद होने के बावजूद भी दोनों धर्मों में मानवता, नैतिक नवीन धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव में विशेष योगदान किया। इनमें से बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म और स्थापित होने के विषय में पढ़ें। समकालीन सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं ने इन इस दृष्टि में आपन छठी शताब्दी ई. पू. में उत्तरी भारत में नवीन धार्मिक विचारों के उद्भव

इस खंड के लिए कुछ उपयुक्त पुस्तकें

Ghosh A, *The City in Early Historical India*, Simla, 1973.
 Sharma, R.S, *Material Cultures and Social Formations in Ancient India*, New
 Delhi, 1983
 Wagle, N, *Society at the Time of Buddha*, Bombay, 1966.
 वाग्म, ए. एन, *अद्वैत भारत*, आगरा
 वाग्म, रोमिला, *भारत का इतिहास*
 कोशास्त्री, टी. टी., *प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता*

- 3) i) ✓
- ii) ✓
- iii) X

- iv) ✓
- v) ✓

2) नन्द वंश में जिस सम्राट को स्थापना की, उसको शुद्ध सैन्याभियोगों का सम्प्रदाय कहा जाता है। उनका विचार था कि आदमी प्रकृति के नियमों के नियंत्रण में है। देखिए पाग 17.10.1

भा.स. बही सं
 वा.स. शर्मा टी. ए. ए.

60	इकाई 22 सामान्य की विषय
49	इकाई 21 अर्थशास्त्र की व्याख्या
34	इकाई 20 सांख्यिकी, संगणन और अन्य शक्तिशाली के साथ संबंध
21	इकाई 19 शोध सामान्य की अध्यापन
5	इकाई 18 सामान्य सामान्य की विस्तार

संपूर्ण, समाज और अध्यापन : 320 से 200 ई.पू. तक

5

छठ

UGHY-04(N)
इतिहास
भारत : प्राचीन काल से
8वीं सदी ईस्वी

राजिब टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश



खंड 4 में आपने छठी शताब्दी ई.पू. से चौथी शताब्दी ई.पू. तक के भारतीय इतिहास का अध्ययन किया और उस काल में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त की। कुछ बड़े जनपदों का उदय उस काल की एक महत्वपूर्ण घटना थी। ये महानज्ज्वल अधिकांशतः गंगा घाटी में अवस्थित थे, हालाँकि कुछ महानज्ज्वल दूसरे क्षेत्रों में भी अवस्थित थे। इन महानज्ज्वल में राजा या जन-समूहों के शासक शासन करते थे। इन महानज्ज्वलों में कृषि, पशुपालन, व्यापार और विभिन्न शिल्पों का विकास हुआ। इनमें कृषिय बस्तियों के साथ-साथ वाणिज्य केन्द्र भी स्थापित हुए, तथा बड़े शहर भी विकसित हुए। छठी शताब्दी ई.पू. से चौथी शताब्दी ई.पू. के बीच ये महानज्ज्वल राजनीतिक वर्चस्व के लिए आपस में लड़ते रहे। इस खंड में एक महत्वपूर्ण महानज्ज्वल मगध के शही: शही: साम्राज्य के रूप में विकसित होने की घटना की गयी है। दूसरे राज्य-क्षेत्रों की जीतकर तथा उन्हें अपने राज्य में मिलाकर मगध एक साम्राज्य के रूप में उदित हुआ। मौर्य राजा अशोक के समय में मगध राज्य का क्षेत्रिय फैलाव अपनी चरम सीमा पर था। उस समय मगध साम्राज्य का फैलाव उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर दक्षिण में महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र की सीमाओं तक था और पश्चिम में गुजरात से लेकर पूरब में उत्तरी और दक्षिण पश्चिमी बंगाल तक इसका विस्तार था।

- 1) उत्तर-पश्चिम
- 2) गंगा घाटी और उसके आस-पास के इलाके से लेकर विन्ध्य के उत्तर तक
- 3) दक्कन

अफगानिस्तान से लेकर पंजाब तक के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में गण-समूहों से मिलते जुलते कुछ स्वयत्न राज्य क्षेत्र थे। सिकन्दर के अभियान के ऐतिहासिक दस्तावेजों, कुछ पुराने कारसी और इरानी अभिलेखों और तक्षशिला के महत्वपूर्ण व्याकरण पाणिनि के ग्रंथ में इस प्रकार के राज्यों जैसे मालवे, आक्सिसड्राकोठ, सिबोइ, गजिस, तक्षशिला और पोरस के राज्य का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः छठी शताब्दी ई.पू. के दौरान काजस इरिस प्रथम, त्रेकस, आडजसुज और डैरिजस ग्रीक जैसे शासकों के नेतृत्व में कारस का अककामेन्द्र साम्राज्य इस इलाके तक फैल गया। यह संपर्क सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुई, क्योंकि गंगाघाटी में पर्वत मगध साम्राज्य ने अककामेन्द्र की साम्राज्य में बंधी संस्कृति के कई तत्वों को अपना लिया। चौथी शताब्दी ई.पू. के अंतिम दौर में यह शक्तिशाली कारसी साम्राज्य उत्तरी यूनान के मैकदोनिया के सिकन्दर की गयी पर उसके सेना नायकों ने पश्चिमी एशिया पर अपना अधिकार जमाया और उस क्षेत्र में सेल्यूसिड राज का उदय हुआ। कारस और यूनान से संपर्क के स्थापित होने के पश्चात् इस उपमहाद्वीप के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र पर कारसी और यूनानी सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा और कारसी और यूनानी जनसमुदाय के आमन से उनकी भाषा और लिपि का प्रचलन हुआ। इसके परिणामस्वरूप वाणिज्य की बढ़ती मिला और उत्तरी अफगानिस्तान के अककस घाटी में बैक्ट्रिया और तक्षशिला जैसे-सांस्कृतिक और वाणिज्यिक केन्द्र तैयार हो उभरे। गंगाघाटी में अवस्थित सभी महानज्ज्वलों पर विजय हासिल कर मगध साम्राज्यिक रूप से उत्तर पश्चिमी क्षेत्र की ओर अग्रसर हुआ और उसने सिकन्दर के उत्तराधिकारियों से ये इलाके जीत लिए। शही: शही: मगध के शासक दक्कन की ओर भी बढ़े पर इसका विस्तृत इतिहास अभी ज्ञात नहीं है। हालाँकि महाराष्ट्र, आंध्र में अशोक के अभिलेखों का पाया जाना तथा सुदूर दक्षिण के राज्यों के साथ अशोक के मित्रता के संबंध होने इस बात का प्रमाण है कि मगध का अधिकार क्षेत्र दक्कन तक फैला हुआ था।

बृहद मगध साम्राज्य के राज्य-क्षेत्र में सम्मिलित प्रदेश भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न थे। इस विशाल साम्राज्य पर मगध शासक किस प्रकार प्रभावी रूप से शासन करते थे? अभी ज्ञात तक इतिहासकारों का मानना था कि मगध के शासक, आसकर मौर्य शासक, विभिन्न प्रकार के अधिकारियों और विशाल सैन्य बल की सहायता से अपने साम्राज्य के सभी भागों पर सीधा और निरंकुश नियंत्रण रखते थे। अब इस मान्यता पर आशोक प्रथम विश्व युद्ध लगा गया है और इस बात पर संदेह व्यक्त किया जा रहा है कि साम्राज्य के विभिन्न भागों, आसकर सुदूर क्षेत्रों में सीधा नियंत्रण स्थापित करना संभव था। साम्राज्य के पास विशाल सेना थी, जिसका यूनानी दस्तावेज बार-बार उल्लेख करते हैं। साम्राज्य के कई केन्द्र थे—उत्तर पश्चिम

प्रोत्साहन दिया। परवर्ती काल में इन संपर्कों का महत्व बढ़ा। इससे संबंधित अध्ययन आप खंड 4 में करेंगे। मध्य के शासकों ने देश से बाहर दक्षिण और उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों से भी संपर्क स्थापित करने की दिशा में के नये तत्व सामने आये तथा भारत के विभिन्न भागों में इनके प्रसार के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन हुए। इस प्रकार राज्य की अवधारणा, नगरीय जीवन, नये धार्मिक विचार, लेखन सिक्का इत्यादि जैसे संस्कृति जोगों, व्यापारियों और धार्मिक नेताओं का उन महाद्वीप के विभिन्न भागों में बड़ी तादाद में आवागमन शुरू लेकिन इसके निरन्तराधीन क्षेत्रों पर इसका महत्व प्रभाव पड़ा। मध्य साम्राज्य की स्थापना के कारण ही अध्ययन आप इस खंड की इकाई संख्या 22 में करेंगे। हालाँकि प्रथम भारतीय साम्राज्य का पतन ही गया वे साम्राज्य के रूप में विकसित नहीं हो सके। मध्य साम्राज्य के पतन के बारे में कई मत हैं, इसका गया। शून्य और कण्व जैसे छोटे राजवंशों ने मध्य और आस-पास के क्षेत्रों पर अधिकार स्थापित किया पर मध्य साम्राज्य ज्यादा समय तक नहीं टिक पाया और दूसरी शताब्दी ई.पू. के आरम्भ में इसका पतन हो

ही विभिन्न प्रकार के समुदायों से बने साम्राज्य में स्थापित बना रह सकता है। था। पर उसने महसूस किया कि विभिन्न व्यक्ति विभिन्न जगहों और विभिन्न विचारों के बीच सामंजस्य रहने से अनूठी थी, प्राचीन काल के अन्य सम्राटों के समान उसके पास भी विशाल सेना और बृहद प्रशासनिक तंत्र मिला, का आदर करने और समझने की दिशा में प्रवृत्त किया। इस प्रकार आशोक की साम्राज्य संबंधी दृष्टि राजा में परिलिखित कर दिया और अपनी प्रजा को धम्म के सिद्धांतों जैसे "अहिंसा", "दूसरे के विश्वासों और द्वारा विजय के स्थान पर धम्म के द्वारा विजय के सिद्धांत को अपनाया। अपने शौकिया यात्राओं को धम्म-प्रशासनिक कृशलता ही काफी नहीं है। इस उद्देश्य से उसने "धम्म" का सिद्धांत जगू किया। उसने युद्ध के अनूठी घटना है। आशोक ने महसूस किया कि विशाल मध्य साम्राज्य के लोगों के एक सूत्र में पिरोने के लिए वह धम्म के प्रदर्शित के रूप में अपने को विज्ञापित करता था। वस्तुतः आशोक के शासन काल की यह उपयोग विज्ञान और प्रशासन के रूप में अपनी महानता प्रदर्शित करने के लिए नहीं करता था, बल्कि उसमें आशोक ने यह तरीका अपने से पूर्व के अवकाशनिन्द शासकों से सीखा था, पर वह अपने फरमानों का

“देवानाश्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा” —

कीती है: मध्यम से वह अपनी प्रजा तक सीधा संदेश पहुँचा सका। कई स्थानों पर फरमान की शुरुआत इस प्रकार और स्तंभों पर फरमान खुदवाए और साम्राज्य के सामाजिक महत्व के क्षेत्रों में स्थापित किया ताकि उनके प्रजा के नजदीक जानने का एक अधिक सक्षम और सीधा तरीका अपनाया। उसने चट्टानों, पत्थर के टुकड़ों बनवाए विनय स्तंभों पर टिके भव्य कक्ष थे। ये शाही कला के वैभवशाली नमूने हैं लेकिन आशोक ने अपनी किया, पैड़ लगाए, मनुष्य तथा पशुओं के लिए चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करायी। उन्होंने स्तंभ और महल मध्य के सम्राटों खासकर मौर्यों ने यह रस्ता अपनाया और नहर, जलाशय, कुओं और सड़कों का निर्माण स्तंभों के निर्माण द्वारा सम्राट की शक्ति और सदाशयता का प्रदर्शन। अन्य प्राचीन सम्राटों के समान तबकों तक सम्राट का संदेश कैसे पहुँच पाता होगा? इसका एक तरीका था सांस्कृतिक कलाओं और आकर्षक कृशल प्रशासन व्यवस्था की स्थापना से भी महत्वपूर्ण सवाल यह है कि इस विशाल साम्राज्य में विभिन्न

गतिविधियों पर भी राज्य का पूर्ण नियंत्रण था। प्रशासन व्यवस्था थी, जिसका भार विभिन्न समितिओं को सौंपा गया था। इसी प्रकार मौर्य काल में आर्थिक में तक्षिला, मालवा में उज्जयिनी और दक्कन में सुवर्णासि। इस बात का भी प्रमाण है कि नगरों में मध्य

18.0	उद्देश्य
18.1	प्रस्तावना
18.2	माध की भौगोलिक स्थिति
18.3	सौतों पर एक नजर
18.4	सौतों से पहले माध का राजनीतिक इतिहास
18.5	"सांख्य" की धारणा
18.5.1	"सांख्य" संबंधी आधुनिक दृष्टिकोण
18.5.2	वकवर्ती-क्षेत्र संबंधी भारतीय धारणा
18.6	मौर्य शासन का उद्भव
18.7	अशोक मौर्य
18.7.1	कालिग पृष्ठ
18.7.2	अशोक की मृत्यु के समय माध
18.8	सारांश
18.9	शब्दावली
18.10	बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम संक्षेप में माध सांख्य के राज्य-क्षेत्र के विस्तार की चर्चा करने जा रहे हैं। इससे आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि माध एक "सांख्य" के रूप में क्यों और कैसे विकसित हुआ। इस इकाई की पढ़ने के बाद आप:

- माध और उसके आस-पास के क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को पहचान सकेंगे और इसके सामरिक महत्व को समझ सकेंगे;
- उन सौतों का उल्लेख कर सकेंगे, जिनकी सहमति इतिहासकार इस काल के इतिहास-लेखन के लिए लेते हैं;
- मौर्य शासन पूर्व माध के दो शताब्दियों के राजनीतिक इतिहास का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे;
- इतिहास के आरंभिक कालों के संदर्भ में "सांख्य" की धारणा को समझ सकेंगे;
- मौर्य शासन की स्थापना में सहायक प्रमुख घटनाओं को रेखांकित कर सकेंगे;
- चंद्रगुप्त और बिंदुसार जैसे आरंभिक मौर्य शासकों और उनके राज्य-विस्तार संबंधी कार्यकलापों की जानकारी दे सकेंगे;
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण और राज्याभिषेक के संदर्भ को स्पष्ट कर सकेंगे और कालिग पृष्ठ का महत्व बता सकेंगे; और
- यह जान सकेंगे कि अशोक की मृत्यु के समय माध "सांख्य" की सीमाएं क्या थीं।

18.1 प्रस्तावना

इकाई 15 में आप जनपद और महाजनपद से परिचित हो चुके हैं। इनकी जानकारी हमें आरंभिक बौद्ध और जैन ग्रंथों में मिलती है। ये जनपद और महाजनपद विद्य के उत्तर में स्थित थे इनका काल ई.पू. प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में पड़ता है। इस इकाई में हम एक महत्वपूर्ण महाजनपद माध के विकास पर विस्तार से चर्चा करने जा रहे हैं। पिछले दो सौ वर्षों से इतिहासकारों का ध्यान माध की ओर जाता रहा है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि यह जाने-माने मौर्य साम्राज्य का केन्द्र-बिन्दु था।

इस इकाई में हम केवल मध्य भारत के क्षेत्रीय विकास पर प्रकाश नहीं डाल रहे हैं बल्कि आधुनिक काल से पहले की "साम्राज्य" संबंधी धारणा पर भी विचार कर रहे हैं। यह विचार हम दो स्तरों पर करेंगे—(1) "साम्राज्य" शब्द के अनेक अर्थ, जिसमें केवल विशाल क्षेत्रीय विकास ही शामिल नहीं है, और राज्य तथा साम्राज्य संबंधी आर्थिक भारतीय धारणा।

इन विद्वानों पर विचार करने से विभिन्न विद्वानों द्वारा मध्य साम्राज्य (खसकर मौर्य शासकों के अधीन) की प्रकृति के विश्लेषण को समझने में मदद मिलेगी।

इस इकाई में पाँचवीं शताब्दी ई.पू. से तीसरी शताब्दी ई.पू. के बीच हुई राजनीतिक गतिविधियों का भी अवलोकन किया जाएगा।

छठी शताब्दी ई.पू. से ही मध्य राज्य का विकास शुरू हो गया था, हालाँकि नवीं और मौर्य के अधीन इसमें तेजी आई। विभिन्न भागों में अशोक के अभिलेखों की उपस्थिति से यह संकेत मिलता है कि सुदूर पूर्व और दक्षिण के क्षेत्रों को छोड़कर भारतीय उपमहाद्वीप का अधिकांश भाग मध्य साम्राज्य के अधीन था। मध्य के क्षेत्रीय विकास पर विस्तार से चर्चा करने के बाद हम इस तथ्य पर भी विचार करेंगे कि मध्य साम्राज्य की बनावट और संरचना में दंतनी विविधता थी और इसका फलव इतना व्यापक था कि प्रत्यक्षतः राजनीतिक निबंधन रखना संभवतः बहुत कठिन था। इससे शायद यह समझने में सहायता मिलेगी कि क्या अशोक ने साम्राज्य में व्याप्त तनाव को कम करने के लिए "धर्म" का सहारा लिया। इसकी विस्तार से चर्चा इकाई 21 में की गई है।

18.2 मध्य की भौगोलिक स्थिति

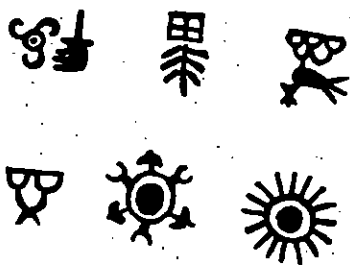
खंड 4 की इकाई 14 में हमने मध्य राज्य की चर्चा **सोलह महाजनपदों** के एक महात्त्वपूर्ण महाजनपद के रूप में की थी।

ये महाजनपद गंगा घाटी के बड़े भू-भाग में फैले हुए थे; कुछ इसके उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में भी स्थित थे। हालाँकि चार में से तीन महात्त्वपूर्ण राज्य (काशाल, वज्जि गणराज्य और मगध) मध्य गंगा घाटी में स्थित थे, चौथा शक्तिशाली राज्य अवन्ती पश्चिमी मालवा में था। मध्य के पूर्व में अंग, उत्तर में वज्जि गणराज्य, पश्चिम में काशाली और सुदूर पश्चिम में कोशल राज्य था।

मध्य वर्तमान बिहार राज्य के पटना, गया, नाँदा और शाहाबाद के कुछ हिस्सों में फैला हुआ था। भौगोलिक दृष्टि से मध्य जहाँ स्थित था, वहाँ की मिट्टी जलोढ़ और उपजाऊ थी। विशेष बात यह है कि मध्य की आर्थिक राजधानी राजगृह, नदी से दूर दक्षिण क्षेत्र में स्थित थी। इसका कारण संभवतः इसकी सामरिक भौगोलिक स्थिति ही सकती है; दूसरी बात यह कि इस इलाके में जौहर खनिज पदार्थों का भंडार उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त यहाँ ताँबा भी मुल्य था और इसके आस-पास दक्षिण बिहार के जंगल भी थे। इन्हीं सब कारणों से मध्य के शासकों ने गंगा घाटी के उपजाऊ क्षेत्र को छोड़कर अप्रीक्षाकृत वीरान इलाका चुना। बार में मध्य की राजधानी पाटलिपुत्र हो गई, जिसका मूल नाम पाटलिपुत्र को मध्य की राजधानी बनाया। इससे और पुनर्गठन जैसी गतिविधियों के मुद्दों पर चर्चा थी। मौर्यों ने पाटलिपुत्र को मध्य की राजधानी बनाया। इससे उत्तर-पश्चिम में मध्य का पूर्ण नियंत्रण हो गया। यह पर्व गंगा के उत्तर में था और हिमालय की लकड़ही तक जाता था। मध्य ने विभिन्न राज्यों से सम्पर्क स्थापित करने में नदी-मार्ग का उपयोग किया और भारी सामान लाने के लिए सुगम यातायात उपलब्ध हो सका। इस प्रकार, अपने समकालीन शक्तिशाली राज्यों की तुलना में मध्य का कुछ प्राकृतिक लाभ प्राप्त हुए। मध्य के पश्चिम में अवन्ती, इसके उत्तर-पश्चिम में काशाल और इसके उत्तर में वज्जि गणराज्य, छठी शताब्दी के समान ही शक्तिशाली थे।

हाल के शोधों से यह स्पष्ट है कि जौहर की सुलभता मध्य और अवन्ती के विकास में भरपूर योगदान दिया। इससे न केवल दक्षिण-पश्चिम में मध्य, इससे कृषि अर्थव्यवस्था का विकास हुआ, अर्थात् इन्हीं क्षेत्रों में मध्य के लिए सबसे बड़ा खतरा था और पूर्वी मध्य प्रदेश में होने वाले नुकसान के लिए मध्य के लिए सबसे बड़ा खतरा था और पूर्वी मध्य प्रदेश में स्थित जौहर की खानों भी उसकी पहुँच से दूर नहीं थीं।

चित्र-1 पंच भावों के प्रतीक चिह्न



अभिलेख और चिह्न मौर्य काल की जानकारी के अन्य महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जो प्राचीन भारत में मौर्य काल की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। हालाँकि इस काल के चिह्नों पर राजा का नाम अंकित नहीं है और उन्हें पंच भावों के चिह्न कहा जाता है क्योंकि उन पर कई प्रकार के चिह्न अंकित होते हैं। हालाँकि इस प्रकार पंच भावों के चिह्न लक्षणों के अनुसार प्रतीक रूप में प्रयोग किए जाते हैं क्योंकि उनके चिह्न में एकलक्षणता है। चिह्नों के अलावा अन्य अभिलेखीय सामग्री, खासकर अशोक के शासन के संदर्भ में महत्वपूर्ण सूचना देते हैं और यह अपने आप में एक विशेष बात है। अशोक के चौदह बृहत् खिलेख, महत्त्वपूर्ण सूचना देते हैं और अन्य अभिलेख पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के महत्त्वपूर्ण भागों और आसपास पाए जाते हैं। ये अभिलेख अशोक के शासन के अंतिम चरण में मौर्य साम्राज्य के विस्तार के साक्ष्य प्रमाण हैं।

लिखी और सम्पादन किया।

कि मूल ग्रन्थ संस्कृत के मन्त्री, कौटिल्य द्वारा लिखा गया था, बाद के वर्षों में अन्य विद्वानों ने इसकी लिपि बावर्त कर्तव्य अन्य विद्वान इस ग्रन्थ के अधिकांश हिस्से को मौर्य काल के लेखन मानते हैं। उनकी मान्यता है कि **अर्थशास्त्र** के कुछ अध्यायों का लेखन काल ईसा पूर्व की प्रथम दो शताब्दियों में हुआ होगा। इस लेखन पूर्व रूप से मौर्य काल में नहीं हुआ था। सांख्यिकीय गणना के आधार पर यह मान्यता सामने आई है। हाल ही में, अर्थशास्त्र के लेखन-काल के संबंध में नए विचार सामने आए हैं, जिनके अनुसार इस ग्रन्थ का कौटिल्य के अर्थशास्त्र की खोज 1905 ई. में हुई। यह मौर्य काल से संबंधित महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है।

फारसी अभिलेखों और डेपोडोरस की रचना जैसे यूनानी स्रोतों से मिलती है। अर्थशास्त्र था। अतः अर्केमेसी (ईरानी) शासन और बाद में सिकन्दर के आक्रमण के विषय में जानकारी इस द्वारा मिलती है। छठी शताब्दी ई.पू. से चौथी शताब्दी ई.पू. तक उत्तर-पश्चिमी भारत विदेशी शासकों के प्रथम शताब्दी ई.पू. के स्टेबो और डेपोडोरस तथा द्वितीय शताब्दी ई.पू. के एरिथन के यूनानी ग्रन्थों के संस्कृत-मौर्य काल में भारत आया था और वह राजा के दरबार में भी गया था। मंगस्थानीय का वर्तमान जिनके उस समय भारत का भ्रमण किया। इनमें मंगस्थानीय काफ़ी वर्तमान और जाना-पहचाना नाम हैं, जो लेटिन के "कॉन्सिडर ग्रन्थों" से प्राप्त सूचनाएँ उल्लेखनीय हैं। यह उन लोगों का लिखा या आवृत्त है, विदेशी स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ अधिकांशतः अधिक प्रासंगिक और लक्षण समकालीन हैं। इनमें यूनानी और

के संदर्भ में हुई थी।

स्रोतों का उपयोग काफ़ी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि उनकी रचना भारत से बाहर बौद्ध धर्म के प्रचार दीक्षादान, भारत के बाहर लिखित और चीनी बौद्ध स्रोतों में सुरक्षित एक महत्त्वपूर्ण बौद्ध ग्रन्थ है। परन्तु इन जिनका संग्रहण श्रीलंका में हुआ। ये ग्रन्थ अशोक के शासनकाल के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त, इतिहास प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। **परावस** और **दीर्घस** प्रमुख पर्वती बौद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं, अधिक प्रामाणिक रूप में और सीधे तौर पर प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में गुप्तकाल तक के शाही राजवंशों का परम्परा के ग्रन्थ आरिभक राजनीतिक गतिविधियों को बाद में संगृहीत हुए ब्राह्मण ग्रन्थों (जैसे 'पुराण') से समी. ग्रन्थ छठी शताब्दी ई.पू. के बाद विभिन्न चरणों में लिखे और संगृहीत किए गए हैं। जैन और बौद्ध है। जैन-परम्परा के दो ग्रन्थ—अकरना सूत्र और सूत्र कितना—अन्य ग्रन्थों से पुराने माने जाते हैं। हालाँकि ये परम्पराओं का काफ़ी उल्लेख किया गया है। बौद्ध-परम्परा का कुछ साहित्य लिपिकों और जातकों में संगृहीत आरिभक बौद्ध और जैन साहित्य में मध्य गंगा के मैदान, जहाँ मगध स्थित था, की घटनाओं और

ई.पू. छठी-पाचवीं शताब्दी के दौरान बिबिसार के नेतृत्व में माघ मध्य गंगा के मैदान के प्रमुख दावेदार के रूप में उभरी। बिबिसार बुद्ध का समकालीन था। बिबिसार माघ की प्रथम महत्वपूर्ण शासक माना जाता है। राजनीतिक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए उसने कोशल के राजघराने से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस शादी में उसे काशी का एक जिला देहल के रूप में मिला। गांधार के राज्य के साथ उसका

18.4 मौर्यों से पहले माघ का राजनीतिक इतिहास

- 4) सही और गलत कथनों के आगे क्रमशः \checkmark और \times का निशान लगाइए :
- (क) मौर्य काल से पहले के काल के लिए अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ()
- (ख) मौर्य पूर्व मावर्क सिक्कों में चांदी की एकलपता है। ()
- (ग) उत्तरपथ एक ऐसा रास्ता था, जो गंगा के किनारे-किनारे जाता था। ()
- (घ) पाटलिपुत्र गंगा के दक्षिण में बसा था। ()
- (ङ) भारत के बारे में भूस्थानीय का कथन बाद के लेखकों की रचनाओं में संगृहीत है। ()

- 3) उन तीन महत्वपूर्ण कारकों का उल्लेख कीजिए, जिनसे माघ राज्य के विकास में सहायता मिली।

- 2) पांच पंक्तियों में उन महत्वपूर्ण स्रोतों का उल्लेख कीजिए, जिनसे माघ के इतिहास की पुनर्रचना में सहायता मिली है।

- (क) अवंती, कोशल, अंग
(ख) अंग, कोशल, वज्जि गणराज्य
(ग) अंग, वज्जि गणराज्य, काशी
(घ) अवंती, काशी, कोशल

- 1) सही उत्तर के सामने \checkmark का चिह्न लगाइए।
माघ निम्नलिखित तीन राज्यों से घिरा था :

शोध प्रश्न 1

3 के वर्षों में, पुरातात्विक जानकारी एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में सामने आई है और इससे गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति के महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए हैं। खंड 4 की इकाई 15 में पुरातात्विक उपलब्धियों और सामग्रियों पर प्रकाश डाला जा चुका है। हम जानते हैं कि उत्तरी काली पालिश किए बर्तनों के काल के पुरातात्विक साक्ष्य उस समय से सम्बन्धित हैं जब शहरों और नगरों का उदय हुआ। पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य को सामने लाते हैं कि मौर्य काल में लोगों के भौतिक जीवन में और भी परिवर्तन आए। पुरातल की सहायता से ही हम यह भी जान पाते हैं कि भौतिक संस्कृति के कई तल गंगा घाटी से बाहर फैलने लगे और वे मौर्य शासन से संबंधित माने जाने लगे।

321 ई.पू. में नंद वंश का पतन हो गया। इस दौरान नौ नंद राजाओं ने शासन किया और यह कहा जाता है कि अपने शासन के अंतिम दिनों में वे काफी अलोकप्रिय हो गए थे। चंद्रगुप्त मौर्य ने इस स्थिति का फायदा उठाया और मगध के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। इन सभी परिवर्तनों के बावजूद मगध नंगा घाटी का सर्वशक्तिमान राज्य बना रहा। मगध की भौगोलिक स्थिति उसकी सफलता की कारणों में प्रमुख है। इसके अतिरिक्त जोहा उन्हें सहज सुलभ था और प्रमुख स्थल और जल संधारण मार्ग पर उनका नियंत्रण था। इस इकाई के अगले भाग में हम "साम्राज्य" के रूप में मगध का मूल्यांकन करने के साथ-साथ मौर्य शासन की भी चर्चा करेंगे।

दक्षिण कर्नाटक प्रदेश के कुछ भाग के अभिलेखों से भी पता चलता है कि नंद वंश के नेतृत्व में दक्कन के कुछ हिस्से पर मगध का अधिकार था। अधिकांश इतिहासकारों का यह मानना है कि महापद्मनंद के शासन काल के अंतिम चरण में मगध साम्राज्य के विस्तार और सुदृढ़ीकरण का पहला चरण समाप्त हो गया। सिकन्दर के आक्रमण का हवाला देते हुए यूनानी ग्रंथ उल्लेख करते हैं कि इस समय उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र छोटे-छोटे राज्य वंशों के बीच विभक्त था। यह भी स्पष्ट है कि मगध राज्य और यूनानी विजता के बीच कोई युद्ध नहीं हुआ।

परवर्ती पुराण ग्रंथों में महापद्मनन्द का उल्लेख **शतिया** के विनाशकारों के रूप में हुआ है। यह भी कहा गया है कि उसने समकालीन सभी राजघरानों से शक्ति छीन ली। यूनानी ग्रन्थ नंद साम्राज्य की शक्ति का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि नंदों के पास विशाल सेना थी, जिसमें 20,000 युद्धसवार, 2,00,000 पैदल सैनिक, 2,000 रथ और 3,000 हाथी थे। इस बात के भी संकेत मिले हैं कि नंदों के संबंध दक्कन और दक्षिण भारत से भी थे। राजा खारवेल के हाथीगुफा अभिलेख में इस बात का संकेत है कि कलिंग (आधुनिक उड़ीसा) के कुछ हिस्सों पर नंद वंश का अधिकार था। राजा खारवेल की शासन काल प्रथम शताब्दी ई.पू. के मध्य में था।

उसके बाद उन्होंने उसकी सीमा का और विस्तार किया। कभी भारत का प्रथम साम्राज्य-निर्माता कहा जाता है। उन्हें केवल मगध का राज्य विस्तार में मिला था और वंश का शासन था। यही से भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक काल शुरू होता है। इस कारण नन्दों को कभी-कभी 326 ई.पू. में उत्तरी-पश्चिमी भारत पर सिकन्दर के समय मगध और अजमल सम्राट् गंगा के भेदान में नन्द

महापद्मनन्द ने राज्य पर अधिकार कर नंद वंश की शुरुआत की। के राज्यपाल शिशुनाग की राजा नियुक्त किया गया। शिशुनाग वंश ने कोई समय तक राज्य किया और माना जाता है कि अंतिम राजा की मगध की जनता ने राज सिंहासन से उतार दिया। 413 ई.पू. में बगारस में असक्षम था। उदयन के बाद चार शासक एक के बाद एक गद्दी पर बैठे, परन्तु वे अयोग्य सिद्ध हुए। ऐसा बनवाया था। उदयन के शासन काल में राज्य क्षेत्र काफी विस्तृत था, परन्तु वह इन पर कृशाल शासन करने पराहिया के दक्षिण तक फैला हुआ था। यह कहा जाता है कि उसने गंगा और सोन के मुहाने पर एक किला उत्तराधिकारी था। उदयन के राज्यकाल में मगध का क्षेत्र हिमालय के उत्तर से लेकर छोटा नागपुर की यह माना जाता है कि अजातशत्रु ने 492 से 460 ई.पू. तक राज्य किया। उदयन (460-444 ई.पू.) उसका

इस प्रकार मगध गौरीय प्रदेश में सबसे शक्तिशाली राज्य माना जाने लगा। भी, उसके शासनकाल में काशी और वैशाली (वर्तमान महाजनपद की राजधानी) मगध के अधीन आ चुके थे। आक्रमण की पूरी वैशाली अजातशत्रु ने कर ली थी परन्तु आक्रमण किन्हीं कारणों से समय न हो सका। फिर आंतरिक कलह पैदा कर छोड़े से उसे पराजित करने में सफल हुआ। अपने शक्तिशाली शत्रु अवर्ती पर बलि संघ के साथ युद्ध का खिला अजमल अजमल शत्रु तक चलता रहा। अंत में अजातशत्रु बहा कर दिया। गंगा के दक्षिण तक फैला हुआ बलि गणराज्य अजातशत्रु के आक्रमण का अगला निशाना बना। अधिकार कर लिया और अपने मामा, कोशल के नरेश से सीहार्द का संबंध समाप्त कर उन पर आक्रमण मगध के राजा ने आक्रमण की नीति अपनाई और अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार किया। उसने काशी पर आंतरिक समस्याओं और गद्दी पर अजातशत्रु के बैठने से मगध के निष्पत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नये

तक-तक कर मर गया था। ऐसा माना जाता है कि यह घटना ई.पू. 492 के आसपास घटी होगी। चलता है कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार की बंदी बना लिया था और वह (बिम्बिसार) मृत्यु से नदी-बदलगाह था। कहा जाता है कि बिम्बिसार के आधिपत्य में 80,000 गांव थे। परम्परागत सूत्रों से पता उत्तर में अंग राज्य था, जिसकी राजधानी यम्पा एक महत्पूर्ण व्यापारिक केन्द्र थी। यम्पा एक महत्पूर्ण संबंध सीहार्दपू था। इन कर्त्तविक संबंधों को मगध की शक्ति का प्रतीक माना जा सकता है। मगध के

मौजू के अर्थीन माध साध्ज या दूसरे शब्दों में प्राचीन भारत के किसी भी अन्य "साम्राज्य" को समझने के लिए यह जानकारी उपयोगी हो सकती है कि प्राचीन साहित्य में आदर्श सम्राट का मानव्य क्या था।

18.5.2 पञ्चवर्ती-क्षेत्र संबंधी भारतीय धारणा

संसाधनों पर अपना अधिकार जमाए रखता था।

असमानता अपनी चरम सीमा पर थी, जिसमें विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग और क्षेत्र दूसरों द्वारा उन्मूलित प्रशासन शीघ्रता का एक प्रमुख जटिया बन जाता था। दूसरे शब्दों में, आर्थिक साम्राज्यों में, सामाजिक प्रशासनिक निकायों के कुशल संचालन के लिए उच्च वर्ग से अधिकारियों का चयन होता था। इस प्रकार, समृद्धियों पर निर्भर होते थे और किसानों तथा शहरी निम्न वर्ग में इन्हें निकट रूप में समर्थन मिलता था।

ये साम्राज्य सशक्त राजनीतिक समर्थन के लिए आम तौर पर शहरी, आर्थिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक शक्ति की बहुलता भी साम्राज्य निर्माण में सहायक सिद्ध होती है।

के निर्माण में आर्थिक संसाधनों की प्राप्त करके उपयोग में लेना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, मानव साम्राज्यों की सफलता में भौगोलिक-राजनीतिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रकार के साम्राज्यों सत्ता संभार हो गई और उसका स्थान केंद्रीकृत राज्य तंत्र ने ले लिया। प्रायः ऐसा माना जाता है कि इन जिसमें निर्यात के एकाधिकार पर बल दिया जाता था। इसके कारण पुरानी परम्परागत या स्थानीय कबीले/राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्त करने के लिए ऐसे साम्राज्य एकांकित केंद्रीकृत राज्य तंत्र विकसित करते थे, इसलिए शासक वैवाहिक और कर्तनीतिक गतिविधियों की सहायता से अपने नियंत्रण बनाते थे।

परन्तु से आ रही कुछ मान्यताएं टूटती थीं नये राज्य-क्षेत्रों में विस्तार/नीति के कारण दुश्मनी पैदा होती थीं और की संख्या पचास होती थी, क्योंकि साम्राज्य की स्थापना में कुछ लोगों को बलपूर्वक हटाया जाता था और साम्राज्य के संस्थापक लोगों की शक्ति और व्यवस्था का आवासान देते थे। इस प्रकार के साम्राज्य के दुश्मन हैं। इस प्रकार के साम्राज्य के निर्माण के पीछे अक्सर लोगों का असंतोष, विक्षोभ और विरोध होता था।

केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य आम तौर पर सैन्य बल और व्यक्तिगत पराक्रम की सहायता से निर्मित होते हैं। साम्राज्य विषय के दूसरे भागों में भी विद्यमान थे।

यह आम धारणा है कि मौजू का माध साध्ज एक केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य था। इस प्रकार के

बनाती थी।

व्यक्तित्व और उसका शौर्य था। इसके अतिरिक्त, परम्परा से प्राप्त मान्यताएं भी राजा की शक्ति को मजबूत करते हैं। साम्राज्यों का निर्माण किया। आर्थिक साम्राज्यों में केंद्रीय शक्ति का आधार राजा का आधिकारिक रूप में इस परिभाषा को उन राज्य-राज्यों से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए, जिसमें से कुछ ने आधुनिक युग में साम्राज्य भी शामिल है, की पुष्टि की जाती है।

इतिहास में रोमन साम्राज्य को मानक माना जाता है जिससे सभी प्राचीनकालीन साम्राज्यों, जिसमें मौजू निरूपण रहता है, क्रमशः निम्न राजनीतिक पहचान बन जाती है। साधारणतया प्राचीन काल के केंद्र में शक्ति के साक्ष्य केंद्रीयकरण की ओर इशारा करता है। केंद्र राज्य-क्षेत्र में शामिल इकाइयों पर क्षेत्रों को एक साथ बांधकर नियंत्रित रहता है; यह "इम्पेरियल", "डिपेंडेंट", "इम्पेरियल" से बना है। यह सत्ता किसी राजा या राजा के प्रतिनिधि या किसी राजनीतिक संस्था के हाथ में होती है जो विशिष्ट राज्य सत्ता का अधिकार विषमजातीय संस्कृति वाले विशाल भू-भाग पर होता है। इस परिभाषा के अनुसार केंद्रीय आम तौर पर यह समझा जाता है कि "साम्राज्य" एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है, जिसमें एक केंद्रीय

18.5.1 "साम्राज्य" संबंधी आधुनिक दृष्टिकोण

साम्राज्य का अध्ययन करने से पूर्व साम्राज्य के अतिवादी तत्वों को समझना आवश्यक है।

सकती है। इतिहास के विभिन्न कालों में विकसित साम्राज्यों में महत्वपूर्ण अंतर हैं। अतः प्राचीन काल के मध्यकाल के केंद्रीय पश्चात् साम्राज्य की प्रकृति और मौजू साम्राज्य की प्रकृति में एकलपता नहीं हो साम्राज्य अपनी प्रकृति में समान थी। यह स्पष्ट है कि आधुनिक युग में ब्रिटिश साम्राज्य की प्रकृति या बैठते हैं। इसके अलावा, हम कभी-कभी यह भी सोचने लगते हैं कि प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक आवश्यक है, क्योंकि अक्सर हम मनमाने ढंग से सभी प्रकार के (छोटे या बड़े) राज्यों को साम्राज्य कह मौजू साम्राज्य पर विचार करने से पूर्व आइए, समझ लें कि "साम्राज्य" का अर्थ क्या है। यह जानकारी

2) माधव साम्राज्य के इतिहास में नंद शासन के महत्व पर प्रकाश डालिए। उत्तर पांच पंक्तियों में लिखिए।

घ) iii, v

ग) ii, iv

ख) i, iv, v

क) i, ii, iii

उत्तर

- v) अवती की लोहे की खानों पर कब्जा जमाकर
 iv) युद्ध और संधि के जरिए पड़ोसी राज्यों का अधिग्रहण करके
 iii) गंधार तक अपनी सीमा का विस्तार करके
 ii) अंग की राजधानी वज्या पर कब्जा करके
 i) अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में स्थानांतरित करके
 निम्नलिखित उपायों से माधव के आर्थिक राजाओं ने अपनी स्थिति मजबूत की:
 1) नीचे दिए कौनों का उपयोग करते हुए मही उत्तर पर निधान लगाइए:

भाग प्रश्न 2

जैसे अन्य राजनीतिक संगठनों पर राजतंत्र की वर्चस्वता की स्थापित किया।
 की समीक्षा हम आगे करेंगे। हाँ, एक बात स्पष्ट रूप में कही जा सकती है कि माधव साम्राज्य ने गुण समूह
 केंद्रित प्रशासन के माध्यम से नियंत्रण रखता था। अब इस मत पर प्रश्न-चिह्न लगा गया है। इन विचारों
 यह मत कायम रहा कि मौर्यों का राज्य एक निरंकुश राज्य था, जिसमें राजा साम्राज्य के सभी हिस्सों पर
 कपर राज्य और साम्राज्य संबंधी जी बाँटें कही गई है, उनके आधार पर कुछ समय तक इतिहासकारों में
 और प्रशासन की व्यवस्था करता था।
 में कुछ विशेष गुण होने चाहिए। आप इकाई 20 में इस बात का अध्ययन करेंगे कि राजा कैसे अपने राज्य
 गया है। अधशासन का लेखक कौटिल्य राजा की राज्य का अधिकतम शक्ति और बतौरा हुआ करता है कि राजा
 कहा जाता है। ये हैं—**संज्ञा, विषय, कर, सेना, युद्ध, युधि या देश। अधशासन में शाही** को आठवाँ तब माना
 भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर लिखे गए ग्रंथों में राज्य के सात तत्वों की वर्गी की गई है। इन्हें **सप्ततन्त्र**
 बनाता है। **अधशासन** में सात अंगों की वर्गी की गई है। राजा राज्य का सर्वाधिक अधिकतम शक्ति और प्राचीन
 अधशासन और बहुत से दूसरे ग्रंथों में ऐसे विभिन्न अंगों की वर्गी की गई है जिनको मिलाकर एक राज्य
 लिखा जाता है।

क्षेत्र अधिकांश से जोड़कर देखने लगते हैं; इससे भ्रम पैदा होता है क्योंकि आदर्श की ही प्रतीति समझ
 निक होता है। प्रायः इतिहासकार इन आदर्श कथनों को राजाओं द्वारा प्राप्त वास्तविक विशाल राज्य-
 दूसरी तरफ, साहित्यिक और पुरालेखीय स्रोतों में हमेशा बड़ा-बड़ाकर सावधानीपूर्वक विचार की महत्वकांक्षा का
 नहीं हुआ।

प्रभाव-क्षेत्र की वर्गी की गई थी परन्तु शासक अशोक के अलावा कोई भी इस आदर्श की प्राप्ति में सफल
 इस बात में कोई संदेह नहीं कि **वक्रवर्ती** परंपरागत विचारों का ही ही प्रतिबिंबन था, जिसमें भारतीय राजा के
 दक्षिण तक हिमालय से लेकर समुद्र तक (हिन्द महासागर) और **दक्षिण क्षेत्र** का भू-भाग शामिल होता था।
 "वक्रवर्ती-क्षेत्र" की स्पष्ट वर्गी **अधशासन** में की गई है। इसके अनुसार, "वक्रवर्ती क्षेत्र" में उत्तर से लेकर
 आर्थिक शासन ग्रंथों में राजा द्वारा समग्र "अधमध्य" और "राजस्य" जैसे बलि-यज्ञों की वर्गी है, परन्तु
 संकल में सम्राट की "वक्रवर्ती" और उसके राज्य-क्षेत्र की "वक्रवर्ती क्षेत्र" कहा गया है। हालाँकि

हलांकि चंद्रगुप्त के शासन के आरंभिक वर्षों के वर्तन कम तथ्य प्रकाश में आए हैं, परन्तु अधिकांश इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि मौर्य परिवार का संबंध किसी निम्न जाति या कबीले से था। कुछ तथ्य इस बात का संकेत करते हैं कि चन्द्रगुप्त आदिम नर राजा और निम्न जाति की स्त्री मुरा का पुत्र था, इसी से उस परिवार का नाम मौर्य पड़ गया। बौद्ध स्रोतों के अनुसार वह चन्द्रगुप्त का संबंध उस शासक कबीले में था, जिसमें वृद्ध का जन्म हुआ था। इस कथन के अनुसार मौर्य नाम उसी कबीले के नाम से उद्भूत हुआ है। अपत्य रूप से इसका अर्थ यह है कि चन्द्रगुप्त एक पुराने सरदार का वंशज था और इस प्रकार उसका संबंध किसी न किसी प्रकाश शक्ति से था। पुराणों में नर वंश और मौर्य राजवंश में कोई संबंध नहीं बताया गया है, परन्तु वे

विषय में भी अच्छी जानकारी रखता था। का डाला था वरिष्ठ यह साम्राज्य की खराब होने से बचाने के लिए उपयुक्त राज्य और समाज के गठन के थी। अधिकांश के लेखक वाणिक्य के बारे में बताया जाता है कि वह न केवल वृद्ध के राजनीतिक सिद्धांतों को अपरिहार्य किया था, उस समय चन्द्रगुप्त एक कमजोर शासक था और वास्तविक सत्ता वाणिक्य के हाथ में शताब्दी ई. में लिखे नाटक में भी यह कहे गए हैं कि 25 वर्ष की आयु में जिस समय चन्द्रगुप्त ने नर वंश चन्द्रगुप्त के नाम से भी जाना जाता था, की सहायता से मगध का राज विरासन प्राप्त किया था। उसी भारतीय परम्परागत स्रोत इस बात का इवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त ने कोटिल्य ब्राह्मण, जो वाणिक्य या

परन्तु अब 321 ई.पू. का समय संभवान्य है। उसने इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया था। कुछ विद्वान उसके राज्यारोहण का वर्ष 324 ई.पू. मानते हैं इसके बावजूद यह स्पष्ट नहीं है कि चन्द्रगुप्त ने यह कार्य गर्दी प्राप्त करने के बाद किया या उससे पहले ही कायम हो गया और इसके बाद चन्द्रगुप्त के लिए यूनानी दूतों पर अधिकार जमाना कठिन कार्य नहीं रहा। "कालसिकल स्रोत" इस बात का इवाला देते हैं कि सिकंदर के वापस जाने से एक दिवस का माहौल अलोकप्रिय नदी के अधीन था। हालांकि इस तथ्य की जांच करना कठिन कार्य है, परन्तु भारतीय और अन्य सिकंदर से मिला था और उसने सिकंदर की मगध पर आक्रमण करने की सलाह दी थी, जो उस समय अधिकांश भाग पर मगध का पहले से ही अधिकार था। प्राचीन ग्रंथ इस बात का इवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त पृथिवी पर विजय हासिल करने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। गंगा घाटी के तर्क है कि इससे पृथिवी के गणराज्य कमजोर हो गए और चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मगध की सेना को पूरे अस्तित्वात् परिराम यह हुआ कि इसने संपूर्ण देश पर मौर्यों की विजय का रास्ता प्रशस्त कर दिया। उनका डी.डी. कीशान्दी का यह मानना है कि सिकंदर के उत्तर, पश्चिम पर आक्रमण का ताकालिक और

18.6 मौर्य शासन का उत्पन्न

- 4) सही कथन के आगे ✓ का और गलत कथन के आगे X का चिह्न लगाए।
 - क) मगध साम्राज्य की विजय का साम्राज्य भी कहा जा सकता है।
 - ख) मगध साम्राज्य को केंद्रीकृत नीकरशाही साम्राज्य कहा जा सकता है।
 - ग) आरंभिक ग्रंथों में सेना को राज्य का सर्वाधिक प्रमुख अंग माना गया है।
 - घ) अधिकांश प्राचीन भारतीय राजाओं में चक्रवर्ती का आदर्श प्राप्त कर लिया था।
 - ङ) अधिकांश में राजा से यह अपेक्षा की गई है कि उसमें विशेष गुण हों।

3) "साम्राज्य" संबंधी विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर मौर्य "साम्राज्य" को मूल्यंकन कीजिए। (अपने उत्तर के संबंध में आप अध्ययन केन्द्र के परामर्शदाता से सलाह ले सकते हैं।) उत्तर पांच पंक्तियों में लिखिए।

18.7 अशोक मौर्य

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) मौर्य परिवार की जति/मूल के संबंध में विभिन्न विचारों का उल्लेख कीजिए। इनमें से कुछ मतां का उल्लेख पाठ पत्रिकाओं में कीजिए।
- क) चंद्रगुप्त के परामर्श पर सिंहादर ने मगध पर आक्रमण किया।
 - ख) चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस निकेटर को पराजित किया।
 - ग) चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस प्रथम के साथ विदुसर का सपथक था।
 - घ) चंद्रगुप्त और विदुसर ने कन्याकुमारी तक का इलाका जीत लिया था।
 - ङ) सेल्यूकस राजा, एंटीओकस प्रथम के साथ विदुसर का सपथक था।
- 1) सही और गलत कथन के आगे क्रमशः V और X का चिह्न लगाएँ।

गोप्य प्रश्न 3

268 ई.पू. के आसपास अशोक विदुसर का उत्तराधिकारी बना। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों के बीच राजसिंहासन के लिए बार-बार युद्ध हुए। अंततः 269-अशोक की तरफ था। बौद्ध स्रोतों के अनुसार विदुसर की मृत्यु 273-272 ई.पू. के आसपास हुई थी। सकारा है क्योंकि अशोक ने केवल कलिंग (उड़ीसा) पर विजय प्राप्त की थी। उसका धार्मिक झुकाव मिलता है। उसके विजय अभियानों का अनुमान केवल अशोक के साम्राज्य के विस्तार को देखकर लगाया जा सकता है। "शत्रु का संहरक" कहा जाता है, उसके शासनकाल का शौर्य भी टीका से नहीं

विस्तार के लिए तक विस्तार किया। कि विदुसर ने दक्कन पर अपना नियंत्रण स्थापित किया और मौर्य साम्राज्य को प्रायः द्वीप में सुदूर दक्षिण पूर्व शासकों के काल में ही मगध का अंग बन चुका होगा। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है मानना है कि चिकि अशोक ने केवल कलिंग पर ही विजय प्राप्त की थी, अतः गुप्तायुद्ध तक का प्रदेश उसके गराते हुए चलने का जोरक किया है। शापद यह विदुसर का ही शासनकाल होगा। बहुरी से इतिहासकारों का राजाओं और सरदारों को हरा दिया था। दक्षिण के प्रारंभिक तमिल कवियों ने मौर्य पर मौर्यों के लिखा है। करते हैं उसने पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच का भाग जीत लिया था और सोलह नगरों के सोलहवीं शताब्दी में लिखत के एक बौद्ध पुजारी तारनाथ ने अपनी रचना में विदुसर का युद्ध संबंधी वर्णन

शिलोक) शत्रु का आग्रह किया था। उसने मीठी मीठा, सुखा अजीर और एक तार्किक (प्राचीन यूनानी दर्शन तथा अलंकार या भाषणशास्त्र का उल्लेख है कि विदुसर का संबंध सीरिया के सेल्यूकस प्रथम के साथ था, जिसे उल्लेख हुआ है। यूनानी विदुसर को अलिप्टोकेटस के नाम से पुकारते थे। यूनानी स्रोतों में इस बात का भी चंद्रगुप्त का पुत्र विदुसर 297 ई.पू. में गर्दती पर बैठे। भारतीय और "कालिंकल स्रोतों" में उसका कम

दिया। देलाली में उसने अपने अंतिम दिन बिनाए और एक कट्टर जैन की तरह मूढ़ रहकर धीरे-धीरे प्राण त्याग साधु शरणागत के साथ दक्षिण की ओर चला गया। दक्षिण कर्नाटक में स्थित जैनों के तीर्थ स्थान श्रावण- कि अपने अंतिम दिनों में चंद्रगुप्त ने जैन धर्म अपना लिया था। उसने राजसिंहासन त्याग दिया और एक जैन संप्रदाय: यह चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के शासन का इलाका देना है। अंततः जैन परंपरा से सुवर्णा मिलनी है किया है, यह माना जाता है कि यह मौर्यों का ही उल्लेख है जिनका दक्षिण से संपर्क हुआ था; परन्तु संप्रदायों में प्रारंभिक तमिल लेखकों (ईसाई बाद की प्रारंभिक शताब्दियों में) ने "मौरियार" का उल्लेख

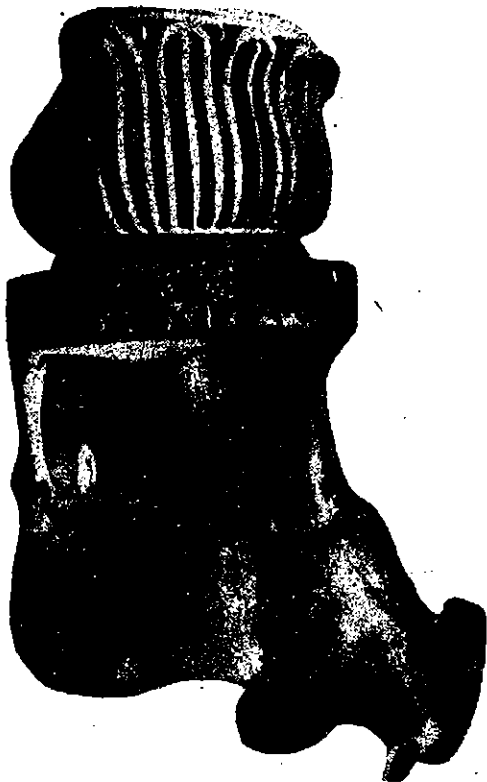
4. मूर्तिका विना अशोक का स्तंभ शीर्ष



2. शीर्षा शिखर विना अशोक स्तंभ



3. मूर्तिका स्तंभ पर विना शीर्ष



(ख) i, iii, iv

(क) ii, iv v

सही

- v) अशोक के अभिलेखों में उसकी चर्चा देवानामिष्य विपदस्सी के रूप में की गई है।
- iv) उसने कुछ विजय के स्थान पर धम्म विजय को अपना लिया।
- iii) किसी प्रदेश को जीत लेने के बाद अशोक के अभिलेख वहां स्थापित कर दिए जाते थे।
- ii) अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने बौद्ध धर्म अपना लिया।
- i) अशोक पुत्रराज और विंदुसार का उत्तराधिकारी था।
- नीचे दिए गए चार कोष्ठ उत्तरों में से एक है।
- 2) नीचे अशोक से संबंधित कुछ वक्तव्य दिए गए हैं। सही वक्तव्यों का चुनाव कीजिए। सही उत्तर, उसके

1) पांच-छह पंक्तियों में लिखिए कि अशोक के शासनकाल में कुछ-नीति क्यों बदल गई?

गीत प्रश्न 4

20 और इकाई 21 में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

नियंत्रित किए जाते थे। मौर्यों के प्रशासनिक नियंत्रण और धम्म की नीति से जुड़े दोनों सवाल पर इकाई 20 है कि वे क्षेत्र वहां अभिलेख पाए गए और वे क्षेत्र वहां अभिलेख नहीं पाए गए हैं, क्या समान रूप से व्यापारिक मार्गों और साम्राज्य के सीमांत प्रदेशों से प्राप्त हुए हैं। परन्तु यह सवाल अभी तक अपनी जगह की कोशिश की, जिसके अभाव में शासन करना बहुत मुश्किल था। मौर्यों के अभिलेख कुछ महत्वपूर्ण देती हैं। अशोक ने इसके माध्यम से एक विचार प्रकृति का सहारा लेकर विशाल साम्राज्य पर नियंत्रण करने की उदार तानाशाह के रूप में चित्रित किया है। यह धारणा धम्म के व्यावहारिक पक्ष को नजरअंदाज कर क्योंकि भारत के राजनीतिक इतिहास में इसे दोहराया नहीं गया। विभिन्न इतिहासकारों ने बार-बार अशोक दिया जाए। अहिंसा की नीति को राज्य-नीति के रूप में अपनाया जाना अपने आप में एक अनूठी घटना थी, इसके साथ ही साथ यह प्रयत्न भी चल रहा था कि साम्राज्य के अंदर होने वाले सभी युद्धों को समाप्त कर इस प्रकार, अशोक के राज्य-काल में माघ साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार अपनी चरम सीमा पर था। परन्तु,

उत्तरी और दक्षिण बंगाल मौर्यों के साम्राज्य का अंग था।

सत्यपुत्रों के राज्य तथा श्रीलंका द्वीप भी साम्राज्य की सीमा से बाहर थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में

उत्तर-पश्चिम में **सेल्यूस** राजा **सेलिओकस**-द्वितीय का राज्य था, दक्षिण में चीन, पांड्य, काल्युत्र और **विजय** कहा गया था, सीमांत राज्य क्षेत्रों को **प्रान्त** की संज्ञा दी गई है। माघ साम्राज्य की सीमा के बाहर विस्तार की पता चलता है। विजय से दक्षिण राज्य क्षेत्र को **विजय** और "धार्मिकीय राज्य-क्षेत्र" को **राज्य** बसे हुए थे। मानचित्र पर अशोक के लेखों के केंद्रों के अलावा कुछ और नब्बों से भी उसके साम्राज्य के साथ सीमा, पित्तिकी, आंध्र और पूर्वियों का भी उल्लेख किया गया है, जो पश्चिमी भारत और दक्कन में उदाहरण के लिए उत्तर-पश्चिम प्रदेश के कन्नौजों और यवनों का उल्लेख मिलता है। उनकी चर्चा के साथ-साम्राज्य की परिधि से बाहर थी। साम्राज्य के भीतर भी लोगों की जाति और संस्कृति में काफी भिन्नता थी। रेखा की पुष्टि होती है। दक्षिण में चीन, पांड्य, सत्यपुत्र और काल्युत्रों का उल्लेख हुआ है, जो मौर्य

वे कुछ साम्राज्य की सीमा पर रहने वाले लोगों की भी चर्चा करते हैं, इससे ऊपर वर्णित राज्य की सीमा-

नियंत्रण रखना भी एक उद्देश्य था, परन्तु मूल उद्देश्य कब्जे माल के सौते पर अधिकार बनाना रखना था। गया था। इसके आधार पर आधुनिक इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि-इसके क्षेत्रीय उपमहाद्वीप पर बात भी स्पष्ट हो जाएगी कि प्रत्यक्षपूर्वक इन्हें महत्वपूर्ण समुद्र और स्थल व्यापारिक मार्गों पर स्थापित किया

2) भाग 18.3 देखिए।
1) ग)

भाग 1

18.10 शोध प्रश्नों के उत्तर

संक्षिप्त: शोक दर्शन, शाब्दिक अर्थ है छल तर्क में विश्वास रखने वाला दार्शनिक।

संज्ञा: सान अंग।

निष्ठा" के रूप में हुआ है।

धर्म / धर्म : शाब्दिक अर्थ "साधर्म्यम व्यवस्था"; परन्तु अशोक के अभिलेखों में इसका उल्लेख "धर्म" के रूप में हुआ है।

साधर्म्यम : एक निरंकुश राजा, जिसका प्राधिकार पर कोई अंकुश न हो।

"व्यक्तिगत जीवन" : प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के यूनानी लोग।

व्यक्तिगत जीवन : एकवर्ती या एकछत्र सम्राट का अधिकार-क्षेत्र।

व्यक्तिगत निरंकुशता : एक अछा और उदार राजा, जिसके हाथ में पूर्ण नियंत्रण हो।

उत्तरधर्म: उत्तरी स्थल मार्ग, जो हिमालय की पहाड़ियों तक जाता था।

हुआ आतिथिक उपहार।

आतिथिक उपहार : शब्दार्थ : उत्तर पूर्वी होने के बाद बची सामग्री। आर्थिक संदर्भ में आवश्यकता पूर्ण के बाद बचा हुआ आतिथिक उपहार।

18.9 शब्दावली

- अशोक की मूर्त के समय माघ साम्राज्य के विस्तार की सीमाएं जान सके होंगे।
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण से लेकर कलिंग युद्ध तक की घटनाओं को जान चुके होंगे।
- चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार की विस्तार नीति की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- मौर्य परिवार के मूल और उनके आरंभिक इतिहास का विवरण प्राप्त कर चुके होंगे।
- इतिहास के आरंभिक काल के संदर्भ में "साम्राज्य" की विभिन्न धारणाओं की व्याख्या में साक्षात्कार कर चुके होंगे।
- मौर्य शासन के उद्भव के पूर्व माघ के आरंभिक इतिहास की प्रमुख घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- राजनीतिक इतिहास के लेखन में महायुग मिल सकती है।
- उन लोगों के बारे में जानकारी प्राप्त की जिनकी महायुग में माघ; जामका मौर्य शासन, के कारकों से परिचित हो चुके होंगे।
- माघ की भौगोलिक स्थिति का सामाजिक महत्व समझा गए होंगे और इसके उत्थान में महायुग महत्वपूर्ण कारकों से परिचित हो चुके होंगे।
- अथवा के लिए एक विशाल प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, माघ साम्राज्य के उद्भव और शीघ्र विस्तार की भी बर्तों की गई है। हम आशा करते हैं कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

18.8 सारांश

ग) iii, iii, iv
घ) i, iv, v

3) मात्र 18.2 संविद्या।

4) क) × ख) √ ग) × घ) × ङ) √

संविद्या 2

1) ग)

2) मात्र 18.4 का संविद्या अंग संविद्या।

3) मात्र 18.5 और 18.6 संविद्या।

4) क) × ख) √ ग) × घ) × ङ) √

संविद्या 3

1) क) × ख) × ग) √ घ) × ङ) √

2) उपमा 18.7.1 संविद्या।

संविद्या 4

1) उपमा 18.8.1 संविद्या।

2) क)

• तकनीक का विकास हुआ।

निम्नलिखित परिवर्तन हुए :

वाणिज्यिक गतिविधियों पर विशेष रूप में इसका प्रभाव दिखाई देता है। इन क्षेत्रों में विकास के कारण आर्थिक गतिविधियों पर कृषि अर्थव्यवस्था के प्रभाव की भी चर्चा की जाएगी। इतिहास उद्योग और शी. पू. राजस्व के तरीके और उसके संगठन की जानकारी भी आपको दी जाएगी। इसके अतिरिक्त, अन्य अर्थव्यवस्था का अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि उस समय खेती में ही सबसे ज्यादा लोग लगे हुए पहले हम कृषि और गैर-कृषि उद्योग के भौतिक आधार पर चर्चा करेंगे। कृषि प्रकृति का अध्ययन किया होगा। यहाँ हम मौर्यकाल में होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। सबसे में हम आपको मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था से परिचित कराएँगे। खंड 4 में आपने मौर्य-पूर्व अर्थव्यवस्था की इस खंड की इकाई 18 में आपने मौर्य साम्राज्य की व्यवस्था और विस्तार का अध्ययन किया है। इस इकाई

19.1 प्रस्तावना

- इस काल में हुए तकनीकी विकास पर बहस कर सकेंगे और विश्लेषण कर सकेंगे कि इन परिवर्तनों से
- भारत के विकास और नगरीय योजना तथा अर्थव्यवस्था संबंधी अन्य विशेषताएँ बना सकेंगे; तथा
- कार्य-क्षेत्र समझे जाएँ;
- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि व्यापार की व्यवस्था कैसे होती थी और कैसे इसके विस्तार के साथ नए
- समझे;
- इस काल की खेतिहर अर्थव्यवस्था, कृषि विस्तार और भू-राजस्व जैसे महत्वपूर्ण तत्वों की चर्चा कर
- समझ सकेंगे कि साम्राज्य के लिए आवश्यक विभिन्न संसाधनों का उत्पादन कैसे होता था;

जाएगा। इस इकाई की पढ़ने के बाद आप:

सकेंगे, परन्तु इस काल में भारत के अन्य भागों में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर भी प्रकाश डालेंगे। स्वरूप में काफी परिवर्तन हुए। हालाँकि हम चर्चा के केन्द्र में मौर्यों के मुख्य प्रभाव-क्षेत्र गंगावादी की ही महत्वपूर्ण पढ़ेंगे, मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था। मौर्यों के शासनकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था के संगठन और इस इकाई का मुख्य उद्देश्य मौर्य इतिहास के एक महत्वपूर्ण पहलू से आपको परिचित कराना है। यह

19.0 उद्देश्य

- 19.7 वीथ प्रश्नों के उत्तर
- 19.6 शब्दावली
- 19.5 सारांश
- 19.4.3 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन
- 19.4.2 शहरी अर्थव्यवस्था का विकास
- 19.4.1 व्यापारिक संगठन
- 19.4 व्यापार और नगर
- 19.3.2 भू-राजस्व संगठन
- 19.3.1 कृषि अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताएँ
- 19.3 कृषि और भू-राजस्व
- 19.2 उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार
- 19.1 प्रस्तावना
- 19.0 उद्देश्य

इकाई की कपरेखा

इकाई 19 मौर्य साम्राज्य की अर्थव्यवस्था

परन्तु गंगा घाटी में लोहे का प्रयोग देश के अन्य भागों तक नहीं फैला और मौर्यकालीन अवशेषों से पता चलता है कि भारत के दूसरे हिस्से में भी लोहे के प्रयोग तथा उपलब्धता के प्रमाण अलग से मिले हैं। यह स्पष्ट है कि गंगा घाटी की मिट्टी भारी और दृप्त थी। इसलिए जुगाई के लिए हल में भारी लोहे की जकरीत पड़ती थी। लोहे का उपयोग खेती के लिए किया जाता था, परन्तु वह उपयोग यहाँ तक सीमित नहीं था। लोहे के उपयोग पर राज्य का अधिकार था। अर्थशास्त्र में इस बात का जिक्र है कि कुछ खास किस के खाना पर राजा का एकाधिकार होना चाहिए। यह सलाह संभवतः इसलिए भी दी गई थी क्योंकि कुछ खास धातुओं का उपयोग सेना के लिए और बनाने के लिए किया जाता था।

गंगा घाटी में शहरों का न्यून हुआ, भौतिक समृद्धि बढ़ी, इसका प्रमाण उपर्युक्त भौतिक अवशेषों से प्राप्त होता है। अतः डॉ. डी.एस. शर्मा ने जोरदार ढंग से यह तथ्य सामने रखा है कि यह तकनीकी आधार लोहे के अधिक उपयोग के कारण मजबूत हुआ। इकाई 18 में यह बताया जा चुका है कि मगध साम्राज्य के उत्थान के दौरान (आज के दक्षिण बिहार के आसपास) और महत्वपूर्ण जल और स्थल मार्ग पर उसका नियंत्रण था। उत्खनन के दौरान विभिन्न प्रकार के लोहे के औजार, जैसे मूठ वाली कुल्हाड़ी, क्षिपण और शायद हल का फल भी प्राप्त हुए हैं। इन औजारों की सहजता से पूर्वी गंगा घाटी के घने जंगलों को काटने में आसानी हुई होगी और कृषि के क्षेत्र में कुशलता भी बढ़ी होगी। विभिन्न बिहार के पूरे लोहे-क्षेत्र में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे मिले हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि लोहा खाने की तकनीक बहुरी विकसित नहीं थी। इसे काल की बहुत-सी स्थानीय भट्टियाँ प्राप्त हुई हैं, इससे मान्य होता है कि शायद आम आदमी भी लोहे का उत्पादन और उपयोग करता था। अर्थशास्त्र में इस बात का भी जिक्र है कि उस समय लोहा बनाने की उच्च कोटि की विभिन्न तकनीकों की भी जानकारी थी।

गंगा घाटी में शहरों का न्यून हुआ, भौतिक समृद्धि बढ़ी, इसका प्रमाण उपर्युक्त भौतिक अवशेषों से प्राप्त होता है। अतः डॉ. डी.एस. शर्मा ने जोरदार ढंग से यह तथ्य सामने रखा है कि यह तकनीकी आधार लोहे के अधिक उपयोग के कारण मजबूत हुआ। इकाई 18 में यह बताया जा चुका है कि मगध साम्राज्य के उत्थान के दौरान (आज के दक्षिण बिहार के आसपास) और महत्वपूर्ण जल और स्थल मार्ग पर उसका नियंत्रण था। उत्खनन के दौरान विभिन्न प्रकार के लोहे के औजार, जैसे मूठ वाली कुल्हाड़ी, क्षिपण और शायद हल का फल भी प्राप्त हुए हैं। इन औजारों की सहजता से पूर्वी गंगा घाटी के घने जंगलों को काटने में आसानी हुई होगी और कृषि के क्षेत्र में कुशलता भी बढ़ी होगी। विभिन्न बिहार के पूरे लोहे-क्षेत्र में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे मिले हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि लोहा खाने की तकनीक बहुरी विकसित नहीं थी। इसे काल की बहुत-सी स्थानीय भट्टियाँ प्राप्त हुई हैं, इससे मान्य होता है कि शायद आम आदमी भी लोहे का उत्पादन और उपयोग करता था। अर्थशास्त्र में इस बात का भी जिक्र है कि उस समय लोहा बनाने की उच्च कोटि की विभिन्न तकनीकों की भी जानकारी थी।

गंगा घाटी में शहरों का न्यून हुआ, भौतिक समृद्धि बढ़ी, इसका प्रमाण उपर्युक्त भौतिक अवशेषों से प्राप्त होता है। अतः डॉ. डी.एस. शर्मा ने जोरदार ढंग से यह तथ्य सामने रखा है कि यह तकनीकी आधार लोहे के अधिक उपयोग के कारण मजबूत हुआ। इकाई 18 में यह बताया जा चुका है कि मगध साम्राज्य के उत्थान के दौरान (आज के दक्षिण बिहार के आसपास) और महत्वपूर्ण जल और स्थल मार्ग पर उसका नियंत्रण था। उत्खनन के दौरान विभिन्न प्रकार के लोहे के औजार, जैसे मूठ वाली कुल्हाड़ी, क्षिपण और शायद हल का फल भी प्राप्त हुए हैं। इन औजारों की सहजता से पूर्वी गंगा घाटी के घने जंगलों को काटने में आसानी हुई होगी और कृषि के क्षेत्र में कुशलता भी बढ़ी होगी। विभिन्न बिहार के पूरे लोहे-क्षेत्र में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे मिले हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि लोहा खाने की तकनीक बहुरी विकसित नहीं थी। इसे काल की बहुत-सी स्थानीय भट्टियाँ प्राप्त हुई हैं, इससे मान्य होता है कि शायद आम आदमी भी लोहे का उत्पादन और उपयोग करता था। अर्थशास्त्र में इस बात का भी जिक्र है कि उस समय लोहा बनाने की उच्च कोटि की विभिन्न तकनीकों की भी जानकारी थी।

19.2 उत्खनन का भौतिक और सामाजिक आधार

आपने खंड 4 में पढ़ा होगा कि प्रथम सहस्राब्दि ई.पू. के उत्तरार्द्ध में खेती के लिए लोहे का उपयोग होने लगा था। इसके परिणामस्वरूप काफी मात्रा में अधिशेष उत्पादन हुआ। इस अधिशेष से न केवल समाज का भौतिक आधार परिवर्तित हुआ, बल्कि नए सामाजिक वर्ग भी सामने आए। यह नया सामाजिक वर्ग मुख्य रूप से नए विकसित हो रहे शहरों में रहने लगा।

- मगध का चलन बढ़ा, और
- नगरीय केंद्रों का नेजा से विकास हुआ।

कई मामलों में ये नई बस्तियाँ सीधे राजा के निवेशन में होती थीं। इस प्रकार की राजकीय भूमि को **श्रीराजा** कहते थे। कभी-कभी यह कपड़े के अधिकारियों की ज़माने के लिए दे दी जाती थी। अगर कोई किसान खेती में कोई ढीलपन दिखाता था और उसके कारण उत्पादन में कमी आती थी तो उसे

उन्हीं बस्तियों को भी इसी प्रकार आबाद किया गया। खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए ऐसा करना जरूरी था। का प्रावधान था। अनजुती भूमि पर खेती करने के लिए यह एक प्रकार का प्रोत्साहन था। इसीलिए और गंधा हीना। नए इलाकों में बसने वाले श्रद्धों को वित्तीय सहायता, पर्यायन, बीज, औजार आदि प्रदान करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसी प्रकार, बड़ई और व्यापारी जैसे अन्य समुदायों को भी समवतः बसाया खेती के काम में लगाया गया था। अर्थशास्त्र में सल्लाह दी गई है कि इन बस्तियों में विदेशियों को भी बसाने उन्हें इन नई बस्तियों में लगाया जाता था। कलिंग युद्ध के बाद लगभग डेढ़ लाख लोगों को नई बस्तियों में श और उनसे ही शारीरिक श्रम का काम लिया जाता था। बहल जनसंख्या वाले इलाकों या विविध राज्यों से इस संदर्भ में इन इलाकों में श्रद्धों को बसाने की बात भी की गई है। जैसे भी खेतिहर मजदूर अधिकतर श्रद्ध अर्थशास्त्र से पता चलता है कि किस प्रकार राज्य नई बस्तियाँ बसाने के लिए प्रोत्साहन देता था।

लिये काफी जोर दिया जाता था। निश्चित रूप से इन नई बस्तियों में श्रम-शक्ति का अभाव रहता होगा। दौरान लोकप्रिय हो चुकी थी। हमें इस बात का भी पता चलता है कि इस काल में नई भूमि पर खेती के परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य लोगों को भी सहायता देनी पड़ती है। इस प्रकार की खेती इस काल के शक्ति की ज्यादा जरूरत पड़ती है, खासकर संपादन और कटाई के समय। किसान को इस समय अपने कर चुके हैं कि गागा-घाटी में नए प्रकार की खेती, खासकर धान की खेती शुरू हुई। धान की खेती में श्रम-संगठित किया जाता था और इन पर नियंत्रण किस प्रकार रखा जाता था? हम पहले इस बात का जिक्र उत्पादन के सामाजिक आधार को जानने के लिए यह समझना जरूरी है कि इस श्रम शक्ति को कैसे साथ सस्ती श्रम-शक्ति को भी जरूरत होती है ताकि अनाज और अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके। विकासशील खेतिहर समुदायों के लिए एक मजबूत तकनीकी आधार की आवश्यकता भी होती है, साथ ही

5. पारलियुन उत्खनन से प्राप्त लकड़ी के माल के अवशेष



इस भाग में हम केवल अव्यवस्था और भ्रष्टाचार मंडन की सामान्य विशेषताओं पर विचार करेंगे। *

19.3 कृषि और भ्रष्टाचार

.....
.....
.....

3) दो-तीन पंक्तियों में यह बताइए कि आंदे के उपयोग से खेती के मजदूर में किस प्रकार का परिवर्तन हुआ है?

.....
.....
.....

2) भार्यों के मजदूर में गंगा घाटी में होने वाले धार्मिक परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए (चार पंक्तियों में)।

- () ग) धार्मिकतात्मक भाव में प्रत्येक गांव में ही राज्य के परिवर्तन में आना।
- () ख) आंदे तकनीक की मददवा से कृषि के विकास में काफी मददवा मिली।
- () क) विशाल पैमाने पर खेती करने के लिए आंदे को लगाया जाना था।

1) मही और मजदूरों के आगे क्रमशः $\sqrt{}$ और \times का निशान लगाइए :

बोध प्रश्न 1

इस प्रकार, मीघ काल में खेती का व्यापक विस्तार हुआ। कच्चे माल और मानव-शक्ति पर नियंत्रण और उनके उपयोग के कारण यह विस्तार तेजी से हो सका। इसके बाद अब हम भार्यों के अधीन सम्पूर्ण भारत खामखर गंगा घाटी, में हुए धार्मिक और आर्थिक विकास का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

6. खेतों की मरुती



दूसरी जगह भूज दिया जाता था। ये गांव राजकीय भूमि के हिस्से थे, अतः स्वाभाविक रूप से राजा और उनके अधिकारियों का उनपर सख्त नियंत्रण था।

बनी रही।

जाता है। यह शील काफी प्रसिद्ध है। यह शील आठ सौ वर्षों पानी पावती शलाकी है। तक सिंचाई का सोल
एक बाघ बनवाया था, जिससे एक विशाल शील पैदा हो सका। यह **सुवर्ण शिला** शील के नाम से जाना
अच्छी फसल प्राप्त की जा सकी। चन्द्रगुप्त मौर्य के एक राजपाल पुत्रांगुस ने निरानर के निकट सीराई में
बाई क्षेत्र में ही सिंचाई सुविधा उपलब्ध करवाया था ताकि इन इलाकों में सिंचाई की नियमित आपूर्ति से
कर केवल सिंचित भूमि पर लगाया जाता था, अतः इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि राज्य कम वर्षों
जल-कर वसूल किया जाता था। यह कुछ उत्साहन का पाववा, चौथाई या तिहाई हिस्सा होता था। चौक यह
की जाती थी। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि जहाँ राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी, एक नियमित
जमीन मापने और खेत में पानी पहुँचाने वाली नालियों का निरीक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति
करना। खेतियों की मलाई के लिए जल-आपूर्ति संबंधी कुछ नियम बनाए गए थे। मेगस्थनीज बताता है कि
राज्य-स्वामित्व वाली भूमि में खेती की सफलता का महत्वपूर्ण कारण था राज्य द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान

जिदनी वह छुट जीत सकी।

यदि जमीन का मालिक हो सकता था, परन्तु वह जमीन ही जमीन अपने अधिकार में रख सकता था,
इसके अतिरिक्त जमीन और मकान की बिक्री का भी निषेध किया गया है। इससे पता चलता है कि एक
करते थे। इसके अंतर्गत ऐसी भूमि की चर्चा की गई है, जिनका निरीक्षण अधिकारियों द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान
अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की कृषि व्यवस्था की चर्चा की गई है, जिनका निरीक्षण अधिकारियों द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान

स्वामित्वकत: खेती की विभिन्न व्यवस्थाएँ और कृषि विकास के कई स्तर सामने आए।

जा सकता है कि मगना घाटी में ही विभिन्न प्रकार की स्वामित्व-प्रणालियाँ कायम थीं। इसके कारण
समूर्ण भारत के भूमि-स्वामित्व के सभी पहलुओं पर विचार से चर्चा नहीं की जा सकती है परन्तु यह कहना
युक्तिगत जमीन रख सकता था, परन्तु कहीं भी इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। इस तरह, हालाँकि
वर्द्ध दृश्यनीय थी, कहीं-कहीं दासों का भी निषेध हुआ है। **शिला** और जनपद दोनों तरह के इलाकों में राजा
थे, जो अपनी जमीन पर खेती करने के लिए मजदूरों की नियुक्ति करते थे। दूसरी तरफ, मजदूरों की स्थिति
पर जमीन खेती करते थे। जातक कथाओं में बार-बार मजदूरों और श्रमजीवियों की चर्चा आती है। ये भूमिपति
मौर्य राज्य के अन्य खेतिहर इलाकों की जनपद राज्य-क्षेत्र बना जाता था। इन इलाकों में संभवतः निजी और

वर्धित है।

तकनीक के विकसित ज्ञान का उल्लेख किया गया है; यह भी संभवतः इसी प्रकार के खेतों के संरक्षण में
में खेती के लिए राज्य के निरीक्षण में दासों की नियुक्ति किया गया होगा। अर्थशास्त्र में विचार से पूर्वीय
मूर्च्छक है। यह संभव है कि पूर्व-मौर्य काल में ये खेत भूमिपतियों के निजी नियंत्रण में रहे होंगे। इन इलाकों
से उपजाऊ होते और इनमें काफी उपज होती होगी। इन राजकीय खेतों के उद्भव के बारे में कुछ कह पाना
निरीक्षण का निष्कर्ष है, जो शाब्दिक रूप से इलाकों में कृषि कार्य का निरीक्षण करता होगा। ये इलाके निरिवत रूप
और बिक्री पर राजा और राज्य का लगभग पूर्ण अधिकार था। वस्तुतः, अर्थशास्त्र में सीताध्यक्ष या कृषि
रामने पहले **शिला** या राजकीय भूमि की चर्चा की है। इन इलाकों में निरिवत रूप से स्वामित्व, जीत, शीलायी

आपलेख में बताया गई है, उसमें काफी कष्टक भी शामिल होंगे।

पर विद्यमान करना कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि कालिग मुद्र में मरने वाली की जा संख्या अशोक के
मेगस्थनीज यह भी बताता है कि मुद्र के दौरान किसानों को धान नहीं पहुँचाई जाती थी। परन्तु इस कथन
किया। यूनानी धारा, वासकर इस बात को रेखांकित करते हैं कि खेतिहरों के पास अस्त्र-शस्त्र नहीं होते थे।
सही नहीं है, परन्तु यह महत्वपूर्ण बात है कि खेती में जो किसानों की बड़ी संख्या में उसका ध्यान आकर्षित
स्थान है, शैतिक तीसरे स्थान पर है। हालाँकि उसका भारतीय समाज का विभाजन संबंधी दृष्टिकोण विच्छेद
दिखाती करता हुआ बताता है कि मौर्य समाज सात वर्णों में विभक्त था। इसमें दार्शनिक के बाद किसान का
कृषि के विकास से किसान या जातदार का महत्व धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मेगस्थनीज भारतीय समाज पर

साथ-साथ दूसरे इलाकों में भी कृषीय, अर्थव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाने लगा होगा।
नेमा उचित होगा कि इस प्रकार गाँव के मंदिर के अधिकारों इलाकों में खेती की जाने लगी और इसके
इसकी ठीक-ठीक प्रक्रिया क्या थी, यह स्पष्ट रूप से मालूम नहीं है। आर.एस. शर्मा के अनुसार यह मान
राजकीय आप के स्वामी होते थे। वस्तुतः बसाने की इस प्रक्रिया की जनपद निवेश कहा जाता था, परन्तु
कृषि अर्थव्यवस्था का विस्तार हो सका इन वस्तियों से करी, वासकर भूमि-कर, की प्राप्ति होती थी और ये
इस इकाई में पहले हम यह चर्चा है कि अर्थशास्त्र में स्थानीय वस्तियों बसाने पर जोर दिया गया है ताकि

1) कॉलम-1 में कुछ संस्कृत शब्द दिए गए हैं और कॉलम-II में उनका अर्थ दिया गया है। इनका सही मिलान नीचे दिए गए कोड के माध्यम से कीजिए। सही कोड पर ✓ का चिह्न लगाइए।

भाग प्रश्न 2

का रख-खाव संभव हो सका।

राज्य के बड़े हिस्से से अपार राजस्व वसूल किया जाता था। इसी राजस्व के बल पर सरकारी तंत्र और सेना निरक्षर प्रतिपादित किया जा सकता है कि मौर्य काल में कारीगरी और वस्त्रों की प्रवृत्ति सुदृढ़ थी और करने वाले और उसका निर्धारण करने वाले अधिकांशियों की विशेष रूप से इसमें वर्धा की गई है। अतः यह विभिन्न गांवों पर अलग-अलग कर लगाए जाने का प्रावधान रखा गया है। विभिन्न प्रकार के राजस्व वसूल गांधीरा और सावधानीपूर्वक विचार किया गया है। काफी सूझ-बूझ के साथ भूमि की उर्वरता के आधार पर मूलतः मौर्य अर्थव्यवस्था का आधार था, इसलिए अधिभार 1 में राज्य की राजस्व व्यवस्था पर काफी

कदम उठाना जरूरी हो जाता था, क्योंकि इस समय मूलतः राजस्व की वसूली काफी कम हो जाती होगी। बाध्य किया जा सकता था। इस बात पर बार-बार बल दिया गया है कि अकाल के समय में इस प्रकार का रूप से अनिवार्य कर ही गया होगा। इसके अतिरिक्त आपातकाल में किसानों को दो फसल उगाने के लिए उल्लेख करते हुए प्रत्येक क्षेत्र से दिया जाने वाला कर बताया जाता है, परन्तु यद्यपि यह निर्धारित उपज का एक-तिहाई या एक-चौथाई होता था तथा यह हिस्सा भूमि की उर्वरता पर निर्भर था। इस कर का पहले पण्डितों ने लिखा था, परन्तु पहली बार विस्तार से इसका विवरण अधिभार 1 में ही मिलता है। यह कूल कर, जिसे प्रणय कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है धन से दिया गया उपहार। इस कर का उल्लेख सबसे स्थिति के दौरान लगा किए जाने वाले करों की सहायता ले सकता है। इस प्रकार के करों में प्रमुख है युद्ध

इसके बावजूद राज्य की अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए और अधिक कारीगरी करना पड़े तो आपात उनसे कृषकों पर अतिरिक्त भार ही पड़ता होगा। अधिभार 1 में इस बात की भी सलाह दी गई है कि यदि मौर्य के अधीन भी काम रखा। इसके अतिरिक्त अधिभार 1 में कौटिल्य ने जिन करों का जिक्र किया है, एक प्रकार का नकर कर था क्योंकि हिरण्य का अर्थ सोना होता है। वैदिक काल से चल आ रहा बलि कर व्यवस्था करनी पड़ती थी। हिरण्य नामक कर के स्वरूप के बारे में ठीक से पता नहीं है, परन्तु संभवतः यह गांव शामिल होते थे। अकसर गांवों को उनके क्षेत्र से गुजरती हुई राजकीय सेना के लिए खाल सामग्री की किसानों से समय-समय पर लिया जाता था। इस कर का निर्धारण सामूहिक रूप में होता था, जिसमें कई शुद्ध किए और पहले से लगे करों को और भी प्रभावी बनाया। पिछ कर एक प्रकार का रिवाजी कर था, जो इन करों के अतिरिक्त किसानों को दूसरे कई प्रकार के नगरों पेश करने पड़ते थे। मौर्यों ने कुछ नये कर लिए जमीन दी जाती थी। इस मामले में कृषक संभवतः कूल उपज का आधा हिस्सा राज्य को दे देता था।

मूलतः राजस्व का एक प्रचलित तरीका था — बटाई। बटाईदारों को पहले बीज, हल-बैल आदि और खेती के

अंशिक ने उस गांव (खिबनी) को पूर्णतया करमुक्त नहीं किया। आठवां हिस्सा कर दिया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ के प्रति अणुधन शब्द रखने के बावजूद के दौरान उसने उस गांव को बलि कर से मुक्त कर दिया गया और भाग कर को घटकर कूल उपज का चौथाई तक पहुँच गया था। अंशिक खिबनी शिखरले में कहता है कि कुछ के जन्म स्थल खिबनी की यात्रा के अनुभवा भाग कूल उपज का छठा हिस्सा होता था। लेकिन ऐसा अनुमान है कि मौर्य काल में यह हिस्सा अनुभवा किसान नजराना भी देते थे। भूमि कर (भाग) राजस्व का प्रमुख आधार था। मौर्यों में प्राप्त विवरण मूर्तानी लेखकों के अनुसार, किसान कर के रूप में कूल उपज का चौथाई हिस्सा राज्य को देते थे। उनको

ही कर्ष था। राजस्व वसूली के रूप में भी प्राप्त किया जाता था। अतः इस प्रकार की आय को संभरित करना संदिग्धता का था, जिसका प्रमुख अधिकारी समहर्ता कहलाता था। कोषाध्यक्ष संदिग्धता के नाम से जाना जाता था। चौके मूलतः राजस्व के निर्धारण पर विशेष बल देते थे और करों को लेखा-जोखा रखने के लिए अलग से एक विभाग कि प्राचीन भारत की कर-व्यवस्था के क्षेत्र में मौर्य शासन एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मौर्य शासक से अधिक कर वसूलने के लिए मूलतः राजस्व प्रणाली को सुव्यवस्थित किया गया। सामान्यतः ऐसा माना जाता है मौर्य राज्य की आमदनी का स्थानीय और अनिवार्य स्रोत मूलतः राजस्व ही हो सकता था। अतः लोगों से अधिक

प्रतिपादित करने के लिए एक सीमित समय के लिए कुछ गांवों को कर से मुक्त रखा जाता होगा। धन, जिनसे सेनिकों की नियुक्ति की जाती थी। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि नई भूमि पर खेती को मूर्तानी लेखक बताते हैं कि कुछ गांव कर से मुक्त थे। परन्तु ऐसे गांव अपवाद थे और वस्तुतः ये ऐसे गांव

परन्तु इस मजबूत आधार को समूचे भारत में प्रसारित करने का कार्य व्यापारिक अर्थव्यवस्था ने किया।
 कृषि-अर्थव्यवस्था ने मीठे साम्राज्य की (जिसका नामा घाटी में) एक मजबूत आर्थिक आधार प्रदान किया।

- ii) नए नगरों और बाजारों की स्थापना
 i) व्यापार और वाणिज्य का प्रसार

भारत साम्राज्य में गैर-कृषि अर्थव्यवस्था का विकास दो दिशाओं में हुआ :

19.4 व्यापार और नगर

.....

4) मीठे काल के प्रमुख कार्यों और राजस्व प्रवाहिकारियों का उल्लेख कीजिए।

.....

3) आषाढ स्थिति में राज्य कौन-कौन से राजस्व संबंधी कदम उठा सकता था? (पांच परिकल्पनाएँ में उत्तर दीजिए)

- क) कर
 ख) भाग
 ग) हिरण्य
 घ) प्रणय

2) निम्नलिखित में से किस राजस्व की बसुली नकर होती थी (सही उत्तर के सामने ✓ का चिह्न लगाइए)।

क) I	II	III	IV
ख) I	II	III	IV
ग) I	II	III	IV
घ) I	II	III	IV

- i) जनपद निवेश
 ii) सीतावधक्ष
 iii) गहपति
 iv) समाहर्ता
 क) शसिधर वर्मा
 ख) राजकीय शसि का अधिकारी
 ग) राजस्व निधिरक
 घ) बराने की प्रक्रिया
 ङ) कोषाध्यक्ष

कॉलेज-II

कॉलेज-II

गतिविधियाँ और राजस्व पर अपनी एकड़ मजदूरी बनाए रखने के लिए राज्य की यह नीति अपनाती पड़ी।
व्यापार और वस्त्र उद्योगों को व्यवस्थित करने के ये सारे कार्य राज्य नीति का हिस्सा थे। आर्थिक

तथा खानों आदि में काम करने वालों को कर देना पड़ता था।
क्योंकि ये राज्य की आर्थिक शक्ति का आधार बन चुके थे। परन्तु अन्य उद्योगों जैसे सूत कारखाने वाले, बुनकर
उद्योग बनाने वाले, पस्टर कारखाने वाले आदि उद्योगों को सीधे नियंत्रित किया। इन्हें कर नहीं देना पड़ता था।
इसने कुछ हितों को कुछ-कुछ लुप्त उद्योगों के रूप में विकसित किया। इस रूप में उसने अन्य बानने वाले,
निचला वस्त्रों के निर्यात पर होता था और यहाँ तक कि राज्य खुद उत्पादक भी बनाई उसने स्तर पर
हे कि प्रशासन ने प्रत्यक्षतः श्रमी संगठन में हस्तक्षेप किया और उसे बदलने की कोशिश की। राज्य का
दिया। इस प्रकार के प्रशासनिक निचला से उत्पादन और व्यापार में काफी सुधार हुआ। इसका अर्थ यह यह नई
यह स्थान देने की बात है कि मौर्य के शासनकाल में राज्य प्रशासन ने व्यापार के संगठन पर भी ध्यान

बाद में उनके व्यवसाय से सम्बन्ध हो गया।

से जुड़ा होता था, जिससे निर्यात-में सुविधा होती थी। वे भी शहर के किसी खास हिस्से में रहते थे, जो
विशेषियों के समान व्यापारी भी श्रमियों में विभक्त थे। व्यापारियों का एक समूह किसी खास हितों सम्बन्ध
की बनाया जा सकता था।

बल्लो है कि देश के इस भाग में यह तकनीक विकसित हुई और शासक यह एक विशेष प्रकार की सिद्धि से
बताने का विशेषज्ञतापूर्ण हस्तक्षेप था और गंगा घाटी के बाहर कम ही पाया जाता है। इससे पता
कृषक, बुनकर, विनकर, चर्मकार, लोहार आदि। उत्तरी काली पालिश के बर्तन हस्तक्षेप के उत्तम नमूने हैं। यह
गंगा घाटी गतिविधियों में की है। इस काल की श्रमियों में प्रमुख थे—विभिन्न प्रकार के धातुकर्मी, बर्तन,
का उल्लेख है कि मौर्य काल के बाद ये श्रमियों का भी शक्तिशाली हो गई। संगठनीय ने भी श्रमियों की
अपनाते थे और इस प्रकार हस्तक्षेप अधिकारिता बंधनगत होता था। उस काल के अभिलेखों में इस बात
था आम तौर पर उनमें पारिवारिक संबंध पाया जाता था। ज्यादातर पुत्र अपने पिता के व्यवसाय को
नगर के एक भाग में बसी हुई थी जिससे एक श्रमी के सदस्य एक साथ रह सकते थे और कार्य कर सकते
मौर्य काल के पहले से चली आ रही थी। मौर्य के अधीन विशेषियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। प्रत्येक श्रमी
थी। उत्तर भारत में कारीगर उत्पादन या हस्तक्षेप-उद्योग श्रमियों के आधार पर पर संगठित था। यह व्यवस्था
व्यापार के अनेक तरीके विकसित थे। यह सहज रूप से उत्पादन के तरीके और इसके संगठन से जुड़ा हुआ
इससे विशेषी व्यापार में भी वृद्धि हुई।

आर्थिक के शासनकाल में शांति की नीति अपनाई गई और पुनर्निर्माण से निवृत्त श्रमियों के व्यवसाय को
के वन, कटे गए और इस प्रकार नदों के साथ हो जाने से नदी यातायात में तेजी आई। विद्वानों और
विभिन्न हिस्सों में सवार कायम हुआ। इससे स्वाभाविकतः व्यापार में वृद्धि हुई। राज्य के प्रयत्न से गंगा घाटी
नई बस्तियों के विकास से लोगों का आवागमन बढ़ा और इसके परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप के

एशिया के देशों का रास्ता लक्ष्य (इलामाबाद के निकट) होकर जाता था।
दक्षिण एशियन तक जाता था, जिसे **दक्षिण एशिया** यानी दक्षिणी रास्ता के नाम से जाना जाता था। पश्चिमी
एशिया उल्टे रास्ता तक जाता था। यह रास्ता और आगे पश्चिम में गुजरात के समुद्र तट तक तक नदी के
पहुँचता था, जहाँ से दक्षिण और दक्षिण-पूर्व इलाके तक जाया जा सकता था। कौशांबी से पश्चिम की ओर
आगे तथा कर्नाटक तक पहुँचता था। पूर्वी मार्ग का दूसरा हिस्सा गंगा इलाका होता हुआ लाम्बेन तक
और दक्षिण-पूर्व में कलिंग तक जुड़ा हुआ था। यह पूर्वी मार्ग अन्ततः दक्षिण की ओर मुड़ जाता था और
उत्तर-पश्चिमी प्रदेश की पाटलिपुत्र से जोड़ता था। दक्षिण की ओर पाटलिपुत्र एक मार्ग द्वारा मध्य भारत तक
मार्ग कलसी, हजारा होता हुआ पेशावर तक जाता था। संगठनीय ऐसे मार्ग की भी स्थापना करती है, जो
जुड़ा हुआ था उत्तरी मार्ग शशाङ्गी और कपिलवस्तु तक जाता था। कपिलवस्तु से यह
राजधानी पाटलिपुत्र बड़े महत्वपूर्ण स्थल पर बसा हुआ था, जहाँ से वह चारों ओर से नदी और स्थल मार्ग से
प्रमुख फ़ैद-राजगृह और कौशांबी (इलामाबाद के निकट) - इस प्रकार आपस में जुड़े हुए थे। मौर्य की
प्रमुख व्यापारिक मार्ग गंगा नदी के किनारे-किनारे और हिमालय की लकड़ों से गुजरते थे। माघ साम्राज्य के
मध्य एशिया की जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग उत्तर पश्चिमी भारत से होकर गुजरते थे। उत्तरी भारत के
शासन द्वारा सुरक्षा प्रदान किए जाने के कारण आंतरिक व्यापार तेजी से फल-फूलता। पश्चिमी एशिया और
कार्थेज का निक आता है जो काफी मात्रा में सामान देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में पहुँचाते थे। मौर्य
जिसकी शक्तिशाली मौर्य काल से काफी पहले ही चुकी थी। जातक कथाओं में दूर-दूर से व्यापारियों के
इस कार में व्यापार आकांक्षिक रूप से विकसित नहीं हुआ। यह लम्बे आर्थिक परिवर्तन का एक हिस्सा था,

मर्यादा तो मौर्यों की राजधानी का विस्तार से वर्णन किया है, इससे यह भी पता चलता है कि शहर का प्रशासन कैसा था और शहरी अर्थव्यवस्था के कौन-से हिस्से राज्य के हित में नियंत्रित किए जाते थे। यह बताया है कि पाटलिपुत्र का प्रशासन तीसरे अधिकारियों के निम्न था, ये अधिकारी उन्हें समितियों में विभक्त थे, प्रत्येक समिति में पांच-पाच सदस्य थे। इनमें एक समितियों में से चार आर्थिक कार्यकलापों से सम्बद्ध थीं, ये समितियाँ औद्योगिक उत्पादन, व्यापार और वाणिज्य तथा शहर में वायुमयन की सामूहिक विधायी समिति थीं और वेबे जाने वाले सामान पर कर वसूल करती थीं। अन्य दो समितियाँ विदेशियों के कल्याण हेतु है।

कारण यह हो सकता है कि शहर में रहने वाले लोगों को नियंत्रित और व्यवस्थित करना ज्यादा आसान इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रामीण इलाकों में रहने वाली शक्तियाँ क्यों से मुक्त थीं। इसका ध्यान देने की है कि केवल वर्ण या राजधानी में रहने वाली शक्तियों पर कर लगाए जाने का निकल हुआ है। की अच्छी आमदनी होती थी, अतः मौर्यों ने शहर के उत्थान और प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया। एक बात में शहरी (दुर्गा) की जनघर्षों के समान राजस्व के स्रोत के रूप में देखा गया है। शहरों से प्राप्त कर से राज्य बनावट का भी उल्लेख है। इसका उद्देश्य था — आर्थिक नियंत्रण की सुव्यवस्था करना। वर्तमान: अर्थशास्त्र अन्य लोग रहते थे। इस उद्धारण में शहर की रक्षा के बारे में विस्तार से वर्णन की गई है। इसमें उनकी की दीवार से घेरा गया था। यह भी बताया जाता है कि इन शहरों में पुजारी, सैनिक, व्यापारी, शिल्पी और असभ्य है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में **पुरोहित** या **पुरोहित** का जिक्र है, इससे पता चलता है कि शहरी इस काल में शहरी कर्मों की संख्या में निरंतर रूप से वृद्धि हुई। हालाँकि इस वृद्धि की मापना लगभग इस इकाई के आरंभ में हमने मौर्य काल के शैतिक अवशेषों का जिक्र यह दिखाने के लिए किया था कि शहरों से सम्पर्क स्थापित किया और व्यापारी-समुदायों की वित्तीय सहायता प्रदान की।

शहरी कर्मों के और प्रसार के लिए सामाजिक आधार प्रदान किया। कई मामलों में अभीर, ग्रामीण परिवारों ने भारत, दक्कन तथा दक्षिणी भारत तक फैल गया। ग्रामीण बस्तियों के प्रसार और महत्त्वों की सर्वाधिक अव्यवस्था में व्यापारिक लेन-देन भी बढ़ता है। इस काल में यह लेन-देन गंगा घाटी से पश्चिमी और मध्य निम्नोत्तरी और व्यापारियों की गतिविधियों पर आधारित होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की में अधिकारशासक: शिल्पी, व्यापारी और सरकारी कर्मचारी रहते थे। शहरी अर्थव्यवस्था का निर्माण सामान के मौर्य काल से पहले शहरीकरण की जो प्रक्रिया आरंभ हुई थी, मौर्य काल में उसका आगे विकास हुआ। शहर

19.4.2 शहरी अर्थव्यवस्था का विकास

में हम इस शहरी बालावरण की वर्णन करेंगे।
 उल्लेख मुद्रिकाल से मिलता है। शक्तियों के विकास के लिए शहरी बालावरण आर्थिक उपयुक्त था। आगे भी काल में शक्तिपूर्ण सम्पूर्ण भारत में नहीं फल-फूल रही थी। इसका कारण है, मौर्य काल के बाद भी उनका एक-छास शक्ति में विशेषज्ञता हासिल करने के कारण उस व्यापार विशेष में वृद्धि नहीं हुई। परन्तु इस शक्ति राज्य की भी इस शक्तियों से कर वसूलने में सुविधा होती थी। अतः स्थानीय तौर पर कीर्तिव लेने और फायदेमंद मानते थे, क्योंकि अकेले काम करने में खर्च अधिक आता था और प्रतियोगिता काफी बढ़ जाती करती थी, साथ ही साथ उन पर नियंत्रण भी रखती थी। यहां तक कि शिल्पी भी शक्ति में शामिल होना शक्ति-व्यवस्था के अंतर्गत काम करते रहे। ये शक्तियाँ इन उत्पादकों के बीच सीधे-सीधे स्थापित करने का काम थी। इन परिवर्तनों के बावजूद यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकारशासक शिल्पी या जो निजी तौर पर या वितरित की जा सकती थी, क्योंकि उनकी वितरण-व्यवस्था सुव्यवस्थित थी और काफी दूर तक फैली हुई थी और निम्न अक्षा राजस्व प्राप्त हो सकता था। कभी-कभी राज्य की वस्तुएँ निजी व्यापारियों द्वारा भी **राजस्व** कहते थे। राज्य उसी वस्तु के उत्पादन में हाथ लगाता था जो उसके काम-काल के लिए अनिवार्य रूप से उत्पादन वस्तुओं की देख-रेख करने अधिकारीकरण किया करते थे। इस प्रकार की वस्तुओं को

का काम **सुव्यवस्था** करता था।
 पड़ता था, यह शक्ति वस्तु के मूल्य के 1/5वाँ हिस्से से 1/25वाँ हिस्से तक होता था। इस शक्ति की वस्तुओं सहायता प्रदान करता था और उत्तराई भी वसूल करता था। सभी व्यापारियों को कर और दुर्गा शक्ति देना अधीन राज्य की नाई रहती थी, निम्नसे यथावत होता था। यह नदी यथावत पर नियंत्रण रखने में रखता था। **शक्ति** या माप-तौल अधीनक माप-तौल के स्तर पर सख्त नियंत्रण रखता था। **शक्ति** के गतिविधियों की देख-रेख करते थे। **शक्ति** बाजार की निर्गामी करता था और व्यापारियों पर नियंत्रण उल्लेख **शक्ति** के रूप में हुआ है। इसमें कई ऐसे अधिकारियों का जिक्र है, जो विभिन्न आर्थिक में किसी वस्तु की माप, वृद्धि आर्थिक आ जाने की स्थिति में हस्तक्षेप भी करता था। **शक्ति** में उसका मर्यादा तो वाणिज्य अधीनक का जिक्र किया है, जो वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता था और बाजार

निजगण किम प्रकार का था? गौतम धारण का विचार है कि ऐसे क्षेत्रों में मौर्यों के राजनीतिक और

अब प्रश्न यह उठता है कि जिन इलाकों में मौर्य अभिलेख प्राप्त नहीं हुए हैं, उन इलाकों पर आर्थिक

पर कब्जा जमाने का मूल उद्देश्य सीने और बहुमूल्य रत्नों के स्रोतों पर अधिकार स्थापित करना था।

और उन मार्गों पर नियंत्रण स्थापित हो सका, जो दक्षिण में स्थित खानों तक जाते थे। इसी प्रकार कर्नाटक

क्षेत्रों पर आधारित होती थी। उदाहरण स्वरूप कर्नाटक की विजय से मौर्यों को एक उत्तर कृषि भूमि मिली

नियंत्रण स्थापित करने के लिए मौर्य शासक विभिन्न पद्धतियाँ अपनाते थे। यह पद्धति जिस प्रदेश से प्राप्त

जहाँ आर्थिक के अभिलेख प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के सूदर प्रदेशों की कुछ खास आर्थिक गतिविधियों पर

कोशाशा की गई। इसके लिए कर्नाटक के पठार और पश्चिम भारत का उदाहरण लिया जा सकता है।

कार्यक्रमों के लिए पूरे नहीं पड़ते थे। अतः, देश के दूसरे प्रदेशों के स्रोतों पर नियंत्रण स्थापित करने की

आर्थिक स्रोत की आवश्यकता थी। मध्य और उत्तर के आसपास के इलाकों से प्राप्त कर साम्राज्य के

विभिन्न प्रकार के करों तथा आवश्यक थे। मौर्य साम्राज्य की सृज्यवस्थित रूप में चलने के लिए अवधारणा

अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी। हम यह भी स्पष्ट कर चुके हैं कि राज्य के विस्तार के लिए

ऊपर दिए गए विवरण से यह स्पष्ट है कि कृषि, व्यापार और उद्योग पर राज्य का नियंत्रण मौर्यकालीन

19.4.3 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

विश्व स्तर का था।

तक पहुँचा। अर्थव्यवस्था के दूसरे मामलों के समान ही इन क्षेत्रों पर मौर्यों का नियंत्रण विभिन्न क्षेत्रों में विष-

पर विचार करेंगे। कि जिन विभिन्न तरीकों से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन मौर्यकालीन भारत के विभिन्न हिस्सों

कारण, आदान-प्रदान और व्यापार के केंद्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। अगले उपभाग में हम इस बात

इन शहरों के माध्यम से विभिन्न जनपदों पर नियंत्रण मजबूत किया गया। गौतम के न-देन में वृद्धि होने

एक बार शहरी केंद्रों पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित होने और इनके प्रशासन को सृज्यवस्थित करने के बाद,

कृषि क्षेत्रों में उत्पादन काफ़ी बढ़ा।

काफ़ी महत्वपूर्ण कब्जे मालों को अपने कब्जे में रख सका। इनके समर्थन उपयोग के फलस्वरूप कृषि और

विश्व और भी प्रदान करना था। खनन और खनिज पदार्थों के व्यापार पर एकाधिकार से मौर्य साम्राज्य

अधीन (अधीन) का विकास हुआ है। क्षेत्रों के लिए अन्य उपलब्ध कराने के अलावा, राज्य कृषि के

होने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि उनमें अन्य भी बनाए जाते थे। इसी कारण श्रेष्ठान्त में लोह

नमक खनन के क्षेत्र में भी राज्य का एकाधिकार था। विभिन्न प्रकार के धातुओं की उपयोग केवल सिक्का

निर्माण के लिए ही नहीं खनिजों की खानें करना था और पुरानी खानों को फिर से खोलने का प्रयत्न करना था।

कार्यक्षेत्रों को एकाधिकार क्षेत्र में परिवर्तन कर देना था। अधीन (अधीन) में खनिज अधीन (अधीन) का

मार्गों के अधीन शहरी अर्थव्यवस्था पर राज्य का पूरा नियंत्रण था। इस क्रम में राज्य कुछ महत्वपूर्ण

में प्राप्त हुए हैं, जो साम्राज्य का केंद्रीय स्थल था।

अर्थव्यवस्था की सृज्यवस्थित रूप में लगा किया। ये पंच मार्क सिक्के मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश और विहार

को महत्व बढ़ गया होगा। मौर्यकालीन पंच मार्क सिक्कों के सिक्के इस बात के प्रमाण हैं कि मौर्यों ने मुद्रा

नकदी अर्थव्यवस्था को सृज्यवस्थित करने से चलने के लिए सिक्कों की कलाई और चांदी तथा तांबे जैसे धातुओं

48,000 पण और 60,000 पण के बीच वार्षिक खनन देने का प्रावधान था। इस प्रकार की शक्तिशाली

कि अधिकांशों को भी शायद खनन नकद ही दिया जाता था। अधीन में इस बात का विकास है कि

स्वयंसे है, परन्तु अर्थव्यवस्था में मुद्रा के बढ़ने हुए महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है।

कारण मौर्य काल में यह आम उपयोग की चीज हो गई। व्यापार में मुद्रा अर्थव्यवस्था की उपयोगिता

लगा। हालांकि मुद्रा का चलन मौर्यों के जमाने से पहले से चल आ रहा था, परन्तु गौतम के विकास के

शहरी अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें मुद्रा का चलन बढ़ा और लेन-देन मुद्रा में होने

कार्यक्षेत्रों में काफ़ी बढ़ तक राजनीतिक स्थिरता व्याप्त थी।

सामाजिक समूहों के बीच परस्पर संवाद कायम होना आवश्यक है। और इस काल में ऐसा संभव हुआ

में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शहरी अर्थव्यवस्था की समृद्धि के लिए लोगों का आवागमन और विभिन्न

सही स्वरूप बना था। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि मौर्यों की अर्थव्यवस्था ने शहरों के उत्थन और समृद्धि

सृज्यवस्थित के अभाव में यह बताना कठिन है कि छोटे शहरों, नदीय शहरों और तीर्थ-स्थलों के प्रशासन का

नगर प्रशासन का यह विवरण मौर्य साम्राज्य के केंद्र में वैसे सभी प्रमुख बड़े शहरों पर लगा होता है। पृथक

में कानून और व्यवस्था संबंधी प्रशासन भी महत्वपूर्ण हो गया।

और जन्म तथा मृत्यु के पंजीकरण से संबंधित थी। आर्थिक गतिविधियों के समर्थन विकास की दृष्टि से नगरी

(गुणवत्त्व/समतावत्त्व)

(ग) शाहर में वाणिज्य की गतिविधियों पर नजर रखना.....का काम था।

(कर्मपत्र, पत्र)

(ख) कौटिल्य ने उच्चतम अधिकारियों का वेतन 48,000.....बांटा था।

(लोहावत्त्व, आकरावत्त्व)

(क) अधशास्त्र में खनन अधिकारों को.....कहा गया है।

1) निम्न स्थान की पूर्ति कोष्ठक में दिए विकल्पों में से कीजिए :

शोध प्रश्न 3

से आभय रूप से जुड़ी हुई थी।

के अनेक हिस्सों में सामाजिक-आर्थिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई जो समाज में ही रहे आदिशेष उत्पादन-विकसित हुए। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि माघ साम्राज्य के संघर्ष में आन वाले भारत और अन्ततः एक संस्था के रूप में राज्य में अन्तगव धृष्ट हुआ। मौर्यों के बाद कई क्षेत्रों में स्थानीय राज्य बदल गए। सामाजिक संगठन में अधिक गतिमान आया। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक समूहों के बीच परिवर्तन केवल तकनीक और भौतिक जीवन में ही नहीं आया बल्कि सामाजिक संगठन और विचारों में भी परिवर्तन वस्तुओं का सेवन करने में था। भौतिक संस्कृति के क्षेत्र में ये परिवर्तन इस बात को स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक समूह रहा करते थे। वे शिक्षकों का उपयोग करते थे, उनकी एक लिपि थी और क्रांती मात्रा में वे के बाद प्रभावकारी मानवीय वस्तुओं (जैसे शहरी और नगरी) का विकास हुआ है, जिसमें विभिन्न शैक्षिक या शैक्षिक के बाद की अवधि से मानी जाती है। इसका अर्थ यह है कि शैक्षिक और शैक्षिक बंगाल, कर्नाट, दक्कन और इनके दक्षिण प्रदेशों में आर्थिक ऐतिहासिक सांस्कृतिक परिवर्तन की शुरुआत आइए, इन परिवर्तनों पर भी संक्षेप में विचार कर लें। मौर्य साम्राज्य के कई क्षेत्रों जैसे उत्तरी और पश्चिमी

शासितियों में फलीभूत हुई।

शासन के दौरान कुछ भौतिक और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की शुरुआत हो चुकी थी, जो आगे की तीसरी शताब्दी ई.पू. में भारत जैसे विशाल देश में पूर्ण रूप से परिवर्तन लाना संभव थीं नहीं थीं, परन्तु मौर्य आर्थिक अवस्था में थी, चरवाहे समुदायों का अस्तित्व था और शिक्षण उद्योग की सीमित जानकारी थी। महापाषाणिय स्थलों, दक्कन और दक्षिण भारत के कई हिस्सों को देखने से पता चलता है कि वहां खेती से ऐसे इलाकों में थी, जो इस युग में पूर्ण तरह शहरी केंद्र के रूप में विकसित नहीं थे। तीसरी शताब्दी ई.पू. के कि इस प्रक्रिया को राज्य ने बढ़ावा दिया। भारत के विभिन्न भागों के प्रागैतिहिक प्रमाण बताते हैं कि वहाँ यह बात पाना भी शैक्षिक है कि कितने कबीले हैं समूह के एक बन गए, परन्तु यह ध्यान देने की बात है

निम्न आशयक था।

ii) दूसरे, ज्यादातर व्यापार भाग कबीले क्षेत्रों के बगल से या उनसे होकर गुजरते थे। अतः इन क्षेत्रों पर

बाधा न पहुँचाए।

iii) पहला, नई खोजें बस्तियों की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था कि कबीले उनके आर्थिक विकास में रुद्धियों से महत्वपूर्ण था :

आदेश का पालन न किया तो उन्हें संज्ञा सजा दी जाएगी। जंगल में रहने वाले इन कबीलों पर नियंत्रण दी पितृ की निगाह से देखना था, परन्तु वह उन्हें एक जगह सेनावनी भी देता है कि अगर उन्होंने महामान्यों के पास से रस परिवारों के एक समूह को एक साथ स्थान स्थानों पर रस दिया जाए। अशोक इन कबीलों को एक तरह के तरीके अपनाने की सलाह दी है। आर्थिक से अधिक भूमि पर खेती करने के लिए आवश्यक था कि अधशास्त्र में पूरे एक अध्याय में कबीले व्यवस्था की भंग करने और उसके लिए सभी और गलत - सभी राज्य की सुरक्षा दिया कि इन कबीलों की व्यवस्थित करिष जीवन की और उन्मुख किया जाना चाहिए। उसने जो साम्राज्य के कई हिस्सों में वसे हुए थे। अन्य इलाकों की तरह इनके इलाके विकसित नहीं थे। कौटिल्य ने अधशास्त्र और अशोक के अभिलेखों में जनजातियों या कबीलों (अनैतिक, अरव्यकार) का जिक्र हुआ है,

मूलभूत परिवर्तन लाना और पुनर्स्थापना करना काफी कठिन काम था।

प्रदेशों में आर्थिक विकास का स्तर एक-सा नहीं था। इस असमान विकास के कारण इन सभी क्षेत्रों में कोई प्रभावशाली वर्ग पर नियंत्रण देने की बात है कि इस काल में गंगा घाटी के बाहर आर्थिक प्रयत्न नहीं किया गया। मौर्यों का मुख्य उद्देश्य सीमाओं को दृढ़ बनाना था और वह इसके लिए क्षेत्र विशेष के थे। इनमें से जिन इलाकों में मौर्यों का प्रभाव था, वहां भी वही प्रभाव के क्रम-बदल का आर्थिक नियंत्रण का आकलन शैक्षिक है। उत्तरी दक्कन, पंजाब, सिंध और राजस्थान इसी प्रकार के इलाकों

घ) राज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं को कहा जाता था।

(द्विविधान/राज्यपण)

2) मौर्यकालीन भारत के प्रमुख व्यापार मार्गों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

3) वस्तुओं के उत्पादन और व्यापार में राज्य किस हद तक हस्तक्षेप करता था? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

19.5 सारांश

इस इकाई में हमने मौर्यकालीन भारत में हुए आर्थिक परिवर्तनों के विभिन्न पक्षों पर विचार विमर्श किया। नई शीश्यों का देना देते हुए हमने आपको बताया कि मौर्य भारत के सभी क्षेत्रों पर एक समान आर्थिक नियंत्रण नहीं था। साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों से उनके संबंध अलग-अलग आर्थिक हितों के आधार पर जुड़े हुए थे। साम्राज्य के प्रमुख क्षेत्रों पर उनका नियंत्रण स्वाभाविक रूप से आर्थिक प्रभावशाली और प्रत्यक्ष था। इस इकाई में आपने निम्नलिखित मुद्दों का अध्ययन किया :

• उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार जो आर्थिक विकास का आधार था,

• कृषि विकास से प्रदान अवयव और भूमि स्वामित्व की पद्धतियाँ,

• कई प्रकार के मूल्यनस्त्रों के माध्यम से राज्य ने कृषि आदिशेष को कैसे अपने कब्जे में किया,

• व्यापार में हो रहे परिवर्तन, व्यापार में संगठन और आर्थिक क्रियाकलाप के इस क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप, और

• शहरी अर्थव्यवस्था और तकनीक के विभिन्न पक्ष।

19.6 शब्दावली

गणपति : भूमिधर परिवार का मालिक मुखिया।

महाप्राण : साधारण अर्थ में बड़े-बड़े पशुओं से बनी कर्षों को महाप्राण कहा जाता है। ये महाप्राणों

का संस्कार के विभिन्न कालों का प्रतिनिधित्व करती है, और यहाँ तक कि आज भी भारत के कुछ हिस्सों में महाप्राणी का ब्रह्म बनाई जाती है। प्रचुर खंड के संदर्भ में महाप्राण का संबंध विदर्भ, दक्कन और दक्षिण की संस्कृतियों से है, जहाँ महाप्राणीय सांस्कृतिक चरण के तुरन्त बाद आरंभिक ऐतिहासिक संस्कृति की शुरुआत स्वामी भवन निर्माण, नगरी और शहरों के उदय, लिपि और सिक्कों के उपयोग और राज्यों के उदय के रूप में हुई।

भार : साधारण अर्थ में "जाति" या "वर्ग"। श्रावणों द्वारा समाज चार वर्गों में विभाजित श्रावण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

स्त्रीधारा : कोषाध्यक्ष

- 1) क) आकारव्यय
ख) पत्र
ग) पृष्ठाव्यय
घ) राजपत्र
- 2) गंगा नदी के साधु-साधु जाने वाले मार्ग तथा दक्षिण प्रदेशों से जोड़ने वाले अन्य मार्गों को उल्लेख करें।
देखें उपभाग 19.4.1.
- 3) इस प्रश्न के उत्तर में नई बातें शामिल होनी चाहिए, जैसे मौसम राज्य द्वारा उत्पादन और वाणिज्य गतिविधियों पर नियंत्रण-वे चार समितियाँ जो अध्यक्षवस्था पर नियंत्रण रखती थीं देखें उपभाग 19.4.2 और 19.4.3.

बीस प्रश्न 3

- 1) ग
- 2) ग
- 3) आप इस प्रश्न का उत्तर देते समय प्रत्येक कर और एक से अधिक फसल उगाने के प्रयत्न का उल्लेख करें। देखें उपभाग 19.3.2.
- 4) उपभाग 19.3.2 पढ़ें और फिर नाम लिखें।

बीस प्रश्न 2

- 1) (क) √ (ख) √ (ग) ×
- 2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय तकनीक में हुए परिवर्तन, शहरीकरण के विकास भवन निर्माण में हॉटेल्स का प्रयोग आदि बातों को शामिल कीजिए। देखें भाग 19.2.
- 3) इसमें आपको लिखना है कि किस प्रकार लोहे के उपयोग से जंगल कटे और खेती का काम बेसी से बढ़ा। देखें भाग 19.2.

बीस प्रश्न 1

19.7 बीस प्रश्नों के उत्तर

समाह्वान: भू-राजस्व निर्धारित करने वाला अधिकारी
 सीमा भूमि : राजा की भूमि या राजा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित भूमि।

सके अलावा इस इकाई में हम अन्य समकालीन भारतीय और विदेशी शक्तियों से मौर्यों के सम्बन्ध पर भी

ठीक तरह से अनुमान लगा सकते हैं।

मरानियों के वृत्ता और अशोक के समय के शिलालेखों के आधार पर, हम मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था का

शापित है। इस इकाई में इसी सब विषयों पर प्रकाश डाला गया है। साहित्यिक स्रोतों में अर्थशास्त्र तथा

करने के अलावा प्रशासन के कार्यकलाप में, न्याय, सेना, गुप्तचरी, राजस्व जमा करना, इत्यादि विषय

परिधि पर विषय क्षेत्र, नगर रक्षा गांव, आदि। राजा के प्रभुत्व को बनाए रखने और उसके आदेश का पालन

प्रशासन के विभिन्न स्तर थे। इनमें प्रमुख थे। साम्राज्य का क्षेत्रीय प्रशासकीय क्षेत्र मण्डल, प्रांतीय केन्द्र,

विशाल राज्य क्षेत्र के नियंत्रण के लिए उपयुक्त प्रशासनिक संयंत्र भी मौजूद था। उस संयंत्र के अन्तर्गत

बीसरी शताब्दी ईसवी पूर्व तक मौर्यराज्य, जिसका केन्द्र मण्डल था सुदूर रूप से संस्थापित हो चुका था। एक

20.1 प्रस्तावना

- अन्य शक्तियों के साथ मौर्यों के सम्बन्ध तथा उनके साथ नीति में जो परिवर्तन आये उन्हें समझ सकेंगे।
 - सेना गुप्तचरी और वैधानिक प्रणाली का महत्व समझ सकेंगे, और
 - विभिन्न स्तरों पर प्रशासन करने के ढंग में अन्तर कर सकेंगे,
 - इस युग के प्रशासन की विभिन्न इकाइयाँ, उनके अधिकार और कार्यभार से परिचित हो सकेंगे,
 - उस विशाल प्रशासनिक ढाँचे को समझ सकेंगे जिसे मण्डल साम्राज्य ने बनाया,
- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

20.0 उद्देश्य

- 20.9 बौध्द धर्मों के उत्तर
- 20.8 शब्दावली
- 20.7 सारांश
- 20.6 अन्य राज्यों से सम्बन्ध
- 20.5.2 जनपद तथा ग्रामीण प्रशासन
- 20.5.1 प्रांतीय प्रशासन
- 20.5 प्रशासन की क्षेत्रीय तथा स्थानीय इकाइयाँ
- 20.4.5 सांख्यिक सिर्माण
- 20.4.4 राजस्व प्रशासन
- 20.4.3 न्याय एवं दंड
- 20.4.2 गुप्तचरी
- 20.4.1 सेना
- 20.4 क्षेत्रीय प्रशासन
- 20.3.3 नागरिक प्रशासन
- 20.3.2 मंत्रिपरिषद
- 20.3.1 राजा
- 20.3 क्षेत्रीय प्रशासन
- 20.2 पृष्ठभूमि
- 20.1 प्रस्तावना
- 20.0 उद्देश्य

इकाई की रूपरेखा

सम्बन्ध

इकाई 20 प्रशासनिक संगठन और अन्य शक्तियों के साथ

20.2 पूछर्याँ

विचार करीं। लेकिन इससे पहले उस पूछर्याँ को समझना जरूरी है, जिसके कारण मीठ प्रशासनिक व्यवस्था सामने आयी।

प्रशासनिक संरचना और कार्य शक्ति के साथ संबंध

इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इस समय तक :

- अब भी कुछ ऐसी जनजातियाँ बनें जगती हैं रहती थीं जो शिकार तथा भोजन संग्रहण द्वारा ही जीवन निर्वाह करती थीं

- ऐसे क्षेत्र थे विशेषकर गंगा घाटी में, जहाँ अतिरिक्त कुछ उत्पादन था :

- शहरी वस्तियाँ, व्यापार और दस्तकारी उद्योग का केंद्र बन चुकी थीं

- अपनी आमदनी बढ़ाने के उद्देश्य से राज्य अतिरिक्त उत्पादन हासिल करता था

मण्ड की निर्देश विजय और विस्तार में अनेक कारकों का योगदान था जिन्होंने उसे एक बड़े साम्राज्य का रूप दिया जैसे राज्य द्वारा राजस्व बढ़ाने का प्रयास। इस प्रयास में ऐसी जमीनों पर नियंत्रण किया गया

जिससे अतिरिक्त उत्पादन हो सके ताकि राज्य इसे वसूल कर सके; व्यापारियों पर कर लगाना; खान और व्यापार मार्गों पर नियंत्रण इत्यादि। उदाहरण के लिए, अशोक की कलिंग पर विजय, पूर्वी भारत के तटीय व्यापार को अपने नियंत्रण में करने की इच्छा से प्रेरित थी। इसी प्रकार कर्नाटक के इलाके पर कब्जा करने का उद्देश्य कोलार की सीना खाने ही सकती है।

अतिरिक्त उत्पादन की हासिल करने, तथा उसके वितरण या व्यय की समस्या ने एक जटिल प्रशासनिक व्यवस्था का होना अनिवार्य बना दिया। यह व्यवस्था विभिन्न स्तरों पर आर्थिक, राजनैतिक, और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए भी जरूरी थी। अन्य क्षेत्रों पर विजय के लिए एक शक्तिशाली सेना की जरूरत थी, और सेना को संगठित करने तथा उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक कुशल प्रशासन का होना जरूरी था। उसी तरह व्यापारियों से कर या उत्पादकों से अतिरिक्त उत्पादन वसूल करना ही तो एक ऐसा प्रशासनिक ढाँचा चाहिए था जो नियम बनाये और उन्हें लागू भी करे अर्थात् वसूली भी करे। काफी समय से जो मजदूरियाँ और सहाय्य विकसित हो रही थीं मीठ प्रशासन ने उन्हें एक ठोस रूप दिया। मीठ प्रशासन के कामकाज का ढाँचा अत्यन्त सुव्यवस्थित था। हम इसी सुव्यवस्थित विषयों पर विचार करेंगे।

मीठ तौर पर प्रशासन की केन्द्रीय, प्रांतीय और स्थानीय इकाइयाँ तथा अन्य संबंधित विषयों की भी चर्चा की जाएगी।

20.3 केन्द्रीय प्रशासन

मीठ साम्राज्य का प्रशासन केन्द्र और प्रांतीय क्षेत्रों से लेकर गाँव तक अनेक प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित था। इन सभी इकाइयों के अपने अलग-अलग प्रशासनिक ढाँचे तो थे, पर यह सभी, एक केन्द्रीय प्रधिकार से नियंत्रित होते थे। केन्द्रीय प्रशासन को निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं:

- 1) राजा
- 2) मंत्रिपरिषद
- 3) नगरिक प्रशासन
- 4) सेना
- 5) गुजबंद विभाग
- 6) विधि एवं न्याय
- 7) जन कल्याण

के लेख में अशोक कहता है:

अशोक के समय तक मौर्य साम्राज्य भली भाँति संगठित हो चुका था। इस दौरान एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि ऐसा विचार आया कि राजा को अपनी प्रजा के प्रति पिता के समान व्यवहार करना चाहिए। यही

उसके अलावा उसे हमेशा अपने अधिकारियों और सलाहकारों के समर्थक में रहना चाहिए। अशोक के समय के शिलालेखों और मंगलनाम के वर्णन से भी यह मालूम होता है कि राजा ऐसा ही करता था।

- 3) उसे अपनी जिम्मेदारी को भली भाँति निभाना चाहिए
- 2) उसे सतर्क रहना चाहिए और उचित कार्रवाई करने के लिए तैयार रहना चाहिए
- 1) राजा हर समस्या पर बराबर से ध्यान दे

राजा के एक निपुण प्रशासक होने के लिए अर्थशास्त्र में तीन बुनियादी शर्तों का वर्णन है:

जलता है।

अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को कुछ विशेष क्षेत्रों में अत्यन्त निपुण होना चाहिए, जिससे वह अपना काम भली भाँति कर सके। उसे सैनिक शिक्षा प्राप्त होना चाहिए और विभिन्न विभागों जैसे अर्थव्यवस्था (वर्त), विधि आदि के बारे में पूर्ण ज्ञान हो। अर्थशास्त्र राजा के आचरण और उसके दैनिक कार्यों पर भी प्रकाश डालता है।

• धर्म का रक्षक हो, इत्यादि।

• सन्तुष्ट हो

• बुद्धिमान हो

• छोटे पदाधिकारियों और राजाओं पर प्रभुत्व जमा करे

• वह उच्च कुल का हो

हर जनसमाधारण राजा नहीं हो सकता। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा में कुछ आवश्यक गुण होने चाहिए, जैसे:

• अपने सव्यवहारे से प्रजा को प्रभावित करता है

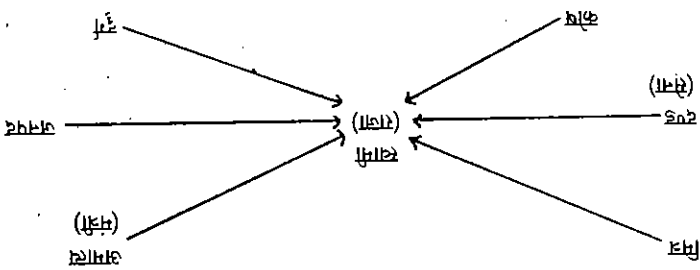
• दुराचारियों को दंडित करता है

• जनता की उन्नति और कल्याण के लिए काम करता है

• जनता और कोष की रक्षा करता है

• मंत्रियों की नियुक्ति या निष्कासन करता है

अर्थशास्त्र के अनुसार राजा की केन्द्रीय भूमिका है क्योंकि राजा ही :



अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन के प्रत्येक पहलू में राजा का आदेश या विचार ही सर्वोपरि था। इसके अनुसार, प्राचीन शास्त्रों में राज्य से संबंधित जिन गान गद्यों (सर्वांग) का वर्णन है, राजा उनका केन्द्र था।

प्रभावशाली था।

राज्य में मौर्य साम्राज्य में एक केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था थी जिसमें राजतंत्र, गणसंघ से कहीं अधिक सुलझाने में नीति शास्त्र और राजा के कानून में मतभेद होता था तो राजा का कानून ही मान्य होता था। निर्यात भी स्वयं लेता था। अर्थशास्त्र इस बात की साफ तौर पर पुष्टि करता है कि, यदि किसी समस्या के राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था। नीति संबंधी प्रत्येक समस्या को खुद तय करता था तथा महत्वपूर्ण

रुम अर्थशास्त्र में अद्वैत विभागों का उल्लेख मिलता है। जैसे कर्मान्तक का संबंध उद्योग की देखभाल से है, अन्तर्वैयक्तिक का राजा की सुरक्षा से तथा सविधाता का राज्यकीय से, इत्यादि।

एक रोचक पहलू जिसका वर्णन अर्थशास्त्र में है, उसका संबंध उन योगदानों से है जो किसी भी मंत्री की नियुक्ति के लिए जाती है, जैसे वह न तो धन का लोभी हो और न ही किसी दबाव में आवे। उसे सर्वोपरि गुरु अर्थात् सब से पवित्र होना चाहिए। अर्थशास्त्र में मंत्रियों के एक छोटे गुट का भी उल्लेख है जो ऐसी समस्याओं पर सन्नत हैं, जिनका हल तत्काल चाहिए। इस गुट की आंतरिक परिषद (मिनिगा) कहा गया है।

आदेश की पालन हो।"

कौटिल्य के अनुसार मंत्रिपरिषद में बहूमत के फैसले (मंत्रिपरिषद) के आधार पर परियोजनाओं का निर्णय स्वयं निर्णय लेना चाहिए। वह स्पष्ट रूप से कहता है "मंत्रियों को यह भली भाँति देखना चाहिए कि राजा के होने चाहिए। पर यदि राजा समझता है कि बहुमत का फैसला लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उचित नहीं है तो उसे कौटिल्य के अनुसार मंत्रिपरिषद में बहूमत के फैसले (मंत्रिपरिषद) के आधार पर परियोजनाओं का निर्णय

- तथा विपदाओं से निपटने के उपाय और हल सोचना।
 - उन क्षेत्र/स्थानों की निर्धारित करना जहाँ पर परियोजनाएं लागू करनी हैं,
 - इन परियोजनाओं के लिए आवश्यक जनशक्ति और पूँजी का अनुमान लगाना,
 - राज्य की परियोजनाओं की किस प्रकार कार्यान्वित किया जाये,
- किया है जिन पर राजा को अपने मंत्रियों से सलाह लेनी चाहिए:
- उसके विचार में 'बड़ी मंत्रिपरिषद राजा के लिए लाभदायक होती है'। उसने इन समस्याओं का भी वर्णन की कई निश्चित सलाह नहीं थी और कौटिल्य के अनुसार, वह आवश्यकता पर निर्भर होना चाहिए। पर सलाहकार समिति की ही थी, क्योंकि अंतिम निर्णय देने का अधिकार राजा का था। मंत्रिपरिषद के सदस्यों द्वारा समय-समय पर परिषद के अधिकारों में फेर बदल आना रहा होगा, पर इसकी मुख्य भूमिका एक निर्णय के सकेत है। पर परिषद को अपने विचारों से राजा को गुप्त अवगत कराना होगा।
- चौथे शिखर के अनुसार राजा की अनुपस्थिति में मंत्री उसकी नीतियों पर विचार कर सकते हैं उसमें कि विभिन्न अधिकारी नयी प्रशासनिक नीतियों को लागू कर रहे हैं अथवा नहीं।
 - तीसरे शिखर से संकेत मिलता है कि मंत्रिमंडल से यह अपेक्षा की जाती थी कि इस पर नजर रखें निरनर का अशोक का शिखर भी परिषद के कार्य में बजाता है :
- अर्थशास्त्र तथा अशोक के शिखर मंत्रिपरिषद का हवाला देते हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार "राज्य का कार्य विना किसी सहायता के नहीं चल सकता। इसके अनुसार रथ केवल एक पहिए से नहीं चलता इसलिए राजा को मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए और उनकी सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए" इसी प्रकार अर्थशास्त्र तथा अशोक के शिखर मंत्रिपरिषद का हवाला देते हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार "राज्य का कार्य

20.3.2 मंत्रिपरिषद

(21 देखें)

है, कि धार्मिक समस्याओं में भी अब राजा ने अपने अधिकार का प्रयोग करना शुरू कर दिया था (इकाई 16 तक कि पुरोहित को भी एक माध्यम के रूप में शामिल नहीं किया। यह वस्तु में इस बात का संकेत की पदवी धारण करके अशोक ने ईश्वर और राजा के संबंध पर जोर देने का प्रयास किया, और शायद इस विशेषण के दृष्टिकोण से वह एक सम्राट था। रोमिला धारण के अनुसार, देवानाम्पिय (देवताओं का प्रिय) उसमें कोई संदेह नहीं कि अशोक के प्रशासन का मुख्य उद्देश्य प्रजा का कल्याण था, पर राजनैतिक साधनों द्वारा प्राप्त किया जाये—यह मेरा गुप्त लोगों को निर्देश है।

में जो कुछ भी अनुमान करूँ मैं चाहता हूँ कि उसे या तो उचित कार्यवाही करके या प्रभावकारी में वह तोशाली और सच्चा के अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए कहता है:

लेकिन इस पैरेक रवैय के साथ-साथ, सम्राट अपने अधिकार के बारे में पूरी तरह सचेत था। इसी शिखर में दूसरे में भी, मुख और शक्ति मिले, वही कामना में प्रत्येक व्यक्ति के लिए करता है।

प्रत्येक व्यक्ति मेरी संतान है, और जो कामना में अपनी संतान के लिए करता है कि उसे इस संसार

- 1) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही या गलत हैं ✓ या ✗ का चिह्न लगाइए।
- (क) माघ के विस्तार में राज्य की आमदनी बढ़ाने की कोशिश का योगदान था।
- (ख) अर्थशास्त्र के अनुसार राजा के सम्युक्त मंत्रिपरिषद का निर्णय अंतिम होता था।

भाग 1

हम कह सकते हैं कि इस युग में नागरिक प्रशासन विस्तृत और सुनियोजित था। बाहर दिखती देना और यदि उसे कर्मों से छूट प्राप्त नहीं हो तो उसे बड़ा जुमाना देना होता था इस प्रकार करता था तो वह भी दंड को भागी होता था। जैसे, यदि कोई नागरिक कर्मों के दौरान राज के समय घर के साथ दुर्व्यवहार किया तो उसे अधिक कठोर दंड मिलता था। यदि कोई भी नागरिक नियमों का उल्लंघन करना करना वाले कानून से ऊपर नहीं था। उदाहरण के लिए, यदि रक्षक (पुलिस कर्मचारी) ने नारी के

• आग में सतकता।

• सारथियों या यजियों के ठहरने के स्थानों की देखरेख।

• मिलावट की रोकथाम।

• स्वच्छता और जलस्रोत।

उन नियमों के पालन न करने पर दंड की भी चर्चा है। इसमें संनिहित है।

अर्थशास्त्र में नागरिक प्रशासन की बहुत सी गतिविधियाँ और उनसे संबंधित नियमों का भी वर्णन है तथा।

लैह्याध्यक्ष, स्पर्धाध्यक्ष आदि।

• कार्यशाखाओं, जहाँ वस्तुओं का निर्माण होता था, के कामकाज के लिए बहुत से प्रबन्धक थे, जैसे

• जनता की सुरक्षा की जिम्मेदारी रक्षी या पुलिस की थी।

• बन्धनगार्याध्यक्ष कारगर की देखरेख करता था।

उदाहरण के लिए :

भी थे जिनके कार्यभार का बहुत विस्तार में वर्णन है।

उसकी सहायता के लिए दो अधिकारी थे — गोप और स्थानिका। उसके अतिरिक्त बहुत से अन्य अधिकारी

करना था। नागरिक प्रशासन का अध्यक्ष नागरिक कहलाता था।

करने की जिम्मेदारी (छठी समिति) शिल्पकार्याध्यक्ष की थी तथा गोप का कार्य जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण।

उदाहरण के लिए उपरोक्त वर्णित चौथी समिति का कार्य अर्थशास्त्र में वर्णित पणअध्यक्ष करता है, कर जमा फिर भी अर्थशास्त्र की सुरक्षा में मगस्थनीज द्वारा वर्धित समितियों के लगभग सभी कार्यों का वर्णन है।

नहीं है।

रोक बात यह है कि अर्थशास्त्र में नागरिक प्रशासन का विस्तृत ब्योरा तो है, पर उन समितियों का वर्णन

6) छठी समिति का काम बिक्री कर वसूल करना था, जिसकी दर वस्तु के मूल्य की 1/10 थी।

तथा इस्तेमाल की गई वस्तुओं की अलग रखा जाता था और उस पर कड़ी दृष्टि रखी जाती थी।

5) पाचवी समिति निर्मित वस्तुओं का निरीक्षण करती थी तथा उनकी बिक्री का प्रबन्ध करती थी, नई

निर्माण उस समिति की जिम्मेदारी थी।

4) चौथी समिति वाणिज्य और व्यापार के लिये थी। मापतौल का निरीक्षण और बाजार और मण्डी का

3) तीसरी समिति का काम जन्म और मृत्यु का पंजीकरण करना था।

2) दूसरी समिति विदेशियों की देखभाल, भोजन, आवास और सुरक्षा आदि की व्यवस्था करती थी।

निर्धारित करना आदि शामिल था।

1) पहली समिति का काम उद्योग और शिल्प की देखरेख का था जिसमें कर्मों का निरीक्षण तथा मजदूरी

नागरिक परिषद उपसमितियों में विभाजित थी और प्रत्येक समिति के पाँच सदस्य थे।

है, फिर भी इससे हमें इस युग के नागरिक प्रशासन की समझने में काफी मदद मिलती है। इसके अनुसार मगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के प्रशासन का सुस्पष्ट वर्णन किया है। हालाँकि, उसका वर्णन अर्थशास्त्र से भिन्न

केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत अन्य विभाग भी शामिल थे। फिर भी, कुछ कार्यों को लागू करने की जिम्मेदारी स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों की थी, जैसे जन कल्याण सेवक-श्री कार्यक्रम।

20.4 केन्द्रीय प्रशासन

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

4) आप किस आधार पर कह सकते हैं कि मौद्रिकताहीन नागरिक प्रशासन सुव्यवस्थित था। उदाहरण दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

- घ) अर्थशास्त्र में विभिन्न आर्थिकारियों के कार्य का (विस्तृत/संक्षिप्त) वर्णन है।
- ग) भास्वनीज के अनुसार नगर परिषद (टी/पी/व) सदस्यों की (तीन/छह) समितियों में विभाजन था।
- ख) देवनागरीय की उपाय ग्रहण करके अशोक ने राजा और (सांसाहिक/टिब्य) शक्ति से संबंध (स्थापित/तोड़ने) करने का प्रयास किया।
- क) मौद्रिक प्रशासन का ढांचा (सरल/जटिल) था।

3) रिक्त स्थानों को भरिए :

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

2) दस पंक्तियों में राजा और परिषद के संबंधों की चर्चा कीजिए।

- ग) राजा की ओर राजा का धृष्टक रवैया भारतीय राजतंत्र में एक नया अड्याय था। ()
- घ) भास्वनीज के वर्णन में नागरिक प्रशासन की कोई चर्चा नहीं है। ()
- व) कौटिल्य की रूपरेखा के अनुसार राज्य के मान घटकों का कर्म राजा था। ()

इन कार्यों के लिए गुप्तचरों को विभिन्न तरह के लोगों की पहचान लेनी पड़ती थी, जैसे रसीदें, नाई इत्यादि। सूचना प्राप्त करने के लिए वे सच्चाई, छान और आदि का भ्रम भी धारण करते थे। आवश्यकता होने

- विदेशी शासकों की गुप्त गतिविधियों का पता लगाना
- आम जनता की भावनाओं को जानना
- सरकारी कर्मचारियों की गतिविधियों को खबर रखना
- परिवारों पर नजर रखना

सुरक्षा विभाग गुप्तचर विभाग, मीड प्रशासन का महत्वपूर्ण अंग था जिसके द्वारा आम जनता से लेकर लगभग सारे अधिकारियों पर नजर रखी जाती थी। गुप्तचरों के प्रमुख कार्य इस प्रकार थे:

20.4.2 गुप्तता

जिसका एक लक्ष्य अवैध के बाद राज्य कोष पर प्रतिकूल असर पड़ा होगा।

इसमें संदेह नहीं है कि राज्य अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग सेना के अग्ररक्षण पर व्यय करता था,

युद्ध योजना और नाकाबन्दी आदि की भी चर्चा की गयी है।

भी देखना पड़ता था, और इसका अर्थ है कि गुप्तचरों की देख रेख थी। अर्थशास्त्र में चर्चा की जाती है, विभिन्न अर्थों के कार्य का भी विस्तृत विवरण मिलता है। जैसे कि, रथायुध को रथों के निर्माण का कार्य

जिसके प्रधान की अग्ररक्षणार्थक कहते थे।

एक अलग विभाग विभिन्न प्रकार की युद्ध सामग्री और हथियारों के उत्पादन और अग्ररक्षण के लिए था,

समाप्ति	48000 गुण
मापक	12000 गुण
मुद्रिया	8000 गुण
अयुध	4000 गुण

सैनिक अधिकारियों के भ्रम

वेतन नकद मिलता था।

इसके अतिरिक्त, कौटिल्य सेना की वित्तिका सेवा की भी चर्चा करता है। अधिकारियों और सैनिकों को अश्वरोही सेना, रथ और हाथी) सेना का मुख्य अंग बताया है प्रत्येक विभाग एक सेनायुध के अधीन था।

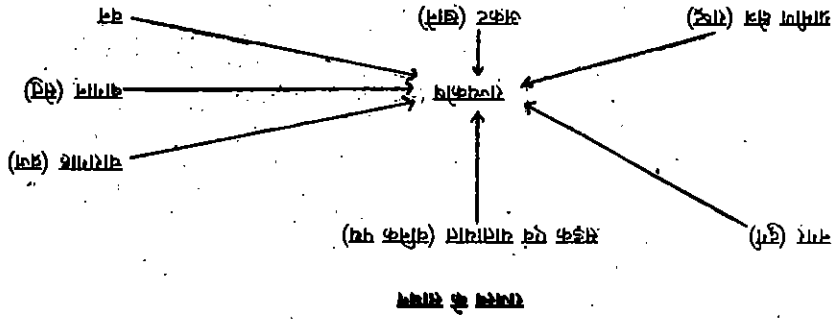
प्रत्येक शाखा की देखरेख पाँच सदस्यों की एक समिति करती थी। कौटिल्य चतुर्गणवत्त को (चतुर्गण सेना,

- चतुर्गण सेना
- चतुर्गण सेना
- चतुर्गण सेना
- चतुर्गण सेना
- चतुर्गण सेना
- चतुर्गण सेना
- चतुर्गण सेना

था। संग्रहनीय के अनुसार सेना की विभिन्न शाखाओं इस प्रकार थी :

जैसे प्रमाण इस बात की पुष्टि आवश्यक करते हैं कि मौर्य शासन काल में एक विशाल सैनिक संगठन मौजूद था। अर्थशास्त्र में सैनिक प्रशासन का विस्तृत वर्णन और अर्थशास्त्र के समय का हिस्सा कौटिल्य युद्ध सेना है कि इन वर्तमानों में वास्तविकता की बड़ी चर्चा कर पेश किया गया है। लेकिन सेनायुध का युद्ध में हजार पैदल हाथी, अस्सी हजार अश्वरोही, दो लाख पैदल सैनिक तथा आठ हजार युद्ध रथ शामिल थे। दो तीस हजार अश्वरोही तथा छह हजार पैदल सैनिक थे, जबकि प्लेटार्क (Plutarch) के अनुसार सेना के छह आकार की बनाई गई। उदाहरण के लिए चीनी (Piny) के वर्णन के अनुसार सेना में नौ हजार हाथी, भारतीय, दोनों प्रकार के साहित्यिक सौत्रों में मिलता है। बाद में, चन्द्रगुप्त की सेना काफी संगठित और बड़े करने के लिए कौटिल्य और चन्द्रगुप्त ने भाई के सैनिकों की सेना बनायी थी। इसका संदर्भ, यूनानी और नन्द राजाओं के पास एक शक्तिशाली सेना थी, पर यह बात ध्यान देने की है कि नन्द राजा की परास्त

- नगरों में आमदनी जमा, बिना कर (शुल्क) आदि से होती थी। इसके आर्थिक शराब की बिक्री पर राजस्व के इन स्रोतों से राजस्व वसूली के अलग-अलग तरीके थे। उदाहरण के लिए:



संविधाना नामक अधिकारी करता था।
 कौटिल्य ने उन विभिन्न स्रोतों का वर्णन किया है जिनसे राज्य की आय होती थी। इस विभाग की देखभाल मौर्यकालीन राज्य की आमदनी के अनेक माध्यम थे उसकी चर्चा, इकाई 19 में विस्तार में की गई है।

20.4.4 राजस्व प्रशासन

राजा धर्म का रखवाला था, और साथ ही मर्त्याधिकार उसी के पास था। मंत्रालय के अनुसार अपराधों की संख्या अधिक नहीं थी। पर जिस प्रकार के दंडों का वर्णन अर्थशास्त्र में मिलता है उससे ऐसा प्रतीत होता है मौर्य समाज कानून के उल्लंघन और अपराधों से बचा हुआ नहीं था। इसलिए एक कठोर दंड प्रणाली की आवश्यकता थी पर प्रमाण और गवाह दोनों पर विशेष ध्यान दिया जाता था 'निर्णयकों की महत्ता की आवश्यकता थी पर राजा के दरबार में यचना की व्यवस्था भी थी। यहाँ पर यह बात भी स्पष्ट हो जाती चाहिए, कि जैसा कि अर्थशास्त्र में उल्लेख है, उसके अनुसार एक ही अपराध के दंड का निर्णय अपराधी की जाति के अनुसार होता था। एक ही प्रकार के अपराध के लिए ब्राह्मण को शूद्र की तुलना में कम दंड मिलता था।

- 1) धर्म
- 2) व्यवहार-समकालिक विधि संहिताएँ
- 3) धर्म-रीतिरिवाज
- 4) राजशासन-राजसी आदेश

कौटिल्य के अनुसार साथ संहिता के निम्नलिखित स्रोत थे:

- 1) धर्मसिद्धय वह स्यात्तय जो व्यक्तिगत विवाद हल करते थे।
- 2) कटकशास्त्र वह स्यात्तय थे जो राज्य और व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित मामलों पर विचार करते थे।
 उन अवसरों पर विशेष प्रकार के नियंत्रण लागू होते थे। विवादों का विधिवत प्रतीकरण होता था और सभी धर्मद्वारा प्रकार की अदालत मजदूरों के वेतन, उनके आचरण और हत्या आदि समस्याओं से सम्बन्धित थी। उदाहरण के लिए स्यात्तय का पहला वर्ग स्त्रीधन (पत्नी का धन) या विवाह संबंधी विवादों को हल करता था। दूसरे प्रकार की अदालत मजदूरों के वेतन, उनके आचरण और हत्या आदि समस्याओं से सम्बन्धित थी।

अदालतें थीं। अर्थशास्त्र में दो प्रकार के स्यात्तयों की चर्चा है:
 इन अपराधों की जाँच करने के लिए तथा विवाद को विभिन्न स्तरों पर निबटाने के लिए कई प्रकार की जाप दौल आदि जैसे अनेक अपराधों का वर्णन उस नियमावली में है।

सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था को बनाये रखने तथा राजस्व की मही मूर्तियों की आवश्यकता को समझते हुए मौर्यों ने एक सुसंगठित विधि व्यवस्था की स्थापना की। अर्थशास्त्र में विभिन्न अपराधों के लिए निर्धारित दंड की नियमावली मिलती है। विवाह और तलाक के कानूनों का उल्लंघन, हत्या, मिलावट, गलत

28.4.3 साथ एवं दंड

पर, महत्वपूर्ण विषयों की सूचना सीधे राजा को ही दी जाती थी। अर्थशास्त्र में सुव्यवस्थित गुप्तचरी की चर्चा की गयी है।

वैसा कि हम जानते हैं कि मौर्य राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यधिक केंद्रीकृत थी और सारे अधिकार राजा के पास थे। लेकिन इतनी प्रशासकीय व्यवस्था संभल नहीं हो सकती थी जब तक कि विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों क्षेत्रीय तथा स्थानीय स्तर पर न हों। सीमा के बाह्य मौर्यों ने प्राचीन तथा स्थानीय स्तर पर न केवल प्रशासनिक इकाइयों बनायीं बल्कि उन्हें सुदृढ़ भी किया।

20.5 प्रशासन की क्षेत्रीय तथा स्थानीय इकाइयाँ

दिलचस्पी तथा प्रजा की और उसका प्रतिक्रमण। व्यवस्था में, आशोक के काल में बड़ी-बड़ी अवस्था हुईं होनी। इसका कारण था, जन कल्याण में आशोक की इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राज्य अपनी आमदनी का एक भाग जनसुविधाओं पर व्यय करता था। इस

5) जन सुविधाओं का एक पहलू था सड़कों की मरम्मत और संचालन बनाना।

कठना मुश्किल है कि यह कहाँ तक लागू होता था।

4) अधशासक के अनुसार राजा को अनाथ तथा बेसहारा बूढ़ों औरों की देखरेख करनी चाहिए। पर यह

3) राज्य, आकाश और जमीनी प्राकृतिक विपदाओं के समय भी नागरिकों की सहायता करता था।

जनसाधारण और मवेशी दोनों के इलाज के लिए सुविधाएं प्राप्त थीं।

2) विभिन्न प्रकार के चिकित्सकों के बारे में काफी हवाले मिलते हैं, जिसमें साधारण वैद्य से लेकर निवृत्त (गर्भावस्था) तक शामिल थे। आशोक के इलाखों के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि

इसे पानी की सफाई के लिए बनाया गया था।

1) सिंघाई के साधनों की देखरेख के कार्य में राज्य काफी रुचि लेता था क्योंकि यह आर्थिक एक प्रमुख स्रोत था। मंगलनीज ने संबंधित अधिकारियों का भी वर्णन किया है। अधशासक में सिंघाई के भिन्न साधन, जैसे पौध, बाँध, नहर आदि की चर्चा की गयी है। पानी के सही उपयोग के लिए नियम भी बनाये गए। जिनका पालन न करना अपराध था। राज्य किसानों को स्वयं बाँध बनाने के लिए प्रोत्साहित करता था और उस कार्य के लिए लगान में छूट भी मिलती थी। कदमन के इलाखे (दूसरी शताब्दी ईसवी में लिखा गया) में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में दर्शन नामक तर्कन या झील का हवाला मिलता है।

दोनों में इस विषय पर चर्चा की गयी है:

मौर्य राज्य में जनोपयोगी सेवाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मंगलनीज के वर्तन और अधशासक

20.4.5 सांस्कृतिक निर्माण

पटा कर 1/8 कर दिया था, क्योंकि छिन्नी बुद्ध का जन्म स्थान था।

राजा को लगान में छूट देने का अधिकार था। वैसा कि हम जानते हैं कि आशोक ने छिन्नी गाँव में "भंग"

राज्य व्यवस्था

राजा, सेना, प्रशासक, अधिकारियों के वर्तन आदि का खर्च पूरा होता था। नियंत्रण के लिए कई विभाग भी थे। राजस्व का अधिकतर भाग राजकोष में जमा होता था तथा उसी से लिए, राज्य को आपात स्थिति में कर लगाने का अधिकार था। राजस्व को जमा करने और उसके विधिवत नमक व्यापार को अपनाने नियंत्रण में लेने के कारण भी राज्य की आय में वृद्धि हुई। आमदनी को बढ़ाने के लिए उससे संबंधित प्रमाण पत्र हासिल करने के लिए व्यापारियों को शुल्क देना पड़ता था। शस्त्र उद्योग और का पाँच प्रतिशत राज्य को देना होता था। इसी प्रकार राज्य अधिकारियों द्वारा वर्तमानों के भार को जौब कुछ क्षेत्रों में राज्य संबंधित व्यक्तियों से सीधे वसूली करता था। जैसे कुआरियों को अपनी जीती हुई रकम

• आपात एवं निर्गत कर, आदि।

• सड़क या जलमार्ग से यात्रा करने वाले व्यापारियों पर कर लगाया जाता था।

• समस्त खर्चें राज्य के नियंत्रण में थीं। यह स्थायी रूप से राज्य की आमदनी का जरिया था।

राजस्व के मुख्य स्रोत थे।

• राज्य भूमि से आमदनी, किसानों से लगान, फलबहान का कर, नौका शुल्क आदि ग्रामीण क्षेत्रों में

21 प्रकार के करों का वर्णन है जो शाह्यों में लगाये जाते थे।

भी कर लगाया जाता था, धनवान लोगों के लिए एक प्रकार का आयकर भी था। अधशासक में ऐसे

- दीग एवं निरीक्षण
- भूमि ... एवं मूल्यांकन

संग्रह प्रकाश

- जनपद के स्तर पर इस युग में जिन अधिकांशों की चर्चा की गयी है इनमें प्रदेस पर जनपद के पूरे कामकाज की जिम्मेदारी थी अन्य अधिकांशों में "राजक" और युक्त आते थे। इन अधिकांशों के

20.5.2 जनपद तथा प्राचीन प्रशासन

इस प्रकार की इकाइयों का प्रशासन नागरिक स्तर पर होता था और उसके संगठन में कई गाँव शामिल होते थे पर साथ ही साथ प्रत्येक गाँव की अपनी अलग प्रशासनिक इकाई होती थी। कौटिल्य के अनुसार :

मंत्रिपरिषद का राजा से सीधा सम्पर्क था और वह कुमार की गतिविधियों पर नियंत्रण रखती थी। वरिष्ठ अधिकांश महानाज कहलते थे अधशास्त्र में उन्हें मंत्री की भाँति समझा गया है, पर अशोक के शिलालेखों में वह ऐसे अधिकांशों की देखरेख, स्याधिक कार्य आदि करते थे। धम्म महासाज धर्म से संबंधित समस्याओं को देखते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी नियुक्ति राजा या राजकुमार (वायसराय) करे भी कर सकता था। उच्च अधिकांशों की दूसरी श्रेणी अमात्य की थी। इस श्रेणी की भी विशेष अधिकार दिए गए थे, क्योंकि अशोक और लिप्युत्तर दोनों ही के समय में उन अधिकांशों के मनमाने रवैय के विरोध में तक्षशिला की जनता में विद्रोह कर दिया था।

पता चलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में उस इलाके का प्रतिनिधि (राष्ट्रीय) प्रबन्धन नामक एक वैश्य बनाना मिलता है जो अशोक के समय में जूनागढ़ का प्रबन्धन था। हालाँकि इसी शिलालेख से हमें यह भी चलते थे जिनका चयन स्थानीय आबादी से किया गया था। कद्रमन के जूनागढ़ के शिलालेख में विश्व व दक्षिण में स्वर्णामिरी तथा उत्तर में तक्षशिला प्राचीन में ऐसे भी क्षेत्र थे, जिनका प्रशासन कुछ ऐसे गवर्नर शिलालेखों में हमें चार प्राचीन राजधानियों का उल्लेख मिलता है — पूर्व में तोशाही, पश्चिम में उज्जैन, (जैसे अशोक के समय में महानाज कहते थे) और एक मंत्रिपरिषद कुमार की सहायता करते थे। अशोक प्रकार कि राजा बनने से पूर्व अशोक उज्जैयनी या तक्षशिला का राजकुमार था। प्रशासन चलाने में महानाज प्राचीन प्रशासन का प्रधान कुमार (राजकुमार) होता था, जोकि प्रान्त का गवर्नर या वायसराय भी था, फिर

20.5.1 प्राचीन प्रशासन

7. युद्धन के उत्खनन में मिले हुए एक भाग



- 3) दस पंक्तियों में मौर्य शासन के राजस्व के स्रोत तथा व्यय की चर्चा कीजिए।
- iv) राज्य द्वारा खानों के नियंत्रण के फलस्वरूप राजस्व में (चुनि/कमी) हुई।
- iii) ग्राम के स्तर पर न्यायिक अधिकार (प्रदेष्ट/ग्रामिक) के पास था।
- ii) संग्रहण में (पचास/दस) गांव था।
- i) प्राचीन प्रशासन का प्रधान (कुमार/अनाय) होता था।
- 2) तिक स्थानों की पूर्ति करें।
- ब) राज्य जन कल्याण पर धन व्यय करता था। ()
- घ) राजा के पास राजस्व में छूट देने का कोई अधिकार नहीं था। ()
- ग) इस काल में न्यायालय को भली भाँति चलाने के लिए विशेष नियमों का पालन करना पड़ता था। ()
- ख) मौर्यों के पास गुप्तचरी की कोई व्यवस्था नहीं थी। ()
- क) मौर्य राज्य में सेना के अग्रदूत पर बहुत अधिक धन व्यय किया जाता था। ()
- 1) निम्न कथनों में से कौन से सही (✓) हैं और कौन गलत (X) निशान लगाइए।

बौद्ध धर्म 2

इतना ध्यान क्यों दिया गया है।

पूर्व अवश्य होती है कि अर्थशास्त्र में राजस्व जमा करने के विविध तरीकों पर — जमान से जुए तक — इसके कारण राज्य कोष पर बहुत दबाव था। मुद्रा से संचालित अर्थव्यवस्था प्रबल थी। इससे इस बात की संभावना थी 48000 पण, सिपाही को 500 पण तथा मजदूर को 60 पण मिलने का इंतजाम मिलता है था। उस समय में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है, कि अधिकारियों को वेतन नकर मिलता था। यह स्पष्ट है कि मौर्य शासन प्रशासन के सभी स्तरों पर अधिकारियों की एक बड़ी संख्या की नियुक्ति करता था।

ग्रामवासियों को स्वतंत्रता थी।

इन अधिकारियों के होते हुए भी, गाँव के स्तर पर प्रशासन चलाने और अपनी समस्याओं सुलझाने के लिए

- क, राजस्व और जमीन का हिसाब रखना
- प्रत्येक की आय और व्यय की दर्ज करना
- जमीन के विभिन्न प्रकार के उपयोग का हिसाब करना
- गाँव की सीमा निर्धारित करना

मध्यस्थता का काम करती थी। उनके कार्य थे,

नाम से अधिकारियों की दो श्रेणियाँ मिलती हैं जो जनपद और गाँव के स्तर की प्रशासनिक इकाइयों के बीच इस तरह की इकाइयों का दबाव स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करता होगा। पर हमें गाँव और स्थानिक के मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्तर के अधिकारी स्थानीय लोग ही थे। उन्हें ग्रामिक कहा जाता था। ग्रामीण स्तरीय प्रशासन पर कोई प्रकाश नहीं डालते। पर उस प्रकार की इकाई की चर्चा अर्थशास्त्र में अवश्य प्रत्येक श्रेणी के अधिकारियों के प्रभाव पर नियंत्रण और सन्तुलन भी राजा रखता था। अशोक के शिलालेख

का अधिकारी था जिसका कार्य अन्य दोनों श्रेणियों की सहायता मात्र था।

निर्देशों को लागू करे। इसने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिए जो उनके पास अब तक नहीं थे। युक्त छोटे दर्जे

समय लेख में अशोक राजा को यह स्वतंत्र अधिकार देता है कि वह जन कल्याण के संबंध में उसके

आवश्यकता पड़ने पर राजा इन अधिकारियों से सीधा सम्पर्क भी स्थापित करता था। उदाहरण के लिए चौथे

- कानून और व्यवस्था को बनाये रखना इत्यादि

- राजस्व जमा करना

2) तेरहवें शिलालेख में जिन यवन शासकों की चर्चा है, उनके नाम बताइये।

1) अन्य राज्यों से मौर्यों के सम्बन्धों के विभिन्न चरणों का उल्लेख करें। उत्तर दस पंक्तियों में दें।

बोध प्रश्न 3

इस प्रकार से अन्य राज्यों के साथ मौर्यों के सम्बन्ध में हम एक विशेष परिवर्तन देखते हैं। विस्तार और दमन की नीति का स्थान मित्रता और नैतिक विजय विना किसी सैनिक शक्ति के प्रयोग के प्राप्त करने की नीति ले लिया। पर यह परिवर्तन मात्र इसलिए नहीं आया कि मौर्य साम्राज्य बहुत ही विशाल हो गया था। इस परिवर्तन का सम्बन्ध मुख्य रूप से अशोक की संकरोत्तरक नीतियों से भी था। अशोक ने धम्म की व्यवहारिकता को सिर्फ अपनी प्रजा तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि इसका विस्तार राज्य नीति से सम्बन्धित विषयों तक भी किया। उसने धम्म का प्रयोग समकालीन शाक्तियों के साथ सम्बन्ध बढ़ाने के लिए किया।

धम्म की नीति के कारण लंका भी एक अन्य पड़ोसी मित्र देश बन गया।

होती है।

शिलालेख में उन क्षेत्रों में धम्म विजय के विवरण से ही मौर्यों के इन राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की पुष्टि स्वतंत्र राज्य थी। अशोक का कोई भी शिलालेख इन क्षेत्रों में अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। पर तेरहवें शिलालेख के राज्यों से भी, मौर्यों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। इन क्षेत्रों में बाल, पाण्ड्य, केल, पुत्र तथा सत्यपुत्र जैसे

शैलियों का भी जन्म हुआ। खर 6 में इस विषय पर अधिक जानकारी दी जाएगी।
रखा था उसने सभ्यता और संस्कृति को विशेष रूप से प्रभावित किया। कला तथा वास्तुकला की नवीन समय तक पहचानी देशों से व्यापार निर्यात रूप से शुरू हो चुका था तथा जिस प्रकार का आदान-प्रदान हो में इन क्षेत्रों में धम्म विजय या मदान विजय का उल्लेख है। यहाँ पर यह बात भी ध्यान देने की है, कि इस संदेश लेकर उन शासकों के पास दूत भेज गये थे इन धर्मदूतों ने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए, क्योंकि शिलालेख इन शासकों का उल्लेख धम्म विजय के संदर्भ में किया गया है तथा यह भी संकेत मिलता है, कि धम्म का

- मक (सायबिन का मगस)
- प्लिंथु सन्दरी (पुपरस का एलेकजेंडर)

उपमा 20.3.3 देखें।

4) आपका उत्तर भूस्थानीय के प्रदान तथा अर्थशास्त्र से उसकी तुलना पर आधारित होना चाहिए।

घ) विस्तार से

ग) पूर्व, छह

ख) विद्य, स्थापित

3) क) जटिल

उसकी सलाह मानने को बाध्य नहीं था। उपमा 20.3.2 देखिए।

2) आपके उत्तर में इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि परिवर्तन के क्या अधिकार थे और राजा किस प्रकार उन पर रोक लगाता था। परिवर्तन की शक्ति केवल सलाह देने तक ही सीमित थी और राजा

च) ✓

घ) ×

ग) ✓

ख) ×

1) क) ✓

योग प्रश्न 1

20.9 बीघ प्रश्नों के उत्तर

आन्तर्विधिक : यह अधिकारी सम्राट की व्यक्तिगत सुरक्षा का प्रबंध करता था।

देवानस्य पिय : देवताओं का पिय। अशोक ने अपने लिये यह उपाधि धारण की।

अमात्य : मौर्य साम्राज्य के मंत्री।

पर बल दिया गया जो अहिंसा और शान्ति के विचारों के आधार पर प्राप्त की जाए।

धर्म विचार : इस विचार का प्रतिपादन अशोक द्वारा हुआ। इस विचार के अनुसार ऐसी विजय के सिद्धांत

20.8 शब्दावली

किप।

से प्रभावित था। जब विस्तार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया तो मौर्यों ने शीघ्रपूर्व रवेय से सम्बन्ध मजबूत

मौर्यों के विदेश सम्बन्धों के दो चरण थे, प्रथम सम्राज्य के विस्तार से सम्बन्धित तथा दूसरा मित्रता की नीति

पर अनेक परिवर्तन किए गए जिससे कि साम्राज्य सुदृढ़ हो।

अधिक धन व्यय किया जाता था। मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था पहले से प्रचलित व्यवस्था पर ही आधारित थी,

सम्भालती थी। कर व्यवस्था ठीक रूप से नियंत्रित थी। सेना तथा राज्य अधिकारियों के वेतन पर बहुर

उचित प्रबन्ध करता था। प्रान्त, जनपद और गाँव के स्तर पर प्रशासनिक इकाइयाँ इस जिम्मेदारी को

राज्य अतिरिक्त उत्पादन पर न केवल विशेष ध्यान देता बल्कि सफलतापूर्वक अधिदेश्य वर्सूल करने का भी

तथा विशेषकर अशोक के शासन काल में राजा का धैर्यक रवेया अपना लेना एक अनोखा परिवर्तन था।

अर्थशास्त्र में मौर्यों की आवश्यक योग्यताओं का भी उल्लेख है। राज्य द्वारा जन सुविधाओं पर ध्यान देना

भाति बड़े हुए थे।

राजा के पास थे, पर मंत्रिपरिषद उसकी सहायता करता था। प्रत्येक अधिकारी के अधिकार और कार्य भली

इस प्रकार में हमने पढ़ा कि मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था, केंद्रीय स्तर पर अत्यन्त सुसंगठित था। सभी अधिकार

20.7 सारांश

- 1) विचार और संस्थाओं को मजबूत करने के लिए दोनों चरणों को चर्चा कीजिए। उपमा 20.5.2 देखिए।
- 2) अपने उत्तर में निम्न शीर्षक सन्तुष्ट करें :
- i) सीरिया का अतिरथीकृत II
 - ii) मिस्र का एजिप्ति II
 - iii) मशीन का एन्टीगामस
 - iv) पपीरस का एलेकजेंडर
 - v) स्यारिन का मस

भाग 3

- 3) अपना उत्तर उपमा 20.4 पर आधारित करें
- i) कृषि
 - ii) रस
 - iii) शिक
 - iv) शक्ति
- 4) गांव के प्रशासन के स्वतंत्र फलक तथा इस क्षेत्र के अधिकारियों के बारे में बताइए। भाग 20.2 देखिए।

भाग 2

समस्या, सारा और उपमा : 320 से 200 ई.पू. तक

इकाई 21 अशोक की धम्म नीति

इकाई की रूपरेखा

21.0	उद्देश्य
21.1	प्रस्तावना
21.2	ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
21.2.1	सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि
21.2.2	धार्मिक परिस्थितियाँ
21.2.3	राज्य व्यवस्था
21.3	अभिधेयों का विस्तार
21.4	धम्म—कारण
21.5	धम्म के तंत्र
21.6	अशोक की धम्म नीति और मौर्य राज्य
21.7	धम्म—व्याख्याएँ
21.8	सारांश
21.9	शब्दावली
21.10	बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप सशान्त अशोक द्वारा प्रतिपादित धम्म की नीति के विषय में अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़कर आप:

- यह समझ सकेंगे कि धम्म नीति के प्रतिपादन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या थी,
- यह जान सकेंगे कि अशोक के अभिलेख में धम्म किस तरह से मुख्य रूप में सामने आता है,
- अशोक की धम्म नीति का सार क्या था जो उसके कल्याण कार्यों तथा वैदिक व्यवहार में दिखाई देता है और उसके स्वयं के वर्णन से परिलक्षित होता है,
- एक व्यक्ति के रूप में, एक बौद्ध मत के अनुयायी के रूप में तथा राज्यात्त नीति का प्रतिपादन करने वाले अशोक के अनेक रूपों में अंतर कर सकेंगे, और
- अपनी धम्म नीति के प्रतिपादन के लिए अशोक द्वारा अपनाए गए विभिन्न मापदण्डों जैसे धम्म महामात्रों की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

अशोक मौर्य 269 ईसा पूर्व के लगभग मौर्य विहसन पर आसीन हुआ। अनेक इतिहासकार उसे प्राचीन विश्व का महानतम सशान्त मानते हैं। उसकी धम्म नीति विद्वानों के बीच विद्वान वर्गों का विषय रही है। धम्म शब्द संस्कृत के शब्द धर्म का प्राकृत रूप है। धम्म की विभिन्न अर्थों जैसे धर्मपरोपणता, नैतिक जीवन, सदाचार आदि के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

किन्तु अशोक द्वारा प्रयुक्त धम्म की समझने को लिये सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसके अभिलेखों को पढ़ा जाए। यह अभिलेख मुख्य रूप से इसलिये लिखे गये थे कि सारे साम्राज्य में लोगों को धम्म के सिद्धांतों के बारे में समझाया जाये। इसीलिये अधिकतर अभिलेखों में धम्म के विषय में कुछ-कुछ अवश्य कहा गया है। उनमें यह भी कहा गया है कि अशोक यह चाहता था कि उसकी प्रजा धम्म का पालन अवश्य करे और यह भी कि राज्य के कार्यकलाप धम्म के सिद्धांतों के अनुरूप चले। धम्म के सिद्धांतों को सबके लिये सुलभ और योग्य बनाने के लिये उसने अभिलेखों और शिलालेखों को सारे राज्य में महत्वपूर्ण स्थानों पर लगाया। धम्म के संदेशवाहकों को साम्राज्य के बाहर भी भेजा। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि धम्म से किसी विशेष धार्मिक विश्वास या व्यवहार का नाम नहीं है, अतः धम्म (या इसके संस्कृत पर्याय धर्म) का अनुवाद धर्म

व्यवस्था कापी विरुद्ध और जटिल हो चुकी थी। इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें निम्न थीं:

क्षेत्रों या कुछ समुदायों के पास था। जिस समय अशोक सिंहासन पर बैठे, वे भी साल पुरानी राज्य कुछ ऐसे राजतंत्र थे जिनमें राजा सर्वशक्तिमान था तथा ऐसे गणसंघ थे जिनमें शासन का नियंत्रण वंशानुगत संकेत हुआ। इस शक्ति का वे समाज के अन्य तबकों पर अनेक तरीकों तथा कारणों से प्रयोग करते थे। व्यवस्था की शुरुआत हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज के एक छेद से तबके के पास शक्ति का आप पर चुके है कि छोटी शालाब्दी ई.पू. में महाजनपदों के उद्भव के साथ भारत के अनेक भागों में राज्य

21.2.3 राज्य व्यवस्था

आंकड़ करने लगे।

बौद्ध मत द्वारा सामाजिक संबंधों में मानवीय दृष्टिकोण का प्रचार निम्न वर्गों को अपनी ओर और भी किया। इस प्रकार इस मत ने निम्न वर्गों तथा उदीयमान सामाजिक वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट किया। सिद्धांतों पर आधारित था। बौद्ध मत ने शाहियों के प्रभुत्व को नकारा और बलि तथा कर्मकांडों का विरोध आधारपूर्ण सिद्धांत का बल कब्जे पर था तथा इसने मध्य मार्ग अपनाने पर बल दिया। यह मत नैतिक बौद्ध मत शाह्यावाद के सनातनी दृष्टिकोण के विरुद्ध विच्छेदकारी संघर्ष के रूप में आरंभ हुआ। इसका व्यापारी वर्ग द्वारा शाह्यावाद का विरोध समाज के अन्य संघर्षों के लिए प्रेरणास्रोत बन रहा था। तब उच्च श्रेणी में सम्मिलित कर लिए गए थे, शाहियाँ तथा क्षत्रियों की गुलना में कुछ समझे जाते थे। उठने लगे थे। चार वर्गों का सबसे निम्न वर्ग नए संघर्षों की ओर आकृष्ट होने लगे। वैश्य जो कि किसी रहा था। पुत्रियों की सुविधाओं, वृत्तव्यवस्था की कठोरता तथा व्यापक कर्मकांडों के प्रचलन पर अब प्रश्न उत्तर वैदिक काल के दौरान समाज पर शाहियों की जो एकदम मजबूत हुई थी, उसे अब निरंतर आघात पहुँच

21.2.2 धार्मिक परिस्थितियाँ

पूर्व में राज्य का दायित्व ग्रहण किया।

जिसके कारण सामाजिक तनाव उत्पन्न होने लगे। ऐसी ही विषय परिस्थिति में सम्राट अशोक ने 269 ईसा विमान का संकट और गहरा हो गया। निम्न वर्ग विभिन्न असनातनी समुदायों की ओर आकृष्ट होने लगे व्यापारी वर्ग की वर्णव्यवस्था में उच्च स्तर देना नहीं चाहता था। शाह्या वर्गों की इस कठोरता से सामाजिक समस्याएँ खड़ी हुई। चार वर्गों पर आधारित शाह्याय सामाजिक व्यवस्था को और अधिक कठोर बनाकर जाए जाने वाले बहिर्वर्ती क्षेत्रों की जन जातियों एवं अन्य लोगों के समाज की मुख्य धारा में विलय से भी था। शहरी संस्कृति के उदय के साथ ही समाज के संगठन में लचीलापन अनिवार्य बन गया। कृषि उपयोग में लिए समाज में सामंजस्य की आवश्यकता थी। व्यापारी वर्ग इस समय तक समाज में अपना स्थान बना चुका जाना तथा शहरी केन्द्रों का उदय अर्थव्यवस्था में ऐसे संरचनात्मक परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं जिनके वादी के सिद्ध, तथा अन्य प्रकार के सिद्धों का प्रयोग, व्यापार मार्गों को राज्य सुरक्षा प्रदान किया। कहा जाता है कि उत्तरी काली पश्चिम किमू मूडमूड इस युग की धार्मिक समृद्धि का प्रतीक है। पंच मार्कंड अर्थव्यवस्था जिसमें शहरी तथा नगरी की महत्वपूर्ण भूमिका थी और संकमना हुआ। यह सामान्य रूप से से अतिरिक्त उत्पादन की प्रक्रिया आरंभ हुई। इस प्रकार सरल ग्रामीण अर्थव्यवस्था से एक ऐसी

झैसा कि कहा जा चुका है कि पूर्व काल में समाज के आर्थिक ढांचे में काफी परिवर्तन आए। जो है के प्रयोग

21.2.1 सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

अगले तीन भागों में हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करेंगे।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना होगा जिसके कारण अशोक को यह नीति अस्ति में लानी पड़ी। धम्म नीति के विभिन्न पक्षों तथा इसके प्रतिपादन के कारणों को समझने के लिए हमें आवश्यक रूप से उस

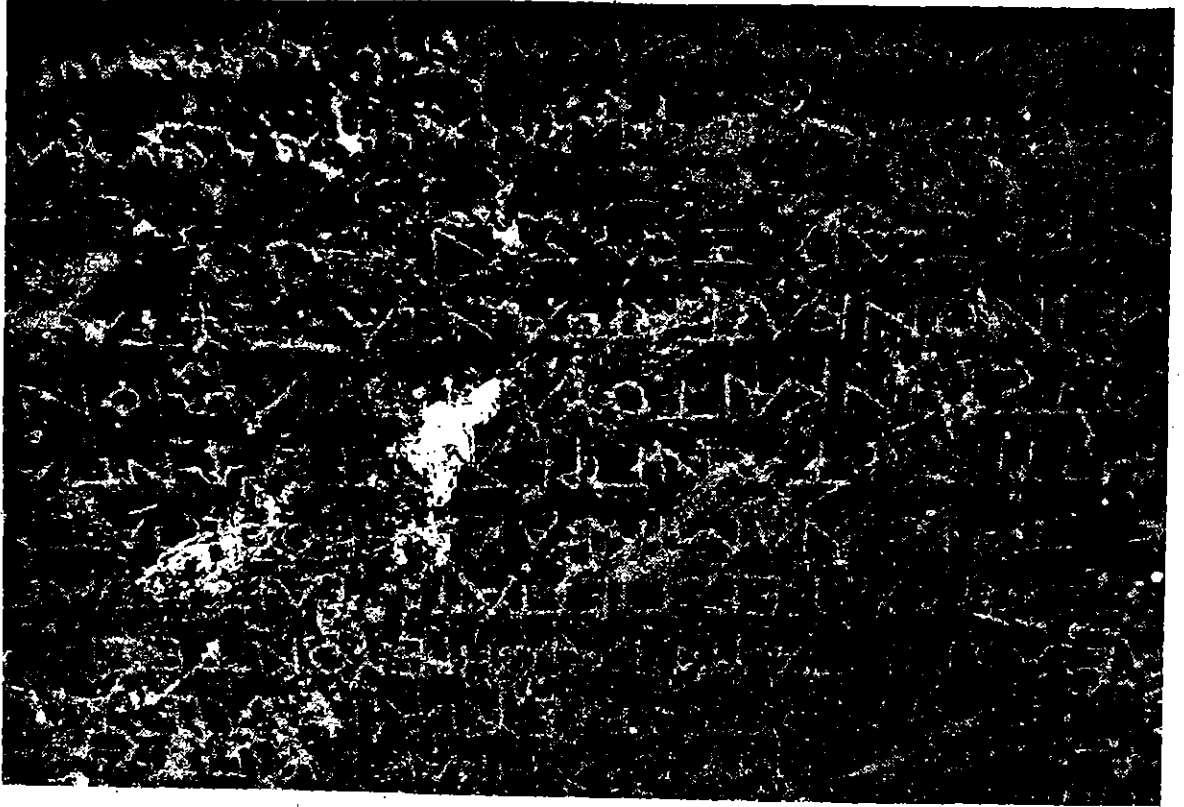
21.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

और अन्य ग्रन्थों को समझना होगा जिनमें सामाजिक व्यवहार के नियमों का वर्णन है।

उसका क्या तात्पर्य था, यह जानने के लिए उस समय की विशेषताओं को समझना होगा और बौद्ध, शास्त्रण सामाजिक नियमों का मिश्रण किया गया था। अशोक ने धम्म का क्या अर्थ और कैसे प्रवर्तन किया और इससे मोटे रूप से सामाजिक व्यवहार और क्रियाओं से था। अशोक के धम्म में उस समय के भी प्रचलित विविध नहीं मानना चाहिये। साथ ही धम्म मनमाने तौर पर बनाया हुआ शही सिद्धांत भी नहीं था। धम्म का संबंध

अभिलेखों की दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। बाड़े से अभिलेखों से यह पता चलता है कि राजा बौद्ध मत का अनुयायी था और वे अभिलेख बौद्ध संप्रदाय अथवा संघों को संबोधित करते हुए लिखे गए थे। इन अभिलेखों में बौद्ध मत से अशोक की व्यक्तिगत संबंधता की घोषणा है। इनमें वह बौद्ध मत से अपनी व्यक्तिगत श्रद्धा अभिव्यक्त करता है। इनमें से एक अभिलेख में वह बौद्ध ग्रन्थों 'जिनका नाम इन अभिलेखों में दिया गया है की वर्ण करता है और सभी बौद्धों को उनसे परिचित होने का आह्वान करता है।

8. कब्रों के लिए अशोक का अभिलेख



अशोक ने धम्म नीति के बारे में अपने विचार इन स्तम्भों / शिलालेखों पर इस आशय से खुदवाए कि विभिन्न स्थानों पर लोग उन्हें पढ़ें। अशोक इस माध्यम से अपनी जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहता था। यह अभिलेख उसके शासन काल के विभिन्न वर्षों में लिखे गए। इन अभिलेखों में अक्सर लिखा कि मुसलमानों के अध्ययन से अशोक के धम्म के प्रमुख तत्वों के विषय में पता चलता है।

अशोक ने धम्म की नीति के प्रसार के लिए शिलालेखों/अभिलेखों का माध्यम अपनाया। इस खंड की इकाई 18 में दिए गए मानचित्र में आपकी विभिन्न स्थानों पर फुले : अशोक के विभिन्न प्रकार के अभिलेख मिलेंगे। जैसे वृहद शिला लेख, लघु शिला, स्तम्भ लेख आदि लिखे हैं।

21.3 अभिलेखों का विस्तार

- एक क्षेत्र विशेष (मार्ग) का राजनीतिक प्रयत्न उस विशाल क्षेत्र पर स्थापित हो चुका था जिसमें पहले कई राज्य, गणसंघ तथा ऐसे भाग थे जहां किसी प्रकार की संगठित राज्य व्यवस्था नहीं थी।
- इस विशाल क्षेत्र में कई प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र, सांस्कृतिक क्षेत्र तथा विभिन्न प्रकार के धर्म, विचार और परंपरों थीं।
- राज्य व्यवस्था की अटलता के कारण सम्राट को ऐसी योजनात्मक नीति का निर्माण करना जरूरी था जिसके अंतर्गत एक बड़े साम्राज्य, जिसमें अखंडतया तथा धर्मों की अनेककल्पता थी, में सैन्य शक्ति के कम से कम प्रयोग की आवश्यकता थी। इस पर पर नियंत्रण केवल सेना के बल पर नहीं हो सकता था। इसके अलावा उपयुक्त विकल्प एक ऐसी नीति का प्रचार एवं प्रसार था जो कि सैद्धांतिक आधार रखती हो तथा समाज के सभी वर्गों पर प्रभाव डाल सकती हो। धम्म नीति इसी दिशा में एक प्रयास था।

1) धम्म नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की संक्षिप्त चर्चा करें। आपका उत्तर 15 पंक्तियों से अधिक न हो।

भाग प्रथम I

की आवश्यकता थी।

परस्पर सौहार्द को बनाये रखने के लिए समाज की समस्याओं के प्रति एक समझौता समझ और व्यवहार असमानता सम्भारों का प्रभाव नहीं था। इन सभी विभिन्नताओं के बीच समाज के अस्तित्व और में थी। इसके अतिरिक्त समाज के कई जन-जातीय या आदिवासी क्षेत्रों में भी बाह्यभाव था।

• समाज के कुछ भाग ऐसे भी थे जहाँ न तो बाह्यभाव का प्रभाव था न ही असमानता सम्भारों का। सौहार्द और विश्वास का वातावरण बनाना आवश्यक था।

ये इन परिस्थितियों में किसी न किसी रूप में वैमनस्य का होना अवश्यभावी था। ऐसी दशा में परस्पर और इनके समर्थकों की संख्या बढ़ रही थी। परंतु अब भी बाह्यभाव समाज पर अपना निर्यात बनाये रखे के उद्यम के कारण समाज में आ गये थे। यह सभी किसी न किसी रूप में बाह्यभाव के विरामी थे।

• अशोक उन तनावों से पूरी तरह परितप्त था जो जैन, बौद्ध तथा अजातशत्रु जैसे असमानता सम्भारों विश्वासों के बीच अपना स्थान बना ले। अशोक ने यह विकल्प धम्म नीति में ढूँढा।

यह ऐसे नैतिक मूल्य प्रस्तुत करे जो कि सभी को स्वीकार्य हो तथा सभी सामाजिक वर्गों एवं धार्मिक बल प्रयोग द्वारा स्थिर रख सकना था, जिस पर अत्याधिक व्यय की आवश्यकता थी अथवा दूसरी ओर व्ययों की आत्मसात कर चुकी थी। अशोक के समक्ष दो ही विकल्प थे। एक और यह दावे की

• 269 ईसा पूर्व में जब अशोक राजसिंहासन पर आसीन हुआ तब भीव समाज व्यवस्था जटिल स्वरूप के चुकी थी। सामाजिक व्यवस्था अपने में विभिन्न संस्कृतियों, विश्वासों और सामाजिक व राजनीतिक

मौर्य राजा उत्तरवादी दृष्टिकोण रखते थे। चंद्रगुप्त अपने जीवन के उत्तरकाल में जैन मत का अनुयायी हो प्रभाव उनके जीवन के चारों ओर फैला देता है।

अन्य आवश्यक है कि हम उस सामाजिक माहौल को समझें जिसके अंतर्गत अशोक पला, बढ़ा तथा जिसका प्रतिपादन का कारण बना।

विशेष रूप से समाज के समक्ष खड़ी समस्याओं के समाधान के विषय में उसके विचार धम्म नीति के

धम्म नीति की पृष्ठभूमि में निम्न कारणों का अध्ययन करने के अनर्गल हमने इसी इकाई में इसकी

महत्त्वपूर्ण प्रयोग था, जिनमें इस युग का जटिल समाज गुंथ रहा था। यह नीति अशोक के विभाग की उपज

धम्म नीति की पृष्ठभूमि की चर्चा की है। हमने पढ़ा कि धम्म नीति इन समस्याओं के समाधान का एक

21.4 धम्म-कारण

इस इकाई के आगे के भागों में हम इसका अध्ययन करेंगे।

के विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक उत्तरदायित्व तथा महत्त्वपूर्ण के महत्त्व का आदेश भी दे रहा था।

और जहाँ अशोक बौद्ध मत में अपनी पूर्ण आस्था रखता था वहीं दूसरी ओर वह धम्म नीति के द्वारा समाज

संघ में रखकर अध्ययन करने की प्रवृत्ति रहा है। अभिलेखों के माध्यम अध्ययन में पता चलता है कि एक

बीच अशोक की धम्म नीति तथा बौद्ध मत के अनुयायी के रूप में अशोक की विद्या और धम्म नीति के बीच अशोक की बौद्ध धर्म में व्यक्तिगत आस्था में अंतर करना चाहिए। कुछ समय पूर्व तक इतिहासकारों के

की व्याख्या की गई है। हम अशोक की धम्म नीति जिनमें सामाजिक उत्तरदायित्व की बात कही गई है तथा

इस शिखरे में जन्म, बीमारी, विवाह आदि के उतरांत तथा यात्रा के पूर्व होने वाले समारोहों की निंदा की गयी है। पत्नियाँ तथा माताओं द्वारा समारोह मनाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके स्थान पर अशोक धम्म पर बल देना है और समारोहों की व्यर्थता की बात कहना है।

खंड शिखरे 9

करने का अवसर प्रदान किया।
इसमें कहा गया है कि सम्राट द्वारा धम्म यात्राएं आयोजित होंगी। सम्राट की आखेटन गतिविधियाँ अब समाप्त हो गईं। धम्म यात्राओं ने सम्राट की अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में जनता के विभिन्न वर्गों के सम्पर्क

खंड शिखरे 8

इसमें सभी संप्रदायों के बीच सहिष्णुता का आह्वान है। इस शिखरे से संकेत मिलता है कि संप्रदायों के बीच काफी तनाव विद्यमान था और संभवतः एक-दूसरे के प्रति विरोध खूब प्रकट होता था। यह आह्वान एकता बनाने रखने की विरूप नीति का ही एक अंश है।

खंड शिखरे 7

इसमें धम्म महामार्गों के लिए आदेश लिखे गए हैं। उनसे कहा गया है कि वे राजा के समक्ष किसी भी समय सूचनाएं ला सकते हैं, चाहे, राजा किसी महत्वपूर्ण कार्य में व्यस्त क्यों न हो। इस शिखरे के दूसरे भाग में समाप्त एवं सशिव प्रशासन तथा सुचारु व्यापार का उल्लेख मिलता है।

खंड शिखरे 6

इसमें धम्म महामार्गों की नियुक्ति के बारे में चर्चा की गई है। यह विशिष्ट अधिकांसी राजा द्वारा सभी संप्रदायों, धर्मों के हितों की रक्षा तथा धम्म नीति को समाज के कोने-कोने में पहुँचाने के लिए नियुक्त किए गए थे। धम्म नीति के क्रियान्वयन का दाखिल इन्हीं पर था।

खंड शिखरे 5

इसमें धम्म नीति से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए गए हैं। इसमें कहा गया है कि धम्म की नीति के द्वारा अर्थिकता तथा शाहियों एवं अमलों के प्रति निरदर की प्रवृत्ति, हिंसा, मित्रों और रिश्तेदारों के साथ अशोभनीय व्यवहार तथा इसी प्रकार के अन्य-गलत कार्यों पर नियंत्रण लगा है। पशु हत्या भी काफी बंद तक रोकी जा सकी है।

खंड शिखरे 4

इसके द्वारा शाहियों तथा अर्थियों के प्रति उदारता को एक विशेष गुण बताया गया है। साथ ही माता-पिता का सम्मान करना, सोच-समझकर धन को खर्च करना और बचाना भी अच्छे गुण कहे गए हैं।

खंड शिखरे 3

इसमें समाज कल्याण से संबंधित कुछ कार्य बताए गए हैं जो कि धम्म के कार्यों में निहित हैं। इसमें मनुष्यों एवं पशुओं के लिए चिकित्सा, मार्ग निर्माण, कुआँ खोदने तथा वृक्षारोपण का उल्लेख मिलता है।

खंड शिखरे 2

पहले शिखरे में पशु हत्या तथा उत्सव समारोहों (समाजिक) पर प्रतिबंध लगाया गया था।

खंड शिखरे 1

अधिकारी भी धम्म की नीति के विभिन्न पक्षों को लागू करने तथा उनका प्रचार करने के लिए नियुक्त किए गए। अशोक ने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अपना संदेश पहुँचाने के लिए इन धम्म महामार्गों पर भारी दाखिल डाला। किंतु धीरे-धीरे यह धम्म महामार्ग समूह धम्म के पुरोहितों के रूप में परिवर्तित हो गयी। इनके आचार पर देखते कि यह नीति किस प्रकार कालकालिक रूप में विकसित हुई।
धम्म के इन सभी पक्षों को और अधिक स्पष्ट रूप में देखने के लिए हम कुछ निर्देशों की विषय वस्तु के आधारे पर देखेंगे कि यह नीति किस प्रकार कालकालिक रूप में विकसित हुई।
आधुनिक आधिकार प्राप्त थे। फलतः शीघ्र ही यह समूह राजनीति में हस्तक्षेप करने लगा।

अशोक की धम्म नीति केवल गुरु वाक्यों पर ही समाप्त नहीं होती थी। उसने इसे राज्यात्म नीति के रूप में अपनाते हुए अशोक का प्रयास है जो सभी जीवों का मुझ पर है। यह सर्वथा नया करता है वह केवल उस ऋण को उतारने का प्रयास है जो सभी जीवों का मुझ पर है। यह सर्वथा नया तथा शासन व्यवस्था का उत्साहवर्धक आदर्श था। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा, पर किसी का ऋण नहीं होता। उसका एकमात्र कार्य राज्य पर संरक्षण आसन करना है।

21.6 अशोक की धम्म नीति और मौर्य राज्य

अपनायी।

समय कोई ऐसा शासक नहीं था जो गुरु का विरोध कर सका हो। इस गुरु के बाद अशोक ने धम्म नीति संकलन मिलना है कि वह गुरु का विरोधी क्यों बन गया? प्राचीन युग की यह अनोखी घटना है क्योंकि उस यह अशोक के गुरु के विरुद्ध विचार है। इनमें गुरु की भासदी का विस्तृत वर्णन किया गया है और इससे उपरान्त दोनों ही स्थान के लिए मूल्यवान है।

विजय समझें तथा धम्म में प्रयत्नता ही उनके लिए परम प्रशंसा हो क्योंकि धम्म इस संसार में तथा इसके ही उनसे श्रेष्ठ तथा हल्के-फुल्के ढंढ के साथ संरुद्ध हो जाए। वे धम्म द्वारा विजयी होने को ही वास्तविक खोजा गया है कि मरे कोई पुत्र अथवा प्रवीन नई विजय प्राप्त करने की न सोचें तथा जो विजय उन्हें प्राप्त करना है तो यह देवताओं के प्रिय के मस्तिष्क पर बोझ बनना। धम्म का यह अभिलेख इस पर मूल अथवा निवर्तित लोगों की संख्या का सीधा अथवा हजातों भाग भी उसी प्रकार के कष्टों का सामना जहां लोग किसी न किसी संप्रदाय के अनुयायी न हों। आज यदि कलिंग विजय की प्रतिक्रिया में हलाहल, ऐसा स्थान नहीं है जहां ब्राह्मणों तथा श्रमणों की धर्मव्यवस्था विद्यमान न हो तथा ऐसा कोई स्थान नहीं है कष्ट में यह भगीदारों देवताओं के प्रिय के मस्तिष्क पर बोझ बनती है। पुत्रानियों के देश के अतिरिक्त कोई नहीं हुई है, अपने मित्रों, परिचितों, साधियों तथा संबंधियों के दुःखों के भागीदार बनती है। सभी मानवों के वे भी जो सीमाव्यवस्था बच गए तथा वे जिनके अंदर प्रेम की भावना (गुरु की वरदानों के प्रभाव से) कम नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं तथा अहिंसा, हत्या तथा अपने प्रियों से अत्याचार के कष्ट झेलते हैं। स्वयं से श्रद्धा लोगों, माता-पिता तथा गुरु के प्रति आज्ञाकारी होते हैं, मित्रों, परिचितों, संबंधियों दारों तथा देखकर होता है वहां वे ब्राह्मण हों, श्रमण हों अथवा किसी अन्य संप्रदाय के हों अथवा गृहस्थानी हो जो उसके मस्तिष्क पर बोझ बने रहते हैं। देवताओं के प्रिय के लिए और भी अधिक कष्ट वहां के निवासियों को है तो उसमें होने वाली हत्याएं, मृत्यु तथा जन निर्वासन देवताओं के प्रिय को अत्यधिक पीड़ा पहुंचाते हैं और वे कलिंग विजय के उपरान्त बहुत पछतावा किया क्योंकि किसी स्वतंत्र-देश पर जब विजय प्राप्त की जाती (राजा विजयी) वे धम्म का पालन किया, उसी की कामना की और धम्म की शिक्षा दी। देवताओं के प्रिय हलाहल हुए तथा इससे कहीं अधिक संख्या में लोग तबाह हुए। कलिंग विजय के उपरान्त देवताओं के प्रिय सम्राट विजयी ने कलिंग पर विजय प्राप्त की। एक लाख पचास हजार लोग निवर्तित हुए, एक लाख नीति अपनाने के महत्त्व से है। अशोक के शब्दों में "आठ वर्षों तक तपस्या के उपरान्त देवताओं के प्रिय लौकिक चरमविन्दु है। विजय से संभवतः आशय देश की सीमाओं पर नियंत्रण की अपेक्षा पूरे देश द्वारा धम्म पर धम्म द्वारा विजय प्राप्त करने का आह्वान है। प्रथम शिलालेख से आरंभ होने वाली विचार प्रक्रिया का यह यह शिलालेख अशोक की धम्म नीति को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें गुरु के स्थान

गुरु शिलालेख 13

विभिन्न संप्रदायों के बीच टकरावों से विनित था और सौहार्द बनाये रखने के लिए निर्देन करता है। इस शिलालेख में पुनः संप्रदायों के बीच सहिष्णुता का निर्देन किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि राजा

गुरु शिलालेख 12

उपरान्त पर बल दिया गया है। इसमें भी धम्म नीति की व्याख्या की गयी है। इसमें बड़ों का आदर, पशु हत्याएं न करने, तथा मित्रों के प्रति

गुरु शिलालेख 11

इसमें ख्याति एवं गौरव की निंदा तथा धम्म नीति की श्रेष्ठता पर विचार प्रकट किए गए हैं।

गुरु शिलालेख 10

प्रमाण किए गए विश्वासों की एक पूरी व्यवस्था है। इन दो बातों से पता चलता है कि धम्म की नीति अधर्म का प्रचार नहीं थी अपितु विशिष्ट धार्मिक स्रोतों से

एवं अमर्णों के लिए कार्य करे।

सहिष्णुता एवं आदर का भाव फैलाना चाहता था तथा धम्म महात्माओं का दायित्व था कि वे ब्राह्मणों

2) भिला-लेखों के ध्यानपूर्वक अध्ययन से पता चलता है कि अशोक सभी धार्मिक संप्रदायों के बीच

क्योंकि वह धम्म के प्रचार के लिए संघों के संगठन का उपयोग कर सकता था।

1) अशोक द्वारा धम्म महात्माओं का एक विभाग बनाना इस तथ्य की पूर्णतः प्रमाणित करता है कि अशोक किसी धर्म विशेष का पक्षपाती नहीं था। यदि ऐसा होता तो इस विभाग की आवश्यकता ही न पड़ती

अशोक ने राजा के रूप में, बौद्ध धर्म के प्रति अन्य धर्मों की तुलना में पक्षपात नहीं किया।

अशोक के विरुद्ध पक्षपात का आरोप लगाना ठीक नहीं है। इस बात के दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रमाण हैं कि बना दिया। बौद्ध धर्मों में भी अशोक की भारत तथा विदेशों में बौद्ध मत के प्रचार का श्रेय दिया गया है।

में मृत्यु एवं विनाश के लिए पक्षपात के कारण अशोक की भारत तथा विदेशों में बौद्ध मत का अनुयायी विचारों का आधार बौद्ध धर्म ही है। ऐसा विश्वास है कि कालिग युद्ध एक ऐसा नाटकीय मोड़ था जिसने युद्ध

रहा था तथा बाद में कुछ नये धार्मिक तत्वों के साथ इन्हें बौद्ध मत का रूप दे दिया गया। इस प्रकार के ऐसा भी विचार व्यक्त किया गया है कि अशोक मौलिक बौद्ध विचारों की धम्म के रूप में परिभाषित कर

बौद्ध मत पक्षपाती था। वे उसकी धम्म नीति और बौद्ध मत की एकलकी मानते हैं।

अशोक की धम्म की नीति विद्वानों के बीच वाद-विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक

21.7 धम्म—शाब्दात्

जैसे आधुनिक लेखक ने राजा की पाशाक में प्रिय कहा है।

सीधा संपर्क बनाने के लिए देश भ्रमण पर निकले। अपनी इसी नीति के कारण अशोक की कर्म (Kern)

ने धम्म याज्ञाएँ आरंभ कीं। वह तब तक उसके साथ के उच्च अधिकारी धम्म के प्रचार तथा जनता के साथ

का आदेश था। मृत्यु दंड प्राप्त बन्धियों की तीन दिन का जीवनदान दिए जाने का आदेश था। स्वयं अशोक

बहुत सारे बंदी जी कि कारणवास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् बन्धियों में रखे गए थे, उन्हें मुक्त करने

जगों के साथ उचित व्यवहार ही रहा है। उन्हें बन्धियों के कल्याण के प्रति विशिष्ट दायित्व सौंपा गया था।

निष्क्रियता की। इन धम्म महात्माओं का एक कार्य यह भी था कि वे इसका ध्यान रखें कि सभी संप्रदाय के

धेवा होता था, पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इन नीतियों के कार्यान्वयन के लिए अपने धम्म महात्माओं की

ने व्यर्थ बलि चढ़ाने की परंपरा तथा ऐसे समारोह जिनके कारण व्यय, असुशासनहीनता तथा अधविश्राम

राजस्व प्राप्त करने की संभावना के बिना एक धैर्य भी खर्च नहीं करते थे, मूल रूप से भिन्न मार्ग थे। अशोक

बनाए गए। इस प्रकार के कल्याणकारी कार्य अधिशास्त्र में वर्णित राजाओं की तुलना में, जो कि अधिक

साम्राज्य के बाहर दोनों ही स्थानों पर बनाए गए। छायादार कुंज, कुएँ, फल के बगीचे, विश्रामगृह आदि

में जन-कल्याण के कई कार्य सम्पन्नित थे। मनुष्यों एवं पशुओं के लिए चिकित्सालय साम्राज्य के अंदर तथा

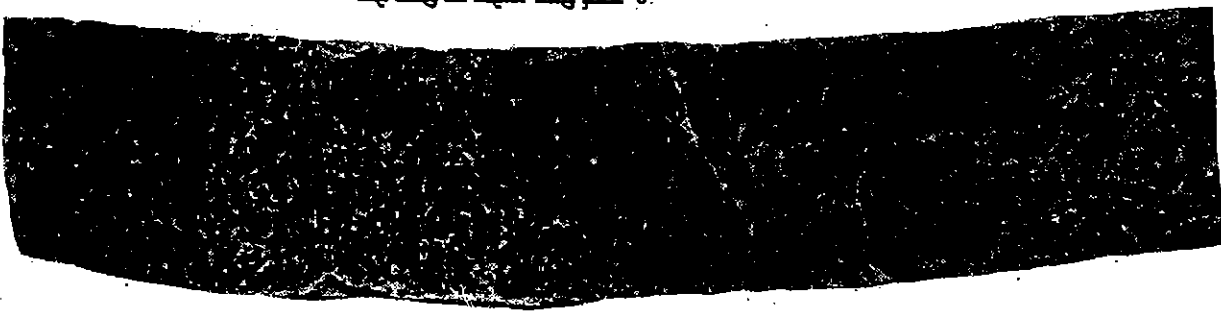
के लिए दल भेजे। इस प्रकार के दल मिश्र, यूनान, शीलका आदि दूरस्थ स्थानों पर भेजे गए। धम्म के प्रचार

किया। चूँकि वह, धर्म एवं विश्राम द्वारा विश्व विजय प्राप्त करना चाहता था, इसलिए अपने धम्म के प्रचार

स्वयं अशोक ने राजपरिवार में मांस खाने की परंपरा समाप्त करके शाकाहार का उदाहरण प्रस्तुत

अशोक ने युद्ध तथा हिंसामय विजयों की निंदा की तथा पशुओं की अधिक हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया।

9. गुप्त स्थान अशोक का शिला लेख



.....
.....
.....

3) धम्म की नीति समझने में तेरहवें शिखा-लेख का क्या महत्व है? दस पंक्तियों में लिखिये।

- i) ब्रह्मगिरि
- ii) धौली
- iii) निरनार
- iv) कल्सी
- v) गुजरा
- vi) इलाहाबाद

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

1) अशोक की धम्म नीति के सिद्धांत लगभग दस पंक्तियों में लिखिए :

बीथ प्रश्न 2

को अंग बन चुके हैं। और नीतिक सिद्धांतों की स्थापना करना चाहता था। मीट वीर पर यह मानवतावादी सिद्धांत भारतीय परंपरा चाहिए कि अशोक किसी नये धर्म की स्थापना नहीं कर रहा था। वह केवल समाज के अन्दर मानवतावादी उसकी मूल्य के बाद आगे न चले सकी। वैसे भी यह नीति सफल नहीं रही थी फिर भी हमें यह नहीं भूलना सांस्कृतिक परंपरा के स्थान पर व्यापक नीतिक सिद्धांतों की स्थापना करनी चाही। अशोक की धम्म की नीति सेकड़ों समूह थे। ऐसी परिस्थिति में सहिष्णुता की बात करना युग की आवश्यकता थी। अशोक ने संकीर्ण खानाबदोश, चरवाहे, आखेट जीवी तथा यूनानी कश्मीर, भोज एवं अनेक प्रकार की परंपराओं के अनुयायी का कार्य था। अशोक का साम्राज्य विविध समूहों का एक समीकृत रूप था। इस साम्राज्य में किमान, विविधता एवं धार्मिक विभिन्नता तथा वर्गीय आधार पर विभाजित समाज में सहिष्णुता का आह्वान बुद्धिमत्ता विरोध उसी समय किया जबकि उसका साम्राज्य अपनी प्राकृतिक सीमाओं की सीमा थी। जातीय जातियों से मिलना बनाए हुए था। श्रीलंका उसका प्रशंसक तथा सहयोगी था। अतः अशोक ने युद्ध का क्रिया तब तक पूरा भारतीय उप-महादीप उसके नियंत्रण में था। दक्षिण में वह चीन तथा पांड्य आदि जन करना बंद नहीं करते हैं। ती शक्ति का प्रयोग करने पर बाध्य होना पड़ेगा। अशोक ने जब युद्ध करना बंद समूहों को संताननी भी देता है कि यद्यपि वह बल प्रयोग से घृणा करता है परंतु यदि वे समस्याएं उत्पन्न नहीं था कि उसने राज्य की सुरक्षा की आवश्यकताओं के प्रति आखं मूंद ले ली थी। फलतः वह आदिवासी क्षमों के प्रति आदर का भाव अनिवार्य रूप से उल्लेखित है। अहिंसा पर, उसके बल देने का तात्पर्य यह करती है। यह ब्राह्मण विरोध नीति नहीं थी जिसका प्रमाण यह है कि सभी धम्म अभिलेखों में ब्राह्मण तथा दस्तावेज है बल्कि उस समय की सामाजिक-राजनैतिक आवश्यकताओं का उपयुक्त समाधान भी प्रस्तुत रोमिल थापर ने स्पष्ट किया है कि अशोक की धम्म की नीति न केवल मूलभूत मानवीयता की अद्वैत अशोक की मूल्य के बाद मीथ साम्राज्य का पतन हो गया।

कि युद्धों पर रोक तथा अहिंसा पर बल देने के कारण साम्राज्य की सैन्य शक्ति दुर्बल हो गयी। परिणामतः विपरीत प्रतिक्रिया हुई। परिणामतः मीथ साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हुआ। अन्य इतिहासकार मानते हैं विचार है कि अशोक द्वारा बलि यज्ञों पर प्रतिबंध लगाने तथा बौद्ध मत का पक्षपात करने से ब्राह्मणों में ईतहासकारों के बीच अशोक धम्म के प्रचार के परिणामों पर भी चर्चा होती रही है। कुछ इतिहासकारों का

- 3) भाग 21.4 देखें। आपके उत्तर में उन विभिन्न सामाजिक शक्तियों का वर्णन होना चाहिए जिन्हें एक साम्राज्य मिलकर रखता है।
- 2) i) $\sqrt{iii} \times iii$ \sqrt{v}
 अपनाना पड़ता।
- 1) भाग 21.2 और उपभाग 21.2.1 से 21.2.3 देखें। आपके उत्तर में नयी सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन होना चाहिए जिनके कारण राज्यों को एक नया नैतिक सिद्धांत अपनाना पड़ा।

बोध प्रश्न 1

21.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

भा।

अनुसंधान : वृहद् खिलौखे 3 में अनुसंधान (निरीक्षण यात्राओं) का वर्णन है जिनमें कुछ श्रेणियों के राज्य कर्मचारी पांच-पांच वर्ष पर निकलते थे और जिनमें धम्म का प्रवर्तन और सरकारी काम-काज किया जाता था।

उपरावर्ती : जो विभिन्न विचारों और दर्शनों को मुक्त रूप से अपनता है।

धम्म यात्राएं : अशोक के पूर्वज शिकार और आनंद मनाने के लिए विहार यात्राएं करते थे। बोध गया से लौटने के बाद अशोक ने विहार यात्राएं बंद करके धम्म यात्रा आरम्भ की क्योंकि इन धम्म यात्राओं में उसे धम्म का प्रवर्तन करने और प्रजा के विभिन्न वर्गों से सीधा संबंध स्थापित करने का अवसर मिलता था।

भाषणीय वर्ग : उत्पादन प्रक्रिया से जुड़े लोगों से भिन्न समाज का वह वर्ग जो व्यापार तथा विनिमय की गतिविधियों से जुड़ा था।

21.9 शब्दावली

बोधने के उद्देश्य से किया गया था।

विभिन्न धार्मिक परम्पराओं से लिए गए सिद्धांतों का मिश्रण था। इसका किंवदन्तन साम्राज्य को एकपक्ष में पालन अपनी प्रशासनिक नीति में भी किया। धम्म एवं बौद्ध मत को एकलक्षी नहीं मानना चाहिए। धम्म नीति के अंतर्गत अहिंसा, सहिष्णुता, तथा सामाजिक दायित्व का उपदेश दिया। उसने इन सिद्धांतों का धम्म की नीति के विषय में हमारी जानकारी के स्रोत अशोक के अभिलेख हैं। अशोक ने अपनी धम्म की

21.8 सारांश

- i) पांचवें खिलौखे ने धम्म महाभाष्यों की संस्था के प्रारंभ होने की सूचना दी।
- ii) धम्म नीति का उद्देश्य नए धर्म की स्थापना करना था।
- iii) धम्म ने पूर्ण अहिंसा का आदेश दिया।
- 4) निम्न वक्तव्यों में कौन से सही (✓) हैं और कौन से गलत (×) ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न 2

- 1) भाग 21.5 देखें।
- 2) भाग 21.5 देखें। अपने उत्तर में यह बताइें कि इस शिखरेख से कैसे अशोक की विचारधारा की परीक्षा के बारे में जाना जा सकता है।
- 3) i) व ii) × iii) ×

सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि अशोक की मृत्यु 232 ई.पू. में हुई। फिर भी, अशोक की मृत्यु की आधी सदी के बाद तक मौर्य शासकों का शासन चलता रहा। अशोक के उत्तराधिकारियों के विषय में प्राचीन, अरबिक और जैन ग्रंथों में अलग-अलग वर्णन मिलता है। इन सभी वर्णनों पर सेहरे इसलिए होता है क्योंकि इन सभी स्रोतों में विभाजित साम्राज्य की परिस्थितियों का वर्णन किया हुआ है। ऐसा कहा जाता है

22.2 अशोक के उत्तराधिकारी

प्रक्रिया में स्थानीय राजनीति के विकास की भूमिका का भी उल्लेख किया है। आर्थिक समस्याओं और मौर्य प्रशासन के ढाँचे की समीक्षा की है। अलग में, मौर्य साम्राज्य के विघटन की उत्तराधिकारियों के उत्तरदायित्व की समीक्षा की है। इसके बाद, हमने अशोक की नीतियों, मौर्य राज्य की आर्थिक कारण उत्तरदायी थी। इस इकाई में सर्वप्रथम हमने मौर्य साम्राज्य के विघटन में अशोक के इसके ढाँचे के लिए पूर्णतः उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। मौर्य साम्राज्य के विघटन के लिए एक से मौर्य साम्राज्य का विघटन क्या हुआ, इस प्रश्न का उत्तर बड़ा ही उलझन भरा है और किसी एक कारक को की मृत्यु के साथ मौर्यों का साम्राज्यवादी प्रभुत्व कमजोर पड़ने लगा और 180 ई.पू. में यह समाप्त हो गया। भूमिगत पर नवीन प्रकार की शासन प्रणाली को लागू करने में सक्षम हुए थे। लेकिन 232 ई.पू. में अशोक अशोक बहुत से जनपदों या राज्यों पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए थे तथा वे काफी बड़े मौर्य शासन भारत में साम्राज्यवादी सरकार की दिशा में प्रथम प्रयोग था। चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार और

22.1 प्रस्तावना

- मौर्य शासन के पतन के साथ-साथ उत्तरी एवं दक्षिणी भारत में स्थानीय राजनीति का उदय।
 - आर्थिक समस्याएँ जिनका सामना मौर्य साम्राज्य ने किया, और
 - किस प्रकार अशोक की नीतियाँ साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराई जा सकती हैं,
 - किस प्रकार अन्य राजनीतिक कारण साम्राज्य को कमजोर करने के लिए उत्तरदायी थे,
 - साम्राज्य के विघटन के लिए अशोक के उत्तराधिकारियों का उत्तरदायित्व कहाँ तक था,
- इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को जान सकेंगे:

22.0 उद्देश्य

21.0	उद्देश्य
22.1	प्रस्तावना
22.2	अशोक के उत्तराधिकारी
22.3	विघटन के अन्य राजनीतिक कारण
22.4	अशोक और उसकी नीतियाँ
22.5	आर्थिक समस्याएँ
22.6	स्थानीय राजनीति का विकास
22.6.1	बड़े राज्य
22.6.2	स्थानीय राज्य
22.7	सारांश
22.8	शब्दावली
22.9	बोध प्रश्नों के उत्तर

इकाई की कक्षा

इकाई 22 साम्राज्य का विघटन

समर्थन मिला और आसानी से सत्ता के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए। इस प्रकार बाद के मौर्य शासकों के अधीन प्रांतीय सरकारों ने केन्द्र के प्रभुत्व पर प्रश्न विह्वल जमाना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि कोई भी इस अवधारणा को स्वीकार नहीं कर सकता कि मौर्य राज्य के नियंत्रण को समान करने के लिए कोई जन विद्रोह हुआ, परन्तु यह बात मजबूती के साथ कही जा सकती है कि मौर्य नौकरशाही या सामाजिक आधार काफ़ी दबाव एवं तनाव में था जिसकी परिणति एक असह्य प्रशासन के रूप में हुई, जो सामान्यतः सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में असफल रहा। इसी के साथ-साथ प्रारंभिक तीन मौर्य सम्राटों ने प्रखर अधिकारियों को विरुद्ध सूचना प्राप्त करने के लिए एक जटिल गुप्तचर व्यवस्था का संचालन सफलतापूर्वक किया परन्तु बाद के मौर्य राजाओं के शासन काल में यह व्यवस्था धराशायी हो गई। इस प्रकार, राजाओं के पास ऐसा कोई विकल्प नहीं था जिससे कि साम्राज्य की आम जनता के विचारों का अनुमान लगाया जा सके या प्रखर अधिकारियों पर नियंत्रण किया जा सके क्योंकि केंद्रीय सत्ता में कमजोर शासकों के आने पर इस प्रकार की गतिविधियाँ स्वामाजिक थीं। मौर्य राजाओं ने सचेत रूप से सेना के नियंत्रण को कमजोर किया और इसकी कुछ विद्वानों ने मौर्य साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख राजनीतिक कारण बताया है। यह माना जाता है कि अशोक ने इस विषय में सचेत रूप से निर्णय लिया और हम इसके संदर्भ में आगे वर्णन करेंगे। इस स्थिति में हमारे लिए मुख्य रूप से इस बयान पर बल देना आवश्यक है कि माघ साम्राज्य के पतन का संतोषप्रद उत्तर इन बयानों के आधार पर नहीं दिया जा सकता कि उत्तराधिकारी कमजोर थे या सेना निष्क्रिय हो गई थी या जन-विद्रोह हुए। वास्तव में इनमें से प्रत्येक एक विशेष स्वरूप वाली मौर्य साम्राज्य की नौकरशाही प्रणाली से जुड़ा था और जब इसमें टूटन प्रारम्भ हुई तो सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था संकट में पड़ गई।

प्रश्न 1

अपने उत्तर लिखने के लिए नीचे दिए गए त्रिक स्थान का प्रयोग कीजिए :

1) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए :

- क) शासकों में जल्दी-जल्दी परिवर्तन ने साम्राज्य के केन्द्र को कमजोर किया। ()
 - ख) मौर्य राज्य विकेंद्रीकृत था इसलिए उस पर नियंत्रण करना सरल था। ()
 - ग) मौर्य अधिकारियों का घटन राजाओं के प्रति उनकी व्यक्तिगत वफादारी के आधार पर किया जाता था। ()
 - घ) जन-विद्रोहों के कारण मौर्य राज्य का केन्द्र खस्त हो गया। ()
- 2) अशोक के उत्तराधिकारियों ने किन तत्कालीन प्रशासनिक समस्याओं का सामना किया? अपना उत्तर तीन या चार पंक्तियों में लिखिए।

अवस्था की समस्या का मूल क्या था, जिसके कारण बाद के दिव हो गए? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

अशोक का उपरोक्त विधान सत्य से बहुत दूर है। अशोक के शासन काल में ब्राह्मणवाद विरोधी मन को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए एक कारण मान लिया गया है। अशोक के अति शक्तिवाद को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उसमें शासन करने की शक्ति एवं दृढ़ता का अभाव था। परन्तु हमारी इन तर्कों से असहमति है। थोड़ा सही है कि अशोक अहिंसा को धम्म के लिए अनिवार्य समझता था लेकिन फिर भी उसने इस धर्म में उस दृष्टिकोण को नहीं अपनाया। खोले के लिए पशुओं का वध करना और बलि देने को वह पसन्द नहीं करता था, परन्तु फिर भी शहीद शक्ति के रूप में इसको पूर्णतः समर्थ नहीं किया गया और खोले के लिए पशुओं का वध जारी रहा, यद्यपि इसमें कमी निश्चित रूप से आई। शासन एवं न्यायिक स्तर पर

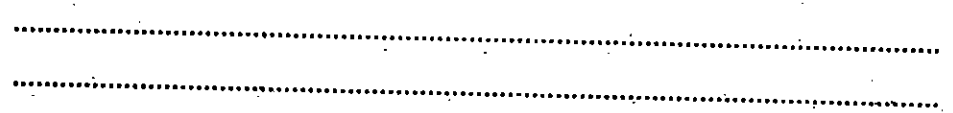
प्राची में विद्रोह होने लगे थे।
 आवश्यक था। विद्यार्थन से बौद्ध कथाओं को उद्धृत करते हुए यह तर्क इस बात को सामने रखता है कि अधिकारियों पर नियंत्रण को बनाए न रख सका, जो दमनकारी हो गए थे और नियंत्रण करना जाता है कि राजा की अहिंसामयक नीति का परिणाम यह भी हुआ कि वह विशेषकर उन राज्यों के उत्तराधिकारियों के अधीन मौर्य सेना थीक हमलों का सामना करने में असमर्थ रही। यह तर्क प्रस्तुत किया में हुआ। इस तर्क को आगे जारी रखते हुए यह भी कहा जाता है कि इसी कारणवश अशोक के अहिंसावादी नीति का दार्शनिक प्रभाव सैन्य दृष्टिकोण से देखा गया जिसका प्रभाव सेना को कमजोर करने आहिंसा की नीति पर जोर देते हुए इसके चारों ओर तर्कों को गढ़ा गया है। अशोक की इस विशेष साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी क्योंकि इन्होंने साम्राज्य की शक्ति को कम कर दिया। अशोक की

!! दूसरी श्रेणी के विद्वानों का मत है कि अशोक ने जिन शान्ति की नीतियों का प्रारम्भ किया वे मौर्य विरुद्ध उचित समय पर राजमहल में रचा गया सत्ता परिवर्तन का विद्रोह था।
 भड़काया, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वास्तव में पृथ्वीमित्र शूंग की कार्यवाही कमजोर राजा के की नीति के कारण ब्राह्मणों के हितों को धारि पहुँची तथा पृथ्वीमित्र शूंग ने ब्राह्मणों के हितों को विद्रोह गया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ये अधिकारी विशेषकर ब्राह्मणों के शत्रु हो गए। यह तर्क कि अशोक जैसे ही उन्होंने कड़ा नियंत्रण करना प्रारम्भ किया, अशोक का जन-मानस के साथ सीधा सम्पर्क अवरुद्ध हो आधिकारियों से वशीभूत किया गया और इसलिए जनता में कुछ मिलकर इनको भय की दृष्टि से देखा गया। स्थानों के लिए इन अधिकारियों की न्यायिक की गई, जिसके कारण राजा के द्वारा उनकी विशेष प्रकार के गए हों। बौद्ध ग्रंथों में भी गई कथाओं के आधार पर भी इसका अनुमान किया जा सकता है। धम्म की समान करें। परन्तु यह संभव है कि बाद के वर्षों में ये अधिकारी आम जनता के बीच अत्यधिक प्रिय हो अनुसर अशोक ने धम्म महामार्गों को ऐसे निर्देश दिए थे जिससे कि वे ब्राह्मणों एवं श्रमणों, दोनों का है, उनके विरुद्ध सवाल उठाए जा सकते हैं। अशोक के शिलालेखों से इस प्रकार के साक्ष्य मिलते हैं, जिनके स्पष्टतः, उपरोक्त लिए हुए तर्कों के समर्थन में साक्ष्य नहीं है। इनके समर्थन में सतही स्तर पर जो वर्णन मिले

से रोका।
 आधिकारियों ने ब्राह्मणों को परंपरागत ढंग देने के कार्यों और स्थितियों में दिए गए नियमों को लागू करने आधिकारियों "धम्म महामार्गों" जिनकी न्यायिक अशोक ने की थी, ने ब्राह्मणों की गरिमा को नष्ट किया। इन मौर्य राजाओं की श्रद्धों की पूर्वी में वर्णित किया गया है। आगे वे तर्क देते हैं कि धम्म के विशेष विशेषकर इसका प्रतिरोध किया क्योंकि यह कार्य किसी एक शूद्र राजा के द्वारा किया गया था (पुराणों में के विरोधी हो गए। उदाहरणार्थ, अशोक ने पशुओं को बलि पर प्रतिबन्ध लगा दिया, परन्तु ब्राह्मणों ने शासन काल में उसके द्वारा किए गए कार्यों की एक ऐसी सूची प्रस्तुत करते हैं जिसके कारण ब्राह्मण अशोक मौर्य के बाद दखन पर राज्य करने वाले सातवाहनों को ब्राह्मण कहा गया है। यह विद्वान अशोक के उसके उत्तराधिकारियों की जैन धर्म के समर्थन की नीति के हितों था। यह भी तर्क दिया जाता है कि था, ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है, जोकि अशोक की बौद्ध धर्म के समर्थन की नीति तथा 1) प्रथम इनमें कुछ वे विद्वान हैं जो यह तर्क देते हैं कि पृथ्वीमित्र शूंग, जिसने अंतिम मौर्य राजा को मारा

में निहित है। सामान्यतः इन तर्कों की दो धारणें हैं :
 साम्राज्य का विघटन हुआ। कुछ मिलकर इन विद्वानों के तर्कों का आधार अशोक की धार्मिक नीति के दोषों बहिन से विद्वानों का मानना है कि अशोक के राजनीतिक निर्णयों या इन निर्णयों के कारण मौर्य

22.4 अशोक और उसकी नीतियाँ



सूखे के प्रमाण मिले हैं। इस प्रकार कई कारणों से राजस्व की कमी आई। सूखे के दौरान राजस्व से व्यापक अधिक प्रयोग तथा निर्धारण में बाढ़ तथा सूखे की स्थिति पैदा की। मीठकाल में उत्तरी बंगाल में भूकंप के कारण भी राजस्व में पर्याप्त मात्रा में राजस्व न उपलब्ध होने की समस्या के कारण दूसरे प्रकार की अन्य कलकारों और वेश्याओं आदि पर भी कर लगाये जाने चाहिए। सरकारी खजाने में अधिक धन की जायज जा सकता था और मुद्रा और अर्थमूल्यन से मुद्रा-स्फीति को बढ़ावा मिला। अधशास्त्र में जो आधुनिकता के फलस्वरूप उन सभी वस्तुओं पर कर लगाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला, जिन पर कर लगाया जा सकता था।

दूसरी बात जिस पर जोर दिया गया है, वह यह है कि कुछ उत्पादन में विस्तार, जंगल की लकड़ी के

सुरक्षित रखना पड़ता था।

1) ऐसा माना जाता है कि राज्य का धारण पदाधीन पर एकलक्षिकार धीरे-धीरे समाप्त हो गया। कुछ कार्यों के लिए जैसे की मांग इतनी अधिक बढ़ गई कि उसकी पूर्ति अकेले मण्डल के द्वारा न की जा सकी। वास्तव में राजस्व का प्रमाण एवं भूरे में पाए गए। मण्डल राज्य के लिए इन स्थलों से जोहा प्राप्त करना काफी खर्चीला काम था। इससे संबंधित और भी समस्याएं थीं। जैसे कि इन खदानों को स्थानीय सरदारों के आक्रमण से भी

कौशाबी के मण्डल साम्राज्य में निर्णायक परिवर्तन तथा इन परिवर्तनों में मौर्य साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण होने के विचार को स्वीकार किया गया है। उनके विचारों की निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है :

विशेषण पर आधारित है।

गुप्तवत्स में विराट आधी। उनका अन्तिम तर्क उनके द्वारा इस काल के सिक्कों पर किए गए सांख्यिकी प्रकार ने अनेक उपाय किए (ख) इस काल के पंच माहर्षि सिक्के इस बात का प्रमाण है कि मुद्रा की दोला है कि मौर्य अधिव्यवस्था में विदेशी बाधाएं निहित थीं। (क) विभिन्न वस्तुओं पर कर बढ़ाने के लिए साम्राज्य का पतन हो गया। कौशाबी के द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क दो प्रकार के हैं और उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्यो ने मौर्य आर्थिक संकट का सामना किया जिसके कारण मौर्य

22.5 आर्थिक समस्याएं

इस प्रकार, निष्कर्ष यह निकलता है कि आदिम की नीति ने मौर्य सेना एवं प्रशासन व्यवस्था को किसी भी प्रकार से कमजोर नहीं किया। इस सब के बावजूद पुरुषामित्र गुप्त मौर्य सेना का सेनापति था और अशोक के शासन काल की आधी शताब्दी के बाद उसने यूनानियों को मण्डल के अन्दर प्रवेश करने से रोका था। श्री. गिंजेल धारण के अनुसार, शान्तिवादी नीति के एक पीढ़ी तक जारी रहते हुए भी न तो साम्राज्य की क्षति की प्रवृत्ति दिखायी देती है। शोक के उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। बल्कि इसके कारणों की खोज भली भांति हम से दूसरे क्षमताएं दिखायी देती हैं और न ही विघटित। "साम्राज्यों के विघटन के लिए केवल युद्ध एवं भू-भाग की प्राप्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। बल्कि इसके कारणों की खोज भली भांति हम से दूसरे

साम्राज्य को सुरक्षित रखा जा सके।

वह एक सीमा के बाहर बढ़ाई नहीं करेगा। अशोक ने इन सभी कार्यों को इसलिए किया जिससे कि आदिवासियों को वेगवनी देते हुए स्पष्ट किया कि उसके साम्राज्य में रहने वाली जनजातियों का अनावरण होता है कि अशोक ने साम्राज्य के अपने नियंत्रण को दृढ़ता के साथ स्थापित किया। उदाहरणार्थ, उसने पर मण्डल की सर्वोच्चता स्थापित ही गयी। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनसे यह सिद्ध एक आर्थिक शान्तिवादी या परन्तु एक व्यवहार कुशल शासक के रूप में ऐसा किया जिससे कठिना-राज्य अक्रमण। क्या अशोक ने कठिन नरेश की स्वतंत्र राजा के रूप में इसलिए पुनः पदस्थ किया क्योंकि वह जानकारी मिलती है। अगर इस संदर्भ में कोई प्रमाण मिलता है तो वह है कठिना राज्य पर अशोक का सैनिक निष्कण कर दिया गया था। इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है न ही किसी खिलौख से इस संदर्भ में कोई अपराधी को मृत्यु देव देने की प्रथा को समाप्त कर दिया जाना चाहिए, किन्तु यह जारी थी। सेना को

दीजिए।

समस्याएं उत्तरदायी थीं, जिनका सामना साम्राज्य ने किया? आप अपने उत्तरों के समर्थन में कारण दें।

- 4) क्या आप कोशाब्दी के इस विचार से सहमत हैं कि मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए वे आर्थिक दीर्घाएं? इस प्रश्न का उत्तर आप अपने केन्द्र के सलाहकार के साथ सलाह करके 100 शब्दों में दीजिए।
-
-
-
-
-

लिए उत्तरदायी ठहराते हैं।

- 3) क) उन विद्वानों के एक 6 पंक्तियों में दीजिए, जो अशोक की नीतियों को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं।

- ख) उन्हें बड़े जाने के कारण साम्राज्य के खजाने पर दबाव बढ़ा।
- ग) कुछ विशेष शासकशाही अधिकारियों पर बाद के मौर्य शासक नियंत्रण न रख सके।
- घ) पशु-बलियों पर प्रतिबंध लगाने के कारण लोकप्रिय विद्रोह हुए।
- ङ) गंगा घाटी में वन उखड़ने के कारण बाढ़ आने लगी।

निर्माण लगाए।

- 2) निम्नलिखित में से जो कारण मौर्यों के पतन के लिए उत्तरदायी नहीं था, उस पर टिक (✓) का बहावा दिया।
- ख) उत्तर-मौर्यों के शासनकाल में सिक्कों की संश्लिष्ट करने की प्रवृत्ति ने सिक्कों के अवमूल्यन को बढ़ावा दिया।
- ग) उत्तर-मौर्य काल के सिक्कों में चांदी की मात्रा बड़े गई थी।
- घ) अशोक की किसी भी नीति ने शान्तिवाद की बकावत नहीं की।
- ङ) शहरों के विद्रोह के लिए परिस्थितियां पैदा करने के लिए अशोक उत्तरदायी था।

- 1) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (x) का चिह्न लगाइए।

नीचे दिए गए खाली स्थान का प्रयोग अपने उत्तर लिखने के लिए करें।

बीज प्रश्न 2

“इसमें कोई संदेह नहीं है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ ही आर्थिक सम्पन्नता भी खत्म थी।”

की संश्लिष्ट करने की प्रवृत्ति बढ़ी, जिससे सिक्कों का अवमूल्यन हुआ। इस प्रकार वह निष्कर्ष निकालती है, राजनीतिक अवस्था का परिणाम था जो गंगा घाटी में व्याप्त थी और जिसके कारण व्यापारी वर्ग में धन उनके अनुसार सिक्कों का अवमूल्यन भी जीवन के स्तर में गिरावट के कारण नहीं हुआ था, बल्कि यह किस्म के पदार्थों के उपयोग, जो कि तकनीकी विकास की ओर इशारा करते हैं, से होता है। इस प्रकार, उपमहाद्वीप के बहुतेक से भागों की अर्थव्यवस्था में वास्तव में सुधार हुआ था। उपरोक्त कथन की पुष्टि बेहतर हुई वह बताती है कि भौतिक साधनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय में भारतीय कहना बहुत कठिन है कि कब और कहाँ सिक्कों का अवमूल्यन हुआ। सरकारात्मक रूप में तर्क प्रस्तुत करती आनिवार्य, इस बात की ओर संकेत नहीं करता है कि अर्थव्यवस्था पर किसी प्रकार का दबाव था- यह रोमल आप ने इस पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार सिक्कों का अवमूल्यन होना

अशोक के शासन काल में परिवर्तित होने प्रारंभ हो गए।

खर्च हो जाता था। राज्य ने वित्तीय व्यवस्था पर नियंत्रण के लिए जो प्रारंभिक कठोर उपाय किए थे, वे

जिस समय भारतीयक सातवाहन स्वयं को स्थापित कर रहे थे, उसी समय उड़ीसा के महानदी क्षेत्र में खरबोला
ने एक शक्तिशाली शासक के रूप में अपने को स्थापित किया। उसके शासनकाल के एक हिस्से में जो
भुवनेश्वर के पास उदयगिरि की पहाड़ी में बसो भुष्का के गुफा में पाया गया है वह यह दर्शाता है कि
वह कलिंग के महासम्राट्मण परिवार, जो कि प्राचीन बौद्ध परिवार की एक शाखा था का हीसंग शासक था।

ये आप सातवाहनों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

प्रतिवार ने दक्कन में स्थानीय केन्द्रों के समायोजन द्वारा एक साम्राज्य की स्थापना की (खंड 7 की इकाई
विदम्ब, पूर्वी दक्कन, कर्नाटक तथा पश्चिम महाराष्ट्र जैसे क्षेत्रों में शासन करने लगे। धीरे-धीरे सातवाहन
अधिकांश अग्नी अस्तित्व में नहीं आई थी। मौर्य शासन के पतन के पश्चात् बहूत से स्थानीय शासक
देश के दक्षिणी एवं दक्षिण-पूर्वी भाग मानव साम्राज्य के समर्थक में आ चुके थे, लेकिन व्यापक स्तर पर कवि
बर्षों। असम के पर्वतीय क्षेत्रों एवं बंगाल के मैदानी क्षेत्रों में बस्तियाँ स्थापित नहीं हुई थीं। इसी के समान,
राजनीतिक सत्ता प्राप्त की। यह स्पष्ट है कि मौर्य काल के दौरान अधिकतम प्राचीण बस्तियाँ प्राग्वह्य में
प्राग्वह्य राजस्थान, पूर्वी भारत तथा दक्कन में अनेक नए स्थानीय शासक परिवारों ने इस काल में

और आए। लेकिन सबसे सकल विदेशी आक्रमणकारी कुषाण थे, जिन्होंने कुषाण साम्राज्य की स्थापना की।
सका, जो सिंध नदी के किनारे बस गए थे। पार्थियन या पल्लव आक्रमणकारी भी उत्तर-पश्चिम भारत की
भागों में अपना शासन स्थापित करने में सफल रहे। उनके शासन की शक्ति के द्वारा ही समाप्त किया जा
कर्णों के वंश ने शीघ्र समय के लिए शासन किया। इसी समय में ग्रीक आक्रमणकारी देश के उत्तर-पश्चिमी
प्रथम राजा के द्वारा सत्ता हथिया कर उसकी मजबूत करने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। ग्रीकों के बाद
और बलि की पुनः प्रारम्भ करने का प्रयास किया क्योंकि ग्रीक आक्रमणकारियों का सामना करने और उनके
उत्थान, जो कि पश्चिम मालवा में स्थित था, का शासन था। ग्रीकों ने सत्ता प्राप्त करने के बाद वैदिक प्रणाली
में शून्य सफल हुए थे। शून्य परिवार के पास मौर्यों के शासन काल में पूर्वी मालवा में विदेशीय के पड़ोसी राज्य
बाद पुनर्स्थापित शून्य ने शून्य वंश की स्थापना की और मौर्य साम्राज्य के केवल एक भाग पर ही नियंत्रण रखने
मौर्य साम्राज्य के विघटन के फलस्वरूप भारत के विभिन्न भागों में कई राज्यों का उदय हुआ। मौर्यों के पतन

22.6.1 बड़े राज्य

है कि मौर्यों के शासन काल में ही साम्राज्य का विघटन हो गया था।
है कि इनमें से कुछ राजाओं ने लगभग साधु-साधु साम्राज्य के बहूत से भागों पर शासन किया। इससे स्पष्ट
परिवर्तन नहीं किया और वही नीति अपनाई जो पहले तीन मौर्य सम्राटों ने अपनाई थी। यह भी कहा जाता
अशोक के बाद आधा दर्जन राजाओं ने शासन किया परन्तु उन्होंने अपनी शासन करने की प्रणाली में कोई
में हुआ भी तो व्यवस्था में मूलभूत कमजोरियाँ आ जाती और अंततः यह व्यवस्था असफल हो जाती।
अर्थ था कि इन वफादारियों का पुनर्निर्धारण होना। यदि ऐसा अवसर हो, जैसा कि अशोक के पतन के समय
जाती रखने के लिए इन आधिकारियों की राजनीतिक वफादारी बड़ी निर्णायक होती थी। राजा में परिवर्तन का
पर अंकुश लगाने का काम करते थे। जैसा कि पहले भी उद्धृत किया गया है कि साम्राज्यवादी व्यवस्था की
जगों में से चुना हो। कभी-कभी ये अधिकारियों बड़े शक्तिशाली हो जाते थे और राजाओं के प्रतिनिधियों
संभावना है कि मौर्यों ने दूर-दराज के क्षेत्रों पर शासन करने वाले राज्यपालों एवं आधिकारियों को स्थानीय
"साम्राज्य" के प्रमुख व महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर शासन करते थे, जिनका मुख्य केंद्र मगध था। इसकी अधिक
व्यवस्थाओं या राज्यों के उद्भव के लिए मजबूत भौतिक आधार मौजूद था। मौर्य राजा वास्तव में

तो यह कहा जा सकता है कि मौर्य-काल के बाद नवीन शक्ति के साथ बहूत से स्थानीय राजनीतिक
मौर्यों के राजनीतिक पतन के साथ-साथ अगर देश का भौतिक एवं तकनीकी विकास अवरुद्ध नहीं हुआ था

22.6 स्थानीय राजनीति का विकास

.....
.....
.....
.....
.....

कने का सेकट था न कि इनकी कमी का।
 बिना किसी क्षति के जारी रही। इस प्रकार मौर्यो के माघ साम्राज्य में संसधानों को नियंत्रित एवं संगठित
 स्थानीय शाक्तियों का उद्भव संभव हो सका, वहाँ दूसरी और मौर्यो के शासन काल की आर्थिक सम्पन्नता
 पूर्णतः दबाया नहीं जा सका। जहाँ एक ओर, मौर्यो के राजनीतिक पतन ने एक ऐसी स्थिति पैदा की जिसमें
 बहिन से उदाहरण है जिनमें एक ने दूसरे के विरुद्ध अपना दावा प्रस्तुत किया। उप-क्षेत्रीय शाक्तियों को भी
 इस प्रकार उत्तर-मौर्य काल में बहिन से शासकीय वंशों ने साम्राज्य की स्थापना के लिए प्रयास किए। ऐसे
 पर उनका नियंत्रण था।
 बहिन सरदार इसलिए प्रसिद्ध थे क्योंकि दक्षिण-पूर्वी समुद्र के किनारे से रोम के साथ होने वाले व्यापार केन्द्रों
 के राजा काम विकसित क्षेत्रों के छोटे सरदारों के साथ लगातार युद्धों में उलझे रहते थे। उदाहरण के लिए
 जारी किए, अस्तित्व में आए। हम यह भी जानते हैं कि धुर दक्षिण प्रदेश के तीन राज्यों वेरा, वोल, पाण्ड्या
 में जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त, इस काल में दक्कन में अनेक स्थानीय सरदार, जिन्होंने सिक्के
 महरारुद्र, कर्नाटक तथा आंध्र से प्राप्त प्रमाणों से हमें कुछ परिवारों जैसे महरारी, कुंज तथा अनार्द के विषय
 मिलती है।

परिवारों, जिन पर सातवाहनों ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया, के विषय में जानकारी मुख्यतः सिक्कों से
 मौर्यो के अधीन थे ने अपनी शक्ति को पुनर्स्थापित किया दक्कन के छोटे-छोटे स्थानीय राजाओं तथा राज
 थे तथा इसी काल में स्वतंत्र राज्य जैसे कि अयोध्या, कोशांबी, मयुरा और अहिछत्र, जोकि किसी काल में
 गुजरात्य स्थित, मालवा, गिराई आदि थे। ये जनपद उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी भारत के भू-भाग पर फैले हुए
 व्यास एवं यमुना के मध्य के भू-भाग पर एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। इस काल में दूसरे कबीलई
 बालों की आदंबर कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि कुण्डिनो ने भी भिवालिक पहाड़ियों की तलहटी में
 एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली थी। पंजाब में रावी और व्यास के मध्य के भू-भाग पर अधिकार करने
 इसी प्रकार मयुरा के पूर्वी-दक्षिणी भू-भाग पर शूण शासन के अंतिम वर्षों में अर्जुनायन नाम के कबीले ने
 शक नरेश कदमन ने दमन किया था। उनका अधिकार क्षेत्र सतलज एवं यमुना नदी के मध्य में स्थित था।
 पानिनि के समय में भी प्रसिद्ध एवं कुशल योद्धा थे और ऐसा कहा जाता है कि उनका पश्चिम भारत के
 अपने नाम पर जारी किए गए सिक्कों के माध्यम से या महाजनपदों के नाम से जानते हैं। योद्धेय, जोकि
 सबके अतिरिक्त भी हम अन्य कई ऐसे कबीलों के बारे में, जिनमें इस काल में परिवर्तन हुए उनके द्वारा
 संभवतः अहीर नाम की जाति में परिवर्तित हो गए जिनमें से कुछ वरमाहों के रूप में जाने जाते हैं। इन
 भील नामक जनजाति से हुई जो संभवतः कर्नाथ तथा पश्चिम भारत के वनों में रहते थे। कुछ अभीर
 पृथ्वीय राजाओं और इस अभीर राजाओं की सूची उपलब्ध है। गर्दभीलों की उत्पत्ति संभवतः एक बड़ी
 राजाओं का इन पर शासन था। उत्तर-मौर्य काल के चार नामा राजाओं, सात गर्दभील राजाओं, तेरह
 सौतों जैसे कि पुराण आदि नामा, गर्दभील और अभीर आदिवासी जातियों का नाम है। इस काल में
 शक्तिशाली कबीलों के अधीन स्थानीय या उपक्षेत्रीय राज्यों का उद्भव हुआ। बहिन से भारतीय साहित्यिक
 इस काल में विकसित होती हुई अर्धव्यवस्था के कारण या कुछ क्षेत्रों में व्यापारिक गतिविधियों के कारण

22.6.2 स्थानीय राज्य

द्विष्ट नहीं डालते हैं तो इस काल की राजनीतिक स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकती है।
 के अतिरिक्त अनेक छोटे राज्य तथा गण-संघ थे जो जनपदों पर शासन कर रहे थे। यदि हम इन पर अपनी
 थी। दक्कन में सातवाहनों की शासन सबसे स्थायी तथा व्यापक था। किन्तु इसी काल में इन प्रमुख शाक्तियों
 के दौरान उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम में पहले यूनानी तथा बाद में शक, पश्चिम तथा कर्णाट तथा पश्चिम शाक्तिया
 गया है। ये राज्य मौर्य काल के बाद अलग-अलग समय में शक्तिशाली बने रहे। 200 ई.पू. तथा 300 ई.पू. के बीच
 उपरोक्त पंक्तियों में विदेशी एवं स्वदेशी राज्यों के राजनीतिक स्वरूप एवं भौगोलिक क्षेत्रों का विवेचना किया
 सकी)।

है। (आप खंड 7 की इकाई 28 में इस क्षेत्र के इतिहास के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त कर
 उन दोनों राज्यों के समान, पृथक्करण संबंधी राजनीति एवं अर्धव्यवस्था के विषयों में जानकारी प्राप्त होती
 थे और तीसरे पाण्ड्या थे जिनके अतिरिक्त क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप का छोर था। इस काल के समय साहित्य से
 मालबार क्षेत्र पर था, दूसरे वोल थे जो दक्षिण-पूर्वी समुद्र के किनारे एवं कावेरी नदी की घाटी में फैले हुए
 धुर दक्षिणी क्षेत्र में तीन राज्य, मौर्य काल से ही महत्वपूर्ण बने रहे। उनमें प्रथम वेर थे जिनका नियंत्रण

का प्रथम समर्थक था।

कहा जाता है कि उसने माघ, सातवाहन और पाण्ड्या देशों पर सफलतापूर्वक आक्रमण किए। वह तीन धर्म

परिवर्तन होना था जिसका अंशिक के बाद में प्रशासन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा।
 करण प्रशासन का आधार पूर्णतः व्यक्तिवादी ही गया। राजा के परिवर्तन का तात्पर्य अधिकारियों में भी
 गहरा किया। उच्च स्तरीय केंद्रीकृत नौकरशाही की निष्ठा राजा के प्रति थी न कि राज्य के प्रति जिसके
 महत्वपूर्ण तत्व यह है कि मौर्य साम्राज्य व्यवस्था में अंतर्निहित विरोधाभासों ने इस संकट को और अधिक
 बढ़ावा एवं शीघ्र-शीघ्र शासकों के परिवर्तन ने निःसंदेह साम्राज्य के आधार को कमजोर किया। परन्तु अधिक
 की बनाए रखने में असफल रहे जो उन्हें अंशिक से विरासत में प्राप्त हुई थी। अंशिक के बाद साम्राज्य के
 साथ स्थानीय राजनीतिक व्यवस्थाओं का उत्थान हुआ। अंशिक के उत्तराधिकारी साम्राज्य की उस अखण्डता
 हमने इस इकाई में उन सभी कारणों का विश्लेषण किया जिसे मौर्य साम्राज्य का पतन एवं उसी के साथ-

22.7 सारांश

घ) 1, 5, 6

ग) 2, 2, 3, 5

ख) 2, 3, 4

क) 1, 6, 4

संकेत

6) सेना की नाविकयता

5) प्रभावशाली संसाधन आधार की वृद्धि की आवश्यकता

4) विदेशी शक्तियों के आक्रमण

3) साम्राज्यवादी खर्च में बढ़ोतरी

2) राज्य नियंत्रण का कमजोर पड़ना

1) शासकों का विद्रोह

3) नीचे दिए गए संकेतों का प्रयोग करके मौर्य के पतन के तीन महत्वपूर्ण कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

में बताइए।

2) उत्तर-मौर्य काल में दक्षिण एवं उत्तर भारत में हुए मुख्य राजनीतिक परिवर्तनों को लगभग 100 शब्दों

(ब) अयोध्या, काशी, मथुरा और अहिल्य कबीलाई गुणवत्त. क्ष।

(ग) मौर्य काल के बाद के काल में कबीलाई राज्य विदेशियों को बाहर निकालने में सफल हो

(ग) मगध साम्राज्य हमें तीन राज्यों — योर्, सेरो एवं पाण्ड्यो के विषय में बताता है।

(ख) पूरे दक्षिण में मौर्यो की सारवाहर्मी ने कटया।

(क) पृथ्वीपुत्र शृंग संभवतः मौर्यो के अधीन उज्जैन का राज्यपाल था।

1) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) के चिह्न लगाइए।

हम देख चुके हैं कि पहले कुछ विद्वान किस भाँति अशोक की नीतियों को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं परन्तु समकालीन प्रमाणों के आधार पर ये विचार स्वीकारने योग्य नहीं हैं। मौर्य साम्राज्य उत्तरदायी ठहराते हैं परन्तु समकालीन प्रमाणों के आधार पर ये विचार स्वीकारने योग्य नहीं हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों के कारणों पर कुछ विद्वानों के द्वारा आर्थिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में भी विचार किया गया है और हमने भी इस पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। अंत में हमने उत्तर एवं दक्षिण भारत में राजनीति के उद्वेग पर भी प्रकाश डाला है जिसने मौर्य साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को तेज गति प्रदान की।

22.8 शारदाजी

शारदाजी : ऐसी सरकार की व्यवस्था, जिसमें अधिकारियों के द्वारा शासन किया जाता है और जो किसी एक शक्ति के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

राज्यीय राज्य : ऐसे राज्य जो छोटे थे और किसी विशेष स्थान या क्षेत्र में सीमित थे।

उप-राज्यीय राज्य : किसी बड़े क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित छोटे राज्य।

राजनीतिक व्यवस्था : राजनीतिक संगठन के प्रकार—कुछ राजतान्त्रिक, गणतान्त्रिक या कबीलाई हो सकते हैं।

परिधिपन : पार्श्वीय प्रदेश के निवासी, यह प्रदेश वैदूर्या के पश्चिम और कैसियन सागर के दक्षिण-पूर्व में स्थित था।

22.9 चौथे प्रश्नों के उत्तर

चौथे प्रश्न 1

1) क) ✓

ख) ×

ग) ✓

घ) ✓

2) आपको उन समस्याओं के विषय में लिखना है जो अशोक की धम्म नीति को गंभीर रखने और धम्म महामंत्रों पर नियंत्रण रखने के मार्ग में बाधक थीं। (देखिए भाग 22.3)

3) आपको अपने उत्तर में निम्नलिखित संदर्भों को सम्मिलित करना चाहिए—केंद्रीकृत प्रशासन, अधिकारियों की राजा के प्रति निष्ठा न कि राज्य के प्रति, नीकरशाही का वर्तन आदि-आदि। (भाग 22.3 देखिये)

चौथे प्रश्न 2

1) क) ×

ख) ✓

ग) ×

घ) ✓

2) ख)

3) आपको अपने उत्तर में शामिल करना चाहिए: अशोक वीह्र धम्म समर्थक नीति, अशोक की शान्तिप्रियता की नीति और इसके प्रति दास्यों की प्रतिक्रिया। भाग 22.4 देखिए।

4) भाग 22.5 को पढ़िए और अपने उत्तर के लिए तर्क दीजिए।

शिवशंकर मिश्र—भारत का सामाजिक इतिहास
 डी.डी. कौशांबी—भारत का राष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यता
 सत्यकृष्ण शिवशंकर—भारत का सामाजिक इतिहास
 रोमिला थापर—भारत का इतिहास

सब सही के लिए उपयुक्त पुरस्कार

2) सौर्य साम्राज्य के विघटन के साथ-साथ बड़े एवं स्थानीय राज्य अस्तित्व में आये साथ ही आपकी कबीलाई राज्यों के बारे में लिखना चाहिए। (उप-भाग 22.6.1 तथा 22.6.2 देखिए।)

- 1) क) ✓
- ख) ✓
- ग) ✓
- घ) ×
- च) ×

सौर्य सभ्यता 3

NOTES


NOTES

37	कला और वास्तुशास्त्र	इकाई 26
27	धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन	इकाई 25
15	स्वायत्त और शाहीकरणा का विस्तार	इकाई 24
5	उत्तर परिवर्तनी और उत्तर भारत	इकाई 23
भारत : 200 ई. पू. से 300 ई. तक		

6
खंड

UGHY-04(N)
 इतिहास
 भारत : प्राचीन काल से
 8वीं सदी ईस्वी

उत्तर प्रदेश
 शिक्षा एवं उच्च शिक्षा विभाग
 उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय



खंड 6 भारत : 200 ई. पू. से 300 ई. तक

खंड 5 का अध्ययन करने के बाद आप जान गये होंगे कि मौर्यों के पतन के साथ मगध साम्राज्य का हास हो गया, पर इसके बावजूद मौर्योत्तर भारतीय इतिहास पर इसकी छाप बनी रही। दूसरे शब्दों में, हालाँकि एक क्षेत्र की राजनीतिक शक्ति विशेष या एक शासक वंश का अंत हो गया, पर इसका मतलब यह नहीं है कि उस समय का पूरा समाज ही छिन्न-भिन्न हो गया। वस्तुतः साम्राज्य ने कई क्षेत्रों में जिस परिवर्तन की शुरुआत की थी वह मौर्यकाल के बाद ही परिपक्वता प्राप्त कर सका। खंड 6 और 7 में आप इन्हीं परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे। खंड 6 की इकाई 23 और 24 में उत्तर भारत पर विचार विमर्श हुआ है। इकाई 25 और 26 में मौर्योत्तर भारत की संस्कृति के कुछ पक्षों की सामान्य रूप में चर्चा की गयी है। इकाई 25 में धर्म संबंधी प्रमुख परिवर्तनों की चर्चा की गयी है। इकाई 26 में सम्पूर्ण भारत में कला संबंधी गतिविधियों के प्रसार पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इस काल के प्रमुख कला-केन्द्रों की उपलब्धियों का भी जिक्र किया गया है।

इकाई 23 में, उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास की कुछ विशेषताओं की ओर इशारा किया गया है। उत्तर पश्चिमी भारत का ईरान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ हमेशा से प्रगाढ़ संबंध रहा है। मौर्यों के शासन काल के बाद लोगों के मध्य एशिया आने जाने का सिलसिला और भी बढ़ा और इसका सीधा प्रभाव उत्तर पश्चिमी भारत खासकर ऊपरी गंगा और यमुना के पश्चिम की राजनीतिक स्थिति पर पड़ा। बैक्ट्रिया (उत्तर अफगानिस्तान) के यूनानी हिंदुकुश के पार तक पहुँच गये और उनका शासन पंजाब तक फैल गया। यूनानियों (जिन्हें भारत में यवन कहा जाता था) के बाद सायाथियन (शक) पार्थियनों (पहलव्व) और कृषाणों ने (यू-ची की एक शाखा) इस प्रदेश पर राज्य किया। निश्चित रूप से, ये गतिविधियाँ यहीं तक सीमित न रहीं और बाद के वर्षों में भी उत्तरी पश्चिमी सीमान्त पर आवागमन का सिलसिला बना रहा।

इसके बावजूद, यह समझने की भूल नहीं करनी चाहिए कि इस काल में उत्तरी और उत्तरी पश्चिमी भारत पर विदेशियों का आधिपत्य रहा। इस काल में भारतीय और विदेशी के बीच फर्क करना आसान नहीं था। यवन, शक आदि भारतीय उपमहाद्वीप की जनसंख्या के एक अंग बन चुके थे। इसके अतिरिक्त पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में बहुत से इलाके ऐसे थे, जहाँ का स्थानीय प्रशासन कुछ राजसी परिवारों या औदुम्बरों, यौधेयों, मालवों आदि जैसे प्रमुख कुलों के सदस्यों के अधीन था। शकों और कृषाणों के शासनकाल में क्षत्रप, महादंडनायक और अन्य अधिकारियों का स्थानीय प्रशासन पर काफी जोर था। अतः मौर्योत्तर भारत और मौर्य कालीन उत्तरी भारत के राजनीतिक नक्शे में काफी अंतर था।

छोटी और बड़ी शक्तियों के सहअस्तित्व का यह मतलब नहीं था कि विभिन्न प्रदेशों के बीच का सम्पर्क समाप्त हो गया। वस्तुतः इस काल में व्यापार और अन्य कार्यों के लिए विभिन्न प्रदेशों के बीच का सम्पर्क पहले से और ज्यादा बढ़ गया। इकाई 24 में इसी तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। हालाँकि इकाई में केवल उत्तरी भारत की चर्चा है, पर इसका मतलब यह नहीं है कि संचार उत्तरी भारत या व्यापार तक ही सीमित था। इस काल में भारतीय उपमहाद्वीप की गतिविधियों का संबंध मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया के हिस्सों, भूमध्य सागरीय प्रदेश (उत्तरी मिस्र सहित), कुछ हद तक दक्षिण पूर्वी एशिया और चीन (मध्य एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के जरिए) से था। यह संबंध व्यापार के लेन-देन तक ही सीमित नहीं था, बल्कि लोगों के आने-जाने का सिलसिला भी बना हुआ था। लोगों के साथ विचारों का भी आदान-प्रदान हुआ। भारतीय समाज पर इन गतिविधियों का पर्याप्त असर पड़ा। उदाहरण के लिए इस काल में नगर और शहर अपने उत्कर्ष पर पहुँच गये। इस प्रकार का एक प्रमाण यह भी है कि इस काल में सबसे ज्यादा मात्रा में सिक्के जारी किए गये, यहाँ तक कि औदुम्बरों और यौधेयों जैसे छोटे राज्यकुल (जो पहले योद्धा के रूप में जाने जाते थे) भी सिक्के जारी किया करते थे। कभी-कभी यूनानी और कृषाणी सिक्कों की नकल भी की जाती थी। भारतीय समाज में धर्म (इकाई 25) और कला (इकाई 26) के क्षेत्र में विशेष परिवर्तन आया। बौद्ध धर्म और जैन धर्म जो ब्राह्मणवादी परम्परा और धार्मिक विश्वासों के विरोध में स्थापित हुए थे, में भी मूलभूत परिवर्तन आया। बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी शाखाओं में बँट गये। इस काल में देवताओं की मूर्ति पूजा सभी धर्मों की एक खास विशेषता थी। बौद्ध और जैन तीर्थ कर इस काल में उपदेशक से देवता बन गये। सभी धर्मों ने परम्परागत स्थानीय विश्वासों, स्थानीय पंथों, स्थानीय देवता और प्रतीकों को आत्मसात कर लिया। ब्राह्मण धर्म में प्रमुख देवताओं में छोटे देवताओं को समाहित कर दिया गया। विष्णु और शिव दो प्रधान देवता के रूप में सामने आये और उन्होंने दूसरे देवताओं को या तो आत्मसात कर लिया या उनके

साथ एकीकृत हो गये। उदाहरण के लिए, शिव की शक्ति, उमा कई देवियों का प्रतीक थी। ये देवियाँ भारतीय और अभारतीय दोनों थीं।

बौद्ध धर्म जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म की प्रकृति में भी परिवर्तन आया। समाज के विभिन्न समुदायों ने इनमें से अलग-अलग धर्मों को अपनाया। इस काल की कला संबंधी गतिविधियों में भी यह परिलक्षित होता है। इन कला संबंधी गतिविधियों के जीते जागते नमूने विभिन्न स्तूप, विहार और मंदिर हैं। इस काल में बौद्ध धर्म का प्रभाव व्यापक था और व्यापारियों तथा बौद्ध पुजारियों ने इसे भारत के बाहर भी प्रसारित-प्रचलित किया। इस काल की भारतीय कला पर मध्य एशिया की कला और चीनानी शिल्प का भी प्रभाव था। यह प्रभाव उन देशों के साथ संबंध और बौद्ध धर्म के प्रति उनके झुकाव के कारण स्थापित हुआ। लेकिन यह प्रभाव केवल बौद्ध कला तक ही सीमित नहीं था बल्कि सम्पूर्ण कला संबंधी गतिविधियों पर इसका असर पड़ा। लेकिन इतना जान लेना चाहिए कि उच्च कला कृतियाँ केवल राजकीय संरक्षण में विकसित नहीं हुईं बल्कि उनका एक वृहद् सामाजिक आधार भी था।

इकाई 23 उत्तर पश्चिमी एवं उत्तर भारत

इकाई की रूपरेखा

- 23.0 उद्देश्य
- 23.1 प्रस्तावना
- 23.2 स्रोत
- 23.3 शृंग
- 23.4 भारतीय यूनानी
- 23.5 शक
- 23.6 पार्थियन
- 23.7 कुषाण
- 23.8 उत्तर भारत की स्थानीय शक्तियाँ
- 23.9 मध्य एशिया तथा उत्तर भारत के संपर्क का महत्व
 - 23.9.1 व्यापार एवं तकनीकी
 - 23.9.2 भौतिक अवशेष
 - 23.9.3 राजतंत्र
 - 23.9.4 धर्म और कला
- 23.10 सारांश
- 23.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप को निम्नलिखित विषयों की जानकारी होगी

- मौर्य युग के अंत से लगभग सन् 300 ई. तक की राजनीतिक गतिविधियाँ
- विभिन्न प्रकार के विदेशी तत्वों का भारतीय समाज पर प्रभाव और उनका समावेश
- मध्य एशियाई संपर्क का तकनीकी, धर्म तथा कला के क्षेत्र में प्रभाव तथा उस युग के भौतिक अवशेष।

23.1 प्रस्तावना

खंड 5 में आपने प्रथम भारतीय साम्राज्य की, जो मौर्य साम्राज्य के नाम से जाना जाता है, स्थापना और सुसंगठित होने के विषय में जानकारी प्राप्त की। राजनैतिक विस्तार, राजतंत्र तथा अशोक की धम्म की नीति के विषय में आपने विस्तृत रूप से जाना। आपको याद होगा कि पुष्यमित्र शृंग ने लगभग 180 ईस्वी पूर्व में आखिरी मौर्य सम्राट का निश्चित रूप से पतन कर दिया। सन् 200 ईस्वी पूर्व के बाद का जो युग था उसमें कोई बड़ा साम्राज्य तो स्थापित नहीं हुआ, पर यह युग ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसलिए महत्वपूर्ण है कि उस युग में मध्य एशिया से सांस्कृतिक-संबंध स्थापित हुए और विदेशी तत्वों का भारतीय समाज में समावेश हुआ। इस युग में उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत में अनेक राजनैतिक क्षेत्र उभर कर सामने आये। इस इकाई में हम शृंग, शक, भारतीय-यूनानी तथा पार्थियन जैसे अन्य महत्वपूर्ण वंशों का अध्ययन करेंगे। साथ ही साथ व्यापार, कला, धर्म तथा शिल्प विज्ञान के क्षेत्र में सांस्कृतिक संबंधों पर भी विचार करेंगे।

23.2 स्रोत

इस युग के राजनैतिक इतिहास की जानकारी के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोतों की छान-बीन आवश्यक है। कुछ क्षेत्रों में शासकों और राजवंशों के बारे में पौराणिक विवरण अत्यंत उपयोगी है। पौराणिक विवरण के साथ-साथ कुछ विषयों के लिए शिलालेख भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

मौर्या का पराजय क तुरन्त बाद के समय के लिये, गार्गी संहिता, पंतजलि के महाभाव्य, दिव्यावदान कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा बाण के हर्ष चरित आदि ग्रंथों में कुछ जानकारी तो अवश्य मिलती है, पर वह बिखरी हुई है। शंग इतिहास से संबंधित प्रमाण भी हमें अयोध्या, विदिशा तथा भारूत के शिलालेखों में मिलते हैं।

मौर्यों के बाद के युग में राजनैतिक सत्ता किसी परिवार विशेष के हाथ में नहीं रह गयी। इस युग में राजनैतिक सत्ता के दो रूप सामने आते हैं। पहले का संबंध उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से है जहाँ एक वंश के शासकों का स्थान दूसरे वंश ने लिया — पहले यूनानी मूल के शासक, उसके बाद शक या पार्थियन मूल के शासक तथा उसके बाद युहचि मूल के शासकों ने सत्ता सम्हाली। इसके साथ, इसी युग में उत्तर भारत में हमें सत्ता का दूसरा रूप मिलता है, जिसमें स्थानीय स्तर पर सत्ता छोटे-छोटे परिवारों के हाथ में आयी। कुछ स्थानों पर हमें गण संघ भी मिलते हैं जो एक विस्तृत क्षेत्र में बंटे हुए थे। इन राज परिवारों का संकेत उन सिक्कों से मिलता है, जो उन्होंने ढाले। यह सिक्के बहुत महत्वपूर्ण स्रोत हैं क्योंकि उन पर शासकों के नाम अंकित हैं। इन सिक्कों तथा अन्य स्रोतों की मदद से हमें इस युग के राजनैतिक इतिहास को समझने में सहायता मिलती है। पश्चिमी एशिया के अनेक भागों से तथा विशेष कर मध्य एशिया से सांस्कृतिक आदान-प्रदान इस युग में एक आम बात थी। इस संदर्भ में, उत्तर-पश्चिम क्षेत्र के लिये, कुछ अन्य प्रकार के स्रोत भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जैसे कि, समकालीन सिक्कों के साथ-साथ, इस युग में खरोष्ठी लिपि में लिखे गये अनेक लेख गान्धार क्षेत्र में मिलते हैं, तथा मध्य एशिया में भी उनके खरोष्ठी दस्तावेज प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा उत्तर-पश्चिम भारत तथा वहाँ के शासकों के बारे में थोड़ा बहुत हवाला यूनानी और लैटिन स्रोतों में भी मिलता है। बौद्ध स्रोतों में भी इस युग से संबंधित जानकारी मिलती है, जैसे कि पाली में लिखित मिलिन्द पण्ह (मिलिन्द के प्रश्न) में यवन राजा मेनन्दर तथा बौद्ध धर्म का विवरण है। चीनी ऐतिहासिक वृत्तान्तों में, मध्य एशिया, बैक्ट्रिया तथा उत्तर-पश्चिम भारत की समकालीन घटनाओं के हवाले मिलते हैं। जैसे कि युह चि या कुशाण वंश का प्रारंभिक इतिहास जानने के लिये हमें चीन के प्रारंभिक तथा बाद के वंशों से संबंधित वृत्तान्तों पर निर्भर रहना होगा।

23.3 शंग

शंग एक ब्राह्मण परिवार था जिसका संबंध शायद पश्चिम भारत के उज्जैन क्षेत्र से था, जहाँ वे मौर्य राजाओं के समय में राज्य अधिकारी थे। शंग वंश का संस्थापक पुश्चमित्र था। आम तौर पर समझा जाता है, उसने 180 वर्ष ई. पू. में अंतिम मौर्या राजा ब्रह्मद्रथ को मार डाला। संस्कृत लेखक बाण जो कन्नौज के राजा हर्षवर्धन का राज्य कवि था, इस घटना की पुष्टि करता है। ऐस प्रतीत होता है कि पुश्चमित्र ब्राह्मणवाद का समर्थक था और उसने अश्वमेघ या अश्व-बलि भी करवाया। अश्व-बलि एक वैदिक धर्मोपाधि थी जिसे राजसी गौरव का प्रतीक समझा जाता था। धनदेव के अयोध्या शिला लेख से मालूम होता है कि पुश्चमित्र ने दो बार अश्व-बलि की थी। इससे न केवल इस बात का संकेत मिलता है कि पुश्चमित्र का अधिपत्य एक बड़े क्षेत्र पर था, बल्कि उसके राज्य में प्रचलित ब्राह्मण रूढ़िवादिता के बारे में भी जानकारी मिलती है। बौद्धिक स्रोतों के अनुसार उसने बौद्ध धर्म के अनुयायियों पर अत्याचार किये।

दिव्यावदान की बौद्धिक परंपरा इस बात की पुष्टि करती है कि पुश्चमित्र ने बौद्ध मठ तथा धर्म-स्थानों का विनाश किया, विशेषकर जिनका निर्माण अशोक ने करवाया था। (और अधिक जानकारी के लिए इकाई 25 को देखें)।

पुराणों के अनुसार पुश्चमित्र ने 36 वर्ष तक शासन किया और उसके बाद उसका पुत्र अग्निमित्र शासक बना। उसके शासन के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। ऐसा लगता है कि मूलदेव काफी प्रभावशाली शासक था। उसके शासन काल ने शंग वंश का विघटन शुरू किया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार अयोध्या में मिले सिक्कों से मूलदेव का राजा होना सिद्ध होता है। अयोध्या के शिला लेखों में उसे कौशल का स्वामी कहा गया है। वह स्वतंत्र कौशल प्रदेश का शासक था। जल्दी ही, शंग शासकों का राज्य मगध तथा मध्य भारत के क्षेत्र तक ही सीमित रह गया। देवभूति, शंग वंश का चौथा और अंतिम शासक था। यदि हर्ष चरित्र के लेखक बाण के वृत्तान्त पर विश्वास किया जाए, तो वह अपने ब्राह्मण मंत्री वासुदेव के षडयंत्र का शिकार हो गया। इस प्रकार शंग शासकों का सिलसिला ईसा के 75 वर्ष पूर्व खत्म हो गया। हालांकि वासुदेव ने शासकों की एक नयी कड़ी शुरू की जो कौरव कहलाये, जो चार पीढ़ियों तक कायम रही।

23.4 भारतीय-यूनानी

ईसा के लगभग 200 वर्ष पूर्व, भारतीय उप-महाद्वीप की उत्तर-पश्चिम सीमा के पार काफी सरगामी थी। यूनानियों ने जो बेक्ट्रिया में राज्य करते थे। सबसे पहले हिन्दू कुश को पार किया। यह क्षेत्र ऑक्सस नदी के दक्षिण में उत्तरी अफगानिस्तान से ढका हुआ था। सिकन्दर के उत्तर-पश्चिम भारत के हमले के बाद भी यूनान और भारत के बीच कोई विशेष निकटता स्थापित नहीं हुई। दो अलग प्रकार की संस्कृति का मिश्रण ईसा की दो शताब्दी पूर्व के युग में नजर आता है। यह सांस्कृतिक मिश्रण उस समय हुआ जब बेक्ट्रिया के यूनानी शासक उत्तर-पश्चिम भारत तक पहुँच गये और भारतीय यूनानी के नाम से जाने गये।

ईरान में अकेमेनिद राज्य के विलय तथा सिकन्दर की मृत्यु के बाद, ईरान तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों पर सिकन्दर के सेनापतियों का अधिकार हो गया। धीरे-धीरे बेक्ट्रिया के यूनानी शासक जो मूलतः सेल्यूसिड और पारथियस के अरासासिड शासकों के अधीन थे, वे अब स्वशासन का दावा करने लगे। यूनानी शासकों को स्काईथियन जनजाति से गंभीर खतरे का सामना करना पड़ा। चीन की दीवार के निर्माण के बाद स्काईथियन चीन की ओर तो न बढ़ सके पर उन्होंने यूनानियों और पारथियस पर हमले किये। स्काईथियन जनजाति के दबाव से, बेक्ट्रियन यूनानियों को भारत की ओर आना पड़ा। ये हमले मौर्य शासन के अंतिम चरण में शुरू हो चुके थे और अशोक के उत्तराधिकारियों में उनसे सामना करने की क्षमता नहीं थी। ईसा के 150-200 वर्ष पूर्व की अवधि में उन्होंने उत्तर-पश्चिम भारत के एक बड़े भाग पर कब्जा कर लिया था। अपने सैनिक अभियानों में वे गंगा के मैदान तथा देश के अन्य भागों में दर तक पहुँच गये थे, जैसे पांचाल, साकेत तथा पाटलीपुत्र।

भारतीय यूनानी शासकों में मेनान्दर या मिलिन्द बहुत मशहूर हुआ। उसके शासन काल में भारतीय-यूनानी राज्य की सीमायें स्वात घाटी से शुरू होकर पंजाब में रावी नदी तक पहुँच गयी थी। उसने अपनी राजधानी पंजाब में साकला (आधुनिक स्यालकोट) में बनायी। बौद्ध भिक्षु और दार्शनिक नागसेन के द्वारा बौद्ध धर्म अपनाने के कारण भी मेनान्दर याद किया जाता है। मेनान्दर ने नागसेन से बौद्ध धर्म से संबंधित अनेक प्रश्न किये जिन्का उल्लेख मिलिन्द-पन्ह या "मिलिन्द के प्रश्न नामक" पुस्तक में है।

समकालीन सिक्कों की एक बड़ी संख्या से कम से कम 30 भारतीय यूनानी शासकों के नाम मालूम हो जाते हैं। उत्तर में काबुल तथा दिल्ली के निकट मथुरा में मेनान्दर के सिक्के प्राप्त हुए हैं। भारतीय यूनानियों का इतिहास मुख्यतः इन्हीं सिक्कों की सहायता से लिखा गया है। इन सिक्कों पर यूनानी भाषा में अनुश्रुतियाँ अंकित हैं, बाद में खरोश्टी तथा ब्रह्मी लिपि भी मिलती हैं। इन प्रमाणों को समझने की कहीं-कहीं कठिनाई होती है, क्योंकि कुछ राजाओं के नाम एक से थे। इसलिए एक शासन के समय के सिक्कों को दूसरे से अलग करना आसान नहीं है। सिक्के, विशेषकर चाँदी के सिक्कों के ढालने की भारतीय यूनानी तकनीक कारीगरी का अच्छा उदाहरण है। इसका प्रभाव इस युग के कुछ स्थानीय शासकों द्वारा जारी किये हुए सिक्कों पर पड़ा और एक बड़े क्षेत्र में उनका प्रचलन हुआ। ये इस युग के बढ़ते हुये व्यापार संबंधों पर प्रकाश डालते हैं।

भारतीय यूनानियों की भूमिका, सांस्कृतिक संबंधों के संदर्भ में इसलिए भी महत्वपूर्ण समझी जाती है कि उन्होंने उत्तर-पश्चिम भारत में हेलेनिस्टिक कला से परिचय कराया, जिसने बाद में गंधार कला शैली का रूप लिया।

23.5 शक

शकों को स्काईथियन के नाम से भी जाना जाता है। कुछ स्रोत स्काईथियन और पारथियन दोनों का हवाला एक साथ देते हैं, तथा उन्हें शक पहलवा कहते हैं। यहाँ तक कि शासकों के नाम से भी कभी-कभी शक और पहलवा में अंतर करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी, उत्तर, उत्तर-पश्चिम, और पश्चिम भारत में कुछ शक राज परिवारों की वास्तविकता को स्थापित किया जा चुका है। शकों का बोलन दर्रे के रास्ते से भारत में आना शुरू हुआ और ऐसा समझा जाता है कि वे पहले सिंधु के निचले क्षेत्र में आबाद हुए। शकों की विभिन्न शाखाओं से संबंधित सिक्के और अन्य स्रोत उपलब्ध हैं। ऐसा समझा गया है कि उनकी एक शाखा अफगानिस्तान में बसी तथा दूसरी पंजाब में और तक्षिला उसकी राजधानी थी। एक अन्य शाखा ने मथुरा में राज्य किया। चौथी शाखा पश्चिम तथा मध्य-भारत में आबाद हुई, जहाँ शकों ने चौथी शताब्दी तक शासन किया।

शक बेक्ट्रिया में यूनानी आधिपत्य को खत्म करने में सफल हुए। वे मूलतः मध्य एशिया के खानाबदोश थे जिन्हें एक अन्य मध्य एशियाई जनजाति यू-ची ने बेक्ट्रिया की सीमा पर स्थित अपने आवास से उखाड़ फेंका। फलस्वरूप शक भी यूनानियों के पीछे-पीछे भारत में आ गये। धीरे-धीरे स्थानीय शासकों को हटाकर शकों ने उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत पर अधिकार कर लिया। भारत में शक-इतिहास को जानने के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोत हैं। शकों का हवाला, यूनानी, यूनानी-रोमन, तथा चीनी वृत्तान्तों में भी मिलता है। शिलालेखीय तथा मुद्रा संबंधी स्रोत भी उपयोगी है। इस संबंध में सबसे पहली जानकारी एक ग्रंथ के रूप में महाभाष्य से मिलती है। पुराणों और महाकाव्यों में भी कम्बोज और यवनों के साथ-साथ शकों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है।

भारत में पहला शक राजा मॉएस या मोगा जिसने गांधार में राज्य की स्थापना की। मॉएस के बारे में सिक्कों की शृंखला तथा अभिलेखों से भी जानकारी प्राप्त होती है जिनमें से एक अभिलेख कालाकित भी है। एक कालाकित तांबे की पट्टी जो तांझला में प्राप्त हुयी है, इस बात की पुष्टि करती है कि बुद्ध की एक प्रतिमा मॉएस के समय में स्तूप में स्थापित की गयी। मॉएस के बाद, आजेए ने शासन किया। वह उत्तर भारत के अंतिम यूनानी राजा, हिषास ट्रेटस पर हमला करने में सफल हुआ।

शकों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपना शासन स्थापित किया, पर केवल पश्चिम भारत में ही चार शताब्दियों तक उनकी शक्ति कायम रही। पश्चिमी भारत का सबसे प्रसिद्ध शक शासक था, रुद्रामण प्रथम (130-152 ई.)। उसके राज्य की सीमायें सिंध, कच्छ, गुजरात, राजस्थान, कोणकन, नर्मदा घाटी, मालवा, काठियावाड़ तथा पश्चिमी दक्खन तक फैली हुई थी। रुद्रामण की सैनिक उपलब्धि, उसके राज्य की विशाल सीमायें तथा उसके अनेक व्यक्तिगत गुणों का उल्लेख जूनागढ़ के मशहूर शिलालेखों में किया गया। यह 150 ई. में लिखे गये तथा इनमें यह भी उल्लेख किया गया है कि उसके अधिकारी ने काठियावाड़ में सुदर्शन झील पर मौर्यों द्वारा बनवाये हुए बाँध की मरम्मत करवायी। इस झील के पानी से मौर्य काल से ही सिंचाई की जाती थी। यह विस्तृत शिलालेख पहला बड़ा शिलालेख है जो संस्कृत में लिखा गया। यह बात साफ है कि रुद्रामण ने संस्कृत को बढ़ावा दिया। यदा-कदा प्रतिकूल परिस्थितियों के बाद भी, रुद्रामण की मृत्यु के बाद शकों ने उस क्षेत्र में चौथी शताब्दी तक शासन किया।

पारथियन तथा शकों ने शासन की सत्रप व्यवस्था को अपनाया जो ईरान की अकेमेनिड और सेल्यूसिड व्यवस्था के अनुरूप थी। इसके अनुसार राज्य का विभाजन प्रान्तों में किया जाता था, जिनके शासन का कार्यभार सैनिक गवर्नरों के सुपुर्द था। इनको महासत्रप (वरिष्ठ सत्रप) कहा जाता था। छोटे दर्जे के गवर्नर सत्रप कहलाते थे। यह गवर्नर स्वयं अपने शिलालेख खुदवाते और सिक्के जारी करते थे। यह इस बात की ओर ध्यान दिलाता है कि गवर्नर अपनी भूमिका निभाने में स्वतंत्र थे, जैसा कि इस युग के प्रशासनिक ढांचे में आम तौर पर नहीं देखा गया। शक राजा "राजाधिराज" (राजाओं का राजा) तथा महाराजा (महान राजा) जैसी पदवी भी ग्रहण कर लेते थे। यह उन्होंने यूनानी परंपरा से लिया।

23.6 पारथियन

हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि प्राचीन भारत के संस्कृत ग्रंथों में शक-पहलवा शब्द शक तथा पारथियन दोनों को साथ-साथ संबोधित करता है। शक तथा पारथियन दोनों ने एक समय में उत्तर-पश्चिम भारत के विभिन्न भागों में शासन किया। पारथियन मूलतः ईरान के रहने वाले थे। ऐसा समझा जाता है कि वे भारत तथा ईरान के सरहदी क्षेत्र में तथा उत्तर-पश्चिम भारत में पारथियन शासकों के प्रतिनिधि बनकर आये। सीस्तान केशकों के पारथियन से निकट संपर्क थे। इसलिए हमें भारतीय शकों में मूल स्काईथियन तथा ईरानी पारथियन का मेल नजर आता है।

गॉडोफेयस सबसे प्रमुख पारथियन राजा हुआ। उसका राज्य काबुल से पंजाब तक फैला हुआ था, और संभवतः उसमें पारथियन साम्राज्य के कुछ ईरानी क्षेत्र भी शामिल थे। अलग-अलग समय पर जारी हुए सिक्के इस बात की पुष्टि करते हैं वह आधीनता की स्थिति से उठकर एक स्वतंत्र शासक बन गया। उसका नाम सेंट थामस से भी जुड़ा हुआ है। एक परंपरा के अनुसार सेंट थामस इजराईल से यात्रा करके गॉडोफायस के दरबार में आये, और भारत आकर उन्होंने ईसाई धर्म का प्रचार किया। पारथियनों के समय के चाँदी के सिक्कों की कमी स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। यह भारतीय पारथियन साम्राज्य की साधारण आर्थिक स्थिति को प्रमाणित करता है। कुछ विद्वानों का विचार है, कि ऐसा भी हो सकता है पहले के शासकों—भारतीय यूनानी तथा शक-द्वारा बड़ी

मात्रा में जारी किए हुए चाँदी के सिक्कों को पारथियनों ने बड़े मूल्य के सिक्कों के लिए इस्तेमाल किया। साथ ही साथ कम मूल्य के सिक्के भी जारी किये गये होंगे जिसमें कीमती धातु की थोड़ी-सी मात्रा ही मिलायी गयी।

एबडागासेस, गॉडोफायस के तुरन्त बाद, उसका उत्तराधिकारी बना। जैसा कि दोनों के सामूहिक रूप से जारी किए हुए सिक्कों से जान पड़ता है, उसने कुछ समय तक अपने चाचा की अधिनस्थता में शासन किया। ऐसे बहुत से सिक्के हैं जिन पर गॉडोफायस और उसके भतीजे एडागासेस दोनों का नाम अंकित है। तक्षिला में सिरकप के पास खुदाई में मिले अनेक छोटे सिक्कों से पारथियन राज्य के अंत के बारे में मालूम होता है। समय के साथ-साथ पारथियन भारतीय समाज में घुलमिल गये।

बोध प्रश्न 1

1 ✓ या × का चिह्न लगाइए।

- शुंग राज्य मौर्यों के तुरंत बाद स्थापित हुआ।
- ईसा के दो सौ वर्ष के पूर्व की अवधि से लेकर सन् 300 ई. तक के इतिहास की जानकारी के लिए पौराणिक वृत्तांत महत्वपूर्ण स्रोत है।
- कालिदास हर्षचरित्र का रचयिता था।
- मेनान्दर बौद्ध धर्म में परिवर्तित हुआ।
- जूनागढ़ के शिला लेख संस्कृत में लिखे गये।

2 शुंग कौन थे? उनके शासन की रूप रेखा दीजिए। उत्तर 10 पंक्तियों में दीजिये।

3 उत्तर-पश्चिम भारत में शकों के शासन के महत्व पर 10 पंक्तियों में प्रकाश डालिये।

4 ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व-से सन् 300 तक की अवधि के इतिहास को जानने के लिए आप किस स्रोत को सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं? 10 पंक्तियों में बताइये।

23.7 कृषाण

अब हम कृषाण नाम के एक अन्य वंश की चर्चा करेंगे, जिसने उत्तर-पश्चिम भारत के बाहरी क्षेत्र पर पार्थियनों के बाद राज्य करना शुरू किया और धीरे-धीरे उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों में फैल गया। कृषाण यहूदिया थे, वे तोचारियन के नाम से भी जाने जाते हैं। उनका संबंध यहूदी जनजाति के पांच कबीलों में से एक से था। यह खानाबदोश लोग थे, जो मूलतः उत्तर मध्य-एशिया के स्टेपीज (घास के मैदान वाले क्षेत्र) के रहने वाले थे और चीन के पड़ोस में बसे हुये थे। इन्होंने पार्थियनों को गांधार तथा शकों को बेक्ट्रिया क्षेत्र से उखाड़ फेंका। कृषाणों ने अपने राज्य को पहले भारत की सरहद के दूसरी ओर के क्षेत्र में मजबूत किया। धीरे-धीरे उनका आधिपत्य भारत में बढ़ने लगा और उन्होंने अपने राज्य क्षेत्र को सिंधु घाटी के निचले भाग तथा गंगा के अधिकतर मैदानी भाग बनारस तक बढ़ा लिया। कृषाणों का साम्राज्य केवल एक शताब्दी से कुछ अधिक समय तक ही कायम रहा, पर उनके भारतीय समाज में समावेश तथा संस्कृति में योगदान का भारतीय मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। शक तथा पल्लव की भाँति, महाकाव्य, पुराण तथा दूसरे साहित्यिक स्रोतों में उनकी चर्चा की गयी है। कृषाणों के महत्व का एक विशेष कारण यह भी है कि उनका साम्राज्य पश्चिमी एशिया, चीन, भारत, मध्य एशिया तथा भूमध्य सागरीय सभ्यताओं का मिलन-स्थल बना।

सिक्के, शिलालेख तथा अन्य स्रोत दो कृषाण वंशों के बारे में जानकारी देते हैं। पहला वंश कुजुला कदाफिसेस से शुरू हुआ। उसने पांच यहूदी जन-जातियों को मिलाया और भारत में प्रवेश करने में सफल होकर काबुल और काश्मीर में अपने राज्य की स्थापना की। कुजुला कदाफिसेस ने तांबे के अनेक प्रकार के सिक्के जारी किए, एक प्रकार के सिक्कों पर रोमन-शैली में पुरुष की अर्ध प्रतिमा मिलती है। विमा कदाफिसेस कुजुला कदाफिसेस का उत्तराधिकारी बना। उसने नये प्रकार के सिक्के जारी किए। भारतीय शासकों द्वारा नियत रूप से सोने के सिक्के जारी करने की प्रथा उसी के समय से शुरू हुई। उसने किसी हद तक सोने के सिक्के ढालने की रोमन प्रणाली अपनायी, जो धातु के वजन पर निर्भर थी और यह व्यवस्था थोड़े संशोधन के बाद गुप्त काल तक जारी रही। यह स्पष्ट है कि विमा द्वारा जारी किये हुये सोने तथा ताम्बे के सिक्के उसके रोमन जगत से घनिष्ठ संपर्क की ओर संकेत करते हैं।

कनिष्क प्रथम कदाफिसेस शासकों का उत्तराधिकारी था। वह कृषाण शासकों में सबसे अधिक मशहूर है, इसका विशेष कारण था उसका बौद्ध धर्म से लगाव। पहले दो कदाफिसेस राजाओं से कनिष्क का क्या संबंध था, इसका रहस्य अभी तक बना हुआ है। पर यह बात स्पष्ट है कि वह भी मध्य एशियाई मूल का था, चाहे उसका पहले दो शासकों से कोई सीधा संबंध न हो। कनिष्क प्रथम के समय में कृषाण शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसका युग उत्तर भारत में सांस्कृतिक उन्नति तथा विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों से संबंध रखने वाले लोगों के समन्वय का युग था।

ऐसा समझा जाता है कि कनिष्क प्रथम सन् 78 से 144 ई. के बीच या शायद उसके बाद सिंहासन पर बैठा। आम तौर पर सन् 78 ई. से शुरू होने वाले युग को शक युग समझा गया है और सन् 78 ई. में ही संभवतः कनिष्क भी गद्दी पर बैठा। अपनी चरम सीमा पर कृषाण साम्राज्य मध्य प्रदेश में सांची तक तथा उत्तर प्रदेश में वाराणसी तक फैल गया था। पुरुषपुर के बाद जो आजकल के पेशावर के निकट था मथुरा दूसरा प्रधान नगर था। पुरुषपुर में कनिष्क ने एक बहुत बड़े स्तूप और मठ का निर्माण किया।

कनिष्क बौद्ध धर्म का महान् समर्थक तो था ही, उसका बौद्ध धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध धर्म के दर्शन और सिद्धांत पर विचार करने के लिये उसकी छत्र छाया में चौथी बौद्ध

सभा का आयोजन हुआ। बौद्ध के महायान स्वरूप से संबंधित धर्म सिद्धांतों को इस सभा में अन्तिम रूप दिया गया। धर्म प्रचार पर भी जोर दिया गया। फलस्वरूप बौद्ध भिक्षुओं ने उस युग में मध्य एशिया और चीन की यात्रा करना शुरू किया। कनिष्क ने कला तथा संस्कृत साहित्य को भी बढ़ावा दिया।

कनिष्क के उत्तराधिकारियों ने एक शताब्दी से अधिक की अवधि तक राज किया, पर कृषाण राज्य धीरे-धीरे कमजोर होता गया। कुछ शासकों ने वासुदेव जैसे भारतीय नाम भी रखे। तीसरी शताब्दी के मध्य में अफगानिस्तान तथा सिंधु नदी के पश्चिमी क्षेत्र में फैला कृषाण साम्राज्य ईरान के सासानियन शासकों ने हथिया लिया। उन्होंने पेशावर और तखिला पर कब्जा कर लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि कृषाण इन शासकों के अधीन हो गये।

23.8 उत्तर भारत की स्थानीय शक्तियाँ

अभी तक हमने उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत के प्रमुख वंशों की ऐतिहासिक रूपरेखा पर विचार किया जिन्होंने ईसा के 200 वर्ष पूर्व से सन् 300 ई. तक शासन किया। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इन महाशक्तियों के साथ ही इसी युग में अनेक स्थानीय राज्य वंश और शक्तियाँ थीं जिन्होंने देश के कई कोनों में अलग-अलग समय पर शासन किया। यहां पर इनकी संक्षिप्त रूप में चर्चा की जायेगी।

हम कन्व या कन्वयान का हवाला पहले ही दे चुके हैं। शुंगों के बाद वासुदेव ने कन्वों के राज्य की बुनियाद रखी। उनकी शक्ति शायद मगध तक ही सीमित थी और थोड़े समय तक ही कायम रही। पुराणों में शासकों की उस शृंखला की चर्चा की गयी है। ऐसा समझा जाता है कि इस वंश के शासकों ने कुछ सिक्के भी जारी किये।

पश्चिम की ओर गंगा-यमुना के मैदान के ऊपरी भाग में अनेक स्थानीय वंशों ने शासन किया जिनका नाम हमें उनके द्वारा जारी किये सिक्कों से मालूम होता है। इस तरह के सिक्कों के प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि अयोध्या, कौसान्बी, मथुरा तथा पांचाल जैसे छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य लगभग एक ही युग में मौजूद थे। पंजाब पर जो पुष्यमित्र के समय में शायद शुंग राज्य का हिस्सा था, उसके उत्तराधिकारियों का कब्जा हो गया। यूनानियों ने रावी नदी तक के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। बाद के शुंग शासकों की कमजोरी का फायदा उठाकर, तथा अपनी आर्थिक समृद्धि के बल पर रावी तथा यमुना के बीच रहने वाली क्षेत्रीय जनजातियाँ अपनी स्वतंत्रता का दावा करने लगीं। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार थे :

- औछुम्बर जिन्होंने रावी और व्यास के बीच के ऊपरी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।
- कनिन्द, जिन्होंने शिवालिक पहाड़ी शृंखला के नीचे, व्यास तथा यमुना के ऊपरी भाग के बीच के क्षेत्र पर राज्य किया।
- त्रीगर्त ने रावी और सतलज के बीच के मैदान पर राज्य किया।
- यौध्येय प्रसिद्ध यौद्धा थे और उनका राज्य क्षेत्र सतलज और यमुना के बीच तथा पूर्वी राजस्थान के कुछ भागों में फैला हुआ था।
- अर्जुन्य, मालवा तथा सिबि जनजातियों का राज्य क्षेत्र राजस्थान के विभिन्न भागों में फैला हुआ था।

उड़ीसा में कलिंग एक अन्य क्षेत्र था जो अब महत्वपूर्ण हो गया। आपको याद होगा कि अशोक ने कलिंग के स्थानीय शासक से कलिंग दूसरी बार जीता, पर हमें स्थानीय शासन का नाम नहीं मालूम है। मौर्य काल के बाद के दिनों में स्थानीय शासकों की एक कड़ी सामने आती है जो महामेवाहन के नाम से जानी गयी। उनका संबंध प्राचीन चेड़ी वंश से था। खारवेल, इस शृंखला का तीसरा शासक था। इसकी पुष्टि भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ियों पर उसके द्वारा खुदवाये हुये शिला लेखों से होती है। इन लेखों में उसके राज्य के तेरहवें साल तक का वार्षिक वृत्तान्त है। इनके अनुसार खारवेल एक महान राजा था जिसने उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में सैनिक विजय प्राप्त की। उसने अपनी प्रजा के लिये अनेक जनोपयोगी कार्य किये तथा जैन धर्म का अनुयायी होने के नाते उसने जैन मुनियों को आश्रय देने के लिए उदयगिरि पहाड़ियों में अनेक गुफायें भी खुदवायीं।

23.9 मध्य एशिया तथा उत्तर भारत के सम्पर्क का महत्व

विदेशी शासकों के उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत के क्षेत्रों पर राजनैतिक अधिकार के अंतर्गत नवीन सांस्कृतिक तत्वों का भारतीय समाज की धारा में समावेश अन्तर्निहित था। मध्य एशिया से सम्पर्क ने व्यापार, टेक्नालॉजी, कला आदि क्षेत्रों को प्रभावित किया जिसकी चर्चा हम अलग-अलग करेंगे।

23.9.1 व्यापार और तकनीकी

विदेशियों के भारत में प्रवेश से मध्य एशिया और भारत के बीच स्थायी रूप से व्यापार सम्बन्ध स्थापित हुये। अफगानिस्तान से व्यापार तो पहले से हो रहा था, पर अब मध्य एशिया के साथ सम्पर्क ने व्यापार के नये रास्ते खोले। इनमें से एक रास्ता प्राचीन सिल्क रूट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विभिन्न देश तथा मूल के व्यापारियों ने व्यापार केन्द्र तथा बस्तियां स्थापित कीं जहाँ से वे कारोबार चलाते थे। ऐसे कुछ केन्द्र थे कशगर, यारकन्द, खोतान, मीरन, आदि। व्यापार को न केवल भारतीयों ने, बल्कि बौद्ध प्रचारकों ने भी बढ़ावा दिया। व्यापार की उन्नति से यातायात बेहतर हुआ। कुषाणों का सिल्क रूट पर नियंत्रण था। यह मार्ग चीन से शुरू होकर, मध्य एशिया, अफगानिस्तान तथा पश्चिमी एशिया से गुजरता था और इस मार्ग के द्वारा व्यापार कुषाणों की आमदनी का एक बड़ा स्रोत था। वे व्यापारियों पर चुंगी कर लगाते थे। भारत को मध्य एशिया के अलताई पर्वत से काफी मात्रा में सोना प्राप्त हुआ। सोने की प्राप्ति रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार से हुयी होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि, कुषाण शासकों ने बड़े पैमाने पर सोने के सिक्के जारी किये। व्यापार संबंध और मार्गों की विस्तृत जानकारी इस खण्ड की इकाई 24 में दी जाएगी।

शक तथा कुषाणों ने युद्ध विद्या तथा अश्वारोही सेना में अनेक नवीन तरीकों को शामिल किया। घुड़सवारी काफी लोकप्रिय हो गयी। उन्होंने घोड़े की लगाम और जीन को प्रचलित किया। उनका प्रयोग हमें समकालीन बौद्ध मूर्तियों में साफ नजर आता है। अफगानिस्तान के बेगरम क्षेत्र में खुदाई में मिली टेराकोटा (पक्की मिट्टी) की अनेक मूर्तियों पर घुड़सवारी के खेल का चित्रण इस युग में घुड़सवारी के बढ़ते हुए शौक का प्रमाण है। मध्य एशिया से सैनिकों के प्रयोग के लिये टोपी, हेलमेट (टोप) तथा बूट (जूता) भी भारत में आए। युद्ध के यह नवीन यंत्र उत्तर-पश्चिम भारत में प्रचलित हुये।

23.9.2 भौतिक अवशेष

मूर्ति, बरतन तथा सिक्के हमें नवीन तकनीक के प्रभाव को स्पष्ट जानकारी देते हैं। शक-कुषाण युग में गृह निर्माण की कला में प्रगति हुयी। उत्तर भारत में की गयी खुदाई में इमारतों के अनेक अवशेष प्राप्त हुये। इनसे छत तथा फर्श दोनों ही में पक्की ईंटों के प्रयोग का पता चलता है। ईंट के बने हुये कुएं भी इस युग में प्रचलित थे। इस युग के बरतन, लाल मिट्टी के बनते थे। कुछ पर पालिश भी की जाती थी, बनावट में कुछ औसत दर्जे के और कुछ उत्तम और सुन्दर थे। प्राप्त हुये बरतनों में पानी छिड़कने के तथा टोटीदार बरतन प्रमुख है। मध्य एशिया में प्राप्त कुषाण अवशेषों में भी लाल रंग की वस्तुएं मिलती हैं। कुछ कुषाण सिक्कों का आकार रोमन सिक्कों से प्रभावित लगता है। कुषाण सिक्कों की अपनी मौलिकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, पर इसमें संदेह नहीं कि अनेक सिक्कों में भारतीय यूनानी शैली का रूपांतर दिखायी देता है।

23.9.3 राज्य तंत्र

शक तथा कुषाण दोनों ही ने उस धारणा पर बल दिया कि राजत्व का ईश्वर से सीधा सम्बन्ध है। कुषाण राजा ईश्वर के पुत्र कहे जाते थे, यह शायद चीन का प्रभाव था। कभी ऐसा भी हुआ कि उन्होंने रोमन पदवी सीजर को भी एक भारतीय रूप देकर ग्रहण किया। राजा अपने प्रभुत्व को शक्तिशाली रूप में प्रदर्शित करने के लिए ऐसा करता था। कानून बनाने वाले ब्राह्मण मनु की रचनाओं में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं।

शकों ने शासन की सत्रप व्यवस्था अपनायी। राज्य सत्रपों में विभाजित था। यह भी प्रमाण मिलता है कि प्रशासन अधीनस्थ शासकों द्वारा चलाया जाता था। भारतीय-यूनानी शासन काल में नगर तथा अन्य छोटी इकाइयों के प्रशासन का कार्य भेरी दर्ख जैसे अधिकारियों की सहायता से किया जाता था। शिला लेखीय तथा मुद्रा संबंधित स्रोतों से अनेक क्षात्रप और महाक्षत्रप के नामों की जानकारी होती है। (इसी इकाई में 23.5 देखें)। विदेशी शासकों में से कुछ ने वंशानुगत शासन

की प्रणाली में युगल शासकों की प्रथा को भी शामिल कर लिया। अर्थात् छोटे और बड़े पद के दो राजा साथ-साथ एक राज्य का शासन करें। जैसे पिता और पुत्र का एक साथ राज्य करना। संभवतः यूनानियों द्वारा सैनिक गवर्नर नियुक्त करने की प्रथा शुरू की गयी। इन गवर्नरों को सत्रातेगों की पदवी दी जाती थी। उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी क्योंकि उन्हें स्थानीय जनता के बीच राजा के प्रभुत्व को बनाये रखना था तथा उत्तर-पश्चिम की ओर से आक्रमण को रोकना था।

23.9.4 धर्म और कला

इस इकाई में पहले ही चर्चा हो चुकी है कि मेगस्थनीस तथा कनिष्क जैसे कुछ शासकों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। कई शासक विष्णु तथा अन्य कई शिव के उपासक थे। हमारे पास कुषाण शासक वासुदेव का उदाहरण है, जिसका नाम कृष्ण के अनेक नामों में से एक है तथा जिसकी विष्णु के अवतार के रूप में पूजा की जाती थी। कई कुषाण शासक विष्णु और बुद्ध दोनों की पूजा करते थे, उनकी प्रतिमा अनेक कुषाण सिक्कों पर अंकित है। हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि सांस्कृतिक समावेश की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप विदेशी शासकों ने भारतीय विचारधारा तथा उपासना के तरीकों को अपनाया। उन शासकों ने भारतीय कला तथा साहित्य को भी प्रोत्साहित किया। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि विदेशी तथा भारतीय संगतराश, राजगीर तथा कारीगरों ने एक दूसरे को प्रभावित किया। यूनानी तथा रोमन शैली में निपुण कारीगरों का भारतीय शिल्पियों तथा कारीगरों से सम्पर्क स्थापित किया। इसी सम्पर्क और आदान-प्रदान के फलस्वरूप, गांधार की बुद्ध मूर्तियों की शैली ने जन्म लिया। यह उस क्षेत्र में मौजूद अनेक सांस्कृतिक धाराओं के समन्वय का प्रतीकात्मक उदाहरण है। गांधार कला का प्रभाव मथुरा तक पहुँचा। जहाँ हमें इस युग की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ तथा अन्य कलाकृतियाँ भी मिलती हैं। कला के विभिन्न प्रकारों पर विस्तृत चर्चा इसी खण्ड में कला तथा वास्तुकला से संबंधित इकाई में की जायेगी।

संक्षेप प्रश्न 2

- 1) $\sqrt{\text{या}} \times$ का चिन्ह लगाइये।
 - क) कुषाण यह ची जनजाति से संबंध रखते थे।
 - ख) कन्वयान एक स्थानाय वंश था जो मगध में शासन करता था।
 - ग) यौधेय प्रसिद्ध योद्धा थे जो सतलज और रावी के बीच के क्षेत्र में राज्य करते थे।
 - घ) शकों ने भारत में सत्रप व्यवस्था लागू की।
- 2) निम्नलिखित विषयों पर 15 पंक्तियों में जानकारी दीजिये।
 - क) मध्य एशियाई सम्पर्क का प्रभाव।
 - ख) भारतीय समाज की धारा में विदेशियों का समावेश।

23.10 सारांश

यूनानी, शक, पार्थियन तथा कृषाण सभी का समय के साथ-साथ भारतीय समाज में विलय हो गया। वे भारत में योद्धा के रूप में आये, उस लिये उनमें से अधिकतर भारतीय समाज में योद्धा वर्ग या क्षत्रियों के रूप में सम्मिलित हो गए। ब्राह्मण कानून लागू करके उन्हें अपनाने की समस्या ब्राह्मणों ने इस प्रकार सुलझाई कि उन्हें क्षत्रियों के उस वर्ग में रखा गया जो अपने कर्तव्य का पालन करने में असफल रहे। इस प्रकार विदेशियों की एक बड़ी संख्या को ब्राह्मणवादी व्यवस्था में स्थान दे दिया गया जिसके बिना भारतीय सामाजिक व्यवस्था अधूरी रह जाती। उस इकाई के दौरान हमने मौर्य काल के बाद से सन् 300 ई. तक की मुख्य राजनैतिक धाराओं का अनुमान लगाया। उत्तर भारत में राजनैतिक शक्ति अधिकांश उन्हीं लोगों के हाथ में थी जो मूलतः मध्य एशिया के थे और उत्तर पश्चिमी सरहद से भारत में आये। फलस्वरूप अनेक देशों के बीच न केवल व्यापार और यातायात मार्ग स्थापित हुये, बल्कि इतने बड़े पैमाने पर आबादी तथा विचार धारा के आवागमन का सांस्कृतिक ढांचों पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

23.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) i) ✓ ii) ✓ iii) × iv) ✓ v) ✓
- 2) भाग 23.3 देखें
- 3) भाग 23.5 देखें
- 4) भाग 23.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

- 1) i) ✓ ii) ✓ iii) × iv) ✓
- 2) क) भाग 23.9 देखें
ख) भाग 23.7 देखें।

इकाई 24 व्यापार तथा शहरीकरण का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

- 24.0 उद्देश्य
- 24.1 प्रस्तावना
- 24.2 भौगोलिक पृष्ठभूमि
- 24.3 राजनैतिक ढांचा
- 24.4 व्यापार का विस्तार तथा वस्तुओं का उत्पादन
 - 24.4.1 देशीय व्यापार
 - 24.4.2 विदेशी व्यापार
 - 24.4.3 मुख्य व्यापार मार्ग
 - 24.4.4 शहरी केन्द्र
- 24.5 व्यापार में धर्म की भूमिका
- 24.6 व्यापारियों की स्थिति
- 24.7 सारांश
- 24.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि

- व्यापार की वस्तुओं का उत्पादन अथवा उनकी प्राप्ति किस प्रकार होती थी
- व्यापार कैसे चलता था
- उत्तरी भारत में व्यापार के मुख्य मार्ग कौन से थे
- विकसित होने वाले मुख्य शहरी केन्द्र कौन से थे
- भारत के अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का स्वरूप क्या था
- समाज में व्यापारियों की स्थिति कैसी थी ?

24.1 प्रस्तावना

चौथे खण्ड में आपने पढ़ा कि उत्तर वैदिक काल में हुये विकास छठी शताब्दी ई. पूर्व में शहरों के विकास के रूप में किस प्रकार प्रतिफलित हुए। यह आरंभिक नगर गंगा अथवा इसकी मुख्य सहायक नदियों, जो कि संचार में प्रयोग की जाती थी, के तट पर स्थित थे। इनमें से अधिकतर राजनैतिक केन्द्र एवं आरंभिक राज्यों की राजधानी थी। इनमें से कुछ में मिट्टी के परकोटे एवं बांध होते थे। लेकिन सामान्यतः यह बस्तियाँ अनियोजित थीं। इन स्थलों की पुरातात्विक खुदाई बहुत कम हुई है तथा इस समय महलों के होने के प्रमाण नहीं मिल सके हैं। मौर्यकाल के समय में आकर ही जबकि राजधानी राजगृह से हटाकर पाटलीपुत्र बनायी गयी, स्मारकीय वास्तुकला के चिन्ह मिलने आरंभ होते हैं। इन आरंभिक विकासों की तुलना में शहरीकरण की प्रक्रिया उत्तर मगध काल में तीव्र हो गयी शहरों की संख्या बढ़ी तथा अब इनमें राजनैतिक तथा व्यापारिक गतिविधियाँ एकीकृत हो गयी आवासीय घरों तथा किलेबंदी एवं सार्वजनिक इमारतों दोनों में ही ईंट का प्रयोग बड़े पैमाने पर होने लगा। इसी काल में ही भव्य धार्मिक स्मारक बनाए तथा अलंकृत किए गए।

इसी प्रकार प्रथम सहस्राब्दि ईसा पूर्व के मध्य से व्यापारिक गतिविधियाँ आरंभ हो गयी थी। यह व्यापार मुख्यतः नमक, धातु आदि जैसी आवश्यक वस्तुओं से संबंधित था। मौर्य काल में आरंभिक मार्गों का महत्त्व और बढ़ गया। इस विस्तार के दो कारण थे। दकन में खनन किये जाने वाले सोना, हीरा एवं मणि जिन्हें कि व्यापार मार्गों से ले जाया जाता था, राजकीय खजाने की आवश्यकता की पूर्ति करते थे राज्य व्यापारियों से कर वसूल करके राजस्व प्राप्त करता था तथा व्यापार को प्रोत्साहन देता था।

राज्य द्वारा अपनी सेना एवं प्रशासन तंत्र को वेतन भुगतान करने के लिए व्यापार एवं कृषि राजस्व वसूल करना आवश्यक था। हमें यह भी ज्ञात है कि व्यापार थल मार्गों तथा समुद्री मार्गों दोनों ही के द्वारा होता था, मौर्यकाल में, समुद्री व्यापार मुख्यतः तटवर्ती क्षेत्रों में होता था। पश्चिमी तटों के बन्दरगाह संभवतः नर्मदा के मुहाने पर भरूच तथा आधुनिक बम्बई के निकट सोपर थे। पूर्व में ताम्र लिपि अथवा आधुनिक ताम्रलुक बर्मा की ओर जाने वाले जहाजों के लिए एक महत्वपूर्ण मार्ग था। आइए देखें कि इन जल एवं थल मार्गों का द्वितीय एवं प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में किस प्रकार विस्तार हुआ।

24.2 भौगोलिक पृष्ठभूमि

इस इकाई में हम भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में होने वाली गतिविधियों का अध्ययन करेंगे इस उद्देश्य के लिए विभाजन रेखा विंध्य क्षेत्र होगी। अतः दक्कन इस इकाई के अध्ययन क्षेत्र से मुख्यतः बाहर होगा।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कुछ भौगोलिक विशिष्टताएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग के प्रधान नदी समूह सिंधु तथा गंगा हैं। गंगा नदी समूह सिंधु नदी समूह से बिल्कुल भिन्न है। उत्तर में बस्तियों की स्थिति तथा विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। हिमालय से निकल कर बंगाल की खाड़ी तक पहुंचने तक गंगा में कई सहायक नदियों का पानी मिलता है। यमुना, गोमती, घाघरा, गंडक आदि नदियों के गंगा में मिलने से इसमें इतना पानी बढ़ जाता है कि गर्मियों के महीनों में भी सिंचाई एवं कृषि के लिए इसमें पर्याप्त पानी होता है। दक्षिण पश्चिम मानसून से मुख्यतः मध्य एवं निचली गंगा घाटी में वर्षा होती है। तथा यह क्षेत्र एक बड़ी जनसंख्या के भरण पोषण की दृष्टि से काफी उपजाऊ है। केवल यही नहीं कि गंगा घाटी कृषि के लिए काफी उपजाऊ है। यह नदी नौ परिवहन के लिये उपयुक्त है। प्राचीन काल से गंगा से वस्तुओं एवं मनुष्यों का आवागमन होता रहा है तथा यह नदी उत्तर-पश्चिमी शहरों को नकटवर्ती तटों से जोड़ने वाली उत्तर की रक्षा-रेखा रही है।

इसके विपरीत सिंधु घाटी में दक्षिण-पश्चिम मानसून से काफी कम वर्षा होती है इसकी मुख्य सहायक नदियां झेलम, चेनाब, रावी, सतलज तथा बेयास पंजाब में मिलती हैं जहाँ का क्षेत्र उपजाऊ है। किन्तु इसके अतिरिक्त अरब सागर तक सिंधु रेगिस्तान से होकर बहती है जिससे नरंतर इसका पानी कम होता जाता है। इसके कारण कृषि उत्पादन तथा नौ संचालन की दृष्टि से इस नदी की उपयोगिता काफी कम हो गयी।

एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हिमालय के दरों की स्थिति है। यह दरें व्यापार की वस्तुएं भारत के अन्दर आने तथा भारत एवं मध्य एशिया के बीच सम्पर्क का महत्वपूर्ण माध्यम रहे हैं।

24.3 राजनैतिक ढांचा

उत्तरी भारत की राजनैतिक परिस्थिति की समीक्षा यहां आवश्यक है क्योंकि इसी इकाई में आगे चलकर हम एक ऐसे प्रश्न पर चर्चा करेंगे जिससे इस परिस्थिति का संबंध है व्यापार पर नियंत्रण किसका था? इसका नियंत्रण राजाओं एवं शासकों के हाथ में होता था अथवा व्यापारियों के हाथ में? आपको ज्ञात है कि मौर्य काल में मगध शक्ति का केंद्र बना हुआ था किन्तु मौर्य वंश के पतन के साथ ही मगध की प्रधानता समाप्त हो गयी और कई नए केंद्र विकसित हुए। गंगा घाटी, विशेषकर मगध पर ईसवी युग के आरंभ तक शुंग एवं उसके बाद कण्वों का शासन बना रहा।

उत्तर-पश्चिम में भारत-यूनानी राजा थे जिनका इतिहास मुख्यतः उनके द्वारा जारी की गयी मुद्राओं से जाना जाता है। उनके शासन का अन्त मध्य एशिया के खानाबदोश जनजातियों द्वारा उन पर आक्रमण के साथ हुआ इनमें प्रथम आक्रमण पार्थियनों तथा शकों द्वारा तथा दूसरा यूह-ची जनजाति की ओर से हुआ। इन्होंने काबुल तथा कश्मीर पर अधिकार कर लिया तथा कुषाण राजाओं की परंपरा आरंभ की। सबसे महत्वपूर्ण कुषाण राजा कनिष्क था, यद्यपि उसके शासन का निश्चित काल अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। कुषाणों की राजधानी आधुनिक पेशावर के निकट पुरुषपुरा थी। मथुरा को लगभग दूसरी राजधानी का स्तर प्राप्त था। उनका राज्य पूर्व में वाराणसी तथा दक्षिण में सांची तक फैला हुआ था। कनिष्क के काल में मध्य एशिया तथा चीन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बने तथा इन क्षेत्रों में स्थलमार्ग व्यापार को उन्नति मिली

उत्तर भारत में शक, पार्थव तथा कृषाण वंशों के अतिरिक्त भारी संख्या में स्थानीय शासक भी थे जो विभिन्न स्थानों पर शासन करते थे इनमें से पंजाब एवं राजस्थान के कई शासकों ने मुद्राएं भी जारी कीं। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम वर्षों तथा चौथी शताब्दी ईसवी के आरंभिक वर्षों के बीच लगभग 175 प्रकार की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार निचली गंगा घाटी तथा उड़ीसा तट के आसपास पुरी-कृषाण नाम से जानी जाने वाली मुद्राएं भारी संख्या में मिली हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम भारत में कई बड़े एवं छोटे वंश शासन करते थे। परिणामतः स्थलमार्ग विभिन्न राज्यों से होकर निकलता होगा। संभवतः प्रत्येक शासक अपने केंद्रों पर वस्तुओं के विक्रय पर कर वसूलता होगा। व्यापारियों को सामान्यतः सुरक्षा प्रदान की जाती थी तथा व्यापार को बढ़ावा दिया जाता था।

24.4 व्यापार का विस्तार तथा वस्तुओं का उत्पादन

इस संदर्भ में एक प्रश्न यह उठता है कि उत्तर गुप्त काल में व्यापार गतिविधियों को बढ़ावा मिलने के क्या कारण थे? इस का उत्तर केवल एक नहीं हो सकता क्योंकि इसके कई कारण थे।

- कृषि से उत्पादन अब अतिरिक्त मात्रा में हो रहा था। इस कारण से सामाजिक वर्गों का जन्म हुआ जिन्हें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता महसूस हुई जो कि केवल व्यापार द्वारा ही प्राप्त की जा सकती थी। कृषि उत्पादन अपने आप में व्यापार की वस्तु बन गए थे क्योंकि शहरों में रहने वाली जनसंख्या अपने लिए भोजन का उत्पादन नहीं करती थी।
- बौद्ध तथा जैन मत जिनके अब भारी संख्या में अनुयायी हो चुके थे, दोनों ही धन संग्रहण तथा निवेश को प्रोत्साहन देते थे तथा व्यापार अब उच्च स्तरीय व्यवसायों में गिना जाता था। अतः हम देखते हैं कि व्यापारियों तथा बौद्ध संघों के बीच निकट सम्बन्ध थे तथा व्यापार मार्गों के मुख्य स्थानों पर बौद्ध मठ बनाए गये थे।
- शहरी केन्द्रों के विकास का अर्थ था कि उपभोक्ता का एक ऐसा वर्ग उदयीमान था जिसे जीवन यापन तथा विलास की वस्तुओं की आवश्यकता थी।

इस आंतरिक कारणों के साथ-साथ विदेशों में भारतीय माल की मांग भी एक कारण थी। इस काल में उभरने वाले दो मुख्य साम्राज्य पश्चिम रोमन साम्राज्य तथा चीन में उत्तर हान साम्राज्य थे, रोमन साम्राज्य के अंतर्गत पूर्व के उत्पादनों जैसे मसाले, सुगन्धित लकड़ी आदि की काफी मांग थी। इसी प्रकार उत्तर हान साम्राज्य ने व्यापारियों को काफी प्रोत्साहन दिया जिसके कारण भारत, मध्य एशिया तथा चीन के बीच सम्पर्क बढ़ता गया। व्यापार मार्गों के वर्ग में हम चर्चा करेंगे कि देशीय व्यापार मार्ग विदेशी व्यापार तंत्र से किस प्रकार जुड़े किन्तु इस बिन्दु पर हम इस काल के हस्तकला उत्पादन के प्रमाणों का विश्लेषण करेंगे।

देश भर में बौद्ध स्थलों से भारी संख्या में अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों में बौद्ध संघों को दिए जाने वाले अनुदानों तथा भेंटों का उल्लेख है। साथ ही इनमें कुछ व्यवसायों एवं व्यवसायिक वर्गों की संपन्नता का भी उल्लेख मिलता है।

अतएव मथुरा में मिले अभिलेखों में व्यापारियों की विभिन्न श्रेणियों जैसे वणिज, सर्थवाह, श्रेष्ठिन तथा विभिन्न व्यवसायों जैसे सुनार, जौहरी, कोषपाल, लौह व्यापार आदि का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इनमें शिल्पी संघ, जिसमें से एक को आटा बनाने वाले शिल्पी संघ के रूप में प्रमाणित किया है, का भी उल्लेख है। वस्तुकारों तथा शिल्पी संघ के विषय में जानकारी आरंभिक बौद्ध साहित्य तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलती है। एक कला के विशेषज्ञ समूहों के एक साथ किसी गांव में रहने के उल्लेख मिलते हैं। उदाहरण के लिए जातकों में काशी के एक सीमा स्थिति गांव का उल्लेख है जहां भारी संख्या में बढ़ई रहते थे तथा व्यापारी उक्त गांव व्यापार की दृष्टि से जाते रहते थे। माल प्राप्त करने का एक अन्य तरीका बन्दरगाहों का भ्रमण करना होता था। जब कोई जहाज बन्दरगाह पहुंचता था तो व्यापारी माल खरीदने के लिए वहां इकट्ठे हो जाते थे। बहुधा उन्हें जहाज के माल में अपना हिस्सा सुरक्षित करने के लिए पेशगी भी देनी पड़ती थी।

अर्थशास्त्र के अनुसार कुछ दस्तकार अपने सहयोगियों के साथ स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे तथा अन्य शिल्पी संघ में संगठित थे। अभिलेखों में इन दस्तकारों द्वारा किए गए अनुदानों का उल्लेख मिलता है तथा पुरातात्विक खुदाई से इनकी कला के नमूने भी प्राप्त हुए। कपड़ा बनाना काफी महत्वपूर्ण दस्तकारी कला थी तथा सूती कपड़े भारत से निर्यात किए जाते थे। उत्तर में मथुरा

और वाराणसी सहित कपड़ा उत्पादन के कई केंद्र थे। मथुरा में एक अनुदान एक रंगरेज की पत्नी द्वारा किया गया था। दस्तकारों की अन्य श्रेणियों में जौहरी, इत्रसाज तथा लुहार थे। आरंभिक ऐतिहासिक स्थलों पर मनको तथा अन्य आभूषणों की प्राप्ति प्रचुर मात्रा में हुई है। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि उत्तर में उज्जैन मनके बनाने का मुख्य केंद्र था। यहां मनके अर्ध बहुमूल्य पत्थरों, कांच, हाथी दांत तथा मिट्टी के बनाए जाते थे तथा उत्तर की ओर कई केंद्रों पर इनकी बड़ी मांग थी। सांची स्थित अभिलेखों पर हाथीदांत आकृतियों तथा हाथीदांत कर्म के उत्कृष्ट उदाहरण सौभाग्यवश सुरक्षित बचे हुए हैं। बेगराम अथवा अफगानिस्तान के प्राचीन कपिसा में हुई खुदाई में हाथीदांत गठित आकृतियां भारी संख्या में प्राप्त हुई हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल में व्यापार में विभिन्न प्रकार की वस्तुएं विद्यमान थी। इनमें विलास की वस्तुएं जैसे हाथीदांत की वस्तुएं, आभूषण, मनके, मोती, हीरे तथा अन्य बहुमूल्य पत्थर तथा सामान्य प्रयोग की वस्तुएं जैसे कपड़े, कृषि उत्पादन तथा लौह उपकरण आदि शामिल हैं। निस्संदेह इनमें से कई वस्तुएं निर्यात भी की जाती थी जिन पर अलग से चर्चा की जाएगी। व्यापार की एक अन्य वस्तु संभवतः शराब थी। अर्थशास्त्र में मद्य के उत्पादन पर विस्तार से चर्चा की गयी है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण इस काल की मूर्तिकला में विशेषकर संधोल एवं मथुरा में चित्रित मदपान दृश्यों से मिलते हैं।

24.4.1 देशीय व्यापार

एक ओर जहां मिलिंद पण्ह तथा जातक जैसे साहित्य स्रोतों से व्यापार तंत्र के संगठन के विषय में जानकारी मिलती है, इस विषय में अतिरिक्त प्रमाण पुरातात्विक शिल्प तथ्य जैसे मुद्राओं, मुहरों तथा मुद्रांकणों से प्राप्त हो जाते हैं मिलिंद पण्ह का रचनाकाल इसवी युग के आरंभ के लगभग है। इसका मूलपाठ अब उपलब्ध नहीं है तथा जो पाठ उपलब्ध है वह मूलपाठ का पाली अनुवाद है जो कि श्री लंका में काफी पहले तैयार किया जा चुका था। पाली में ही रचित जातक कथाओं की संख्या पांच सौ है तथा इन कथाओं में बुद्ध के पूर्व जन्मों का उल्लेख मिलता है। साथ ही इनमें इस काल की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण भी मिलता है। बौद्ध स्मारकों की नक्काशी से हमें पता चलता है कि इनमें से कई कथाएं प्रथम-द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में प्रचलित थीं। जातको से हमें ज्ञात होता है कि व्यापारिक गतिविधियों के विभिन्न तरीके प्रचलित थे तथा वस्तुओं का मूल्य निश्चित करने की भी कई पद्धतियां थीं। उदाहरण के लिए घोड़ों, हाथियों और मणिकों जिनका प्रयोग मुख्यतः शासक वर्ग करता था, के मूल्य का निर्धारण राजसभा में मौजूद एक मूल्यांकक करता था। श्रेष्ठतम घोड़े पश्चिम एशिया तथा मध्य एशिया से आते थे। यह घोड़े विशिष्ट व्यापारियों द्वारा लाए एवं बेचे जाते थे। पूर्वकालीन पाली एवं संस्कृत ग्रंथों में इन व्यापारियों का उल्लेख अश्व व्यापारी के रूप में मिलता है। व्यापारी शिल्प संघों में संगठित होते थे। अन्य व्यापारी निजी धन से व्यापार चलाते थे। कुछ व्यापारी केवल वित्त निवेश करके व्यापारियों को धन उपलब्ध कराते थे। इन भिन्न व्यापारियों के लिए संबोधन भी भिन्न थे वणिज सामान्य व्यापारी होता था, सेठी धनदाता होता था तथा सार्थवाह सुदूर प्रदेश से माल लाने वाले कारवां का मुखिया होता था।

इन साहित्यिक उल्लेखों के अतिरिक्त मुहरों, मुद्रांकणों तथा मुद्राओं से मिलने वाले प्रमाण भी हैं मुहर एक छाप होती थी जिस पर उसके स्वामी का नाम अथवा कोई चिन्ह बना होता था जबकि किसी वस्तु पर इसकी छाप को मुद्रांकण कहा जाता था। मुहरे विभिन्न वस्तुओं जैसे पत्थर, हाथीदांत ताम्र, सीसा आदि की बनी होती थी तथा इनका प्रयोग पहचान तथा माल की सुरक्षा के लिए होता था। वस्तुओं की आपूर्ति के पहले माल को रस्सी से बांध दिया जाता था तथा गांठ के ऊपर गीली मिट्टी लगा कर उस पर मुहर लगा दी जाती थी। इसके बाद मिट्टी को धूप अथवा गर्मी पहुंचा कर सुखा दिया जाता था। उत्तर भारत में पुरातात्विक स्थलों पर इस प्रकार के मिट्टी पर मुद्रांकण तथा उनके पिछले भाग पर रस्सियों के निशान सहित भारी संख्या में मिले हैं।

व्यापारिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण प्रमाण मुद्राओं के चलन से मिलता है। मौर्य काल में चांदी की अंकित मुद्राओं के साथ ढली हुई गैर अंकित ताम्र मुद्राओं का भी चलन था उत्तर मौर्य काल में मुद्राओं के प्रकार एवं संख्या में भारी बढ़ोत्तरी हुई। मुद्राओं पर अंकन आरंभ हुआ तथा इनकी ढलाई में काफी सुधार आया, ताम्र सिक्कों की ढलाई के लिए लगभग 100 ईसा पूर्व पुराने सांचे विभिन्न स्थानों जैसे खोकराकोट (जिला रोहतक), सुनेत (जिला लुधियाना), तक्षशिला तथा सांची में हज़ारों की संख्या में प्राप्त हुए हैं। उत्तरी भारत के गण संघों तथा स्थानीय वंशों द्वारा लगभग 200 प्रकार के सिक्के जारी किए गए थे।

उत्तर-पश्चिम के भारतीय-यूनानी राजाओं ने कई प्रकार की आकृति चित्रित सुन्दर मुद्राएं जारी कीं, जिनका भारत में कई शताब्दियों तक चलन बना रहा। चांदी तथा ताम्र की इन मुद्राओं पर

द्विभाषी अभिलेख अंकित होते थे। मुद्रा के एक ओर यूनानी भाषा एवं लिपि में तथा दूसरी ओर प्राकृत भाषा में सामान्यतः खारोष्ठी लिपि में अभिलेख अंकित होते थे पश्चिमी भारत में क्षत्रपों की मुद्राएं काफी महत्व रखती हैं क्योंकि इनमें शक युग के प्रयोग के आरंभिक चिन्ह मिलते हैं जिससे काल निर्धारण के लिए निश्चित आधार प्राप्त हो जाता है। आरंभिक ईसवी शताब्दियों की मुद्रा शृंखला का एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण कृषाणों की मुद्राएं हैं, ताम्र के अतिरिक्त कृषाणों ने सोने की मुद्राएं भी ढाली जिन पर भारतीय, यूनानी तथा ईरानी देवताओं की विभिन्न आकृतियां अंकित हैं। मुद्राओं के प्रकार एवं व्यवस्था की यह बहुलता धन के विस्तृत स्तर पर इस्तेमाल का चोतक है।

अर्थशास्त्र में वेतन मुद्रा के रूप में भुगतान किए जाने का उल्लेख है। जातक कथाओं में जमानत देकर माल खरीदने तथा व्यापारियों द्वारा ऋण पत्र देकर धन उधार लेने का उल्लेख है। हमें यह भी ज्ञात है कि शिल्पी संघ धरोहर के रूप में रखकर धन पर ब्याज देते थे, जिसका उल्लेख मथुरा के एक अभिलेख पर अंकित मिलता है। देशी मुद्राओं के साथ विदेशी सिक्के, विशेषकर रोमन सिक्के व्यापार के द्वारा भारत आए। उत्तरी भारत में कम संख्या में ही रोमन सिक्के प्राप्त हुए हैं यद्यपि मिट्टी पर इन सिक्कों के नकल, जिसे "बुले" कहा जाता है, के नमूने खुदाई में प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इनमें से कई में धागा डालने के लिए फन्दे बने हुए हैं जिनसे अनुमान लगाया जा सकता है य "बुले" संभवतः गहनों के रूप में प्रयोग किए जाते होंगे।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके आगे सही (✓) अथवा गलत (x) का चिन्ह लगाएं।

- छठवीं शताब्दी ई.पू. के शहर प्रमुख नदियों के तटों पर स्थित थे
- सिंधु नदी समूह में जल स्रोत गंगा की अपेक्षा अधिक थे।
- अर्थशास्त्र के अनुसार दस्तकार स्वतंत्र रूप से बिना किसी शिल्पी संघ में संगठित हुए कार्य करते थे।
- मुद्रा व्यवस्था व्यापार गतिविधियों की उत्तम सूचक है।

2) उत्तर मगध युग में व्यापार में बढोत्तरी का उल्लेख आप किस प्रकार करेंगे। सौ शब्दों में लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) आरंभिक ऐतिहासिक युग में गंगा घाटी के महत्व पर पांच पंक्तियां लिखें

.....

.....

.....

.....

.....

24.4.2 विदेशी व्यापार

हम उल्लेख कर चुके हैं कि समुद्री व्यापार मौर्य युग में आरंभ हो गया था। आरंभिक संपर्क ईस्वी युग की आरंभिक शताब्दी में पनपा और विस्तृत हुआ। इसका एक कारण ईसवी युग के आरंभ में



उदित होने वाले दो साम्राज्यों की ओर से बढ़ने वाली मांग थी। यह साम्राज्य पश्चिम में शक्तिशाली रोमन साम्राज्य तक पूर्व की ओर चीन में हान साम्राज्य थे। फलतः इस युग की जानकारी कई विदेशी स्रोतों से प्राप्त होती है।

व्यापार और शहरीकरण
का विस्तार

आरंभिक समुद्री व्यापार के संबंध में विस्तृत जानकारी हमें "लाल सागर परिभ्रमण" के विषय में लिखित श्रेष्ठ ग्रंथ (Periplus of the Erythrean Sea) से मिलती है। यह यूनानी कृति प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में किसी अज्ञात नाविक द्वारा लिखी गयी थी जिसमें लाल सागर तथा भारत के बीच उसके द्वारा भ्रमण किए गए बंदरगाहों का विवरण है। इस कृति से हमें इन बन्दरगाहों पर उपलब्ध व्यापार की वस्तुओं की भी जानकारी मिलती है।

उत्तरी भारत के केंद्रों से भेजी जाने वाली वस्तुओं के लिए दो मुख्य बन्दरगाह सिंधु नदी के मुहाने पर बर्बापी कोन तथा नर्मदा के मुहाने पर भरूच थे। हमने पीछे सिंधु के समानांतर बर्बारीकोन को पंजाब एवं गांधार से जोड़ने वाले मार्गों का उल्लेख किया है। भरूच जिसे यूनानी बारीगाजा कहते थे, उज्जैन, मथुरा तथा गंगा घाटी से जुड़ा हुआ था पूर्व में आंध्र एवं तमिल तटों के साथ समुद्री व्यापार के लिए तामलुक एक महत्वपूर्ण मार्ग था।

उपरोक्त यूनानी ग्रंथ से हमें पता चलता है कि उत्तर में आयात की जाने वाली वस्तुएं जड़ी, मूंगा, लोबान, कांच के बर्तन, मुद्राएं तथा कुछ शराब हुआ करती थीं। रोमन कांच के उत्पादनों में तकनीकी सुधार के लिए विख्यात थे परिणामतः उनके द्वारा उत्पादित कांच को विभिन्न प्रकार की वस्तुएं भारत और चीन सहित कई देशों में काफी मूल्यवान समझी जाती थीं। लोबान अरब के एक स्थानीय वृक्ष से निकलने वाला गोंद होता है। इसका प्रयोग सुगंध तथा दवाओं के लिए होता था। अभी तक उत्तरी भारत में चांदी और सोने के रोमन सिक्के काफी कम संख्या में मिले हैं, यद्यपि आप अगले खण्ड में पढ़ेंगे कि भारतीय प्रायद्वीप में यह भारी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इसके कारण कई विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि कृषाणों एवं क्षत्रपों ने इन आयातित सिक्कों को पिघला कर अपनी मुद्राएं बनाने के लिए इन्हें पुनः प्रयोग किया होगा।

इसके बदले में भारत मसाले, फीरोजा, लाजवर्द, अकीक जैसे पत्थर, चीनी सिल्क और सूत आदि निर्यात करता था। इससे यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि व्यापार पर केवल रोमन नियंत्रण ही था। इस व्यापार में अरब, यहूदी, पूर्व देशी यूनानी, मिस्त्र वासी रोमन आदि भी सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त भारतीय नाविक अपने पोतों में लाल सागर के बन्दरगाहों की ओर जाकर व्यापार करते थे जातक कथाओं में भारतीय व्यापारियों के ऐसे कई वृत्तांत मिलते हैं जिनसे वे धन कमाने के लिए लम्बी समुद्री यात्राएं करते हैं इसकी पुष्टि कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अभिलेखों के विवरणों से हो जाती है। बौद्ध मठों के अनुदानकर्ताओं में एक महत्वपूर्ण श्रेणी नाविक हैं।

माल की एक श्रेणी जिस पर चर्चा आवश्यक है वह चीनी सिल्क तथा सूत है। चीनी सिल्क सीधे भेजे जाने के बजाय भारत के माध्यम से क्यों भेजा जाता था? इसका कारण राजनैतिक परिस्थिति थी। भारतीय उपमहाद्वीप की उत्तर पश्चिमी सीमा के समानांतर पार्थव शक्तिशाली शासक थे। उनके और रोमन साम्राज्य के बीच शत्रुता निरंतर बनी हुई थी। फलतः चीन तथा पश्चिम के बीच थल मार्ग निरंतर अवरूद्ध रहा। इसीलिए चीन के अधिकतर उत्पादन भारत के थल मार्गों से व्यापार किए जाते थे।

भारत, मध्य एशिया तथा चीन के बीच सम्पर्कों के विषय में जानकारी इस काल में लिखे गए चीन के इतिहास में मिलती है। सामान्यतः यह माना जाता है कि व्यापारियों के साथ बौद्धमत चीन तथा मध्य एशिया में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व तथा प्रथम शताब्दी ईसवी के आस-पास फैला। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के बाद से मध्य एशिया की ओर जाने वाले उत्तरी मार्ग के समानांतर बौद्ध गुफाओं की एक पूरी शृंखला बनाई जाने लगी तथा तीसरी शताब्दी ईसवी से कई बौद्ध ग्रंथ चीनी भाषा में अनुवाद किए जाने लगे।

हमने अभी तक दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों जैसे बर्मा, थाईलैंड तथा इंडोनेशिया के साथ आरंभिक व्यापार संपर्क के विषय में बहुत कम चर्चा की है। इसका कारण यह है कि रोमन तथा चीनी साम्राज्यों की तुलना में इन देशों के आरंभिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। अतः हमारी जानकारी का एक मात्र स्रोत पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त वस्तुएं हैं। इनसे पता चलता है कि भारतीय दस्तकारों के विभिन्न उत्पादन जैसे मनके, अर्धबहुमूल्य पत्थरों की मुहरें, हाथीदांत की कंधियाँ

आदि दक्षिण-पूर्व एशिया में इस काल में काफी मूल्यवान समझी जाती थीं। किन्तु लिखित प्रमाणों के अभाव में आरंभिक ईसवी शताब्दियों में व्यापार के संगठन से सम्बन्धित अधिक कुछ कहना संभव नहीं है।

24.4.3 मुख्य व्यापार मार्ग

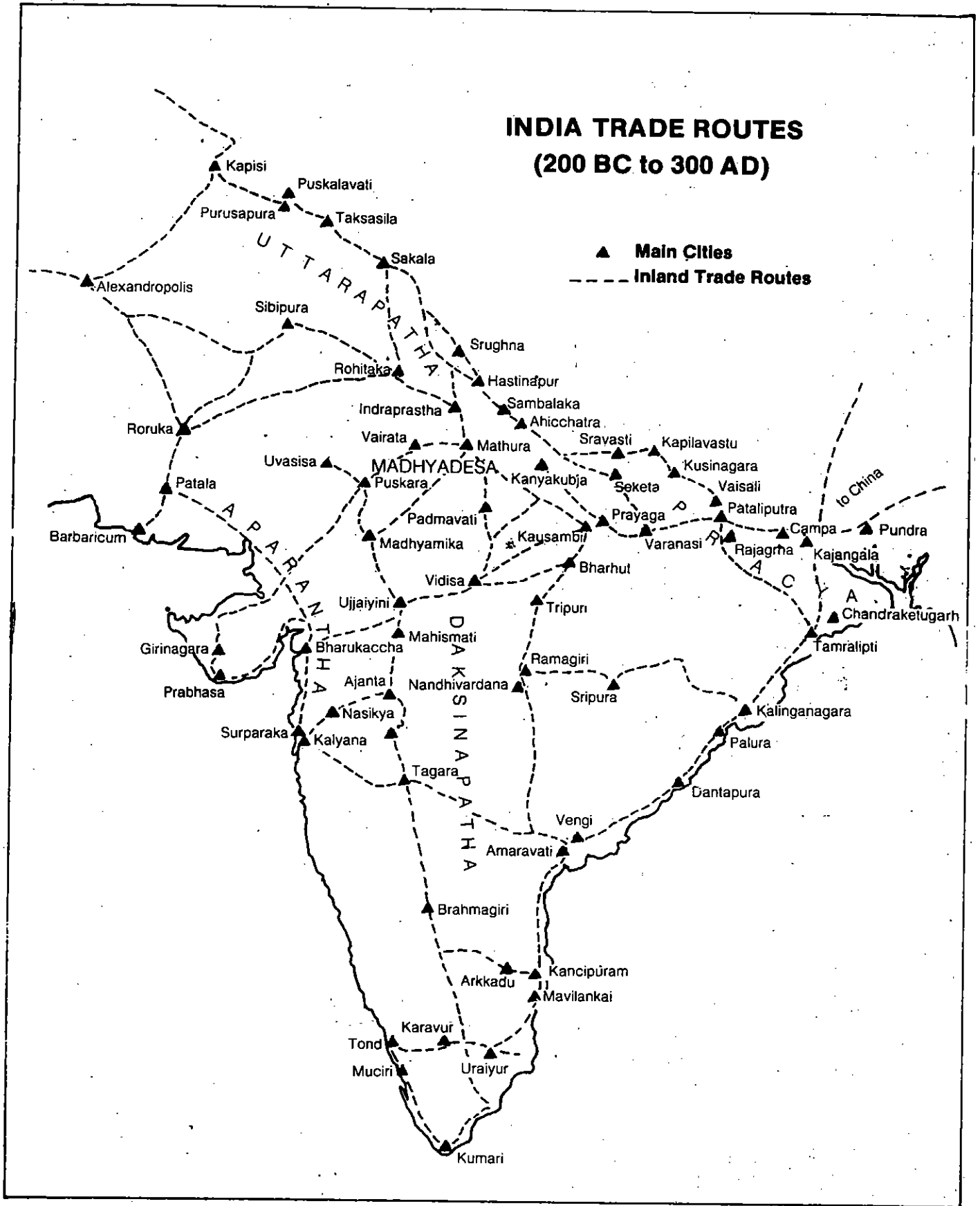
उत्तरी अफगानिस्तान में आक्शस घाटी में बैक्ट्रिया मध्य एशिया एवं चीन के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य केन्द्र था, इस नगर से एक मार्ग कपिस तथा काबुल घाटी से होता हुआ कुषाण साम्राज्य के मुख्य क्षेत्र को पहुंचता था। भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न स्रोतों में दो मुख्य मार्ग होने के उल्लेख मिलते हैं। उत्तर पथ अथवा उत्तरी मार्ग उत्तरी क्षेत्र के मुख्य केन्द्रों को जोड़ता था तथा दक्षिण पथ अथवा दक्षिणी मार्ग प्रायद्विपीय भारत के केन्द्रों को जोड़ता था। उत्तर पथ पुष्कलावती अथवा आधुनिक चारसाड से आरंभ होकर तक्षशिला, मथुरा, कोशाम्बी तथा वाराणसी से पाटलीपुत्र होता हुआ चम्पा तथा चन्द्रकेतु गढ़ पहुंचता था। यह प्राचीन मार्ग मौर्य युग में मौजूद था तथा इसका उल्लेख यूनानी कृतियों में मिलता है। मथुरा से एक अन्य मार्ग पश्चिम दिशा में सिंध की ओर जाता था। इसी मार्ग से ही घोड़े उत्तर की ओर लाए जाते थे। मथुरा उज्जैन तथा नर्मदा के मुहाने पर भरूच के बन्दरगाह से भी जुड़ा हुआ था। एक तीसरा मार्ग सिंधु नदी के समानांतर जाता था तथा तक्षशिला को नदी के मुहाने पर पाटल से जोड़ता था। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि मुख्य मार्ग गंगा नदी के समानांतर चलता था। नदी से नाव द्वारा माल आने जाने के उल्लेख कई स्थानों पर मिलते हैं। इस मुख्य मार्ग से कई छोटे-छोटे मार्ग जुड़े हुए थे जिनमें से एक मार्ग वैशाली तथा श्रावस्ती होता हुआ नेपाल पहुंचता था

24.4.4 शहरी केन्द्र

उत्तरी भारत के शहरी केन्द्रों के विषय में जानकारी हमें आरंभिक पाली एवं संस्कृत ग्रंथों से मिलती है। किन्तु इनमें से कई विवरण काफी सामान्य स्वरूप के हैं। इस उद्देश्य के लिए सबसे उत्तम स्रोत मुख्य शहरी स्थलों की पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त होते हैं। इनसे हमें घरों की बनावट, तथा यहां के निवासियों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले उपकरणों एवं अन्य शिल्प तथ्यों के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। तक्षशिला (आधुनिक इस्लामाबाद से 30 किलो मीटर उत्तर-पश्चिम में) की खुदाई कई दशक पहले सर जॉन मार्शल ने करवाई थी। खुदाई 1913 में आरंभ हुई और लगभग बीस वर्षों तक चलती रही। इस खुदाई से पता चला कि तक्षशिला में कम से कम मौर्य काल से लोग निवास कर रहे थे। यद्यपि यहां प्रथम योजनाबद्ध शहर भारतीय-यूनानियों के काल में विकसित हुआ। शहर की किले बन्दी बाद में की गयी। किलेबंदी की दीवारों अन्य स्थानों पर भी पायी गयी हैं लेकिन वे सामान्यतः चिकनी मिट्टी और अच्छी तरह गंधी मिट्टी की बनी हुई हैं। पक्की ईंटों का प्रयोग आरंभ हो चुका था और विभिन्न इमारतों के लिए इनका इस्तेमाल किया जा रहा था। किन्तु गोलाकार इमारतें अर्धवृत्ताकार ईंटों से बनाई जाती थीं।

मौर्य काल की अपेक्षा आरंभिक ऐतिहासिक युग में घरों की संरचना बेहतर होती थी तथा दीवारों के लिए पक्की ईंट तथा छतों पर पक्की खपरैल का प्रयोग होता था। खुदाई के दौरान भौतिक संस्कृति के शिल्प तथ्यों से पता चलता है कि यह बस्तियां पूर्व कालीन बस्तियों की अपेक्षा अधिक संपन्न थीं। भारी मात्रा में मनको के मिलने से आभूषणों के विस्तृत प्रयोग की जानकारी मिलती है। चिकनी मिट्टी का प्रयोग कई तरीकों से होता था। इसे बर्तन बनाने के अतिरिक्त मानवीय तथा पशु की लघु मूर्तियां बनाने के काम में लाया जाता था। कुछ लघु मूर्तियां ढाली भी जाती थीं। जिनमें जटिल गढ़ाई तथा अलंकरण पाया गया है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य शहरी केन्द्रों की संख्या में बढ़ोत्तरी है खुदाई से यमुना के किनारे पुराना किला, मथुरा तथा कोशाम्बी जैसे अनेक उदयीमान केन्द्र मिले हैं। अहिक्षत्र (जिला बरेली) उत्तरी पांचालों की राजधानी थी। वाराणसी में राजघाट इस युग में हाथीदांत तथा कपड़ा उत्पादन के केन्द्र के रूप में पाया गया है। वैशाली में, जिसे उत्तरी बिहार स्थित आधुनिक वैशाली माना गया है। भारी संख्या में मूहरे तथा मुद्रांकण मिले हैं जिनमें से कई व्यापारियों एवं दस्तकारों से सम्बन्धित हैं। बंगाल के दो मुख्य स्थान ताम्रलुक तथा चन्द्रकेतुगढ़ थे। चन्द्रकेतु की खुदाई से पता चलता है कि यह स्थान आरंभिक ईसवी शताब्दियों में मिट्टी के प्रकारों से घिरा हुआ था जबकि ताम्रलुक बन्दरगाही नगर था और यहां से गंगा के समानांतर मार्ग निकलता था। कुछ और पश्चिम की ओर उज्जैन का किलेबंद शहर था जो कि मनका उत्पादन के लिए भी विख्यात था। इसके अतिरिक्त यहां हुई खुदाई से विशाल ईंट की दीवारों तथा अन्य ढांचों के अवशेष मिले हैं।

INDIA TRADE ROUTES (200 BC to 300 AD)



प्राचीन भारत के

24.5 व्यापार में धर्म की भूमिका

हमने पीछे उल्लेख किया है कि बौद्ध मत व्यापारियों को प्रोत्साहन तथा बड़ी संख्या में व्यावसायिक समूहों को संरक्षण प्रदान करता था। इसके विषय में हमें जानकारी विभिन्न बौद्ध स्थलों पर मिले अभिलेखों से मिलती है। यह अभिलेख राजा तथा जनसंख्या के विभिन्न वर्गों द्वारा दिए गए अनुदानों के लेखा के रूप में हैं। हम यह भी जानते हैं कि इस युग में महत्वपूर्ण बौद्ध मठ व्यापार मार्गों के समानांतर बने हुए थे।

तक्षशिला के आस पास का क्षेत्र एक ऐसा केन्द्र था जहां कई बौद्ध मठ स्थित थे। इस क्षेत्र में गंधार कला के नाम जानी जाने वाली विशिष्ट कला कृषाणों के शासन में विकसित हुई। बौद्ध मत का एक अन्य शक्तिशाली केन्द्र मथुरा था जो कि कला की दृष्टि से भी उतना ही विख्यात था। बौद्ध मत तथा जैन मत दोनों को ही संरक्षण प्राप्त था। खुदाई से बौद्ध तथा जैन दोनों के मठों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। एक और महत्वपूर्ण बौद्ध केन्द्र आधुनिक भोपाल के निकट सांची-था। दकन तथा उत्तर के विभिन्न केन्द्रों के व्यापारी सांची गए और वहां अनुदान दिया जिससे सम्बन्धित अभिलेख मार्गों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। सांची में स्तूप निर्माण के लिए धन का मुख्य अंश उज्जैन वासियों ने वहन किया था। मध्य भारत में भी भरहुत में एक स्तूप था। यहां अनुदान दकन में नासिक के निवासियों तथा उत्तर में पाटलीपुत्र तथा वैशाली के निवासियों ने किया।

दान में मिले धन एवं भूमि के कारण मठों की सम्पन्नता बढ़ गयी तथा समाज में बौद्ध संघों की भूमिका में भी परिवर्तन आया। पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध मत आरंभ होने के समय बौद्ध भिक्षु बहुत साधारण जीवन व्यतीत करते थे। बौद्ध मत के फैलाव एवं प्रसार तथा प्रभाव के बढ़ने से बौद्ध सम्प्रदाय के विशिष्ट समूह एवं शिक्षक काफी धनवान हो गए इस प्रकार कृषाणों के युग में कुछ बौद्ध मठों के पास काफी धन एवं भूमि हो गयी। ऐसे भी कई उल्लेख मिलते हैं जब बौद्ध भिक्षुओं एवं संघनियों ने स्वयं धन दान किया।

बौद्ध संघों में विभाजन का एक कारण कुछ नियमों की व्याख्या को लेकर खड़ा हुआ विवाद भी था। यह विवाद निरंतर बना रहा कि बौद्ध भिक्षु सम्पत्ति के स्वामी हो सकते हैं अथवा नहीं। एक अन्य प्रश्न बौद्ध को भगवान मानने एवं उनकी मूर्ति की पूजा करने से संबंधित था। प्रथम शताब्दी ईसवी तक बौद्ध संघ दो सम्प्रदायों में बंट गया जिन्हें महायान तथा हीनयान के नाम से जाना जाता है। इनमें हीनयान अधिक रूढ़िवादी सम्प्रदाय था। लेकिन हमारे उद्देश्य के लिए अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बौद्ध की मूर्ति की पूजा के आरंभ होने से बौद्ध मत के कर्मकांडों में बढ़ोत्तरी हुई। अब मठों की दीप जलाने के लिए तेल, सुगन्ध के लिए लोबान तथा स्तूप सजाने के लिये सिल्क की पट्टियों की आवश्यकता हुई। भिक्षु के मठों में स्थायी रूप से रहने के साथ ही उन्हें वस्त्रों की भी आवश्यकता हुई। अब उनके पास धन एवं भूमि थी तथा वे अपने भोजन एवं अन्य आवश्यकताओं के लिए भिक्षा पर निर्भर नहीं रह गए थे। इस प्रकार वे इस युग में व्यापार की जाने वाली कई वस्तुओं के प्रमुख उपभोक्ता बन गए।

अभी तक हमने बौद्ध एवं जैन मत के संबन्ध में चर्चा की ब्राह्मणवाद अथवा हिन्दू धर्म की इस संदर्भ में क्या भूमिका रही? अभिलेखों में ब्राह्मणों को भोजन कराने तथा वैदिक यज्ञों के लिए धन देने का उल्लेख मिलता है। कृषाणों के काल से संबंधित शिद एवं विष्णु की प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं। किन्तु ब्राह्मणिक मन्दिरों की संरचना एवं स्वरूप का विकास मुख्यतः गुप्त काल से आरंभ होता है तथा समाज की विभिन्न गतिविधियों के केन्द्र के रूप में मन्दिर इस युग के बांद उभरे।

24.6 व्यापारियों को स्थिति

आरंभिक ईसवी शताब्दियों में संस्कृत में रचित ब्राह्मणिक ग्रंथों में समाज को चार वर्गों : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में बांटा गया है। कृषि तथा व्यापार को सामान्यतः वैश्यों की गतिविधियां माना गया है। इसके विपरीत आरंभिक बौद्ध ग्रंथ समाज के विभाजन के विभिन्न तरीकों का उल्लेख करते हैं। इनमें वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त कार्य एवं शिल्प के आधार पर सामाजिक विभाजन का उल्लेख है। इन ग्रंथों में विभाजन उच्च एवं निम्न पर आधारित है। कृषि, व्यापार, पशुपालन आदि उच्च कार्यों में गिने जाते थे। इस प्रकार अनेक बौद्ध ग्रंथों में अच्छे परिवारों के नवयुवक सदैव कृषि, व्यापार तथा पशुपालन से जुड़े उल्लेखित मिलते हैं। इसी प्रकार शिल्प के अंतर्गत लेखा-जोखा तथा लेखन उच्च कार्यों में सम्मिलित हैं जबकि चर्मकारी,

टोकरियां बनाना, बुनाई आदि निम्न कार्य माने गए हैं मोटे तौर पर बौद्ध समाज में व्यवसाय पहचान का आधार थे तथा व्यापारियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था।

इसका उल्लेख अभिलेखों में भी मिलता है। बौद्ध मठों में अनुदानकर्ता केवल अपने व्यवसायों का उल्लेख करते थे। उनकी जाति का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। व्यापारी समाज में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे तथा शिल्पी संघ अनेक निजी अधिकार के अधीन होते थे।

बोध प्रश्न 2

- 1) यूनानी कृति "लाल सागर परिभ्रमण" के अनुसार कौन सी वस्तुएं भारत में आयात तथा कौन सी वस्तुएं भारत से निर्यात की जाती थीं।
.....
.....
.....
.....
- 2) चीनी माल का व्यापार यूरोप में भारतीय माध्यम से क्यों किया जाता था? पांच पंक्तियों में लिखें।
.....
.....
.....
.....
- 3) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें तथा सही (✓) अथवा (×) का निशान लगाएं:
 - i) हमारे पास भारत के चीन तथा रोमन साम्राज्यों के साथ व्यापार के लिखित प्रमाण नहीं हैं।
 - ii) भारी मात्रा में अनुदान पाने के फलस्वरूप बौद्ध भिक्षुओं की जीवन शैली में परिवर्तन आया।
 - iii) पूर्वकालीन ऐतिहासिक युग में उत्तर पथ तथा दक्षिण पथ नाम के दो मुख्य व्यापार मार्ग थे।
 - iv) बौद्ध ग्रंथों की तुलना में ब्राह्मणिक ग्रंथों में व्यापारियों की सामाजिक स्थिति भिन्न आंकी गयी है।

24.7 सारांश

संक्षिप्त रूप में 200 ईसा पूर्व से 300 ईसवी तक का काल व्यापार तंत्र के विस्तार तथा शहरों की संख्या में बढ़ोत्तरी की दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न काल माना जा सकता है। उत्तर भारत के मुख्य मार्ग उत्तर-पश्चिम के केन्द्रों को बंगाल के तट के समानांतर बन्दरगाहों से जोड़ते थे। इससे जुड़े हुए कई सहायक मार्ग थे तथा दक्षिण मार्ग था जो कि दक्षिण भारत तथा दकन तक जाता था। शहरी केन्द्रों के अतिरिक्त बौद्ध मठ भी इन्हीं मार्गों पर समानांतर स्थापित थे। इसका कारण इस युग में बौद्ध मत की सहायक के रूप में भूमिका थी। बौद्ध मत धन संग्रहण एवं व्यापार में धन निवेश को प्रोत्साहन देता था साथ ही संघों को अनुयायियों से धन एवं भूमि के रूप में अनुदान प्राप्त होने का भी लाभ होता था। इसी युग में विदेशी बाजारों, विशेषकर भूमध्य सागरीय क्षेत्र से भारतीय माल की मांग भी बढ़ी। मध्य एशिया तथा चीन के साथ व्यापार संपर्क के कारण बौद्ध मत के प्रसार का पथ प्रशस्त हुआ तथा इन व्यापार मार्गों के समानांतर चट्टानों को तराश कर अनेक बौद्ध मठ बनाए गए। दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भी संपर्क बनाए जा रहे थे जिनके प्रमाण पुरातात्विक खुदाई से निरंतर मिल रहे हैं।

24.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) i) ii) iii) iv)
- 2) आपके उत्तर में व्यापार को प्रोत्साहन देने में बौद्ध एवं जैन मतों की भूमिका, उदयीमान उपभोक्ता वर्ग, तथा विदेशी बाजारों, विशेषकर यूरोप एवं चीन के बाजारों में भारतीय माल की मांग का उल्लेख होना चाहिए। देखें भाग 24.4
- 3) गंगा घाटी कृषि के लिए उपजाऊ थी। यहां सिंचाई के लिए पानी पर्याप्त मात्रा में था तथा यह विभिन्न शहरों से जुड़ी हुई थी जिससे व्यापार में सुगमता होती थी। देखें भाग 24.2

बोध प्रश्न 2

- 1) देखें भाग 24.5
- 2) पार्थिव तथा रोमन साम्राज्य की आपसी शत्रुता के कारण चीन एवं पश्चिम के बीच थल व्यापार मार्ग अवरुद्ध था। अतः चीन एवं पश्चिमी देशों के बीच व्यापार भारत के माध्यम से होता था। देखें भाग 24.5
- 3) i) ii) iii) iv)

इकाई 25 धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

- 25.0 उद्देश्य
- 25.1 प्रस्तावना
- 25.2 बौद्ध धर्म
 - 25.2.1 विस्तार और संरक्षण
 - 25.2.2 महायान बौद्ध धर्म का उदय
 - 25.2.3 विभिन्न संप्रदाय
 - 25.2.4 विभिन्न केंद्र
- 25.3 जैन धर्म
 - 25.3.1 विस्तार और संरक्षण
 - 25.3.2 विभिन्न संप्रदाय
 - 25.3.3 विभिन्न केंद्र
- 25.4 ब्राह्मण धर्म
 - 25.4.1 नये तत्वों का समावेश
 - 25.4.2 अन्य देवता
- 25.5 शैव संप्रदाय
- 25.6 वैष्णव संप्रदाय
- 25.7 सारांश
- 25.8 शब्दावली
- 25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

मौर्यकाल के बाद भारत में विभिन्न धर्मों के विकास पर संक्षेप में चर्चा करना इस इकाई का उद्देश्य है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- इस काल में बौद्ध और जैन धर्म में होने वाले परिवर्तनों को पहचान सकेंगे
- ब्राह्मण धर्म के स्वरूप को रेखांकित कर सकेंगे
- शैव और वैष्णव धर्म से जुड़े धार्मिक संप्रदायों के विकास को निरूपित कर सकेंगे, और
- इन धर्मों द्वारा अपनाये गये नये विचारों का उल्लेख कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

इकाई 17 में आपने बौद्ध और जैन धर्म के उत्थान और 200 ई.पू. तक के उनके कार्यकलापों का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम 200 ई.पू. से 300 ई. के बीच विभिन्न धर्मों की परिस्थिति और विकास पर विचार विमर्श करेंगे। मौर्यकाल के बाद राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया शुंग, सतवाहन, भारतीय यूनानी शक्ति, शक-पार्थियन शासक और उत्तर-पश्चिम में कृषाण राजाओं का प्रभुत्व स्थापित हुआ। इन शक्तियों के उदय ने भी धर्म की धारा को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए अशोक के समय जहां बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था, वहां शुंगों के समय यह सम्मान, ब्राह्मण-धर्म को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार बौद्ध धर्म की उदार सामाजिक दृष्टि के कारण विदेशियों को भारतीय समाज में शामिल करना अपेक्षाकृत सरल हो गया और इस प्रक्रिया में सामाजिक आत्मसातीकरण शुरू हुआ। बौद्ध धर्म की उदार सामाजिक दृष्टि और आत्मसातीकरण की प्रक्रिया के कारण भारतीय-यूनानी शासकों ने इस धर्म को समर्थन दिया।

हम यह बात पहले ही जान चुके हैं कि व्यापारी समुदाय के अधिकांश लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। अतः इस काल में हुए व्यापारिक और वाणिज्यिक विकास के कारण भी बौद्ध धर्म के विकास में सहायता मिली। हालांकि, व्यापारियों का संबंध व्यापार से ही होता था, पर जहां वे जाते थे वहां अपने व्यक्तिगत धर्म की छाप अवश्य छोड़ आते थे। हम लोग देखेंगे कि इन कारणों से धर्म में

कौन-कौन से परिवर्तन हुए। इस काल में कट्टरपंथी, ब्राह्मण धर्म में भी परिवर्तन आये और शैव तथा वैष्णव धर्म से जुड़े कई समुदायों का उदय हुआ।

इस प्रकार, मौर्य काल के बाद धर्म में निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए :

- मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद बौद्ध धर्म को शृंगों की दुश्मनी का सामना करना पड़ा पर धीरे-धीरे इसके (बौद्ध धर्म) कई केन्द्र स्थापित हो गये और यह धर्म पड़ोसी देशों में फैलने लगा।
- विचारधारा संबंधी और धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण में अंतर होने के कारण बौद्ध धर्म अलग-अलग समूहों में बंटना शुरू हो गया। इनमें प्रमुख हैं : महायान और हीनयान।
- जैन धर्म का भी फैलाव हुआ और इसका अपना संगठन था, पर यह बौद्ध धर्म के सामने नहीं फैल सका।
- जैन धर्म में भी विभाजन हुआ और इसके मतावलम्बी श्वेताम्बर और दिगम्बर कहलाए।
- ब्राह्मण धर्म बौद्ध और जैन जैसे अनिरीश्वरवादी धर्मों से काफी अलग था। इस काल में वैष्णव और शैव संप्रदाय के रूप में इसकी लोकप्रियता बढ़ी।
- कट्टरपंथी और गैर कट्टरपंथी दोनों प्रकार के धर्मों ने देश के बाहर और भीतर के विचारों को आत्मसात किया। मनुष्य पर देवत्वरोपण, मूर्ति पूजा जैसे कई एक से तत्त्व कट्टरपंथी और गैर कट्टरपंथी धर्मों में शामिल किये गये।

25.2 बौद्ध धर्म

शृंग-कण्व शासन काल में बौद्ध धर्म के विकास को हलका सा धक्का लगा। इसका कारण यह था कि मौर्यों के पतन के बाद मगध के शृंग और कण्व शासक ब्राह्मण धर्म में आस्था रखते थे। प्रमुख बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान में पुष्पमित्र शृंग को बौद्ध धर्म का कट्टर शत्रु बताया गया है। इस ग्रंथ में यह भी बताया गया है कि उसने पाटलिपुत्र में स्थित कुकुट अर्मा बौद्ध विहार को नष्ट करने की कोशिश की थी। इस स्रोत के अनुसार प्रत्येक बौद्ध पुजारी का सर काटकर लाने पर 100 दीनार इनाम स्वरूप दिया जाता था।

यह हो सकता है कि इन शासकों ने व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म का विरोध किया हो, पर इसका मतलब यह नहीं है कि बौद्ध धर्म के सामाजिक समर्थन में भी भारी कमी आयी। वस्तुतः मध्य भारत में भारहूत स्तूप का निर्माण शृंगों के शासन काल में ही हुआ था। इसी काल में सांची स्तूप का आकार बढ़ाकर दुगुना कर दिया गया, प्रवेश द्वार (तोरण) और चाहरदीवारी भी बनायी गयी। दिव्यावदान में तथ्यों को बढ़ा चढ़ा कर पेश किया गया है, पर इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मौर्य काल के दौरान प्राप्त राज्य संरक्षण शृंग और कण्व काल में बौद्ध धर्म को उपलब्ध नहीं था।

25.2.1 विस्तार और संरक्षण

200 ई.पू. से 300 ई. के बीच भारत के सभी हिस्सों में बौद्ध धर्म का विस्तार हमें देखने को मिलता है। उत्तर पश्चिमी भारत में बौद्ध धर्म का जबरदस्त प्रभाव था। भारत पर आक्रमण करने वाले बहुत से विदेशी शासकों जैसे भारतीय-यूनानी और कृषाण, ने बौद्ध धर्म अपना लिया।

बौद्ध धर्म के सिद्धांतों की ओर आकर्षित होने वाले भारतीय-यूनानी राजाओं में मिनेन्द्र प्रमुख है। उसने बौद्ध धर्म अपना लिया था। बौद्ध ग्रंथों में उसका उल्लेख साकल के राजा मिलिन्द के रूप में हुआ है। इसमें उसके धर्म परिवर्तन से जुड़ी एक कहानी भी उल्लिखित है। इस ग्रंथ का नाम 'मिलिन्द पन्ह' (मिलिन्द के प्रश्न) है, जो संवाद के रूप में लिखा गया है। इसमें मिनेन्द्र और बौद्ध [जारी नागसेन के बीच की बातचीत संकलित है।

रहुत से कृषाण राजाओं ने बौद्ध धर्म अपनाया। उच्चहरण के लिए कुजुल कदाफिसेस और कनिष्क बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। कनिष्क के शासन काल में बौद्ध धर्म अपनी प्रतिष्ठा के उत्कर्ष पर शराजमान हुआ। इसी के शासनकाल में बौद्ध पुजारी पार्सव की सलाह पर चौथा बौद्ध सम्मेलन आयोजित किया गया। हालांकि इस बात के बारे में कुछ विवाद हैं कि ठीक-ठीक यह सम्मेलन कहां संपन्न हुआ था पर समकालीन विद्वानों के उद्धरणों के साक्ष्य के आधार पर यह आम तौर पर वीकार कर लिया गया है कि यह सम्मेलन कश्मीर में आयोजित किया गया था वसुमित्र इस सम्मेलन का अध्यक्ष था। इसमें धर्मग्रंथों के कुछ कठिन अध्यायों पर विचार-विमर्श हुआ। यह विचार-विमर्श भाष्य के रूप में संकलित है जिसे 'विभाषा शास्त्र' के रूप में जाना जाता है। इसी सम्मेलन में बौद्ध धर्म हीनयान और महायान में विभाजित हुआ।

कनिष्क ने देश के विभिन्न भागों में बौद्ध धर्म के प्रसार को बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए पेशावर में उसने एक स्तूप और बिहार का निर्माण करवाया, जो बौद्ध धर्म के विद्या और संकृति-केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल में भारत के बौद्ध पुजारी/साधुओं ने बुद्ध के संदेशों को मध्य एशिया और चीन तक पहुंचाया।

ढक्खन में सतवाहन राजाओं और पश्चिमी भारत के क्षत्रप राजाओं ने बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान किया। बहुत से स्तूपों का निर्माण किया गया और अनुदानों द्वारा उस का प्रबंध किया गया। उदाहरण के लिए सतवाहन राजा पुलुमयी के शासन काल में अमरावती स्तूप को बड़ा बनाया गया और संगमरमर के नक्काशीदार टुकड़ों से उसे सजाया गया।

पश्चिमी तट के किनारे पश्चिमी घाटों में सतवाहनों और क्षत्रपों ने कई गुफाएं बनवाईं। इन गुफाओं का उपयोग विहारों के रूप में और बौद्ध पुजारियों के निवास-स्थान के रूप में होता था। यह गुफाएं पत्थरों को काट कर बनायी जाती थी। ऐसी गुफाएं नासिक, कार्ले, भज, गुन्नार, कन्हेरी आदि जगहों पर पायी गयी हैं।

इस काल में तमिल देश में भी बौद्ध धर्म के अस्तित्व के संकेत मिले हैं। तमिल देश के आरम्भिक गुफा अभिलेखों में बौद्धों के कुछ स्थानों पर बसे होने का उल्लेख मिला है। इस अभिलेख में आम भक्तों द्वारा दी गयी अनुदान-राशि का भी जिक्र है।

25.2.2 महायान बौद्ध धर्म का उदय

महायान शाखा के विकास के कारण बौद्ध धर्म संपूर्ण भारत और सीमा पार विदेशों में लोकप्रिय धर्म के रूप में विकसित हुआ। विभिन्न मूलों और संस्कृतियों से जुड़े हुए लोगों की धार्मिक भावुकता ने क्रमशः बुद्ध को भगवान के रूप में परिवर्तित कर दिया। ईस्वी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में बुद्ध की मूर्ति की स्थापना और गुफाओं में प्रचलन शुरू हुआ। इस प्रकार महायान बौद्ध धर्म के आगमन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

महायान बौद्ध धर्म का उद्भव प्रथम शताब्दी ई.पू. में आंध्र प्रदेश में हुआ था। कनिष्क के समय में इसे मान्यता मिली और इसके बाद प्रथम और द्वितीय शताब्दी ई. के दौरान यह पूरे दक्षिण भारत में फैल गया। कट्टरपंथी बौद्ध धर्म के कारण आरंभ में महायान ज्यादा आगे नहीं बढ़ सका। पर नागार्जुन के आने के बाद इस शाखा ने लोकप्रियता प्राप्त करनी शुरू की। नागार्जुन महायान शाखा के प्रमुख प्रवर्तक थे। हालांकि महायान बौद्ध धर्म का उद्भव ई.पू. प्रथम शताब्दी में ही हो चुका था पर बौद्ध संघ का हीनयान और महायान में अंतिम रूप से विभाजन कनिष्क प्रथम के शासन काल में हुआ। यह विभाजन इस दौरान कश्मीर में हुए चौथे बौद्ध सम्मेलन में उभरकर सामने आया। हीनयान और महायान का शाब्दिक अर्थ है 'छोटी सवारी' और 'बड़ी सवारी' इस प्रकार की शब्दावली हीनयान पर महायान की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए गढ़ी गयी थी। पर मुख्य अन्तर महायान के मत में निहित है। यह मत पहले पहल बौद्ध मतावलम्बी महासंधिका द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इसके अनुसार सभी मनुष्य बौद्धत्व की प्राप्ति की आकांक्षा रख सकते हैं और विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरकर बोधिसत्व की प्राप्ति कर सकते हैं। परमिताओं अर्थात् प्रतिभापूर्ण कार्यों से बोधिसत्व की प्राप्ति हो सकती है। महायान के अन्य सिद्धांत इस प्रकार हैं : शून्यता या शून्य या वस्तुओं की अथार्थता में विश्वास, मंत्रों में विश्वास, असंख्य बुद्धों और बोधिसत्वों में विश्वास और देवी देवताओं की पूजा का चलन। हीनयान के मतावलम्बियों के अनुसार इनमें उनके विश्वास और चलन बुद्ध द्वारा प्रतिपादित नहीं किए गये। उनका यह भी सोचना था कि बौद्धत्व के आदर्श की प्राप्ति का द्वार सभी लोगों के लिए खोलना व्यावहारिक नहीं है।

25.2.3 विभिन्न संप्रदाय

देश के विभिन्न भागों में बौद्ध धर्म के फैलाव के कारण अनेक सम्प्रदाय सामने आये। उदाहरण के लिए, थेरवादियों के कार्यकलापों का केन्द्र कोसाम्बी था, मथुरा, सारवस्तीवादियों का केन्द्र था, नामिक और कन्हेरी में भद्र यनिका सम्प्रदाय का अस्तित्व था। आरम्भ में इन सम्प्रदायों के उद्भव के पीछे सैद्धांतिक मतभेद प्रमुख नहीं थे। वस्तुतः इनके उद्भव और विकास का मूल कारण इस देश की भौगोलिक विभिन्नता में निहित है। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर विभिन्न समुदायों के दृष्टिकोण का भी इन सम्प्रदायों पर असर पड़ा होगा। इन सम्प्रदायों के उदय का एक कारण यह भी लगता है कि उस समय विभिन्न मठाधीशों के बीच संपर्क का कोई सुलभ माध्यम उपलब्ध नहीं था। सतवाहनों के शासन काल में धान्यकटक (अमरावती) प्रदेश महायान बौद्ध धर्म का प्रमुख गढ़ बना जबकि उत्तर भारत में थेरवादियों की लोकप्रियता ज्यादा थी।

इन सम्प्रदायों के कारण भी बौद्ध धर्म के स्वरूप में कुछ परिवर्तन आया। इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है :

- पहले जबकि बुद्ध को एक शिक्षक या उपदेशक के रूप में स्वीकार किया जाता था, वहीं महायान में भगवान के रूप में उनकी पूजा की जाने लगी। इसके कारण बुद्ध की उपासना की पद्धति में परिवर्तन आया मसलन, पहले की वास्तुकला में बुद्ध का प्रतिनिधत्व पैर के निशान, उजला हाथी और एक फूल के माध्यम से होता था, पर नये लोग बुद्ध की प्रतिमा बनाकर उन्हें पूजने लगे।
- बोधिसत्व की अवधारणा में भी परिवर्तन आया। उदाहरण के लिए, एक सम्प्रदाय मानता था कि बोधिसत्व बुद्ध के एक अवतार हैं, जबकि दूसरा सम्प्रदाय मानता था कि सभी की भलाई के लिए निस्वार्थ व्यक्तिगत सेवा ही बोधिसत्व है।
- अब लगातार पुनर्जन्म का विचार सुदृढ़ होता गया। इस बात पर बल दिया गया कि लगातार जन्म लेने से व्यक्ति प्रतिभा हासिल कर सकता है।
- कुछ खास धर्मनिष्ठ विधि अपनाकर प्रतिभा का हस्तांतरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को किया जा सकता है।

25.2.4 विभिन्न केन्द्र

पहले से स्थापित धार्मिक और तीर्थ स्थल इस काल में भी लोकप्रिय केन्द्र बने रहे। इसके अतिरिक्त इस काल में निम्नलिखित तीर्थस्थल उभर कर सामने आये :

- शृंग काल और उसके बाद भरहुत, बोधगया और सांची प्रमुख तीर्थस्थल बने रहे।
- कुषाणों के अधीन पुरुषपुर बौद्ध संस्कृति के एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा। इसके बावजूद इस क्षेत्र में तक्षशिला सर्वप्रमुख केंद्र बना रहा। दरअसल संपूर्ण गांधार क्षेत्र (इसमें पुरुषपुर और तक्षशिला शामिल थे) में बौद्ध धर्म इस हद तक प्रमुखता प्राप्त कर चुका था कि गांधार कला के नाम से एक कला विशेष का भी यहां विकास हुआ।
- मथुरा भी बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केंद्र था और यहां भी गांधार की तरह एक कला विशेष का विकास हुआ। मथुरा में बनाई गयीं बोधिसत्व की मूर्तियां काफी दूर-दूर तक ले जायीं गयीं। इस काल में पश्चिमी दक्खन नासिक, कन्हेरी और कार्ले में अनेक गुफाएं बनायीं गयीं जिनका उपयोग विहार और बौद्ध पुजारियों के निवास-स्थान के रूप में होता था।
- पूर्वी दक्खन के अमरावती और नागार्जुन कोंडा में बौद्ध कला फली-फूली। पूरे भारत में नागार्जुन कोंडा का महाचैत्य बौद्धों का प्रमुख तीर्थस्थल था।
- इनमें से कुछ शिक्षा संस्थानों के रूप में भी विकसित हुए। उदाहरण स्वरूप तक्षशिलाह, मथुरा, बनारस और नालन्दा बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केंद्र के रूप में सामने आये। तक्षशिला के अध्ययन केन्द्र में देश के विभिन्न भागों से विद्यार्थी पढ़ने जाते थे। यहां मानविकी, विज्ञान हस्तकला, युद्धकला, विधि और औषधि संबंधी उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी।

25.3 जैन धर्म

बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म का विस्तार धीमी गति से हुआ। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म के समान जैन धर्म को ज्यादा राज्य संरक्षण भी प्राप्त नहीं हुआ। इन समस्याओं के बावजूद जैन गुजारी सक्रिय थे और उन्होंने जैन धर्म को फैलाने के लिए काफी यात्राएं की। ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दियों में इन्होंने भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। पर बौद्ध धर्म के समान जैन धर्म के मतावलम्बियों ने उसके सिद्धांतों को भारत से बाहर फैलाने की कोशिश नहीं की।

25.3.1 विस्तार और संरक्षण

कुछ राजाओं ने जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया इन राजाओं में कलिंग के राजा खारवेल का नाम सर्वप्रथम है। वह और उसकी रानी न केवल जैन धर्म के सिद्धांतों का पालन करते थे बल्कि उन्होंने उदयगिरी पहाड़ियों में जैन साधुओं के रहने के लिए कुछ गुफाएं भी बनवायीं।

कुषाण काल में जैन धर्म मथुरा में लोकप्रिय था। मथुरा केन्द्र में तीर्थकरों की मूर्तियों तथा जैनियों की अन्य पूज्य वस्तुओं का निर्माण होता था।

मिल देश में तमिल राजाओं ने कुछ गुफाएं जैनियों को अर्पित की। अधियन नेटमन अंजी ने दक्षिण आर्कोट जिले के जवाई नामक स्थान पर कुछ गुफाएं जैनियों को अर्पित की। सिन्नवसल (जिला पुडुकोट्टई) में आम लोगों ने जैन साधुओं को गुफा अर्पित की। इससे इस प्रदेश में लोगों के बीच जैन धर्म की लोकप्रियता का संकेत मिलता है।

जैन धर्म के प्रचार के लिए जैन साधुओं ने सेवा दल संगठित किया। आरम्भ में इन सेवा दलों का उद्देश्य अकाल और भुखमरी से पीड़ित जैन साधुओं को सहायता और संरक्षण प्रदान करना था। पर धीरे-धीरे यह राहत सेवा-दल धार्मिक सेवा-दल में परिणत हो गया और जैन धर्म का प्रचार इसका उद्देश्य हो गया।

इस प्रकार के राहत सेवा-दल पहले पहल मौर्य काल में गठित हुए थे। परम्परा से प्राप्त जानकारी के अनुसार भद्रवाहू जो चंद्रगुप्त मौर्य का समकालीन था ने जैनो को संरक्षण प्रदान करने के लिए दक्षिण की यात्रा की। वह राजा चंद्रगुप्त मौर्य के साथ दक्षिण की ओर गया और उसने कर्नाटक के श्रावण बेलगोला नामक स्थान पर एक केन्द्र की स्थापना की। इसी स्थान से जैन तमिल देश और आंध्र क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में फैले।

एक श्वेताम्बर परम्परा के विवरण से पता चलता है कि खारवेल के शासन काल में जैन साधु मगध से पूर्वी आंध्र तट की ओर जाकर बस गये थे। भुवनेश्वर के निकट उदयगिरी पहाड़ियों पर हाथीगुम्फा गुफा में मिले एक अभिलेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।

एक अन्य परम्परा से पता चलता है कि जैन मथुरा में जाकर बस गये। मथुरा में कंकाली टीला का खंडहर और अनेक समर्पणात्मक अभिलेख इस बात का प्रमाण है कि पहली दूसरी शताब्दियों में यहां जैन धर्म का अस्तित्व था।

कालकाचार्य की कहानी से पता चलता है कि पहली-दूसरी शताब्दियों में जैन मालवा की ओर गये थे।

जूनागढ़ अभिलेख इस बात का प्रमाण है कि इस्वी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में जैन धर्म गुजरात तक फैल चुका था।

25.3.2 विभिन्न सम्प्रदाय

ई.पू. दूसरी शताब्दी से ही श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों का जिक्र मिलता है। जिन्होंने मारे वस्त्रों का त्याग कर नंगा रहने का व्रत लिया वे दिगम्बर कहलाए और जिन्होंने सफेद कपड़े पहने उन्हें श्वेताम्बर कहा गया। इन दोनों सम्प्रदायों का सैद्धान्तिक मतभेद बहुत ज्यादा नहीं था। यह मतभेद इस काल में भी कायम रहा।

प्रथम शताब्दी ई. के आस पास यापानीय नामक एक अन्य जैन सम्प्रदाय का उदय हुआ। इसकी स्थापना संभवतः एक श्वेताम्बर साधु ने कल्याणगढ़ में की थी। इस साधु का नाम कलस था। इस सम्प्रदाय की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इसके अनुसार स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त कर सकती थी और यह कि कैवल्यों को भोजन थोड़ा-थोड़ा करके करना चाहिए।

कुल मिलाकर जैन धर्म अपने मूल सिद्धांतों से बंधा रहा और इसके अनुयायी कमोवेश एकनिष्ठ बने रहे।

25.3.3 विभिन्न केन्द्र

जैनियों के विभिन्न केन्द्रों में राजगृह या राजगीर पहली और दूसरी शताब्दी ई. में एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में उभरा। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के बज्रमुनि का नाम इस स्थान से जुड़ा हुआ है।

मथुरा एक अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र था। मथुरा में प्राप्त वास्तुशिल्प और उन पर उकेरे गये समर्पणात्मक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि व्यापारी वर्ग ने यहां जैन धर्म को काफी संरक्षण प्रदान किया था। कई शताब्दियों तक यह जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र बना रहा। बाद में एक अन्य स्रोत से पता चला कि इस काल में उज्जैन भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।

इसा बाद की आरम्भिक शताब्दियों में उत्तर पश्चिम में भी जैन धर्म विकसित हुआ। तक्षशिला में सिरकप नामक स्थान पर बौद्ध केन्द्र के साथ-साथ जैन केन्द्र भी स्थापित हुआ। यहां जैनियों की विशाल बस्ती थी। इसी प्रकार पश्चिमी घाट के भड़ौच और सोपारा बड़े केन्द्र थे और यहां पुजारियों का आना जाना लगा रहता था।

उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट उदयगिरी और खंडगिरि पहाड़ियां मौर्यों के समय से ही जैन धर्म का केन्द्र थीं और ये खारवेल के शासन के बाद भी समृद्ध रहीं।

तमिल देश में, मदुरई और सित्तनवसल महत्वपूर्ण केन्द्र माने जा सकते हैं। ई.पू. दूसरी शताब्दी और उसके बाद इन जगहों पर विशाल जैन बस्तियां थीं।

बोध प्रश्न 1

- 1) सही उत्तर के आगे (✓) और गलत उत्तर के आगे (×) का निशान लगाएं।
 - i) भरहुत स्तूप शुंग के शासन काल के दौरान बनाया गया
 - ii) भारतीय-यूनानी राजा मिनेन्द्र ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया
 - iii) ई.पू. दूसरी शताब्दी में जैन धर्म तमिल देश में विकसित हुआ था।
 - iv) यापानीय बौद्ध धर्म का एक सम्प्रदाय था।
 - v) हाथीगुम्फा एक जैन केन्द्र था, जो खारवेलों के अधीन था।
- 2) महायानवाद की आधारभूत अवधारणा को स्पष्ट करें। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दें)

.....

.....

.....

.....

.....

- 3) पाँच पंक्तियों में महत्वपूर्ण जैन केन्द्रों पर एक टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

25.4 ब्राह्मणवाद/धर्म

इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि इस काल में ब्राह्मण धर्म को कई राजाओं का समर्थन प्राप्त था। समकालीन स्रोतों से पता चलता है कि अनेक राजा कुछ वैदिक अनुष्ठानों का पालन करते थे। उदाहरण के तौर पर पुष्यमित्र शुंग ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। सतवाहन राजवंश के सतकर्णी प्रथम ने अश्वमेध, राजसूय और कुछ अन्य बलियों का आयोजन किया था। यह भी कहा जाता है कि चोल और तमिल देश के पांड्य राजाओं ने भी बलियों का आयोजन किया था।

25.4.1 नये तत्वों का समावेश

इस काल में ब्राह्मण धर्म में भी कई नये परिवर्तन हुए और यहीं से हम तथाकथित पुराणपंथी हिन्दू धर्म को आकार ग्रहण करते हुए देखते हैं। इसमें बलि के स्थान पर देवी और देवताओं की पूजा को स्थान दिया गया। उदाहरण के लिए, सर्वोच्च ईश्वर की अवधारणा ने बल प्राप्त किया, विष्णु या शिव सर्वोच्च ईश्वर थे। विष्णु और शिव में से किसे सर्वोच्च ईश्वर माना जाए इस आधार पर दो नये संप्रदाय शैव और वैष्णव सामने आये।

हालाकि दोनों संप्रदाय यह विश्वास रखते थे कि भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है पर ईश्वर की सर्वोच्चता को लेकर उनमें गंभीर मतभेद था। इसी समय त्रिदेव की संकल्पना भी सामने आयी। ब्राह्मण परंपरा के सभी ईश्वर अब तीन प्रमुख ईश्वरों में समा गये। ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता, विष्णु को पालनकर्ता और शिव को संहारक माना गया। हालाकि इन ईश्वरों का उल्लेख वैदिक काल में भी मिलता है, पर इस काल में आकर उन्हें महत्व और प्रमुखता प्राप्त हुई। शिव और विष्णु के भक्तों की संख्या तेजी से बढ़ी पर ब्रह्मा के अनुयायियों को इतनी बड़ी तादाद में आकर्षित नहीं किया।

इस काल में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं।

- शुद्ध अनुष्ठान से भक्ति की ओर प्रयाण और
- ब्राह्मण धर्म द्वारा स्थानीय परंपराओं का आत्मसातीकरण।

उदाहरण के लिए, वैष्णव धर्म में वैदिक विष्णु की तरह अनेक तत्व आत्मसात कर लिए गए और ज्ञानी नारायण, वासुदेव और बलराम को भगवान का रूप माना जाने लगा। महाकाव्य के नायक राम और कृष्ण को इसमें शामिल किया गया और ब्राह्मण धर्म के देवताओं में उन्हें प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। संगम साहित्य में उल्लिखित तमिल देवताओं को ब्राह्मण धर्म में शामिल कर लिया गया। इसी प्रकार ब्राह्मण धर्म में उत्तर भारत के कुछ स्थानीय देवताओं को भी शामिल कर लिया गया।

25.4.2 अन्य देवता

अनेक प्रकार के देवताओं की पूजा की जाती थी। उनमें ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और इन्द्र लोकप्रिय थे। चार संरक्षक देवताओं (दिकपाल) यम, वरुण, कुबेर और वासव की भी पूजा की जाती थी। इनके अतिरिक्त :

- हाथी, घोड़ा और गाय जैसे पशुओं की पूजा होती थी,
- देश के बहुत से हिस्सों में सर्प पूजा प्रचलित थी।
- कई प्रकार के पेड़ों और पेड़ पर रहने वाली प्रेतात्माओं की भी पूजा की जाती थी।

25.5 शैव संप्रदाय

शैव संप्रदाय का जन्म वैदिक काल से भी पहले माना जा सकता है यह धर्म सन् ईस्वी की आरंभिक शताब्दियों में भारत के लगभग सभी भागों में लोकप्रिय हो गया। शिव इस संप्रदाय के देवता थे और उनकी पूजा लिंग रूप में की जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पूजा करने की यह पद्धति सन् ईस्वी के आरंभिक वर्षों में लोकप्रिय हुई। मनुष्य रूप में भी शिव की पूजा होती थी कुछ साहित्यिक ग्रंथों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है।

इस काल में शैव संप्रदाय को कुछ हद तक राजकीय संरक्षण भी प्राप्त हुआ। कुषाण राजाओं में बेमा कदाफिसेस शिव का परम भक्त था। उसके सिक्कों में एक तरफ त्रिशूलधारी शिव की छवि अंकित होती थी हालांकि कनिष्क बौद्ध था, पर उसके कुछ खास प्रकार के सिक्कों पर भी शिव की छवि अंकित है। दक्खन में शिव की पूजा काफी पहले से प्रचलित थी। प्राकृत ग्रंथ सतवाहन राजा हल की पुस्तक गाथा सप्तशती और पूर्वी आंध्र प्रदेश से प्राप्त अति पुरातन पत्थर का बना लिंग शिव पूजा के अस्तित्व के द्योतक हैं।

तमिल देश में शैव धर्म की जड़ काफी मजबूत थी। तमिल संगम ग्रंथों में शिव को सबसे बड़ा भगवान (ममडु मुडलेयन) माना गया है। संगम ग्रंथों में शिव की विस्तार से चर्चा की गयी है। उदाहरण के लिए, शिव अपने बाल को सर पर बांध कर रखते थे, बाघ की खाल पहनते थे, आदि। उनका उल्लेख संहारक देवता के रूप में हुआ है जिन्होंने स्वर्ग के तीन शहरों (त्रिपुरंतक) को नष्ट कर दिया था।

शैव धर्म में शिव के अतिरिक्त कई अन्य देवी-देवताओं की भी पूजा होती थी। शिव की पत्नी पार्वती का इनमें प्रमुख स्थान था और उन्हें 'शक्ति' का प्रतीक माना जाता था। ऐसी धारणा प्रचलित हो गयी थी कि पार्वती से ही सभी शक्तियाँ उद्भव होती हैं। वे स्कन्द और गणेश की माता भी थीं। पार्वती का एक प्रचंड रूप दुर्गा भी है और इस रूप में भी उनकी आराधना होती थी। सतवाहन राज्य में पार्वती के दूसरे रूप गौरी की पूजा होती थी।

इस काल में स्कन्द-पूजा लोकप्रिय हुई। उसे शिव का पुत्र माना जाता था। उसे देवताओं की शक्तियों के नेता के रूप में देखा जाता था। इसे कार्तिकेय और कुमार के नाम से भी जाना जाता था। तमिल देश में उसकी पूजा मुरुण रूप में होती थी। संगम ग्रंथ में उनके गुणों और उनके मदिरों का उल्लेख था।

इस काल में गणेश का महत्व अपेक्षाकृत कम था। वह स्कन्द के बड़े भाई थे। वह गणों (शिव के अतिकेयों) के नेता थे और उन्हें विनायक के नाम से भी जाना जाता था।

शैव संप्रदायों में पशुपत संप्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय था। द्वितीय शताब्दी ई. में कभी गुजरात में भाकलिसा ने इस संप्रदाय की शुरुआत की और पशुपत संप्रदाय के सन्यासी देश के विभिन्न भागों में फैल गये। शिव की पूजा पशुपति के रूप में की जाने लगी। कापलिक और कालमुख संप्रदायों का उदय काफी बाद में हुआ। इन सभी संप्रदायों ने शिव को सर्वोच्च ईश्वर माना।

25.6 वैष्णव संप्रदाय

वैष्णव संप्रदाय ब्राह्मण धर्म का एक प्रमुख संप्रदाय है जिसके अनुयायी भारत के सभी हिस्सों में फैले हुए थे। इस संप्रदाय के प्रमुख देवता विष्णु थे ब्राह्मण धर्म में उनका उल्लेख संरक्षक के रूप में हुआ है। आरंभिक काल में वैष्णव संप्रदाय भागवत धर्म के रूप में जाना जाता था जिसका विकास वैदिक पंथ वासुदेव-कृष्ण से हुआ।

भागवत धर्म का मूल उपनिषदों में निहित है। इसका उदय मथुरा के आस-पास हुआ। इसमें हरि को सर्वोच्च ईश्वर माना गया और बलि तथा अनुष्ठानों को कम से कम महत्व दिया गया। विष्णु के प्रति भक्ति को सर्वोच्च कर्तव्य माना गया। कुछ समय तक यह मथुरा तक ही सीमित रहा। ईस्वी सन् के आरंभ में समूचे भारत में इसका फैलाव शुरू हुआ। वासुदेव की आराधना को पुष्ट करने वाले अभिलेख महाराष्ट्र, राजपुताना, और मध्य भारत में मिलते हैं।

भागवत संप्रदाय के केंद्रीय व्यक्तित्व वासुदेव को ब्राह्मण धर्म में प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। आरंभ में वे धर्म और इंद्र के समान माने जाते थे। द्वितीय शताब्दी ई. के सतवाहन राजा गौतमीपुत्र सातकर्णी की तुलना महाभारत के नायकों बलराम, केशव, अर्जुन, और भीमसेन—के साथ की गयी है।

द्वितीय शताब्दी ई. पू. तक आते-आते विष्णु और नारायण एक दूसरे में समाहित हो गये और उनकी पूजा एक देवता के रूप में होने लगी। इस प्रकार के सम्मिश्रण से संभवतः ब्राह्मण धर्म को बौद्ध धर्म के प्रसार पर नियंत्रण रखने में सुविधा हुई होगी। वासुदेव और अन्य व्यक्तित्वों को लेकर चलने वाला भागवत संप्रदाय भी वैष्णव धर्म का एक हिस्सा था।

डिमेट्स और मिनेन्द्र जैसा राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे पर कुछ भारतीय-यूनानी राजाओं ने भागवत धर्म को भी अपनाया। उदाहरण के लिए, बेसनगर स्तम्भ अभिलेख से हमें पता चलता है कि तक्षशिला का देलियोडोरस (जो शुंग शासक के दरबार में भारतीय-यूनानी राजा प्रेटियालसिड का राजदूत था) भागवत संप्रदाय का अनुयायी था उसने वासुदेव के सम्मान में भोपाल के निकट बेसनगर (विदिश) में शिव के प्रतीक चिन्ह गरुड़ का शीर्ष लगवा कर एक स्तम्भ निर्मित करवाया था।

तमिल देश में विष्णु की पूजा बहुत लोकप्रिय थी। तमिल ग्रंथों में उनके विभिन्न कार्यकलाप और विशेषताओं की चर्चा है। इन ग्रंथों में कृष्ण को विष्णु का रूप कहा गया है। राम और बलराम भी उनके ही अवतार थे।

वैष्णव संप्रदाय के प्रमुख देवता विष्णु के कई अवतारों की चर्चा की गयी थी। इसलिए विष्णु की पूजा अवतारों के रूप में की जाती थी। कृष्ण, राम और बलराम विष्णु के सर्वप्रथम सम्माननीय अवतार थे लेकिन इनके अतिरिक्त नरसिंह और वराह जैसे अवतारों की भी पूजा की जाती थी।

इसके अतिरिक्त विष्णु की सवारी गरुड़ और उनके हथियार चक्र को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। उनके प्रतीक चिन्ह गरुड़ की भी पूजा की जाती थी और गरुड़ के शीर्ष वाले अनेक स्तम्भों का निर्माण कराया गया था। ये स्थान वैष्णवों के लिए पवित्र स्थल थे।

विष्णु की पत्नी लक्ष्मी की भी पूजा की जाती थी। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में वैष्णव धर्म से संबंधित विभिन्न प्रकार के विचारों का समावेश किया गया है। भागवत गीता में वैष्णव धर्म के प्रमुख विचार कर्म के सिद्धांत को इसी काल में महाभारत में शामिल किया गया। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को धर्मग्रंथों द्वारा स्थापित मानवीय कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। बिना फल की कामना करते ज्ञान कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

बोध प्रश्न 2

1) सौ शब्दों में वैष्णव संप्रदाय के प्रमुख पक्षों का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) इस काल के दौरान ब्राह्मण धर्म में हुए परिवर्तनों के बारे में पांच पंक्तियों में लिखें।

3) सही वक्तव्य के आगे (✓) और गलत वक्तव्य के सामने (×) का निशान लगाएँ।

- इस काल के दौरान ब्राह्मण धर्म के लोकप्रिय संप्रदाय बहुत महत्वपूर्ण हो गये
- वैष्णव संप्रदाय ने "अवतार" की अवधारणा बौद्ध धर्म से ग्रहण की थी।
- ऋग्वैदिक देवता रुद्र ही को बाद में भगवान शिव के रूप में पूजा जाने लगा।
- इस काल की एक महत्वपूर्ण घटना यह थी कि ब्राह्मण धर्म में भक्ति के महत्व में तेजी से वृद्धि हुई।

25.7 सारांश

इकाई 17 में आप अध्ययन कर चुके हैं कि छठी शताब्दी ई.पू. के आसपास ब्राह्मण धर्म की रूढ़िवादिता के खिलाफ बौद्ध धर्म, जैन धर्म और अन्य अनिश्चरवादी संप्रदायों का उदय हुआ। पर दूसरी शताब्दी ई.पू. तक इन अनिश्चरवादी आंदोलनों में अनेक परिवर्तन आये और इनका स्वरूप काफी जटिल हो गया। हालांकि कुछ धर्मों को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था, पर धर्म के फैलाव में पुजारियों और प्रचारकों ने विशेष योगदान दिया।

इस काल में ब्राह्मण धर्म का पुनरुद्धार हुआ, जिसने कई अन्य धर्मों के कुछ विचारों को आत्मसात कर लिया। देवी-देवताओं की संख्या बढ़ी। पहले के कई प्रमुख देवी-देवताओं का महत्व समाप्त हो गया और नये देवी-देवता प्रमुख हो उठे। ब्राह्मण धर्म में कई संप्रदायों का उदय हुआ, वैष्णव और शैव इनमें प्रमुख हैं। वस्तुतः ब्राह्मण धर्म में विभिन्न संप्रदायों का यह उदय एक महत्वपूर्ण घटना थी।

25.8 शब्दावली

अवतार : भगवान का अवतार रूप लेना। यह विश्वास किया जाता है कि संकट की घड़ी में संसार को पूर्ण विनाश से बचाने के लिए विष्णु ने कई रूपों में अवतार लिए जैसे मत्स्य, वराह, राम, कृष्ण आदि।

ब्राह्मण धर्म : इस शब्द का प्रयोग विशाल अर्थ में, धार्मिक और दार्शनिक विचारों, विश्वासों, अनुष्ठानों, देवी और देवताओं के लिए किया जाता है। यह वेदों में वर्णित विचारों को सर्वोच्च मानता है और ब्राह्मणों को समाज के सभी वर्णों में श्रेष्ठ मानता है, यह अनिश्चरवादी विचारों का भी विरोध करता है।

वास्तुशिल्प : पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि से बनायी गयी कलात्मक मूर्तियाँ और वस्तुएं

विहार : एक ऐसी जगह जहाँ कई पुजारी एक साथ रहते थे और धार्मिक नियमों का पालन करते थे।

संप्रदाय : किसी धार्मिक मत से अलग हो गया वह हिस्सा, जो किसी खास धार्मिक विश्वास के आधार पर विकसित होता है।

स्तूप : बुद्ध या उनके शिष्यों के अवशेषों के ऊपर बनाया गया स्मारक, इसमें बौद्ध अनुयायी पूजा-अर्चना करते हैं।

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) (i) (✓) (ii) (✓) (iii) (×) (iv) (×) (v) (✓)
- 2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय आप महायान बौद्ध संप्रदाय के सिद्धांतों का उल्लेख करें? देखिए, उपभाग 25.2.2
- 3) इस उत्तर में आप कुछ प्रमुख जैन केंद्रों का नाम लिखें और उनके महत्व पर प्रकाश डालें। देखिए, उपभाग 25.3.3

बोध प्रश्न 2

- 1) आप वैष्णव धर्म के सिद्धांतों, इस काल में वैष्णव धर्म के विकास, विष्णु के विभिन्न रूप आदि का उल्लेख करें। देखिए भाग 25.6
- 2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय आप ब्राह्मण धर्म में "भक्ति" के महत्व पर प्रकाश डालिए, इसके अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म द्वारा स्थानीय तत्वों के आत्मसातीकरण का भी उल्लेख कीजिए, आदि। देखिए, उपभाग 25.4.1
- 3) (i) (✓) (ii) (✓) (iii) (✓) (iv) (✓)

इकाई 26 कला तथा वास्तुकला

इकाई की रूपरेखा

- 26.0 उद्देश्य
- 26.1 प्रस्तावना
- 26.2 पृष्ठभूमि
- 26.3 वास्तुकला
 - 26.3.1 रिहायशी वास्तुकला
 - 26.3.2 मंदिर और बुर्ज
 - 26.3.3 स्तूप
 - 26.3.4 गुफा स्थापत्य
- 26.4 मूर्ति कला
 - 26.4.1 गांधार कला केंद्र
 - 26.4.2 मथुरा कला
 - 26.4.3 अमरावती कला
- 26.5 सारांश
- 26.6 शब्दावली
- 26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ई.पू. 200 से सन् ई. 300 के बीच की कला संबंधी गतिविधियों और वास्तुकला से संबंधित कार्यकलापों के बारे में जान सकेंगे,
- वास्तुकला और मूर्तिकला में अपनायी जाने वाली तकनीकों और तरीकों को रेखांकित कर सकेंगे,
- गांधार, मथुरा और अमरावती कला केंद्रों की प्रमुख विशेषताओं और स्वरूपों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे, और
- इस काल की कला तथा वास्तुकला पर धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव पर प्रकाश डाल सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

इकाई 3, 10 और 11 में हमने पढ़ा है कि किस प्रकार विभिन्न कला-रूपों का जन्म और विकास हुआ और किस प्रकार इनमें तत्कालीन संस्कृति प्रतिबिंबित हुई है। ऐसी कलाकृतियों की संख्या काफी है, जिसमें आम आदमी की प्रतिदिन की जिंदगी प्रतिबिंबित हुई है, ये कलाकृतियाँ समाज के विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। ये कलाकृतियाँ शिला चित्र, मिट्टी की मूर्तियों और खिलौनों के रूप में उपलब्ध है। धीरे-धीरे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की जाने वाली कलाकृतियाँ एक खास उद्देश्य के तहत बनायी जाने लगीं। मौर्यकाल में राज्य-संरक्षण में कई प्रकार की कलाओं को प्रोत्साहित किया गया। ऐसे नये सामाजिक वर्गों के उदय से, जो कला को संरक्षण दे सकते थे, कला संबंधी गतिविधियों में नये तत्वों का समावेश हुआ। मौर्योत्तर काल में विभिन्न सामाजिक समूहों द्वारा कला को संरक्षण दिए जाने के कारण इसका विस्तार भारत और उसके बाहर भी हुआ, अब यह केवल राज्य के अधीनस्थ नहीं रही। मौर्यकाल के पश्चात् एक और परिवर्तन आया : पत्थर जैसी न टूटने वाली सामग्री को कलात्मक अभिव्यक्ति का आधार बनाया गया। इस काल में भारत से बाहर के कला रूपों और यहाँ के कला-रूपों के बीच आदान प्रदान हुआ। कई कला-केंद्रों का जन्म हुआ। इस इकाई में गांधार और मथुरा कला रूप की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करेंगे। इस संदर्भ में मारनाथ और अमरावती की भी चर्चा की जाएगी। अधिकांश कला-रूप बौद्ध और जैन धर्म से प्रभावित हैं, कुछ ब्राह्मण धर्म का प्रभाव ग्रहण किए हुए हैं। इसके अतिरिक्त इस इकाई में विभिन्न स्तूपों, विहारों और गुफाओं आदि की वास्तुकला और मूर्तिकला संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

26.2 पृष्ठभूमि

मौर्यकाल में वास्तुकला और मूर्तिकला विकसित अवस्था तक पहुँच गयी थी। अशोक के स्तंभ, उन पर जानवरों की आकृतियाँ और खुदाई का काम, परिपक्व कला रूप का प्रमाण है। मौर्य काल की एक विशेषता यह थी कि इसमें पत्थर पर पालिश करके उसे चिकना बनाया जाता था, पत्थर की सतह पर इस प्रकार की शीशे जैसी चमक दूसरे किसी काल में देखने को नहीं मिलती। जानवर आकृतियों के अलावा दीदार गंज, पटना से यक्षिणी की मूर्ति मिली है, जो कला का सुंदर और उत्कृष्ट नमूना है। इस शानदार कलाकृति से उस समय की औरतों के बाल संवारने के ढंग, आभूषण और वस्त्रों का पता चलता है। खुदाइयों से मौर्यकालीन बहुत सी मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं। यह इस बात का संकेत है कि कला कृतियों का निर्माण राजकीय घराने तक ही सीमित नहीं था, बल्कि जनता तक उनकी पहुँच थी। इसी कारण जब राजकीय कला का हास हुआ और नये कलारूप सामने आये तब भी मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण होता रहा।

जहाँ तक वास्तुकला का संबंध है, हम मेगस्थनीज के वर्णन से चंद्रगुप्त के लकड़ी के महल की सूचना पाते हैं। पाटलिपुत्र में हुई खुदाई से लकड़ी की दीवारें और खंभे मिले हैं। बौद्ध ग्रंथों और फाहयान ह्वैन सांग के वर्णन से यह पता चलता है कि मौर्यकाल में स्तूपों का भी निर्माण हुआ था। यह हो सकता है कि सांची, सारनाथ, तक्षशिला और भारहुत जैसे धार्मिक केंद्रों में स्तूपों का निर्माण कार्य मौर्यकाल में ही शुरू हुआ हो और बाद के वर्षों में उनका विस्तार किया गया हो।

ई.पू. 200 से सन् ई. 300 के बीच की कला की निम्नलिखित विशेषताएँ थी :

- 1) कला संबंधी गतिविधियों का संबंध धर्म से था और कलाकृतियों में धर्म परिलक्षित होता था।
- 2) इस काल में बुद्ध की मूर्ति बनायी जाने लगी, इसके पहले बोधि वृक्ष स्तूप, चरण-चिह्न आदि के रूप में ही उनकी पूजा की जाती थी। अन्य धर्मों में भी मूर्ति पूजा का प्रचलन तेजी से बढ़ा।
- 3) स्तूपों, चैत्यों और विहारों के निर्माण को लोकप्रियता मिली।
- 4) कलाकृतियों में, किसी एक ही धर्म का प्रतिबिंबन नहीं होता था। उदाहरण के लिए भरहुत और सांची स्तूपों में केवल बुद्ध के जीवन की झांकी ही नहीं अंकित है, बल्कि यक्ष, यक्षिणी, नाग और अन्य लोक प्रिय देवताओं के चित्र भी अंकित हैं।
- 5) इसी प्रकार, स्तूपों को सजाने के लिए प्राकृतिक दृश्य भी अंकित किए जाते थे। वस्तुतः यह "सेक्यूलर" कला रूप का उदाहरण है।
- 6) दूसरी संस्कृतियों से आदान-प्रदान के कारण इस काल की कलाकृतियों में गैर भारतीय कला की छाप भी मिलती है। खास तौर पर यह बात गांधार कला के लिए सटीक है, जिसके अंतर्गत एक क्षेत्र विशेष की कला सामने आई और इसने कई विभिन्न तत्वों को आत्मसात किया।

आइए, विस्तार से इस काल की कला और वास्तुकला के विभिन्न पक्षों पर विचार करें।

26.3 वास्तुकला

इस काल की वास्तुकला को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

- i) रिहायशी मकान/आवासीय संरचना
- ii) धार्मिक स्मारक

रिहायशी मकान के अवशेष काफी कम मात्रा में पाये जाते हैं, क्योंकि आरंभिक दौर में उनका निर्माण लकड़ी जैसी नष्ट होने वाली सामग्री से होता था। खुदाई के दौरान दूसरी श्रेणी के कई स्मारकों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

26.3.1 रिहायशी वास्तुकला

खंड 4, इकाई 15 में हमने साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर नगरीय जीवन के बारे में विचार विमर्श किया है। इस काल के बारे में भी हमें इसी प्रकार की सूचनाएँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए मिलिन्द पण्ह में खंदक, चहारदीवारी, प्रवेश द्वार, बुर्ज, सुनियोजित गलियों,

बाजारों, बागों और मंदिरों में युक्त एक नगर का उल्लेख मिला है। गेमी बहुमंजिली इमारतों का भी जिक्र किया गया है, जिसमें रेलिंग से घिरी खुली छत और बरामदे बने हुए थे, ये ज्यादातर लकड़ी के बने थे। इन वर्णनों की एक हद तक पुरातात्विक स्रोतों से पुष्टि कर ली गयी है। देहातों में वास्तुकला के तरीकों या शोपड़ियों के आकार-प्रकार में कोई विशेष बदलाव आने की सूचना नहीं मिलती है।

26.3.2 मंदिर और बुर्ज

उत्खनन से इस काल के मंदिर की संरचना का अपर्याप्त ब्यौरा ही प्राप्त हुआ है। इस काल के आरंभिक मंदिर निम्नलिखित हैं :

- झंडियाल (तक्षशिला) का मंदिर
- नागरी (राजस्थान) का शंकरशान मंदिर
- बेसनगर (मध्यप्रदेश) का भगवती मंदिर
- नागार्जुनकोंडा (आंध्र प्रदेश) का बहुकोणीय शिखर वाला मंदिर

फाहयान ने अपने वृतांत में पुरुषपुर (पेशावर) के बुर्ज का उल्लेख किया है। यह तरह मंजिली भव्य इमारत थी, जिसमें लोहे का खंभा लंगा था, इस खंभ से एक छतरी जुड़ी हुई थी। यह बुर्ज कनिष्क-1 को समर्पित था।

वस्तुतः मंदिरों का निर्माण और पूजा के लिए देवताओं की स्थापना जैसी गतिविधियाँ बाद के वर्षों में आरंभ हुईं। इस काल में बौद्ध स्तूप और अन्य धार्मिक इमारतें ही ज्यादा बनायीं गयीं।



2. झंडियाल मंदिर

26.3.3 स्तूप

महत्वपूर्ण व्यक्तियों के अवशेषों को मिट्टी में दबाकर सुरक्षित रखने की प्रथा बहुत पुराने समय से चली आ रही थी। बौद्ध कला ने इस प्रथा को अपनाया और इस प्रकार के पनीत स्थलों के ऊपर बनी इमारतों को स्तूप कहा गया। बौद्ध स्रोतों के अनुसार बुद्ध के अवशेषों को आठ भागों में बांट कर विभिन्न स्तूपों का निर्माण किया गया। अशोक के शासनकाल में इन स्थलों की फिर से खुदाई हुई और बुद्ध के अवशेषों को फिर से कई भागों में बांटा गया और इस प्रकार कई नये स्तूप सामने आये। स्तूप में पूजा-अर्चना आरंभ हुई, उसका अलंकरण बढ़ा और उनके निर्माण के लिए एक खास तरह की वास्तुकला विकसित हुई।

स्तूपों का आकार कटोरे या अर्द्ध वृत्ताकार गुंबद जैसा होता था। ऊपरी हिस्सा समतल होता था। जिसे हर्मिक या ईश्वर का आवास स्थल माना जाता था। यहीं पर बुद्ध या किसी अन्य धार्मिक व्यक्तित्व के अवशेष मोने या चांदी के डिब्बे में रखे जाते थे। मध्य में एक लकड़ी का खंभा (यश्ती) लगा होता था जिसका निचला हिस्सा स्तूप के ऊपरी हिस्से से जुड़ा होता था। इस खंभे के ऊपर तीन छतरियाँ लगी होती थी जो सम्मान, श्रद्धा और उदारता का प्रतीक मानी जाती थीं।

i) बोध गया (बिहार)

गया से पंद्रह किलोमीटर दूर बोध गया में बुद्ध ने बोधिसत्व की प्राप्ति की थी और यहीं अशोक ने बोधि मंड का निर्माण करवाया था। पर आज इस संरचना का कोई अवशेष उपलब्ध नहीं है। केवल शुंग काल में बने कुछ पत्थरों के खंभे प्राप्त हुए हैं। उनकी स्थापत्यगत संरचना स्तूपों के पास बने खंभों से मिलती जुलती है। उनमें जातक कथाएँ चित्रित हैं।

ii) सांची का स्तूप (मध्य प्रदेश)

सांची विदिशा (भिल्सा) से 14 किलोमीटर दूर है और यहां का स्तूप शायद भारत का सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें तीन स्तूप बने हैं, तीनों स्तूपों के लिए अलग-अलग प्रवेश द्वार हैं। पर इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वह महीन स्तूप है, जिसका निर्माण अशोक के शासनकाल (250 ई.पू.) में हुआ था। 150 ई.पू. में शुंग शासन काल में इसका आकार दुगना कर दिया गया। अशोक काल की ईंटों को हटाकर पत्थर लगाया गया और इसके चारों ओर "वेदिका" का निर्माण किया गया। इसकी सुंदरता बढ़ाने के लिए, प्रत्येक दिशा में एक प्रवेश द्वार बनाया गया। दक्षिण द्वार पर स्तंभ स्थापत्यकार का एक वक्तव्य प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार यह प्रवेश द्वार राजा शतकर्णी ने धर्मार्थ दान दिया था और इसमें नक्काशी का काम हार्थी दांत का काम करने वाले शिल्पकारों द्वारा किया गया था।

उत्तरी द्वार और इसके चौखटों पर जातक कथाएँ अंकित हैं। इसके अतिरिक्त सांची स्तूप में निम्नलिखित चित्र बने हुए हैं

- 1) बुद्ध के जीवन से संबद्ध चार प्रमुख घटनाएँ—जन्म, बोधिसत्व की प्राप्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन और महापरिनिर्वाण
- 2) पक्षी और पशुओं जैसे शेर, हाथी, ऊँट, बैल आदि के चित्र काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। इनमें कुछ जानवरों पर सवार भारी कोट और बूट पहने चित्रित किए गये हैं।
- 3) दीवारों पर कमल और अंगूर के गुच्छों के सुंदर चित्रों द्वारा अंलकरण किया गया है।
- 4) जंगली जानवरों का चित्र इस प्रकार बनाया गया है मानो सारा जंगल बुद्ध का उपासक हो गया हो।

iii) भारहुत स्तूप

यह स्तूप सतना (मध्य प्रदेश) से 21 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। मुख्य स्तूप का अब नामोनिशान नहीं है। इस स्तूप के प्रमुख अवशेष अब भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता और अन्य संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं :

- प्रवेश द्वार या तोरण, जो लकड़ी का बना होता था, इसमें पत्थर की नक्काशी की जाती थी।
- प्रवेश द्वार को छूती हुई रेलिंग। इसमें भी नक्काशी के तौर पर पत्थर लगाए जाते थे। भारहुत की पत्थर के रेलिंग की किनारी भारी पत्थर से निर्मित है।
- इन रेलिंगों के अन्दलब भाग पर वृक्ष, यक्षिणी और उन अन्य देवताओं को उत्कीर्ण किया गया है, जो बौद्ध धर्म के साथ जुड़े हुए थे। इनमें से कुछ देवताओं का विवरण भी उत्कीर्ण है, जिससे इन्हें पहचानने में आसानी होती है। अन्य स्तूप रेलिंगों की तरह इसमें भी जातक कथाओं और इनमें जुड़े अन्य प्राकृतिक तत्वों को उत्कीर्ण किया गया है।

iv) अमरावती

गुंटूर से 46 किलोमीटर दूर स्थित यह स्तूप सफेद संगमरमर से बना है। हालांकि स्तूप अब पूरी तरह नष्ट हो चुका है, पर इसके नक्काशीदार चौखटे म्रदास और ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। मूल रूप में यह स्तूप नगर-प्रमुख और जनता के सहयोग से बनाया गया था।

यह सुंदर स्तूप अपनी गोलाई में 42 मीटर और ऊँचाई में लगभग 29 मीटर था। इसमें एक वृत्ताकार प्रार्थना-पत्र था जो 10 मीटर ऊँचा था और पत्थर से बना हुआ था। वेदिका खंभों पर माला पहने देवताओं, बोधि वृक्ष, स्तूप, धर्म-चक्र और भगवान बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं से संबंधित चित्र उत्कीर्ण किए गए थे। स्तूप के प्रवेश द्वार (तोरण) की वेदिका पर चार शेरों को चित्रांकित किया गया है।

स्तंभों के ऊपर कमल को भी उत्कीर्ण किया गया था। अमरावती स्तूप से कई प्रकार की मूर्तियाँ पाई गयी हैं। आरंभिक चरण में बुद्ध का प्रतिनिधित्व प्रतीकों के माध्यम से होता था, पर प्रथम शताब्दी ई. से इन प्रतीकों के साथ बुद्ध की प्रतिमा भी बनने लगी।

v) नागार्जुनकोंडा

नागार्जुनकोंडा का स्तूप उत्तर भारत के स्तूपों से थोड़ा भिन्न है। यहाँ केंद्र में और बाहर की तरफ दो वृत्ताकार दीवारें थीं, ये दीवारें साइकिल की स्पोक जैसी दीवारों से जुड़ी थी और बीच का स्थान मिट्टी, छोटे पत्थर या ईंटों के छोटे टुकड़ों से भरा होता था। इस स्तूप की गोलाई 30 मीटर और ऊँचाई 18 मीटर थी। बाहर की तरफ इसके गुंबद को नक्काशीदार संगमरमर के पत्थरों से अलंकृत किया गया था। गुंबद की अर्ध गोलाकार छत को चूने और गारे के काम से अलंकृत किया गया था।

इस स्तूप के महत्व का कारण इसकी सुंदर रेलिंग है, जिस पर बुद्ध के जीवन से संबंधित कथाएँ वर्णित हैं। इनमें से प्रमुख हैं :

- 1) पृथ्वी पर जन्म लेने के लिए देवता बोधिसत्व से प्रार्थना करते हुए
- 2) सफेद हाथी के रूप में गर्भ में बुद्ध का प्रवेश
- 3) सागौन के पुष्पित वृक्ष के नीचे बुद्ध का जन्म

vi) तक्षशिला

तक्षशिला और उसके आसपास के इलाकों में हुई खुदाई से कई स्तूप प्राप्त हुए हैं :

- सर जान मार्शल ने तक्षशिला के चौर-तोपे स्तूप का उत्खनन किया है। इस स्तूप में गुंबद का बाहरी हिस्सा पत्थर का बना था और बोधिसत्व के विभिन्न रूपों से अलंकृत था।
- 1908 में हुए उत्खनन से पेशावर के निकट शाह जी की ढेरी में एक स्तूप था। स्तूप का निर्माण कनिष्क ने करवाया था और इसका जिक्र फाहयान ने भी किया है। इनकी वास्तुकला गांधार कला का नमूना है। (गांधार कला पर हम आगे अलग से इस इकाई में विचार करेंगे)
- इंडियल से प्राप्त स्तूप स्कार्याथियन-पार्थियन शैली में बना हुआ है। इसी के पास एक छोटी चांदी का पात्र मिला था, जिसमें सोना और कुछ हड्डियाँ रखी थीं।

इसी प्रकार, देश के कई हिस्सों में कई स्तूप पाये गये हैं। मसलन, दो स्तूप मथुरा से प्राप्त हुए हैं। वस्तुतः इस काल में स्तूप कला की एक विशेष शैली का विकास हुआ। सबसे बड़ी बात यह है कि विभिन्न धर्मों के म्नों में एक प्रकार की समानता है। इससे यह पता चलता है कि शिल्पकारों के बीच कला का आदान-प्रदान होता था और म्नप निर्माण में वे जगह-जगह की कलाओं का इस्तेमाल करते थे।

26.3.4 गुफा वास्तुकला

बौद्ध और जैन दोनों की पूजा-अर्चना के लिए चैत्यों और विहारों का निर्माण करते थे।

चैत्य एक प्रकार का पूजा कक्ष था, जिसके केंद्र में एक स्तूप होता था। भिक्षुओं के रहने के लिए पहाड़ियाँ काटकर बनायी गयी गुफाओं को विहार कहते थे।

इस काल के अधिकांश चैत्य और विहार पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों में बनाये गये थे। मसलन, पश्चिमी भारत में ये भज, कार्ले, कोडन, नासिक, चिटाल्डो, अजंता और कन्हेरी में स्थित हैं। इसी प्रकार पूर्वी भारत में इस दृष्टि से उदयगिरि (उड़ीसा) उल्लेखनीय है। चैत्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- इसमें एक लंबा आयताकार कक्ष होता है, जिसका अंतिम छोर अर्द्ध वृत्ताकार होता है।
- यह कक्ष अंदर से मध्य भाग, एक बहुकोणीय शिखर और दो तरफा गलियारों में विभक्त होता है
- गलियारे और झरोखे के बीच स्तंभों की दो कतारें होती हैं।
- उपासना स्तूप के चारों ओर स्तंभ होते थे और यह मध्य भाग के झरोखे जैसे भाग के केंद्र में स्थित होता था।
- कक्ष की छत गोलाकार-गुम्बजदार होती है।
- प्रवेश द्वार प्रायः उपासना स्तूप की सीध में होता है।
- इसके अग्रभाग में घोड़े की नाल के आकार की एक खिड़की होती है, जिसे चैत्य खिड़की कहते हैं।

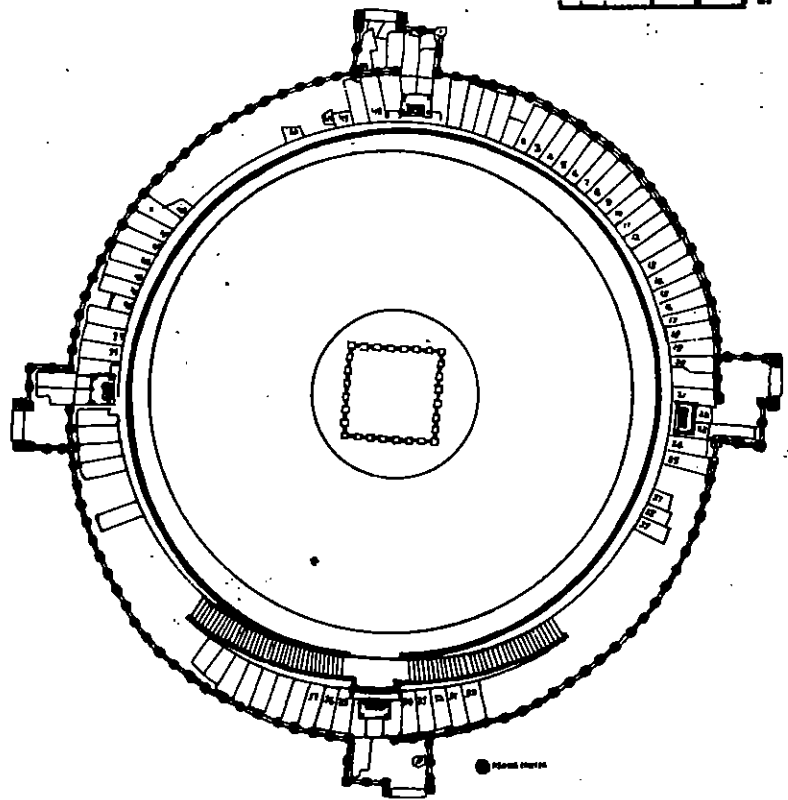
गुफा वास्तुकला का दूसरा नमूना विहार या मठ है, जिसमें जैन और बौद्ध भिक्षु रहा करते थे।

पश्चिमी भारत की गुफाओं की संरचना एक सी नहीं है। पूर्वी भारत में एक निश्चित योजना का पालन किया गया है। विहारों की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

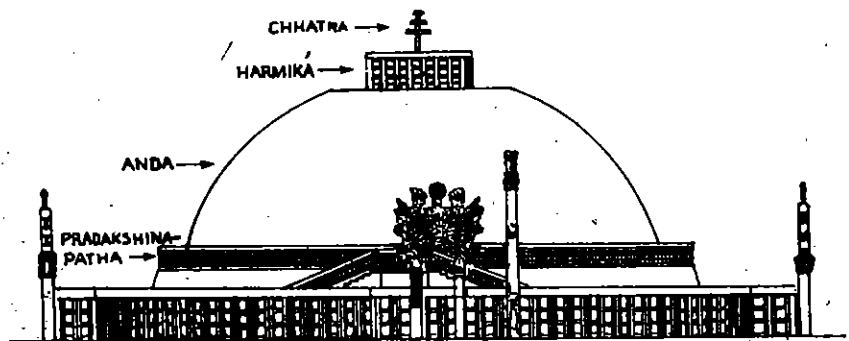
- इसके केंद्र में एक चहुभुजाकार या अंडाकार कक्ष होता है।
- कक्ष के सामने खंभों वाला एक आंगन होता है।
- कई छोटी चहुभुजाकार कोठरियाँ भी मिलती हैं।
- इन कोठरियों और कक्षों में बेंच लगा होता था जिसका उपयोग भिक्षु किया करते थे।

पश्चिमी भारत के आरंभिक विहार भज, बेदसा, अजंता, पीतलकोरा, नासिक और कार्ले में प्राप्त हुए हैं। खारवेल के शासन काल में जैन भिक्षुओं के लिए उदयगिरि और खंडगिरि में विहार खुदवाये गये थे। दो हिस्सों में 35 गुफाएँ खोदी गयी थीं। किसी में एक कोठरी है और कई गुफाओं में अनेक कोठरियाँ हैं। इनमें एक खुला आंगन भी मिलता है। अंदरूनी हिस्सों के प्रवेश द्वार अर्द्ध वृत्ताकार मेहराबों से आच्छादित हैं। उदयगिरि की पहाड़ियों में निर्मित दुमजिली रानीगुम्फा गुफा सभी गुफाओं में सबसे विशाल है।

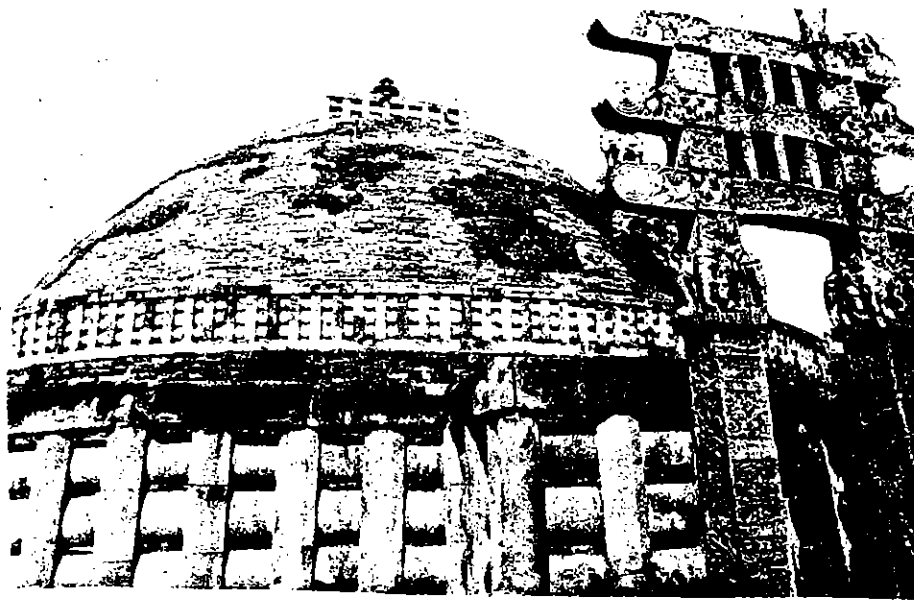
भारत : 200 ई. पू. से
300 ई. तक



3. सांची स्तूप की बनावट



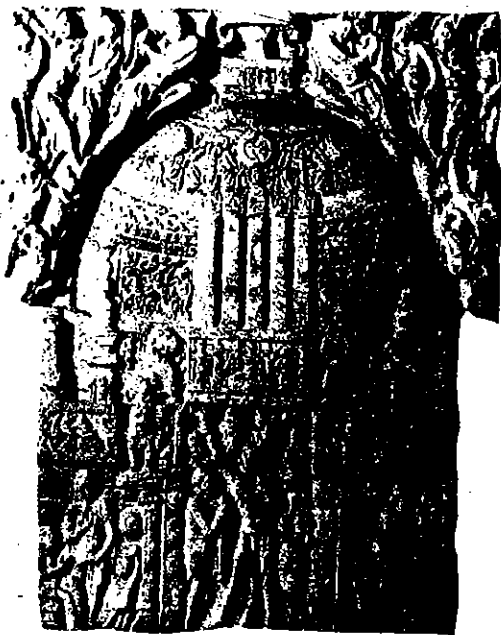
4. सांची स्तूप



5. सांची के विशाल स्तूप का एक भाग



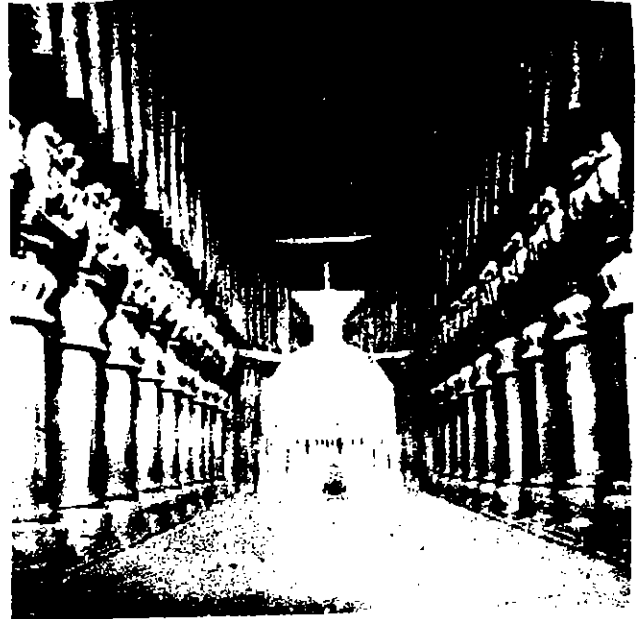
6. तक्षिला का चिखतोप स्तूप



7. दीवार पर नक्काशी की हुई स्तूप की एक आकृति
(नागार्जुनकोडा)



8. कार्ले चैत्य का समाने का भाग



9. कार्ले चैत्य की गुफा



10. भज चैत्य की गुफा



11. रानी गुफा की गुफा (उदयगिरि)

बोध प्रश्न 1

1) पाँच पंक्तियों में मौर्य कला की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।

2) स्तूप से आप क्या समझते हैं? सांची स्तूप की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करें। दस पंक्तियों में उत्तर दें।

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

- बौद्ध और जैन धर्म ने अधिकांश कलारूपों को (प्रेरित/निरुत्साहित) किया।
- मौर्य कला (अपरिपक्व/परिपक्व) कला रूप है।
- नागार्जुनकोंडा स्तूप उत्तर भारत के अन्य स्तूपों से (अभिन्न/भिन्न) है।
- (मोर्टिमर व्हीलर/सरजान मार्शल) ने तक्षशिला में उत्खनन की शुरुआत की।
- विहारों का उपयोग भिक्षु (पूजा स्थल/आवास) के रूप में करते थे।

26.4 मूर्ति कला

मूर्ति कला को स्थापत्य कला से अलग करके नहीं देखा जा सकता है, क्योंकि स्तूप और चैत्य जैसी कलात्मक संरचनाओं का निर्माण दोनों के योग से ही होता है। किसी भी मूर्ति की स्थापना विहारों या अन्य धार्मिक स्थलों पर ही होती थी। इस काल में, हमें मूर्ति कला के क्षेत्र में क्षेत्रीय या स्थानीय शैलियाँ और केंद्र देखने को मिलते हैं। उत्तर में गांधार और मथुरा केंद्र विकसित हुए, जबकि दक्षिण में निचली कृष्ण-गोदावरी घाटी में अमरावती प्रमुख आरंभिक केंद्र था।

समग्र रूप में, मौर्योत्तर काल की कला आरंभिक शाही मौर्य कला से अलग है। मौर्य कला को शाही कला कह सकते हैं, जबकि शुंग कण्व शासन कला की कला का सामाजिक आधार अधिक व्यापक है। इसके मूलभाव, तकनीक और महत्व में भी अंतर है।

इस युग की मूर्ति कला बृद्ध की मूर्ति और रेलिंगों पर उभरी हुयी खोद कर बनायी गयी नक्काशी, प्रवेश द्वार, स्तूपों के आधारों, तोरणों और विहारों और चत्यों की दीवारों पर उभारदार नक्काशी में प्रतिबिंबित होती है। इस काल में ब्राह्मण धर्म से संबंधित मूर्तियाँ कम ही बनाई गयीं। इस कला में मथुरा और गांधार कला-केंद्रों में बृद्ध की प्रतिमा बनाने का चलन शुरू हुआ। बौद्ध और जैन धर्म की देखादेखी ब्राह्मण धर्म में भी कई देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाई जाने लगीं।

रेलिंगों पर चित्र उत्कीर्ण करने के अलावा गोलाकार आधार पर भी चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे। ये चित्र आकार में बड़े और सुस्पष्ट हैं। इसके बावजूद वे सही गणितीय अनुपात में नहीं बने हुए

हैं। इस श्रेणी में यक्ष और यक्षिणी की मूर्तियाँ सबसे ज्यादा उत्कीर्ण की गयीं। इनमें सर्वप्रमुख दीदारगंज (पटना) से प्राप्त यक्षिणी जी की मूर्ति है।

शुंग काल से जैन धर्म में मूर्ति पूजा शुरू हो गयी थी। लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त सिर विहीन नग्न मूर्ति का संबंध तीर्थंकर से बताया जाता है। हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार पूर्वी भारत के जैनों के बीच मौर्य काल के पहले से मूर्ति पूजा प्रचलित थी। कुछ जैन मूर्तियाँ मथुरा से अष्टमंगलों (आठ शुभ चिह्न) के साथ उपासना शिल्प पट्ट पर प्राप्त हुई हैं। इससे पता चलता है कि प्रथम शताब्दी ईस्वी तक जैनों के बीच मूर्ति पूजा आम बात हो गयी थी।

बौद्ध धर्म में महायान संप्रदाय ने मूर्ति पूजा की शुरुआत की। मथुरा और गांधार में बैठने और खड़े होने की मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति बनायी गयी।

सांची, भरहुत और बोध गया की दीवारों पर उभारदार, मूर्तियों का निर्माण किया गया है, ये उभारदार कला के आरंभिक उदाहरण हैं। इस प्रकार के अधिकांश शिल्प स्तूप को घेरे हुए रेलिंग के गोल या आयताकार फलक पर उत्कीर्ण पाये गये हैं। उभारदार शिल्प में या तो बुद्ध का जीवन उत्कीर्ण किया गया है या जातक कथाओं के दृश्य अंकित किए गये हैं और घटनाओं का वर्णन लगातार किया गया है।

26.4.1 गांधार कला केंद्र

गांधार भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में सिंधु नदी के दोनों ओर स्थित है। इसमें पेशावर की घाटी, स्वात, बुलेर और बज्जोरा के इलाके शामिल हैं। छठी-पांचवी ई.पू. में ईरान के अक्कामेनिदों ने यहाँ शासन किया था। बाद में यूनानियों, मौर्यों, शकों, पल्लवों और कुषाणों ने इस क्षेत्र पर अधिकार जमाया। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में एक मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ। बौद्ध धर्म से जुड़ी यह कला यूनानी कला रूप से काफी प्रभावित थी। उदाहरण के लिए बुद्ध की प्रतिमा में उत्कीर्ण वस्त्र यूनानी रोमन फैशन के अनुरूप झीने और पारदर्शी होते थे और बालों का डिजाइन प्रायः घुघराला बनाया जाता था। पर एक बात याद रखनी चाहिए कि गांधार कला के प्रमुख संरक्षक शक और कुषाण थे।

गांधार कला केंद्र की कला के नमूने जलालाबाद, हड़डा, बामरान, बेग्राम और तक्षशिला से प्राप्त हुए हैं। गांधार कला को दो स्कूलों में विभक्त किया जा सकता है—आरंभिक और बाद की कला। आरंभिक कला केंद्र का अस्तित्व सन् ईस्वी की प्रथम और द्वितीय शताब्दी में था, इस काल में मूर्तियों का निर्माण नीले-भूरे रंग की परतदार चट्टानों से किया जाता था। बाद के कला केंद्र में परतदार चट्टानों के स्थान पर भिट्टी, चूना, भित्ति स्तंभ और पलस्तर का उपयोग किया जाता था। इन मूर्तियों में मनुष्य की आकृति का जीवंत अंकन हो पाता था। उनके नाक-नकशे तीखे हुआ करते थे और उनमें एक गणितीय अनुपात होता था।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त दीवारों पर उभारदार मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की जाती थीं। इनमें अधिकांशतः बुद्ध और बोधिसत्व के जीवन से संबंधित चित्र अंकित होते थे। उदाहरण के लिए :

- तक्षशिला का स्तूप बोधिसत्व की मूर्तियों से सजाया गया है, ये मूर्तियाँ पूजा के लिए ताखे पर रखी हैं।
- सेहरीभेलोल स्तूप के छोटे खंभों के परकोटे पर बुद्ध, बोधिसत्व और उनके जीवन से संबंधित घटनाएँ उत्कीर्ण हैं।
- शाह जी की ढेरी स्थित स्तूप के बगल वाली दीवार से एक कांस्य अस्थि-मंजूषा प्राप्त हुई है। इसमें बुद्ध, कुषाण राजा और उड़ता हुआ हंस (विचरणशील भिक्षुओं का प्रतीक) चित्रित हैं।

गांधार कला की कई अन्य विशेषताएँ भी हैं। उदाहरण के लिए बिमरान में एक सोने की अस्थि-मंजूषा प्राप्त हुई है, जिसमें एक छतरी के भीतर कई चित्र अंकित हैं। इसी प्रकार हाथी दांत की बनी एक पटिया बेग्राम से प्राप्त हुई है।

यहाँ हम कुछ चित्र दे रहे हैं (देखें सं. 12, 13, 14, 15, 16, 17) जिनमें गांधार कला के विभिन्न पक्ष उजागर हुए हैं।

26.4.2 मथुरा कला केंद्र

मथुरा कला का जन्म दूसरी शताब्दी ई.पू. से माना जा सकता है। ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी तक न केवल यह कला के एक प्रमुख केंद्र के रूप में सामने आ गयी थी, बल्कि इसकी मांग दूर-दूर के इलाकों तक फैल गयी। चार सौ वर्षों के अपने जीवन-काल में इस कला-केंद्र ने विविध प्रकार के शिल्प प्रस्तुत किए और बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों के लिए मूर्तियाँ



12. हाथीदांत का अलंकृत पट्ट



13. बुद्ध की खड़ी हुई मुद्रा में मूर्ति



14. ध्यान मग्न मुद्रा में बुद्ध



15. शिला पर निर्मित बोधिसत्व आकृति



16. बुद्ध का मुखमण्डल (एक विशेष पलस्तर से बना)



17. भिक्षुओं के साथ भोजन करते हुये महात्मा बुद्ध

बनायी। मथुरा कला की एक खास विशेषता यह है कि अफगानिस्तान की तरह इसमें भी कृषाण काल में राजा और सामंतों की मूर्तियाँ बनायी गयीं। इससे पता चलता है कि मथुरा के कलाकार इस युग की विभिन्न कलात्मक गतिविधियों से परिचित थे और भारतीय तथा अभारतीय मूल के विभिन्न सामाजिक समूहों की मांगों को पूरा करने के प्रति जागरूक थे। मथुरा कला में स्थानीय रूप से उपलब्ध लाल बलुआ पत्थर का उपयोग होता था। इस कला केंद्र की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें पवित्र खंभों पर जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रांकन किया गया है। मसलन, कहीं जंगल का दृश्य है, जहाँ पुरुष और स्त्री फूल चुन रहे हैं, महिलाएँ सारस के साथ खेल रही हैं या चिड़ियों को दाना चूगा रही हैं तथा फुलवारी और सरोवर में क्रीड़ा कर रही हैं। "कंकालितिया के पवित्र खंभों पर नारी सौंदर्य को शिल्पी ने सजीवता से उत्कीर्ण किया है"।

वस्तुतः मथुरा कला केंद्र के कलाकारों ने अपनी कला की प्रस्तुति के लिए अनेक विषय चुने। सांची और भारहुत में कलाकार ने प्राकृतिक दृश्यों का सुंदर उपयोग किया है।

इस कला केंद्र की मूर्तियाँ स्थानीय तौर पर प्राप्त लाल बलुआ पत्थर से बनायी जाती थीं। आइए, मथुरा कला केंद्र में बनायी गयी मूर्तियों के विषयवस्तु पर विचार करें।

1) **बुद्ध की प्रतिमाएँ** : बोधिसत्व और बुद्ध की मूर्ति संभवतः सबसे पहले मथुरा में बनायी गयी थी और यहीं से देश के सारे हिस्से में भेजी गयी थी। उदाहरण के लिए कनिष्क प्रथम के शासन काल में सारनाथ में स्थापित खड़े बोधिसत्व की मूर्ति का निर्माण मथुरा में ही किया गया था। हम बुद्ध की प्रतिमा मुख्यतः दो मुद्राओं में देखते हैं—खड़े और बैठे हुए। बैठने की मुद्रा वाली मूर्तियों में सबसे पुरानी प्रतिमा काजा में पायी गयी है। इस प्रतिमा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- बोधि वृक्ष के नीचे बैठे बुद्ध
- अभय की मुद्रा में दाहिना हाथ,
- हथेली और पैर के नीचे धर्म चक्र और त्रिरत्न के निशान उत्कीर्ण
- चूटिया के अतिरिक्त सिर पूरी तरह घुटा हुआ।

वस्तुतः इस युग की बौद्ध प्रतिमाओं की आम विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- i) उनका निर्माण उजले धब्बे वाले लाल पत्थर से किया गया है।
- ii) मूर्तियों का निर्माण गोलाकार हुआ है ताकि चारों तरफ से उन्हें देखा जा सके।
- iii) सिर के बाल और चेहरे की दाढ़ी बिल्कुल साफ है।
- iv) दाहिना हाथ अभय की मुद्रा में है।
- v) ललाट पर कोई निशान नहीं है।
- vi) वस्त्र शरीर से बिल्कुल सटे होते हैं और इसका झालर बाएँ हाथ में रहता है।

2) **जैन प्रतिमाएँ** : मथुरा ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का पवित्र स्थल होने के साथ-साथ जैन धर्म की भी पुण्य भूमि है। यहाँ बहुत से ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें जैन धर्म के अनुयायियों, जैन भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उनको दिए गए दान-पुण्य का उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिए, द्वितीय शताब्दी की अर्द्ध शती के आस-पास के अभिलेख (प्रासाद-तोरण) में जैन श्रावक को "उत्तर दसक" कहा गया है। कंकाली टीला मथुरा का प्रमुख स्थल है जहाँ से कई जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इस स्थान से निम्नलिखित शिल्पगत नमूने प्राप्त हुए हैं :

- मूर्तियाँ
- जैन मूर्तियों से अंकित पत्थर की पट्टियाँ या आयक पट्ट, इन पट्टियों पर जैन धर्म की अन्य निशानियाँ, जैसे स्तूप आदि भी अंकित हैं।
- इमारतों के टूटे हुए अंश, जैसे खंभे, स्तंभ शीर्ष, अर्गला ढेंकली रेलिंग आदि।

आयक पट्ट पर जैन और तीर्थाकारों के चित्र कृषाण काल के पहले अंकित किए गए थे, पर कृषाण काल से ही मूर्तियाँ नियमित रूप से बनने लगीं। इनमें से पार्श्वनाथ को सांपों के साथ और ऋषभनाथ को कंधे पर झूलते बालों के साथ पहचाना जा सकता है, पर अन्य तीर्थाकारों की प्रतिमाओं को आसानी से नहीं पहचाना जा सकता है।

3) **ब्राह्मण धर्म की मूर्तियाँ** : ब्राह्मण धर्म से संबंधित कुछ मूर्तियाँ भी मथुरा से प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार की आरंभिक मूर्तियों में शिव, लक्ष्मी, सूर्य और बलराम उल्लेखनीय हैं। कृषाण काल में कार्तिकेय, विष्णु, सरस्वती, कूबेर नाथ और अन्य देवताओं की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। इस काल की मूर्ति विद्या की यह विशेषता है कि प्रत्येक देवता अलग से पहचाने जा सकते हैं और उनकी एक खास पहचान बना दी गयी है।

उदाहरण के लिए हालांकि शिव लिंग-रूप में पूजे जाते हैं, पर इस काल में चहुर्मुख लिंग का निर्माण होने लगा। इसमें एक लिंग के चारों ओर शिव की मुखाकृति लगी होती है।

- कृषाण काल में सूर्य देवता दो घोड़े से जुते एक रथ पर सवार दिखाये गये हैं। उन्होंने भारी कोट पहन रखा है, इसके अतिरिक्त उनके बदन पर सलवार और जूता भी है। उनके एक हाथ में तलवार और दूसरे में कमल है।
- बलराम के सिर पर भारी पगड़ी है।
- सरस्वती एक हाथ में रुद्राक्ष की माला और दूसरे हाथ में पुस्तक लिए बैठी है। उन्होंने साधारण वस्त्र पहन रखे हैं और उनके शरीर पर कोई आभूषण नहीं है, खनकी सेवा में दो प्रतिमाएं लगी हुई हैं।
- दुर्गा महर्षि-मर्दिनी रूप में है, उन्हें भैंस रूपी राक्षस को मारते हुए दिखाया गया है।

मथुरा से यक्ष और यक्षिणी की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। उनका संबंध बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धर्मों से है। कुबेर अन्य देवता है, जिसकी मूर्ति एक मोटे व्यक्ति के रूप में बनायी गयी है। उसका संबंध मद्य और मद्यपान के आयोजन से बताया गया है। इस देवता पर वधू और डायोनीसस जैसे रोमन और यूनानी मद्य देवता की छाप दिखायी देती है।

3) शासकों की प्रतिमा : मथुरा के मट गांव से प्रमुख कृषाण राजाओं जैसे कनिष्क, बीम और चास्तन की विशाल प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। शासकों और राज्य की प्रमुख हस्तियों की प्रतिमाओं को बनाने और उनके रखरखाव का विचार संभवतः मध्य एशिया से आया होगा। यह शासक को देवत्व का दर्जा देने के लिए किया जाता था। इन प्रतिमाओं के वस्त्रों पर मध्य एशिया का प्रभाव स्पष्ट है।

मट से सिथियन अधिकारियों/शासकों की मूर्तियों का शीर्ष भाग प्राप्त हुआ है। इन खोजों से पता चलता है कि मथुरा कृषाण साम्राज्य के पूर्वी भाग का एक प्रमुख केंद्र था। इससे यह भी पता चलता है कि गांधार और मथुरा कला रूपों में काफी आदान-प्रदान हुआ था।

कालांतर में गुप्त कला-रूपों के विकास में मथुरा कला रूप ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

26.4.3 अमरावती कला केन्द्र

इस अवधि के दौरान, पूर्वी दक्खिन में, कृषाण और गोदावरी की निचली घाटियों में अमरावती कला केंद्र का विकास हुआ। इस कला केंद्र को सतवाहन राजाओं, इक्ष्वाकु शासकों, राजनेताओं और उनके परिवारों, अधिकारियों, व्यापारियों आदि का संरक्षण प्राप्त था। यह कला बौद्ध धर्म से प्रभावित थी और इसके मुख्य केंद्र नागार्जुनकोण्डा, अमरावती, गोली, घंटसाल, जग्गेयापेटा थे। यह कला 150 ई.पू. से सन् 350 ईस्वी तक अपनी समृद्धि और उत्कर्ष पर थी। इस कला केंद्र के शैल्युत्पत्त नमूर्त भी रेलिंग, चबूतरे और स्तूप के अन्य हिस्सों के रूप में उपलब्ध हैं। इस कला केंद्र में भी बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं को जगह-जगह उभारदार शैली में उत्कीर्ण किया गया है। उदाहरण के लिए अमरावती में बुद्ध द्वारा एक मतवाले हाथी को वश में किए जाने की कथा उत्कीर्ण है। शिल्पकार ने पूरी कथा को स्वाभाविक ढंग से चित्रांकित किया है :

- एक मतवाला हाथी मार्ग में खड़े बुद्ध की ओर बढ़ रहा है,
- पुरुष और महिलाएं भयभीत हैं, पुरुषों ने अपने हाथ उठा रखे हैं और महिलाएं उनसे चिपकी हुई हैं,
- बुद्ध हाथी की ओर आराधना और विनम्रता की मुद्रा में बढ़ रहे हैं,
- हाथी आत्मसमर्पण की मुद्रा में नतमस्तक हो जाता है।
- यह संपूर्ण घटना पुरुष और महिलाएं झरोखे और खिड़कियों से देख रहे हैं।

शिल्पकार ने यह सारी कहानी गोलाकार रूप में उभारदार शैली में उत्कीर्ण की है :

- मूर्तियाँ उजले संगमरमर से बनायी गयी हैं,
- उनकी टांगे लंबी हैं और ढाँचा छरहरा है,
- इस कला में शारीरिक सौंदर्य और सांसारिक अभिव्यक्ति छाई हुई है,
- हालांकि प्राकृतिक दृश्य भी उत्कीर्ण किए गए हैं, पर केंद्र में मनुष्य ही है, और
- राजाओं, राजकुमारों और राजप्रासादों को भी चित्रित किया गया है।

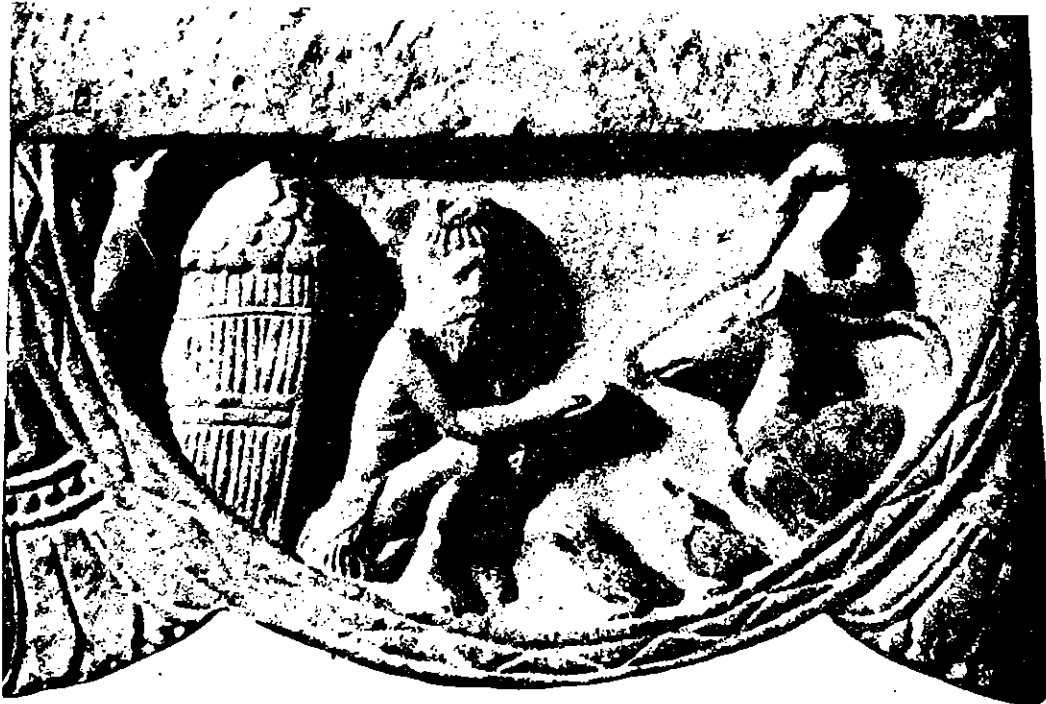
पांच सौ वर्षों की लंबी अवधि में अमरावती की कला लगातार परिपक्वता प्राप्त करती गयी। उदाहरण के लिए इस कला का आरंभिक उदाहरण जग्गेयापेटा से मिला है, जिसका समय 150 ई.पू. माना जाता है। इनमें मूर्तियों की अलग-अलग इकाइयाँ हैं और एक समूह के रूप में उनका नर्माण नहीं हुआ है। पर आरंभ से ही यहाँ लंबे और छरहरे बदन वाली मूर्तियाँ मिलती हैं, जो



अपने केश संवारती एक स्त्री



19. तीर्थकर का मुख भाग



20. एक जातक कथा पर आधारित दीवार पर नक्काशी से बनी आकृतियाँ



21. सूर्य



22. कुबेर अपने अनुयायियों के साथ



23. कनिष्क की मूर्ति



24. चतुर्मुखी शिवलिंग

कृष्णा घाटी की वर्णनात्मक उभारदार उत्कीर्ण कला की अनिवार्य विशेषता थी, बाद में इसे पल्लव मूर्ति कला ने अपना लिया। इन चित्रों में मूर्तियाँ ढंग से बनी हुई और एक दूसरे से संबद्ध हैं।

विषयवस्तु या कथ्य की दृष्टि से मथुरा और अमरावती की कला में कहीं-कहीं आश्चर्यजनक समानता है। उदाहरण के लिए अमरावती में छह स्त्रियों को एक साथ पात्र से स्नान करते हुए दिखाया गया है, इससे बिल्कुल मिलता जुलता एक नमूना मथुरा में भी पाया गया है। मथुरा में भी कृष्ण राजाओं की मूर्तियाँ बनायी गयीं और अमरावती मूर्तिकला ने भी राजाओं और राजकुमारों को अपनी कला का कथ्य बनाया। इसके बावजूद अमरावती में इनका अंकन व्यक्तिगत तौर पर नहीं, बल्कि कथा कहने के क्रम में हुआ है। उदाहरण के लिए—

- राजा उदयन और उसकी रानी की कहानी
- नजराना कबूल करते हुए राजा और राजदरबार का दृश्य
- हाथी, घुड़सवार और पैदल सेना के साथ राजा की शोभायात्रा

वस्तुतः सतवाहनों के संरक्षण और मंजे हुए शिल्पकारों के कारण अमरावती कला केंद्र ने प्राचीन भारत के कुछ सर्वोत्तम कला रूप प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्न 2

1) दस पंक्तियों में गांधार कला का विवेचन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करें, जिससे पता चले कि धार्मिक विषयवस्तु के अलावा राजनीतिक हस्तियों ने भी शिल्पियों का ध्यान आकृष्ट किया। दस पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

- i) उभारदार मूर्ति कला में (महाभारत/जातक कथाओं/रामायण) को विषयवस्तु बनाया गया।
- ii) गांधार कला के मुख्य संरक्षक (मौर्य/सातवाहन/शक और कृष्ण) थे।
- iii) (अमरावती/तक्षशिला/मथुरा) की मूर्तिकला में प्राकृतिक दृश्यों का सर्वोत्तम अंकन हुआ है।
- iv) ब्राह्मण धर्म से संबद्ध मूर्तियाँ (सारनाथ/मथुरा/नागार्जुनकोण्डा) में प्राप्त हुई हैं।



25. स्नान करते हुए कुछ महिलायें



26. राजा उदर्यन तथा उसकी रानियों की नक्काशी की हुई आकृतियाँ



27. एक हाथी को वशीभूत करते हुये महात्मा बुद्ध

- 4) सही और गलत वक्तव्यों के सामने क्रमशः (✓) और (×) का निशान लगाएँ।
- मथुरा में तीर्थंकर की एक संपूर्ण मूर्ति प्राप्त हुई है।
 - कुंवर की मूर्ति सूर्य उपासना का प्रतिनिधित्व करती है।
 - गांधार मूर्ति कला में यूनानी कथ्य को भारतीय शैली में प्रस्तुत किया गया है।
 - अमरावती कला केंद्र पूर्वी भारत में फला-फूला।

26.5 सारांश

हमने देखा कि इस काल में स्थापत्य और मूर्तिकला अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयी और शिल्पियों ने कला के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत किए। दुर्भाग्य से, हमें इन शिल्पियों के बारे में कोई जानकारी नहीं है। हमारे पास उनकी कला है, पर उनके नाम नहीं हैं। कहीं-कहीं संरक्षकों के नाम भी उपलब्ध नहीं हैं। इससे पता चलता है कि शिल्पी अब राजकीय सहायता पर ही आश्रित नहीं रहे, क्योंकि कई व्यापारियों, श्रद्धालुओं और अन्य लोगों ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया।

कला रूप और कथ्य प्रस्तुति में निरंतर विकास होता रहा। मसलन, आरंभिक शिल्प चित्रकला, मिट्टी की मूर्ति जैसी संरचनात्मक अभिव्यक्तियों का विकास परिपक्व मूर्ति कला के रूप में हुआ। इस काल में सपाट और गोलाकार दोनों प्रकार की शिला मूर्तिकला का विकास हुआ। प्रतीकात्मक वस्तुओं की जगह मूर्तियों ने ले ली। इस प्रकार के परिवर्तन का सबसे अच्छा उदाहरण बुद्ध की मूर्तियाँ हैं।

इस इकाई में हमने यह भी देखा कि प्रदेश विशेष में अलग कला-रूपों का विकास हुआ। गांधार, मथुरा और अमरावती में अलग-अलग कला रूपों का विकास हुआ। हालांकि इन कला रूपों में धार्मिक विषयों को प्रमुखता प्राप्त हुई है, पर मनुष्य और प्रकृति का भी चित्रण किया गया है। इस प्रकार के चित्रों में उस काल की सामाजिक और आर्थिक जिंदगी की हल्की झाँकी मिल सकती है। मथुरा में उत्कीर्ण भिक्षुओं, संरक्षकों और सेवकों की मूर्तियाँ इसका अच्छा उदाहरण हैं। भारतीय

कलाकारों ने यूनानी और मध्य एशियाई कला रूपों को भी ग्रहण किया और इस प्रकार आदान-प्रदान के माध्यम से भारतीय कला अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयी।

26.6 शब्दावली

परतदार चट्टान : एक प्रकार की चट्टान जिसमें अनेक परतें होती हैं।

बहुकोण शिखर : अर्द्ध गोलाकार संरचना।

मेहराब : दरवाजे के ऊपर की धनुषाकार बनावट।

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) देखें भाग, 26.1
- 2) देखें उपभाग, 26.3.3
- 3) i) प्रेरित
ii) परिपक्व
iii) भिन्न
iv) सर जान मार्शल
v) आवास

बोध प्रश्न 2

- 1) उपभाग 26.4.1 के आधार पर अपना उत्तर लिखें।
- 2) मथुरा में हुई खुदाई के दौरान प्राप्त राजा की मूर्तियों और अमरावती की मूर्ति कला का उल्लेख करें।
देखें उपभाग 26.4.2 और 26.4.3
- 3) i) जातक कथाएँ
ii) शक और कृषाण
iii) मथुरा
iv) मथुरा
- 4) i) (✓) ii) (x) iii) (x) iv) (x)

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

शिव शंकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

ए.एल. वाशम अद्भुत भारत

डी.डी. कोशांबी प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता

रोमिला थापर भारत का इतिहास—खण्ड एक

डी.एन. झा प्राचीन भारतीय इतिहास की रूपरेखा



उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04(N)
इतिहास
भारत: प्राचीन काल से
8वीं सदी ईस्वी

खंड

7

दक्षिण भारत में राज्य एवं समाज 200 ई.पू. से 300 ई. तक

इकाई 27

दक्षिण में आरंभिक राज्य निर्माण

5

इकाई-28

दक्षिण भारत में आरंभिक राज्य की उत्पत्ति (तमिल क्षेत्र)

13

इकाई 29

कृषक बस्तियों का विस्तार

19

इकाई 30

व्यापार और शहरी केन्द्रों का विस्तार

31

इकाई 31

तमिल भाषा और साहित्य का विकास

45

खण्ड 7 दक्षिण भारत में राज्य एवं समाज 200 ई.पू. से 300 ई. तक

खण्ड 6 में उत्तर मौर्य काल (200 ई.पू.-300 ई.) में उत्तरी भारत में राजनैतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के विभिन्न पक्षों का आपने अध्ययन किया। इस खण्ड की पांच इकाइयों में आप उन परिवर्तनों के विषय में पढ़ेंगे जो इस काल में प्रायद्वीपीय भारत जिसके अन्तर्गत दक्खन एवं धुर दक्षिण शामिल है, में हुए।

इकाई 27 और 28 में दक्खन और दक्षिण में राज्य नाम की संस्था की उत्पत्ति की समस्या के विषय में बताया गया है। आप खण्ड 4 एवं 5 में पढ़ चुके हैं कि उत्तर भारत में किस प्रकार से क्षेत्रीय राज्यों का प्रारम्भ हुआ और इन राज्यों का प्रतिनिधित्व सोलह महाजनपद करते थे जिनका उद्भव छठी-पांचवी सदी ई.पू. के मध्य हुआ था तथा आगे आने वाली कुछ शताब्दियों में किस भाँति से मगध ने लगभग सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में एक प्रबल राज्य की स्थापना की थी। प्रायद्वीपीय भारत में प्रथम शासक स्थानीय राजा एवं कुछ महत्वपूर्ण परिवार थे, जैसे कि मराठी जिन्होंने द्वितीय सदी ई.पू. के आस पास अपने सिक्कों को जारी किया लेकिन दक्खन में प्रथम बार संगठित राज्य की स्थापना सातवाहन शासकों ने की (देखिए इकाई 27)।

धुर दक्षिण में वर्तमान समय में जिसका प्रतिनिधित्व तमिलनाडु एवं केरल प्रदेश करते हैं, इस काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। दक्षिण के विभिन्न क्षेत्रों में राज्य शक्ति, विभिन्न सरदारों के हाथों में केंद्रित थी और जिनके विषय में हमें जानकारी उन काव्यों से प्राप्त होती है जिनको उनकी प्रशंसा में भाट कवियों ने रचा था। उनमें से चोल, पांड्य एवं चेर सरकार महत्वपूर्ण राजा थे जिनके अधीन कृषि के विशाल संसाधन एवं लाभदायक व्यापार था। वास्तव में, धुर दक्षिण के विभिन्न उपक्षेत्रों में काफी बड़ी मात्रा में भिन्नताएँ थीं। इन भिन्नताओं को प्रारम्भिक तमिल कविताओं, जीवन की वे विभिन्न शैलियाँ जिनका अनुसरण तमिल हम के विभिन्न उप-क्षेत्रों में किया गया और उस नाम में जिसके द्वारा धुर दक्षिण को जाना जाता है। विभिन्न उप-क्षेत्रों को जैसे कि पहाड़ी क्षेत्रों, नदी, घाटियाँ, तटीय क्षेत्रों, घास के मैदान वाले क्षेत्रों को प्रारम्भिक तमिल काव्य में विभिन्न विणों (जिनको आर्थिक क्षेत्रों के रूप में इकाई 28 में व्यक्त किया गया है) के रूप में प्रतिनिधित्व दिया गया है। प्रारम्भिक तमिल काव्य के संग्रहों को संगम के नाम से जाना जाता है। अगर इन काव्य संग्रहों एवं साहित्यिक और पुरातात्विक सन्दर्भों को साथ मिलाकर पढ़ा जाये तो ये बताते हैं कि प्रारम्भिक दक्षिण भारतीय समाज वर चोल, पांड्य, चेर एवं अन्य बहुत से महत्वपूर्ण सरदारों का प्रभुत्व कायम था। बड़े-बड़े सरदारों का नदी घाटियों के क्षेत्रों एवं तटीय बन्दरगाहों पर नियंत्रण था क्योंकि नदी घाटियों में कृषि बस्तियों का विस्तार हो रहा था (इकाई 29 को देखें) तथा आते लाभदायक व्यापार के द्वारा इन बन्दरगाहों की सम्पन्नता भी बढ़ रही थी। इसके अतिरिक्त, वे नजराना लूट और अन्य साधनों से काफी बड़ी मात्रा में संसाधनों का दोहान करते थे, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि स्थायी कर व्यवस्था अस्तित्व में नहीं थी। इन सरदारों का अन्य प्रकार की श्रेणियों पर भी नियंत्रण था जैसे कि उन्होंने भाटकवियों को आश्रय दिया और अन्य निर्भर सामाजिक गुट एवं ब्राह्मणों ने भी पर्याप्त मात्रा में संरक्षण प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया एवं उनका प्रारम्भिक तमिल समाज में काफी महत्व हो गया। इस प्रकार यद्यपि एक पूर्ण अधिकार सम्पन्न राज्य अस्तित्व में अभी नहीं आया था, परन्तु इसके पर्याप्त चिन्ह थे कि उनका उत्तर की ब्रह्माणिक विचारधारा तथा समाज के साथ संबंध था और दूसरे प्रारम्भिक तमिल समाज में पर्याप्त मात्रा में असमानताएँ भी अस्तित्व में आ गई थीं।

राजनैतिक संगठन के विभेद के अतिरिक्त इस काल के दक्खन एवं धुर दक्षिण के समाजों में भी भिन्नताएँ थीं। न केवल ब्राह्मणवाद अपनी गहरी जड़ें समाज में जमा चुका था बल्कि बौद्ध धर्म का भी काफी प्रचार हुआ क्योंकि दक्खन में इस काल में बड़ी संख्या में स्तूप व बौद्ध भिक्षुक विहार अस्तित्व में आये। यह इसलिए सम्भव हो पाया क्योंकि राजाओं, अधिकारियों, व्यापारियों, कारीगरों आदि ने स्तूपों एवं विहारों के भिक्षुओं को उदारता के साथ दान दिए। इस काल में दक्खन के धन का अधिकतर भाग के विभिन्न प्रकार व्यापार से संचित किया गया। इस काल के व्यापार का एक विशेष गुण यह था कि इसका रोमन विश्व के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हो गया था। इस सम्पर्क ने दक्खन एवं धुर दक्षिण दोनों को

प्रभावित किया, लेकिन इस काल के दक्खन के नगरों के व शहरों का अनुमान करने से यह स्पष्ट होता है कि तमिल की अपेक्षा इस क्षेत्र पर व्यापार का प्रभाव अधिक था (इकाई 30 देखें)।

अंतिम इकाई (इकाई 31) में प्रारम्भिक तमिल साहित्य एवं भाषा की महत्वपूर्ण विशेषताओं का विवरण दिया गया है। जैसे कि वैदिक ग्रंथ संस्कृत भाषा के सबसे प्रारम्भिक प्रतिरूप हैं उसी भाँति संयुक्त रूप से संगम नाम से प्रसिद्ध तमिल काव्य और कुछ संक्षिप्त अभिलेखों को द्राविड़ भाषाओं का प्रारम्भिक प्रतिरूप माना गया है। संगम काव्यों को बहुत पहले मौखिक रूप में रचा गया और बाद में उनको वर्गीकृत करते हुए ग्रंथों के रूप में संकलित किया गया। ये सीधे स्तर पर धार्मिक अनुष्ठानों एवं प्रथाओं से संबंधित नहीं है जैसे कि वैदिक ग्रंथ थे। लेकिन इन के बावजूद भी, इतिहास के विद्यार्थियों के लिये संगम साहित्य वैदिक ग्रंथों की भाँति उस समाज की ऐतिहासिक सूचनायें देने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है जिसने इसकी उत्पत्ति की। आप खण्ड 3 में पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार इतिहासकारों ने वैदिक साहित्यिक में दिये गये सन्दर्भों का उपयोग प्रारम्भिक वैदिक समाज से उत्तर वैदिक समाज में परिवर्तन का विश्लेषण करने के लिये किया। उसी प्रकार संगम कवितायें उन परिवर्तनों का विश्लेषण करने में इतिहासकारों की मदद करती हैं जो प्रारम्भिक तमिल या धुर दक्षिण समाज में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों तक हुए।

इकाई 27 दक्षिण में आरम्भिक राज्य निर्माण

इकाई की रूपरेखा

- 27.0 उद्देश्य
- 27.1 प्रस्तावना
- 27.2 स्रोत
- 27.3 राज्य की उत्पत्ति
- 27.4 पूर्ववर्ती कथायें
- 27.5 भौगोलिक पृष्ठभूमि
- 27.6 सातवाहन वंश के इतिहास की रूपरेखा
- 27.7 बस्तियों का प्रारूप
 - 27.7.1 पश्चिमी तट
 - 27.7.2 समुद्र तट से दूर की बस्तियां
- 27.8 प्रशासन
- 27.9 समाज
- 27.10 सारांश
- 27.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- सातवाहन वंश के विषय में जान सकेंगे जिसने दक्खन में सबसे पहले राज्य की स्थापना की;
- सातवाहनों के अन्तर्गत प्रशासन की प्रकृति समझ सकेंगे; और
- इस समय में समाज में हुए परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

खण्ड 6 में आपने उत्तर मौर्य काल में उत्तरी भारत में व्यापार के प्रसार के बारे में पढ़ा। इसका संबंध नगरों की संख्या में वृद्धि और कला एवं स्थापत्य कला के विकास से था। इस इकाई में आप दक्खन भारत में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे। प्रथम सदी ई.पू. के आस पास दक्खन में जिस ताकतवर वंश का उदय हुआ वह सातवाहन वंश था। यहां पर हम सातवाहनों के अन्तर्गत दक्खन की राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

27.2 स्रोत

सातवाहन शासकों को दूसरे नाम आन्ध्राओं से भी जाना जाता है। इन राजाओं के नामों की सूची पुराणों में भी पायी जाती है। इन सूचियों को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में दूसरे साक्ष्यों के साथ आलोचनात्मक तुलना किये और उपयोग करने में बहुत सी कठिनाइयां होती हैं। उदाहरण के तौर पर, विभिन्न पुराणों में राजाओं के नाम एवं उनके शासनकाल में काफी अन्तराल है। इससे भी अधिक बड़ी समस्या यह है कि इन राजाओं के विषय में सूचना केवल कल्पित एवं किवंदतियों में निहित है। इसलिये वास्तविकता एवं किवंदतियों के बीच अन्तर करने के लिये इन स्रोतों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना चाहिये। यदि अन्य स्रोतों जैसे कि सिक्कों व शिलालेखों के साथ पुराणों का अध्ययन किया जाये तो वे काफी उपयोगी हैं। सातवाहनों ने काफी बड़ी संख्या में चांदी व तांबे के मिश्रित सिक्कों को ढलवाया। उनके चांदी

के सिक्कों पर राजा का चित्र एवं नाम खुदा हुआ है। बौद्ध गुफाओं में पत्थर पर खुदे लेख एवं दान पात्र प्राप्त हुए हैं जिनको सातवाहन राजाओं एवं रानियों के साथ-साथ बड़ी संख्या में साधारण लोगों ने बनवाया। इन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचना का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद सामान्यतः विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि सातवाहनों ने प्रथम सदी ई.पू. के आस पास अपना शासन करना प्रारंभ किया। उनका सबसे प्रारंभ का साक्ष्य महाराष्ट्र राज्य के नासिक के पास एक गुफा में पत्थर पर उत्कीर्ण लेख के रूप में पाया गया है।

27.3 राज्य की उत्पत्ति के विषय में

अब हम एक प्रश्न उठाते हैं राज्य क्या है और राज्य की उत्पत्ति ने समाज में कैसे परिवर्तन किये? राज्य की उत्पत्ति के कारणों के विषय में कई मत दिये जाते हैं। राज्य की उत्पत्ति के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न हैं। कुछ विशेष मामलों में व्यापार के विकास एवं नगरों के फैलाव के कारण राज्य की उत्पत्ति हुई। अन्य दूसरे मतों के अनुसार आबादी के दबाव एवं विजय के कारण उस समय की प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। सामान्यतः विद्वान लोग इस तथ्य से सहमत हैं कि बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण करने के लिये राज्य एक सक्षम औजार है। एक राज्य भली भाँति परिभाषित एक क्षेत्र पर नियंत्रण रखता है और कर तथा राजस्व को एकत्रित करने के लिये एक प्रशासनिक मशीनरी को बनाकर रखता है। यह एक स्थायी सेना को भी रखता है जो कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने में मदद करती है। लेकिन इन सबके साथ-साथ समाज में असमानता एवं वर्ग विभेदण भी बढ़ता है। यहां शासक और शासित के मध्य स्पष्ट भेद है। शासन कर्त्ता अपने लाभ एवं उपयोग के लिये समाज के संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं। दूसरी ओर शासित वर्ग शाही परिवार के सदस्यों, राज्य के कुलीनों, बहुत से अधिकारियों एवं सेना के रख-रखाव के लिये आवश्यक धन एवं राजस्व उपलब्ध कराते थे। इस प्रकार कबीलाई समाज एवं राज्य समाज में मूल भूत अन्तर राजनीति के नियंत्रण की प्रकृति में निहित है। राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत विशेषज्ञात्मक प्रशासनिक व्यवस्था शासक एवं शासित को अलग करती है। कबीलाई समाज में सामान्यतः एक कबीले के द्वारा राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया जाता है जिसके पास अपने निर्णयों को लागू करने के कोई अधिकार नहीं होते। कबीले की स्थिति सदस्यों की ज़फ़ादारी पर निर्भर करती है इसलिये अधिकतर निर्णयों को एक साथ ही करना होता है।

27.4 पूर्ववर्ती कथायें

गणने खण्ड 3 में पढ़ा कि दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. में पश्चिम दक्खन में ताम्रपाषाण बस्तियों का प्रसार हुआ। बाद में प्रथम सहस्राब्दी ई.पू. के द्वितीय भाग में लोहे का प्रयोग करने वाली जातियों ने पूर्वी दक्खन पर अपना अधिकार कर लिया। ये मुख्य रूप से ग्रामीण बस्तियां थीं और जिनमें बहुत बड़ी तादाद में कबीलाई लोग वास करते थे। प्रारंभिक संस्कृत साहित्य विशेषकर महाकाव्यों एवं पुराणों में आन्धा, सबर, पुलिन्द आदि जैसी कबीलाई जातियों का वर्णन है जो दक्खन में रहते थे। इनमें से कई जातियों के दक्खन नामों को अशोक शिलालेखों में भी उद्धृत किया गया है। परन्तु इनमें से अधिक सन्दर्भ सामान्य प्रकृति के हैं और इनके आधार पर उस निश्चित क्षेत्र को परिभाषित करना कठिन है जहां दक्खन में वे रहते थे। दक्खन में परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रारंभ शायद मौर्यों के प्रसार के साथ हुआ। मौर्य मुख्यतः दक्खन प्रायद्वीप के खनिज संसाधनों को शोषित करने में रुचि रखते थे। आधुनिक कर्नाटक और आंध्र प्रदेश की खानों से प्राप्त किये गये सोने, हीरे एवं रत्नों को भूमि एवं समुद्र के किनारे वाले मार्गों के द्वारा उत्तर भारत में मगध को भेजा जाता था। इन मार्गों पर कई बाजार केंद्र विकसित हुए जैसे कि आंध्र प्रदेश के वर्तमान गुंटूर जिले में कृष्णा नदी के किनारे धरनिकोटा और महाराष्ट्र के सतारा जिले में करद। इर्द-गिर्द के अनेक स्थानों पर मराठों के नाम से जाने वाले अनेक सरदार महत्वपूर्ण हो गये। लेकिन ये स्थानीय मराठा सरदार सातवाहनों के अन्तर्गत ही थे तथा सातवाहनों एवं मराठों के बीच वैवाहिक संबंध थे और इस प्रकार सातवाहनों के रूप में दक्खन में प्रथम राज्य की उत्पत्ति हुई।

27.5 भौगोलिक पृष्ठभूमि

दक्खन प्रायद्वीप प्रठारीय क्षेत्र और पूर्वा एवं पश्चिमी किनारों के पर्वतीय श्रृंखलाओं के द्वारा

तटीय मैदानों में विभाजित है। पश्चिम के कोकण तटीय क्षेत्र की अपेक्षा आंध्र का तटीय क्षेत्र काफी चौड़ा है। इस पठारी क्षेत्र का सामान्यतः ढलान पश्चिम क्षेत्र से पूर्व की ओर है तथा जिसके कारणवश महानदी, गोदावरी और कृष्णा जैसी नदियों का बहाव पूर्व दिशा की ओर है जिससे कि वे बंगाल की खाड़ी में मिल जाती हैं। नदियों के डेल्टा एवं घाटियों में बस्तियों के लिये काफी उत्पादक भूमि उपलब्ध होती है। दक्खन की एक भौगोलिक विशेषता शायद इस तथ्य में निहित है कि पठार के पर्वतीय क्षेत्रों को केवल दरों के द्वारा ही पार किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

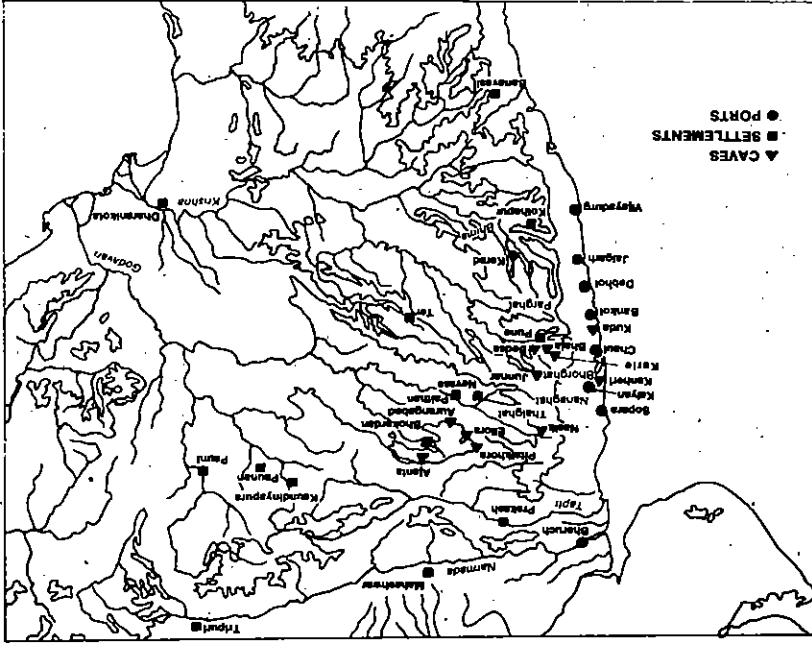
निम्नलिखित में सही उत्तर पर ✓ निशान लगाइये:

- 1) सातवाहनों का अध्ययन करने के लिये पुराण उपयोगी स्रोत हैं क्योंकि
 - i) उनमें राजाओं के विषय कपोलक-कल्पित किस्से-कहानियां हैं।
 - ii) उनमें सातवाहन काल के विषय में पर्याप्त मात्रा में कपोल-कल्पित किस्से-कहानियां हैं।
 - iii) उनसे मिलने वाली सूचनाओं की अन्य साक्ष्यों जैसे कि सिक्कों एवं शिलालेखों के साथ तुलना की जा सकती है।
 - iv) पुराणों में सत्यता निहित है।
- 2) यह कहा जा सकता है कि
 - i) कबीलाई समाज का राजनैतिक ढांचा वैसा ही होता है जैसा कि विकसित राज्य व्यवस्था के समाजों का होता है।
 - ii) एक विकसित राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत शासक एवं शासित के मध्य स्पष्ट विभाजन होता है।
 - iii) कबीलाई समाज में राजनैतिक निर्णय सम्पूर्ण कबीला लेता है।
 - iv) दोनों ii) और iii)
- 3) राज्य के निर्माण के लिये दक्खन में परिवर्तन की प्रक्रिया शायद इसलिये उत्पन्न हुई
 - i) हणों के आक्रमण के कारण
 - ii) मुगलों के आक्रमण के कारण
 - iii) ग्रीकों के आक्रमण के कारण
 - iv) सोने आदि के लिए दक्खन में मौर्यों ने विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया तथा जिसका अनेक मार्गों के द्वारा आयात किया गया और जिसके कारण अनेक बाजार केंद्रों एवं सरदारों की उत्पत्ति हुई।

27.6 सातवाहन वंश के इतिहास की रूपरेखा

पुराणों के अनुसार सिमुक सातवाहन ने सातवाहन शक्ति की स्थापना की। उसके भाई कन्ह्या या कृष्णा के विषय में हमें जानकारी नासिक के लेख से प्राप्त होती है। वंश के अनेक शासकों का विवरण रानी नायनिक के नानघाट शिलालेख से भी प्राप्त होता है जो राजा सतकर्णी की विधवा थी तथा जिसने वैदिक बलि यज्ञों का आयोजन किया था। नानघाट एक काफी बड़ा दर्रा था जो जुनार के साथ समुद्र तट से जुड़ा था और इस दर्रे के ऊपर एक गुफा है जिसमें सातवाहन शासकों के चिन्ह खुदे हुए थे। दुर्भाग्यवश ये मूर्तियां अब पूर्णतः नष्ट हो चुकी हैं और जो अवशेष बचे हैं उनके मस्तक के ऊपर के चिन्ह उनका नाम मात्र देते हैं।

सतकर्णी के बाद गौतमीपुत्र सतकर्णी के शासन काल तक जिन शासकों ने शासन किया उनके विषय में हमें काफी कम जानकारी है। नासिक में एक गुफा के प्रवेश द्वार पर गौतमीपुत्र सतकर्णी की माता का एक लेख खुदा हुआ है जिससे उसके राज्य के फैलाव एवं उसके शासन काल की घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। गौतमीपुत्र सतकर्णी की मुख्य



उपनिषद् यह थी कि उसने पश्चिम दक्खिन एवं गंगारत के क्षेत्रों को परीक्षित किया था। उसकी माता के इस लेख में इस तथ्य की प्रशंसा की गई है कि उसने पनः सातवाहन गौरव को स्थापित किया था और इस की पीछे मूर्त साक्ष्यों से भी होती है। अपनी विजय के बाद गौतमीय सतकर्णी से अपने विरोधी क्षेत्रय नहीपन की भाँति अपनी वंश परम्परा एवं विन्दों के साथ चाँदी के सिक्कों को जारी किया। पौरन्दस और ही ऐरिथियन सी के अन्तर्गत सातवाहनों एवं क्षत्रों के मध्य चलने वाले संघर्ष के कारण बम्बई के पास स्थित बन्दरगाहें सातवाहनों और क्षत्रों को लेकर इन क्षेत्रों के बीच संघर्ष था। ऐसा प्रतीत होता है कि गौतमीय सतकर्णी शासन काल में ही शापद अच्छी प्रकार से सातवाहनों का शासन आरंभ प्रदश तक फैल गया था।

गौतमीय सतकर्णी के बाद उसके पुत्र पूनसाव शासक हुआ और इस समय तक सातवाहनों ने अपनी शक्ति का फैलाव पूर्वी दक्खिन तक कर लिया था। इस प्रथम बार सातवाहनों के लेख पश्चिम दक्खिन से बाहर अमरावती में प्राप्त होते हैं। यशानसिर सतकर्णी और महत्त्वपूर्ण सातवाहन शासक था और उसके बाद उनके साम्राज्य का विभाजन उसके उत्तराधिकारियों के बीच हो गया जिनकी एक शाखा ने आंध्र क्षेत्र में शासन किया बाद के सातवाहन शासकों ने हिमाचल में लिखे हुए सिक्कों को जारी किया जिसमें राजा का नाम प्रकृत भाषा में लिखा हुआ है और ऐतिहासिक लेख किसी एक दक्षिणी भाषा में। इस भाषा को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ का मानना है कि यह तमिल में है तो कुछ के अनुसार यह तेलुगू में है।

क्षत्रों के साथ प्रादेशिक सतवाहन शासक को उड़ीसा या कालिंग की छारवेन शक्ति स्थापना की थी। उसने सातवाहन शासक सतकर्णी की परवाह किया और पश्चिम की ओर अपनी सेना को भेजा। ऐसा कहा जाता है कि सातवाहन शासक को क्षत्रों और छारवेन नरेश के हाथों पराजय भोगनी पड़ी। इसकी केवल गौतमीय सतकर्णी ने पुनः स्थापित किया।

सातवाहन इतिहास की यह भी एक समस्या है कि हमें सातवाहन शासकों ने एवं उन छोटे सरदारों के बीच के सम्बन्धों की जानकारी बहुत कम है जो दक्खिन प्रादेशिक के अनेक क्षेत्रों में उनके शासन काल के दौरान फले फूलें। उदाहरण के लिये एक लेख में सातवाहनों का मराठी एवं मराठीयों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों का संदर्भ मिलता है - वारव में नानघाट के अभिलेख में एक मराठी सरदार एक राजकर्मार पर अपना प्राप्त कर लेता है और नायिका रानी स्वयं एक मराठी सरदार की पत्नी थी। मराठियों ने भी स्वयं स्वतंत्र रूप से दान किये - उनके अधिकतर अभिलेख कारले के आस-पास प्राप्त हुए हैं जबकि मराठीयों के अधिकतर साक्ष्य पश्चिमी तट के क्षेत्र में मिलते हैं।

27.7 बस्तियों का प्रारूप

उनके प्रारंभिक अभिलेखों के प्राप्त स्थान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सातवाहनों ने अपने शासन का प्रारंभ पश्चिमी दक्खन से किया। गौतमीपुत्र सतकर्णी की माता का दूसरी सदी ई. का नासिक अभिलेख सातवाहनों के साम्राज्य प्रसाद की सूचना देता है। इस शिलालेख में यह भी सन्दर्भ है कि पश्चिमी एवं पूर्वी दोनों तट गौतमीपुत्र सतकर्णी के साम्राज्य के भाग थे जिसका तात्पर्य यह हुआ कि इस समय में सातवाहन शासन सम्पूर्ण दक्खन प्रायद्वीप पर था और यह अहार या जिलों में विभाजित था। इस शिलालेख में हमें पांच अहार या जिलों के नाम इस प्रकार मिलते हैं - नासिक के आस-पास केन्द्रित गोवर्धन अहार पश्चिमी तट पर सोपारका-अहार, पुणे एवं सतारा जिलों के पर्वतीय क्षेत्रों को मिलाकर ममला-अहार, सातवाहननहारा कर्नाटक के जिले बैल्लारी में और कपूरशरा शायद गुजरात में था।

27.7.1 पश्चिमी तट

पश्चिमी तट पर भडौच, कल्याण, सोपरा और चोल एवं कोंकण तट पर दक्षिण में अनेक बन्दरगाहों की श्रृंखला थी। इन बंदरगाहों पर विक्रय वस्तुओं को देश के आंतरिक केन्द्रों से पश्चिमी तट के दरों के बीच में लाया जाता था। प्रथम सदी ई. को एक महत्वपूर्ण ग्रंथ पेरिप्लस ऑफ दि इरीथीन सी जिसकी रचना ग्रीक के एक गुमनाम नाविक ने की थी, इस समय की यात्रा एवं व्यापार की प्रकृति को समझने में बड़ी मदद करता है। अरब खाड़ी में भडौच की ओर जाने वाले ऐसे रास्तों का चित्रण यह ग्रंथ करता है जो काफी संकरी जगहों से होकर गुजरते थे। इसी कारणवश जिले के शाही मछुवारे इन जहाजों को स्वयं चलाकर बंदरगाह के अन्दर ले जाते थे। हमने पहले ही इस तथ्य का वर्णन किया है कि क्षत्रियों एवं सातवाहनों के बीच सामुद्रिक व्यापार पर नियंत्रण करने और भडौच तथा कल्याण के बंदरगाहों के मध्य की प्रतियोगिता को लेकर युद्ध हुआ था।

27.7.2 समुद्र तट से दूर की बस्तियां

पश्चिमी तटों से दूर मुख्य भूभाग की ओर कारले की 30 कि०मी० की परिधि के अन्तर्गत नासिक व जुनार के आस-पास और आगे दक्षिण में कृष्णा के ऊपरी डेल्टा में कोल्हापुर के इर्द-गिर्द ये बस्तियां केन्द्रित थीं। यह माना जाता है कि ये सभी क्षेत्र कृषि के लिये काफी संपन्न एवं उपजाऊ थे जिससे कि ये पश्चिमी तट पर स्थित बंदरगाहों के लिये संसाधन का आधार उपलब्ध कराते थे। इन बंदरगाहों के माध्यम से भू-मध्य सागर क्षेत्र एवं भारत के बीच व्यापार किया जाता था और इनका सम्पर्क भू-मार्ग के द्वारा दक्खन प्रायद्वीप के पूर्वी तट एवं आंध्र प्रदेश के व्यापारिक केन्द्रों के साथ भी था। यह भडौच से पैथन व तेर एवं पूर्व को आगे की ओर आंध्र के केन्द्रों तक जाता था। पैथन का प्राचीन क्षेत्र गोदावरी के इर्द-गिर्द 4 कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ था और जब कभी भी इस स्थल की खुदाई की गई तो वहां से बहुत सी प्राचीन वस्तुएं जैसे कि सिक्के, मिट्टी की बनी वस्तुएं, परिकोटा एवं बर्तन प्राप्त हुए हैं। इन सबके बावजूद भी इस स्थल की कभी भी व्यवस्थित ढंग से खुदाई नहीं की गई है जिस के कारण हमें सातवाहनों के निर्माण संबंधी अवशेषों के विषय में बहुत कम ज्ञान है। तेर दक्खन के कपास उत्पादक क्षेत्र में स्थित है। इस स्थल का उत्खनन करने पर यहां से लकड़ी के परिकोटे और रंगने वाले बर्तन प्राप्त हुए हैं जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि यहां पर कपड़ों की रंगाई का भी कार्य होता था। तेर को इसलिये भी भली भांति जाना जाता है कि वहां पर पायी जाने वाली हाथी दांत की बनी सुन्दर तस्वीर पोमेयी से पायी जाने वाली प्रतिरूप के बहुत समान है। इस स्थल का सबसे महत्वपूर्ण अवशेष वह है जो ईंटों से निर्मित कुटी है और बाद में ब्राह्मणों के मंदिर के रूप में परिवर्तित हो गई।

दक्खन का दूसरा मार्ग वह था जो उज्जैन से नर्मदा पर स्थित महेश्वर से जुड़ा था तथा अजन्ता एवं पितलखोरा की गुफाओं पर से गुजरता हुआ भोकरदान और पैथन को जोड़ता था। भोकरदान मोती बनाने का काफी बड़ा केंद्र था तथा उसको खोल एवं हाथी दांत के काम के लिये भी जाना जाता था। भोकरदान के निवासियों या भोगवर्धनियों ने मध्य भारत में सांची एवं भरहुत की गुफाओं में अंकित लेखों के अनुसार बौद्धों को दान दिया। दक्षिण में आगे की ओर कृष्णा नदी की ऊपरी घाटी में करद नाम का एक और अन्य नगर था जिसका वर्णन बौद्ध अभिलेखों में हुआ है। इसी क्षेत्र में कोल्हापुर भी स्थित था। इस नगर के पश्चिमी भाग से तांबे की बनी वस्तुओं का ढेर प्राप्त हुआ है। इनमें से कुछ विशिष्ट आकृति वाली छोटी

मूर्तियों का आयात किया गया जबकि गाड़ियां एवं तांबे की नावें स्थानीय स्तर पर निर्मित की गई थीं। पास के जिले बेलगाँव में वैदगाँव-माधवपुर के प्राचीन स्थल हैं जो बेलगाँव का एक उपनगर था तथा जिसकी खुदाई किये जाने पर बहुत बड़ी संख्या में सिक्के एवं दूसरी प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ से जब दक्षिण में आगे की ओर बढ़ते हैं तो बनावसी का स्थल है जहाँ से सातवाहनों का एक शिलालेख मिला है। यह सम्भवतः एक किलेबन्द बस्ती है क्योंकि यहाँ पर एक किले की दीवार एवं खाई के चिन्ह मिले हैं। प्रायद्वीप के पार दक्खन से गुजरते मार्ग पश्चिमी दक्खन में कृष्णा नदी की नीचे की घाटी में अमरावती जैसे इन स्थलों से जुड़े थे और आन्ध्र प्रदेश के करीमनगर तक जाते थे। करीमनगर क्षेत्र में भरपुर रूप से फैले हुए बहुत से प्रारंभिक ऐतिहासिक स्थल हैं जिनमें से हैदराबाद से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग 70 कि.मी. दूर कौंडापुर के नाम से एक महत्वपूर्ण स्थल है। इस स्थल का उत्खनन करने पर पर्याप्त मात्रा में सिक्के, परिकोटे एवं बहुत से आकार की ईंटें मिली हैं जो गारा चूना में लगी हैं। पेद्दा-बंकूर आजकल एक छोटा सा गाँव है परन्तु सातवाहन शासन काल में एक महत्वपूर्ण बस्ती थी जो 30 हेक्टेयर क्षेत्र में फैली थी। पेद्दा-बंकूर से लगभग 10 कि.मी. दूर शूलि कट्टा नाम का स्थल किलेबन्द के रूप में था। यह एक कच्ची दीवार से घिरा था और इस स्थल का बहुत सा निर्माण ईंटों का है जिसकी अभी तक खुदाई नहीं की गई है। दूसरी बड़ी बस्ती कोटालिंगल थी जो सातवाहन शासन काल से पूर्व की है क्योंकि अभी हाल में प्राप्त वहाँ से सिक्के इसका प्रमाण हैं। सातवाहन कालीन बस्तियों की कच्ची दीवार से किलेबन्द की गई और विस्तृत रूप से वे ईंटों का निर्माण थीं। उत्खनन स्थलों से बड़ी मात्रा में लोहे का कचरा एवं कच्ची धातु प्राप्त हुए हैं। करीमनगर क्षेत्र से रास्ता प्रारम्भ होकर नीचे कृष्णा घाटी में शाखाओं में विभाजित हो जाता था जहाँ पर प्रारंभिक ऐतिहासिक बस्तियाँ केंद्रित हैं। इनमें से अमरावती और धारनिकोटा विशेष रूप से मुख्य हैं जो कृष्णा नदी के दोनों किनारों पर बसे हैं। धारनिकोटा नदी से नाव के रास्ते से जुड़ा हुआ था। इस स्थल पर प्रारंभिक निर्माण कार्य लकड़ी के घाट का था और बाद में जिसका स्थान ईंटों के निर्माण ने ले लिया। परन्तु नाव चलाने वाले स्थान पर रेत भर जाने के कारण चौथी सदी ई. में इस स्थल का परित्याग कर दिया गया। प्रायद्वीप के पार जाने वाले मार्गों में एक मार्ग विदर्भ होकर मध्य भारत को जाता था। उस काल के विदर्भ में पौनार, पौनि, मंथल, भाटकूली और आदम बस्तियाँ थीं।

सातवाहन वंश के इतिहास की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इस काल में दक्खन में किलेबन्द बस्तियों का विकास हुआ और उत्खनन से हमें जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि निर्माण की गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ। किलेबन्दी एवं अन्य निर्माण कार्यों के लिये ईंट का काफी प्रयोग होने लगा। छतों के ऊपरी भागों को ठोस प्रकार से मिश्रित की गई मिट्टी से बनाया जाने लगा। छत के निचले भाग को लकड़ी के खम्भों के सहारे एवं ऊपर से पत्थर के टुकड़ों की मदद से बनाया जाता था।

प्राचीन काल में जिन मार्गों का उपयोग किया गया वर्तमान रेलवे लाइन भी उन्हीं मार्गों पर बिछायी गई हैं। भोर घाट केवल एक मात्र ऐसा दर्रा है जो पश्चिमी तटों को पार करते हुए पुणे एवं मुम्बई को जोड़ता है तथा जिस पर प्रारंभिक बौद्ध गुफायें जैसे कि शैलारबदी, बंदसा, भाज, कारले, अम्बाले एवं कोंडने पड़ती हैं।

27.8 प्रशासन

सातवाहन शासकों का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षा सरल था। शिलालेखों से ऐसे कई मन्त्रियों का विवरण मिलता है जिन पर विभिन्न कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व था। अन्य कार्यों के साथ-साथ वे कोषाधिकारी एवं भूमि संबंधी दस्तावेजों को रखने का भी कार्य करते थे। मन्त्रियों की संख्या की वास्तविक जानकारी नहीं मिलती। इन मन्त्रियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष रूप से राजा के द्वारा की जाती थी और मंत्री का पद पौत्रुक नहीं होता था अर्थात् पिता के स्थान पर पुत्र मंत्री नहीं बनता था। उनको राज्य द्वारा एकत्रित किये गये राजस्व से धन दिया जाता था। हमारे पास इसकी कोई निश्चित संख्या नहीं है कि कितना राजस्व एकत्रित किया जाता था लेकिन हम यह जानते हैं कि कर को व्यापार एवं कृषि दोनों से एकत्रित किया जाता था। सातवाहन शासकों ने प्रथम शताब्दी ई. में जिस प्रथा का प्रारंभ किया वह यह थी कि किसी एक गाँव से प्राप्त किये गये राजस्व को ब्राह्मण या बौद्ध संघ को दान के रूप में दे दिया जाता था। इस प्रथा का गुप्त शासकों के द्वारा व्यापक रूप से प्रयोग किया गया।

राजा के लिये भू-राजस्व के महत्व को इस नीति की स्पष्टता से अनुमानित किया जा सकता है कि भूमि के दान को प्रमाणित किया जाता था। इन दोनों को प्रथम बार किसी सभा या निगम सभा के बीच घोषित किया जाता था। तब इसको किसी तांबे की प्लेट या कपड़े पर किसी अधिकारी या मंत्री के द्वारा लिखा जाता था। फिर इसको दान प्राप्त कर्ता या जिसको भूमि का अनुदान किया जाता था, दिया जाता। दस्तावेजों को सुरक्षित रखने वाला एक अधिकारी था जो इन दोनों के विस्तृत लेखे-जोखे को संभाल कर रखता था।

इस काल के शासक अधिक से अधिक भूमि कृषि योग्य बनाने के लिये उत्सुक रहते थे जिससे कि वे अतिरिक्त राजस्व प्राप्त कर सकें। ऐसा प्रतीत होता है कि जो जंगल को साफ करता था एवं उस खेत पर खेती करता था वही उस भूमि पर स्वामित्व का दावा प्रस्तुत कर सकता था। व्यापार से राजस्व प्राप्त करना राजस्व की आमदनी का एक दूसरा बड़ा स्रोत था। व्यापार के प्रसार के विषय में हम विस्तृत रूप से दूसरी इकाई में विवरण करेंगे। अधिकतर व्यापार पर नियंत्रण श्रेणियों का था जो बैंक का भी कार्य करती थी। व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिये राज्य विशेष कदम उठाता था। दूरस्थ व्यापार मार्गों को सुरक्षित बनाया गया था और उनके किनारे आराम गृहों का निर्माण भी किया गया।

27.9 समाज

दक्खन में सातवाहन शासकों के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था की बहुत सी विशेषतायें उन से भिन्न थीं जिनका विवरण संस्कृत ग्रंथों जैसे कि मनुस्मृति में हुआ है। उदाहरणार्थ, सातवाहन शासकों के बहुत से शिलालेखों में पिता के नाम के स्थान पर माता के नाम का उल्लेख हुआ है, जैसे कि गौतमीपुत्र सतकर्णी या सतकर्णी गौतमी का पुत्र। यह धर्मशास्त्रों की उस परम्परा के साथ मेल नहीं खाता जिसके अनुसार मान्यता प्राप्त विवाह के बाद पत्नी के पिता का गोत्र लुप्त हो जाता है और वह पति के गोत्र को धारण करती है।

इन शिलालेखों में एक दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सातवाहन स्वयं को ऐसे अनोखे ब्राह्मणों के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने क्षत्रियों के अभिमान को कुचल दिया। परन्तु ब्राह्मणिक ग्रंथों के अनुसार केवल क्षत्रियों को ही शासन करने का अधिकार था। ये शिलालेख इसलिये भी उपयोगी हैं कि आबादी के विभिन्न वर्गों को दिये गये भू-दान के प्रमाण इनमें उल्लेखित हैं जिससे कि समाज के कुछ विशेष वर्गों की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। दान करने वालों में व्यापारियों एवं सौदागरों का मुख्य रूप से संदर्भ आया है परन्तु लुहारों, मालियों एवं मछुवारों के नामों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। इनमें कोई संदेह नहीं कि इन कारीगरों एवं दस्तकारों को निश्चित रूप से दूरस्थ व्यापार से लाभ हुआ था। पर विशेष उल्लेखनीय यह है कि इन लोगों ने अपने नामों के साथ अपने व्यवसायों का उल्लेख किया है न कि अपनी जाति का। हमने पहले की इकाई में उद्धृत किया था कि बौद्ध ग्रंथों में समाज के विभाजन का विवरण ब्राह्मणिक ग्रंथों के विवरण से भिन्न है। यहां पर भिन्नता कार्य एवं दस्तकारिता पर आधारित थी और अधिकतर लोगों को उनके व्यवसाय के आधार पर जाना जाता था न कि जाति के आधार पर।

दान कर्ताओं की एक और श्रेणी थी जिनको यवनों के नाम से या विदेशियों के रूप में जाना जाता है। यवन शब्द का प्रयोग अपने मूल शब्द में भारतीय यूनानियों से किया जाता था किन्तु प्रथम सदी ई. के आस-पास इस शब्द का प्रयोग बिना किसी भेदभाव के विदेशियों के लिये किया जाने लगा। बहुत से यवनों ने प्राकृत नामों को धारण किया और बौद्ध भिक्षुओं को दान दिये। महिलायें स्वतंत्र रूप से अपने आप या अपने पतियों या बेटों के साथ उपहार देती थीं। सातवाहन रानियों में से नायनिका नाम की एक रानी ने बौद्धिक बलि अनुष्ठानों का आयोजन किया और ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को उपहार दान दिये। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि दक्खन में समाज का संचालन जैसा कि इस काल के प्रमाणों से भी जाना जाता है, ब्राह्मणिक ग्रंथों में दिये गये नियमों के अनुसार नहीं होता था। इस प्रकार प्राचीन सामाजिक संरचना का पुनर्निर्धारण करते समय ग्रंथों के संदर्भों का हमें ध्यानपूर्वक विश्लेषण करना चाहिये तथा उनके तथ्यों की तुलना अन्य दूसरे स्रोतों जैसे कि शिलालेखों एवं पुरातात्विक तथ्यों के साथ करनी चाहिए। जिन बौद्ध भिक्षुओं का विवरण इस काल के स्रोतों में हुआ है इससे स्पष्ट है कि उनके व्यवहार एवं जीवन में बुद्ध के समय से काफी परिवर्तन हो चुका था। प्रारंभ में बौद्ध भिक्षुओं को कुछ व्यक्तिगत सामान रखने का अधिकार था। ये सामान कुछ ढीले-ढाले वस्त्रों एवं भिक्षा के पात्रों तक सीमित थे। परन्तु धीरे-धीरे बौद्ध संघ की सदस्यता

का प्रभाव बढ़ता गया। हम देख चुके हैं कि सातवाहन राजाओं ने काफी बड़ी मात्रा में बौद्ध भिक्षुओं को धन एवं भूमि के दान दिये। जिसके कारण संघ की सम्पत्ति में और वृद्धि हुई। इस काल के हमें कुछ ऐसे विवरण भी प्राप्त हुए हैं जिनके अनुसार बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों ने स्वयं भी दान दिये।

27.10 सारांश

दक्खन के इतिहास में सातवाहन काल इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रायद्वीप भारत में प्रथम बार पहली सदी ई.पू. में प्रारंभिक राज्य अस्तित्व में आया। राज्य का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षाकृत सरल था। सामुद्रिक एवं देश के अन्दर व्यापार का प्रसार इस काल के इतिहास का निर्णायक कारक था। इसके कारण शासकों के राजस्व में अतिरिक्त आमदनी का समावेश हुआ और बहुत से व्यावसायिक समूहों में इसके कारण सम्पन्नता भी बढ़ी। इस सब का परिणाम यह भी हुआ कि सम्पूर्ण दक्खन प्रायद्वीप में इस काल में बहुत से नगरों एवं शहरों का विकास हुआ।

बोध प्रश्न 2

- 1) क्या आप समाज के उन वर्गों का नाम बता सकते हैं जिन्होंने इस काल में भूमि दान किये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) इस काल में देश के अन्दर के व्यापार मार्गों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

.....

.....

.....

27.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) iii)
- 2) iv)
- 3) iv)

बोध प्रश्न 2

- 1) भाग 27.9 के आधार पर अपना उत्तर लिखें।
- 2) अपना उत्तर भाग 27.7 के आधार पर लिखें।

इकाई 28 दक्षिण भारत में आरम्भिक राज्य की उत्पत्ति (तमिल क्षेत्र)

इकाई की रूपरेखा

- 28.0 उद्देश्य
- 28.1 प्रस्तावना
- 28.2 क्षेत्र विशेष
- 28.3 पाँच पारिस्थितिकी प्रदेश और जीवनयापन का तरीका
- 28.4 राजनीतिक समाज का उदभव
 - 28.4.1 विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र
 - 28.4.2 लटमार और लट के माल का बंटवारा
 - 28.4.3 मूवेदर और राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तर
- 28.5 सारांश
- 28.6 शब्दावली
- 28.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह समझ सकेंगे कि:

- आरम्भिक काल में दक्षिण भारत या तमिल क्षेत्र किन-किन भौगोलिक प्रदेशों या जलवायु क्षेत्रों में बंटा था;
- किस प्रकार जीवनयापन के विभिन्न तरीके एक साथ अस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदान-प्रदान होता था;
- किस प्रकार विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र कार्य करते थे; और
- कैसे वे राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते थे।

28.1 प्रस्तावना

इकाई 27 में आप सातवाहनों के अधीन दक्खन में आरम्भिक राज्य उत्पत्ति की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस काल के दौरान तमिल क्षेत्र में उसी प्रकार की स्थिति नहीं थी। इस क्षेत्र में केवल मुखियातंत्र विद्यमान था, राज्य शक्ति जैसी चीज का नामोनिशान नहीं था। राज्य के लिए एक क्षेत्र विशेष में केंद्रीकृत राजनीतिक शक्ति का होना अनिवार्य माना जाता है। क्षेत्र के विभिन्न स्त्रोतों पर नियंत्रण स्थापित होने पर ही किसी राजनीतिक शक्ति का अधिकार कायम होता है। इसके अतिरिक्त राज्य के लिए एक नियमित कराधान व्यवस्था और व्यवस्थित सेना का होना आवश्यक है। इस कराधान और सेना को व्यवस्थित करने के लिए राज्य के पास नौकरशाही या विभिन्न स्तरों के अधिकारियों का एक दल होना चाहिए। दूसरी तरफ मुखियातंत्र में ऐसी व्यापक व्यवस्था नहीं होती है। मुखियातंत्र वंशानुगत अधिकार पर आधारित एक ऐसा समाज होता है, जिसमें एक मुखिया का शासन होता है। उसके अधिकार क्षेत्र में वे लोग होते हैं जो उसके साथ संबद्ध कबीले के नियमों और सगोत्रता के सूत्र में बंधे होते हैं। मुखिया अपने लोगों के सगोत्रीय संबंधों का संस्थागत रूप होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में लोगों से राजस्व के तौर पर नियमित रूप से कर नहीं वसूल किया जाता है, बल्कि स्वेच्छा से लोग समय-समय पर नजराना दिया करते हैं। इस इकाई में आप विभिन्न प्रकार के मुखियाई अधिकारों और उनके राजनीतिक विकास के स्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।

28.2 क्षेत्र विशेष

वेंकटम पहाड़ियों और कन्याकुमारी के बीच के भू-क्षेत्र को तमिलहम याने तमिल क्षेत्र कहने

हैं। इसके अंतर्गत सम्पूर्ण आधुनिक तमिलनाडु और केरल आ जाते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा जलवायु पाई जाती है। यहाँ वनों से आच्छादित पहाड़ियाँ, हरे मैदान, चरागाह, शुष्क प्रदेश, नम भूमि और लम्बे समुद्री तट भी हैं। तीन प्रमुख मुखियातंत्रों चेर, चोल और पांड्यों का भीतरी भू-भाग के साथ-साथ समुद्र तट पर भी नियंत्रण था। चेरों का भीतरी भू-भाग में कन्नूर पर और पश्चिमी तट पर स्थित प्रसिद्ध प्राचीन बंदरगाह मुकीरी पर अधिकार था। भीतरी भू-क्षेत्र में उर्जैयूर पर और कोरामंडल तट में पृहार पर चोलों का आधिपत्य था। इसी प्रकार पांड्यों का भू-क्षेत्रीय मुख्यालय महरई और तटीय मुख्यालय कोरकर था। ये इस क्षेत्र के प्रमुख राजनीतिक केंद्र थे।

28.3 पाँच पारिस्थितिकी प्रदेश और जीवनयापन का तरीका

प्राचीन तमिल काव्य में प्रदेश की प्राकृतिक विभिन्नता का सुंदर समन्वय हुआ है। यह ऐतिहासिक या पाँच विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों की अवधारणा के रूप में व्यक्त हुआ है। तमिलहम को पाँच तिणै का समुच्चय बताया गया है, यह पाँच तिणै हैं कुरिंज (पहाड़ी वन क्षेत्र), पलै (शुष्क प्रदेश), मूल्लै (चारागाह क्षेत्र), मरुतम (नम भूमि) और नेयतल (समुद्र तट)। कुछ प्रदेश ऐसे भी थे, जहाँ एक से अधिक तिणै का अस्तित्व था। पर आमतौर पर अधिकांश तिणै चारों तरफ बिखरे पड़े थे। भौगोलिक स्थितियों के कारण प्रत्येक तिणै में मनुष्य के जीवनयापन का तरीका अलग-अलग था। सामाजिक समूह भी अलग-अलग थे। कुरिंज प्रदेश में रहने वाले लोग शिकार और फल-फूल इकट्ठा कर अपनी जिंदगी बसर करते थे। पलै की सूखी भूमि के कारण, वहाँ के लोग कुछ उपजा नहीं सकते थे, अतः यहाँ के लोग जानवरों को चुराकर और लोगों को लूटकर अपना भरण-पोषण करते थे। मूल्लै के लोग पशुपालन और झम खेती करते थे। मरुतम में हल से खेती की जाती थी और नेयतल में मछली मारना और नमक बनाना जीवनयापन का मुख्य साधन था। इस प्रकार तमिलहम के पाँच तिणै में भौगोलिक प्रभावों के कारण जीवन यापन के भिन्न-भिन्न तरीके अपनाये जाते थे। एक तिणै के लोग दूसरे तिणै के लोगों से वस्तुओं का आदान-प्रदान करते थे। जैसे पहाड़ियों में रहने वाले लोग मैदानी इलाके में अपने वन्य उत्पादों जैसे शहद, मांस, फल आदि के साथ आते थे। तटीय प्रदेश में रहने वाले लोग उनके इन पदार्थों के बदले मछली और नमक की आपूर्ति करते थे। कृषि प्रदेश सभी को आकर्षित करते थे। छोटे आत्मनिर्भर तिणै का इस प्रकार के आदान-प्रदान और आपसी निर्भरता से अपेक्षाकृत बड़े भौगोलिक प्रदेशों में विकास हुआ। इनमें से कुछ प्रदेशों में उत्पादन की दृष्टि से स्थिति अनुकूल थी और कुछ प्रदेशों में प्रतिकूल। बेहतर उत्पादन वाले इलाके में अपेक्षाकृत विकसित सामाजिक भ्रम विभाजन अस्तित्व में था। कम उत्पादन वाले इलाके में सामाजिक संरचना सरल थी और वह गोत्रों से मिलकर बनी थी। कुल मिलाकर तमिलहम असमान रूप से विकसित तत्वों से मिलकर बने एक जटिल समाज का प्रतिनिधित्व करता था जिनकी सांस्कृतिक विरासत एक समान थी। इस समाज में कई प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाएँ थीं, जिसमें गोत्रों पर आधारित सरल मुखियातंत्र से लेकर राजघरानों द्वारा शासित जटिल मुखियातंत्र का अस्तित्व था। पूर्णविकसित राज्य का निर्माण होना अभी बाकी था।

28.4 राजनीतिक समाज का उद्भव

विभिन्न कुलों के मुखियातंत्र से राजनीतिक समाज का उद्भव माना जा सकता है। कुलों का यह मुखियातंत्र बड़ा भी होता था और छोटा भी। कविताओं में कुल मुखियातंत्र के मुखियाओं को श्रेष्ठ (पेरू-मकन) या मुखिया पुत्र (को-मकन) कहा गया है, इससे कुल के सदस्यों और मुखिया के बीच संबंध का भी पता चलता है। वस्तुतः इससे सगोत्रीय आधार का पता चलता है। इसमें से कुछ मुखियातंत्रों ने दूसरे कुलों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने कुल में मिलाकर, सगोत्रीय आधार का अतिक्रमण भी किया होगा। अपेक्षाकृत जटिल प्रकृति के बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण आक्रमणों और दूसरों के इलाकों पर कब्जा जमाकर ही हुआ है। मुखियाओं की वैवाहिक संधियों के कारण भी बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण हुआ, पर मुखियातंत्रों के विकास का मुख्य आधार उनकी सम्पत्ति थी। जिनके पास अधिक खेतिहर इलाके थे, वे मुखियातंत्र अधिक शक्तिशाली थे। समकालीन तमिल क्षेत्र में इस प्रकार के मुखियातंत्रों में चेर, चोल और पांड्य सर्वप्रमुख थे। ये मुखियातंत्र राज्य के उद्भव के पूर्व के चरण का प्रतिनिधित्व करते थे।

28.4.1 विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र

तमिल क्षेत्र में तीन प्रकार के मुखियातंत्र थे। इन्हें किलार (छोटे मुखिया), वेलीट (बड़े मुखिया) और वेंतर (सबसे बड़े मुखिया) कोटि में विभक्त किया जाता था। किलार छोटे गाँवों (उर) के मुखिया होते थे, जहाँ सगोत्रता का अधिपत्य था। काव्यों में कई किलारों का उल्लेख किया गया है। उनके आगे उनके अपने गाँव का नाम जुड़ा होता था जैसे अरंकट्टर-किलार या उरंटर-किलार। इनमें से कुछ प्रदेशों को बड़े मुखियातंत्रों ने हड़प लिया था और उन्हें (किलार) बड़े मुखियातंत्रों के अभियान में साथ देना पड़ता था। काव्य में इस बात का उल्लेख है कि किलारों को बड़े मुखियातंत्रों जैसे चेर, चोल और पांड्य के सैनिक अभियानों में विदुतोलिल (अनिवार्य सेवा) करनी पड़ती थी। इसके बदले में बड़े मुखियातंत्र किलारों को बतौर इनाम कुछ गाँवों का नियंत्रण सौंप देते थे। वेलीर मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्र पर नियंत्रण रखते थे, पर इनमें से कुछ मैदानी इलाकों में भी जमें हुए थे। पहाड़ियों पर स्थित मुखियातंत्रों के मुखिया मुख्यतः शिकारी प्रमुख होते थे, जिसे वेडर कोमान या कुरवर-कोमान या नेडु वेट्टुवन के नाम से जाना जाता था। वेडर-कुरवर और वेट्टुवर पहाड़ी इलाके के प्रमुख कुल थे, जिसमें वेलीर का वर्चस्व था। इस काल के मुखियातंत्रों के प्रमुख केंद्र वैकटमलै (वैकटम की पहाड़ियाँ), नांजिलमलै (त्रावणकोर की दक्षिणी पहाड़ी), परमपुरलाई (संभवतः पोल्लाच्ची के समीप आधुनिक परम्पिकुल्लम आरक्षित वन), पोट्टिटलमलै (महुरै जिले की पहाड़ियाँ) आदि थे। बड़े मुखियातंत्रों की श्रेणी में चेर, चोल और पांड्य प्रमुख राजघराने थे। इन्हें मूवेंदर के नाम से जाना जाता था। इन राजघरानों का बड़े हिस्सों पर नियंत्रण था। चेरों का नियंत्रण पश्चिमी घाट में स्थित कुरिजों पर था। चोलों का कावेरी क्षेत्र पर और पांड्यों का दक्षिण-मध्य समुद्री इलाके पर नियंत्रण था। उनके अधीन कई छोटे-मोटे सरदार थे, जो नजराना पेश किया करते थे। उस समय तक राज्य क्षेत्र का कोई निश्चित सीमा-निर्धारण नहीं हो सकता था। इस युग में राजनीतिक अधिकार का कार्यान्वयन जनता के माध्यम से होता था न कि मूलभूत स्त्रोतों पर अधिकार जमाकर। जैसे कि कुरवर या वेंतर या वेट्टुवर जैसे लोगों पर नियंत्रण स्थापित कर ही कोई मुखिया सरदार बन पाता था। इन लोगों का सामूहिक तौर पर पहाड़ी या मैदानी इलाकों पर अधिकार होता था। मुखिया या सरदार सगोत्रता पर आधारित समाज से ही अधिकार प्राप्त करता था। विभिन्न स्त्रोतों पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न होकर बल्कि पूरे समुदाय का अधिकार होता था, यह उनका वंशानुगत अधिकार होता था। यह वंशपरम्परा पर आधारित समुदाय था और वे स्वेच्छा से अपने मुखिया को नजराना देते थे। नियमित और निश्चित समय पर करों का भुगतान करना प्रचलन में नहीं था। फिर प्रमुख मुखिया की शक्ति अपने क्षेत्र की उत्पादकता और उपजाउपन पर आधारित होती थी। पशुपालक या शिकारी समुदाय के सरदार की शक्ति खेतिहर इलाके के सरदार से कम होती थी। शक्तिशाली सरदार कमजोर सरदार के इलाकों पर कब्जा जमा लेते थे और उनसे नजराना वसूल करते थे। इस काल में लूटमार कर धन इकट्ठा करना एक आम प्रचलन था।

28.4.2 लूटमार और लूट के माल का बंटवारा

अपने लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े और छोटे सरदार अक्सर लूटमार किया करते थे। ये सरदार अपने सगोत्रों के अलावा लूट के माल का हिस्सा सैनिकों, भाटों, और चिकित्सकों को भी दिया करते थे। कोडै संस्था (उपहार प्रदान करने की संस्था) लूट के माल के पुनर्वितरण की प्रथा का एक अंतरिम हिस्सा थी। उपहार प्रदान करना किसी भी सरदार का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व माना जाता था। पुरनानूरु (एट्टुत्तोगै) की परम्परा में संकलित एक काव्य की अधिकांश कविताओं में सरदार की उदारता की प्रशंसा की गयी है। इन कविताओं के अनुसार बहादुरी और उदारता को सरदारों का प्रमुख गुण माना जाता था। स्थानीय स्त्रोतों के अभाव में लूटमार आय का प्रमुख स्त्रोत बन जाता था। पुरनानूरु में संकलित एक काव्य में ऊर्त्तरकिन्तार नाम के सरदार का उल्लेख है, जिसके पास आय के स्रोत काफी कम थे। जब भी कोई व्यक्ति उससे उपहार माँगने जाता था, तो वह अपने लोहार को बुलाकर नया बल्लम बनाने का आदेश देता था ताकि वह लूटमार करके धन एकत्र कर उसे उपहार के तौर पर अपने आश्रितों को दे सके। इस प्रकार लूटमार और प्राप्त माल का पुनर्वितरण उस समय की राजनीतिक व्यवस्था का एक अंग बन चुका था। सरदार एक दूसरे को लूटा करते थे। लूटमार के अभियान में छोटे सरदार बड़े सरदारों का साथ देते थे और लूट के माल के समय इनकी नजर ज्यादातर पशुधन और अनाज की ओर होती थी। इस काल के भाटों ने अपने गायन में हाथी, घोड़े, स्वर्ण कमल, रथ, हीरे-जवाहरात और मलमल के कपड़े आदि उपहारों की चर्चा की है। कभी-कभी बड़े सरदार अपने आक्रमण के दौरान दूसरे

सरदारों के भू-क्षेत्र पर भी अधिकार कर लेते थे। इन अधिकृत भू-क्षेत्रों को बड़े सरदारों अपने सहायक छोटे सरदारों के बीच बाँट दिया करते थे। यह स्मरणीय है कि नियंत्रण वहाँ की जमीन पर नहीं, बल्कि वहाँ रहने वाले लोगों पर स्थापित होता था।

28.4.3 मूवेंदर और राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तर

प्रधान शासक समुदाय के रूप में मूवेंदर की पुरातनता मौर्यकाल तक जाती है। अशोक की राजविज्ञप्तियों/फरमानों में उनका जिक्र मिलता है। भाट मूवेंदर की स्तुति एक "राजा" के रूप में करते हैं; और उनके अनुसार मूवेंदर का अधिकार पूरे तमिल क्षेत्र पर था। पर "राजा" के उल्लेख का यह मतलब नहीं है। राज्य की स्थापना हो चुकी थी। एक राज्य के निर्माण के लिए स्थायी सेना, नियमित कर व्यवस्था, नौकरशाही और स्थानीय प्रशासनिक निकायों का होना अनिवार्य है। अभी तक इनकी उत्पत्ति नहीं हो सकी थी। इसके बावजूद मूवेंदर अन्य सरदारों से बिल्कुल भिन्न था। लगातार छोटे सरदारों को अपने अधीन लाने का प्रयत्न करते रहे। तीनों शासक समुदाय — चेर, चोल और पांड्य का एक ही प्रमुख मकसद था, वेलीर (बड़े सरदारों) को अपने अधीन करना। वेलीर सरदार की परम्परा भी काफी प्राचीन थी। अशोक के फरमान में चेर, चोल और पांड्यों के साथ-साथ सत्यपुत्रों या अदिकैमान सरदारों का भी उल्लेख हुआ है। सत्यपुत्र वेलीर सरदारों की श्रेणी में आते थे। उनका ऊपरी कावेरी की पहाड़ियों पर स्थित लोगों पर नियंत्रण था। अन्य वेलीर सरदारों का अधिकार क्षेत्र भू-वेंदर की सीमा से लगी हुई ऊँची भूमि और समुद्री तट तक फैला हुआ था। वेलीर सरदारों के नियंत्रण में पहाड़ी और मैदानी इलाके थे, इनमें प्रमुख हैं: धर्मपुरी, नीलगिरि, मदुरई, उत्तरी आर्कोट, त्रिचिनापल्ली, पट्टकोट्टई आदि आधुनिक जिले। तमिल क्षेत्र में लगभग पन्द्रह महत्वपूर्ण वेलीर मुखियातंत्र अस्तित्व में थे। इनमें से कुछ वेलीरों का नियंत्रण व्यापारिक स्थल, बंदरगाह पहाड़ियों के मुहाने और पहाड़ी बस्तियों जैसे महत्वपूर्ण केंद्रों में रहने वाले लोगों पर था। स्थान और स्रोतों से उनकी शक्ति का निर्धारण होता था। भारतीय-यूनानी व्यापार की शुरुआत होने के बाद महत्वपूर्ण स्थानों और व्यापारिक माल पर नियंत्रण से सरदारों का महत्व बढ़ गया। कविताओं में परंबुमैल के पारी (पोल्लाची के समीप), पोडियल के अरियार (मदुरई), नाजिमैल के आंदीरन (श्रावणकोर के दक्षिण), कोडम्बै के इरुडुगोवेल (पट्टकोट्टई) आदि प्रमुख वेलीर सरदारों का जिक्र किया गया है। ऐसे सामरिक महत्व के क्षेत्रों के वेलीर सरदारों को बार-बार भू-वेंदर जैसे बड़े सरदारों का आक्रमण झेलना पड़ता था। इस भाग-दौड़ में कभी-कभी कमजोर सरदारों का विनाश भी हो जाता था। भू-वेंदर द्वारा परबुनाड के वेलीर सरदार की सारी रियासत का नाश इसी प्रकार का उदाहरण है। युद्ध के अतिरिक्त विवाह के माध्यम से भी बड़े सरदार वेलीर रियासत तक पहुँचने की कोशिश करते थे। चेर, चोल और पांड्यों द्वारा वेलीरों की लड़की से शादी करने के कई उदाहरण मिलते हैं, सामरिक महत्व के क्षेत्र के सरदार पर बड़े सरदार सैन्य नियंत्रण रखते थे। उनका दमन करके बड़े सरदार उन्हें अपने अधीन कर लेते थे। भू-वेंदर के नियंत्रण में ऐसे कई पराधीन सरदार थे, जो लूटमार के अभियान में उनका साथ देते थे।

यह स्पष्ट है कि समकालीन तमिल क्षेत्र में भू-वेंदर सर्वशक्तिमान राजनीतिक सत्ता थी। इसके बाद वेलीर का स्थान आता था। जबकि किलार के ग्रामीण सरदार राजनीतिक शक्ति का प्राथमिक स्तर थे। इन्हें देखकर एक राजनीतिक पदानुक्रम का आभास होता है पर राजनीतिक शक्ति के इन तीन स्तरों को सूत्रबद्ध करने के लिए राजनीतिक नियंत्रण की कोई कड़ी नहीं बन पायी थी। भू-वेंदर द्वारा युद्ध और विवाह के माध्यम से छोटे सरदारों को अपने अधीन करने की प्रक्रिया जारी थी, पर अभी भी एक एकीकृत राजनीतिक व्यवस्था का अभाव था।

संगोत्रीय आधार पर संगठित कुलों पर परम्परागत अधिकार ही इस काल के राजनीतिक नियंत्रण का आधार था। परम्परागत ज्येष्ठ लोगों की सभा प्रतिदिन के सभी कार्यकलापों को संपादित करती थी। सभी स्थल को मन्त्रम कहा जाता था अर्थात् किसी पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा इसे पोतियिल भी कहते थे। सरदार की सहायता के लिए ज्येष्ठों की एक सभा होती थी, जिसे अवै (सभा) कहा जाता था, इसकी संरचना बनावट और कार्य का अभी तक पूर्ण ब्यौरा प्राप्त नहीं हुआ है। आरंभिक तमिल राजनीतिक व्यवस्था के दो और निकायों की प्रायः चर्चा की जाती है, इसे ऐमपेंरगुलु या पाँच बड़े समूह और एणपेरायम या आठ बड़े समूह के नाम से जाना जाता है। संभवतः इन निकायों का विकास तृतीय शताब्दी ई. के आसपास हुआ था, यह काफी बाद की गतिविधि है। इन निकायों की संरचना और कार्यों का भी कुछ निश्चित पता नहीं चला है।

बोध प्रश्न 1

- 1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सही (✓) और गलत (×) का निशान लगाएँ।
- तमिलहम (तमिल क्षेत्र) के सरदार तंत्र नियमित कराधान पर आधारित थे। ()
 - इस काल की राजनीतिक सत्ता आर्थिक स्रोतों के नहीं बल्कि लोगों के नियंत्रण पर आधारित थी। ()
 - भू-वेंदर पूर्ण रूप से विकसित राज्य था। ()
 - उपहार प्रदान करना सरदार का प्राथमिक सामाजिक कर्तव्य था। ()
- 2) विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र किस प्रकार सहअस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदान-प्रदान होता था? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

28.5 सारांश

इस इकाई में आपने तमिल क्षेत्र की विभिन्न भौगोलिक इकाइयों की जानकारी प्राप्त की। इसके अतिरिक्त वहाँ जीवनयापन के विभिन्न तरीकों और सरदार तंत्र स्तर के राजनीतिक स्वरूप से परिचित होने का भी आपको अवसर मिला। आप इस बात से भी अवगत हुए कि उस काल की राजनीतिक व्यवस्था में लूटमार और लूटमार के माल के विवरण का महत्वपूर्ण स्थान था। इसके अतिरिक्त आप को यह भी जानकारी मिली कि इस काल की राजनीतिक सत्ता का आधार गोत्र और कुल था। तृतीय शताब्दी ई. के बाद राजनीतिक संगठन के सतत विकास की प्रक्रिया से भी आप अवगत हो गये होंगे।

28.6 शब्दावली

किलार: मुखिया या सरदार का सबसे छोटा तबका जिसका अपने कुल पर सीधा अधिकार होता था।

तिणै: एक विशिष्ट परिस्थिति की जलवायु, सामाजिक समूहों और जीवनयापन के तरीकों से मुक्त प्रदेश।

भाट: राजस्तुति करने वाले कवि।

मन्डम/पोतियल: पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा।

पदानुक्रम: पद के अनुसार, इकाई में इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के (hierarchy) के लिए किया गया है।

भौगोलिक क्षेत्र या इकाई: एक विशिष्ट परिस्थिति की विशेषताओं जैसे, पर्यावरण, मिट्टी के प्रकार, उर्वरता आदि से मुक्त प्रदेश।

मुखियातंत्र: वंशानुक्रम पर आधारित एक समाज जिसमें एक मुखिया अपने लोगों से उनकी स्वैच्छा से नजराना प्राप्त करता था।

दक्षिण भारत में राज्य एवं समाज
200 ई.पू. से 300 ई. तक

भू-वेंदर: तीन प्रमुख शासकीय समूह, जैसे चेर, चोल और पांड्य।

वेलीर: प्रधान समूहों के ठीक बाद के प्रमुख या अपेक्षाकृत बड़े सरदार।

वेंतर: प्रधान समूह या सबसे बड़े सरदार।

28.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

- 1) i) × ii) ✓ iii) × iv) ✓
- 2) देखें उपभाग 28.4.3

इकाई 29 कृषक बस्तियों का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

- 29.0 उद्देश्य
- 29.1 प्रस्तावना
- 29.2 आजीविका के प्रकार
- 29.3 कृषक बस्तियों का प्रसार
 - 29.3.1 तमिल क्षेत्र की बस्तियों में कृषि उत्पादन
 - 29.3.2 दक्खन में बस्तियां
- 29.4 स्वामित्व का अधिकार
- 29.5 राजस्व और अधिशेष वसूली
 - 29.5.1 कृषि से राजस्व
 - 29.5.2 तमिल क्षेत्र में संसाधनों का अर्जन और वितरण के तरीके
 - 29.5.3 वसूली में ज्यादतियां
- 29.6 सामाजिक संगठन
 - 29.6.1 तमिल समाज
 - 29.6.2 दक्खन में समाज
- 29.7 नए तत्व और सामाजिक परिवर्तन
- 29.8 सारांश
- 29.9 शब्दावली
- 29.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

29.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य 200 ई.पू. से 300 ई. तक दक्खन और दक्षिण भारत में कृषक बस्तियों के प्रसार के बारे में चर्चा करना है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- जीविका के उन विभिन्न प्रकारों के बारे में, जो दक्षिण भारत के भिन्न-भिन्न भागों में विद्यमान थे;
- कृषक बस्तियों के प्रसार के स्वरूप;
- भूमि के स्वामित्व के स्वरूप;
- कृषि से राजस्व आय और कृषक बस्तियों में संसाधनों के पुनः वितरण;
- कृषक समाज के संगठन; और
- नए तत्वों के लागू होने तथा परिवर्तन शुरू होने के बारे में जान सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

प्रायद्वीपीय भारत में खेती के सबसे पुराने साक्ष्य नवपाषाण युग के उत्तरार्ध में पाए जाते हैं, जो ई.पू. के दूसरे सहस्राब्दि का पूर्वार्ध है। नवपाषाण युग के लोग मोटा अनाज (मिलेट) जैसे रागी और बाजरा तथा दलहन जैसे काला चना और पशुओं के खाने वाला चने की खेती करते थे। नवपाषाण युग की बस्तियों की मुख्य विशेषता यह थी कि पहाड़ियों के ढलान पर सीढ़ीदार खेतों पर ही खेती की जाती थी। प्रायद्वीपीय भारत में प्रथम सहस्राब्दि ई.पू. के लगभग चावल पाए गए थे, जो दक्षिण में लौह युग के आरंभ होने की अवधि है। दक्खन और दक्षिण भारत में लौह युग के दौंगन धान की खेती का प्रसार हुआ। ऊपरी क्षेत्रों में लौह युग के प्रारंभ की बस्तियां देखी गई हैं। लोहे के प्रयोग से खेती की तकनीकी में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं हुआ। बाद में लोहे के हल-फाल के प्रयोग से तकनीकी प्रगति हुई। इस के साथ ही नदी घाटियों में बस्तियों का संकेन्द्रण भी हुआ। जुताई में बैलों के काम में लाने और लोहे के हल फाल के प्रयोग के विस्तार से खेती अधिक इलाके में होने लगी और खेती की उपज में

भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई। इस वृद्धि के अनुसार, जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। बाद में बौद्ध मठों और ब्राह्मणों जैसे धार्मिक लाभभोगियों को गांवों की भूमि दान देने की प्रथा शुरू होने से कृषक क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। उन्हें मौसम की बेहतर जानकारी थी और मौसम के बारे में पूर्व-अनुमान भी कर सकते थे। बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भूमि देने के फलस्वरूप कृषक क्षेत्र में गैर-कृषक वर्ग का प्रवेश शुरू हुआ। इस प्रकार हमें दक्षिण भारत में कृषक बस्तियों के प्रसार में तीन अवस्थाओं का पता चलता है:

- पहली अवस्था: निम्न स्तर की प्रौद्योगिकी के साथ अपरिष्कृत खेती की प्रथम अवस्था जिसमें खेती केवल पहाड़ी ढलानों तक सीमित थी।
- दूसरी अवस्था: प्रौद्योगिकी में पर्याप्त वृद्धि के साथ हल द्वारा खेती और नदी घाटियों में खेती का विस्तार।
- तीसरी अवस्था: इसमें गैर-कृषक वर्ग का कृषक क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इन वर्गों को मौसम, प्रबंधकीय क्षमता और खेती के तरीकों में उपकरणों का बेहतर ज्ञान था।

29.2 आजीविका के प्रकार

आजीविका के प्रकारों का निर्धारण कई कारकों द्वारा किया जाता है। जैसे क्षेत्र विशेष की भौगोलिक अवस्थिति, क्षेत्र की प्राकृतिक अवस्था, भौतिक संस्कृति और प्रौद्योगिकी का स्तर। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में अपरिष्कृत तकनीक काफी समय तक चलती रही, परन्तु कुछ अन्य क्षेत्रों ने सामग्री उत्पादन और सामाजिक विकास में प्रगति की। तमिल क्षेत्र में आजीविका के प्रकारों में विविधताएं अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। आप इकाई 31 में पढ़ेंगे कि प्रारंभिक तमिल संगम कविताओं में तिणै (tinai) के रूप में पांच आर्थिक प्रदेशों का उल्लेख है और प्रत्येक आर्थिक प्रदेश की आजीविका का स्वरूप बिल्कुल अलग है। ये निम्नलिखित हैं:

- कुरिंजी (kurinji), पहाड़ और वन;
- मुल्लै (mullai), चारागाह जिनमें कम ऊंची पहाड़ियां और छितरे वन थे;
- मरुतम (marutam), उपजाऊ कृषि मैदान;
- नेयतल (neytal), समुद्री तट; और
- पालै (palai), शुष्क क्षेत्र। मुल्लै या कुरिंजी भूमि क्षेत्र भीषण ग्रीष्म ऋतु में शुष्क हो जाता था।

कुरिंजी क्षेत्र में वन जन-जातियां थीं, जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से जाना जाता था जैसे कुरवर (kuravar), वेटर (vetar) आदि। उनका मुख्य व्यवसाय आखेट और वन उत्पादों जैसे बांस, चावल, शहद और कंद-मूल एकत्रित करना था। वे पहाड़ी ढलानों पर "काटना और जलाना" विधि से खेती करते थे और ज्वार, बाजरा तथा दलहन पैदा करते थे। वे विभिन्न प्रकार के औजारों जैसे फावड़ा, दरती और लोहे की नोकयुक्त कुदाल का प्रयोग करते थे। ऐसे पहाड़ी इलाके वे थे, जहां मिर्च तथा मसालों की अन्य प्रजातियां काफी मात्रा में पैदा होती थीं। साहित्य में मिर्च की खेती और बागानों में सिंचाई सुविधाओं का वर्णन मिलता है।

मुल्लै (mullai) के चारागाहों पर ग्वालियों का अधिकार था जो इटैयर (itayar) के नाम से जाने जाते थे। उनकी आजीविका का साधन पशुपालन था। वे दूध उत्पादों का विनियम करते थे। झूम कृषि भी करते थे और मोटे अनाज तथा दलहन एवं मसूर पैदा करते थे।

मरुतम या कृषक क्षेत्र अधिकतर उपजाऊ नदी घाटियों में थे जो धान और गन्ने की खेती के लिए उपयुक्त क्षेत्र थे। वे लोग जो उषवर (ushavar) कहलाते थे, जिसका अर्थ हलवाहा है, खेतों की जुताई में लगे रहते थे और अपनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में धान पैदा करते थे।

अन्य तिणों के लोग चावलों और प्रमुख खाद्यान्नों के लिए मरुतम क्षेत्रों पर निर्भर थे।

नेयतल लोग जो परतवर (paratvar) थे, मछली पकड़ने और नमक उत्पादन में लगे रहते थे। वे अपनी आजीविका उपार्जन के लिए मछली और नमक का विनियम करते थे।

पालै क्षेत्र की ग्रीष्म ऋतु एक नियतकालिक घटना है। वहां ग्रीष्म ऋतु के दौरान पानी की

दुर्लभता के कारण खेती संभव नहीं थी। इसलिए उस क्षेत्र में कुछ लोग ऐसे थे जो राहजनी, डकैती और पशुओं की चोरी करते थे। नमक के व्यापारी और अन्य वस्तुओं के व्यापारी कारवां में इस क्षेत्र से गुजरते थे। बहुधा इसे कारवां मरवर (marava) वर्गों के लोगों द्वारा लूटे जाते थे।

उपर्युक्त चर्चा से आजीविका के निम्नलिखित प्रकार वर्गीकृत किए जा सकते हैं:

- आखेट और वन उत्पादों का संग्रहण
- पशुपालन
- खेतों की जुताई
- मछली पकड़ना और नमक बनाना
- राहजनी

चार्ट-1: भू-आकृति विभाजन, निवासी और व्यवसाय

क्षेत्र	भौगोलिक लक्षण	निवासी	व्यवसाय
कुरिंजी	पर्वतीय और वन	आखेट और संग्रहण (कुरवर और वेटर)	आखेट, भोजन संग्रहण काटना जलाना और खेती
मल्लै	चारागाह, कम ऊंची पहाड़ियाँ और छितरे वन	चरवाहे (आवर और इटैयर) (Ayar and Itayar)	पशुपालन, झूम कृषि
मरुतम	नदी घाटियाँ और मैदान	किसान (उषवर और वेल्लालर) (ushavar and vellaler)	कृषि जुताई
नेयतल	समुद्र तट	मछुआरे (परतवर) (Paratvar)	मछली पकड़ना, पत्त गोता लगाना, नमक बनाना
पल्लै	शष्क क्षेत्र, ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ी क्षेत्रों की चारागाह भूमि का परिवर्तन	डाकू (एयिनर, मरवर) (Eyinar, Maravar)	राहजनी, डकैती और आखेट

बोध प्रश्न 1

1) सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए:

- i) तमिलहम क्षेत्र में आजीविका के विविध प्रकार स्पष्ट दिखाई देते हैं।
- ii) पांच तिनाई दक्खन, आंध्र, तमिलनाडू और केरल थे।
- iii) पल्लै क्षेत्र एक नियतकालिक घटना है।
- iv) दक्षिण भारत में कृषि की तृतीय अवस्था कृषि के क्षेत्र में गैर-कृषि वर्ग का प्रवेश है।

2) प्राचीन तमिलहम के आर्थिक क्षेत्रों के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) मल्लै अथवा चारागाह में आजीविका के प्रकारों के बारे में तीन पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

29.3 कृषक बस्तियों का प्रसार

दक्षिण और दक्षिण भारत में नवपाषाण युग से लौह युग तक जनसंख्या में वृद्धि एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। यह परिवर्तन लौह युग के कई स्थानों पर दिखाई देता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप ऊपरी क्षेत्र (Upland Area), क्षेत्रों से उपजाऊ नदी घाटियों में बस्तियों का प्रसार हुआ और अंशतः पशुपालन से और कुछ झूम खेती से व्यवस्थित कृषि अर्थव्यवस्था अपनाई गई। इस जीवन शैली की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थीं:

- नदी घाटियों में बस्तियों का संकेन्द्रण;
- कुछ स्तरों पर दस्तकारी विशेषज्ञता;
- लोहे के औजारों और उपकरणों का व्यापक प्रयोग;
- लोहे के हल-फाल की नई प्रौद्योगिकी;
- लघु सिंचाई सुविधाओं का प्रबंध; और
- शुष्क भूमि फसलों से अधिक उपज देने वाली धान की आर्द्र भूमि फसलों में परिवर्तन।

पुरातत्व संबंधी स्थलों में ये परिवर्तन सम्पूर्ण दक्षिण भारत में यत्रतत्र दिखाई देते हैं। ये आम तौर पर महापाषाणीय स्थलों के नाम से जाने जाते हैं। आप खण्ड 3 में महापाषाण के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। कृषक बस्तियों पर चर्चा करने से पहले हम संक्षेप में महापाषाणों के बारे में बताएंगे।

महापाषाण का शाब्दिक अर्थ बड़ा पत्थर है। इसका संबंध लोगों की वास्तविक बस्तियों से नहीं है, बल्कि कब्र के चारों ओर पत्थरों के वृत्त में कब्र के स्थान से है। कुछ आवासीय स्थानों जैसे विरूक्कण्णुपुलियर, अलाकरै आदि में ऐसे स्थल प्रकाश में आए हैं परन्तु वे बहुत कम हैं। महापाषाण की शुरुआत लगभग 1000 ई.पू. मानी जाती है। परन्तु बहुत से मामलों में इन्हें पाँचवीं से पहली शताब्दी ई.पू. माना जाता है। कुछ स्थानों में वे इससे भी बाद के थे। कब्र के सामान में विभिन्न वस्तुएं जैसे मानव अस्थियां, विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन, एक विशेष प्रकार का बाल और काला भांड, आकृति बने ठीकरे, लोहे के औजार और हथियार, मनके तथा आभूषण, उपासना की वस्तुएं और कई अन्य वस्तुएं होती हैं। इन महापाषाणयुगीन अवशेषों से हमें दक्षिण भारत में लौह युग की कृषक बस्तियों की भौतिक संस्कृति की जानकारी मिलती है। इसके अलावा, उनसे तत्कालीन तमिल कवियों द्वारा दिए गए प्रमाणों की पुष्टि भी होती है।

29.3.1 तमिल क्षेत्र की बस्तियों में कृषि उत्पादन

तमिल क्षेत्र में कृषि लोहे के हल-फाल की सहायता से की जाती थी। फावड़ा, हल और दरती भी विभिन्न कृषि कार्यों के लिए प्रयोग में लाए जाते थे। लोहार को लोहे के धातुकर्म का ज्ञान था, और कुछ स्थानों पर लोहा पिघलाने के लिए प्रयुक्त भट्टियां भी थीं। ऐसे स्थानों से लौहचूर्ण भी प्राप्त हुआ है। गहरी जुताई के लिए लोहे के नोक वाला हल आवश्यक है। धान और गन्ने के लिए गहरी जुताई आवश्यक है। हल के उपयोग के बारे में साहित्य और शिलालेखों में प्रमाण मिलते हैं। तमिलहम् गुफा शिलालेखों में हल-फाल के ध्यापारी को दाता के रूप में चित्रित किया गया है। बैलों और भैसों को हल जोतने के काम में लाया जाता था। ताकतवर पशुओं को खेतों की जुताई पर लगाने से कृषि कार्यों में अधिक कार्य-कुशलता आई।

सिंचाई-सुविधाएं कभी स्थानीय किसानों द्वारा और कभी राजाओं तथा सामंतों द्वारा जुटाई जाती थीं। नदी के पानी को छोटी नालियों से खेतों में ले जाया जाता था। तमिलहम् में कावेरीपट्टनम के समीप प्राचीन जलाशयों के अवशेष पाए गए। उस क्षेत्र में कम वर्षा के कारण सिंचाई महत्वपूर्ण थी। उपजाऊ मरुथम क्षेत्र में धान और गन्ना दो प्रमुख फसलें थीं। दलहनों की भी खेती होती थी। उस समय के साहित्य से पता चलता है कि लोगों को मौसम की कुछ जानकारी थी जो खेती की सफलता के लिए आवश्यक है।

उषवर (Ushavar) और वेल्लालर (Vellaler) प्रमुख किसान थे। उषवर का शाब्दिक अर्थ हलवाहा है और वेल्लालर का अर्थ भूमि का मालिक है। कृषि के लिए श्रमिकों का एक अंतः हलवाहों का वर्ग है। अटियोर (Atiyor) और विनैवलर (Vinaivalar) का भी उल्लेख खेतों में काम करने वाले व्यक्तियों के रूप में किया गया है।

अट्टोर का अर्थ संभवतः गुलाम है और विनैवलार का अर्थ "मजदूरी" अर्जित करने वाला कामगार। इनके मजदूरी की दर और दूसरी शतों के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। बड़े परिवारों के सदस्य कृषि उत्पादन के विभिन्न कार्यों में लगे हुए पाए गए हैं। केवल परिवार के श्रम के आधार पर उत्पादन आवश्यकता से अधिक नहीं हो पाता था। फिर भी, इस कठिनाई के बावजूद कृषि बस्तियों में भिन्न-भिन्न वर्ग बने रहे जैसे लोहार, बढ़ई, भाट, नृतक, जादूगर, पुजारी, भिक्षु आदि।

29.3.2 दक्खन में बस्तियां

सातवाहन काल (पहली सदी ई.पू. से तीसरी सदी ई. तक) के दौरान नदी के मैदानों, समुद्र तटों और पठारी भाग के दक्खन में बस्तियों की संख्या में समग्र वृद्धि हुई। गोदावरी घाटी में सबसे अधिक बस्तियां थीं। सातवाहन बस्तियों की भौतिक संस्कृति में दक्खन के महापाषाणकालीन बस्तियों की अपेक्षा कुछ सुधार दिखाई देते थे। हल-फाल, दराती, फावड़ा, कुल्हाड़ी और तीर के नोक सहित औजार और उपकरण थे। कुदाल में निरंतर कुछ न कुछ सुधार होता रहा परन्तु यह उचित ढंग से सकोटर था। करीमनगर और वारंगल के क्षेत्रों में कच्चा लोहा उपलब्ध था। इन क्षेत्रों में लोहे की खुदाई से यह पता चलता है कि महापाषाण युग में भी इसका प्रचलन था। सातवाहन काल में दक्खन में सोने की खदानों के प्रमाण मिलते हैं। इन विकास कार्यों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में धातुकर्म उन्नत अवस्था में था।

तालाबों और कुओं के रूप में सिंचाई सुविधाओं की उन्हें जानकारी थी। पानी उठाने के लिए रहटों का प्रयोग किया जाता था। तालाबों और कुओं की खुदाई प्रशंसनीय कार्य समझा जाता था। कुछ शामकों की तालाब निर्माताओं के रूप में शिलालेखों में प्रशंसा की गई है। धनी लोग तालाब और कुएं बनवाते थे।

दक्खन के लोगों को धान रोपाई का ज्ञान था। ईसवी सदी की पहली दो शताब्दियों में कृष्णा और गोदावरी नदियों के मैदानों में प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र थे। काली मिट्टी वाली भूमि में कपास की खेती की जाती थी और आंध्र का कपास विदेशों में भी प्रसिद्ध था। समुद्रतटीय क्षेत्रों के विकास में नारियल की पैदावार का बहुत बड़ा योगदान रहा। दक्खन के विभिन्न भागों में आम के वृक्षों और इमारती लकड़ी के अन्य वृक्षों के रोपण के बारे में भी सुना जाता है।

दक्खन में श्रमिकों का स्रोत, मजदूरी पर श्रमिक और गुलाम थे। The Periplus of the Erythraean Sea में वर्णन है कि गुलामों को अरब से लाया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि समाज में स्पष्ट अंतर और वर्ग भेद था। तमिल क्षेत्र में "उच्च" और "निम्न" वर्ग के बीच अंतर था। "उच्च वर्ग" में शासक और सामंत तथा वेल्लाल और वेत्तीर वर्ग आते थे, जो भूमि के मालिक थे। "निम्न" वर्ग में साधारण किसान, भाट और नृतक तथा कामगार आदि थे। दक्खन के उन क्षेत्रों में यह अंतर और अधिक निश्चित रूप से उभरा, जहां स्थानीय विकास कार्यों और उत्तर के आदर्शों तथा विचारधारा का सम्मिलन पहले हुआ था।

29.4 स्वामित्व का अधिकार

सम्पदा और सम्पत्ति के आधार पर सामाजिक अंतर के फलस्वरूप स्वामित्व के आधार की समस्या उत्पन्न होती है। सुदूर दक्षिण में हमने देखा है कि वहां कुछ वेल्लाल वर्ग थे जो ज़मीन के मालिक थे। इससे प्रतीत होता है कि दूसरों की ज़मीन में मजदूरी पर काम करने की अपेक्षा स्वयं भूमि का मालिक होना अच्छा समझते थे। कभी-कभी सामंत अपने सैनिकों और भाटों को ऊर (Ur) बस्तियां दे देते थे। इसके परिणामस्वरूप जिस व्यक्ति को ज़मीन दी गई थी, उसे उन ऊर (Ur) बस्तियों से आय संग्रह करने का अधिकार मिल जाता था।

आम तौर पर खेतों का सामूहिक स्वामित्व होता था और सामंतों के करों का भुगतान करने के बाद उत्पाद का उपयोग भी सामूहिक रूप से होता था। दक्खन में भूमि स्वामित्व का स्वरूप अधिक स्पष्ट है। वहां गहपति (Gahapati) परिवार थे, जो भूमि के स्वामी और व्यापारी, दोनों होते थे। एक शिलालेख के अनुसार पश्चिमी दक्खन के नाहापन क्षत्रपा शासक का दामाद उशावदत्ता ने ब्राह्मण से ज़मीन का एक प्लाट खरीदा और उसे बौद्ध संघ को दान में दे दिया। इससे यह स्पष्ट है कि भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत भी होता था। इस कार्य में स्वामी को 40,000 क्हापन (Kahapana) सिक्के मिले। सातवाहन राजाओं ने भूमि और

यहां तक कि गांव भी धार्मिक लाभार्थियों को दान में दिए। साधारण भक्तों ने बाद में इस प्रथा का अनुकरण किया। उस काल के शिलालेखों से पता चलता है कि व्यक्तिगत स्वामित्व में थोड़ी-थोड़ी जमीन होती थी।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित के सामने (✓) अथवा (×) का निशान लगाइए:

- i) महापाषाण युगीन स्मारक नवपाषाण युग के अवशेष हैं। ()
- ii) कुदाल से मोटे अनाज की खेती नहीं की जा सकती है। ()
- iii) तमिल क्षेत्र की नदी घाटियों में सिंचाई की सुविधाओं की जानकारी नहीं थी। ()
- iv) सामंत मंदिरों को गांव दान में देते थे। ()
- v) दक्खन में व्यक्ति भूमि के स्वामित्व का हकदार नहीं था। ()

2) प्राचीन दक्षिण भारत में कृषि प्रधान गांव की छः विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) दक्खन में कृषि बस्तियों में औजारों और उपकरणों तथा सिंचाई सुविधाओं के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) दक्खन में भूमि स्वामित्व के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

29.5 राजस्व और अधिशेष वसूली

आब का मुख्य स्रोत भूमि राजस्व है। राज्य द्वारा भू-राजस्व की वसूली एक संगठित तंत्र के माध्यम से की जाती थी। इस भाग में हम भू-राजस्व और इसकी वसूली के बारे में चर्चा करेंगे।

29.5.1 कृषि से राजस्व

तमिल साहित्य में सामंतों द्वारा प्राप्त अंशदान का उल्लेख इरै (irai) और तिरै (tirai), दो किस्मों के रूप में किया गया है। इरै अधिक नियमित अंशदान और तिरै, शुल्क-प्रतीत होता है। दुर्भाग्यवश हमारे पास तत्कालीन अभिलेखों से राजस्व वसूली की दर और तरीके के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। राजस्व वसूली के लिए शासकों के भद्र और नम्र व्यवहार करने

उपहारी के वितरण को संभव बनाने के लिए यह आवश्यक था कि केन्द्र में संसाधन एकत्र किए जाते थे। यह केन्द्र महिला का निवास स्थान होता था। केन्द्र से उपहारी का वितरण, पुनर्वितरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। संसाधनों को एकत्र करने के लिए बहुराष्ट्रीय क्षेत्र की लंबे-पट्टे और पेशे बने जाते थे। लंबे में जिस वर्तमान को वे नहीं ले जा सकते थे, उसे वे नष्ट कर देते थे। किसानों की बस्तियों को बना दिया जाता था, श्रमियों की फसलों को नष्ट कर दिया जाता था और समूह बागानों को बनाने भीम में बदल दिया जाता था; उन लंबे के टुकड़ों में से कुछ थे थे। पहाड़ी क्षेत्रों और चारों तरफ के मारवा (MARWA) लंबे को सामग्री द्वारा बस्तियां बनाने के काम में लगाया जाता था। ऐसे लंबे के नष्ट के मात को मारवा लंबेको में पुनर्वितरित किया जाता था और प्राथमिक बस्तिक

29.5.3 वर्तनी में ज्यादािया

तमिल क्षेत्र में कृषक बस्तियों में संसाधन वितरण के कई तरीके विद्यमान थे। यहां हम उपहार द्वारा पुनर्वितरण के महत्वपूर्ण तरीकों का वर्णन करेंगे। उपहार संभवतः संसाधन परिचालन का सबसे अधिक आम तरीका था। प्रत्येक उत्पादनकर्ता अपने उत्पादन का कुछ भाग उन व्यक्तियों को दे देता था, जो कार्य करते थे। बहियां जीवन अथवा वर्तमान को उपहार पुनर्वितरण का साधारण रूप था। लंबे-पट्टे और छायों से पहले और बाद में थोड़ी-थोड़ी दावत दी जाती थी। गरीब गणक और नतीकियां, जो सामग्री की प्रशांसा में गाते और नाचते थे, भरपूर जीवन और पहनने के वस्त्रों की चार में एक दरवार से दूसरे दरवार में भटकते रहते थे। कभी-कभी दावत के अलावा उपहार की वस्तुओं में आयोजित बहियां शराब, शैली वस्त्र तथा स्वर्ण आभूषण भी दिए जाते थे। बहियोग पञ्चरिषियों और थोड़ी-थोड़ी की बहियां अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में गाते और पेशे उपहार में मिलते थे। प्राचीन तमिल क्षेत्र में बहियोगों को गाते दान में देने से बहियोग बस्तियों का आविर्भाव हुआ। समूह और धार्मिकशास्त्री व्यक्तियों के तीन वर्गों द्वारा उपहार के माध्यम से पुनर्वितरण कार्य किया जाता था। ये तीन वर्ग थे कृषक बस्तियों के राजा वेन्दर (Vendar), छोटे सामंत वेलीर (Velir) और समूहशास्त्री कृषक परिवार वेलाहार (Vellahar)।

29.5.2 तमिल क्षेत्र में संसाधनों का अर्जन और वितरण के तरीके

तमिल क्षेत्र में कृषक बस्तियों में संसाधन वितरण के कई तरीके विद्यमान थे। यहां हम उपहार द्वारा पुनर्वितरण के महत्वपूर्ण तरीकों का वर्णन करेंगे। उपहार संभवतः संसाधन परिचालन का सबसे अधिक आम तरीका था। प्रत्येक उत्पादनकर्ता अपने उत्पादन का कुछ भाग उन व्यक्तियों को दे देता था, जो कार्य करते थे। बहियां जीवन अथवा वर्तमान को उपहार पुनर्वितरण का साधारण रूप था। लंबे-पट्टे और छायों से पहले और बाद में थोड़ी-थोड़ी दावत दी जाती थी। गरीब गणक और नतीकियां, जो सामग्री की प्रशांसा में गाते और नाचते थे, भरपूर जीवन और पहनने के वस्त्रों की चार में एक दरवार से दूसरे दरवार में भटकते रहते थे। कभी-कभी दावत के अलावा उपहार की वस्तुओं में आयोजित बहियां शराब, शैली वस्त्र तथा स्वर्ण आभूषण भी दिए जाते थे। बहियोग पञ्चरिषियों और थोड़ी-थोड़ी की बहियां अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में गाते और पेशे उपहार में मिलते थे। प्राचीन तमिल क्षेत्र में बहियोगों को गाते दान में देने से बहियोग बस्तियों का आविर्भाव हुआ। समूह और धार्मिकशास्त्री व्यक्तियों के तीन वर्गों द्वारा उपहार के माध्यम से पुनर्वितरण कार्य किया जाता था। ये तीन वर्ग थे कृषक बस्तियों के राजा वेन्दर (Vendar), छोटे सामंत वेलीर (Velir) और समूहशास्त्री कृषक परिवार वेलाहार (Vellahar)।

तमिल क्षेत्र में कृषक बस्तियों में संसाधन वितरण के कई तरीके विद्यमान थे। यहां हम उपहार द्वारा पुनर्वितरण के महत्वपूर्ण तरीकों का वर्णन करेंगे। उपहार संभवतः संसाधन परिचालन का सबसे अधिक आम तरीका था। प्रत्येक उत्पादनकर्ता अपने उत्पादन का कुछ भाग उन व्यक्तियों को दे देता था, जो कार्य करते थे। बहियां जीवन अथवा वर्तमान को उपहार पुनर्वितरण का साधारण रूप था। लंबे-पट्टे और छायों से पहले और बाद में थोड़ी-थोड़ी दावत दी जाती थी। गरीब गणक और नतीकियां, जो सामग्री की प्रशांसा में गाते और नाचते थे, भरपूर जीवन और पहनने के वस्त्रों की चार में एक दरवार से दूसरे दरवार में भटकते रहते थे। कभी-कभी दावत के अलावा उपहार की वस्तुओं में आयोजित बहियां शराब, शैली वस्त्र तथा स्वर्ण आभूषण भी दिए जाते थे। बहियोग पञ्चरिषियों और थोड़ी-थोड़ी की बहियां अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में गाते और पेशे उपहार में मिलते थे। प्राचीन तमिल क्षेत्र में बहियोगों को गाते दान में देने से बहियोग बस्तियों का आविर्भाव हुआ। समूह और धार्मिकशास्त्री व्यक्तियों के तीन वर्गों द्वारा उपहार के माध्यम से पुनर्वितरण कार्य किया जाता था। ये तीन वर्ग थे कृषक बस्तियों के राजा वेन्दर (Vendar), छोटे सामंत वेलीर (Velir) और समूहशास्त्री कृषक परिवार वेलाहार (Vellahar)।

- सीनिकों को राजस्व वर्सूली का अधिकार मिला हुआ था।
 - साधारणतया जब सीनिक गांव में आते थे तो उन्हें ग्रामवासियों को धन या वस्त्र देने पड़ती थी; अथवा
- इससे यह स्पष्ट होता है कि:
- (1) किसी प्रकार का शर्लक वर्सूली के लिए राजा के सीनिकों के प्रवेश के विरुद्ध;
 - (2) गांव से किसी भी वस्तु को अपने अधिकार में लेने के लिए शाही अधिकारियों के विरुद्ध।
- इन शब्दों के असली महत्व या राज्य द्वारा वर्सूली गढ़ राजस्व की राशि के बारे में कुछ मतलब नहीं है। बौद्ध संघों और बहियोगों को ग्रामदान में दान किए गए गांवों का राजस्व भी शामिल था। ऐसे मामलों में कुछ छुट्टों का उल्लेख है। ये छुट्टें निम्नलिखित थीं:
- इस संबंध में भी अधिक स्पष्ट ब्यौरे नहीं हैं। हम करों के कुछ नामों जैसे कर, देण, भय, भाग के बारे में सुनते हैं।
- साम्राज्यों के शासनकाल में देखने में राजस्व प्रणाली संभवतः अधिक नियमित थी, परन्तु इन संबंध में भी अधिक स्पष्ट ब्यौरे नहीं हैं। हम करों के कुछ नामों जैसे कर, देण, भय, भाग के बारे में सुनते हैं।
- इससे यह प्रतीत होता है कि किसानों से अपना हिस्सा लेने में धार्मिकारियों द्वारा जोर-जबरदस्ती और ज्यादाियां की जाती थीं।

धार्मिक अनुष्ठान के लिए उपहार और पारिश्रमिक स्वरूप ब्राह्मण पुजारियों को दिया जाता था। किसानों की असुरक्षित दुर्दशा और जिस प्रकार उन्हें आतंकित किया जाता था और उनका शोषण होता था, इसका प्रमाण संगम साहित्य के कई गीतों में मिलता है।

गरीबों और किसानों पर की गई इन सभी ज्यादतियों के बावजूद, युद्ध को प्रभावशाली उत्साहपूर्वक मनाया जाता था। इसे एक प्रथा का रूप दिया गया था। युद्ध पूजा का प्रचार उन श्रेष्ठियों के साहस की प्रशंसा से किया जाता था, जिनका स्मारक पत्थर उपासना की वस्तु या पूजा की वस्तु बनाए गए थे। पण (Pana) गायक सामंतों और उसके सैनिकों के वीरोचित गुणगान करते थे। संसाधन की कमी के कारण लूट का माल हथियाना जरूरी था। कभी-कभी ज्यादतियों के फलस्वरूप संसाधन नष्ट हो जाते थे। सामंत के स्तर पर पुनर्वितरण या तंत्र अपने आप में परस्पर विरोधी था।

बोध प्रश्न 3

- 1) निम्नलिखित पर सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए:
 - i) इरै और तिरै राजस्व की दो मर्दें थीं, जिन्हें नकद किया जाता था। ()
 - ii) गोलमिक (gaulmikas) सातवाहन के ग्रामीण प्रशासक थे। ()
 - iii) भाट और नृतक पशुओं और भूमि का उपहार पाने के लिए एक दरबार से दूसरे दरबार में घूमते रहते थे। ()
 - iv) प्राचीन तमिल क्षेत्र में लूट-पाट की कार्रवाई एक प्रथा बन गई थी। ()
- 2) प्राचीन दक्षिण भारत में लूट-पाट युद्धों के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।
.....
.....
.....
.....
.....
- 3) प्रारंभिक तमिल क्षेत्र में अधिशेष के विनियोजन में ज्यादतियों के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।
.....
.....
.....
.....
.....

29.6 सामाजिक संगठन

इस भाग में हम तमिलहम और दक्खन के क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक समूहों और प्रथाओं के बारे में पढ़ेंगे। आइए सबसे पहले तमिल क्षेत्र के बारे में चर्चा करें।

29.6.1 तमिल समाज

प्राचीन तमिलहम में समाज का स्वरूप मूलतः आदिवासी था। उसमें नातेदारी संगठन, गणचिन्ह पूजा और जनजाति पूजा एवं प्रथाएं विद्यमान थीं। सभी तिणों या आर्थिक क्षेत्रों में जनजाति रीति-रिवाज विद्यमान थे, परन्तु प्रमुखतया कृषि क्षेत्रों में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगे। इन क्षेत्रों में सामाजिक संगठन जटिल हो रहे थे। यह धीरे-धीरे पुराने नातेदारी संबंधों के टूटने और वैदिक वर्ण अपनाने के कारण हो रहा था। सामाजिक वर्ग भेद या विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच असमानताएं उभर रही थीं और "उच्च" और "निम्न" के बीच बहुत अंतर हो गया। भूमिधारी वेल्लालर और वेल्लाल किसान कृषक बस्तियों में मूल उत्पादक वर्ग बन गए थे।

दस्तकारी विशेषज्ञता कृषि उत्पादन की केवल प्रारंभिक और परक थी। हम लोहारों (कोल्लन) और बढ़ई (तच्चन) के बारे में सुनते हैं। विस्तृत परिवार उनकी उत्पादन इकाई थी। बनाई उनका अन्य व्यवसाय था।

ग्रामवासियों की धार्मिक पूजाएं और उपासना प्रथाएं पुराने आदिवासी धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार थी जिनसे धार्मिक अनुष्ठान वर्गों का होना आवश्यक था जैसे वेलन वेटुबन आदि। वे अध्यात्मिक तत्वों और उनके प्रबंध की देखभाल करते थे। परन्तु समाज "पुजारी प्रधान" नहीं था। वहां पर्याप्त अधिशेष था, जिसके फलस्वरूप व्यापारी वर्ग समृद्धिशाली था। वे जिस वस्तु का व्यापार करते थे, उसके नाम से जाने जाते थे। इस प्रकार हम उमणन (नमक का व्यापारी), कुलवाणिकन (अनाज का व्यापारी), अरुवैवाणिकन (वस्त्रों का व्यापारी), पोन्वाणिकन (स्वर्ण व्यापारी) आदि के बारे में सुनते हैं। बाद में ये व्यापारी वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत आ गए। उस समय तक वर्ण व्यवस्था का सुदूर दक्षिण में काफी प्रभाव हो गया था। तमिल व्याकरण की प्राचीनतम उपलब्ध कृति तोलकोप्पयम में यह वर्णन मिलता है कि तमिल समाज चार वर्णों में बंटा हुआ था। इस कृति के अनुसार, व्यापारी वैश्य वर्ग के थे। दूर दक्षिण में, विशेष कर मदुरै और तिरुनेलवेल्लि क्षेत्रों में पांडुय देश में इन व्यापारियों को कुछ असनातनी धार्मिक वर्गों से जुड़ा हुआ पाया गया है। उन्हें इस क्षेत्र के प्रारंभिक शिलालेखों में जैन और बौद्ध धर्म तपस्वियों के गुफा निवासदाता के रूप में वर्णित किया गया है। असनातनी सम्प्रदाय के योगियों की उपस्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि उस क्षेत्र में उनके कुछ अनुयायी थे।

यह स्वाभाविक है कि प्रमुख वर्गों ने मरुतम के कृषक क्षेत्रों में अपने केन्द्र इस कारण से स्थापित किए कि केवल वहां ही गैर-उत्पादनकर्ता वर्गों को आजीविका के लिए आवश्यक अधिशेष संसाधन उपलब्ध थे। कृषि क्षेत्र मरुतम के सामंतों ने यह दावा करना शुरू किया कि वे सूर्यवंश या चन्द्रवंश के वंशज हैं, जैसा कि उत्तर भारत के क्षत्रिय हैं।

सामंत कृषक बस्तियों में किसानों का शोषण करते थे और समीपवर्ती क्षेत्रों के मरवा वर्गों की सहायता से अधिशेष वसूल करते थे। वे बहुधा गांवों को लूटते थे। संगम कविताओं में नायकों के युद्ध और युद्धोचित गुणों का वर्णन है। पाण गायकों और विरालि नृतकों के कार्य नायकों और उनकी वीरता का बखान करना था। इस प्रकार, हम देखते हैं कि प्राचीन तमिलहम् के कृषक मरुतम क्षेत्र में समाज में प्राचीन जनजाति प्रथाओं और वैदिक आदर्शों तथा सिद्धांतों का सम्मिश्रण है।

29.6.2 दक्खन में समाज

दक्खन में सभी तीनों धार्मिक व्यवस्थाओं अर्थात् सनातन धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के काफी अनुयायी थे।

सातवाहन शासकों ने वैदिक कर्मकांड को प्रश्रय दिया। उदाहरण के लिए, सातवाहन परिवार की रानी, नागनिका कई वैदिक धार्मिक अनुष्ठान करती थी और वैदिक राज्यों में उल्लिखित उपहार देती थी। जैन धर्म के उस क्षेत्र में कुछ अनुयायी थे और इस अवधि में दिगम्बर सम्प्रदाय के कुछ प्रसिद्ध उपदेशक भी हुए। कोडकुडाचार्य, मूल संघ के संस्थापक, जो दक्षिण में लोकप्रिय हुए, इसी क्षेत्र में रहते थे। बौद्ध धर्म लोकप्रिय आंदोलन के रूप में फैला और इस धर्म में बहुत बड़ी संख्या में इसके अनुयायी बने। इनमें अधिकांश व्यापारी और दस्तकार थे। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय ने भी काफी लोकप्रियता प्राप्त की। शासक वर्ग, धनी व्यक्तियों और कामगारों ने विहारों और स्तूपों को उदारतापूर्वक दान दिया। महायान मत के भाष्याकार आचार्य नागार्जुन के दक्षिण में बहुत ख्याति अर्जित की। कुछ विदेशी तत्वों जैसे यवनों, शकों और पल्लवों ने भी या तो वैदिक धर्म या फिर बौद्ध धर्म अपनाया। इस प्रकार इस काल में समाज में विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों का सम्मिश्रण देखा गया है। विदेशी वंशों के शासक अपने शिलालेखों में प्राकृत का प्रयोग करते थे और बाद में संस्कृत का प्रयोग करने लगे तथा यहां तक कि भारतीय नाम और परिवार भी ग्रहण किए।

समाज का चार वर्गों में विभाजन का सिद्धांत दक्खन में सर्वविदित था। लोगों को उनके व्यवसाय के अनुसार संबोधित करने की प्रथा लोक प्रचलित थी। हलक (हलवाहा), गोलिक (गड़रिया), वधकी (बढ़ई), कोलिक (बुनकर) तिलपिसक (तेली) और कमार (धातुकर्मी) कुछ ऐसे ही व्यावसायिक स्तर थे। जाति अनुशासन बहुत ही लचीले थे। यह विदेशी तत्वों के साथ सम्मिश्रण के कारण हुआ। संयुक्त परिवार प्रणाली समाज की सामान्य विशेषता थी। सामाजिक जीवन में पुरुष का प्रभुत्व स्पष्टतः प्रमाणित था। कभी-कभी महिलाएं अपने पति की उपाधियां स्वीकार करते हुए पाई गईं, जैसे भोजिकी, महारथिनी, महासेनापतिनी आदि।

29.7 नए तत्व और सामाजिक परिवर्तन

दक्खन में पहली शताब्दी ई. के दौरान कृषिक व्यवस्था में कुछ नए तत्व पहली बार दिखाई दिए। सातवाहन और क्षत्रपा शासकों ने धार्मिक लाभार्थियों जैसे बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भूमि-खंड और यहां तक कि पूरे-पूरे गांव दान में दिए। भूमि के साथ-साथ, गांव से राजस्व वसूल करने के अधिकार तथा खदानों पर अधिकार जैसे कुछ आर्थिक विशेषाधिकार भी अनुदानग्राहियों को हस्तांतरित किए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि दान में किसानों पर कुछ वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार भी शामिल थे। शाही अनुदान से ग्रामवासी प्रशासनिक अधिकारियों और सैनिकों को ग्रामों में उनके दौरे के समय दिए जाने वाले अनिवार्य भुगतान से मुक्त किए गए। व्यक्तियों को दिए गए पिछले कई अनुदान अस्थायी थे। परन्तु अब उन्हें स्थायी बनाने की पृवृत्ति उभरने लगी थी।

शासकों द्वारा धार्मिक लाभार्थियों को स्वीकृत विशेषाधिकार और छूट तथा भूमि पर स्थायी अधिकार ने अत्यन्त शक्तिशाली स्थिति प्रदान की। कृषि क्षेत्र में ये नए विकास कार्यों से भूमि व्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था में गंभीर और दूरगामी परिवर्तन आए।

पहला, धार्मिक लाभार्थियों को नई आर्थिक और प्रशासनिक विशेषाधिकार सहित जो गांव मिले थे, उन गांवों में वे शक्तिशाली प्राधिकारी बन गए और वे उन पर अध्यात्मिक नियंत्रण भी रखते थे।

दूसरा, भिक्षुओं और पुजारियों को गांव देने से गैर-काश्तकार भूमि स्वामियों की एक श्रेणी बनी। बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण पुजारी स्वयं खेती नहीं करते थे। उन्हें अपनी भूमि पर काम करने के लिए अन्य लोगों को लगाना पड़ता था। इस प्रकार असली खेतिहर भूमि और उसके उत्पाद से पृथक हो गया।

तीसरा, इस किस्म का निजी स्वामित्व पहले समाप्त किया गया। वनों, चारागाहों, मत्स्य क्षेत्रों और जलाशयों पर सामूहिक अधिकार था।

चौथा, लाभार्थियों का अधिकार न केवल भूमि पर ही था, बल्कि उन किसानों पर भी था जो खेती में काम करते थे। इसके फलस्वरूप किसानों के अधिकार क्षीण हो गए और वे दास बन गए।

दक्खन में विद्यमान ये परिवर्तन अनुवर्ती शताब्दियों में अन्यत्र भी प्रचलित हुए। अंत में, भूमि देने की प्रथा से अन्य विशेषताओं के साथ-साथ ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनी जिसे कुछ विद्वानों ने "भारतीय सामंतवाद" की संज्ञा दी है।

बौद्ध प्रश्न 4

1. दिए गए स्थान में सही (✓) और गलत (×) का निशान लगाइए:

- क) चारागाहों में सामाजिक जटिलता दिखाई देने लगी। ()
- ख) तोलकप्पियम के अनुसार, व्यापारी क्षत्रिय वर्ग थे। ()
- ग) मदुरै और तिरुनेलवेल्लि क्षेत्रों में जैन और बौद्धों जैसे असनातनी सम्प्रदायों के योगियों को गुफा निवास दान में दिए गए। ()
- घ) कोंड कुंडाचार्य दिगम्बर सम्प्रदाय के महासंघ के संस्थापक थे। ()
- च) समाज का चार वर्गों में विभाजन का मत दक्खन में सुविदित था। ()

2) तमिल क्षेत्र में दस्तकारी वर्गों के बारे में तीन पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

3) दक्खन में धार्मिक वर्गों को सातवाहन भूमिदान के बारे में सात पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

4) बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मण पुजारियों की भूमि वान के परिणामों के बारे में एक पैरा लिखिए।

29.8 सारांश

इस इकाई में हमने प्रायद्वीपीय भारत के कृषि बस्तियों और कृषक समाज के कई पहलुओं पर चर्चा की है। इस इकाई में आपने निम्नलिखित के बारे में पढ़ा है:

- तमिल क्षेत्र के विभिन्न उपक्षेत्रों के आर्थिक कार्यकलाप
- कृषि बस्तियों का प्रसार
- भूमि के स्वामित्व की समस्या
- संसाधनों का संग्रहण और वितरण
- तमिल क्षेत्र और दक्खन में सामाजिक संगठन की मुख्य विशेषताएं
- वे नए परिवर्तन जो ईस्वी सदी की शुरु की शताब्दियों में कृषि व्यवस्था में लागू किए गए थे और इन तत्वों द्वारा लाए गए परिवर्तन।

29.9 शब्दावली

पाना: तमिल क्षेत्र के प्राचीन गायक, जो सामंतों की प्रशंसा में गीत गाते थे।

कर्त्तन और वहन खेती: कृषि का अपरिष्कृत तरीका। पहाड़ी ढलानों में पेड़ों और झाड़ियों को काटा जाता है और उन्हें जलाया जाता है। इस प्रकार, जमीन तैयार की जाती है और बीज बोया जाता है।

भूम खेती: खेती का एक तरीका, जिसमें खेती का स्थान समय-समय पर बदला जाता है। एक ही स्थान को बार-बार उपयोग करके उनकी उर्वरता को नष्ट होने से बचाने के लिए ऐसा किया जाता है।

तिनाई: प्रारंभिक तमिल क्षेत्र में भूमि के भू-आकृतिक विभाजन के लिए प्रयुक्त प्रजातिगत शब्द।

29.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (✓) अथवा (×) का निशान लगाना:

क) ✓

ख) ✗

ग) ✓

घ) ✓

2) आपको अपने उत्तर में कुरिंजी, मुल्लै आदि के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.2 देखिए।

3) आपको चारागाहों और पशु-पालन के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) ✗

ii) ✗

iii) ✗

iv) ✗

v) ✗

2) भाग 29.3 देखिए।

3) आपको हल-फाल, दराती, फावड़ा आदि जैसे औजारों तथा तालाब एवं कुएं से सिंचाई के बारे में लिखना चाहिए। उप-भाग 29.3.2 देखिए।

4) आपको वेल्लाला, गहपति आदि और उनके अधिकारों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.4 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) i) ✗

ii) ✓

iii) ✗

iv) ✓

2) आपको कृषिक क्षेत्रों पर आक्रमण के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.5.3 देखिए।

3) आपको किसानों पर हुई ज्यादतियों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.5.3 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) क) ✗

ख) ✗

ग) ✓

घ) ✓

च) ✓

2) भाग 29.6 का दूसरा पैरा देखिए।

3) आपको धार्मिक तथा अन्य प्रयोजनों के लिए दान में दी गई भूमि और गाँवों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.7 का पहला पैरा देखिए।

4) आपको धार्मिक लाभार्थियों के दान द्वारा कृषि क्षेत्र में आए परिवर्तनों से बारे में लिखना चाहिए। भाग 2.7 के दूसरे पैरे से देखिए।

इकाई 30 व्यापार और शहरी केन्द्रों का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

- 30.0 उद्देश्य
- 30.1 प्रस्तावना
- 30.2 व्यापार के प्रकार
 - 30.2.1 स्थानीय व्यापार
 - 30.2.2 दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार
 - 30.2.3 दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार
- 30.3 वाणिज्यिक संगठनों के पहलू
- 30.4 विनिमय सुविधाएं
- 30.5 विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के
 - 30.5.1 स्थानीय सिक्के
 - 30.5.2 रोमन सिक्के
- 30.6 व्यापार से राजस्व
- 30.7 तोल और माप
- 30.8 शहरी केन्द्र
- 30.9 समाज पर व्यापार और शहरी केन्द्रों का प्रभाव
- 30.10 सारांश
- 30.11 शब्दावली
- 30.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य 200 ई. पू. से 400 ई. तक दक्षिण भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के विभिन्न आयामों पर संक्षेप में चर्चा करना है। इस इकाई में सातवाहन राज्य और चेरों, चोलों और पांड्याओं के तथा कम महत्वपूर्ण सामंतों के अधीन सुदूर दक्षिण के क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- विनिमय का स्वरूप जिससे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत में विभिन्न स्तरों पर व्यापार का स्वरूप निर्धारित हुआ;
- परिवहन और संचार सुविधाओं;
- व्यापार में विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के;
- व्यापार में राजनीतिक प्राधिकारियों के हितों;
- दक्षिण भारत में शहरी केन्द्रों; और
- प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज पर व्यापार और शहरीकरण के प्रभाव के बारे में जान सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

इकाई 29 में आपने कृषिक बस्तियों और कृषिक समाज के बारे में पढ़ा है। इस इकाई में हम व्यापार और शहरीकरण के रूप में अर्थव्यवस्था के अन्य ऐसे पहलुओं पर चर्चा करेंगे जिनसे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सहायता मिली।

प्रायद्वीपीय भारत में, व्यापार की वृद्धि और शहरी केन्द्रों का उद्भव कोई पृथक घटना नहीं थी, बल्कि उन अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों से भी बहुत अधिक जुड़े हुए थे जो उस समय क्षेत्र में हो रहे थे। वे परिवर्तन निम्नलिखित कारकों से उत्पन्न हुए थे :

- प्रमुख नदी घाटियों में कृषि की प्रगति द्वारा उत्पन्न प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न भागों में समाज के अंदर परिवर्तन। कुछ हद तक यह महाद्वीपीय महापाषाणकालीन संस्कृति (देखिए इकाई 29) की लौह प्रौद्योगिकी तथा सिंचाई से जुड़ी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हिस्सों में कृषि उत्पाद अधिशेष मात्रा में उपलब्ध थे।

!!!) दूरस्थ समझी मार्ग व्यापार

!!) दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

i) स्थानीय

दीन स्तरों की पहचान कर सकते हैं :

मार्ग से सम्पर्क बनाए गए और आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त की गईं। इस प्रकार, हम व्यापार के को मार्ग अन्य देशों तथा संस्कृतियों से भी हुई। उन सुदूरवर्ती देशों द्वारा स्थल मार्ग या समझी उपलब्ध कुछ वस्तुओं की मार्ग उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों में हुई और यहाँ तक इन वस्तुओं का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विनिमय संबंध उभरे। दक्षिण में कृषि क्षेत्रों तथा तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार की पारस्परिक निर्भरता क्षेत्र इमारती लकड़ी और मसालों आदि में समृद्ध थे परन्तु खाद्यान्नों और नमक के लिए उन्हें होता था परन्तु चावल और प्रमुख शोजन धान उत्पादक क्षेत्रों से लगाना पड़ता था। पहली निर्भर रहना पड़ता था। तटीय क्षेत्रों में नमक और मछली का उत्पादन बढ़ते अधिक मात्रा में क्षेत्र खाद्यान्न और गन्ना पैदा करते थे, किन्तु नमक और मछली के लिए उन्हें तटीय क्षेत्रों पर निर्भर न किसी ऐसी वस्तु की कमी होती थी जो उनके समाज के लिए आवश्यक थी। कृषि क्षेत्रों की वस्तुओं से किसी वस्तु का विनिमय करना होता था। साथ ही इनमें से प्रत्येक क्षेत्र आपने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और उनके उत्पादों के बारे में पता है। प्रत्येक क्षेत्र को अन्य

30.2 व्यापार के प्रकार

- व्यापार तथा शहरीकरण द्वारा उत्पन्न आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन।
- शहरी केन्द्र, और
- व्यापार से राजस्व,
- विनिमय का माध्यम,
- परिवहन, भंडारण और नौवहन,
- श्रमियों का संगठन,
- स्थानीय लेन-देन और दूरस्थ व्यापार में विनिमय तंत्र,

अध्ययन किया जा सकता है :

व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन हुए।

परिवर्तन आर्थिक सुस्पष्ट थे। शुरु में सुदूर दक्षिण में परिवर्तन धीरे-धीरे और सीमित क्षेत्र में ज्यों की त्यों बनी रही। दूसरा, दक्खन और मध्य दक्षिण में दक्खन के भिन्न-भिन्न भागों में रूप से प्रभावित नहीं हुआ। कुछ ऐसे स्थान थे, या ऐसे स्थान बने रहे जिनमें मछली संस्कृति फिर भी यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इन परिवर्तनों द्वारा भारत का प्रत्येक भाग समान भिन्न-भिन्न दक्षता की आवश्यकता हुई।

मिट्टी के बर्तन, मनके बरताना, शीशे का काम, वस्त्रों की बुनाई - इन सभी के लिए समाज के ऊंचे सदस्यों की आवश्यकता हुई। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार के प्राणि जड़ी, जिसके फलस्वरूप स्थानीय विनिमय के लिए या दूरस्थ व्यापार के लिए इन सभी में फिर दस्तकारी विशेषज्ञता या दस्तकारी की मढ़ी के उत्पादन में दक्षता की

पिता।

● पहली सदी ई.पू. के आसपास पश्चिम के रोमन विश्व में भारतीय सामान की मांग बढ़ी के निकटतम सम्पर्क में आए। इससे व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि को प्रोत्साहन और इसमें एक और कारण जुड़ा जिससे बर्तों के सौदागार तथा जहाज प्रायद्वीपीय भारत

की विनिमय प्रणाली और नेटवर्क में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसके अलावा, समुद्र तट के साथ सम्पर्क भी थे। इस प्रकार प्रायद्वीपीय भारत में पहले इसका प्रमाण अर्थशास्त्र में दक्षिणी मार्ग (दक्षिण मध्य) के वाशों के वर्णन मिलते हैं।

● प्रायद्वीपीय भारत में मौर्य-राज्य के विस्तार के फलस्वरूप उत्तर के साथ अधिक सम्पर्क बना तथा व्यापारियों, सौदागारों तथा अन्य व्यक्तियों का आर्थिक आवागमन हुआ।

30.2.1 स्थानीय व्यापार

स्थानीय विनिमय के संदर्भ में लेन-देन का सबसे सामान्य तरीका वस्तु विनिमय था। वस्तु विनिमय की अधिकांश वस्तुएं तत्कालिक उपभोग की थीं। सुदूर दक्षिण में वस्तु विनिमय की नियमित वस्तुएं नमक, मछली, धान, दूध उत्पाद, जड़ें, मृग मांस, शहद और ताड़ी थी। नमक का विनिमय धान से होता था, धान का विनिमय दूध, दही और घी से होता था, मछलें तथा शराब के लिए शहद दिया जाता था, मृग मांस और ताड़ी के लिए चावल पपड़ियां और गन्ना दिया जाता था। अत्यन्त दुर्लभ, विलासिता की वस्तुएं जैसे मोती तथा हाथी दांत भी वस्तु विनिमय की मढ़ें थीं। वे भी उपभोग की वस्तुओं जैसे चावल, मछली, ताड़ी आदि के लिए दी जाती थीं।

तमिल दक्षिण में वस्तु विनिमय प्रणाली में ऋण लेने की प्रथा प्रचलित नहीं थी। किसी वस्तु की निश्चित राशि का ऋण लिया जा सकता था और बाद में उसी प्रकार तथा उसी मात्रा में वही वस्तु लौटा दी जाती थी। यह प्रथा कुरीटिरपई कहलाती थी।

विनिमय दर निश्चित नहीं थी। वस्तुओं की कीमत केवल मोल-तोल से ही तय की जाती थी। धान और नमक केवल दो वस्तुएं ही ऐसी थीं जिनके लिए सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निश्चित विनिमय दर थी। धान की समान मात्रा के बराबर नमक दिया जाता था।

सातवाहन शासन के अधीन दक्खन में सिक्कों का आम प्रचलन था। इसपर भी वस्तु विनिमय का प्रचलन जारी था। मिट्टी के बर्तन, पान, खिलौने और ट्रिक्लेट जैसी दस्तकारी उत्पाद ग्रामीण क्षेत्रों में विनिमय वस्तुएं थीं।

सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं :

- i) विनिमय की अधिकांश मढ़ें उपभोग की वस्तुएं थीं।
- ii) विनिमय लाभोन्मुखी नहीं था।
- iii) उत्पादन की तरह वितरण भी आजीविका का साधन था।

30.2.2 दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

भारत के उत्तरी और दक्षिणी भाग के बीच विभिन्न क्षेत्रों में सम्पर्क यदि काफी प्राचीन नहीं रहा हो तब भी वह कम से कम चौथी शताब्दी ई.पू. से तो हो ही सकता है। विंध्याचल पर्वत श्रेणियों के दक्षिण में उस क्षेत्र के जो भी संसाधन थे, उत्तर में ज्ञात थे। प्राचीन बौद्ध साहित्य में जिस मार्ग का हवाला मिलता है, वह गंगा की घाटी से गोदावरी की घाटी में जाता था। यह दक्षिण पथ के नाम से जाना जाता था। अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य ने इस दक्षिणी मार्ग के लाभों के बारे में लिखा है। कौटिल्य के अनुसार, दक्षिण राज्य क्षेत्रों में शंखों, हीरों, जवाहरातों, रत्न-मणियों और स्वर्ण विपुल मात्रा में था। इसके अलावा, ये मार्ग उन क्षेत्रों से होकर जाता था, जो समृद्ध खनिज पदार्थों और मूल्यवान वस्तुओं से भरपूर था। उनके कथनानुसार उस समय इस मार्ग से बहुत से लोगों का बार-बार आना-जाना था। वह मार्ग दक्षिण के प्रतिस्थान नगर सहित वहां के बहुत से केन्द्रों से होकर जाता था। प्रतिस्थान नगर बाद में सातवाहन राजाओं की राजधानी बनो थी। इस उत्तर-दक्षिण की अधिकांश मढ़ें विलास की वस्तुएं थीं जैसे मोती, रत्नमणि और स्वर्ण। उत्तर और दक्षिण के बीच उत्तम किस्मों के वस्त्रों का व्यापार भी होता था। संभवतः श्रेष्ठ कोटि का रेशम कर्लिंग से आता था। इस महीन रेशम का नाम कर्लिंग था, स्पष्ट है कि इस रेशम का उस स्थान के नाम पर था, जहां इसका उत्पादन होता था। वह एक ऐसी मढ़ थी, जिसे तमिल के सामंत पसंद करते थे। जो भाट, सामंतों की प्रशंसा का गुणगान करते थे, उन्हें बेशकीमती उपहार के रूप में कर्लिंग रेशम मिलता था। उत्तर कृष्ण मृद्भांड (एन.बी.पी.) नाम के सुन्दर किस्म के मिट्टी के बर्तन सुदूर दक्षिण में लोकप्रिय थे। पुरातत्वविदों ने खुदाई में पांड्या वंश के प्रारंभ के राज्यों में कुछ उत्तर कृष्ण मृद्भांडों को निकाला है।

उपर्युक्त मढ़ों के अलावा, दक्षिण में मिट्टी के टूटे बर्तनों और मसालों की कुछ मढ़ें भी मिली हैं। इनमें जटा मांसी और मालावथुम (मरहम बनाने के लिए जड़ी-बूटी) भी शामिल थे। इन मढ़ों को पश्चिमी देशों में जहाज़ से ले जाया जाता था।

उत्तरी भारत के व्यापारी बहुत बड़ी मात्रा में चांदी के आहत सिक्के भी लाते थे। दक्षिण के भिन्न-भिन्न स्थानों से खुदाई के दौरान बहुत बड़ी मात्रा में ये सिक्के पाए गए। ये उत्तर और दक्षिण के बीच वाणिज्यिक सम्पर्क के प्रमाण हैं। उत्तर भारत के साथ दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था और इस व्यापार का लाभ केवल शासक वर्ग और उनके व्यक्तियों को ही होता था।

30.2.3 दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार

भारतीय वस्तुएं जैसे मसाले, रत्न-मणियों, इमारती लकड़ी, हाथी-दांत और कई अन्य वस्तुओं की मांग पश्चिमी देशों में बहुत अधिक थी। इन वस्तुओं का मुख्य स्रोत दक्षिण भारत था। प्रारंभिक काल से ये वस्तुएं पश्चिमी देशों को समुद्री मार्ग से जाती थीं। रोमन विश्व से सीधा व्यापार था, इसमें बहुत बड़े पैमाने पर लेन-देन होता था और इससे लाभ भी बहुत ज्यादा होता था। हमारे पास इसके प्रमाण लगभग पहली शताब्दी ई.पू. से हैं और यह प्रायद्वीपीय भारत की अर्थव्यवस्था तथा समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस प्रायद्वीपीय भारत से रोमन के वाणिज्यिक सम्पर्क की दो अवस्थाओं का उल्लेख करेंगे।

- i) प्रथम अवस्था में, बिचौलिए के रूप में अरब देश।
- ii) दूसरी अवस्था में, मानसूनी हवाओं के ज्ञान के फलस्वरूप सीधा सम्पर्क स्थापित किया गया था।

काफी समय तक अरब सागर में नौवहन तट के साथ-साथ होता था। यह बहुत कठिन और खर्चीला था। अरब देशों ने ईस्वी सदी शुरू होने से पहले समुद्र को मुख्य मार्ग बनाते हुए भारत के साथ वाणिज्यिक संबंध बना लिए थे। अरब देशों की भौगोलिक स्थिति पूरब पश्चिम के व्यापार में उनकी एकाधिकार की स्थिति बनाने के लिए बहुत सुविधाजनक थी। उन्हें अरब सागर में पवन प्रणालियों का भी कुछ ज्ञान था उन्होंने इस व्यापार रहस्य के रूप में गोपनीय रखा था। इस प्रकार, अरब देशों ने बिचौलिए का काम किया तथा प्रायद्वीपीय भारत से व्यापार में काफी लाभ अर्जित किया था।

मानसूनी हवाओं की "खोज" से जिसका श्रेय हिप्पालुस नाम के नाविक को है, रोमनों द्वारा भारत के साथ सीधा संबंध स्थापित हुआ। इससे रोमन और प्रायद्वीप भारत के बीच व्यापार में वृद्धि का सूत्रपात हुआ। रोमन अपना सामान भारतीय बंदरगाहों में लाते थे जिनमें कच्चा माल और तैयार उत्पाद, दोनों होते थे। कच्चे माल में तांबा, टीन, सीसा, पुखराज, चकमक, शीशा (मनका बनाने के लिए कुछ सामग्री के रूप में) होता था। तैयार उत्पादों में उत्तम ओटि की शराब, सुंदर बनावट के वस्त्र, मनमोहन आभूषण, स्वर्ण और चांदी के सिक्के तथा भिन्न-भिन्न किस्मों के श्रेष्ठ मिट्टी के बर्तन होते थे।

रोमनों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में प्रायद्वीपीय भारत से पश्चिमी देशों को वस्तुएं जहाज में लादी जाती थी। उन्हें हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :

- i) मसाले और औषधीय जड़ी-बूटियां जैसे जट मांसा, मालबाथरूम सिनबार।
- ii) मूल्यवान रत्न, अल्प मूल्य रत्न जैसे बेरिल, ऐगेट (गोमेद), कर्नीलियन, जैस्पर और औनीक्स तथा शंख, माती एवं हाथी-दांत भी।
- iii) इमारती लकड़ी जैसे तेन्दु, सागौन, चंदन की लकड़ी, बांस।
- v) रंगीन सूती वस्त्रों और मलमल की वस्तुएं तथा नील एवं लाख जैसी रंजक सामग्री।

निर्यात की उपर्युक्त वस्तुओं में मनके और सूती वस्त्र तैयार माल होते थे।

भारतीय माल के लिए रोमन अधिकतर सोना देते थे। निर्यात की अधिकांश वस्तुएं स्थानीय रूप से उपलब्ध थीं और भारतीय व्यापारियों द्वारा स्वयं ही दक्खन तथा दक्षिण भारत में सौदे एकत्रित किए जाते थे। उन्हें बंदरगाहों तक लाने के लिए वैगनों और पैकटों में भारवाही पशुओं को काम में लाया जाता था।

यद्यपि दक्खन तथा दक्षिण भारत में भारतीय समुद्री व्यापारी थे परंतु ज्यादातर विदेशी समुद्री व्यापारी ही पश्चिमी देशों को सामान भेजते थे।

दक्षिण भारत के व्यापारिक संबंध श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया से थे। इस व्यापार की महत्वपूर्ण वस्तुएं कुछ मसाले, कैम्फर और चंदन की लकड़ी थी।

संभवतः तमिल मूल के व्यापारी इस व्यापार में पहल करने वाले थे। श्रीलंका के व्यापारी भी तमिलहम आते थे। तमिल ब्राह्मी अक्षरों के शिलालेखों में उनका उल्लेख है जो ईलम (श्रीलंका) से आए थे। परन्तु इस व्यापार के विस्तृत ब्यौरे ज्ञात नहीं हैं।

30.3 वाणिज्यिक संगठनों के पहलू

बहुधा उत्पादक भी थोड़ा-बहुत स्थानीय व्यापार करते थे।

मछली पकड़ने और नमक बनाने का काम पूर्णतः परावटा समुदाय द्वारा किया जाता था। ये समुदाय नेयटाल (तटीय) प्रदेश में रहते थे। इसका उल्लेख संग क्षेत्र में किया गया है और इस प्रकार वे अपना सम्पूर्ण समय इन कार्यों में लगाते थे। इसलिए मछली और नमक के वितरण में भिन्न-भिन्न तरीके अपनाए गए थे।

मछुआरे परिवारों की महिलाओं द्वारा मछलियों समुद्र तट के निकटवर्ती क्षेत्रों में ले जाई जाती थीं। वे ग्रामीण मेलों और अन्य ग्रामीण समागम के स्थानों में दिखाई देती थीं। नमक अनिवार्य वस्तु होने के कारण इसकी मांग सर्वत्र थी। नमक के वितरण का काम अलग दल करता था। नमक के व्यापारियों को तमिलम् में उमाना के रूप में जाना जाता था।

तटीय क्षेत्रों और निकटवर्ती ग्रामों में उमाना होंकर लड़कियां अपने सिर में नमक की गठरियां ले जाती थीं और मुख्य रूप से धान के बदले इसे देती थीं।

भीतरी ग्रामीण क्षेत्रों में नमक उमाना ले जाते थे। नमक के बड़े-बड़े थैले गाड़ियों में ले जाए जाते थे, जिन्हें बैल अथवा गधे खींचते थे। नमक के व्यापारी बड़े-बड़े झुंडों में जाते थे। नमक के ये कारवां उमानवृथ कहलाते थे। वे नमक को स्थानीय उत्पादों के बदले देते थे। इस प्रकार, उमानवृथ क्षेत्र के विभिन्न भागों से सौदे की वस्तुएं एकत्रित कर्ता के रूप में कार्य करते थे।

उमाना अपने परिवार के साथ कारवां में जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार के सदस्यों के अलावा, अन्य कोई संगठन नमक के व्यापारी के रूप में नहीं था, नमक व्यापारियों के अलावा, अनाज (कलावानेकन), कपड़े (अरूवैवानिकन), स्वर्ण (पोन वनिकन), चीनी (पानीटा वनिकन) के व्यापारी थे। इनका वर्णन कुछ योगियों के निवास स्थान दाता के रूप में कुछ प्राचीन गुफाओं के शिलालेखों में मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि वे धनाढ्य थे। उनके व्यापार और संगठन के बारे में कुछ ज्ञान नहीं है। सुदूर दक्षिण में तिरुवेल्लारी के व्यापारियों के संगठन का एक शिलालेख में उल्लेख है।

तिरुवेल्लारी में संगठन के सदस्यों का वर्णन निकामट्टार के रूप में किया गया है, जिसका अर्थ निगम, संघ का सदस्य है।

तमिलम् में व्यापारियों का संगठन एक दुर्लभ बात है। परन्तु दक्खन में व्यापारियों का संघ अथवा एसोसिएशन एक नियमित घटना है। वहां कई कस्बे थे और प्रत्येक कस्बे का संभवतः संघ या निगम होता था। प्रत्येक संघ का एक मुखिया (सेट्टी) था और उसका कार्यालय होता था। व्यापारियों का संघ बैंक के रूप में काम करता था। यह जमा राशि लेता था और धन बाहर कर्ज भी देता था। बुनकरों, कुम्हारों, तेलियों, बांस का काम करने वालों, ठठेरों आदि के संघ थे। इस बात की जानकारी दक्खन के शिलालेखों में मिलती है। परिवार इकाई की अपेक्षा कार्यकारी इकाई के रूप में संघ अधिक सक्षम था। एकता की शक्ति के अलावा, संघ अपने सदस्यों को वित्तीय सहायता सहित सभी प्रकार की सहायता देता था। इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य को ग्राहक ढूँढने की जिम्मेदारी से भी राहत मिलती थी।

इस प्रकार, सातवाहन के अधीन राज्य क्षेत्र में व्यापार के संगठन की प्रणाली अपेक्षाकृत उन्नत थी।

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन दक्षिण भारत में वस्तु विनिमय प्रणाली की तीन विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित कथनों में सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए:

- i) वस्तु विनियम की अधिकांश मदें विलासिता की थीं। ()
- ii) "कुरिएटिटरप्पई" का अर्थ वह वस्तु विनियम है जिसमें किसी वस्तु की निश्चित मात्रा ऋण में ली जाती है और बाद में उसी रूप में तथा उसी मात्रा में वापस की जाती है। ()
- iii) कौटिल्य ने सोचा कि दक्षिणी मार्ग श्रेष्ठ था, क्योंकि यह अन्य मार्गों की अपेक्षा कम खतरनाक था। ()
- iv) दक्षिण भारत पश्चिमी देशों को केवल कच्चे माल का निर्यात करता था और पश्चिमी देशों से तैयार माल का आयात करता था। ()
- v) दक्खन में व्यापारी संघ बैंक के रूप में काम करते थे, जो जमा राशि लेते थे और ऋण पर धन देते थे। ()

2) तमिलहम में नमक कारवां पर तीन पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

4) दक्खन व्यापारी संगठनों के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

30.4 विनियम सुविधाएं

लम्बी दूरी के व्यापार में परिवहन, भंडारण और नौवहन की सुविधाएं, विशेष रूप से, प्रासंगिक हैं जिसमें बहुत बड़े पैमाने में वस्तुओं को ले जाने की समस्या होती है। सुदूर दक्षिण में भिर्च, धान और नमक को ले जाने की समस्या थी जिन्हें बहुत बड़ी मात्रा में ले जाना होता था। पश्चिमी देशों से पश्चिमी दक्खन में इमारती लकड़ी की भी बहुत भारी मांग थी। भारवाही पशु और ठेले अंतर्देशीय परिवहन के लिए प्रयुक्त किए जाते थे।

तमिलम में कई रास्ते थे, जो नदी घाटियों में भीतरी बस्तियों, बंदरगाहों और राजधानियों को जोड़ते थे। ऐसा ही एक मार्ग कावेरी की घाटी के पश्चिमी क्षेत्र से चोल बंदरगाह कावेरी-पुम्पट्टिनम् को जाता था। एक अन्य मार्ग पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र से कांचीपुरम् को जाता था। कांचीपुरम् स्थानीय सामंत की राजधानी थी और पश्चिमी तट का प्रसिद्ध "नगर" था।

नमक कारवां और अन्य व्यापारी ऐसे यात्री थे जो इन मार्गों से जाते थे। कारवां बड़े-बड़े दल बनाकर जाते थे। व्यापारियों के अलावा, बहुधा भाट, चारण, नृतक, संदेशवाहक, बैद्य आदि भी ऐसे मार्गों से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते रहते थे। ये लोग भी कारवां के साथ जाना पसंद करते थे क्योंकि यात्रा अधिकतर खतरनाक होती थी। अधिकांश मार्ग घने जंगलों और पहाड़ों के उपर से होकर जाते थे, जहां जंगली जनजातियां रहती थीं। व्यापारियों को राहजनी का खतरा रहता था और शासकों से किसी प्रकार के प्रभावी संरक्षण के अभाव में कारवां के साथ उनके अपने अंगरक्षक नियुक्त रहते थे।

सातवाहन के अधीन राज्य में स्थिति कुछ भिन्न थी। उत्तर से दक्षिण को मुख्य मार्ग उज्जैयिनी से सातवाहन राज्य की राजधानी प्रतिस्थान (पठण) शहर को जाता था। प्रतिस्थान से यह दक्खन के पठार को पार करते हुए दक्षिण के प्रसिद्ध शहरों कांची और मदुरै को जाता था। इसी काल के प्रारंभ में विकसित मार्गों का जाल इस पुराने मार्ग को पश्चिमी

तट के अंतर्देशीय बजारों तथा कस्बों और बंदरगाहों को क्षेत्र के भीतरी भाग के उत्पादक क्षेत्रों से मिलाता था। गोदावरी और कृष्णा की उपजाऊ घाटियों के भी मार्गों के ऐसे जाल थे जो तटीय शहरों की भीतरी भागों से जोड़ते थे।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दक्खन की कुछ प्राचीन प्रसिद्ध बौद्ध गुफाओं तथा धार्मिक केन्द्र इन व्यापारी मार्गों में थे। व्यापारी कारवां के लिए ये धार्मिक केन्द्र बहुत से मामलों में उपयोगी थे। उन्हें भोजन और आवास देने के अलावा वे उन्हें ऋण तक भी देते थे। शासक भी इन मार्गों की देखभाल पर रुचि दिखाते थे। उन बौद्ध धार्मिक स्थापनाओं को वे उदारतापूर्वक दान देते थे, जो मार्गों में स्थित थे। उन्होंने बंदरगाह नगर में विश्रामगृह बनवाए और मार्गों में प्याऊ स्थापित किए। उनके रख-रखाव के लिए अधिकारी भी नियुक्त किए गए। दुर्भाग्यवश मार्गों की सुरक्षा प्रबंधों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बहुधा मार्गों में नदियां पार करनी पड़ती थीं। ऐसे स्थलों पर नौघाट स्थापित किए गए थे और व्यापारियों से कर वसूल किया जाता था। कुछ नौघाट निःशुल्क भी थे।

लम्बे समुद्र तट और कई नदियों के प्रवाह से जानकारी होने के फलस्वरूप दक्षिण भारतीय समुद्री तथा नदियों के नौवहन को जानते थे। नौघाटों को पार करने तथा नदियों के नौवहन के लिए छोटी नौकाओं का प्रयोग किया जाता था। बड़े जहाजों के निर्माण तथा उनके प्रयोग से समुद्री यात्रा संभव हुई।

तमिलहम् में नौवहन मुख्य रूप से तटवर्ती क्षेत्रों में सीमित थी। श्रीलंका के साथ कुछ व्यापारिक संबंध थे। श्रीलंका (ईलम) के व्यापारियों का उल्लेख दक्षिण भारत के शिलालेखों में मिलता है। इसी प्रकार, श्रीलंका के कुछ प्रारंभिक शिलालेखों में तमिल व्यापारियों का उल्लेख दानदाता के रूप में मिलता है। इन प्रमाणों से पता चलता है कि तमिल के व्यापारी समुद्र व्यापार में भाग लेते थे।

दक्खन में ऐसे भी व्यापारी थे, जो खास तौर पर समुद्री व्यापार में लगे हुए थे। मारुकच्छ में जहाजों की उपस्थिति के बारे में उस समय के साहित्य से जानकारी मिलती है।

प्रायद्वीपीय भारत के व्यापारी खास तौर पर वे जो दक्खन के थे, विदेशी व्यापार में लगे हुए थे मिस्र और अलेक्जेंडरिया में कुछ भारतीय व्यापारियों की मौजूदगी की जानकारी उस समय के विदेशी साहित्य में मिलती है।

राजा के प्राधिकारी समुद्री व्यापार के महत्व को जानते थे। वे व्यापारियों को सुविधाएं देते थे। मारुकच्छ में आने वाले जहाजों का मार्ग-दर्शन स्थानीय नौकाएं करती थीं और गोदियों में उनके लिए अलग स्थान की व्यवस्था की जाती थी।

सुदूर दक्षिण में तमिलहम् के बड़े सामंत समुद्र व्यापार को कई तरीकों से प्रोत्साहित करते थे। समुद्र के किनारे प्रकाश स्तम्भ बनाए गए थे, कई ऐसे जहाज घाट थे, जहां रोमन जहाजों से उतारे गए सामान पर सामंतों की मुहर लगाई जाती थी। भंडारण की सुविधा दी जाती थी और गोदामों में सामान के संरक्षण की व्यवस्था भी की जाती थी।

सुदूर दक्षिण में और दक्खन में भी समुद्री व्यापार की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिसे कुछ आधुनिक विद्वानों ने "निर्देशित व्यापार" कहा है। दोनों क्षेत्रों के बीच अंतर यह है कि दक्खन में ये विशेषताएं अधिक सुस्पष्ट हैं, जबकि तमिलहम् में वे गौण स्तर पर हैं।

30.5 विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के

यद्यपि वस्तु-विनिमय लेन-देन का सबसे अधिक सामान्य तरीका था, फिर भी चर्चाधीन अवधि में विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्कों का प्रचलन था। प्रारंभिक प्रायद्वीप भारत के ज्ञात सिक्कों को मोटे तौर पर निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

- विभिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के
- रोमन सिक्के

30.5.1 स्थानीय सिक्के

प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के चलते थे।

प्राचीन तमिल साहित्य में उनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती है जैसे कासु, कनम, पोन और वेनपोन। परन्तु इन नामों के अनुरूप असली सिक्के नहीं घाए गए हैं। दक्खन के शिलालेखों में क्हापना के प्रयोग का हवाला मिलता है, जो चांदी के सिक्के थे और स्थानीय रूप से बनाए जाते थे तथा सुवर्ण जो सोने के सिक्के होते थे, वे या तो रोमनों के थे या फिर कुशानों के।

भिन्न-भिन्न प्रकार के असली सिक्के और भिन्न-भिन्न धातुओं से बनाए जाते थे, जैसे सीसा, पोटिन (तांबे, जस्ते, सीसे और टिन का यौगिक), तांबा और चांदी प्रयुक्त की जाती थी। उनमें सबसे पुराने आहत सिक्के थे, जैसा कि आपने खंड 4 में पढ़ा है। छठी-पांचवीं शताब्दी ई.पू. से आगे उत्तर-पश्चिम और उत्तर भारत में इन्हें बनाया जाने लगा। प्रायद्वीपीय भारत में भी विभिन्न प्रकार के आहत सिक्कों की ढलाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती थी। अन्य किस्म के सिक्कों को बनाने में अन्य प्रकार की तकनीक जैसे कास्टिंग, डाइस्ट्राकिंग का धीरे-धीरे प्रयोग किया जाने लगा। दूसरी शताब्दी ई.पू. से छोटी-छोटी बस्तियों के राजाओं या महत्वपूर्ण महारथी सदस्यों तथा अन्य परिवारों ने अपने नाम से सिक्के बनाने शुरू किए। इसी क्रम में भिन्न-भिन्न धातुओं के सातवाहन शासकों के सिक्के संभवतः पहली शताब्दी ई.पू. में आए। उत्तरी दक्खन, गुजरात, मालवा तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में क्षत्रपण के चांदी के सिक्कों की बहुत मांग थी। इस प्रकार दूसरी शताब्दी ई.पू. और दूसरी शताब्दी ई. के अंत के बीच की अवधि में स्थानीय सिक्कों की बहुत सी किस्में बनीं और ये प्रायद्वीपीय भारत में प्रचलित थे।

30.5.2 रोमन सिक्के

प्राचीन तमिल साहित्य में यवन (रोमन) जहांजों का उल्लेख मिलता है, जो तमिलहम् में बहुत बड़ी मात्रा में सोना लाते थे तथा काली मिर्च से इसका विनिमय होता था। रोमन सम्राट टिबरियस ने 22 ई. में सेनेट को लिखा था कि साम्राज्य की सम्पत्ति छोटी-छोटी वस्तुओं के बदले विदेशों में जा रही है। प्रथम शताब्दी ई. में दी नेशनल हिस्ट्री के लेखक प्लिनी ने शिकायत की थी कि रोमन की अतुल सम्पत्ति विलास की वस्तुओं के लिए भारत, चीन और अरब में गई। इन कथनों की पुष्टि प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न स्थानों जैसे आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में भारी मात्रा में पाए गए रोमन सिक्कों से होती है। अधिकांश सिक्के पहली शताब्दी ई.पू. और तीसरी शताब्दी ई. के बीच की अवधि के हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस अवधि के दौरान, प्रायद्वीपीय भारत से रोमन सम्पर्क बहुत अधिक था। अधिकांश रोमन सिक्के सोने और चांदी के हैं। तांबे के सिक्के यद्यपि नगण्य हैं, परन्तु पूर्ण अज्ञात नहीं हैं।

रोमन से धन उन वस्तुओं को खरीदने के लिए लाया जाता था जो पश्चिमी देशवासियों को प्रिय था। ये वस्तुएं थोक में रोमन वस्तुओं के विनिमय में नहीं ली जा सकती थीं। बड़े सौदे सोने के सिक्कों के माध्यम से होते थे। चांदी के सिक्कों का उपयोग अपेक्षाकृत छोटे सौदों के लिए किया जाता था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि रोमन का सोना मुद्रा के रूप में नहीं लिया जाता था बल्कि बालियन के रूप में लिया जाता था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि दक्षिण भारतीयों द्वारा रोमन का सोना आभूषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता था।

कुछ मुद्राशास्त्रियों का मत है कि रोमन सिक्के और आहत सिक्के दोनों देशों में साथ-साथ प्रचलन में थे। रोमन सिक्के भी आहत सिक्कों के लगभग बराबर वजन के थे। कुछ खजानों में उन्हें आहत सिक्कों के साथ पाया गया है। दोनों ही लगभग एक जैसे ही घिसे हुए हैं। इससे प्रतीत होता है कि खजानों में रखने से पहले वे काफी समय तक प्रचलन में रहे हैं। दक्षिण भारत में रोमन सिक्कों की अनुकृतियां भी प्रचलन में थीं, विशेषकर कोरोमंडल समुद्र तट पर, जहां कुछ रोमन व्यापार के केन्द्र थे। संभवतः ऐसी बस्तियों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए नकली सिक्के बनाए गए हों।

30.6 व्यापार से राजस्व

खजाने के आय के नियमित स्रोत के रूप में राजस्व की वसूली सरकार की कार्यकुशलता सहित कई कारकों पर निर्भर करती है। उस समय प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न प्रदेशों में राजनीतिक परिस्थितियां एक समान नहीं थीं। इसलिए राजस्व प्रणाली भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न थी।

भारवाही पशुओं और ठेलों में सौदा ले जाने के लिए चंगी वसूल की जाती थी। यह चंगी उत्क

शीतरी इलाके में बड़े और छोटे शहरी केन्द्र थे: प्रतिस्थान (पीठा), टागोर (टर), शीतवर्धन (शीकरदन), करहाटका (कराह), गौसिक, वैजयंती, धान्यकटक, विजयपुरी (नागार्जन कंठा)

होते हैं।
कल्याण भारत-रोमन व्यापार की प्रारंभिक अवस्था में अधिक प्रदान और महत्त्वपूर्ण प्रतीत
आविष्कारों को जाते थे। परन्तु परिचयी बदरगाह माकेकच्छ (मन्थ), सोपारा और
कल्याण के इलाके में कुछ महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। यहाँ से जहाज मलय प्रायद्वीप और पूर्वी
परिचयी और पूर्वी समुद्र तटी पर कई बदरगाह थे। आन्ध्र के तटीय प्रदेश में गोदावरी और
जहाँ शहरी विकास के स्पष्ट रूप दिखाई देते हैं।
उद्भव और विकास में बहुत प्रासंगिकता मिलती है। हम देखने के उन केन्द्रों का वर्णन शुरू करेंगे
के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किया है। इस प्रारंभिक व्यापार से कई शहरी केन्द्रों के
उत्पन्न बर्तों के दौरान हमने प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार के वाणिज्यिक विस्तार

30.8 शहरी केन्द्र

के अन्तर्गत स्थीय माप में व्यक्त किए जाते थे।
दिन-प्रतिदिन के लेन-देन में अनाज (एल), धान अनाज (नेल), अनाजियाँ और हथ की लंबाई
भी हमें बताई गई है।
तारु से तोला जाता था। तारु शायद एक डंडा होता था जिसमें निधान नग होते थे। यहाँ
तक छोटी से छोटी बस्तु भी तारु से तोली जा सकती थी। तारु पर सोना तोलने की बात
भी जानें जाते हैं।

तोला जाता था। संभवतः यह बड़ा तोल था। छोटे मापों के रूप में गोली, उलाक और अलाक
सदर दक्षिण में था और बैलि शीम के माप थे। यहाँ कर देने के लिए अनाज अस्थान में
और शीम निवर्तन के अन्तर्गत मापी जाती थी।
विचार भी अवश्य विद्यमान रहा होगा। शिन्-शिन् मूल्य बर्तों के सिक्के जारी किए गए थे
व्यापार केन्द्रों में विभिन्न बस्तुओं का व्यापार एक नियमित कार्य था वहाँ सही-सही माप का
बस्तु की माप या आकार के बारे में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता है। देखने में जहाँ
विनिमय आसान और कारगर होता है। कथना और विक्रयता को खरीदी गई या बेची गई
बस्तु को तोलना, मापना और गिनना संभव है, जब कोई उसे खरीद रहा है या बेच रहा है तो
विनिमय की विकसित प्रणाली के लिए नियमित माप और तोल आवश्यक है। इससे किसी

30.7 तोल और माप

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

5) रोमन सिक्कों और दक्षिण भारत में उनके उपयोग पर सात परिचयी लिखिए।

.....
.....
.....
.....
.....



उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04(N)

इतिहास
भारत : प्राचीन काल से
8वीं सदी ईस्वी

खंड

8

भारतीय राजतंत्र : 300 ई. से 800 ई. तक

इकाई 32

गुप्त साम्राज्य

5

इकाई 33

गुप्तकाल : अर्थव्यवस्था, समाज और राजतंत्र व्यवस्था

17

इकाई 34

उत्तर भारत में गुप्तकाल के बाद के राज्य

27

इकाई 35

दक्खिन और दक्षिण भारत के राज्य

36

ग) मठों और संगठनों जैसी संस्थाओं का संयोग

ख) दत्तकारी विधेशोभा

क) स्थानीय विनिमय नेटवर्क से संबंध

इसलिए निम्नलिखित के अभाव के फलस्वरूप इन शहरी केन्द्रों का स्वरूप बना था:

एक बदरगाही पर व्यापार अधिकतर विभास की वस्तुओं का होता था इसलिए परिटनम स्थानीय विनिमय केन्द्रों के नेटवर्क से जुड़े हुए नहीं थे। वे मुख्य रूप से "विदेशी व्यापार के केन्द्र" बन रहे और शासक तथा धनी वर्ग उनके ग्राहक थे। इस प्रकार इन केन्द्रों की प्रगति का कारण विदेशी व्यापार था। विदेशी व्यापार के द्वारा से ये केन्द्र भी कमजोर पड़ गए और धीरे-धीरे समाप्त हो गये।

वर्षों के बदरगाही पर व्यापार अधिकतर विभास की वस्तुओं का होता था इसलिए परिटनम स्थानीय विनिमय केन्द्रों के नेटवर्क से जुड़े हुए नहीं थे। वे मुख्य रूप से "विदेशी व्यापार के केन्द्र" बन रहे और शासक तथा धनी वर्ग उनके ग्राहक थे। इस प्रकार इन केन्द्रों की प्रगति का कारण विदेशी व्यापार था। विदेशी व्यापार के द्वारा से ये केन्द्र भी कमजोर पड़ गए और धीरे-धीरे समाप्त हो गये।

परिटनम या बदरगाह भी शासकों के संरक्षण में काफी सक्रिय थे। वहाँ कई ऐसे केन्द्र थे। पूर्वी तट पर : पहार अथवा कावेरीपरिटनम (बोली का), अरिकमड, कोरकाई (पंडियाओं का) थे, पश्चिमी तट पर मजोरिस और टिनाडिस (बेराओं का) बकरे और नैलेयदा वे समुद्री व्यापार के केन्द्र थे और अरिकमड जैसे कुछ घबनों की बस्तियाँ थीं। बदरगाह के अंदर मजोरिस बहुत व्यस्त केन्द्र था, यहाँ हर प्रकार के जहाजों की भीड़ रहती थी और बड़े-बड़े मजोरिस बहुत व्यस्त केन्द्र था, यहाँ हर प्रकार के जहाजों की भीड़ रहती थी और बड़े-बड़े

इतम से कुछ केन्द्र नियमित विनिमय कार्यों के कारण बहुत सक्रिय हुए। इसलिए आर्थिक परिभाषा के अनुसार इन स्थानों को "शहरी" केन्द्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। फिर भी, समकालीन समाज उन्हें सामान्य कृषिक बस्तियों से भिन्न समझता था। अर्द्धशहरी कस्बे जैसे उद्वेपर (वर्तमान त्रिचिरापल्लि के समीप), कावी (कावीपूरम) और मट्टे के बाजार थे। वे पूर्णतः शहरी केन्द्रों के रूप में विकसित हुए।

- बदरगाह
- अर्द्धशहरी विपणन नगर, और
- ग्रामीण विनिमय केन्द्र;

अधिकारशातः स्वयं कविताओं तथा अन्य साहित्यिक लेखों के संदर्भों के आधार और कुछ सीमा तक पुरातत्व के आधार पर तमिलम में तीन अलग-अलग किस्म के केन्द्रों का पता लगाया जा सकता है :
कार्य एक ही शहरी केन्द्र में किया जा सकता था।
कायात्मक दृष्टि से शहरी केन्द्र विभिन्न श्रेणियों के थे। प्रशासनिक केन्द्र, सशहकर्म केन्द्र, छावनी, विदेशी व्यापार केन्द्र, विपणन और विनिमय केन्द्र। फिर भी, इनमें से अधिकारशातः काय एक ही शहरी केन्द्र में किया जा सकता था।

- vii) लेखन प्रक्रिया का विस्तार जो गणना और लेखबद्ध करने के लिए आवश्यक है।
- vi) मठ प्रणाली का आविर्भाव।
- v) केन्द्रों को अधिशेष सामग्री भेजने तथा सहायता और सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी सक्षम शासक वर्ग।
- iv) स्थानीय और विदेशी विनिमय में अपेक्षित जिंसों के संग्रह की सुविधाएँ तथा नौबहन विकास।
- iii) ऐसे संगठनों का उदय, जो व्यापारियों और कारीगरों के कार्यों को संगठित करते थे।
- ii) व्यापारी, कारीगर, हस्तशिल्पी जैसे व्यावसायिक वर्गों का उदय, जो छाद्यान्त उत्पादन से सीधे जुड़े हुए नहीं थे।
- i) कृषि का शीतली प्रदंश जो शहरी केन्द्र में रहने वाले भिन्न-भिन्न सामाजिक वर्गों के उदभव हुआ, जो सामान्य ग्रामीण बस्तियों से भिन्न थे :
उपभोग के लिए आवश्यक अतिरिक्त अनाज पैदा करने में सक्षम थे।

व्यापार और शहरी केन्द्रों का विस्तार

30.9 समाज पर व्यापार और शहरी केन्द्रों का प्रभाव

प्रारंभिक व्यापार और शहरी विकास कार्यों से तमिलहम के सामाजिक जीवन में बहुत अधिक आधारभूत परिवर्तन नहीं आए हैं। स्थानीय विनिमय आजीविका प्रधान था। इसका तात्पर्य यह है कि वे मर्दे जो स्थानीय विनिमय के माध्यम से लोगों के पास जाते थे, विभिन्न वर्गों के लोगों के नियमित खपत की होती थी। दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था, जो केवल सामंतों के नातेदारों और उनके व्यक्तियों तक सीमित था। व्यापारियों की सम्पत्ति एवं समृद्धि जैसे कि भिक्षुओं को उनके उपहार से दिखाई देती थी, वह अधिक प्रभावकारी नहीं थी।

कारीगरों और व्यापारियों का कोई संगठन नहीं था। वे परिवार के सदस्यों या निकटतम संबंधियों की तरह मिल-जुलकर काम करते थे। इस प्रकार वे केवल जनजाति स्वरूप के नातेदारी संबंधों के अनुसार काम करते थे।

दक्खन में स्थिति भिन्न थी। स्थानीय व्यापारी वर्ग की भागीदारी दूरस्थ व्यापार के लिए भी आवश्यक थी। इसलिए इस व्यापार के लाभ समाज के निचले स्तरों में भी आए। कारीगरों, शिल्पियों और व्यापारियों की सम्पत्ति और समृद्धि बौद्ध मठों को उनके दान में झलकती थी।

कारीगरों और व्यापारियों के संघ संगठनों के कारण पुराने नातेदारी संबंध टूटने लगे और हस्तशिल्प की वस्तुओं के उत्पादन तथा व्यापार के कार्यों में नए किस्म के संबंध बनने लगे।

शासकों, वाणिज्य वर्गों और बौद्ध मठों के बीच संबंधों से दक्खन की अर्थव्यवस्था और समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन शुरू हुए।

बोध प्रश्न 3

1) नीचे दिए गए कथनों में सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए:

- क) मा और बेलि रेखीय माप थे। ()
- ख) प्रारंभिक दक्षिण भारत में तटीय कस्बों की अपेक्षा अंतर्देशीय कस्बे अधिक सक्रिय थे। ()
- ग) संघों ने कारीगरों और व्यापारियों के बीच उत्पादन संबंधों में कुछ परिवर्तन शुरू हुए। ()
- घ) विलास की वस्तुओं का प्रचलन सम्राट के सदस्यों और उनके परिवार में ही था। ()
- च) दक्खन में दूरस्थ व्यापार स्थानीय विनिमय नेटवर्क पर आश्रित नहीं था। ()

2) मठों और व्यापारियों के बीच संबंधों पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) स्थानीय व्यापारियों और कारीगरों पर व्यापार तथा शहरीकरण के प्रभाव पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

30.10 सारांश

व्यापार और शहरी केन्द्रों
का विस्तार

इस इकाई में प्राचीन प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में आपने निम्नलिखित के बारे में पढ़ा है:

- विभिन्न प्रकार के व्यापार और तरीके जिनमें विनिमय होता था,
- कारीगरों और व्यापारियों का संघ,
- विनिमय सुविधाएं जैसे परिवहन, भंडारण और नौवहन
- विभिन्न प्रकार के सिक्के जो विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते थे,
- व्यापार से राजस्व,
- शहरी केन्द्रों के विशिष्ट लक्षण और कार्य;
- प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापार और शहरीकरण का प्रभाव।

30.11 शब्दावली

आहत सिक्के: इन सिक्कों के निर्माण में धातु को पीट-पीटकर चपटा बनाया जाता था और तब उन्हें पट्टियों में काटा जाता था। खाली चद्दर को अपेक्षित भार के टुकड़ों में काटा जाता था। पहले तो ये टुकड़े वर्गाकार या आयताकार थे। सही भार के लिए इनके किनारों को छिला जाता था। इसलिए इन सिक्कों का आकार एक जैसा नहीं होता था। पंचित्र से उन पर प्रतीक चिन्ह का ठप्पा लगाया जाता था। प्रत्येक पंचित्र का प्रतीक बिल्कुल पृथक होता था।

निर्देशित व्यापार: इसका सबंध उस व्यापार से है जिसमें व्यापार के केन्द्र होते थे, जिनमें लंगरगाह और भंडारण की सुविधाएं तथा नागरिक एवं कानूनी संरक्षण और भुगतान विधि पर कराकर जैसी सुविधाएं दी जाती थीं।

नियम: व्यापारियों और कारीगरों का संघ

पोतिन: तांबा और टीन का यौगिक

मुद्राशास्त्री: वे विद्वान जो सिक्कों के अध्ययन में विशेषज्ञ होते हैं

30.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) उप-भाग 30.2:1 देखिए।
- 2) क) (×)
ख) (✓)
ग) (×)
घ) (×)
च) (✓)
- 3) भाग 30.3 देखिए।
- 4) भाग 30.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

- 1) i) (✓)
ii) (✓)

दक्षिण भारत में राज्य एवं समाज
200 ई.पू. से 300 ई. तक

iii) (✓)

iv) (×)

v) (×)

2) भाग 30.4 देखिए।

3) भाग 30.5 देखिए।

4) भाग 30.5 देखिए।

5) भाग 30.5 देखिए।

बोध्य प्रश्न 3

1) क) (×)

ख) (×)

ग) (✓)

घ) (×)

च) (×)

2) भाग 30.8 देखिए।

3) भाग 30.9 देखिए।

इकाई 31 तमिल भाषा और साहित्य का विकास

इकाई की रूपरेखा

- 31.0 उद्देश्य
- 31.1 प्रस्तावना
- 31.2 प्रारम्भिक साक्ष्य
- 31.3 संघ काव्य (प्रेम और वीरता का काव्य)
 - 31.3.1 वर्गीकरण
 - 31.3.2 काव्य संगठन
 - 31.3.3 समय निर्धारण की समस्या
 - 31.3.4 काव्यशास्त्र
 - 31.3.5 साहित्यिक विकास
- 31.4 अन्य रचनायें
- 31.5 सारांश
- 31.6 शब्दावली
- 31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

31.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि:

- तमिल साहित्य कितना पुराना है;
- तमिल वीर और प्रेम का काव्य क्या है;
- उनकी रचना एवं वर्गीकरण कैसे किया गया;
- उनकी साहित्यिक विशेषतायें क्या हैं; और
- उस काल की दूसरी रचनायें क्या हैं?

31.1 प्रस्तावना

आपने पिछली इकाई में पढ़ा कि किस प्रकार से तमिलहम् में नई बस्तियों का विकास हुआ और कैसे कृषि का फैलाव एवं व्यापार की उन्नति हुई। व्यापार के कारण लोग बाहर से आकर बसते हैं और प्रदेश के अन्दर ही स्थानीय एवं बाह्य लोगों के बीच पारस्परिक संबंधों की प्रक्रिया के लिये अवसरों का प्रारंभ होता है। संस्कृतियों के पारस्परिक संबंधों की प्रक्रिया किसी क्षेत्र में भाषा एवं साहित्य के विकास में सहायता करती है। इस इकाई में आप तमिल भाषा एवं साहित्य के विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे।

31.2 प्रारम्भिक साक्ष्य

तीसरी सदी ई.पू. के आस-पास तमिल भाषा पूर्णतः साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी अर्थात् ऐसी भाषा के रूप में जिसकी अपनी स्वयं लिखने की एक प्रणाली थी। तमिल साहित्यिक परंपरा अर्थात् तमिल भाषा में लेखन की परंपरा के संदर्भ में सबसे प्रारम्भिक प्रमाण मदुरई की पहाड़ियों में बनी जैन एवं बौद्ध गुफाओं से प्राप्त तमिल ब्राह्मी के शिलालेख हैं। ये शिलालेख उन लोगों और संस्थाओं की पट्टिकाओं के रूप में हैं जिन्होंने इन कन्दराओं को दान में दिया। इन शिलालेखों के मुख्य स्थान अरिट्टापत्ति (मौगलम, मदुरई), कारुंगलावकूति (मैलूर, मदुरई), कौगरपुलियाम्कलम (मदुरई), अजकरमलई (मदुरई) हैं। इन लेखों में तमिल के ऐसे बहुत से शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनको स्थानीय स्तर पर संस्कृत, प्राकृत या पालि भाषाओं से ग्रहण किया गया है। निगमत्तूर (निगम का सदस्य) और

विशेष प्रकार का अन्तर रखती है।

वीर काव्य संग्रहों के संकलन की तकनीकी एवं शैली बाद में की जाने वाली रचनाओं से पतितनकीशकणक दोनों की रचना एट्टेरीस और पत्त पत्त काव्यों के संकलन के बाद हुई। इरा रचित संग्रहित लिखकल इन अट्टेरीस अर्थात् धर्मापदेशों में से एक है। लोककविपद्यम और अट्टेरीस धर्मापदेशों के वर्णन से परिपूर्ण ग्रंथ पतितनकीशकणक भी आता है। लिखकल संगम साहित्य के वर्गीकृत ग्रंथों के अन्तर्गत तमिल व्याकरण का ग्रंथ लोककविपद्यम और दोनो अकम और परम काव्य संग्रह पत्त पत्त श्रेणी में आते हैं। वीर काव्य ग्रंथों के अलावा परम शीर्षक पर आधारित कवितायें हैं और ये दोनो एट्टेरीस श्रेणी में ही आते हैं। इसी भाँति काव्य ग्रंथ में अकम शीर्षक पर लिखी गई चार सौ कवितायें हैं और परमानन्द काव्य संग्रह में हुआ है। काव्य संग्रहों की इन श्रेणियों में अकम और परम जैसे शीर्षकों पर कवितायें हैं। विषयों का वर्णन है और परम के अन्तर्गत वर्तमानक जैसे लट और सर्वथा विषयों का वर्णन संग्रहों की अकम में विभाजित किया गया है इसके अन्तर्गत वर्तमानक व्याकरण व्याकरण पत्त पत्त एट्टेरीस के अन्तर्गत नट्टेरी, कल्लुत्तरी, निट्टुव आदि काव्य संग्रहों के समूह हैं। उदाहरणार्थ काव्य संग्रह की ऐसे काव्य संग्रहों की दो श्रेणियाँ जिनमें वीर गायका काव्य का वर्णन है। की गई कविताओं को देखेंगे। एट्टेरीस या कविताओं के आठ संग्रह और पत्तपत्त में दस अथ ह्य वर्गीकृत काव्य संग्रहों से कुछ विशेष काव्यात्मक शीर्षकों एवं परिपटीयों से ग्रन्थ

31.3.1 वर्गीकरण

बालिक व वर्गीकृत काव्य-संग्रह या वीरन्या संग्रह का अभिन्न अंग बन गई। का कौमिक विकास हुआ। वे न केवल अपनी वास्तविक पहचान को कायम रखने में सफल हुईं ये कवितायें कई शताब्दियों में फली फूली जिससे ऐसा लगता है कि तमिल भाषा एवं साहित्य सामाजिक समूह या गट से संबंधित नहीं है बल्कि साधारण जीवनयापन का एक भाग ही है। से जाना जाता है। साधारण भाट कविताओं को पनार कहा गया है। यह साहित्य किसी विशेष कवि था। ये विद्वान भाट कवि थे और इनको साधारण भाट कविताओं से अलग पहचान के नाम अर्जकरण किया। कापिलर, पारनर, अवायर और गौतमनार इस काल के जाने-पहचाने थीं। उनमें से कुछ की रचना विद्वान कविताओं की थी जिन्होंने भाट कविताओं की परंपरा को हूँ घुमाते रहते थे। फिर भी सभी काव्यात्मक रचनायें घुमकड भाट कविताओं की रचना नहीं मन्त्र की अभिव्यक्त करती हैं। ये भाट कवि अपने आश्रयदाता सरदारों की प्रशंसा में गाते मिताकर तमिल वीर काव्य लोक कथाओं की उत्पत्ति था। ये भाट कविताओं की परंपरा के के मध्य समय की जो दरी है उसके कारण संगम साहित्य मिथ्या जैसा ही गया है। कल न्य है कि वे साहित्यिक विद्वानों के द्वारा गठित की गई थीं। संगम और संघ काव्यों की रचना विरवास किया जाता था कि ये संगम दरबारी कविताओं की संस्थाएँ थीं। परन्तु अब यह स्वीकृत परन्तु अन्तः उनमें से एक ही संगम के द्वारा कथे कथे कथे जीवित रह सकें। पहले ऐसा इतिहास किवदंतियों से भरा पड़ा है। परंपरा के अनुसार प्रारंभ में तीन संगम अस्तित्व में थे के द्वारा नहीं की गई थी। वास्तव में ये कवितायें संगम से अधिक प्राचीन हैं। संगम का एकत्रित किया गया। संगम विद्वानों की एक संस्था थी। इन कविताओं की रचना स्वयं संगम तमिल के संघ काव्यों को संगम साहित्य इसलिये कहा गया है क्योंकि इनको संगम के द्वारा

31.3 संघ काव्य (ग्राम और वीरता का काव्य)

साहित्य ही तमिल साहित्य की प्राचीनतम परंपरा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। मध्य का है। तमिल भाषा के वीर काव्यों की लोकप्रियता संगम साहित्य के नाम से है और यह रूप में संशोधन मिलता है। इन लेखों का लेखन काल सामान्यतः 200 ई.पू. से 300 ई. के व्यापारसंधिकों एवं स्थानों के नामों का प्रयोग हुआ है उस से तमिल का साहित्यिक भाषा के भाष्य प्रणाली के अन्वय ही ग्रहण किया गया। इन लेखों में जिस ढंग से व्यक्तियाँ, संस्कृत और प्राकृत या पालि की उक्तियाँ का प्रयोग किया। इन उक्तियों को तमिल भाषा की की ओर से देशान्तर करने वाले जैन एवं बौद्ध धर्मों के अनुयायियों ने काफी बड़ी संख्या में तमिल साहित्य की भाषा से काफी अलग प्रकार की है। यह अन्तर इसलिए आया कि उत्तर शैली-भाँति जान लेना चाहिए कि इन लेखों में जिस तमिल भाषा का प्रयोग किया गया है वह भारतीय वा संस्कृत है कि इनको तमिल भाषा में संस्कृत से ग्रहण किया गया है। इसको भी वणिगम (यह पुरुष जो वणिगम या व्यापार में संलग्न है) शब्दों को उदाहरण के रूप में

31.3.2 काव्य संगठन

संघ काव्य का संकलन मौखिक भाट साहित्य के सिद्धान्तों के आधार पर किया गया। मौखिक संकलन की विशेषतायें सारे विश्व में लगभग एक जैसी हैं। भरपुर मुहावरों तथा अभिव्यक्तियों का प्रयोग मुख्य विशेषता है। इनमें उन्हीं मुहावरों एवं अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया है जो उन दिनों सामान्य जनों के मध्य प्रचलित थे। कवि लोग इनकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति को जानते थे और वे यह भी जानते थे कि इनका कहाँ एवं कैसे अपनी कविता में उपयोग किया जाये। कविताओं के संकलन में मूल भावों एवं स्वाभाविक अभिव्यक्तियों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि उनको मौखिक रूप से प्रसारित किया जा सके और उनमें सामान्य रूप से भाट कवियों के साथ-साथ समाज की भागीदारी भी स्पष्ट हो सके। कविताओं में घटित होने वाले विभिन्न संदर्भों की अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने के लिये काव्यात्मक बनाने की आवश्यकता होती थी। उदाहरण के लिये, यदि किसी सरदार की प्रशंसा करनी होती थी तो उसकी प्रशंसा के लिये "मालाधारी विजेताओं का योद्धा", "गौरवशाली रथों का स्वामी", "तेज दौड़ने वाले अश्वों का सरदार", "आँखों को रसिक लगने वाला योद्धा" जैसे काव्यात्मक शब्दों का प्रयोग बिना किसी रुकावट के किया जाता था फिर चाहे कोई भी कवि या सरदार रहा हो। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाट कवि कृत्रिम अभिव्यक्तियों एवं उनके संदर्भों के प्रयोग में दक्ष थे। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम उनकी काव्यात्मक प्रतिभा को कम करके देखना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कवियों की व्यक्तिगत शैली एवं अभिव्यक्ति का कोई विशेष महत्व नहीं है। मौखिक कविता में छंद रचनाओं की तकनीकी साधारण शैली एवं अभिव्यक्तियों पर निर्भर करती थी। यह संकलन की एक ऐसी तकनीकी थी जिसमें ऐसे मुहावरों का प्रयोग होता था जिन पर न केवल कवियों की बल्कि समाज की भी सामान्य तौर पर पकड़ होती थी। इसलिये बार-बार ऐसी पंक्तियों एवं शीर्षकों का वर्णन आया है जिनका उदार परिवर्तन के साथ अनेक कवियों ने विभिन्न काव्यों में प्रयोग किया। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को किवदंतियाँ सुनाने की प्रक्रिया द्वारा वीर कवितायें पुरानी यादगारों से भरी हुई थीं। जिसके कारण इन कविताओं की रचना समय का निर्धारण करने में कठिनाई होती है।

31.3.3 समय निर्धारण की समस्या

संगम साहित्य के ग्रंथों में वर्णित श्रेणीबद्ध समस्याओं से इनकी रचना समय को निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। ग्रंथों की कवितायें वास्तव में भिन्न-भिन्न कालों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन काव्यों के वास्तविक संकलन एवं मौखिक प्रसारण में दूसरी सदी ई.पू. से तीसरी सदी ई. के बीच की कई शताब्दियों का समय है। इनका काव्य संग्रहों के रूप में संकलन छठी सदी ई. से नौवीं सदी ई. के मध्य में हुआ। इनकी समीक्षाओं का काल भी 13-14वीं सदी ई. से पूर्व का नहीं है। तोलकाप्पियम जो परम्परागत व्याकरण निबन्ध है अपने वर्तमान रूप में तीसरी सदी ई. से पूर्व का नहीं है यद्यपि इसके कुछ आधारभूत भाग कुछ थोड़े से पहले के हो सकते हैं। किञ्चिद्विद्वानों के सभी ग्रंथ तीसरी सदी ई. के बाद वाले समय के हैं। संगम साहित्य का समय निर्धारण करने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसके प्रारंभिक व बाद के स्वरूप को निश्चित करना कठिन है क्योंकि ये सब एक दूसरे में घुल-मिल गये हैं।

31.3.4 काव्यशास्त्र

संगम साहित्य के आधार पर कुछ स्वस्थ विकसित काव्यात्मक परम्पराओं का विकास हुआ। यद्यपि काव्यात्मक परम्पराओं का विकास कुछ बाद की शताब्दियों में हुआ परन्तु संकलन के नियम एवं आचार विधियाँ तमिल भाट काव्य की पुरानी परंपराओं का ही भाग थीं। पारम्परिक तमिल काव्य की दो मूलभूत विशेषताओं को अकम एवं पुरम नामक काव्य शैलियों में विभाजित किया गया है। इस इकाई के पहले भाग में ही हम अकम एवं पुरम काव्यों के विषय में बता चुके हैं। पांच तिणै के संबंध में अकम को प्रेम के पांच उपभागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक तिणै एक विशेष प्रकार की प्रेम मुद्रा से संबंधित है। उदाहरणार्थ, पालै प्रेमियों के बिछुड़ने की भावना से संबंधित है। पुरम काव्य की कविताओं में अपने स्वरूप तिणै (स्थितियों दृश्यों) एवं संदर्भों का वर्णन है। इसमें नौ दृश्यों और 63 संदर्भों का वर्णन है जिनको कवि संकलन के लिये ग्रहण कर सके। अकम एवं पुरम काव्य संग्रहों की कविताओं में प्रत्येक की निश्चित परम्पराओं का अनुसरण किया गया। प्रत्येक अकम कविता में तिणै के ऐसे भाव का अनुसरण किया गया था जिसके स्वयं अपने देवता, जीव, प्राणी, जीवनयापन के तरीके, संगीत यंत्र एवं गीत होते थे। इसी भाँति प्रत्येक पुरम काव्य में ऐसे प्रतिबंधों का अनुसरण किया गया है जो तिणै या दृश्यों और व्यवहार की विविधता से जुड़े थे।

31.3.5 साहित्यिक विकास

तमिल साहित्य परम्परा भारत के शास्त्रीय संस्कृत साहित्यिक परम्परा से स्वतंत्र है। यह संस्कृत भाषा के समानांतर ही भाषायी परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन इसके बावजूद भी तमिल भाषा एवं साहित्य के विकास की प्रक्रिया का प्रवाह कभी भी अलगाव की अवस्था में नहीं हुआ। तमिल साहित्य की प्रारंभिक रचनाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव है। वीर काव्यों एवं संगम साहित्य की अन्य रचनाओं में आर्य संस्कृति के विषय में वर्णन है। यहां पर आर्य संस्कृति से हमारा तात्पर्य वैदिक काल के विचारों तथा संस्थाओं से है। वैदिक अनुष्ठानों की परम्परा को भी इन कविताओं के द्वारा प्रमाणित किया गया है। गौतमानर, पाशानर और कपिला जैसे कुछ भाट कवि ब्राह्मण थे। कवि गौतमानर को इसलिये उद्धृत किया गया है कि उसने अपने आश्रयदाता चेर सरदार चेलकेजू कुत्तुवन का भाग्य परिवर्तन करने के लिए बहुत से यज्ञ या वैदिक बलि सम्पन्न किए। तमिल वीर काव्य में महाकाव्यात्मक एवं पौराणिक विचारों को भी पाया गया है। जहां एक ओर संरक्षक सरदारों की प्रशंसा में कवितायें लिखी गईं वहां दूसरी ओर महाभारत के युद्ध में किसानों की भूमिका का भी वर्णन किया गया है। बहुत से पौराणिक देवी-देवताओं की तुलना तमिल देवी-देवताओं के साथ की गई है। तमिल कविताओं में मैयों (काला देवता) को कृष्ण के समान ही माना गया है। तमिल साहित्य की कठोर परम्परा के बावजूद भी इन प्रभावों को कम करके कभी भी नहीं देखा गया। तमिल साहित्य एवं भाषा का मूल पक्ष उद्भव के लिये संस्कृत का ऋणी नहीं है। परन्तु इसके पूर्ण भाषायी एवं साहित्यिक रूप में बढ़ने एवं विकसित होने में आर्य संस्कृति के प्रभाव ने अनुगृहित किया। वीर कवितायें और प्रेम एवं संगम परंपरा की कुछ रचनायें प्रारंभिक तमिल क्षेत्र की व्यापक साहित्यिक संस्कृति की ही पुष्टि करती हैं। तीसरी सदी ई. में तमिलों ने जो भाषायी परिपक्वता प्राप्त की वे उसकी ओर भी इशारा करती हैं।

31.4 अन्य रचनायें

तोलकाप्पियम के मूल भाग में किजम्बाक्क कुछ भाग यहां दूसरी रचनाओं को बनाते हैं। इनको दूसरी रचनायें कहा गया है क्योंकि ये वीर काव्य की भाट परंपराओं से संबंधित नहीं हैं। परन्तु भाट काव्य की परंपरा की साहित्यिक पृष्ठभूमि से ये बहुत अलग भी नहीं हैं। तोलकाप्पियम के भाग पोरुलदिकरम में पुराने तमिल अकम पुरम की परंपराओं का जो वर्णन हुआ है वह वीर काव्यों की रचना काल के काफी नजदीक है। इसी प्रकार से तिणै ग्रंथों एवं रचनाओं जैसे कि कालवाजि अपेक्षाकृत कुछ पहले के हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों का मानना है कि सिलप्पतिकारम एवं मणिमेकलै दोनों महाकाव्य वीर काव्यों के समकालीन हैं लेकिन इन दोनों को काफी बाद की रचना माना गया है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर ठीक (✓) एवं गलत (×) के चिन्ह लगाओ:

- संगम साहित्य एक समान काल से संबंधित है। ()
- संगम साहित्य कपोलकल्पित है। ()
- वीर काव्य का संकलन मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करके किया गया है। ()
- तमिल साहित्य एवं भाषा के विकास की प्रक्रिया अलगाव में हुई। ()

2) आप तमिल भाट काव्य की साहित्यिक परंपराओं के विषय में क्या जानते हैं? इसका दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए:

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

31.5 सारांश

आपने इस इकाई में पढ़ा कि तमिल साहित्य कितना पुराना है और इसकी रचना किस भाति से हुई है। आपने इस इकाई में वीर काव्य की मुख्य विशेषताओं, उनके संकलन की तकनीक एवं समय निर्धारण की समस्याओं के विषय में भी पढ़ा। जो दूसरी जानकारी आपने प्राप्त की वह है कि पुराने तमिल साहित्य एवं भाषा का क्या स्तर था। यह भी आप जान सके कि पुरानी तमिल रचनाओं का वर्गीकरण कैसे किया गया और इनका संगम काल में काव्य संग्रहों के रूप में संकलन कैसे किया गया।

31.6 शब्दावली

संगम: विद्वानों की एक संस्था जिसने प्राचीन तमिल रचनाओं को संग्रहित एवं वर्गीकृत किया।

अकम: कविताओं का ऐसा संग्रह जिसमें व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों जैसे प्रेम आदि विषयों पर लिखा गया।

पुरम: कविताओं का ऐसा संग्रह जिसमें वस्तुनिष्ठ अनुभवों जैसे कि लूट-खसोट विषयों पर लिखा गया।

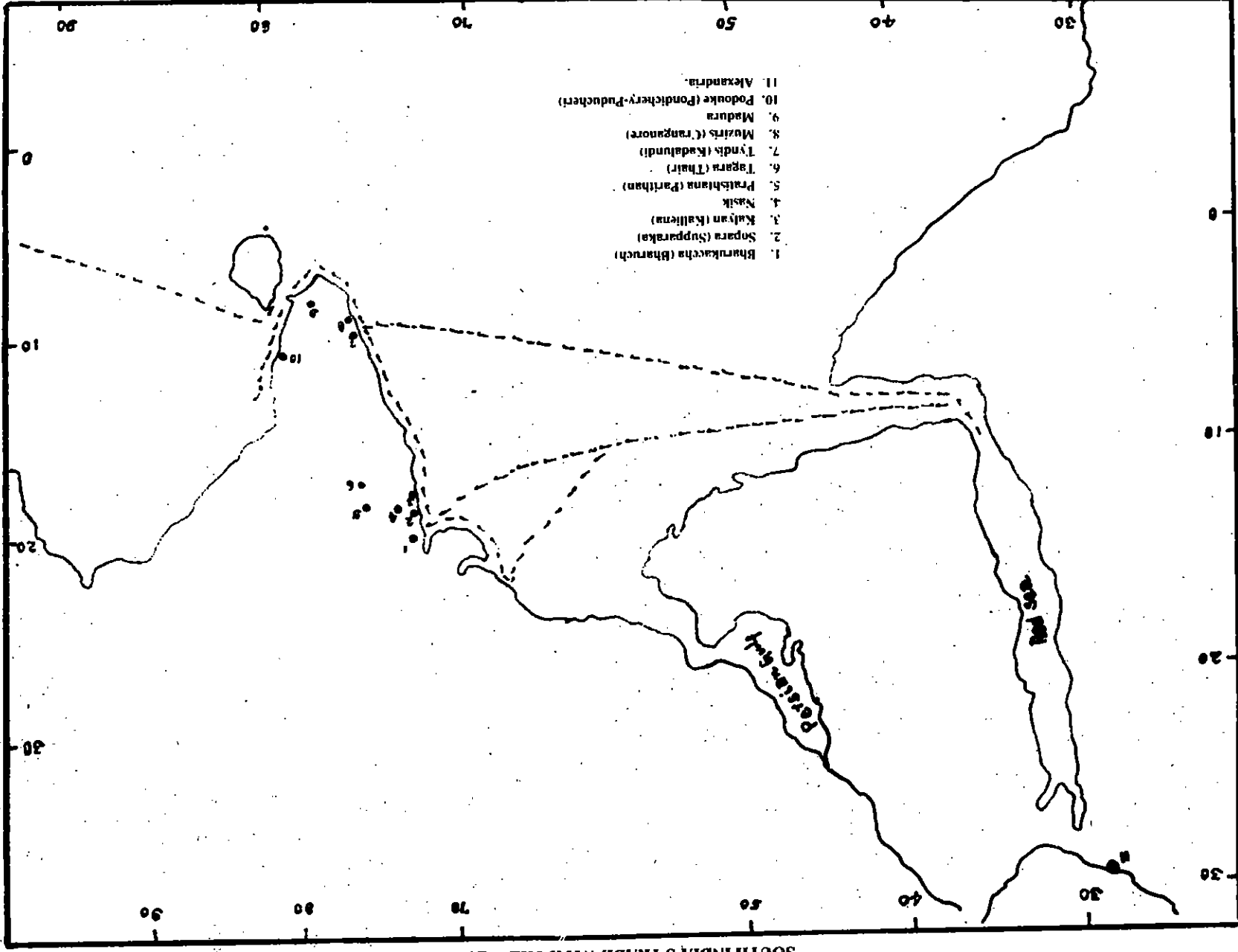
भाट: वे लोग जो अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में घूम-घूम कर कविताओं को संकलित करते और गाते थे।

तुराय: एक प्रकार की काव्यात्मक परम्परा जिसके अनुसार पुरम कविताओं में शीर्षक दृश्य की ओर इशारा किया गया है।

31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

- 1) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×
- 2) भाग 31.3.4 को देखिये।

SOUTH INDIA'S TRADE WITH THE WEST





उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04(N)

इतिहास
भारत : प्राचीन काल से
8वीं सदी ईस्वी

खंड

8

भारतीय राजतंत्र : 300 ई. से 800 ई. तक

इकाई 32

गुप्त साम्राज्य

5

इकाई 33

गुप्तकाल : अर्थव्यवस्था, समाज और राजतंत्र व्यवस्था

17

इकाई 34

उत्तर भारत में गुप्तकाल के बाद के राज्य

27

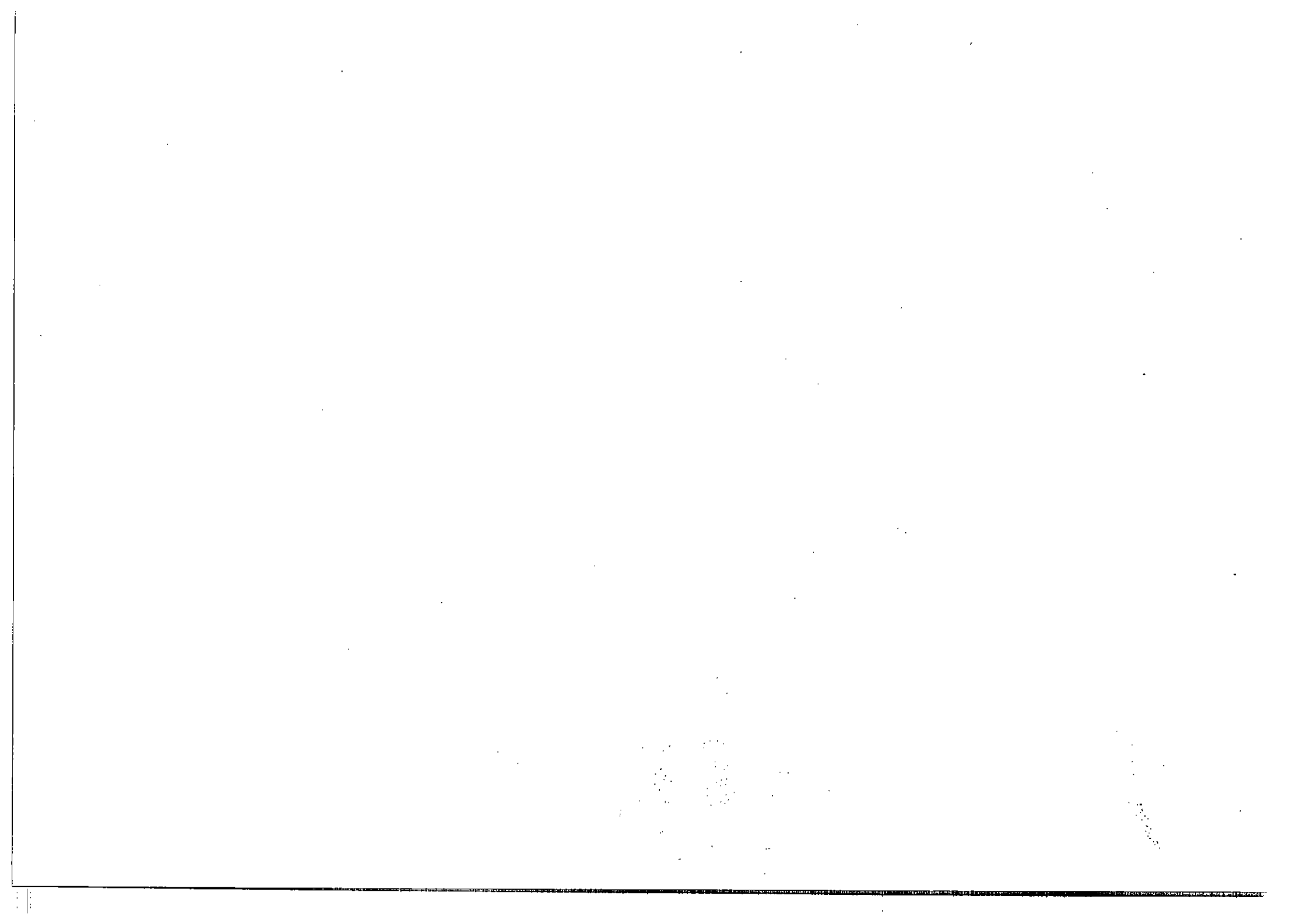
इकाई 35

दक्खिन और दक्षिण भारत के राज्य

36

इस खंड में उत्तरी भारत एवं प्रायद्वीपीय भारत के राजनीतिक इतिहास पर ध्यान केंद्रित किया गया है जिसका काल चौथी सदी ईसवी से आठवीं सदी ईसवी तक है। उत्तर मौर्यकाल के उत्तरी भारत एवं प्रायद्वीपीय भारत की राजनीतिक स्थिति के विषय में आप खंड छठ और सात में पढ़ चुके होंगे। जब आपने पूर्व-मौर्य काल और मौर्य काल की तुलना की होगी तो निश्चित रूप से आप इस निष्कर्ष पर पहुँचें होंगे कि उत्तर-मौर्य काल में शासक-वंशों की संख्या में काफी वृद्धि हो गई थी। इसका अर्थ है कि (1) अधिक से अधिक क्षेत्रों में स्थानीय राज्यों का उद्भव हो रहा था, इन छोटे-छोटे राज्यों का अधिकतर प्रतिनिधित्व स्थानीय शासक परिवार करते थे, (2) जब बड़े राज्यों की स्थापना हुई तो इन छोटे-छोटे स्थानीय राज्यों ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व को खो दिया था वे बड़े राज्यों के अंतर्गत समावक राज्यों के रूप में कायम करते रहे।

चौथी सदी ईसवी के शुरू से जिस एक बड़े राज्य की स्थापना की प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ वह गुप्त साम्राज्य था। आप इन इकाईयों में गुप्त काल के इतिहास के राजनीतिक एवं अन्य पक्षों के विषय में पढ़ेंगे। जिस समय गुप्त साम्राज्य अपनी शक्ति के चरम बिन्दु पर था तो वह पश्चिम में गुजरात में काठियावाड़ प्रायद्वीप से पूर्व की ओर बंगाल तक और उत्तर में उत्तर-पश्चिम भारत से दक्षिण में मध्य प्रदेश तक फैला हुआ था। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस सम्पूर्ण क्षेत्र पर कर्नाट क्षेत्र पर कर्नाट क्षेत्र शासन किया जाता हो, बंगाल विहार और उत्तर प्रदेश ऐसे भी क्षेत्र थे जिन पर नियुक्त अधिकारी गुप्तों के द्वारा गुप्त शासक शासन चलाते थे। दूर-दराज के क्षेत्रों में गुप्त शासकों द्वारा नियुक्त किये गये गवर्नर शासन की चलाते थे जैसे कि स्कन्दगुप्त ने सौराष्ट्र के गवर्नर की नियुक्ति की। वैचारिक संबंधों के द्वारा वनाकर रखा। इनमें वृद्धि से स्वायत्त राज्य भी थे। इन इकाईयों में आप गुप्त काल के प्रशासनिक आर्थिक एवं सामाजिक पक्षों का भी अध्ययन करेंगे। इस खंड में आपको उन महत्वपूर्ण परिवर्तनों से भली-भाँति अवगत करने का प्रयास किया जाएगा जो समाज में घटित हो रहे थे और जिन्होंने उत्तर गुप्त काल में समाज के चरित्र को ही परिवर्तित कर दिया। इन परिवर्तनों के विषय में आपको विस्तृत जानकारी प्रस्तुत खंड 8 में होगी। इस खंड की इकाई 34-35 में आप देश की राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले मुख्य-मुख्य परिवर्तनों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस खंड की इकाई 34 में आप जान पाएँगे कि उत्तर-गुप्त काल में भारत के विभिन्न भागों में वृद्धि-वृद्धि की नवीन राजनीतिक शक्तियों का उदय हुआ। इससे स्पष्ट है कि राजनीतिक प्रभुत्व बृद्धि आर्थिक विद्यमान हुआ और यह कर्नाट प्रभुत्व के कमजोर होने के फलस्वरूप हुआ। परन्तु जब आप इसकी दृष्टिकोण से देखेंगे तब आप यह महसूस करेंगे कि नयी-नयी राजनीतिक शक्तियों की स्थापना भारत के प्रांतीय इतिहास में एक सतत प्रक्रिया थी। आप भी आप देखेंगे कि कर्ण के बड़े राज्य की व्यवस्था एक पीढ़ी से आगे न बढ़ सकी और वह भी अन्ततः बंगाल के पाल, गुर्जर-प्रतिहार तथा राजस्थान तथा काश्मीर राज्य में उचित अनेक राजनीतिक शक्तियों के रूप में पुनः विभाजित हो गई। लेकिन ये राज्य अधिक स्थायी थे, जिन क्षेत्रों में इनकी स्थापना हुई थी उनमें इनका आधार था और बहुत से उदाहरणों में, इन्होंने क्षेत्र या उप-क्षेत्र की राजनीतिक प्रक्रिया को थोक किया। इसकी एक अन्य इकाई में आप भारत प्रायद्वीप के उन राज्यों के विषय में भी पढ़ेंगे जिनकी स्थापना उत्तर-सातवाहन काल में हुई। यहाँ पर आप यह भी देखेंगे कि छोटे-छोटे शासक परिवारों के बीच गुप्त से ताम्रलोखण्ड शासक और उत्तरी कर्नाटक से ताम्रलोखण्ड शासक के बीच गुप्त शासक के पालन-पोषण का प्रभाव और उत्तरी कर्नाटक से ताम्रलोखण्ड शासक के पालन-पोषण का प्रभाव।



इकाई 32 गुप्त साम्राज्य

इकाई की रूपरेखा

- 32.0 उद्देश्य
- 32.1 प्रस्तावना
- 32.2 राजनैतिक पृष्ठभूमि
 - 32.2.1 उत्तर-पश्चिम और उत्तरी भारत
 - 32.2.2 पश्चिम और मध्य भारत
 - 32.2.3 दक्खन और दक्षिण भारत
- 32.3 गुप्तों का प्रादुर्भाव
 - 32.3.1 समुद्रगुप्त
 - 32.3.2 प्रसार और सुदृढीकरण
- 32.4 चन्द्रगुप्त-द्वितीय
- 32.5 कुमारगुप्त-I
- 32.6 स्कन्दगुप्त
- 32.7 गुप्त साम्राज्य का विघटन
- 32.8 साराँश
- 32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप—

- चौथी सदी ई. के प्रारंभ में भारत के राजनैतिक हालात के विषय में जान सकेंगे,
- उन परिस्थितियों से स्वयं को अवगत करा पायेंगे जिनके कारण गुप्त शक्ति का उदय हुआ,
- गुप्त साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढीकरण के बारे में समझ सकेंगे,
- गुप्त शासकों के उत्तराधिकार के क्रम और सैनिक योग्यताओं के विषय में जान पायेंगे, और
- गुप्तों के पतन की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

इस इकाई में चौथी सदी की राजनैतिक स्थिति का संक्षेप में विवेचन करने के बाद हम उस ऐतिहासिक स्थिति का अध्ययन करेंगे जिसने गुप्त वंश के प्रादुर्भाव का मार्ग प्रशस्त किया। इस समय की राजनैतिक रूपरेखा का विवेचन करने का भी प्रयास किया जाएगा। हमने उन विवादों को भी दृष्टि में रखा है जो गुप्त राजाओं के उत्तराधिकार से संबंधित हैं और इसी के साथ-साथ उनकी उन उपलब्धियों का विवेचन भी किया गया है जिन्होंने उनके साम्राज्य के निर्माण एवं सुदृढीकरण में सहायता की। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त-II, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त जैसे राजाओं का साम्राज्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई में उन समस्याओं के विषय में भी लिखा गया है जिनका सामना गुप्त राजाओं ने किया तथा उन कारणों का भी जो गुप्त शासन के पतन के लिये उत्तरदायी थे।

32.2 राजनैतिक पृष्ठभूमि

चौथी सदी ई. के प्रारंभ में भारत में कोई बड़ा संगठित राज्य अस्तित्व में नहीं था। आप खंड छह एवं सात में पढ़ चुके हैं कि उत्तर-मौर्य काल में उत्तर-भारत और दक्खन में दो राज्यों का उदय हुआ। ये उत्तर भारत में कुषाणों का राज्य और दक्खन में सातवाहनों का राज्य थे। यद्यपि कुषाण एवं शक सरदारों का शासन चौथी सदी ई. के प्रारंभिक वर्षों तक जारी रहा, लेकिन उनकी शक्ति काफी कमजोर हो गयी थी और

सातवाहन वंश का शासन तीसरी सदी ई. के मध्य से पहले ही लुप्त हो गया था। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत में पूर्ण राजनीतिक रिक्तता पैदा हो गई। इस समय कोई बड़ी राजनीतिक शक्ति सत्ता में नहीं थी परन्तु छोटी-छोटी शक्तियों का शासन कायम था और नवीन परिवारों के शासकों का उद्भव हो रहा था। इस राजनीतिक स्थिति में गुप्त नाम के वंश ने चौथी शताब्दी ई. के प्रारंभिक समय से अपने साम्राज्य को बनाना प्रारंभ किया। इस वंश की उत्पत्ति के विषय में निश्चित मत नहीं हैं। इस साम्राज्य के इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करने से पूर्व हम विभिन्न क्षेत्रों को अलग-अलग लेकर उस समय की राजनीतिक स्थिति की समीक्षा करेंगे।

32.2.1 उत्तर-पश्चिमी और उत्तरी भारत

तीसरी सदी ईसवी के मध्य से पूर्व ही ईरान में ससैनियों का राज्य स्थापित हो गया था और ससैनियन शासकों ने कुषाण राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारंभ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप उत्तर-पश्चिम भारत के शक्तिशाली कुषाण राजा ससैनियन राजाओं के अधीन उनके सरदार मात्र बनकर रह गये और ससैनियन राजाओं का अधिपत्य हो सिन्ध एवं अन्य क्षेत्रों तक फैल गया।

काफी बड़ी संख्या में ऐसे सिक्के जो प्रारंभिक कुषाण राजाओं के सिक्के पर आधारित हैं, अफगानिस्तान एवं पंजाब से पाये गये हैं। इन सिक्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस क्षेत्र में कुषाण शासकों का शासन बना रहा। अफगानिस्तान, काश्मीर और पश्चिमी पंजाब में किदार कुषाण एवं उसके उत्तराधिकारियों के सिक्के प्राप्त हुए हैं जिससे यह सम्भावना है कि इनमें से कुछ कुषाण शासक प्रारंभिक गुप्त शासकों के समकालीन थे।

पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के कुछ अन्य भागों से प्राप्त हुए पुराने सिक्के यह दर्शाते हैं कि इन क्षेत्रों में कई गणतंत्रीय राज्यों का अस्तित्व था। ये वे राज्य थे जिन पर किसी एक राजा का राज्य नहीं था। सम्भवतः उन पर कई सरदारों का शासन था, यह केवल संयोगवश होता था कि कोई-कोई सरदार स्वयं को एक कबीले के शासक के रूप में आरोपित करता था। जिन गणतंत्रों को गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने विजित किया, उनमें मद्रक, पंजाब में स्थित था, बहुत शक्तिशाली यौधेय वर्तमान हरियाणा में केन्द्रित थे और मालव-राजस्थान में स्थित था। इसी भाँति के अन्य गणतंत्र राज्य अस्तित्व में थे और उनमें से कुछ के नामों को गुप्त प्रमाणों में उल्लिखित किया गया है।

नागाओं की बहुत सी शाखाओं का भी उल्लेख हुआ है जो कुषाणों के पतन के बाद मथुरा तथा अन्य केन्द्रों पर उत्तर भारत में काफी शक्तिशाली हो गये। उत्तर भारतीय जिन शासकों को समुद्रगुप्त ने पराजित किया उनमें से कुछ निश्चित रूप से नागा जाति के थे।

32.2.2 पश्चिम और मध्य भारत

आप खंड 6 में पढ़ चुके हैं कि उत्तर-मौर्य काल में क्षत्रय शासकों की एक शाखा ने स्वयं को पश्चिम भारत के शासकों के रूप में स्थापित किया। क्षास्त्र शाखा ने जिसका प्रसिद्ध शासक शक क्षत्रय रुद्रदमन था 304 ईसवी तक शासन किया और तत्पश्चात् नये शासकों की शाखा ने शासन करना शुरू किया। फिर भी क्षत्रय शासन का अन्त चौथी सदी ई. के अन्तिम वर्षों में उस समय हुआ जबकि गुप्त शासक चन्द्रगुप्त-II ने उनको विजित किया और उनके क्षेत्रों का अधिग्रहण कर लिया। प्राचीन विदर्भ के क्षेत्र में जिसका केन्द्र विन्दु उत्तर-पूर्वी महाराष्ट्र में स्थित नागपुर था, तीसरी शताब्दी ईसवी के मध्य में एक नयी राज शक्ति का उदय हुआ। यह शक्ति वाकाटक थी और शासकों की इस नवीन धारा का प्रारंभ विन्ध्याशक्ति के द्वारा किया गया था। वाकाटक राज्य शीघ्र ही शक्तिशाली हो गया और उसकी एक शाखा की स्थापना वस्तुगुल्म (अकोला जनपद में आधुनिक बसिम) में भी की गई। बाद में वाकाटक वंश के गुप्तों के साथ वैवाहिक संबंध हो जाने के बाद घनिष्ठ संबंध कायम हो गये।

32.2.3 दक्खन और दक्षिण भारत

सातवाहन राज्य के पतन के साथ-साथ दक्खन के विभिन्न भागों में कई राजतंत्रीय परिवारों का उदय हुआ। आंध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्र में इक्ष्वाकु, सलान्काय और दूसरे राजवंशों का राज्य कायम हो गया। कर्नाटक में सबसे महत्वपूर्ण शाही परिवार कदम्ब था। कदम्ब राज्य की स्थापना ब्राह्मण मौर्य सर्पन द्वारा की गयी थी और उसका तालगुण्डा शिलालेख, उन महत्वपूर्ण परिस्थितियों की जानकारी देता है जिनके अन्तर्गत कदम्ब राज्य की स्थापना एवं उसका प्रसार हुआ। पल्लवों का शासन तमिलनाडु में 9वीं शताब्दी ईसवी तक कायम रहा और वे तमिलनाडु में विशेष शक्तिशाली राजवंश बन गया तथा उनके प्रमाणों से प्राप्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट

इलाहाबाद में स्थित अशोक के स्तंभ पर एक अभिलेख (बाद की तारीख में) खूब हुआ है जिसकी प्रमाण प्रशस्ति नाम से भी जाना जाता है) जो समुद्रगुप्त के सिंहासनारोहण और विजयों के विषय में सूचनाएं देता

32.3.1 समुद्रगुप्त

किया। उसके पुत्र समुद्रगुप्त के शासन काल में गुप्त साम्राज्य का काफी प्रसार हुआ। महाराजाधिकार की उपाधि धारण की थी, इतिहास ऐसा माना जाता है कि उसने एक नवीन वर्ष का प्रारम्भ वास्तव में नये वर्ष का प्रारम्भ किया जिसकी गुप्त संवत् के नाम से जाना जाता है परन्तु चन्द्रगुप्त-1 ने चन्द्रगुप्त-1 ने भी 319-320 ई. से नये वर्ष का प्रारम्भ किया। यह किसी भी प्रमाण से स्पष्ट नहीं है कि उसने उसके राज्य के अंतर्गत उत्तर प्रदेश, बिहार एवं बंगाल के भाग थे।

चन्द्रगुप्त के राज्य की सीमा विद्यारण्य के लिए कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। परन्तु ऐसा माना जाता है कि शासक कुषाण शासकों के क्षेत्रों से संबंधित थे। लिए कुषाण प्रणाली के सीने के सिक्कों का अनुसरण किया जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि गुप्त कक्षानी से संबंधित बैठे देवी का चित्र बना है। ये सिक्के सीने के बने हुए हैं। गुप्तों ने सिक्कों के बनाने के उसकी रानी कुमरदेवी का चित्र बना हुआ है। और इनके दूसरे भाग पर लिखवायह (अर्थात् लिखवा) की संघर्ष की जानकारी हमें एक विशेष प्रकार के सिक्कों से होती है। इन सिक्कों के अनुमान पर चन्द्रगुप्त और करने के बाद लिखवियों के साथ वैवाहिक संबंधों की मदद से उसने अपने राज्य का प्रसार किया। इस स्वतंत्र राजा था जिसने महाराजाधिराज की उपाधि को धारण किया। माघ में अपनी स्वतंत्रता को घोषित अभिलेख हमको बताते हैं कि श्रीगुप्त प्रथम राजा था और उसके बाद पटौकव राजा हुआ। चन्द्रगुप्त-1 पर

वैधी सदी ई. के दूसरे दशक में स्वतंत्र शासक हो गये। में उत्तर-पश्चिम भारत में गुप्त शासक शासन करते थे। साहित्यिक एवं पुरातात्विक खोजों से स्पष्ट है कि वे यह भी संभव है कि तीसरी सदी ई. के अंतिम दशकों में कुषाण शासकों की एक शाखा के सदस्यों के क है।

• प्राथमिक गुप्तों के क्षेत्रों के विषय में पुराणों में जो विवरण दिया गया है उससे भी इसका संकेत मिलता प्रतीत होता है।

• इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख जिसमें गुप्त के वंश के प्राथमिक शासकों की उपलब्धियों की उल्लेखित किया गया है, इसी क्षेत्र में स्थित है। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले गुप्त शासकों के मन्दार से भी ये गुप्तों की उत्पत्ति का स्पष्ट पूर्वी उत्तर प्रदेश था।

उनकी उत्पत्ति का स्पष्ट बताते हैं। निम्नलिखित तर्कों के आधार पर इस समय हम यह कह सकते हैं कि स्थानों का नाम बताते हैं, कुछ उसकी बंगाल में, कुछ बिहार में, माघ में और अन्य कुछ उत्तर प्रदेश की प्रकार के सुझाव स्थिति की जांच बना देते हैं। विभिन्न विद्वान, उनकी उत्पत्ति के स्थान के विषय में विभिन्न कि सातवाहन शिलालेख में प्रयोग हुए "शिवगुप्त" के साथ उनके वंश की उत्पत्ति का संबंध है। परन्तु इस सारी शक्यों उठ खड़ी हुई हैं। उनके नामों के बाद में गुप्त शब्द का प्रयोग होने से यह भी तर्क दिया गया। गुप्त वंश की वंशावली और प्राथमिक इतिहास के बारे में बहुत कम जानकारी है जिसके फलस्वरूप बहुत

32.3 गुप्तों का प्रादुर्भाव

महत्त्वपूर्ण है। राज्यों का उदय हो रहा था। यह एक नयी विशेषता थी जो बाद के राजनैतिक इतिहास के लिये बड़ी ही भी रेखांकित किया जाना चाहिए कि बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश के जंगलों एवं अन्य क्षेत्रों में पहली बार का वर्णन नहीं किया गया है केवल उनके विषय में ही लिखा गया है जो तत्कालिक रूप से महत्त्वपूर्ण थे। यह विभिन्नगोप का कांची में पराजित किया। उपरोक्त संक्षिप्त विवरण में बहुत से क्षेत्रों एवं राजवंशीय परिवारों बनाया। जब गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने दक्षिण में अपना सैनिक अभियान किया तो उसने पहले नरेश गण्डिकाण्ड के शिवाण्डत जनपद में स्थित कांची या कांचीपुरम की पत्तियों से अपने राज्य की राजधानी शासक था तथा उसने अपने राज्य में आर्य प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के कुछ भागों को शामिल किया। माना गया है। इस वंश के शिवदेववर्धन ने चौथी सदी ई. के प्रारम्भ में शासन किया। वह एक शक्तिशाली भाषा में लिखे गए थे और वे लोहे की छतों के रूप में थे। उनको 250 ई. से 350 ई. के बीच के समय के है कि उनका शासन तीसरी सदी ई. के मध्य में शुरू हुआ। प्राथमिक पत्तव शासकों के अभिलेख प्राकृत

आधारित है।

के लिए सभी सैलिक अभियांत्रिकी विद्यार्थियों को विद्यार्थी कर्म प्रसिद्ध कर रहे हैं कि वे सभी दरिद्रों की प्रथम प्रशिक्षण पर विभिन्न क्षेत्रों में अपनायी गई आकाशक नीति की विवेचना करेंगे। यह तथ्य हम पुनः बता दें कि समुद्रगुप्त जा सका। इस नीति से कुछ समय के लिए स्थानिक भी स्थापित हो गया। अब हम संक्षेप में समुद्रगुप्त द्वारा कल कर लिया गया यह नीति काफ़ी लाभदायक सिद्ध हुई और इससे कारगर निवृत्त भी कायम रहे। नीति का अनुसरण उन क्षेत्रों के लिए किया गया जो काफी दूरी पर थे और इससे संपर्क की समस्या का वास्तव में उन शासकों ने उसके अधिपत्य को स्वीकार किया और उसकी उपहार भेंट किन्हीं इस प्रकार की पुनः स्थापित किया किन्हीं पराजित किया था तथा उन क्षेत्रों पर अपने शासन को कायम भी रखा। वास्तविकता की भी रेखांकित करना चाहिये कि कुछ क्षेत्रों में विशेषकर दक्षिण में, उसने उन राजाओं को उस प्रक्रिया का शीघ्रता ही आ लिये परकाया गुप्त साम्राज्य के निर्माण के रूप में हुई। हमें इस गुप्त शासक के प्रसार एवं सुदृढीकरण के लिए समुद्रगुप्त ने विजयों की आकांक्षक नीति को अपनाया। इससे

32.3.2 प्रसार एवं सुदृढीकरण

1. समुद्रगुप्त की प्रथम प्रशिक्षण



की।

सिंहसन के उत्तराधिकार के संबंध में समस्या का समाधान किया हो किन्तु अंततः उसने इस पर विचार प्रामाणिकता से वैवाचिक शोध समय के लिए। यह भी है कि वास्तविकता की उद्घोषणा के बावजूद भी समुद्रगुप्त ने केवल यही कह सकते हैं कि कच्छ के सिक्के इतनी कम संख्या में पाये गये हैं कि अगर वह सिंहसन पर इस विवाद का कोई हल नहीं है क्योंकि प्रत्येक विचार के समर्थन एवं विरोध में तर्क लिये जा सकते हैं। हम

उसने समुद्रगुप्त नाम की धारण किया।

- तीसरे विचार के अनुसार समुद्रगुप्त का प्रांशिक नाम कच्छ था और दक्षिण की विजय करने के बाद
- दूसरा विचार यह है कि समुद्रगुप्त ने अपने भाई की मूर्ति में इन सिक्कों की जारी किया।

- एक परिभाषा यह दी जाती है कि समुद्रगुप्त के भाइयों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और सबसे बड़े भाई कच्छ की सिंहसन पर बैठा दिया किन्तु उत्तराधिकार की लड़ाई में वह मारा गया।
- अभिधेयों में वर्णित है। इस सन्दर्भ में बहिन से तर्क प्रस्तुत किये गये हैं :

(II) कच्छ का नाम गुप्त शासकों की अधिकृत सूची में शामिल नहीं है वैसे कि वह गुप्त शासकों के अन्य यह विवाद इस विषय उलझा हुआ क्योंकि I कच्छ के सिक्के बाल्किल समुद्रगुप्त के सिक्कों के ही समान हैं के नाम से जारी किये गये कुछ सीने के सिक्कों की प्रामाणिकता में संदेह में विवाद को एक नया मोड़ दिया। जो राज कुमार राजा बनने का दावा पेश कर रहे थे उनकी इस घोषणा के द्वारा शांत कर दिया गया। कच्छ और बहिन से राज्य परिवार वालों की ईर्ष्या का कारण बना। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि में अपने पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। यह सभी दस्तावेजों के आन्त की अनुमति स्वरूप पर सुदृढीकरण गया है। अभिधेय में उल्लेख है कि महाराजाधिराज समुद्रगुप्त-1 ने अति भावनात्मक आवाज है। दरिद्रता नाम के एक महत्पूर्ण राज्याधिकारी ने 33 पंक्तियों की संकलित किया था और उन्हीं की इस

कुछ इतिहासकारों का मानना है कि समुद्रगुप्त ने आदर्श में केवल एक बार अपना सैनिक अभियान किया। परंतु कुछ अन्य इतिहासकारों का कहना है कि प्रयागप्रशस्ति में समुद्रगुप्त की विजयों का विवरण

समयागुप्तर दिया गया है। जिसका यह अर्थ निकलता है कि समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत में दो अभियान चलाये। ऐसा इसलिए है कि पहले आदर्श के तीन राजाओं का नाम उद्धृत है और फिर उसके दक्षिण अभियान की उद्धृत किया गया है तथा फिर आदर्श के नौ राजाओं के नामों को उद्धृत किया गया है ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त के उत्तराधिकार के संघर्ष में फसा हुआ होने के कारण कुछ शासकों ने अपने आधिपत्य को स्थापित करने का प्रयास किया। इस संदर्भ में यह भी हो सकता है कि समुद्रगुप्त ने अत्यंत नागसेन और कामरूप तथा दिल्ही क्षेत्रों के उपर शासन कर रहे थे। यद्यपि इन क्षेत्रों की स्पष्टता: पहचान करने पर खिन्नाभाव है परन्तु यह स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त ने उनकी पराजित कर न केवल नागा बाटी पर अपना अधिकार कर लिया बल्कि उसके आस-पास के क्षेत्र भी उसके नियंत्रण के अंतर्गत आ गये।

2) दक्षिण में अभियान

प्रयाग प्रशस्ति में दक्षिणपथ या दक्षिण भारत के 12 शासकों के नाम दिये गये हैं जिनको समुद्रगुप्त ने पराजित किया था ये निम्नलिखित थे —

- कोसल (रायपुर, दुर्ग, मन्डलपुर, और बिलसपुर जिले) के शासक महेंद्र।
- महाकदरा (उड़ीसा प्रदेश का जेयपुर जंगल) के शासक व्याधराज।
- कोरवा (संभवतः मध्य प्रदेश का सोनपुर क्षेत्र या महेंद्र पहाड़ी का उत्तर-पूर्वी मैदानी भाग) का शासक मन्तराज।

- पिच्युर (पिठा सुरम, पूर्वी गोदावरी जिला) का महेंद्रगिरि।
- काट्टेरा (गजाम जिला) का स्वामीदत्ता।
- सरदपल्ला (चिककोडे या पडिचमी गोदावरी जिला) का दमन।
- कांची (चलैयूर जिला) का विष्णुगोप।
- अजायकता (गोदावरी घाटी) की नीलराज।
- वेणी (कृष्णा-गोदावरी डेल्टा में सिलेर) का हस्तीवर्मन
- पालका (नीलेश्वर जिला) का अग्रसेन।
- देवराय (विशाकापट्टम जिले में से लक्ष्म वीरी) का कर्बेर।
- कृष्णपुर (संभवतः तमिलनाडु के उत्तरी अरकोट में) का धानजय।

पुनः इन राजाओं और इनके राज्यों की पहचान को लेकर इतिहासकारों के बीच मत भेद है। प्रयागप्रशस्ति बताती है कि समुद्रगुप्त ने दक्षिणपथ के प्रति अपनी सहजगति को दिखाना स्यात्क पहले ही उसने उनकी पकड़ (ग्रहण) लिया और फिर उनकी छोड़ (मुक्त कर) दिया।

समुद्रगुप्त ने आदर्श या उत्तरी भारत के राजाओं की अधिकांश दक्षिण पथ के राजाओं के प्रति पूर्णतः श्रम नीति का अनुसरण किया। उसने आदर्श के राजाओं को न केवल पराजित किया बल्कि उनके राज्य गुप्त साम्राज्य के अधीन आ बन गये। उत्तरी भारत में पराजित राजा इस प्रकार थे: रुद्रदेव, मलिहा, नागदेव, बर्बरमा, गणपति नाग, नागसेन, अच्युत, नन्दी, बलवर्मा और अन्य। उन सबकी पहचान करना असंभव है, लेकिन यह निश्चित है कि वे सब उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर शासन कर रहे थे। उनमें से कुछ निश्चित रूप से नामराज्य थे जो गुप्तों से पूर्व बृहत् से क्षेत्रों में शासकशाही थे। कुछ शासक जैसे कि बर्बरमा जो पडिचमी जंगल के क्षेत्र पर शासन करता था, नये वंशों का प्रतिनिधित्व करते थे। प्रशस्ति में आने विवरण है कि वन क्षेत्रों के सभी राज्यों को समुद्रगुप्त ने सेवकों जैसे स्थिति में पहुँचा दिया। दक्षिण क्षेत्रों में सीमावर्ती राज्यों जैसे कि सामतट (दक्षिण-पूर्वी बंगाल), कामरूप (असम), नेपाल आदि, गणतान्त्रिक राज्यों जैसे कि

गुप्त अभिलेखा में उद्धृत है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त-II था। लेकिन कुछ साहित्यिक स्रोतों और ताब के सिक्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त था। विशाखदत्त ने अपने नाटक देवीचन्द्रगुप्तम में लिखा है कि चन्द्रगुप्त-II ने अपने बड़े भाई समुद्रगुप्त की हत्या

32.4 समुद्रगुप्त-II

3) चौथी सदी ईसवी के प्रारंभ पर उत्तरी भारत में पांच छोटी राजशाहियों की सूची बनाइये।

- 1) रिक्त स्थानों को भरिये—
- अ) चौथी सदी ईसवी के प्रारंभ के समय उत्तर भारत में (बहुत से/कोई नहीं) छोटे राज्य थे।
- ब) चन्द्रगुप्त-I का (शर्का/लिच्छवियों) के साथ वैवाहिक संबंध था।
- स) प्रयागप्रशस्ति में (प्रदर्शन/समुद्रगुप्त) की विजयों का वर्णन है।
- 2) गुप्त साम्राज्य के प्रसार के लिये समुद्रगुप्त के द्वारा जो प्रयत्न किये गये उनके 10 पंक्तियों में वर्णन कीजिये।

भाग 1

किया।

समुद्रगुप्त द्वारा रखी गयी और उसके उत्तराधिकारियों ने इसी आधारशिला पर गुप्त साम्राज्य का निर्माण गया है परन्तु कुछ इनमें उचित ही है। परन्तु यह निश्चित है कि गुप्त साम्राज्य की सैनिक आधारशिला प्रयागप्रशस्ति के सकलनकर्ता हरिश्चर के द्वारा दिये गये इस विवरण में कुछ की बहुत बड़ा-बड़ा कर लिया या शीलका के शासकों को भी शामिल किया जा सकता है।

भारत के विदेशी शासकों जैसे कि अग्निम कुषाणों और शर्कों को तथा इसमें विभिन्न द्वीपों जैसे कि सिन्धुतल उनकी अपनी स्वतंत्रता के लिये समुद्रगुप्त की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती थी। इस श्रेणी में उत्तर पश्चिम लिजों का प्रशासन करने के लिये उससे प्रार्थना की। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वे अधीनस्थ राज्य थे और उन्होंने "स्वयं को समर्पित करके, अपनी-पुत्रियों को विवाह के लिये प्रस्तुत किया और स्वयं अपने राज्यां एवं उनकी उपासना की। अन्य श्रेणी के राज्यों के शासकों ने उसकी सम्प्रभुता को दूसरे रूपों में स्वीकार किया। इन राज्यों ने वस्तुओं के रूप में भेंट और नगराना दिया, उसकी आज्ञाओं का पालन किया और उन्होंने

वर्क्युप-II के विद्वानों को भी संरक्षण प्रदान किया। उसने 415-16 ई. तक शासन किया।

जनता समझ एवं प्रसन्न थी।

के जो उस समय गुप्त शासक के साथ नियंत्रण में था, राजा की बड़ी प्रशंसा की है और उसके अधीन परन्तु उसने अपने संस्कारों में उस समय के राजा के नाम का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु उसने मध्य देश-उत्तरे इस समय की कुछ निश्चित सामाजिक एवं प्रशासनिक विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। आया था। उसने अपने संस्कारों के अन्तर्गत उन विभिन्न स्थानों का विवरण किया है जहाँ भी वह गया और इस समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना है कि चीनी यात्री फाह्यान बौद्ध धर्म के ग्रंथों की खोज में भारत

परिव्रम, उत्तर परिव्रम और पूर्वी भारत की सीमाओं तक बढ़ा दिया।

इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुप्त साम्राज्य की सीमाओं को

• महारथी अभिलेख में बंगा (बंगाल) के राज्यों पर चन्द्रगुप्त की विजय का उल्लेख है।

रघु के साथ की है क्योंकि रघु की विजयों की तुलना चन्द्रगुप्त-II की तुलना कालिदास के नाटक रघुवंश के मुख्य पात्र (है) की पराजित किया। कुछ विद्वानों ने चन्द्रगुप्त-II की तुलना कालिदास के नाटक रघुवंश के मुख्य पात्र चन्द्रगुप्त ने सात नदियों के सिंधु क्षेत्र का पार कर वालिकेशिकाओं (इसकी पहचान बैक्ट्रिया के रूप में की ग

• महारथी के जो संक्षेप पर अंकित अभिलेख में जो दिल्ली में कृष्ण-मीनार प्रांगण में स्थित है, "नरेश

चन्द्र" की तुलना भी विद्वानों के द्वारा चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ की है। इस अभिलेख के अनुसंधान

• बाद में चलकर चन्द्रगुप्त-II की शक्ति के विस्तार यह स्पष्टता शकरी विक्रमादित्य परमरा ने बदल गई

लिसका अर्थ है कि "विक्रमादित्य" शक्ति का शत्रु था।

लिया।

• इस क्षेत्र के लिये गुप्त शासकों ने चन्द्रगुप्त के समय से ही शक्तों के सिक्कों की मूर्ति के सिक्के जारी किया। उन्होंने इन सिक्कों में केवल अपने विशेष चिन्हों की जोड़ा अन्यथा ये सिक्के शक्तों के सिक्कों के जैसे ही थे। यह निश्चित रूप से यह दर्शाता है कि शक-क्षेत्रों की चन्द्रगुप्त-II ने अपने ध्वज में कर

• इस काल के बाद शक्तों द्वारा जारी किये गये सिक्के प्राप्त नहीं होते यद्यपि बिना किसी अवरोध के उनके द्वारा जारी किये गये/महारी चार शताब्दियों के सिक्के मिलते हैं।

लिया।

विजय जगमग सम्पूर्ण थी क्योंकि:

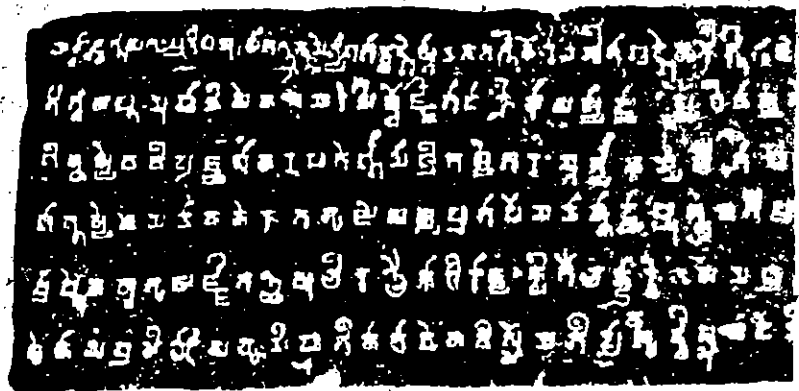
कि वह सम्पूर्ण जगमग की विजयी करने की आकांक्षा रखता था।" शक शासकों के प्रदेशों की उसके द्वारा लिये वह कुछ समय के लिये पूर्वी मालवा में ठहरा। एक अभिलेख में उसकी उद्धृत करते हुए कहा गया है शैलिक आधिकारियों का संदर्भ है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा गया है कि अपने अभियानों की तैयारी के विधानों की गुफाओं के अभिलेख तथा सांची के एक अभिलेख में चन्द्रगुप्त-II, उसके अधीनस्थ राजाओं एवं और वाकाटकों के साथ वैवाहिक संबंधों का अभियानों की तैयारी के लिये विशेष महत्त्व है। सांची के पास उगा बन गया। चन्द्रगुप्त के शक्तों के विस्तृत अभियान की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। उसके नागाओं भारत में शक क्षत्रय शासन का अंत हो गया और गुजरात, काठियावाड़ तथा दीक्षीण मालवा गुप्त साम्राज्य के उसने शक नरेश क्वरसिंह-III की पराजित किया और उसके राज्य का अधिग्रहण कर लिया। इससे परिवर्तनी

निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त है:

के अभियानों, एवं सफलताओं की सूचनावें कुछ निश्चित अभिलेखों, साहित्यिक स्रोतों और सिक्कों से यद्यपि उसके शासनकाल की घटनाओं का उल्लेख प्रथाप्रशासन के रूप में नहीं हुआ है फिर भी हम चन्द्रगुप्त किये और बाद में उसकी बेटा प्रभावती का विवाह उसने बाकाटक वंश के राजा क्वरसेन-II के साथ किया। करना पड़ा। उसने नागा राजकुमारी कुबेरनाग के साथ विवाह करके नागाओं के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित धरा हो गई थी और दोबारा गुप्त साम्राज्यिकता को स्थापित करने के लिये उसे शैलिक अभियान का संवाहन हम कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त सिंहसैन पर उस समय बहुत अधिक पुनः गुप्त साम्राज्य के समूह सम्मिलित वैशाखी की एक महार पर ध्रुवदेवी की गोविन्दगुप्त (चन्द्रगुप्त का पुत्र) की माता के रूप में उद्धृत किया है। विदिशा से प्राप्त हुई जैन मूर्तियों के आधार पर खुदे अभिलेखों में महाराज रामगुप्त का नाम है। इसी प्रकार, आदि में भी इस घटनाक्रम का वर्णन है। रामगुप्त के नाम से खुदे कुछ तांबे के सिक्के पाये गये हैं और हला कर दी और ध्रुवदेवी के साथ विवाह कर लिया। कुछ अन्य ग्रन्थों जैसे कि हर्षचरित, काव्यमीमांसा के विस्तृत सफलता प्राप्त की परन्तु इसी घटनाक्रम में अपनी भाई के प्रति शत्रुता के कारण उसने उसकी भी इसका विरोध किया और वह भी बदलकर ध्रुवदेवी के शेष में शक राजा के रूप में गया। उसने शक राजा बचाने के लिये वह अपने पत्नी की शक राजा को समर्पित करने के लिये सहमत हो गया। चन्द्रगुप्त ने की। उसने ऐसा इसलिए किया कि रामगुप्त की शक्तों के हाथों पराजय होने वाली थी और अपने राज्य को



2. महरौली का लोह स्तम्भ



3. लोह स्तम्भ का लेख

32.5 कुमारगुप्त- I

चन्द्रगुप्त द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुमारगुप्त था। उसके विषय में हमें कुछ निश्चित अभिलेखों एवं सिक्कों से सूचनायें प्राप्त होती हैं। जो इस प्रकार हैं:

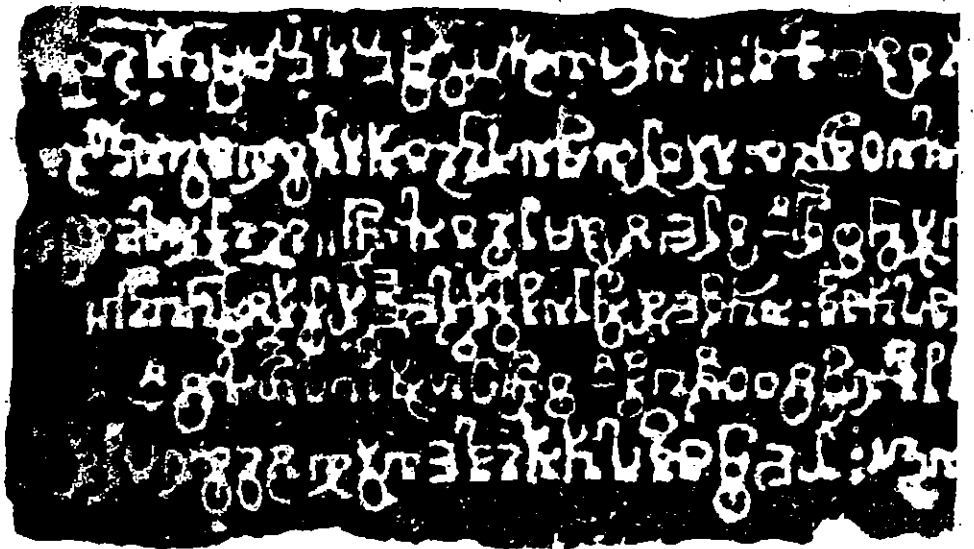
- उसके प्रारंभिक काल का अभिलेख वह है, जो बिलसाड़ (एटा जिला) से प्राप्त हुआ है और जिसकी तिथि 415 ई. (गुप्ता तिथि 96) है।
- करमदंद (फैजाबाद) से प्राप्त उसके मन्त्री के अभिलेख (436 ई.) में उल्लेख है कि उसकी प्रसिद्धि चारों समुद्रों तक फैल गई।
- मन्दसौर से प्राप्त शिला अभिलेख (436 ई.) में उल्लेख है कि कुमारगुप्त का शासन सम्पूर्ण भू-भाग पर था।
- दामोदरपुर ताम्र प्लेट अभिलेखों (443 ई. और 447 ई.) में उसका उल्लेख महाराजाधिराज के साथ हुआ है और उसने स्वयं को अपने साम्राज्य के सबसे बड़े प्रशासनिक क्षेत्र पुण्डरवर्धन मुक्ति (प्रांत) का राज्यपाल (उपारिका) नियुक्त किया।
- कुमारगुप्त की अंतिम तिथि की जानकारी उसके चांदी के सिक्के-445 ई. (गुप्ता संवत् 136) से प्राप्त होती है।

स्कन्दपुराण का उत्तराधिकारी बना और जो संभवतः गुप्त वंश का अंतिम शक्तिशाली शासक था। अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिये उसको पृथ्वीपुत्रों के साथ संबंध करना पड़ा और इसी समय देश की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं के पार हूणों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। स्कन्दपुराण ने सफलतापूर्वक हूण आक्रमण को पीछे धकेल दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन युद्धों के कारण साम्राज्य की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा और स्कन्दपुराण के द्वारा जारी किये गये सोने के सिक्के इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

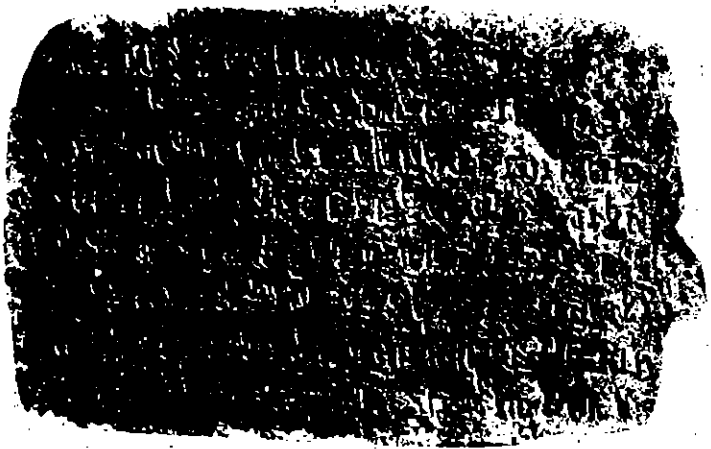
प्रारम्भिक शासकों के द्वारा जारी किये गये सोने के सिक्कों की तुलना में स्कन्दपुराण के द्वारा जारी किये गये सोने की मात्रा काफी कम थी। यद्यपि उसके द्वारा जारी किये गये सिक्कों का वजन प्रारम्भिक सोने के सिक्कों से अधिक था किन्तु उसके सिक्कों में सोने की मात्रा काफी कम थी। यद्यपि उसके द्वारा जारी किये गये सिक्कों में सोने की मात्रा काफी कम थी। यद्यपि उसके द्वारा जारी किये गये सिक्कों से काफी कम था। यह भी प्रतीत होता है कि गुप्त वंश का

32.6 स्कन्दपुराण

(ब) गुप्त



(अ) कुशाण के सिक्के



4. कुशाण के सिक्के

उसके अधिलेख विशाल क्षेत्र में विस्तृत थे जिससे स्पष्ट है कि उसका शासन पूर्व में माघ एवं बंगाल तक और पश्चिम में गुजरात तक फैला हुआ था। उसने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। ऐसा कहा जाता है कि उसके शासन के अंतिम वर्षों में विदेशी आक्रमण हुआ जिसकी उसके पुत्र स्कन्दपुराण के फलस्वरूप रोका जा सका। उसके वाकाटक शासकों के साथ मधुर संबंध थे जिनकी पहले ही वैवाहिक संबंधों के द्वारा स्थापित किया गया था।

वह अंतिम शासक था जिसने पश्चिमी भारत में चांदी के सिक्कों को जारी किया था। उसके जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख है कि उसने अपने शासन काल में जनहित के कार्यों को भी किया। सुदर्शन झील (जिसका निर्माण मौर्य काल में हुआ था) भारी वर्षों के कारण फट गयी थी परन्तु उसके शासन के प्रारंभिक वर्षों में उसके गवर्नर परनदत ने इसकी मरम्मत करायी। इससे स्पष्ट है कि राज्य ने जनहित के कार्यों को भी किया। स्कन्दगुप्त की अंतिम तिथि 467 ई. के बारे में जानकारी उसके चांदी के सिक्कों से प्राप्त होती है।

स्कन्दगुप्त के बाद के गुप्त शासक

यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों ने किस क्रम में शासन किया। स्कन्दगुप्त भी स्वयं सिंहासन का उचित अधिकारी नहीं था, इसलिये उसको सिंहासन प्राप्त करने के लिये अन्य दावेदारों के साथ संघर्ष करना पड़ा। यही कारण है कि एक मोहर अभिलेख में स्कन्दगुप्त के बाद शासकों के क्रम को स्कन्दगुप्त से नहीं अपितु कुमारगुप्त-I और उसके पुत्र पुरुगुप्त से उल्लेखित किया गया है। दूसरे, यह भी संभव है कि गुप्त साम्राज्य का विभिन्न क्षेत्रों में विघटन स्कन्दगुप्त के शासन के अंतिम वर्षों में ही प्रारंभ हो गया हो। इसी कारणवश पश्चिम मालवा से प्राप्त एक अभिलेख में जो उसके शासन काल के अंतिम वर्ष का है स्कन्दगुप्त के नाम का उल्लेख नहीं है परन्तु इसका प्रारंभ अन्य शासकों के नाम जैसे कि चन्द्रगुप्त-II के नाम से होता है।

अभिलेखों में स्कन्दगुप्त के जिन उत्तराधिकारियों का उल्लेख हुआ है वे इस प्रकार थे: बुद्धगुप्त, वैज्यगुप्त, भानुगुप्त, नरसिंहगुप्त बालादित्य, कुमारगुप्त-II और विष्णुगुप्त। इसकी कोई संभावना नहीं है कि इन शासकों ने विशाल साम्राज्य पर प्रारंभिक काल के गुप्त शासकों चन्द्रगुप्त-II और कुमारगुप्त-I की भांति शासन किया हो। गुप्तों का शासन 550 ई. तक जारी रहा परन्तु उनकी हास होती शक्ति का कोई महत्व नहीं रह गया था।

32.7 गुप्त साम्राज्य का विघटन

इस भाग में हम उन कारणों का विवरण करेंगे जो गुप्त साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी थे:

1) हुण आक्रमण

कुमारगुप्त-I के शासन काल से ही उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं को हुणों ने आक्रांत करना शुरू कर दिया। हुण सेन्ट्रल एशिया का एक कबीला था जो सफलतापूर्वक विभिन्न दिशाओं में बढ़ रहा था और जिसने उत्तरी-पश्चिम, उत्तरी और पश्चिमी भारत में कई स्थानों पर अपने राज्यों की स्थापना कर ली थी। परन्तु इस समय में उनके आक्रमणों को निष्क्रिय कर दिया गया था। परन्तु पांचवीं सदी ई. के अंत में हुण सरदार तौरमण ने पश्चिमी एवं केन्द्रीय भारत के अधिकतर भागों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसके बेटे मिहिरकुल ने अपने आधिपत्य को ओर आगे बढ़ाया। इस प्रकार हुणों का आक्रमण विशेषकर उत्तरी-पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्रों में गुप्ता प्रभुत्व के लिये बहुत घातक साबित हुआ।

2) प्रशासनिक कमजोरियाँ

जिन पराजित राजाओं ने गुप्त शासकों के सामन्तीय प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया उन स्थानीय सरदारों या राजाओं को पुनः स्थापित करने की नीति का अनुसरण गुप्त राजाओं ने किया। वास्तव में, इन क्षेत्रों पर कठोर और प्रभावकारी नियंत्रण को स्थापित करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किये गये। इस प्रकार यह स्वाभाविक ही था कि जब कभी भी उत्तराधिकार के प्रश्न या कमजोर राजा को लेकर गुप्त साम्राज्य में कोई संकट होता तो इसके अन्दर ही स्थानीय सरदार अपने स्वतंत्र प्रभुत्व को पुनः स्थापित कर लेते इससे प्रत्येक गुप्त सम्राट के लिये एक समस्या होती और उसे अपने प्रभुत्व को पुनः स्थापित करना पड़ता। लगातार सैनिक अभियानों के कारण राज्य के कौष पर अतिरिक्त भार पड़ता था। पांचवी सदी ईसवी के अंत और छठी सदी ई. के प्रारंभ में, कमजोर सम्राटों का लाभ उठाते हुए बहुत सी स्थानीय शक्तियों ने पुनः अपने प्रभुत्व को स्थापित कर लिया और समय मिलने पर अपनी स्वतंत्रता को घोषित कर दिया। इन शक्तियों के विषय में आप इकाई 34 में पढ़ेंगे।

इनके अलावा ओर भी अन्य कारण थे जिन्होंने गुप्त साम्राज्य की शक्ति को क्षीण किया उदाहरण के लिये यह तर्क दिया जाता है कि गुप्त शासकों ने ब्राह्मणों के भूमि दान के पत्र जारी किये और इस प्रक्रिया के दौरान उन्होंने अपने राजस्व एवं प्रशासनिक अधिकारों को दान मिलने वालों के पक्ष में समर्पित कर दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सामंत व्यवस्था के अंतर्गत सामंतों ने जो केन्द्रीय शक्ति के सहायक के रूप

में शासन करते थे, गुप्त काल में अपनी शक्ति को मजबूत करना शुरू कर दिया। इसी के कारण गुप्त शासकों का प्रशासन कमजोर होने लगा। इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं कि इस व्यवस्था की उत्पत्ति कैसे हुई और इस व्यवस्था की विस्तृत जानकारी के संबंध में भी विभिन्न मत हैं। परन्तु गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत बड़ी संख्या में सामंतों की उपस्थिति यह स्पष्ट करती है कि उन्होंने गुप्त अधिपत्य से स्वतंत्र रूप से अपनी शक्ति को मजबूत किया।

इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि शाही परिवार के आंतरिक विभाजनों ने स्थानीय सरदारों या गवर्नरों के हाथों में शक्ति के सुदृढीकरण और साम्राज्य की कमजोर प्रशानिक व्यवस्था ने गुप्त साम्राज्य के विघटन में योगदान किया।

बोध प्रश्न 2

1) चन्द्रगुप्त-II के सैनिक अभियानों का वर्णन 10 पंक्तियों में कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) गुप्त साम्राज्य के विघटन के कारणों की विवेचना 10 पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही या गलत है।

- कुमारगुप्त के समय में हुण आक्रमण को स्कन्दगुप्त के द्वारा रोका गया।
- फाह्यान जैन ग्रंथों की खोज में भारत आया।
- रामगुप्त को चन्द्रगुप्त-II का बड़ा भाई कहा गया है।
- कुमारगुप्त ने अश्वमेध प्रकार के सिक्कों को जारी किया।
- सुदर्शन झील की मरम्मत स्कन्दगुप्त के शासन के दौरान हुई।

32.8 सारांश

चौथी सदी ईसवी के प्रारंभ में उत्तरी भारत बहुत से छोटे-छोटे राज्यों एवं रियायतों में विभाजित था। ये राज्य जो विभिन्न क्षेत्रों में थे अक्सर एक दूसरे से संघर्ष करते रहते थे। इस प्रकार अराजक परिस्थितियों में गुप्त वंश ने शक्ति को प्राप्त किया और क्रमशः एक साम्राज्य की स्थापना की। इस वंश के कई राजाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में सैनिक अभियानों का संचालन किया। शाही शक्ति को समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त-II के शासन काल में सही प्रकार से संगठित किया गया। गुप्तों की शक्ति स्कन्दगुप्त के शासन काल के समय तक काफी मजबूत थी परन्तु उसके बाद विघटन की प्रक्रिया का प्रारंभ हो गया। बहुत से कारणों जैसे कि विदेशी आक्रमण, शासक परिवार के अंतर्गत मतभेद, स्थानीय सरदारों के द्वारा पुनः अपनी शक्ति को स्थापित करना, प्रशासनिक कमजोरी आदि ने साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को और तेज किया।

32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- i) अ) बहुत से ब) लिच्छवियों स) समुद्रगुप्त
- 2) उपभाग 32.3.2 देखें।
- 3) यौधेय, मालवा, नाग, मद्रक और बाद में कुषाण।
उपभाग 32.2.1 देखें।

बोध प्रश्न 2

- 1) भाग 32.4 देखें।
- 2) भाग 32.8 देखें।
- 3) i) ✓ ii) × iii) ✓ (iv) ✓ (v) ✓

इकाई 33 गुप्तकाल: अर्थव्यवस्था, समाज और राजतंत्र

इकाई की रूपरेखा

- 33.0 उद्देश्य
- 33.1 प्रस्तावना
- 33.2 गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत प्रशासन
 - 33.2.1 राजा
 - 33.2.2 मंत्रि-परिषद और दूसरे अधिकारीगण
 - 33.2.3 सेना
 - 33.2.4 राजस्व प्रशासन
 - 33.2.5 प्रांत, जिले और ग्राम
- 33.3 अर्थव्यवस्था
 - 33.3.1 कृषि
 - 33.3.2 दस्तकारी उत्पादन और व्यापार
- 33.4 समाज
- 33.5 सारांश
- 33.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप:

- गुप्तकालीन प्रशासन के विभिन्न पहलुओं के बारे में जान सकेंगे।
- यह समझ सकेंगे की गुप्तकाल में कृषि, कारीगर उत्पादन और व्यापार की क्या स्थिति थी।
- गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में जानकारी हासिल कर सकेंगे, और
- इस काल में जो परिवर्तन आर्थिक व सामाजिक स्थिति में हुए, उनको समझ सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

हमने पहले आपको गुप्तकालीन (इकाई 32) राजनैतिक इतिहास से भली-भांति अवगत कराया और अब हम आपको इस काल की अन्य विशेषताओं से अवगत करावेंगे। इस काल के ऐसे बहुत से अन्य स्रोत हैं जो हमको उस समय की आर्थिक सामाजिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के विषय में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। वे स्रोत इस प्रकार हैं: i) कुछ ऐसे अभिलेख हैं जिनको समकालीन साहित्य एवं विभिन्न प्रकार की धातुओं जैसे कि तांबे की प्लेटें, पत्थर एवं मिट्टी की मोहरों पर लिखा, गया है, ii) विभिन्न वंशों के शासकों द्वारा जारी किये सिक्के, iii) उत्खनन से प्राप्त हुई सामग्री, iv) समकालीन साहित्य और v) फाह्युयान जैसे विदेशी यात्रियों के संस्मरण।

इस इकाई में हम आपको गुप्त शासकों के द्वारा अपनायी गयी प्रशासन व्यवस्था के विषय में भी बतलावेंगे। इस इकाई में इस काल की आर्थिक गतिविधियों और राजस्व के विभिन्न स्रोतों का भी वर्णन किया जाएगा।

33.2 गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत प्रशासन

हम इकाई 32 में पहले ही बता चुके हैं कि गुप्त शासकों ने उन क्षेत्रों के प्रशासन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जहां के शासकों ने उनके सामन्तीय आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था। फिर भी, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि गुप्त राजा केवल अपने सामन्तों के माध्यम से शासन करते थे। उनकी अपनी एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था थी जो उन क्षेत्रों में लागू थी जिन पर उनका सीधा-सीधा नियंत्रण था।

ममय की भाँति इस समय भी गुजबंद प्रणाली अस्तित्व में थी। भूमिदान से संबंधित अभिलेखों में दलक नाम अधिकारीगण उत्तरों का आयोजन करते थे और शाही लोगों को उपस्थित रहने की आज्ञा देते थे। प्रांतीयक कुछ अन्य भी बड़े अधिकारी थे। जैसे कि महाप्रतिहार महल के रक्षकों का उच्च अधिकारी होना था। प्रतिहार धोनी यात्री फारखन के वृत्तान्त के अनुसार फांसी का दण्ड लिक्चिल भी नहीं दिया जाता था।

दिया जाता था। गाँवों में मामूली मामलों की गाँव के मुखिया और बुजुर्गों के द्वारा संपन्न किया जाता था। न्यायाधीश) नाम का अधिकारी करता था। प्रांतों में यह कार्य उपरिक्तों एवं लिखा स्तर पर विस्थापितियों द्वारा स्थायिक शक्तियों राजा में निहित थी फिर भी स्थायिक मामलों में उसकी सहायता महादण्डनायक (मुख्य और शांति के मंत्री वीसेन ने इसकी अपने पृथक अधिकार के रूप में प्राप्त किया था। यद्यपि सर्वोच्च मंत्री का पर संभवतः पृथक था। जैसा कि चन्द्रगुप्त-II का उदयगिरी अभिलेख हमें सूचना देता है कि कुछ अधिकारियों को लिखित संदेश जारी करते थे।

गुप्त अभिलेखों से मंत्रियों की श्रेणीबद्धता के विषय में कोई स्पष्ट सूचना प्राप्त नहीं होती है। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि गुप्त राजा मंत्रियों से सलह करते थे और सभी महत्वपूर्ण मामलों पर अपने

33.2.2 मंत्रि-परिषद और दूसरे अधिकारीगण

इस प्रकार के क्षेत्रों के प्रशासन में कोई हस्तक्षेप भी नहीं किया।

में जारी रख सकें जिनमें गुप्त राजा के सामंतीय अधिकार्य की स्वीकार कर लिया था। और गुप्त राजाओं ने इस काल की एक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना यह थी कि वे सभी राजा अपने शासन की अपने-अपने क्षेत्रों काल में ही अपने उत्तराधिकारी को मनोनीत करता था।

- प्रथमप्रशान्त और कुमारगुप्त-1 के "अपरान्तिधा" किम के सिक्कों से स्पष्ट है कि राजा अपने शासन
- अपने कर्तव्य एवं प्रांतीय अधिकारियों की नियुक्ति करना भी उसका कर्तव्य था।
- शीतियों के अनुकूल ही करता था।
- उसके सर्वोच्च न्यायाधीश होने के कारण वह न्याय प्रशासन की देखभाल धार्मिक नियमों एवं विधमान
- वह विद्वानों और धार्मिक लोगों को आश्रय देता था और हर संभव सहायता भी करता था।
- राजा शासकों, शासकों और अन्य सब की जिनकी उसकी सुरक्षा की आवश्यकता होती थी, मदद करता था।
- युद्ध की स्थिति में राजा सेना का नेतृत्व करता था। इसकी पुष्टि समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त-II द्वारा किये गये
- किसी भी आक्रमण से अपने देशवासियों की सुरक्षा करना राजा का मुख्य कर्तव्य था।

परिषद दिया।

स्कन्दगुप्त ने दक्षिणपथ के राजाओं को उनके मूल राज्यों में पुनः स्थापित करने में काफी दूरदर्शिता का

• यह राजा का कर्तव्य था कि युद्ध और शांति के समय में राज्य की नीति को निश्चित करे। जैसे कि

भी उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह धर्म के अनुकूल कार्य करे और उसके कुछ निश्चित कर्तव्य भी संबंध में प्रयोग किये गये इन संदर्भों से स्पष्ट है कि यद्यपि राजा के अंतर्गत सर्वोच्च शांति निहित थी फिर प्रति-दिन कुल रही थी।", उसके पिता, कुमारगुप्त ने "धर्म के सत्य मार्ग का अनुसरण किया"। राजा के ऐसे व्यक्ति के रूप में विचार की गई है जिसने "संपूर्ण युद्धों को विजित किया और जो पराजित लोगों के द्वारा रचित एवं स्थापित साहित्य की भावना के अनुकूल ही स्कन्दगुप्त के पिता ही शिलाशेख में उसकी तुलना एक का स्तर दिया गया था उसी की भाँति पृथ्वी पर गुप्त शासकों को भी देव-गुप्त समझा जाने लगा। कालिदास और जिसके समान विषय में कोई दूसरी विरोधी शक्ति नहीं थी...।" जिस राजा को स्मृति ग्रंथों में दिव्यता कि वह, "धनदा (कुर्वर), वरुण (समुद्र का देवता), इन्द्र और अन्तका (वाम) जैसे देवताओं के समान था सक्रमणी, परमेश्वर आदि-आदि। उदाहरण के लिये, समुद्रगुप्त की प्रथम प्रशान्त में उसके लिये वर्णन हुआ है है कि गुप्त राजाओं ने भारी भारकम उपस्थितियों की धारण किया था जैसे कि परमभद्रदेवताका, परम-देवता, राजा की प्रशासन का मुख्य आधार था। परन्तु राजतंत्र के चरित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो चुके थे। हम पाते

प्रति या भूमि के अर्थों में विभाजित किया जायेगा और आधुनिक नामक अधिकारी के अधीन आसन्न कर रहे होंगे। लेकिन सौराष्ट्र में पारदर्शिता के द्वारा गवर्नर नियुक्त किया गया था।

जाता था। प्रथम में पारदर्शिता के अर्थों में विभाजित किया जायेगा और आधुनिक नामक अधिकारी के अधीन आसन्न कर रहे होंगे। लेकिन सौराष्ट्र में पारदर्शिता के द्वारा गवर्नर नियुक्त किया गया था।

प्रथम में पारदर्शिता के अर्थों में विभाजित किया जायेगा और आधुनिक नामक अधिकारी के अधीन आसन्न कर रहे होंगे। लेकिन सौराष्ट्र में पारदर्शिता के द्वारा गवर्नर नियुक्त किया गया था।

33.2.5 ग्राम, जिला और भाग

सकता था।

जमीन के अर्थों में विभाजित किया जायेगा और आधुनिक नामक अधिकारी के अधीन आसन्न कर रहे होंगे। लेकिन सौराष्ट्र में पारदर्शिता के द्वारा गवर्नर नियुक्त किया गया था।

प्रथम में पारदर्शिता के अर्थों में विभाजित किया जायेगा और आधुनिक नामक अधिकारी के अधीन आसन्न कर रहे होंगे। लेकिन सौराष्ट्र में पारदर्शिता के द्वारा गवर्नर नियुक्त किया गया था।

33.2.4 राजस्व प्रशासन

धनुष-कमान, नौकदार भाले, तलवारें, बछियां एवं लकड़ें मुकीले भाले आदि।

शे कि आकमण एवं सुरक्षा के लिये सेना की इकाइयों की सहायता की जाती है।

पर भंडार गृह का अधिभार होता है। इस अधिभार के अर्थों में विभाजित किया जायेगा और आधुनिक नामक अधिकारी के अधीन आसन्न कर रहे होंगे। लेकिन सौराष्ट्र में पारदर्शिता के द्वारा गवर्नर नियुक्त किया गया था।

प्रमुख, नरपति (पूर्व सेना का प्रमुख) जैसे अधिकारीगण कार्य करते हैं। सेना की वृद्धि के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का उपयोग हुआ है। उसके अंतर्गत नियुक्ति (इकाइयों का प्रमुख), अंशपूर्ति (घोड़ों का कक्षा जाता था। इस मंत्री की सहायता उच्च अधिकारी करते हैं। बहुत से अधिभारों में अधिभारों का प्रमुख (शांति और युद्ध के अधिभार वाले मंत्री) पर्यटन साधारणतः सेना का एक मंत्री था जिसकी सहायता (शांति और युद्ध के अधिभार वाले मंत्री) गृह शासकों के पास एक बड़ी सेना का संगठन था। युद्ध के समय सेना का नेतृत्व राजा स्वयं करता था।

33.2.3 सेना

में दी जाती थी उस वन को जगू करना।

के अधिकारियों का विवरण आया है जिनका मुख्य कार्य था कि जो भूमि शासकों और अन्य लोगों को वन

आप भारत में ही एक वृक्ष के उपासक हैं कि कृषि के उपासक हैं। प्रमुख संसाधनों का निवारण करते हैं। जिनका उपासक समाज के द्वारा किया जाता था और राज्य के राजस्व का बड़ा भाग कृषि से ही आता था। परंतु

33.3 अर्थव्यवस्था

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) राजा की शक्तियों एवं कर्तव्यों के विषय में दस पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) गुप्त शासकों के राजस्व प्रशासन पर लगभग पांच पंक्तियाँ लिखिए।

- (ग) प्रशासन की सर्वोच्च इकाई गांव था।
 - (द) उत्तर का 1/6 भाग शाही राजस्व के लिये बसूला जाता था।
 - (स) महारजद्रोहक राजस्व का मंत्री था।
 - (ब) युद्ध के समय राजा सेना का नेतृत्व करता था।
 - (अ) गुप्त शासकों के अंतर्गत राजा केन्द्रीय शक्ति नहीं रह गया था।
- 1) निम्नलिखित में से कौन-कौन कथन सही (✓) एवं गलत (×) है?

गण प्रश्न 1

निपटारा इन संस्थाओं के द्वारा ग्राम-वृद्धों या बुजुर्गों की सहायता से किया जाता था। संस्थाओं एवं संगठनों को बनाते थे जो गांव के मामलों की देखभाल करती थीं। ग्रामीण झगड़ों का भी तैल निकालने, सुनारिती और बनावनी आदि व्यवसायिक कार्यों को करते थे। ये सभी समूह स्थानीय करने वालों के आतिथिक गांव के समाज में अन्य दूसरे लोग भी थे जो बड़कैंगरी, कलाई-बुनाई, वर्तन बनाने, कपड़ियों को अपने प्रतिनिधि धुनते थे जो विभिन्न अवसरों पर गांव से उत्तर के स्तर पर कार्य खेती बड़ी आकर्षक/विधायक का सदस्य मिलता है। विभिन्न श्रेणी वाले गांवों जैसे कि ग्रामिक, कुटुंबकी, और महत्तर, उन अभिलेखों से पता लगता है कि प्रशासन की एक इकाई गांव से भी कुछ उदाहरणों से हमें छोटी इकाई गांव था। ग्राम के मुखिया को ग्रामपति या ग्रामाध्यक्ष कहते थे। बंगाल से प्राप्त हुए गुप्त

गुरु काल के स्रोतों से पता लगता है कि इस समय में कुछ निश्चित महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। गुरु काल के कुछ ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनके अनुसार कुछ लोगों ने भूमि को नकर खरीदकर फिर इस खरीदी गई भूमि को इन लोगों ने उन ब्राह्मणों को भेंट कर दिया जिनसे आशा की गई थी कि वे उनके लिए वैदिक बलि का आयोजन करेंगे या कई बार इस प्रकार की भूमि जिन या बौद्ध मठों की भी दान में दिया गया। अब न केवल भूमि को खरीदा और दान में दिया जाने लगा बल्कि धार्मिक लोगों को भूमि को दान में या भेंट में देना एक सामान्य प्रथा बन गई। इसके अतिरिक्त जो अधिकारी गण किसी न किसी रूप

अन्य ग्रंथों में भी वर्षों के महत्व के विषय में लिखा गया है।

है। निर्भर करते थे और इसी कारणवश न केवल कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बल्कि गुरु काल में लिखे गए कथनों में राज्य का मामूली योगदान ही था। इसके बावजूद भी किसान विवादों के लिए मुख्य रूप से वर्षों पर प्रकार विवादों के लिये विभिन्न प्रकार की प्रणालियों का प्रचलन था और किसानों को विवादों सुविधा उपलब्ध किया जाता था और गौर प्रायद्वीपीय भारत में तालाब से विवादों करने की प्रथा सामान्य बात हो गई थी। इस से घाटी-युग के द्वारा विवादों की जाती थी। बंगाल जैसे क्षेत्रों में वर्षों के पानी को गढ़वाँ आदि में संग्रहित की। विवादों का बड़ा ही रोचक वर्णन है। उसमें वर्णित है कि किसी प्रकार के गन्ने की फसलों की किस भांति अशांति के नाम से भी जाना गया। सातवीं सदी ई. में बाण भट्ट के द्वारा रचित पुस्तक दृष्यवर्तिन में खेतों नाम जाना जाता था क्योंकि घाटी शब्द का प्रयोग इस वर्तन के लिये किया गया। इस प्रकार के क्षेत्र को लगातार बाहर आते रहे और खाली होकर रहने के लिये अपनाये गये इस तरीके की घाटी-युग के कर दिया जाता। इसकी इस प्रकार से व्यवस्था की गई थी कि ये वर्तन पानी से भरकर जंगीर के द्वारा की गये पानी के तल तक पहुँचाया जाता और इन वर्तनों की जंगीर को नीचे से भरकर निकाल कर खाली एक धार्मिकी जानकारी उपलब्ध थी, जिसके अनुसार कुछ वर्तनों की एक जंगीर होती थी और इस जंगीर सहायता से इन कुँओं के द्वारा खेतों की विवादों की जाती थी। संभवतः गुरु काल से भी पूर्व इस संबंध में ने पुनः इसकी मरम्मत कराई। विवादों के दूसरे साधन कृष्ण थे और मुख्यतः जंगल के पुराने जंगलों की क्षतिग्रस्त हो गई और उसके नव-नियुक्त सौराष्ट्र के गवर्नर पर्वत और बाद में पर्वत के पुत्र चक्र पतिगो इस झील की पुनः मरम्मत तब की गई थी जबकि पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो गई थी। यह स्कन्दपुराण के समय फिर सुदर्शन झील (गंडा) के विषय में पंडा मुख्यतः से इस झील का निर्माण मौर्यकाल के दौरान किया गया था। विवादों की कितना अधिक महत्व दिया गया था। प्राथमिक खण्डों में आपने गुरोरत सौराष्ट्र क्षेत्र में स्थित कृष्ण-उत्पत्त समान के लिये कितना आवश्यक था इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि इस समय

काल में किसानों को मक्का जैसे अनाज की फसल आर एव टमाटर जैसे सब्जियों की जानकारी थी। जानते हैं और इनकी पैदावार इस काल में भी जारी थी। लेकिन इससे यह नहीं समझा जाना चाहिये कि गुरु पैदावार के विषय में हम गुरु काल के पूर्व से भी जानते हैं और इनकी पैदावार इस काल के पूर्व से भी किसानों को दालें एवं चना और सब्जियाँ तथा इन्हों की तरह नकदी फसलें जैसे कि कपास और गन्ना की संभव नहीं है। लेकिन बड़ी श्रमियों की अन्न से सम्बन्धित फसलों जैसे कि जौ, गेहूँ और धान, विभिन्न और द्रोणाद प्राणियों का प्रयोग किया गया। फसलों के उत्पादन के अनुसार भी क्षेत्रों का निर्धारण करना उपयोग किया गया है जबकि बंगाल से प्राप्त अभिलेखों से प्राप्त भूमि के क्षेत्र को नामों के लिये कुलव्यापार कि असुक्त नाम वास्तव में क्या इंगित करती है। कुछ क्षेत्रों में भूमि की नाम के लिये निवर्तन प्रणाली का में भिन्न-भिन्न तरीकों की अपनाया गया, इसके बावजूद भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कोई वर्गीकरण गुरु काल में किया गया हो, इसके प्रमाण नहीं मिलते। भूमि की नाम के लिये विभिन्न क्षेत्रों खेती करने के अनाजान लया जाता था। भूमि का उसकी किस्म, उत्पत्तिका और उपयोगिता के आधार पर जाना जाता था। और अभिलेखों से यह भी संकेत मिलता है कि खेती न की जाने वाली भूमि को लगातार भी उसकी क्षेत्र कहा गया है। जो भूमि कृषि योग्य नहीं होती थी उसका खिल, अपरहेत आदि नामों से विवरण किया गया है। अभिलेखों में कई किस्म की भूमि की चर्चा है: जैसे कि जिस भूमि पर खेती की जाती स्थला था, यह गुरु काल के उन स्रोतों से स्पष्ट है जिनमें कृषि सम्बन्धी किया कलाओं के बहुर से पक्षों का सबसे पहले हम कृष्ण उत्पत्तन के प्रतिमान के विषय में लिखेंगे। कृष्ण उत्पत्तन का समान के साथ क्या

33.3.1 कृष्ण

है। अब इसके अगले भाग में इन परिवर्तनों पर कुछ प्रकाश डालेंगे। परिवर्तन प्रारम्भ हो चुके थे और जिनके परिणाम स्वरूप समान के विभिन्न गुटों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन आने, कृष्ण-आबादी, नगरी एवं शहरों में रहने थे, परन्तु आर्थिक उत्पादन के तरीकों विभिन्न प्रकार के थे। के विभिन्न गुट संलग्न थे। इसका यह तात्पर्य होता है कि, जैसे कि प्रारम्भिक काल में भी हुआ, लोग रहते थे। व्यापार एवं दस्तकारी वर्गों का उत्पादन जैसे दूसरे व्यवसाय भी थे जो विशेषज्ञ व्यवसाय हो चुके इसका तात्पर्य यह कहते भी नहीं है कि केवल कृष्ण ही लोगों का व्यवसाय था या लोग केवल गावों में ही

इस काल में निर्मित की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा एवं किस्मों की जानने के लिये खुरदरे वाले स्थलों से पायी जाने वाली वस्तुओं का अध्ययन करना होगा। बहुत से महत्वपूर्ण स्थानों से जैसे कि तक्षिला, अहिज, मथुरा, राजघाट, और गंगा घाटी में स्थित पाटलिपुत्र तथा दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों में स्थित प्राचीन स्थलों की खुरदरे से मिट्टी के मृदा भांड, परिकोठे, विभिन्न प्रकार के पत्थरों की मालाएँ कांच की वस्तुएँ, धातु की बनी वस्तुएँ आदि प्राचीन वस्तुकारों के उत्पादन प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अगर गुप्त काल की

वस्तुकारों की कई श्रेणियों का उल्लेख हुआ है जो इनका निर्माण करते थे। ध, संस्कृत भाषा में ऐसी बहुत सी वस्तुओं के नाम दिये गये हैं और इसी के साथ-साथ इन ग्रंथों में उन के क्षेत्र में आकर बसे गये थे। अमरकोष और लिखत स्मृति जैसे ग्रंथों में जो संभवतः गुप्त काल में लिखे गये अभिलेख में शम के कपड़े बनाने कालों की एक श्रेणी का उल्लेख है जो गुजरात प्रदेश की छोड़कर मालवा उल्लेख है और जिनका क्षीम और पञ्चवस्त्र के नाम दिये गये हैं। पश्चिमी मालवा मंदसौर से प्राप्त एक उल्लेख हुआ है। उदाहरण के लिए इस काल के विभिन्न ग्रंथों में जिन-जिन प्रकार के श्रेणी कपड़ों का विवरण साहित्यिक ग्रंथों और अभिलेखों में पाया जाता है। इन दोनों में विभिन्न श्रेणियों के वस्तुकारों का भी उल्लेख के द्वारा जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनमें लिखितों की वस्तुएँ नहीं मिली है परन्तु इन वस्तुओं का व्यापार के माध्यम से उपलब्ध कराया जाता था तो कुछ का स्थानीय स्तर पर उत्पादन भी किया जाता। कपड़े और वे महंगी वस्तुएँ जिनका उपयोग समाज के संपन्न लोग करते थे। इनमें से कुछ वस्तुओं को चादी एवं मूल्यवान पत्थरों से बने आभूषण, हाथी दांत की बनी चीजें, शानदार किस्म के सूती एवं रेशमी और इसी के साथ-साथ लिखितों की वस्तुएँ भी वस्तुकारों के अन्तर्गत आती थीं जैसे कि सोने, मिट्टी के बर्तन फर्नीचर की चीजें, टीकरियाँ, धरलू उपयोग के लिए धातु के औजार आदि आती थीं। वस्तुकारों के अन्तर्गत अनेक वस्तुएँ आती थीं। इसके अन्तर्गत धरलू उपयोग की वस्तुएँ जैसे कि

33.3.2 वस्तुकारों के उत्पादन और व्यापार

मिलकर इस काल में पहले की अपेक्षा गुप्त साम्राज्य किमान की दशा और भी विगड़ गई। हुई यद्यपि हम को यह स्पष्ट जानकारी नहीं है कि कौन कौन से वस्तु उत्पादन के लिए किनकी आवश्यक थी। कुछ द्वारा जगह जगह पर और अधिक वृद्धि हो गई। इस काल में लिखित या बेगार में और अधिक वृद्धि बाड़ी करने वाली पर इन्होंने और अधिक भार डाल दिया। इस काल में उत्पादन करने वालों पर राज्य के ऐसे लोगों ने जो कुछ कार्यों में भाग नहीं लेते थे समाज में असमानता की धृष्ट किया और वास्तविक खेती-क्षेत्रों में छोटे-छोटे राज्यों का उदभव हुआ। इन राज्यों के नये-नये शासकों, अधिकारियों और जनता के कुछ साधारण किसान की हालत क्या खराब हुई इसके दूसरे अन्य भी कारण थे। एक यह भी था कि कई सारे

से अपने स्थानियों के द्वारा इन महिज दासों का उत्पीड़न किया जाता था। किया जाता था और हमें कामसूत्र से पता लगता है जो संभवतः गुप्त काल में ही लिखा गया कि किस प्रकार भी पचलन था जो अपने स्वामी के खेतों में काम करते थे। धरलू महिज दासों के साथ कर्मचारी का व्यवहार पर खेती करती था और उसके बदले में उसका उत्पाद का एक भाग प्राप्त होता था। इस समय में दासों का स्तर निम्न था। वास्तविक खेती करने वाले लोगों के बीच एक ऐसा भी वर्ग था जो केवल दूसरों की जमीन जैसे कि कृषिपाल, कृषक, या किनसा आदि नामों से जाना जाता था और जिनका सामाजिक एवं आर्थिक काफी नीचे गिर गया था। परन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है वे छोटे-छोटे किसान ही थे जिनको विभिन्न नामों इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि भूमि दान की प्रथा के कारण संपूर्ण किसान आबादी का स्तर सामान्य में किसानों की गुलना करने पर हम पाते हैं कि इन साधारण कृषकों की दशा बड़ी खराब रही होगी। कुछ शासकों से भूमि प्राप्त करने वाले और गाँवों के प्रभावशाली भूमि स्वामियों के वर्गों के साथ साधारण

होने से यह स्पष्ट है कि वे भी ग्रामीण समाज के महत्वपूर्ण सदस्य थे। ग्रामीण, कुटुंबिका और महत्तर जिनका ग्रामीण भूमि पर अधिकार था और इनके भूमि के जेन-डेन में संलग्न को दान में प्राप्त किया था। गुप्त अभिलेखों में ऐसे विभिन्न ग्रामवासियों को उल्लेख किया गया है जैसे कि दानों प्राप्त हुआ। यद्यपि यह भी सत्य है कि भूमि के मालिकाना अधिकार उन्हीं को ही नहीं थे जिन्होंने भूमि ही गये और समाज में उसका संबंध उच्च वर्ण के कारण उसकी उच्च आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम हुआ कि समाज में एक ऐसे वर्ग की उत्पत्ति हुई जिसको भूमि पर उच्च स्थानिक के अधिकार प्राप्त भूमि की प्रथम करता था उसके लिए प्रथमों की धमकी दी जाती थी। इन सब का अन्ततः यह कार्य वे स्वयं नहीं करते थे। भूमि दान करने वालों की भूमि-भूमि प्रथा की गई और जो कोई दान की गई वृद्धि हुई जिसके कारण भूमि को प्राप्त करने वालों की संख्या में भी वृद्धि हुई परन्तु उस पर खेती-बाड़ी का यद्यपि यह कोई पूर्णतः नयी बात नहीं थी। इस समय में शासक परिवारों की संख्या में बड़ी तेजी के साथ में शासकों की सेवा में लगे थे उनको भी अपनी सेवा के बदले में भूमि के बड़े-बड़े टुकड़े प्राप्त होने लगे।

- (अ) खनी-बाड़ी की जाने वाली भूमि को (खिजा/खेज) कहा जाता था।
- (ब) धार्मिक दान प्राप्तकर्ताओं को भूमि उपहार स्वरूप देने की परंपरा (प्रथम सदी ई. पू. पाचवी-छठी सदी ई.) में सामान्य (ही चुकी थी/विश्व) भी नहीं थी।
- (ग) इस काल के दौरान छुटे जाते हुए (काफी फले-फूल/कम हुए)।
- (द) (सकड़ान/पुष्पान) के शासन काल में महान दौल की नरमन की गई।

1) निम्न स्थानों को भरिये।

बांध प्रश्न 2

2) कुछ क्षेत्रों में गुप्त शासकों के काल में ही संभवतः दस्तकारी उत्पन्न एवं व्यापारिक गतिविधियों का बाजार जो जिस प्रकार की दस्तकारी का काम करता था उन लोगों को उसी प्रकार की जाति बनी। इन दस्तकार समूहों से उनकी अनेक जातियाँ बनीं। यद्यपि जाति व्यवस्था इतनी सरल नहीं थी इसके से कृषिार जाति बनी तथा स्वयंकारी या सुनारों से एक दूसरी जाति की उत्पत्ति हुई और इस प्रकार से भी कहा गया है कि प्रत्येक दस्तकार गुट से एक जाति बनी थी जैसे कि बर्तन बनाने वाले दस्तकारी, है परन्तु फिर भी समाज में उनका स्थान ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों से नीचा था। धर्मशास्त्रों में यह स्पष्ट होता है जिनको ब्राह्मणों ने लिखा था। धर्मशास्त्रों में दस्तकारों के विभिन्न वर्गों का स्पष्ट उल्लेख उज्जैनी में भी और गांध के छहर परिवारों के मध्य काफ़ी और था। यह और उन धर्मशास्त्रों से भी था और न ही सामाजिक स्तर के रूप में उदाहरणार्थ, सुनार और उसके परिवार जिसकी दूकान

1) उस समय कई प्रकार के दस्तकार लोग थे परन्तु उनकी न तो आर्थिक संभ्रता के रूप में कोई पहिचान थी और न ही सामाजिक स्तर के रूप में उदाहरणार्थ, सुनार और उसके परिवार जिसकी दूकान उज्जैनी जैसे नगरों में व्यापक स्तर पर व्यापारिक गतिविधियाँ होती रहती थीं और इन नगरों में विभिन्न देशों के लोग उपस्थित रहते थे। व्यापारिक लोग इन नगरों में महत्वपूर्ण समुदाय थे। इन नगरों में दस्तकारों और व्यापारियों के कार्यों को सुविधापूर्वक चलाने के लिये इनके अपने संगठन थे। इन संगठनों के लिये जो प्राचीन शब्द प्रयोग किया जाता था, उसको श्रेणी कहते थे। राज्य इन श्रेणियों को सुरक्षा प्रदान करता था और इनके नियमों एवं शैलियों का उचित सम्मान किया जाता था। इसी प्रकार श्रेणियों के सदस्यों से वह आशा की जाती थी कि वे भी इन संगठनों के नियमों का पालन करें अन्यथा अवहलना करने पर उनकी सख्त दण्ड दिया जाता। श्रेणी शब्द को व्यापारियों एवं दस्तकारों के संगठन रूप में परिभाषित किया गया है परन्तु इस शब्द की अन्य परिभाषायें भी दी गई हैं और इसका विस्तृत अध्ययन भी किया गया है। परन्तु हम अभी भी निश्चय के साथ यह नहीं कह सकते कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या था। यदि गुप्त काल में दस्तकारी का काम और व्यापार काफ़ी सक्रिय था परन्तु इस संदर्भ में दो तथ्यों को विशेष

कराए गए हैं। पहिले, गुप्त काल में दस्तकारी का महत्वपूर्ण स्थान था। इस समय के साहित्यिक ग्रन्थों से स्पष्ट है कि पाटलिपुत्र एवं बिहार में वैशाली से प्राप्त गुप्त शासकों की मोहर से पता चलता है कि वैशाली नगर की जनसंख्या में बंगाल के जिला मुख्यालय के साथ ही व्यापारिक प्रतिनिधि नगरश्रेष्ठ और सध्याहा संबन्धित थे। उत्तरी किष्किण गुप्त साम्राज्य के कुछ क्षेत्रों में इन सिक्कों का समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। उदाहरणार्थ, उत्तरी के सिक्के सर्वश्रेष्ठ दस्तकारी के नमूने हैं। गुप्त शासकों ने चाँदी, ताँबे एवं पीसे के सिक्कों को भी जारी शासकों की भाँति गुप्त राजाओं ने भी विभिन्न प्रकार के सिक्कों को जारी किया और गुप्त शासकों के सोने इसके भी प्रधान प्रमाण है कि गुप्त काल में भी वे व्यापारिक गतिविधियाँ जारी थीं। अपने परवर्ती कृष्ण समक के था और देश के अन्दर भी कई सदियों में विभिन्न क्षेत्रों के बीच व्यापारिक मार्ग विकसित हुए थे। केन्द्रिय, पहिचामी और दक्षिण-पूर्वी एशिया एवं रोम साम्राज्य के साथ परवर्ती काल से बर्निख व्यापारिक वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचती थीं। आप खंड 6 एवं खंड 7 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि भारत के सभी वस्तुएँ सभी स्थानों पर उपलब्ध नहीं होती थीं इसलिए पहले समय की भाँति ही व्यापार के द्वारा ही वे

2) इस काल में सिंचाई के लिये अपनाये गये तरीकों के विषय में लगभग 10 पंक्तियां लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) उन स्रोतों का विवरण लगभग पांच पंक्तियों में कीजिये जिनमें दस्तकारी एवं दस्तकारों का उल्लेख हुआ हो।

.....

.....

.....

.....

.....

33.4 समाज

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि ब्राह्मणों ने जिस समाज की कल्पना की थी, उस समाज को चार वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में इस ढंग से विभाजित किया गया था कि प्रत्येक वर्ण उन कार्यों को सम्पन्न करे जो उसके लिये निर्धारित किये गये थे और केवल वह उन्हीं अधिकारों का उपभोग करे जो उसके लिये बताये गये। यह आदर्श सामाजिक व्यवस्था थी और राज्य से यह आशा की गयी कि वह इसको सुरक्षित रखे। इसका अर्थ यह हुआ कि देश के किसी भी कोने में जब कभी भी किसी छोटे राज्य का उदय हुआ तो उसके राज्य से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह इसकी मान्यता एक आदर्श समाज व्यवस्था के रूप में करे। गुप्त काल से ही ब्राह्मण लोग राजा पर काफी प्रभाव डालने लगे थे यह इससे भी स्पष्ट है जिस ढंग से वे राजाओं व दूसरों से भूमि को उपहार के रूप में प्राप्त करने लगे थे। राजाओं एवं अधिकारियों ने न केवल ब्राह्मणों को व्यक्तिगत स्तर भूमि को उपहार स्वरूप भेंट किया बल्कि ब्राह्मणों के बड़े-बड़े समूहों को दूर-दराज के क्षेत्रों में भी बसाया गया। इस प्रकार, बहुत सी ब्राह्मण बस्तियों को ब्रह्मादिय अग्रहर कहा जाने लगा और उनकी संख्या भी बढ़ने लगी। दूसरी अन्य बातों के साथ-साथ, उन्होंने वर्ण विभाजित समाज व्यवस्था के विचार को भी फैलाना प्रारंभ कर दिया।

वर्ण व्यवस्था के आदर्श व्यवस्था होने के बावजूद समाज में ऐसे बहुत से गुट थे जिनकी पहचान को वर्ण व्यवस्था के विचार द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता। दूसरे, ऐसा समझा गया था कि विभिन्न वर्ण अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करेंगे परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं किया जा सका। परन्तु वास्तविक समाज में आदर्श समाज से मूलभूत अंतर होता है और इस अंतर को धर्मशास्त्रों के ब्राह्मण लेखकों ने भी रेखांकित किया। इसलिये उन्होंने विभिन्न जातियों की समाज में स्थिति निश्चित करने के लिये इन जातियों की उत्पत्तियों के संबंध में झूठी व्याख्यायें प्रस्तुत कीं। उनका कहना है कि बहुत सी जातियों और गुटों की उत्पत्ति बहुत से वर्णों के आपसी वर्ण-संस्कारों या उनमें आंतरिक विवाहों के कारण हुई। गुप्त काल से पूर्व के यूनानी या सीथियन विदेशी शासक परिवारों से संबंधित लोगों को सहायक-क्षत्रिय का स्तर (व्रत्य-क्षत्रिय) प्रदान कर दिया गया था क्योंकि उनकी उत्पत्ति को शुद्ध क्षत्रियों में नहीं माना गया। इसी भांति से उन कबिलाई गुटों की उत्पत्तियों के विषय में भी झूठी व्याख्यायें दी गई जिन्होंने ब्राह्मणिक सामाजिक व्यवस्था को अंगीकार न किया था।

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) वर्ष व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों का विवरण दस पंक्तियों में कीजिये।
- (द) नगरों में रहने वाले लोगों और गांव में रहने वालों का जीवन समान था।
- (स) अन्तर्गत वर्ष व्यवस्था की सबसे ऊंची इकाई थी।
- (ब) गुरु काल में वास्तविक समाज, आदर्श समाज से भिन्न था।
- (अ) गुरु काल से राजाओं पर ब्राह्मणों का काफी प्रभाव बनने लगा था।
- 1) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा सही (✓) और कौन-सा गलत (×) है?

बोध प्रश्न 3

जीवन की व्यतीत करने में सक्षम थे।

भी हुआ है। इसके बाद भी यह समझना गलत होगा कि नगरों में रहने वाले सभी लोग इस भाँति के का विवरण न केवल वास्तविक जीवन के कामचलाप में मिलता है बल्कि इस काल के अन्य साहित्यिक ग्रंथों में उनका जीवन सम्बन्ध था और वे खुशहाल एवं शान्तवत् सभ्य जीवन व्यतीत करते थे। इस प्रकार के जीवन में काफी अंतर था। नगरों में रहने वाले आदर्श लोगों को नगरक कहा जाता था जिसका तात्पर्य यह हुआ कि सामाजिक जीवन का एक दूसरा पक्ष भी है कि नगरों में रहने वाले लोग और ग्रामवासियों की जीवन शैली होती है कि ब्राह्मण महिजाओं की कभी भी भाँस प्रदान की गई हो।

महत्त्वपूर्ण है कि ब्राह्मणों को लगातार भूमि की दान में दिया गया परन्तु हमें इसका प्रमाण उपलब्ध नहीं ब्राह्मण ग्रंथों में महिजाओं की सामाजिक स्थिति की आँखों के समक्ष ही माना गया है। यह भी तथ्य जाती थी कि वे उनका अनुसरण करने और वे परिवार में आदर्श पतिव्रता एवं मातायें बनतीं। कुछ ग्रंथों में महिजाओं के अनुसरण करने योग्य नियमों का उल्लेख किया गया था। और उनसे आशा की महिजाओं के पास काफी शक्ति थी, परन्तु सभी महिजाओं को यह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। ब्राह्मण उच्च वर्गों की महिजा वर्ग की हलत भी नीची थी। इस काल में भी वाकाटक राजा प्रभावती गुप्त वंशी सामाजिक गुटों की हलत सहैव दर्शवती रही।

से-बाहर रहा गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मणिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक मना कर दिया जाता था। बचपन और वर्तमान जैसे गुटों को अपवित्र माना गया और जाति व्यवस्था अशुद्ध हो जाती थी। लिंग इलाकों में उच्च वर्ग के लोग रहते थे उन इलाकों में उनके आवागमन की बाध थी। वे अत्यन्त या अशुद्ध माना गया, अगर कोई उनसे छू जाता तो वह भी शैक्षणिक और पर समाज चार वर्गों में विभाजित था, परन्तु ऐसे बहूत से गुट थे जो इस योजना से विशेष विज्ञान थे। इसी के कारण ब्राह्मण लोग आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं सम्पन्न थे।

बौद्ध, जैन एवं अन्य विशेष धर्मों के समर्थक थे तब भी उन्होंने ब्राह्मणों को संरक्षण प्रदान किया जो जिसके कारण उनके राज सत्ता के साथ निकटतम संबंध कायम हो गया। स्थिति यह थी कि जब राजा खरा गया। वे लोग संस्कृत भाषा को भी-भाँति जानते थे और धार्मिक अनुष्ठानों को पूर्ण करते थे।

• ब्राह्मणों की पहिचान समाज के सबसे श्रेष्ठतम वर्ग के रूप में की गई इसलिए उनकी उच्चतम वर्ग में विशेषार सामान्य रूप से व्याप्त थे:

• परन्तु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में वास्तविक समाज व्यवस्था भिन्न-भिन्न थी, फिर भी हमें कुछ निश्चित व्यवस्था काफी जटिल हो गई थी। इस नवीन सामाजिक व्यवस्था में बहूत से सामाजिक गुट समाहित हो चुके परन्तु ब्राह्मणिक समाज की अवधारणा का देश के अन्य भागों में प्रचार हो जाने के कारण सामाजिक किसे गये आदर्श समाज से भिन्न था। इन परिवर्तनों का प्रारंभ गुरु काल से काफी पहले प्रारंभ हो चुका था, आवृत्त नहीं किया गया था। इस प्रकार धर्मशास्त्रों के अनुसरण भी वास्तविक समाज उनके द्वारा कीमत यह हुआ कि जब भी आवश्यक हो वर्ण उन कार्य एवं कर्तव्यों को भी कर सकते थे जिनको उनके जिसे धर्मशास्त्रों में अप्रामाण्य की बात की गई है अर्थात् दरिद्रता के समय में जो व्यवहार किया जाता। इसका अर्थ

33.5 सारांश

इस इकाई में गुप्त प्रशासन, अर्थव्यवस्था और समाज के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गुप्त काल में परवर्ती काल की अपेक्षा काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो चुके थे। एक महत्वपूर्ण पक्ष राजतन्त्र से संबंधित है कि जिन क्षेत्रों के राजाओं ने, गुप्त राजाओं के सामन्तीय अधिपत्य को स्वीकार कर लिया था, उनका शासन उन क्षेत्रों में जारी रहा। कृषि उत्पादन पर भी पर्याप्त ध्यान केन्द्रित किया गया और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इस काल में सिंचाई ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी। भूमि को उपहार स्वरूप धार्मिक वर्गों को देने की प्रथा का प्रचलन सामान्य बात हो गयी थी और ब्राह्मण लोग राजाओं पर अपना काफी प्रभाव डालने लगे। कृषि करने वाले लोगों के बीच काफी भिन्नतायें उत्पन्न हो गईं और अगर इनकी तुलना सम्पन्न लोगों के साथ की जाये तो हम पाते हैं कि साधारण किसान की हालत में काफी गिरावट आयी। इसी के समान ही विभिन्न किस्म के दस्तकारों के आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों में भिन्नतायें थी। यद्यपि इस काल में भी व्यापारिक गतिविधियां जारी रही परन्तु दस्तकारी उत्पादन में कमी हुई। समाज में वर्ण व्यवस्था जारी रही परन्तु इसी के साथ-साथ बहुत से सामाजिक गुटों या समूहों विशेषकर अछूतों को वर्ण व्यवस्था से बाहर रखा गया। समाज में महिलाओं की स्थिति में भी पर्याप्त गिरावट आयी।

33.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) अ) × ब) ✓ स) × द) ✓ त) ×
- 2) कृपया उप-भाग 33.2.4 को देखें।
- 3) अपने उत्तर का आधार उप-भाग 33.2.1 को बनायें।

बोध प्रश्न 2

- 1) अ) क्षेत्र ब) हो गया, पांचवी-छठी सदी ई. स) कम होना द) स्कन्दगुप्त
- 2) अपने उत्तर का आधार उप-भाग 33.3.1 को बनायें।
- 3) अपने उत्तर की तुलना उप-भाग 33.3.2 के प्रथम व दूसरे पैराग्राफ से करें।

बोध प्रश्न 3

- 1) अ) ✓ ब) ✓ स) × द) ×
- 2) अपना उत्तर भाग 33.4 को पढ़कर दें।

इकाई 34 उत्तर भारत में गुप्त काल के बाद के राज्य

इकाई की रूपरेखा

- 34.0 उद्देश्य
- 34.1 प्रस्तावना
- 34.2 क्षेत्रीय शक्तियां
 - 34.2.1 यशोधर्मन
 - 34.2.2 मौखरी
 - 34.2.3 उत्तर-गुप्त शासक
- 34.3 धानेश्वर और कन्नौज के पुष्यभूति
- 34.4 हर्षवर्धन
- 34.5 उत्तर हर्ष काल में उत्तर भारत की राजनैतिक हालात
- 34.6 सारांश
- 34.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

34.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे:

- उन राजनीतिक परिवर्तनों के विषय में जों गुप्त साम्राज्य के विघटन के बाद हुए,
- उन बहुत सी उभरती राजनैतिक शक्तियों के विषय में जो क्रमिक रूप से महत्व को प्राप्त कर रही थीं,
- धानेश्वर और कन्नौज के पुष्यभूतियों की उत्पत्ति एवं विकास के विषय में,
- राजा हर्ष के शासन काल की कुछ घटनाओं के बारे में,
- राजा हर्ष की प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में, और
- हर्ष की मृत्यु के बाद की उत्तर भारत की राजनैतिक परिस्थितियों के बारे में।

34.1 प्रस्तावना

छठी सदी ई. में गुप्त साम्राज्य के विघटन ने क्रमशः बहुत से छोटे राज्यों के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया! कुछ निश्चित क्षेत्रों में छोटे नये राज्यों का उदय हुआ तो कुछ उन राज्यों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया जिन्होंने गुप्त शासकों के सामन्तीय आधिपत्य को स्वीकार किया था। जैसे कि यशोधर्मन और मौखरी, हुण तथा बाद के मगध के गुप्त शासक अब नवीन राजनैतिक शक्तियां थे। इनके अतिरिक्त पुष्यभूति, गौड़ों, वर्मनों एवं मैतृकों का काफी महत्व हो गया। इस इकाई में इन राज्यों के राजनैतिक इतिहास का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास किया गया है। इसी के साथ-साथ हर्षवर्धन और पुष्यभूति परिवार के प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषता वोटों को प्रदान किए गए राजनैतिक संरक्षण आदि कुछ निश्चित पक्षों का भी विवरण किया गया है।

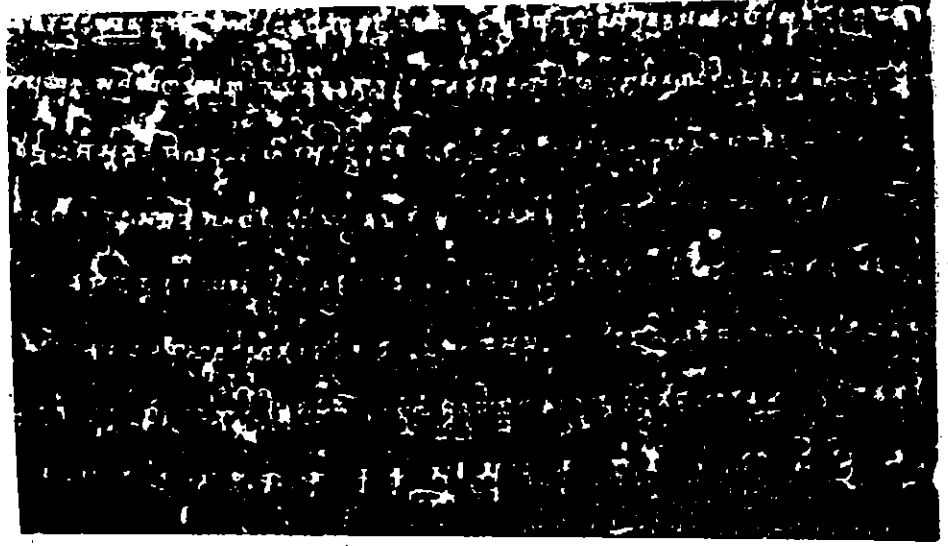
34.2 क्षेत्रीय शक्तियां

एक शक्तिशाली शक्ति के अभाव में विभिन्न क्षेत्रों में कई क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। इन शक्तियों का प्रतिनिधित्व भिन्न-भिन्न वंशों द्वारा किया गया और इन्होंने अपने-अपने राज्यों की स्थापना की तथा ये अक्सर एक-दूसरे से युद्धरत रहते थे। इन राज्यों में से यहाँ पर हम कुछ का संक्षिप्त विवरण करेंगे।

34.2.1 यशोधर्मन

कुमारगुप्त-1 के शासन काल में उसके एक सामन्त के रूप में बन्धुवर्मन मन्दसौर पर शासन करता था और

यह पश्चिमी मालवा का एक बड़ा केन्द्र था। यह औलिकर परिवार से संबंधित था और उसने छठी सदी ई. के प्रारम्भ तक शासन किया। मध्य प्रदेश के मन्दसौर से प्राप्त दो पत्थर स्तम्भों के अभिलेखों में से एक 532 ई. का है, जिसमें एक शक्तिशाली राजा यशोधर्मन का उल्लेख है। इनमें से एक अभिलेख यशोधर्मन की विजयों का वर्णन करता है। इस अभिलेख में वर्णन है कि उसने उन सभी क्षेत्रों को विजयी किया जिनको गुप्त शासक भी न जीत सके थे। परन्तु मिहिरकुल के अलावा किसी और पराजित राजा के नाम का उल्लेख इन अभिलेखों में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यशोधर्मन का एक शक्ति के रूप में उदय लगभग 528 ई. में हुआ और उसका शासन 532 ई. तक जारी रहा, (मन्दसौर अभिलेख की तिथि) परन्तु उसकी शक्ति का अन्त 543 ई. में हुआ।



5. यशोधर्मन का मन्दसौर अभिलेख

34.2.2 मौखरी

मौखरियों का वंश का एक पुराना वंश था क्योंकि इसका उल्लेख पतंजली की रचना एवं दूसरे प्रारम्भिक स्रोतों में हुआ है।

मौखरियों ने राजनैतिक शक्ति को पांचवीं सदी ई. के अन्त में प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था जैसा कि हर्ष के समय के प्राप्त 554 ई. के अभिलेख से स्पष्ट है कि इसी काल में गया से यजुवर्मन के उदय का उल्लेख है।

बाराबर और नागरजुनी से प्राप्त अभिलेखों में ऐसे प्रथम तीन मौखरी राजाओं का उल्लेख है जिन्होंने गया में, अपने कन्नौज उत्तराधिकारियों से लगभग 150 वर्ष पूर्व, शासन किया था।

ये प्रथम तीन राजा यजनवर्मन, सरदुलावर्मन और अनन्तवर्मन थे। इनमें से कुछ राजाओं ने केवल सामन्त की उपाधि धारण की जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि वे गुप्त शासकों के अधीन सामन्तीय राजाओं की भाँति शासन कर रहे थे।

असिरगढ से प्राप्त तांबे की मोहर पर हमें 1) हरिवर्मन, 2) आदित्यवर्मन, 3) ईश्वरवर्मन, 4) ईश्वरवर्मन, और 5) सर्ववर्मन के नामों का उल्लेख मिलता है। ये राजा उत्तर प्रदेश के कन्नौज नगर पर शासन कर रहे थे। प्रथम तीन राजाओं ने महाराज की उपाधि को धारण किया तो ईश्वरवर्मन ने स्वयं को महाराजाधिराज कहा है।

यह संभवतः ईश्वरवर्मन ही था जिसने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। प्रारम्भिक मौखरी शासकों ने उत्तर-गुप्त शासकों के साथ पारिवारिक संबंधों को कायम किया। परन्तु ईश्वरवर्मन ने जब अपने स्वतंत्र राज्य की घोषणा की तो उत्तर-गुप्तों एवं मौखियों के बीच संबंध विगड़ गये क्योंकि अपसाइड अभिलेख से सूचना मिलती है कि मगध के उत्तर-गुप्त वंश के चौथे शासक कुमारगुप्त ने ईश्वरवर्मन पर विजय हासिल की। परन्तु ऐसा लगता है कि वंश का शासन जारी रहा।

बल्गरी के मुद्रक प्रारम्भ में साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के अधीन शासन करते थे और धीरे-धीरे उन्होंने अपनी सर्वात्मता को स्थापित किया। गुप्त राज्‍य का संस्‍थापक हरिश्‍चर था जिसके तीन उत्तराधिकारियों ने 640 ई. तक शासन किया। गुड शासन के अंतर्गत उत्तर और उत्तर-पश्चिम बंगाल के प्रदेश थे और इन पर सातवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में एक स्वतंत्र शासक के रूप में शाशक ने शासन किया जो हर्षवर्धन का समकालीन एवं शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी था। प्रधानशक्ति, जिसमें गुप्त शासक सम्‍न्वयन की उपलब्धियों का वर्णन है, में अस्‍म के दो राज्यों का मन्‍व एवं दवाक का उल्लेख हुआ है। चौथी सदी ई. के मध्य में कामरूप

- उड़ीसा में मान और खैलचक्रवा
- कामरूप (अस्‍म) में वर्धन
- बंगाल में गुड
- राजपूताना और गुजरात के गुर्जर
- गुजरात में स्थित बल्‍गरी के मुद्रक

निम्नलिखित शक्तियों का भी उदय हुआ—

इन उपरोक्त उन्‍मुखित वंशीय शक्तियों के अतिरिक्त उत्तर-गुप्त काल में दूसरी कई अन्य महत्त्वपूर्ण

की और हुआ। लेकिन गुडों की कबील के शासक वंशीवर्धन के द्वारा पराजित होना पड़ा।

उत्तर गुप्त शासकों का अन्त उस समय ही गया जबकि बंगाल के गुड शासकों की शक्ति का प्रसार पश्चिम

और उसने विजय के एक महीने का विमोचन कराया।

संभव है कि उसके अपने राज्य में पूर्व उत्तर-प्रदेश की भी सम्‍मिलित कर लिया हो। वह एक परम भागवत था

किया। अपना अधिभूषण के अनुसार, उसके साम्राज्य में माघ, अंग एवं बंगाल के प्रदेश सम्‍मिलित थे। यह

साम्राज्य तक बना रहा और आदिचरसेन ने अधवर्धन एवं कर के अपने सिंहासनारोहण की शक्ति का प्रदर्शन

उसकी इस विधि का उल्लेख उसके एक अधिभूषण में भी हुआ है। उत्तर-गुप्त शासकों का शासन हर्षवर्धन के

गुप्त वंश का सबसे शक्तिशाली शासक आदिचरसेन था। वह 672 ई. में माघ में शासन कर रहा था तथा

के कारण मालवा की और धारि कटमा पड़ा परन्तु पुनः माघ पर अपनी सर्वात्मता को स्थापित किया। उत्तर-

विद्या और माघ का एक भाग खोना पड़ा। दामोदरगुप्त के उत्तराधिकारियों को कुछ समय के लिये मौखारियों

अगले गुप्त राजा कुमारगुप्त के पुत्र दामोदरगुप्त की मौखरी वंश सर्ववर्धन ने पराजित कर उसका वध कर

राजा कुमारगुप्त ने मौखरी राजा ईशानवर्धन की पराजित किया।

नेपाल के लिच्छिवियों एवं बंगाल के गुड राजाओं के विरुद्ध युद्ध किया, और जीवितगुप्त के उत्तराधिकारी

गुप्त शासकों की अपने समकालीन किसी राजा के साथ संबंध करना पड़ा, उसके पुत्र जीवितगुप्त ने

उदाहरण के लिये हर्षगुप्त ने अपनी बहन का विवाह एक मौखरी राजा के साथ किया। इस पूरे काल में उत्तर

उत्तर गुप्त राजाओं ने अपने अन्य समकालीन शासक परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध कायम किये।

- | | | |
|-----------------|----------------|----------------|
| 1) कल्याण | 2) हर्ष गुप्त | 3) जीवितगुप्त |
| 4) कुमारगुप्त | 5) दामोदरगुप्त | 6) महासेनगुप्त |
| 7) माघगुप्त, और | 8) आदिचरसेन | |

गया से प्राप्त अपना अधिभूषण में आठ उत्तर-गुप्त शासकों के नाम इस प्रकार से हैं—

साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के साथ किस प्रकार के सम्‍न्ध थे।

गुप्त शासकों के नाम से जाना जाता है। परन्तु उसकी इस कोई जानकारी नहीं है कि उनके प्रारम्भिक

जिन शासकों ने छठी सदी ई. के मध्य में शासन किया उनकी माघ गुप्तों या उत्तर-

34.2.3 उत्तर गुप्त शासक

रही।

अन्योनस युद्ध किये उनमें, उनकी विजयों एवं पराजयों के कारण उनके राज्य की सीमाओं में परिवर्तन होते

किया। मौखारियों ने आधुनिक उत्तर प्रदेश और माघ के कुछ हिस्सों पर शासन किया। परन्तु उन्होंने जो

के शासक देवगुप्त ने कबील पर आक्रमण किया और प्रहवर्धन की हत्या करके मौखरी राज्य का अन्त कर

शासक प्रथाकरवर्धन की पुत्री और प्रसिद्ध शासक हर्षवर्धन की बहन राज्यधारी के साथ विवाह किया। मालवा

वर्षों हुए सम्‍मान की पुनः स्थापित किया। मौखरी वंश का अन्तिम शासक प्रहवर्धन था जिसने शनैश्चर के

ईशानवर्धन के दिव्य पुत्र सर्ववर्धन ने उत्तर-गुप्त शासक दामोदर गुप्त की पराजित कर मौखारियों के

इस समय में (604 ई. के लगभग) धानेश्वर की पहिचान की और से हूणों से खतरा हुआ। बाणभद्र ने प्रभाकरवर्धन को "हूण नामक हिरन के लिये शेर" कह कर वर्णित किया है। उसके अनुसार राज्यावर्धन के अधीन एक सेना हूणों को पराजित करने के लिये भेजी गई परन्तु उसके पिता के अचानक बीमार हो जाने के कारण वह वापस लौट आया। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के कारण परिवार ने कुछ समय के लिये समस्त का समायोजन किया। मालवा के राजा ने गृहवर्धन की हत्या कर दी और राज्याधी की बन्दी बनाकर ले गया। ऐसा

संबंध स्थापित किया।

सूचना मिलती है और उसने अपनी पुत्री राज्याधी का विवाह गृहवर्धन के साथ करके मौखिकियों से वैवाहिक प्रभाकरवर्धन के लिए महाराजगण्डिका की उपधि का प्रयोग किया गया है जिससे हमें एक स्वतंत्र राजा की चीन की महाराज की उपधि दी गई है। इससे स्पष्ट है कि वे सांस्कृतिक राजा नहीं थे। चौथे राजा मधुवन से प्राप्त लेटे एवं शाही मोहरों में प्रारम्भिक पांच शासकों के नामों का उल्लेख है जिनमें से प्रथम के नाम से जाना जाता है। यद्यपि हर्ष के अभिलेखों में उसका कोई उल्लेख नहीं हुआ है। ब्राह्मणों और कि धानेश्वर में इस वंश का संस्थापक राजा पुष्यभूति था और इसी कारणवश इस परिवार को पुष्यभूति वंश हर्ष वर्तित, हर्ष-वर्धन-संग के संस्मरण, कुछ अभिलेख एवं सिक्के आदि आते हैं। बाणभद्र हमें सूचित करता है धानेश्वर में तथा बाद में उत्तर-प्रदेश के कन्नौज से शासन किया। इन चीतों के अन्तर्गत बाणभद्र द्वारा रचित हर्ष बह्वि से चीतों से पुष्यभूति वंश के उदय की सूचना मिलती है और जिसने पहले तो हरियाणा प्रदेश के

34.3 धानेश्वर और कन्नौज के पुष्यभूति

- (द) यह स्पष्ट है कि उत्तर-गुप्त शासकों का साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के साथ संबंध था।
- (स) आदित्यवर्धन मौखिकियों का सबसे शक्तिशाली शासक था।
- (ब) मौखिकी राजाओं ने गया के ऊपर शासन किया।
- (अ) मन्दासौर से प्राप्त पत्थर स्तंभों के अभिलेखों में कुमारगुप्त-1 का उल्लेख हुआ है।

2) निम्नलिखित में कौन-कौन से कथन सही (✓) है और कौन-कौन से गलत (×) है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1) उठी सही है, में उत्तर भारत में जिन छोटी शक्तियों ने जिन क्षेत्रों में शासन किया उनकी सूची बताइये।

दीर्घ प्रश्न 1

यद्यपि इस बात के प्रमाण है कि उड़ीसा के कुछ स्थानीय शासकों ने गुप्त शासन के अन्तिम वर्षों में साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था, परन्तु उठी सही है, के उतरार्द्ध में उड़ीसा में दो स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। इनमें से एक भोज राज्य था जो बालासौर से पूरी जिले तक फैला हुआ था और दूसरा कोर्नाड का शैलेश्वर राज्य था। जिसकी सीमाएँ बिलका झील से गंगाम जिले की महेश्वरि पहलियों तक फैली हुई थी। दोनों राज्यों की शक्ति का इस बगाल में शशांक राजा और कन्नौज के शासक हर्षवर्धन की शक्ति में वृद्धि हो जाने के कारण हुआ।

सदृशी थी और उसने सातवीं शताब्दी ई. के पूर्वार्द्ध में शासन किया था। भारकरवर्धन के समय तक शासन किया। भारकरवर्धन कन्नौज के शासक हर्षवर्धन का समकालीन एवं पुष्यवर्धन ने संभवतः असम में प्रथम ऐतिहासिक राजवंश की स्थापना की। इस वंश में बारह पीढ़ियों तक उत्तर-पूर्वी क्षेत्र का राजनैतिक रूप से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो गया था। इस विधि के लगभग आस-पास, 800 ई. तक

सर्वोच्च आधिकारी था और उसकी सहायता उसके मंत्रियों एवं विभिन्न श्रेणी के अधिकारियों द्वारा की प्रचलित थी। देवन-स्नान के विवरण के अनुसार, हर्ष अपने सम्पूर्ण राज्य का भ्रमण करता था। राजा ही के अधीन भी वही प्रशासनिक व्यवस्था कुछ परिवर्तनों के साथ जारी थी जो व्यवस्था गुप्त शासकों के दौरान हर्ष ने 41 वर्ष तक शासन किया और ऐसा अनुमान है कि 647 ई. के आस-पास उसकी मृत्यु हो गयी। हर्ष

में चीन भ्रमण था।

में भारत आया उस समय तक हर्षवर्धन जीवित नहीं रहा था। हर्ष ने स्वयं भी एक ब्राह्मण को 641 ई. में अपने तीन दूत मण्डली की भेजा था। अनिम प्रतिलिपि मण्डल वांग-देवन-से के नेतृत्व में 647 ई.

हर्ष के चीन के साथ कूटनीतिक संबंध थे और उसके समकालीन चीनी समाट ती-आंग ने उसके दरबार

सैनिक अभियान चलाया है।

और इसीलिए यह संभव है कि उन दोनों ने संयुक्त रूप से बंगाल एवं पूर्वी भारत के अन्य भागों में समाट था। हमने पहले भी बताया था कि हर्ष का असम के राजा भास्करवर्धन के साथ गठबंधन था।

हर्ष अपने पूर्वी अभियान में सफल रहा। एक चीनी विवरण के अनुसार हर्ष 641 ई. में माघ का

पुलकेशिन-II के विरुद्ध सफलता प्राप्त न कर सका।

जिस स्थान पर हुआ इसकी विस्तृत जानकारी हमारे पास नहीं है, परन्तु इतना स्पष्ट है कि हर्षवर्धन

पुलकेशिन-II की पराजित न कर सका। पुलकेशिन-II कर्नाटक में बादमी का चालुक्य नरेश था। यह युद्ध

देवन-स्नान के विवरण के अनुसार यद्यपि हर्षवर्धन ने कई राज्यों के विरुद्ध विजय प्राप्त की परन्तु वह

पुलकेशिन-II ने हर्षवर्धन के विरुद्ध सैनिक सफलता प्राप्त की।

पुलकेशिन-II की अर्द्धहोले प्रशस्ति के अनुसार, जो अर्द्धहोले के एक मन्दिर की दीवार पर स्थित है,

नरेश पुलकेशिन-II के सामने थी।

स्वीकार कर लिया था क्योंकि अर्द्धहोले अभिलेख के अनुसार शत, मालवा और गुजरात शासक चालुक्य

विरुद्ध अपनी सुरक्षा के लिये, कर्नाटक में बादमी के चालुक्य शासकों के सामान्तीय आधिपत्य की

इनका शासन सम्भवतः हर्ष के काल में भी जारी रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात शासकों ने, हर्ष के

में गुजरात के कर्नाटक क्षेत्र के नन्दिपुरी स्थान पर गुजरात शासकों का एक परिवार शासन कर रहा था।

बाण-के विवरण में हमें मालूम होता है कि गुजरात शासकों की वर्धन वंश के प्रति श्रद्धा थी। इसी काल

किया। वल्लभी हर्षवर्धन के शासन काल में भी शक्तिशाली शासक बने रहे।

राजाओं के अभिलेखों से सूचना प्राप्त होती है कि उनके राजा ददवा द्वितीय ने वल्लभियों का सम्पर्क

कि हर्ष की श्रद्धा, वल्लभियों के साथ वैवाहिक संबंध कायम करने के बाद सम्पाद हो गई। हमें गुजरात

उसने हर्षवर्धन द्वारा बुलाई गयी प्रथम में धार्मिक समा में भी भाग लिया। इससे यह आभास मिलता है

वर्तमान में वल्लभी नरेश सुवर्सेन-II बालाहिर का उल्लेख किया है। यह हर्षवर्धन का दामाद था और

है। हमें वल्लभी के पांच राजाओं के नाम मिलते हैं जो हर्ष के समकालीन थे। देवन-स्नान ने अपने

वल्लभी की साधारणतः पहिचान काठियावाड़ में भावनगर से 18 मील दूरी पर स्थित वल्ल से की गई

वल्लभी के भूविक शासक गुजरात प्रदेश के सौराष्ट्र क्षेत्र में एक मजबूत शक्ति के रूप में उभर चुके थे।

गौड़ राजाओं को पराजित किया—

किया है। इसी के साथ-साथ उसने पश्चिम में वल्लभी और गुजरात, दक्खन में चालुक्य और पूर्व में माघ एवं

और देवन-स्नान दोनों ने हर्ष के द्वारा दूरसे राजाओं को पराजित करने के लिये की गई प्रतिज्ञा का उल्लेख

देवन-स्नान द्वारा दिये गये विवरण में हर्ष और उसके पूर्ववर्तियों की कर्नाटक के शासक बताया गया है। बाण

राज्यों का विजय कर दिया गया एवं हर्ष ने अब कर्नाटक से शासन करना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में,

या नहीं परन्तु उसने अपनी बहिन राज्यश्री की बचान में सफलता प्राप्त की और शान्तिपूर्वक तथा कर्नाटक दोनों

गौड़ नरेश शशांक दोनों का शत्रु था। हमें इसकी कोई सूचना नहीं है कि शशांक के साथ हर्ष का युद्ध हुआ

लिये प्रस्थान किया। उसने भास्करवर्धन के साथ समझौता किया जो प्रजायुतिशा (असम) का राजा था और

हर्ष 606 ई. के लगभग शान्तिपूर्वक के राजसिंहसन पर बैठे और गुरन गौड़ों के विरुद्ध कार्यवाही करने के

34.4 हर्षवर्धन

स्थापना कर ली।

दिया। अब यह हर्ष का उत्तरदायित्व था कि वह बदल ले और इसी बीच उसने एक मजबूत साम्राज्य की

गया। राज्यवर्धन ने मालवा की पराजित कर दिया परन्तु गौड़ नरेश शशांक ने उसका वध कर

प्राप्त होता है कि मालवा एवं गौड़ राजाओं ने एक साथ बनाया और इससे शान्तिपूर्वक की भी खतरा उत्पन्न हो

मधुवन से प्राप्त तांबे की प्लेट में कई अधिकारियों का उल्लेख हुआ है जैसे कि उपरिका (प्रांतीय गवर्नर), सेनापति (सेनाध्यक्ष), दूतक (सूचना देने वाला), आदि। हर्ष के अभिलेखों, बाण की हर्ष चरित और ह्वेन-त्सांग के विवरण से यह स्पष्ट है कि साम्राज्य और प्रशासन का स्थायित्व सहयोगियों एवं सामन्तों (सामन्त और महासामन्त) के समर्थन पर निर्भर करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकारियों को वेतन का नकद भुगतान नहीं किया जाता था। इसके अलावा, उनको, उनकी सेवा के लिये, भूमि प्रदान की जाती थी। यह भी लगता है कि इस समय कानून और व्यवस्था की स्थिति अच्छी नहीं थी क्योंकि ह्वेन-त्सांग को भी डाकुओं के द्वारा लूटा गया था।

बांसखेड़ा, नालन्दा और सेनापति के अभिलेखों में उल्लेख है कि हर्षवर्धन शिव का पुजारी था। परन्तु बाद में उसने बौद्ध धर्म को अंगीकार कर लिया और कन्नौज में एक बौद्ध सभा का आयोजन किया। इस सभा में महायान के सिद्धान्त का बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ प्रचार किया गया। ह्वेन-त्सांग के अनुसार, इस सभा में 18 राजाओं और तीन हजार भिक्षुओं ने भाग लिया तथा यह सभा 18 दिन तक चली। हर्ष के शासन काल के दौरान दूसरी सभा पांच वर्ष के बाद प्रयाग में की गई। हर्ष ने अपने शासन के बाद 30 वर्षों में 6 बार इस प्रकार बौद्ध सभाओं का आयोजन किया। इन पांच वर्षों के अन्तराल में वह अपने खजाने में जितना भी धन एकत्रित करता था उसको वह इन समारोहों के अवसर पर दान में बांट देता था। इस काल में शिक्षा एवं विद्वानों को भी संरक्षण प्रदान किया गया। नालन्दा विश्वविद्यालय में एक हजार से भी अधिक विद्यार्थी थे। हर्ष ने इस विश्वविद्यालय को 100 गांव दान में दिये थे।



6. (बांसखेड़ा लेख) हर्षवर्धन के हस्ताक्षर



7. नालन्दा से प्राप्त मुहर



8. हर्ष का सोने का सिक्का

(1) वांग-ह्वेन-त्सी के विचारों की वैधता पर कुछ विद्वानों ने संदेह व्यक्त किया है।

(2) हर्ष ने कोई बौद्ध धर्म का सम्मेलन नहीं बुलाया।

(3) हर्ष ने पुलकेशिन-II की पराजित किया।

(4) बलभी के मृतक सौराष्ट्र क्षेत्र में एक मजबूत शासक शक्ति थी।

(5) ह्वेन-त्सीग एक अरब यात्री था।

(6) निम्नलिखित में से कौन-कौन से कथन सही (✓) एवं कौन गलत (×) हैं?

शेष प्रश्न 2

में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इन साम्राज्यों की समाप्ति के बाद, क्षेत्रीय शक्तियों ने स्वयं की सुदृढ़ किया और आने वाले युग के इतिहास साम्राज्य की समाप्ति का अर्थ यह नहीं होता कि भारत में राजनैतिक अराजकता का युग प्रारम्भ हो गया था। शान्तिपूर्ण एक अपना अधिकार कायम रखा। इससे साफ है कि गुप्तों की शक्ति के पतन एवं हर्ष के राजवंशों के अन्तर्गत राजपूतों की विभिन्न उप-जातियों थीं और इन्होंने पश्चिमी भारत की राजनीति पर कई वाहमान-तथ्य दूसरे राजवंशों के रूप में उदय हुआ और इन राजवंशों के रूप में उदय हुआ और इन इसी प्रकार से, पश्चिम भारत में जिसके अन्तर्गत गुजरात एवं राजस्थान आता है, गुर्जर-प्रतिहार गृहिल, तक इनका शासन बहा पर जारी रहा। यह इस प्रदेश के राजनैतिक इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ था। व्यवस्था कायम कर दी थी। बगल में आठवीं सदी के मध्य में पाल शक्ति का उदय हुआ और कई सदियों करती थी। कश्मीर घाटी में, जिसके विषय में हम ऊपर लिख चुके हैं, कि प्रथम बार एक स्थानीय राज्य कोई अखिल भारतीय साम्राज्य तो था नहीं, परन्तु वे क्षेत्रीय राजनैतिक ढांचों के प्रारम्भ होने का प्रतिनिधित्व काठ में, भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्रों में राज्य व्यवस्था में स्थापित आना प्रारम्भ हो गया था। इस समय यद्यपि इन राजवंशों का शासन काफी कम समय तक रहा, परन्तु इनका यह याद रखना चाहिए कि इस

महोदय-चरित, और उत्तर-सामयिक की रचना की।

प्रदान करता था उसके दरबार में वाक्यपति एवं भावभूति जैसे विद्वान थे। वाक्यपति ने प्राकृत में मालिमाधव, किया और मगध की जीत लिया। यशोवर्मन एक महान योद्धा होने के साथ-साथ विद्वानों की भी खूब संरक्षण हर्ष की मृत्यु के 75 वर्ष बाद यशोवर्मन ने कन्नौज में शक्ति प्राप्त की थी। उसने गौड़ राजाओं को पराजित

किया बल्कि उसके साथ सम्झौता करके उसकी अपना सहयोगी बना लिया।

और यशोवर्मन को हरा दिया। चीनी वृत्तान्तों से स्पष्ट है कि मुकामिद ने राज्य पर अपना अधिकार नहीं अरबों के प्रवेश को रोका। इसी वंश के एक दूसरे राजा खलिजतिल मुकामिद ने कन्नौज पर आक्रमण किया काश्मीर में तुलभरधन ने कारकोट नाम के वंश का शासन स्थापित किया। उसके पौत्र चन्द्रपिद काश्मीर में शक्ति उपसाह अभिलेख में उल्लेख है कि आदित्यसेन का शासन मगध पर था।

उसका शासन बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले के कारमुपुवर्ना एवं उसके आस-पास के स्थानों पर था। इसी की उत्तर हर्ष काल के शासकों में राजा भारकरवर्मन के विषय में उसकी निधानपुर अभिलेख में उल्लेख है कि

उत्तर हर्ष वंश

के समस्त उसकी उपस्थित किया। परन्तु कुछ विद्वानों ने इस विवरण की वैधता की चुनौती दी है। संघर्ष करती रही और उसकी भी हरा दिया गया। वांग अर्जुन को अपने साथ चीन ले गया अपने राजा आया। अर्जुन और सेना को पराजित कर दिया गया और उसको पकड़ लिया गया। बाद में अर्जुन की रानी से लड़ने के लिये वह लिखत से एक हजार तथा सात हजार के सैनिक अपने साथ लेकर वापस रोकने के लिये अर्जुन (सी-ना-फो-ती) ने सेना को भेजा। वांग-ह्वेन-त्सी किसी प्रकार से बच गया और अर्जुन वैसे उसके पास हर्ष की मृत्यु का समाचार पहुँचा। वह हमें बताता है कि चीनी राजदूत का भारत में प्रवेश नियुक्त किसे गये राजदूत वांग-ह्वेन-त्सी द्वारा किया गया है। जैसे ही उसने भारत की सीमाओं में प्रवेश किया हर्ष की मृत्यु के पुराने बाद जो घटनाक्रम घटित हुआ उसका विस्तार के साथ विवरण चीनी सप्ताह द्वारा

यह दायर भी समाप्त हो गया।

हर्षवर्धन ने जिस साम्राज्य की स्थापना की थी उसका ढांचा काफी ढीला-ढाला था और उसकी मृत्यु के बाद

34.5 उत्तर-हर्ष काल में उत्तर भारत की राजनैतिक दशा

2) हर्ष एवं अन्य राज्यों के मध्य संबंधों पर 10 पंक्तियां लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) उत्तर हर्ष काल में उत्तर भारत की राजनैतिक दशा कैसी थी? इस पर दस पंक्तियां लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

34.6 सारांश

उत्तर-गुप्त काल में बहुत से राज्य अस्तित्व में आये। ये राज्य इतने बड़े नहीं थे जितना गुप्त राज्य। इन राजवंशों का भाग्य समय के साथ-साथ बदलता रहता था जिन्होंने इन राज्यों में शासन किया। हर्ष जैसे राजा ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को अपने अधीन करने में सफलता प्राप्त की परन्तु उनका राज्य थोड़े समय के लिए ही बना रह सका। इसी के साथ-साथ हम देखते हैं कि बहुत से क्षेत्रों में कई नयी राजनैतिक शक्तियों का उदय हुआ जो कई सदियों तक बनीं रहीं। इस काल में कई क्षेत्रीय राज्यों के प्रारम्भ को खोजा जा सकता है। यद्यपि इन शाही परिवारों का शासन काफी कम समय के लिये बना रहा परन्तु इस काल के भारत उप-महाद्वीप में क्षेत्रीय स्तर पर स्थायी राज्य व्यवस्थाओं का प्रारम्भ हुआ। ये अखिल भारतीय स्तर के राज्य नहीं थे, परन्तु ये स्थानीय राज्य व्यवसायों के प्रारम्भ का प्रतिनिधित्व करते थे और भारत के आगामी काल के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

34.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) भाग 34.2 के आधार पर अपना उत्तर दें।
- 2) अ) × ब) ✓ स) × द) ×

बोध प्रश्न 2

उत्तर भारत में जुनूत कल के बाद के रूप

- 1) अ) × ब) √ स) × द) × ई) √
- 2) भाग 34.4 के आधार पर अपना उत्तर दें।
- 3) भाग 34.5 के मुख्य-मुख्य अंशों के साथ तुलना करके अपना उत्तर दें।

इकाई 35 दक्खन और दक्षिण भारत के राज्य

इकाई की रूपरेखा

- 35.0 उद्देश्य
- 35.1 प्रस्तावना
- 35.2 मध्य छठी शताब्दी तक दक्खन की राजनीतिक स्थिति
 - 35.2.1 विदर्भ
 - 35.2.2 कर्नाटक
 - 35.2.3 पूर्वी दक्खन
 - 35.2.4 दक्षिणी कर्नाटक
- 35.3 दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति
- 35.4 चालुक्यों, पल्लवों और पांडवों का उदय
 - 35.4.1 चालुक्य
 - 35.4.2 पल्लव
 - 35.4.3 पांड्य
 - 35.4.4 अन्य शक्तियाँ
- 35.5 विभिन्न शक्तियों में टकराव
 - 35.5.1 छोटे राजाओं की भूमिका
 - 35.5.2 राजनीतिक टकरावों के अन्य आयाम
 - 35.5.3 अन्य देशों के साथ संबंध
 - 35.5.4 केरल
- 35.6 राजनीतिक संगठन
 - 35.6.1 राजा और प्रशासन का उच्चतर ढंग
 - 35.6.2 प्रशासनिक इकाइयाँ
 - 35.6.3 स्थानीय संगठन
- 35.7 विभिन्न श्रेणी के शासकों के संबंध
- 35.8 सारांश
- 35.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- दक्खन और दक्षिण भारत में उदय होने वाले राज्य विशेषकर बादमी के चालुक्यों और कांची के पल्लवों के विषय में जान सकेंगे,
- इन राज्यों के बीच के संबंध समझ सकेंगे,
- हमारे काल के राजनीतिक इतिहास को समझने में भूगोल की भूमिका, और
- इस बात की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि इन राज्यों में जनता पर किस तरह शासन होता था?

35.1 प्रस्तावना

विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाले भारत के भाग को लोग दक्षिण भारत या दक्खन कहते हैं। यह विभाजन दरअसल प्राचीन भारत के उस समय से ही चला आ रहा है, जब विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाला क्षेत्र दक्षिणपथ या दक्षिणी क्षेत्र कहलाता था। दक्खन मध्य युग में आकर दक्कन हो गया, जिससे दक्कन शब्द निकला है। लेकिन इतिहासकारों और भूगोलविदों को मुख्य दक्कन को शेष दक्षिण भारत से अलग करके देखना उपयोगी लगा है। दक्खन में महाराष्ट्र और उत्तरी कर्नाटक आ जाते हैं, और गोदावरी और कृष्णा के दुहरे डेल्टा भी। इसी रीति का अनुसरण करते हुए, हम दक्खन और दक्षिण भारत की बात विंध्य के दक्षिण

उत्तर सतवाहन दक्खन में, राजनीतिक दृष्टि से, सबसे अधिक अशान्त क्षेत्र पूर्व में पड़ने वाला उपजाऊ

35.2.3 पूर्वी दक्खन

आते उन्हें विकल्प दया दिया।
 चालुक्यों का खतरा रहा। चालुक्यों ने धीरे-धीरे उनकी भूमि हड़पनी शुरू कर दी, और 575 ई. तक आते-
 और दोनों पर उनके अधिक शक्तिशाली पड़ोसियों-पल्लवों, पश्चिमी गंगा, और सबसे अधिक, बादमी के
 (बनवासी) तथा पल्लविका (हलसी) राजधानियाँ बनीं। दोनों शाखाएँ कभी आपस में शान्ति बना कर नहीं रही
 राज्य के इतिहास की शुरुआत में उसका बंटवारा परिवार की दो शाखाओं के बीच हो गया, और वैजयंती
 शासक से क्षत्रिय बन गया (बर्धन क्षत्रिय वर्ग सूचक नाम था, जबकि सरमन शासक वर्ग सूचक)। कदम्ब
 प्रभुत्व मानने पर मजबूर कर दिया। फिर उसने अश्वमेध यज्ञ किये और मयूरसरमन से मयूरवर्मन, याने
 मगध मयूरसरमन ने की। मयूरसरमन जगन्नाथ लड़ाई में माहिर था और उसने कांची के पल्लवों को अपनी
 उन्होंने चौथी शाखा के मध्य तक राज किया, फिर कदम्बों ने उन्हें उखाड़ फेंका। इस राज्य की स्थापना
 उत्तरी कर्नाटक (उत्तर कन्नड़) की तटीय पट्टी और मध्य के क्षेत्रों में घुड़ों ने एक छोटा राज्य बना लिया।

35.2.2 कर्नाटक

शक्ति के रूप में बादमी के चालुक्यों ने उनके पांव उखाड़ दिये।
 टूटने और कमजोर होने से बचाया नहीं जा सका। मध्य छठवीं शताब्दी तक आते-आते दक्खन की बड़ी
 लेकिन छठवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कलचुरियों और कादम्बों के अपने अपने क्षेत्र बना लेने से इस राज्य की
 पूर्वी दकन में विष्णुकुंडी और दक्षिण में कदम्ब के साथ शादी विवाह के और राजनैतिक रिश्ते कायम किये।
 कुछ भिला कर वकटक लोग शान्ति प्रिय रहे, और उन्होंने अपने शक्तिशाली पड़ोसियों जैसे उत्तर में गुप्त,
 कबल प्रवर्तन प्रथम के पास ही रही। उसने कई वैदिक यज्ञ किये और शासकों को कई भूमिदान भी किये।
 करती थी। सबसे मशहूर वकटक राजा मुख्य शाखा का प्रवर्तन प्रथम हुआ। सम्राट की उपाधि वकटकों में
 जबकि वकटकों की घाटी शाखा के नाम से जानी जाने वाली एक सहाय्यी शाखा दक्षिणी महाराष्ट्र में राज
 अला-अलग क्षेत्रों में राज्य कर रही थी। मुख्य शाखा तो पूर्वी महाराष्ट्र (विदर्भ क्षेत्र) से राज करती थी,
 और उससे लगने वाले मध्य प्रदेश के भागों पर अपना कब्जा कर लिया। वकटकों की दो शाखाएँ थीं जो
 राजाओं के रूप में शुरुआत की, लेकिन तेजी से अपनी ताकत बढ़ा दी और महाराष्ट्र के अधिकांश भाग
 महाराष्ट्र पठार पर जल्दी ही वकटक हवी हो गये। उन्होंने तीसरी शताब्दी की अंतिम चौथाई से छोट

35.2.1 विदर्भ (महाराष्ट्र)

सतवाहनों के पतन के बाद दक्खन पर एक वंश का राजनीतिक कब्जा खत्म हो गया। कई राज्य अलग-
 अलग क्षेत्रों में सतवाहनों के उत्तराधिकारियों के रूप में उभर कर आये। उत्तरी महाराष्ट्र में हम अभी भी
 देखते हैं, जिन्होंने कुछ समय तक शक राज्यों में सेनापतियों का काम किया, और मध्य तीसरी शताब्दी में
 एक राज्य की स्थापना की। उसकी स्थापना ईश्वरसेन ने की, जिसने 248-49 ई. में एक युग की शुरुआत
 की। बाद में यह युग बहुत महत्वपूर्ण हो गया और इसे कलचुरी वेदा युग के नाम से जाना गया।

35.2 मध्य छठवीं शताब्दी तक दक्खन की राजनीतिक स्थिति

शताब्दी तक विकसित होने वाली राजनीतिक स्थिति के बारे में पढ़ेंगे।
 उदय हुआ। इस दृष्टि में आप दक्खन में उत्तर-सतवाहन काल (तीसरी शताब्दी की शुरुआत) से आठवीं
 में थी, स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव हो रहे थे, जिसके फलस्वरूप आने वाले काल में राज्य व्यवस्थाओं का
 और दक्खन की, अपने आपकी "दक्खन के स्वामी" कहने वाले, सतवाहनों ने अपने में भिला लिया। दक्षिण
 पड़ोसी थी। उत्तर मौर्य काल के, प्रारम्भिक दौर में राजा की उपाधि वाले छोटे-छोटे सतदार दक्खन में उभरे
 भारत की प्रमुख रियासतें-अथापि चोला, पांड्या, वेरा और सतिवापुयों की रियासतें-मौर्यों की मित्र और
 विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि दक्खन तो मौर्य साम्राज्य में शामिल था, और
 खूब सात में आप दक्खन और दक्षिण भारत में मौर्य काल और उत्तर मौर्य काल में होने वाले राजनीतिक
 अध्ययन में लिखने वाले उत्तरे जायेंगे, आपको इन शब्दों का महत्व और अधिक समझ में आता जायेगा।
 उत्तर भारत से अलग करके देखे जाने वाले क्षेत्रों के लिये, करेंगे, आप इस क्षेत्र के इतिहास और समाज के
 में पड़ने वाले दो क्षेत्रों के रूप में करेंगे, जबकि "दक्षिणी भारत" शब्द का इस्तेमाल दोनों क्षेत्रों के लिये, और

कृष्णा गोदावरी डेल्टा (आंध्र डेल्टा) क्षेत्र था। यहां सतवाहनों के बाद इक्षवकु आये जिन्होंने 225 ई. से इस क्षेत्र पर राज किया। पश्चिम से अभीरों के आने पर उनके राज में विघ्न आया। लेकिन यह एक अस्थायी दौर था : इक्षवकु फिर लौटे और उन्होंने अगले लगभग पचास सालों तक राज्य किया। फिर यह क्षेत्र कई जागीरों में बंट गया। तांबे के पत्रों पर लिखे अभिलेखों से हमें पता चलता है कि पहले बृहतफलायन गोत्र के राजा आये फिर सलंकायन गोत्र के जबकि समुद्रगुप्त की प्रशंसा करने वाली इलाहाबाद स्तंभ या प्रयागप्रस्ति की (देखिये इकाई 32) के अभिलेख से हमें इस क्षेत्र में 350 ई. के आसपास के कोई आधा दर्जन राज्यों के बारे में जानकारी मिलती है। इनमें वेंगी कुरला के राज्य शामिल हैं: उनकी राजधानियाँ पिश्तापुर और देवराष्ट्र की अवमुक्ता थी।

आंध्र डेल्टा में राजनीतिक स्थिरता पाँचवीं शताब्दी के मध्य में विष्णुकुंडियों के आने के साथ वापस आयी। उनके वकटकों के साथ अच्छे संबंध थे, लेकिन दक्षिण कर्नाटक के पश्चिमी गंगों के साथ के साथ उनका टकराव लगातार काफी समय तक बना रहा। कई अश्वमेध यज्ञ करने वाला, इस शाखा का संस्थापक, मधुवर्मन प्रथम (440-60) ई. और मधुवर्मन द्वितीय इस शाखा के मशहूर शासकों में हैं। विष्णुकुंडियों ने सातवीं शताब्दी की पहली चौथाई में चालुक्यों के आने तक राज किया।

35.2.4 दक्षिण कर्नाटक

दक्षिण कर्नाटक में पाँचवीं शताब्दी की शुरुआत में एक वंश का उदय हुआ। इस वंश के राजा गंग या पश्चिमी गंग कहलाते हैं, ये उड़ीसा के पूर्वी गंगों से अलग थे। पश्चिमी गंगों ने अलमे छह सौ सालों में शासन किया। इतने लम्बे संबंध के कारण यह क्षेत्र गंगवाड़ी कहलाने लगा। गंगवाड़ी एक अलग-अलग क्षेत्र है। पहाड़ियों से घिरा ये क्षेत्र कृषि की दृष्टि से कहीं कम सम्पन्न हैं। इन्हीं दोनों कारणों से गंग लोग बिना अधिक बाहरी हस्तक्षेप के इतने लम्बे समय तक शासन कर सके। बहरहाल, सैनिक महत्व की दृष्टि से उनकी स्थिति लाभकर थी। उन्होंने बाद में पल्लवों और चालुक्यों के टकराव में एक बहुत अहम भूमिका अदा की वे इन टकरावों में चालुक्यों के साथ रहे उन्होंने पल्लवों और पांड्यों के टकराव में भी अहम भूमिका निभायी। उनके सम्बन्ध पल्लवों के साथ आमतौर पर अच्छे नहीं रहे। पहाड़ पर बने अपने किले नंदी दुर्ग से उन्होंने पल्लवों को खूब छकाया।

35.3 दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति

तमिलनाडु और केरल में संगम काल का अंत तीसरी शताब्दी के अंत तक हो गया। इस क्षेत्र का चौथी से छठवीं शताब्दी तक का इतिहास बहुत अस्पष्ट है। पल्लवों का शुरुआती इतिहास इसी काल का है। हमें उनके कांची से जारी किये गये तांबे के पत्र वाले अभिलेख मिलते हैं। पल्लवों के राज्य का संबंध परम्परा से कांची क्षेत्र (पालर नदी की घाटी) या टोंडईमंडलम (टोंडई, पल्लव का तमिल पर्यायवाची है) के साथ रहा। लेकिन ऐसा लगता है कि इस दौर में कांची क्षेत्र उनके कब्जे में नहीं था क्योंकि उन्हें कालभ्र नाम की पहाड़ी जनजाति ने उत्तर की तरफ खदेड़ दिया था।

दरअसल, संगम काल के अंत से छठवीं शताब्दी के मध्य तक तमिलनाडु और केरल पर कालभ्रों का कब्जा था, हमें उनके बारे में अधिक जानकारी नहीं है, लेकिन जो भी थोड़ी बहुत जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मणों की संस्थाओं के खिलाफ थे और बौद्ध और जैन धर्मों के समर्थक थे, उन्होंने संगम युग के चेलों, चोलों और पांड्यों के राज को खत्म कर दिया, और वे ऐसी गैर खेतिहर पहाड़ी जनजातियों के लोग थे जिन्होंने बसी बसाई खेतिहर आबादी में भारी तबाही मचाई। ऐसा लगता है कि कालभ्रों ने उत्तर कर्नाटक में आने वाली चालुक्य राज्य की सीमाओं तक अपना विस्तार कर लिया था क्योंकि वे यह दावा करते हैं कि इन्होंने भी उन्हें हराया था। इस काल को "कालभ्र अन्तराल" के नाम से जाना जाता है।

35.4 चालुक्यों, पल्लवों और पांड्यों का उदय

छठवीं शताब्दी के मध्य से, दकन और दक्षिण भारत को राजनीति पर तीन शक्तियों की गतिविधियों का बोलबाला रहा। बादमी के चालुक्य कांची के पल्लव और मदुरा के पांड्यों।

35.4.1 चालुक्य

पुलकेशिन प्रथम के राज्य के साथ चालुक्य एक प्रभुतासंपन्न शक्ति बन गये। उसने कर्नाटक के बीजापुर जिले में बादमी के पास 543.4 ई. में एक मजबूत दुर्ग बनवाकर, अपने राज्य की बुनियाद डाली, और एक अश्वमेध यज्ञ किया। उसके उत्तराधिकारियों ने कदम्बों को उखाड़ फेंका और धीरे-धीरे उनके राज्य को अपने में मिला लिया, और कोंकण (महाराष्ट्र की तटीय पट्टी) के मौयों को भी अपने अधीन कर लिया। पुलकेशिन द्वितीय के अभियानों के साथ चालुक्य दक्खन की सबसे बड़ी शक्ति बन गये। क्योंकि दक्षिण में पश्चिमी-गंगों और अलुपों ने और लाटों, मालवों तथा गुर्जरो ने उत्तर में उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। पुलकेशिन द्वितीय की सेना ने हर्षवर्धन की सेनाओं को नर्वदा के तट पर रोक दिया।

पुलकेशन द्वितीय ने आंध्र डेल्टा के विष्णु कुंडियों को भी हटा दिया। लेकिन वह केवल अधीनता की माग से संतुष्ट नहीं हुआ क्योंकि लंगभग दस लाख एकड़ खेती योग्य भूमि वाला कृष्णा-गोदावरी डेल्टा अपने आप में एक बहुत ही कीमती सम्पदा था। इसलिए 621 ई. के आसपास उसने अपने छोटे भाई विष्णुवर्धन को अपनी जीत मजबूत करने और डेल्टा को अपने कब्जे में करने के लिए भेजा। 631 ई. में विष्णुवर्धन को अपना राज्य कायम करने की इजाजत मिल गई। इस तरह, बेंगी के चालुक्यों या पूर्वी चालुक्यों का वंश चला जिसने पांच सौ साल से भी ज्यादा समय तक इस क्षेत्र पर कब्जा बनाये रखा।

9. पुलकेशन द्वितीय का अहिहोल अभिलेख

35.4.2 पल्लव

पल्लवों का उदय छठवीं शताब्दी के मध्य के आसपास सिंहविष्णु के साथ हुआ। उसने टोंडईमंडलम (कांची क्षेत्र) में कालभ्र अंतराल का खत्म कर दिया और अपने राज्य का विस्तार दक्षिण में कावेरी डेल्टा तक कर लिया। उसके बाद महेन्द्रवर्मन प्रथम आया, उसने उत्तर में कृष्णा नदी तक के क्षेत्रों को अपने में मिला लिया। पल्लव राजाओं ने पड़ोस के सरदारों और राजाओं को भी अपने अधीन कर लिया और इस तरह के बादमी के चालुक्यों, और पांड्यों, के प्रभाव क्षेत्र में पहुँच गये। पांड्यों तक को कुछ अरसे के लिए उनकी अधीनता में रहना पड़ा। इस तरह सातवीं शताब्दी के मध्य तक पल्लवों के दक्षिण भारत में एक शक्तिशाली क्षेत्रीय राज्य कायम कर लिया था। उनकी शक्ति आठवीं शताब्दी के मध्य में दक्खन में चालुक्यों की जगह पर राष्ट्रकूटों के आने के साथ कमजोर होने लगे। दसवीं शताब्दी के शुरुआत तक, अपराजत के चोल प्रथम से हारने के साथ, पल्लवों का अंत हो गया।

35.4.3 पांड्या

छठवीं शताब्दी के अंत तक पांड्य कदुंगोन के साथ उस समय प्रकाश में आए जब उसने कालभ्रमों का दमन कर दिया। पांड्यों ने तमिलनाडु के धुर दक्षिण के जिलों में राज किया, और वेंगई नदी की घाटी उनके राज की केंद्रीय भूमि रही। उन्होंने उत्तर में कावेरी डेल्टा पर और दक्षिण-पश्चिम में केरा (केरल) पर अपना कब्जा बढ़ाने की लगातार कोशिश की।

छोटे राज्यों और सरदारी व क्षेत्रीय राज्यों के टकराव में इस या उस शक्ति के अधीनस्थ सहयोगियों के तौर पर हिस्सा लिया। पुलकेशिन द्वितीय को नरसिंह वर्मन प्रथम पर हमला करने से पहले पल्लवों के सहयोगी भागों को शांत करना पड़ा था। इसी तरह, पल्लवों के सेनापति ने सवरा के राजा उदयन और निषादों के

35.5.1 छोटे राज्यों की शक्तियाँ

आखिर इस क्षेत्र पर कब्जा कर ही लिया था। इसी मकसद को रखकर उन्होंने पल्लवों से लड़ाई की होगी, और नौवीं शताब्दी के शुरुआती दौर तक उन्होंने और शक्तिशाली होना चाहते हैं तो, उन्हें संपन्न कावरी इत्यादि पर कब्जा करना होगा। जगता है विमान में घाटी की दृष्टि से कहीं बदतर थी। पांडुरों ने अवश्य ही यह महसूस किया होगा कि अगर वे अमीर की संपन्न साहित्य और हरेन साग के वर्णन से यह पता चलता है कि पांडुरों के राज्य की कन्न-बोर्ड नदी-पांडुरों के बारे में भी यह सही है, लिच्छवि कावरी इत्यादि के कब्जे के लिये बार-बार पल्लवों के साथ लड़ाई पीछा छुड़ाने के लिये उनका ध्यान वहाँ से हटाने की गरज से यह कायदाही की थी। एक और बार पल्लव परमेश्वर वर्मन प्रथम ने ध्यान हटाने की कायदाही के तौर पर चालूियों की राजधानी के खिलाफ अभियान छड़ा था। परमेश्वर वर्मन ने अपनी राजधानी पर कब्जा लिये चालूियों की सेनाओं से एक और बार पल्लव परमेश्वर वर्मन प्रथम ने ध्यान हटाने की कायदाही के तौर पर चालूियों की राजधानी की, और टकराव के इस इतिहास में यह बस एक बार हुआ।

का चालूिय राज् पर हमला और इसकी राजधानी पर उसका कब्जा। लेकिन यह एक बदले की कायदाही की विना बस उन्हें वापस उनके राज्य में धकेल देने की रही। इसका अकाल अपवाद था नरसिंह वर्मन प्रथम संपन्न थे। यह बात अपने आप में अहम है कि हमेशा चालूियों ने ही पल्लवों पर हमला किया और पल्लवों नहीं था कि वे चालूियों और पांडुरों के बीच स्थित थे, बल्कि इसका मुख्य कारण यह था वे सबसे अधिक यह बात गौर करने लायक है कि इन टकरावों में हर बार निशाना पल्लव ही बने। इसका केवल यह कारण पल्लवों को पांडुरों के साथ भी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी। विशेष मुद्दों और छोटी लड़ाइयों के विस्तार में न जा कर, यहाँ हम बस इतना ध्यान में रख सकते हैं कि है कि उसने तीन बार बार कांची को रौंदा और छेदा।

35.5 विभिन्न शक्तियों में टकराव

उत्तराधिकारी, विक्रमादित्य द्वितीय, का राज्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उसके बारे में कहा जाता पांडुरों के साथ गठबंधन किया, और पल्लवों के राज्य पर बार-बार हमले किये। इस संदर्भ में, उसके एक भी दिया। पुलकेशिन द्वितीय के बेटे विक्रमादित्य प्रथम ने स्थिति को संभाला। उसने पल्लवों को खदेड़ दिया, वर्मन ने उसके बाद चालूियों पर हमला कर वादसी को हथिया लिया और शाहद पुलकेशिन द्वितीय को मार लेकिन, महेंद्र वर्मन के उत्तराधिकारी नरसिंह वर्मन प्रथम ने कई लड़ाइयों में उसे हथिया कर हराया। नरसिंह उसने (राजलक्ष्मी में पल्लवों के सामने) बानों को हरा दिया और एक बार फिर कांची को धमकी दे डाली। जिसने महेंद्र वर्मन को हराकर पल्लव राज्य के उत्तरी भाग पर कब्जा कर लिया। एक और अभियान में होने वाली लड़ाइयों से रंगा पड़ा है। दुश्मनी की शुरुआत चालूिय वंश के पुलकेशिन द्वितीय के हमले से हुई, इस काल का इतिहास बादमी के चालूियों तथा पल्लवों के बीच, और पांडुरों और पल्लवों के बीच अवसर

35.4.4 अन्य शक्तियाँ

गाँों का दक्षिण कर्नाटक में गंगवाड़ी पर शासन चलता रहा। इसके अलावा, उस समय दक्खन और दक्षिण

- (1) निम्न ब्रजभाषा में मं कौन-सा ब्रजभाषा मन्त्री (✓) है और कौन-सा गलत (×)
- (क) मन्त्राङ्गों के पदों के बाद उक्त ही वंश का राजनीतिक कब्जा बना रहा।
- (ख) ब्रजभाषा में मन्त्रों का अर्थ ही मन्त्रों का कब्जा रहा।
- (ग) मन्त्रों के पदों के बाद मन्त्राङ्गों और मन्त्रों का कब्जा रहा।

श्री ५५१ I

ऐसा लगता है कि इस काल में कल पर प्रकृतों का राज रहा, हालांकि इस काल के राजनीतिक इतिहास का ब्योरा नहीं मिलता। इस वंश का एक महान् शासक वीरभद्र शासक (आठवीं शताब्दी के अंतिम वर्ष/नवीं शताब्दी के शुरुआत वर्ष) था। संभवतः उसने अपने और शार्ङ्गक नीति का कुछ असाधारण रूप से पालन किया, जिससे जैन, ईसाई, शैव और मुसलमान कबल एक संरक्षक के रूप में उसकी प्रशंसा नहीं करती, बल्कि यह दावा भी करते हैं कि वह उनके अपने धर्म की मानता भी था। मालाबार की संपन्नता ने बाहरी कमलवर्षों को हमेशा अपनी और खींचा। न केवल कबल ही होने का दावा करते हैं। बल्कि यही दावा नरसिंहवर्मन, कई चालुक्य राजा, और बाद में जाकर राष्ट्रकूट भी करते हैं।

35.5.4 कल

पल्लवों के बारे में ऐसा लगता है कि उन्होंने दक्षिण पूर्व एशिया की राजनीति में दिलचस्पी ली और उसे प्रभावित भी किया। यह संभव है कि नंदीवर्मन द्वितीय पल्लवमल्ल ने दक्षिण पूर्व एशिया, से आकर आठवीं शताब्दी के मध्य में पल्लवों के सिंहासन का उत्तराधिकार लिया। हमें नंदीवर्मन द्वितीय के शक्तिशाली जहाजी बड़े के बारे में भी सुनने की मिलता है, और थर्डलेड में उपलब्ध एक दस्तावेज में एक विष्णु मंदिर और एक तालाब पर उसकी एक उपाधि का उल्लेख मिलता है। बहरहाल, दक्षिणपूर्व एशिया में और अधिक प्रत्यक्ष दस्तावेज बोलों के साथ हुआ, जिन्होंने दक्षिण भारत में पल्लवों के प्रभुत्व को समाप्त कर दिया।

इस क्षेत्र पर राष्ट्रकूट के द्वारा से हमले किया। राजा से ही मदद ली। पांडुरा भी श्रीलंका में गहरी दिलचस्पी रखते थे, जिसकी संपदा के लालच में उन्होंने ह्रांसिल करने में मदद दी। बाद में, जब मारवर्मन से एक बार फिर उसका राज्य छिन गया तो, उसने पल्लव से लौटने के बाद नरसिंहवर्मन ने दी नौ सैनिक अभियान भेज कर मारवर्मन को अनुराधापुर का सिंहासन राजकुमार मारवर्मन था। उसे देशनिकाला-दे दिया गया था और उसने पल्लवी दरबार में शरण ली थी। बाद में दिलचस्पी, चालुक्यों के साथ लड़ाई में हमें सुनने की मिलता है कि नरसिंहवर्मन प्रथम की तरफ लंका का एक इस समय की दक्षिण भारत की राजनीति की एक अहम विशेषता थी श्रीलंका के मामलों में सक्रिय

35.5.3 अन्य देशों के साथ संबंध

दे दिया।
 की उसके छोटे भाई नरसिंहवर्मन ने बहुत मदद दी। बदले में विक्रमादित्य ने उसे दक्षिण गुजरात उपहार में विषटनकारी शक्तिशाली और महत्वाकांक्षियों के बावजूद आप स्थिति राजनीतिक फूट में थी, चालुक्य राज्य में भयंकर गड़बड़ा और राजनीतिक अस्थिरता फैल गयी। इसकी एकता को बहाल करने तथा राजधानी का उदय, नरसिंहवर्मन के बाद में पर कब्जे और पुलकेशिन द्वितीय की मीत के परिणामस्वरूप, पल्लवों और चालुक्यों के आपसी टकराव का एक अहम नतीजा रहा जहां या दक्षिण गुजरात के चालुक्यों की

35.5.2 राजनीतिक टकरावों के अन्य आयाम

और छोटे राजाओं तथा सरदारों की अहमियत में थी।
 तक, कई राजाओं की उत्साही कोशिशों और महत्वाकांक्षियों के बावजूद आप स्थिति राजनीतिक फूट में थी, शताब्दी तक कोई भी राजा दक्खन और दक्षिण भारत पर अपना कब्जा नहीं कर पाया। इन छह शताब्दियों शक्ति के रूप में सामने आते हैं यह तथ्य भी अपने आप में इतना ही उल्लेखनीय है कि चौथी से नवीं साधु मिल कर देखने पर, वे समय-व-दक्खन और दक्षिण भारत के मामलों में एक जबरदस्त राजनीतिक कर्मीक हर छोटे राज्य की अपने आपमें कोई अहमियत नहीं थी, उनकी स्थिति छूट की थी थी। लेकिन उन्हें छोटे राज्यों को अलग से देखने पर हम उनमें कुछ विशेष ध्यान देने योग्य नहीं दे पाते ऐसा इसलिए है

केवल छूट में ही हिस्सेदारी नहीं की, बल्कि अपने-अपने राज्यों में नये क्षेत्र भी मिला लिये।
 सरदार पृथ्वीव्याध के साथ लड़ाई लड़ी, जो शायद चालुक्यों का साथ दे रहे थे। इन अधीनस्थ सहयोगियों ने

वैदिक यज्ञों की शक्ति भी खत्म हो गयी।

भारतल, धार्मिक माहौल बदलने के साथ, धीरे-धीरे राजशाही के आदर्श में भी बदलाव आया और राजसी

शासन की शुकुआत दिखाने के लिये एक अवमंथ यज्ञ किया। बहुत से अन्य राजाओं में भी यही किया।

आधिकार को उचित ठहराने वाले थे। इस तरह, वालुक्य राज्य के संस्थापक पुलकेशिन प्रथम ने अपने यज्ञ के

राजनीतिक अर्थ या व्यौक्तिक वे राजा विशेष की स्वाधीनता को स्वीकृत करते थे और उसके शासन करने के

यज्ञों की वह सामाजिक अहमियत नहीं थी जो आगे चल कर वैदिक काल में बनी। लेकिन उनका एक विशेष

गुर धौषण मिलती है कि उन्होंने अवमंथ यज्ञ कर, या वाजसनेय यज्ञ या राजसूय यज्ञ किया। इस दौर में इन

बाली उपाधियां होती थी। शुकुआत में राजशाही वैदिक आदर्श से चलती थी। हमें राजाओं के अभिलेखों में

सभी अधिकारों का स्रोत होता था। उसके पास महाराजा, भट्टक, धर्ममहाराजाधिराज जैसी ऊंची उपाधें

अब हम यह विवेचना करेंगे कि इन राज्यों में किस किस प्रकार का प्रशासन प्रचलित था। सिद्धांत में तो राजा

35.6.1 राज और प्रशासन का उच्चतर था

आइये इन राज्यों के राजनीतिक संगठन की संक्षेप में वर्णना कर ली जाये।

35.6 राजनीतिक संगठन

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) दक्षिण भारत की शाक्तियों के प्रकार किसे किसे के थे, विवेचना कीजिये। इसमें जोड़े राजाओं की क्या भूमिका रही? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) चालुक्यों, पल्लवों, और पांड्यों के बारे में आप क्या जानते हैं? लगभग दस पंक्तियों में लिखें।

- घ) मालाबार की संपन्नता से कमलावरी को अपनी तरफ नहीं खींचा।
- घ) दक्षिण भारत में टकरावों में निशाना पल्लव ही रहे।

इसलिए हम पल्लव राजा स्थानीय स्वायत्तशासी सामूहिक संगठनों के काम में देखभाल करने दिखाने नहीं देते। लेकिन वे अपना आधार मजबूत करने की कोशिशें ज़रूर करते हैं, इसके लिये वे शास्त्रों की बुलाई हैं, और विशेष अधिकार प्राप्त शास्त्रों बलिष्ठ बनाते हैं, शास्त्रों की भीषणता करते हैं। यह भीषणता या ती प्रत्यक्ष (अनुदान) या किस्ती मंदिर के नाम पर (देवदान) होता था। पल्लव राज्य के क्षेत्रीय क्षेत्रों में हर जगह ऐसी शास्त्रों बलिष्ठ बनायी गयीं, वे क्षेत्रीय क्षेत्र सिविल धान की खेती वाले संगठनों को भीषण करने लगे, जिनकी संगठनात्मक शक्ति पर पल्लवों की शक्ति निर्भर करती थी। ऐसा कि हम देख सकते हैं, शास्त्रों की भीषणता से शासन करने में या महासभा कहलाती थी। बार के पल्लव काल के दौरान सभा ने सभितियों के माध्यम से शासन करने की व्यवस्था बनाई इसे सभिति व्यवस्था या परिषद व्यवस्था कहा जाता है यह दक्षिण भारत की शास्त्रों की व्यवस्था में स्पष्ट शासन की एक विशेषता बन गयी। सभा, अधिकारों और पर इन सभितियों के लिये,

सरकार को इन मामलों के लिये जिम्मेदार नहीं ठहरा सकते थे। सरकारी से राज्य का विशेष काम से काम करने के कारण उसका आधार भी मजबूत होता था जैसा कि हम पर देते हैं। उनका शिकायतों की दूर करने और समस्याओं की सुलझाने की जिम्मेदारी भी होती जाती थी। इस संस्था के अलावा भी न केवल अपनी शिकायतों और समस्याओं को समाधान करने का मौका मिलता था, बल्कि इससे जनता सामूहिक इकाइयों के लिये चलने वाले स्थानीय प्रशासन से सरकार का भार काफी हल्का हो जाता था।

पर पड़ता था, निर्णय आपसी सलाह-मशारे से होता था। समस्याओं का समाधान भी करता था। उन मामलों में, जिनका प्रभाव एक से अधिक सभाओं या संगठनों पर आकारित होने से विधान के अनुसार काम करता था, और स्थानीय स्तर पर अपने सदस्यों की कामों को देखने के लिये एक छोटा आदेशासी निकाय था। हर समूह स्वायत्तता के साथ और प्रथा तथा शक्ति संबंधी हित भी होते थे। हर सभा के सदस्य साल में एक बार मिलकर बैठते थे, जबकि दिन प्रति दिन के हैं, और नगरम एक ऐसी सभा थी जहां व्यापारिक हितों का बालबाल होता था। (नगरम के कुछ खेती और नगरम। हर एक और शास्त्रों प्राप्त सभा थी, सभा एक ऐसी प्राप्त सभा थी जिसमें केवल शास्त्रों होते सभितियों के, मंदिर के पुर्तहियों आदि के संगठन। इसके अलावा, तीन अलग क्षेत्रीय संस्थाएँ थीं : उर, सभा के संगठन, नईसी जैसे व्यापारियों के संगठन, मनीग्राम और पांच सौ अग्रधारों के संगठन, विद्यालयों के आधार जाल, दस्तकारी, व्यवसाय या धर्म होता था। इस तरह, दस्तकारी के संगठन थे, जैसे जलाने, तेलियाँ पकड़ने में स्थानीय सामूहिक एकता की अहमियत। ऐसे अनगिनत स्थानीय समूह और संगठन थे जिनका शिक्षण भारतीय राज्यतंत्र, विशेषकर पल्लवी राज्यतंत्र, की एक आम विशेषता थी जन जावन क प्रबंधन। यह

35.6.3 स्थानीय संगठन

इस काल के राजाओं ने कुछ और उनकी संगठनात्मक शक्ति तथा शक्ति के मुख्य आधार, राज्य की अहमियत को पहचाना यह अपने आप में एक अहम बात है कि पल्लव काल में (और बाद में चौलुकाल में) बुनियादी राजनीतिक इकाई नाडु का मतलब खेती योग्य भूमि भी होता था, जो कांडु या खेती के अयोग्य भूमि से अलग थी। इसलिए, राज्य खेती के प्रकार को बढ़ावा देने की हर संभव कोशिश करता था। कदम वंश के राजनीतिक इकाई नाडु का मतलब खेती योग्य भूमि भी होता था, जो कांडु या खेती के अयोग्य भूमि से अलग था। इसलिए, राज्य खेती के प्रकार को बढ़ावा देने की हर संभव कोशिश करता था। कदम वंश के राजा प्रशासन के बारे में कहा जाता है कि उसने दूर-दूर से शास्त्रों की बुलाई कर बड़ी-बड़ी अनजिती-जमीनों की खेती योग्य भूमि में बदल दिया। शायद इसी उद्देश्य से एक पल्लव राजा ने एक हजार इंच दे डाले थे। इसके अलावा, क्योंकि दक्षिण भारत में खेती बहुत हद तक सिंचाई पर निर्भर करती थी, इसलिए पल्लवों ने नहरें, तालाब, झीलें और बड़े-बड़े कुएँ बनवाने और उनकी संभाल में बहुत दिलचस्पी ली।

राज्य की प्रशासनिक इकाइयों के श्रेणीबद्ध सीपान में बांटा जाता था। दक्षिण में इन इकाइयों को विषय, आहार, राष्ट्र आदि कहा जाता था। आठवीं शताब्दी से दक्षिण में राज्यों की दस-दस गांवों के गुणकों में बांटने की शक्ति की शुरुआत हुई। एक जिले में बारह गांव होते थे। पल्लव राज्य में नाडु प्रशासन की मुख्य स्थायी इकाई के रूप में उभरी।

35.6.2 प्रशासनिक इकाइयाँ

दरबार में राजा की मदद के लिये मंत्री होते थे पुरवारण और शाही परिवार के अन्य सदस्य ऊंचे स्तरों पर सरकार चलाने के काम में अहम हिस्सेदारी करते थे। फिर अलग-अलग आठवाँ वाले कई अधिकारी होते थे जो राजा के नाम पर प्रशासन के विभिन्न कामों को अंजाम देते थे। उनका एक अहम काम होता था करों को इकट्ठा करना। एक मुख्य भूमि कर होता था जो उत्पन्न का छठवाँ भाग या उससे ज्यादा होता था। इसके अलावा कई विविध कर थे, जैसे कपड़ा बनाने वाले, मवेशियों, शाही की दावतों आदि पर लगने वाले कर। कर इकट्ठा करने के अलावा राज्य के अधिकारी कानून और व्यवस्था बनाये रखने का काम करते थे और उनके सामने लाने वाले अपराध और दीवानी झगड़ों के मामलों को भी निपटाते थे।

2) विभिन्न श्रेणी के शासकों के बीच संबंधों की विशेषता बताते। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

1) प्रशासन में स्थानीय संगठनों की भूमिका की विवेचना करें। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

गीत प्रश्न 2

राजनीतिक शक्तिवादोंके साथ संबंध के लिये "अधीनस्थ सहयोगी" जैसे तटस्थ शब्द को वरीयता दी है।

और छोटे राजाओं और सरदारों के बीच भी था। इसलिए हमने छोटी राजनीतिक शक्तियों के बड़े संबंध के लिये होता है। हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते कि क्या ऐसा ही संबंध पल्लवों या चालुक्यों एक तकनीकी शब्द है जिसका इस्तेमाल मध्ययुगीन परिवर्तनीय यूरॉप में पाये जाने वाले एक विशेष किस्म के दूसरा मत इन छोटे राजाओं और सरदारों को बड़ी शक्तियों के सामने के रूप में मानता है। लेकिन सामंत

थे, या दुबारा क्यों वे दबाव में आकर कर्मकांडी स्तर का समान करने को बाध्य हो जाते थे। कर्मकांडी स्तर वाले राजा का समान करना क्यों बंद कर देते थे और अपनी स्वाधीनता का ऐलान कर देते प्रति समान को चालुक्यों के प्रति समान में कैसे बदल सके, या अस्थिर राजनीतिक स्थितियों में किसी ऊंचे कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। इस मत से यह बात समझ में नहीं आती कि ये छोटे राजा पल्लवों के कर्मकांडी स्तर प्राप्त था। इसी ऊंचे कर्मकांडी स्तर का समान छोटे राजा और सरदार करते थे। इस मत का पर अपना अधिपति मानते थे। पल्लव राजा बड़े धार्मिक उत्सवों में हिस्सा लेते थे जिससे उन्हें एक ऊंची शक्तिशाली राजाओं, और छोटे राजा या सरदार किसी बड़े राजा की, विशेषकर पल्लवों की, धर्म के आधार बड़े राजाओं और उनके छोटे स्तर के मित्रों या सहयोगियों के संबंध को लेकर मतभेद है। व्यापक तौर पर,

35.7 विभिन्न श्रेणी के शासकों के संबंध

ध्यान रखते होंगे।

और सरदारों के बनाये होते थे, इसलिए यह जरूर कहा जा सकता है कि वे बस्ती में सरकार के हितों का पता कि दखन के ब्राह्मण अपने सामूहिक मामलों को किस तरह चलाते थे। लेकिन क्योंकि वे सभी राजाओं बहरहाल, ब्राह्मण बस्तियां पूरे दखन और दक्षिण भारत में भी मिल जाती थीं। हमें यह तो ठीक-ठीक नहीं समझना तो नहीं था, लेकिन राज्य के अधिकारियों की उन पर नजरदीकी देख रेख होती थी। महानों का एक नेता होता था जिसे गर्मुंडा (या, मुठिया) कहते थे। इन महानों के पास दक्षिण भारतीय स्थानीय महान चालुक्यों के समय में गांवों और कस्बों में स्थानीय प्रशासन में हिस्सा लेते थे। गांवों में दखन में, स्थानीय संगठनों और समाजों की भूमिका कहीं कम स्पष्ट थी। सामूहिक संस्थाओं की जगह

और सिवाई के अधिकारों को नियमित करना।

कई काम निपटाती-थी- जैसे, लालों और सहकों की सहाय, धर्मार्थ दानों और मंदिर के मामलों का प्रबंध,

35.8 सारांश

इस इकाई में अपने छठवीं शताब्दी के मध्य तक की दक्खन और दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में सीखा। इस काल के बाद हमें यह देखने को मिलता है कि चालुक्य, पल्लव और पांड्या क्षेत्र की बड़ी राजनीतिक शक्तियां थीं। कुछ छोटी शक्तियां भी थीं, लेकिन उनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण नहीं थी। बड़ी शक्तियां लगातार आपस में टकराती रहती थीं और छोटी शक्तियां इन टकराओं में इस या उस बड़ी शक्ति के साथ रहती थीं।

जहां तक राजनीतिक संगठन का संबंध है, राजा प्रशासन का केन्द्रीय अंग होता था और दूसरे अधिकारी उसकी मदद करते थे। दिन प्रति दिन के प्रशासनिक काम में स्थानीय संगठनों की भूमिका एक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

35.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) क) × ख) ✓ ग) ✓ घ) ✓ च) ×
- 2) उत्तर 35.4 के आधार पर दें।
- 3) उत्तर 35.5 के आधार पर दें।

बोध प्रश्न 2

- 1) उत्तर 35.6.3 के आधार पर दें।
- 2) उत्तर 35.7 के आधार पर दें।

NOTES



उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-04(N)

इतिहास

भारत : प्राचीन काल से
आठवीं सदी ईसवीं

खण्ड

9

प्रारंभिक मध्य काल में संक्रमण

इकाई 36

अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

5

इकाई 37

समाज में परिवर्तन

16

इकाई 38

राजनीतिक व्यवस्था की संरचना : सामंतों, महासामंतों, और शासकों
तथा अधिकारियों के अन्य वर्ग

26

इकाई 39

धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन

31

समानतः दो वर्गों—ब्राह्मण एवं शूद्र—में विभाजित हो गया! परन्तु एक विभाजन के अनर्गत बहूत से उप-विभाजन भी थे।

इससे पूर्व के समय में जो धार्मिक परिवर्तन होने शुरू हुए थे इस काल में कई रूपों में अभिव्यक्त हुए। कश्चित् ब्राह्मणिक व्यवस्था के अन्तर्गत वैष्णव तथा शैव धर्म भी शामिल हो गये और इसी के साथ-साथ वैदिक यज्ञों तथा वैदिक ज्ञान की परम्परा जारी रही जिसके आधार पर ब्राह्मणों ने व्यापक स्तर पर धार्मिक अनुदानों को प्राप्त किया। विभिन्न समूह एक साथ भिन्न-भिन्न धार्मिक अनुष्ठानों तथा धर्मों को मानते थे। इतिहासकारों ने इनकी पौराणिक हिन्दू धर्म का नाम दिया है। इस विविध धार्मिक व्यवस्था के कुछ समूहों ने वैदिक और ब्राह्मणिक धर्मों का विशेष किया तथा कभी-कभी विशेष आंदोलन की उत्पत्ति इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही हुई। भिन्न-भिन्न विचार वाले मनों के बीच प्रखर दार्शनिक दार्शनिकता से स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म के अन्दर व्यापक रूप से भिन्नताएँ और एक-दूसरे के विरोधी विचार विद्यमान थे। मंदिर एवं मठ धार्मिक संस्थान थे और वे केवल ब्राह्मणिक हिन्दू धर्म से संबंधित न थे बल्कि बौद्ध और जैन धर्मों से भी जुड़े थे। इन संस्थानों ने भी धार्मिक अनुदानों तथा सरक्षण प्रदान करने वाले के विभिन्न वर्गों से अन्य दान प्राप्त किये थे। इसी प्रकार से ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन जैसे सभी धर्मों पर शक्ति एवं तांत्रिक अनुष्ठानों के रूप में तन्त्रवाद का प्रभाव पड़ा। प्राथमिक मध्य काल के भारत में वास्तव में ब्राह्मणिक, बौद्ध तथा जैन धर्मों में कुछ एक समान विशेषताएँ देखा ही गई थीं।

उत्तर-मूल काल में समाज में होने वाले ये परिवर्तन बड़े ही महत्वपूर्ण थे परन्तु यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन परिवर्तनों के साथ भारतीय इतिहास में नये युग का प्रारम्भ कब हुआ। इतिहासकारों के इस पर भिन्न-भिन्न मत हैं कि यह परिवर्तन वास्तव में किस महत्वपूर्ण थे और कब इनका प्रारम्भ हुआ था। अगर एक और उत्तर-मूल काल में होने वाली महत्वपूर्ण विशेषताओं की तुलना प्राथमिक प्राचीन काल के साथ की जाये तथा दूसरी ओर मध्य युग के साथ की जाये, तब ये विशेषताएँ या परिवर्तन वैदिक समाज या मौर्य समाज की विशेषताओं की तुलना में मध्य काल की विशेषताओं के अधिक समान लगती हैं। परन्तु फिर भी इस प्रश्न पर तथा ये परिवर्तन कब, कैसे और क्यों हुए, इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं। इस सम्बन्ध में इतिहासकारों द्वारा दी गई व्याख्याएँ कोई स्थिरक नहीं हैं बल्कि वे इस पर निर्भर करती हैं कि अतीत से प्राप्त साक्ष्यों को विश्लेषित करने का उनका दृष्टिकोण क्या है? इसलिए जब कभी भी आप किसी विशेष काल या देश के इतिहास का अध्ययन करते हैं तो उस इतिहास का विवेचन करने के लिये इतिहासकारों ने जो विभिन्न दृष्टिकोणों को अपनाया हो उसकी समझने का प्रयास करना चाहिए। जब आप इन दृष्टिकोणों की सरलता से समझ लें, आप सहजता से जान पायेंगे कि इन इतिहासकारों ने भारत के पर भारतीय समाज के विकास के विभिन्न चरणों के आधार पर विचार करना शुरू किया।

इकाई 36 अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

- 36.0 उद्देश्य
- 36.1 प्रस्तावना
- 36.2 आर्थिक परिवर्तनों की व्याख्या
- 36.3 व्यापार का हास
- 36.4 सिक्कों की कमी
- 36.5 नगरों का हास
- 36.6 कृषि का प्रसार
 - 36.6.1 कृषि ज्ञान एवं तकनीकी में प्रगति
 - 36.6.2 फसलें एवं पौधे
- 36.7 ग्रामीण बस्तियां
- 36.8 कृषि संबंधों की नवीन विशेषताएं
 - 36.8.1 किसानों पर आर्थिक बोझ
 - 36.8.2 सामंतीय भू-व्यवस्था
 - 36.8.3 वंद अर्थव्यवस्था का विकास
- 36.9 सारांश
- 36.10 शब्दावली
- 36.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

36.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य है कि आपका परिचय गुप्त और विशेषकर उत्तर-गुप्त काल में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों से कराना। इस प्रकार से हम प्रारंभिक मध्यकालीन भारत के संक्रमण के एक महत्वपूर्ण पक्ष का विवेचन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको:

- भूमि अनुदानों की उत्पत्ति एवं आर्थिक परिणामों की जानकारी प्राप्त होगी,
- नगरों और अन्य नगरीय बस्तियों के क्रमिक पतन की प्रक्रियाएं एवं परिणामों के विषय में जानकारी होगी,
- ग्रामों तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का ज्ञान होगा,
- कृषि सम्बन्धों की विशेषता, और
- उन परिवर्तनों के विषय में ज्ञात होगा जो कृषि उत्पादन के सुधारों के लिये उत्तरदायी थे।

36.1 प्रस्तावना

गुप्त और उत्तर-गुप्त काल की विशेषताओं का निर्धारण भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए कुछ निश्चित परिवर्तनों के द्वारा किया गया।

खण्ड 8 (इकाई 33) में हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि गुप्त काल से व्यापार एवं शहरी बस्तियों का हास प्रारंभ हो चुका था। परन्तु ये भारतीय समाज की बहुत महत्वपूर्ण विशेषताएं थीं। इन परिवर्तनों के निम्नलिखित कई उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

- 1) गुप्तकाल के बाद से नगर (जैसे कि तक्षशिला, कौशांबी, पाटलिपुत्र) प्रायः लुप्त हो गए। शहरी बस्तियों का यह हास कोई अपवाद नहीं था बल्कि ऐसा मालूम पड़ता है कि यह एक सामान्य विशेषता थी।
- 2) बहुत से कारणों से व्यापारिक गतिविधियों को भी धक्का लगा और उनकी गति भी मंद पड़ गई। इसकी

परिणाम था।

प्रतिष्ठानों की सेवा देने से एक ऐसा वातावरण बना जिसमें बड़े अर्थव्यवस्था का उदय एक स्वाभाविक

विकास, कारीगरों और व्यापारियों की उनकी बस्तियों के साथ जोड़ देने तथा उनका गतिविधियों पर विभिन्न

राज्यों में उन प्रतिष्ठानों का उल्लेख है जो व्यापारियों के कार्यों को सीमित करते हैं।

की स्थिति भी कोई विशेष अच्छी नहीं थी। परिवर्तन-दक्कन भारत से छठी-आठवीं सदी के प्रारंभ रूप में

की मंदिरों तथा मठों को दिया जाने लगा। दक्कन-संगम ने भी इस प्रकार के कार्यों को प्रमत्त किया है। व्यापारियों

की सेवा के लिए अपने निवास स्थलों तक ही सीमित कर दिया गया। दक्कन एवं दक्षिण भारत में कारीगरों

काफी सामान्य हो गई। इससे भी अधिक, कारीगरों एवं सीढ़ियों की अपने स्थानीय प्रांतिक तथा स्थानिक

भारत, उड़ीसा और गुजरात में हुआ तथा आठवीं सदी के आसपास यह परंपरा भारत के बहिन से भारत में

साथ अनुदान प्राप्तकर्ताओं के लाभ के लिए किसानों को भी देने की परंपरा का प्रारंभ छठी शताब्दी में मध्य

कारिगरी को अपना गांव छोड़ने और कर से मुक्त ग्राम में बसने से मना किया गया। भूमि-अनुदान के साथ-

जाना। समुद्रगुप्त की आरोपित करते हुए, सातवीं सदी के दो राजाओं के द्वारा कर देने वाले किसानों एवं

की बहिन से कर अदा करने के साथ-साथ दान प्राप्तकर्ताओं की आडा का अनुसरण करने के लिए भी कला

अर्थव्यवस्था के उदय का एक अभिप्राय थी। जिन ग्रामों एवं नगरों का अनुदान किया जाता उनके निवासियों

सामाजिक परिस्थितियों, नगरों में दस्तकारों तथा व्यापारियों के स्वतंत्र संगठन के अधिकार और बड़े

अन्य बातों के साथ-साथ, भूमि-अनुदानों की यह प्रक्रिया भूमि पर अधिकारों के प्रश्न, किसानों की आर्थिक-

गए थी।

इन अनुदानों में भी उसी प्रकार की छूटें एवं अधिकार दिए गए जो ब्राह्मणों, मंदिरों एवं मठों के लिए दिए

इस प्रकार का उद्देश्य नहीं है। आगामी समय-अर्थात् 9-10वीं ई. सदी में इनकी संख्या में अवश्य वृद्धि हुई।

था। गैर-धार्मिक अनुदानों की संख्या इस काल में कितनी थी इसके वास्तविक तथ्यों के बारे में विवरण देना

अधिकारियों की वतन के बड़े भूमि-अनुदान या भू-राजस्व को एकत्रित करने का अधिकार दिया जा सकता

काफी काम दिया जाता था। समकालीन धर्मशास्त्रों के साहित्य में यह अनुदान किया गया है कि राज्य के

राज्य के अधीनस्थ विभिन्न वर्गों के अधिकारियों की सेवा के लिए भूमि-अनुदान धार्मिक अनुदानों की अर्थात्

दण्ड देने और इसकी प्राप्ति करने का भी विशेष अधिकार दिया गया।

परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्ति विशेष के विरुद्ध किए गए हों तथा यहां तक कि उनकी आर्थिक

अनुदान गृहीत ब्राह्मणों को यह अधिकार भी दिये कि वे उन सभी अपराधों के लिए दण्ड दे सकते हैं जो

अधिकारियों एवं सिपाहियों के हस्तक्षेप से मुक्त कर दिया गया। अतः राजाओं और राजकुमारों ने इन

खनिज पदार्थों की भी उनके अधीन कर-दिया गया। दान की गई भूमि, गांव और गांवों को राजकीय

भू-राजस्व (जमान) वसूल करने का अधिकार मिल गया अर्थात् इन क्षेत्रों में स्थित खानों से प्राप्त होने वाले

वसूल करने के अधिकार दिए थे। परन्तु पंचवीं शताब्दी ई. से न केवल इन भूमि-अनुदान प्राप्तकर्ताओं की

स्तर पर किया जाता था। इससे पूर्व दक्कन में सातवाहनों ने इन अनुदान प्राप्तकर्ताओं को केवल जमान

परिवार के सदस्यों और उनके सामंतों द्वारा, ब्राह्मणों और मंदिरों जैसे धार्मिक संस्थानों एवं मठों को व्यापक

उत्तर-गुप्तकाल में हुई तथा सम्पूर्ण देश में इसका प्रसार हो गया। भूमि-अनुदानों को राजाओं, सरकारों, राज्य

प्रक्रिया में भूमि-अनुदानों की प्रथा निष्पत्तिक तत्त्व थी। भूमि-अनुदानों की संख्या में वृद्धि गुप्त तथा विशाखर

इन परिवर्तनों की व्याख्या कौन कैसे करता है? कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि इस विकास की

36.2 आर्थिक परिवर्तनों की शुरुआत

अर्थव्यवस्था थी।

आधारों पर चलने के बजाय, केवल एक ही आधार पर चलनी प्रारंभ हुई। यह मुख्य रूप से एक कृषि

अथ अर्थव्यवस्था नगरों के दस्तकारी वर्गों के उदाहरण एवं व्यापार की गतिविधियों, तथा कृषि के,

का यह तात्पर्य नहीं है कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में निरावट आई। परन्तु हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि

इस पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए कि ये परिवर्तन गुप्त काल में ही प्रारंभ हो चुके थे। नगरों के पतन

जाएगा।

गरी होने बहिन सीमित स्तर पर हो गया। इन परिवर्तनों का विस्तृत रूप से विश्लेषण आगे किया

पूर्व शायद इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि इस समय में पहले की अपेक्षाकृत विधियों का निर्माण एवं

गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में हुए आर्थिक परिवर्तनों का प्रत्यक्ष परिणाम भारत के आंतरिक एवं बाह्य व्यापार में हास था। उत्तर-पूर्व काल में भारतीय विदेश व्यापार अपने चरमोत्कर्ष पर था क्योंकि तब भारत रोमन साम्राज्य, सेन्ट्रल एशिया और दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ व्यापार करता था। परन्तु आधुनिक काल में भारत गुप्त काल में हुआ और उठी सदी ई. के मध्य में अधिक महार हो गया। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों के बाद रोमन सिक्कों का बहाव भारत के अंदर आना बंद हो गया। अन्य दूसरे क्षेत्रों से भी यह पता चलता है कि परिष्कृत विश्व के साथ संपर्क का अभाव था। आगे की सदियों में रोमन साम्राज्य भी विखर गया। व्यापार में, अरब एवं ईरानियों का प्रतिस्पर्धी रूप में पैदा हो जाना, भारतीय सौदागरों के लिए अच्छा शकूनकारी सिद्ध नहीं हुआ। उड़ी शताब्दी ई. के आसपास के विजयनगर साम्राज्य के कुछ सिक्के अरब प्रदेश एवं कर्नाटक में प्राप्त हुए हैं। परन्तु संख्या की दृष्टि से इन सिक्कों की तुलना इससे पूर्ववर्ती काल के रोमन सिक्कों की भारी संख्या से नहीं की जा सकती। भारतीय विजयनगर व्यापार में मुख्य वर्तमान देश एवं मसाले थे। उड़ी सदी ई. के मध्य विजयनगर लोगों ने कोई से पैदा होने वाले देशम की कला को मंगल लिया। परिणामस्वरूप, देशम का व्यापार यथेतर रूप से प्रभावित हुआ। देशम का कपड़ा बनाने वाले नर्याहा का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है। मसाले का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है। मसाले का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है। मसाले का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है। मसाले का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है।

गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में हुए आर्थिक परिवर्तनों का प्रत्यक्ष परिणाम भारत के आंतरिक एवं बाह्य व्यापार में हास था। उत्तर-पूर्व काल में भारतीय विदेश व्यापार अपने चरमोत्कर्ष पर था क्योंकि तब भारत रोमन साम्राज्य, सेन्ट्रल एशिया और दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ व्यापार करता था। परन्तु आधुनिक काल में भारत गुप्त काल में हुआ और उठी सदी ई. के मध्य में अधिक महार हो गया। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों के बाद रोमन सिक्कों का बहाव भारत के अंदर आना बंद हो गया। अन्य दूसरे क्षेत्रों से भी यह पता चलता है कि परिष्कृत विश्व के साथ संपर्क का अभाव था। आगे की सदियों में रोमन साम्राज्य भी विखर गया। व्यापार में, अरब एवं ईरानियों का प्रतिस्पर्धी रूप में पैदा हो जाना, भारतीय सौदागरों के लिए अच्छा शकूनकारी सिद्ध नहीं हुआ। उड़ी शताब्दी ई. के आसपास के विजयनगर साम्राज्य के कुछ सिक्के अरब प्रदेश एवं कर्नाटक में प्राप्त हुए हैं। परन्तु संख्या की दृष्टि से इन सिक्कों की तुलना इससे पूर्ववर्ती काल के रोमन सिक्कों की भारी संख्या से नहीं की जा सकती। भारतीय विजयनगर व्यापार में मुख्य वर्तमान देश एवं मसाले थे। उड़ी सदी ई. के मध्य विजयनगर लोगों ने कोई से पैदा होने वाले देशम की कला को मंगल लिया। परिणामस्वरूप, देशम का व्यापार यथेतर रूप से प्रभावित हुआ। देशम का कपड़ा बनाने वाले नर्याहा का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है। मसाले का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है। मसाले का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों की आगेकर करना भी इसकी पुष्टि करता है।

ऐसा कहा जाता है कि भारत के समुद्र तट के नगरी का कुछ व्यापार दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों एवं चीन के साथ चलता रहा। परन्तु इस आपसी व्यापार का कोई विशिष्ट प्रमाण नजर नहीं आता। इसका प्रमाण तो है कि भारत से दक्षिण-पूर्वी एशिया में सांस्कृतिक प्रभावों का प्रसार प्रारंभिक ऐतिहासिक तथा प्रारंभिक मसालेकाल में हुआ परन्तु इस काल के वर्तनों, सिक्कों या दूसरी वस्तुओं से संबंधित एक भी पत्ता नहीं मिलता। प्रतीय प्रतिनिधि मण्डल चीन गए उनसे भी कुछ अधिक न हो सका। उड़ी सदी ई. से इस प्रकार के प्रतिनिधि मंडलों की विदेश भ्रमणों की प्रवृत्ति में कमी आने लगी। विजयनगर से जो चीनी सिक्के एवं चीन-रुपये के मुद्र प्राप्त हुए वे भी इनके बाद के काल का बताया गया है, के आंतरिक ऐसा कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि इस काल में भारत-चीन के मध्य व्यापार होता था।

व्यापार में हास केवल विदेशी व्यापार तक ही सीमित न था। समुद्र तटीय नगरी तथा दूर-दरजन के नगरी के बीच संपर्क कमजोर पड़ जाने के कारण आंतरिक व्यापार का भी पतन हुआ और इसका प्रभाव ग्रामी एवं नगरी के बीच होने वाले व्यापार पर भी पड़ा। शहरी का पतन, शहरी उपभोग उत्पादन में कमी आना तथा व्यापार का हास, ये सब एक दूसरे से संबंधित समस्याएँ थीं। इस काल के दौरान समान में व्यापारियों एवं सौदागरों की स्थिति का पतन भी व्यापार एवं वाणिज्य के पतन होते भाव की और इशारा करता है। भीम से लाभ प्राप्तकर्ताओं के अधीनस्थ आत्म-निर्भर असंख्य इकाइयों के उदय ने भी व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव डाला। बाद के काल के एक प्रथम, **कथासहितानगर** में उल्लेख हुआ है कि कई प्रकार के करों का अभाव पान में असमर्थ व्यापारी वर्गों की और चले गए। समुद्र-अभिगामी और दूर-स्थलों की यात्राओं की आर्थिक रूप में प्रतिवर्धन-विधायक प्रभाव था। इस प्रकार के दृष्टिकोणों के कारण निश्चित रूप से व्यापार को बहाव नहीं मिला।

परन्तु इन सबका तात्पर्य यह नहीं है कि आवश्यक वस्तुओं जैसे कि नमक, लोहे और इतने वस्तुओं आदि का उत्पादन नहीं होता था।

यं आवश्यक उपभोग की वस्तुएँ भी प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध नहीं थीं। इसके साथ-साथ लचीली ढ़ी का

रकती थी। इसलिये कुछ शताब्दियों के लिए विशाल तथा संचित व्यापार का स्थान घुमक्कड़ छोटे सौदागरों, स्थान-आधार चलाने वाला रकती। इस प्रकार की वस्तुओं के लिए कलियों, सरदारों और राजाओं के बीच माना बनी

असंगठित और शीघ्र गति के व्यापार ने ले लिया।

दत्तकारी तथा उपभोग निर्माण के सामान्य पतन की स्थिति में, परस्पर के मोर्चियों की मजाल बनाने, खोल

नगर रह ही नहीं सकी।

कारण रहा होगा। नगरीय क्षेत्र का दूसरा कारण उठी सटी ई. के बाद शुरू हुआ और इसके पश्चात् ये क्षेत्र भीटा बच पाए। ये नगर गुप्त साम्राज्य के मुख्य क्षेत्रों में स्थित थे और इनके बच पाने का मुख्यतः यही अपने क्षेत्र के प्रथम कारण में संख्या के आधार पर कुछ ही नगर जैसे कि पाटलिपुत्र, वैशाखी, वाराणसी तथा प्रसार तथा नगरीय सुविधाओं के दृष्टिकोण से ये नगर अपने परवर्ती कृषिाण युग की तुलना में नगण्य हैं। निर्माण में प्रारंभिक दीवारों की दृष्टि, तथा कच्चे माल का पुनः प्रयोग किया गया है। नगरीय क्षेत्रों के स्थलय पतली, खस्ता हालत एवं कम माल प्रयोग किए गए अवधारण हैं। बहुत से गुप्त कालीन प्राचीन स्थलों के एक के इस प्रकार के प्राचीन क्षेत्रों के निवास स्थलों की दीवारें प्रारंभिक शताब्दियों की तुलना में काफी कर्तिक के सातवाहन काल के नगरीय क्षेत्र भी इस विशेषता के अपवाद नहीं थे। चौथी सदी से उठी सदी आदि नगरों में भी इसी प्रकार का सुकाव देखने की मिलता है। तमिलनाडु में अतिकर्म, आन्ध्र प्रदेश तथा और महाराष्ट्र के प्रारंभिक समय क्षेत्रों जैसे कि नाह, उज्जैन, नागर, पौष्पी, तैर, भौकरदन, नालिक, वृंठन तथा के ऊपरी तथा मध्य मैदानों के नगरों का क्षेत्र होना प्रारंभ हो गया था। राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात अवलंबित्व, मथुरा, साँख, श्रावस्ती, कौशांबी, वैराहिक, चित्तूर, तमलुक आदि के उत्खनन से स्पष्ट है कि गुप्त शासिक के उदय के दूसरे पहर के साथ जुड़ा था। इस काल के नगरों जैसे कि सखोल, हरिनपुर, भारत के लिए भी समान सत्य था। वास्तव में नगरीय जीवन का क्षेत्र दो चरणों में हुआ। प्रथम का सम्बन्ध मध्य या चौथी सदी ई. से प्रारंभ हुआ। जो उत्तरी भारत, मालवा और दक्कन के लिए सत्य था वहीं दक्षिणी कृषिाण काल से तथा दक्कन में जो सातवाहन शासन काल से जुड़े हुए थे उनका क्षेत्र तीसरी सदी ई. के सक्रिय क्षेत्र थे वे इस काल में निष्क्रिय एवं निर्जन्य हो गए। उत्तर भारत में जो नगर परवर्ती-कृषिाण एवं निर्मित उपग्रहों की मांग में कमी की और इधारा करते हैं। जो नगर उत्तर-मध्य काल में दत्तकारी उपग्रह के व्यापार का क्षेत्र, सिक्कों की कमी, सिक्के के सार्वी तथा वाणिज्य मोहरों की अनुपस्थिति आर्थिक क्षेत्र एवं

36.5 नगरों का क्षेत्र

देने के लिए अब मुद्रा का स्थान वस्तु विनिमय (barter system) एवं कीड़ियों ने ले लिया था। आर्थिकता का खस कर दिया। इन सबके साथ-साथ इस बात के भी प्रमाण हैं कि निम्न-प्रतिदिन के लेन-आधिकारियों की नकद धन का भ्रमान करने के स्थान पर भूमि-अनुदान की परम्परा ने सिक्कों की नाम से जारी करने के विशेष अधिकार से स्वयं की वंचित नहीं करेगा। व्यापार के क्षेत्र तथा उच्च सत्ता की भी अभिव्यक्ति थी। जब तक गंधीर मजबूतियां न हों तब तक कोई भी शासक सिक्कों को अपने केवल इसकी पूर्ति के लिए काफी मात्रा में धातु मुद्रा धन की आवश्यकता होगी। दूसरे, सिक्के सार्वभौमिक पर हम जिस काल का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं उस समय में कृषि का व्यापक स्तर पर प्रसार हुआ और की मुद्रा आपूर्ति की मांग को पूरा किया, इसलिए नए सिक्कों को जारी करना आवश्यक था। परन्तु यहाँ इस संदर्भ में कुछ इतिहासकार यह तक देते हैं कि परवर्ती सदियों में जारी किए गए सिक्कों ने बाद के समय

आधिकारिक, इस काल के कश्मीर से भी काफी मात्रा में सिक्के मिलते हैं। की तुलना में पचास तथा उत्तर-पश्चिमी भागों में 1000 ई. तक के प्रचुर मात्रा में सिक्के प्राप्त हुए हैं। इसके स्पष्ट है कि इस काल में उठे हुए सिक्कों तथा वाणिज्य मोहरों का पूर्ण अभाव था। परन्तु देश के अन्य भागों अभाव था। जो इन क्षेत्रों के लिए सत्य था वह पूर्णतः दक्षिण भारत के लिए भी। बहुत से अध्ययनों से भी किए। उत्तरी भारत के अधिकतर भागों, बंगाल, उड़ीसा, मध्य भारत तथा दक्कन में धातु वाली मुद्रा का पूर्ण जो आठवीं सदी ई. में कमशः दक्कन एवं बंगाल में सत्ता में आए थे, ने अपने कोई सिक्के जारी नहीं विशेष प्रकाश नहीं डालते। हबवधन के द्वारा जारी किए गए सिक्के भी बहुत कम हैं तथा गार्डकैट एवं पाल सिक्कों के विषय में शिखर संक्षेपी प्रमाण भी, सिक्कों की वास्तविक उपलब्धि की कमी के बारे में कोई संख्या के रूप में तुलना भी ईसा की प्रारंभिक सदियों के साथ अच्छी प्रकार से नहीं होती है। इस काल के सिक्कों में सोने की मात्रा कृषिाण सोने के सिक्कों की तुलना में आधी रह गई। गुप्त काल के सिक्कों की कि गुप्त काल के सोने के सिक्कों में सोने की मात्रा का अनुपात लगातार घट रहा था और बाद के गुप्त सोने वादी और तांबे के सिक्कों की अनुपस्थिति भी हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करती है। यह उल्लेखनीय है गुप्त काल में सोने के सिक्कों की जो बहुतायत थी उनका उछी सटी ई. के बाद जारी होना बंद हो गया। उत्तर-गुप्त काल में वाणिज्य के पतन की अभिव्यक्ति सिक्कों की कमी के रूप में भी होती है। कृषिाण एवं

36.4 सिक्कों की कमी

v) भारत के समुद्र तटीय नगरों का दक्षिण-पूर्वी एशिया के मध्य कोटि आणविक सम्पर्क नहीं था।

प्राप्त हुआ।

iv) कुछ क्षेत्रों में भूमि को दान प्राप्तकर्ताओं को देते समय किसानों को भी दिए जाने की प्रथा का

iii) उत्तर-गुज काल में धार्मिक मठों को दिए जाने वाले भूमि-अनुदानों की संख्या में वृद्धि हुई।

ii) उत्तर-गुज काल में शहरी बस्तियों का विकास हुआ।

i) उत्तर-गुज काल में सिक्कों की कमी वणिज्य के विकास को अभिव्यक्त नहीं करती।

2) निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही (✓) और कौन-सा गलत (x) है:

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

1) उन कारणों को दस पंक्तियों में लिखिए जो व्यापार के विकास के लिए उत्तरदायी थे।

भाग प्रथम 1

परन्तु सभी बस्तियाँ ग्रामीण नहीं थीं। उत्तर-गुज काल में शहर-कृषि बस्तियों की अभिव्यक्ति प्रशासनिक स्थलों, सैन्य दुर्गों तथा धार्मिक या तीर्थस्थल केन्द्रों के रूप में हुई। छठी सदी से आठवीं सदी ई. तक के अभिलेखों में सेना के कौशलों के नाम से उल्लेख किया गया है। इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि कुछ नगर इसलिए बचे रह सके क्योंकि उनका परिवर्तन तीर्थस्थल केन्द्रों के रूप में हो गया। इन सभी शहर-कृषि बस्तियों को पूरा, पटन, नगर तथा राजधानी के नाम से जाना जाता था और वे उत्पादन के केन्द्र न होकर खपत के केन्द्र थे।

वणिज्य (सातवीं सदी ई.) में इतना सर्वांगीण वर्णन नहीं है तथा वह मुख्यतः ग्रामीण जीवन का ही उल्लेख करता है। का सर्वांगीण एवं रोमांचक विवरण हुआ है, उत्तर-गुज काल के साहित्य जैसे कि दामोदरगुप्त की रचना किना है तथा वह हवर्षधन के शासनकाल में भारत आया था। वास्तव्यन के **काव्य** में जिस नगरीय जीवन हुआ है। उत्तरी भारत में बौद्ध नगरों के पतन का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेन-त्सांग ने अपने यात्रा विवरणों में किया है। के पूर्वार्द्ध की बराहमिहिर की रचना **पुराण साहित्य** में दस्तकारी, नगरों, एवं व्यापार के विकास का उल्लेख होता था परन्तु अब इसका उपयोग जाति के लिए होने लगा तथा निम्न का अर्थ गाँव से हो गया। छठी सदी ई. के पूर्वार्द्ध के प्रारंभिक इतिहास करते हैं। जैसे कि "श्रीगी" शब्द का काशीनगरी तथा व्यापारियों के संगठन के लिए प्रयोग और स्पष्ट इतिहास करते हैं। जैसे कि "श्रीगी" शब्द का काशीनगरी तथा व्यापारियों के संगठन के लिए प्रयोग काल में कुछ निश्चित शब्दों के भावार्थ में आए परिवर्तन उस समय की परिस्थितियों में हुए परिवर्तन की किया। परन्तु छठी सदी के बाद इस प्रकार के स्रोतों से हमें ऐसी कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। उत्तर-गुज किना गया है। बंगाल से प्राप्त अभिलेखों में कहा गया है कि उन्होंने नगरों के प्रशासन में विशेष योगदान तक के अभिलेखों एवं मूर्तियों में नगरीय जीवन में काशीनगरी, दस्तकारी तथा व्यापारियों के महत्व का उल्लेख समकालीन साहित्य एवं अभिलेखों से भी मही-भक्ति नगरों एवं शहरों का पतन प्रकट होता है। छठी सदी ई. प्रदर्शाई से किसी भी प्रकार की कलसक बनावट प्रतीत नहीं होती और वे मुख्यतः साधारण प्रकार की हैं।

सही है, के निवासीय अवशेष स्थलों से वे वर्णन बहुत ही कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। उत्तर-गुज काल के दोषी व हाथी दात की वस्तुओं तथा शीशे के सामानों का निर्माण प्रायः समस्त-सा ही गया। उत्तर-पावर्षी

दखवत में पाइवमी उत्तर प्रदेश के आसपास के क्षेत्र में कुछ सिवाई सुविधाओं का उल्लेख है। इन सिवाई के तरीकों का उद्देश्य और बर्तमान (रहट) और बर्तमान (रहट) के नाम से उल्लेख किया गया है। बंगाल से प्राप्त आधुनिकता में ग्रामीण बस्तियां तथा उनकी सीमाओं के संदर्भ में नदियां, नालें तथा बाँधों का उल्लेख हुआ है और इसी के साथ-साथ हमें **सामाजिक** (वर्षा द्वारा सिवाई) का भी नाम मिलता है जो कृषि की निर्यात को वर्षा और नदियों पर व्यक्त करता है। दक्षिण भारत में खेती की सिवाई के लिए गलबो तथा बाँधों का निर्माण किया जाता था। कुछ मामलों में तो वे ग्रामीण अंचलों में विशेष महत्व रखते थे जिससे उनका महत्व और भी बढ़ जाता है। दक्षिण भारत में पल्लव शासकों के शासनकाल में इन गलबो तथा बाँधों के निर्माण एवं रख-रखाव के लिए ग्रामीणों में निर्यात सन्धिया (एरी-रिजर्व) थी। बहुत से पल्लव शासकों को इस प्रकार की सिवाई सुविधाओं का निर्माण करने के लिए कोर्त प्रदान की गई। इसी सदी ई. के आसपास राजस्थान के

तथा पशुओं की बीमारियों की रोकथाम के विभिन्न तरीके सुझाए गए हैं।
 नदियाँ प्रथम सहस्राब्दी ई. से पहले की अतिम सदियों के कुछ इस प्रकार के ग्रंथ मिलते हैं जिनमें पौराणिक से संबंधित सभी पक्षों का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया तथा इसकी रचना अठारवीं-नौवीं सदियों में की को हल कहा गया जो इस समय में हल के महत्व को दर्शाता है। **सामाजिक** नाम के ग्रंथ में कृषि देखा जा सकता है। जमीन की पैदाइश करने के लिए इस समय लोकप्रिय तथा व्यापक रूप से प्रचलित इकाई और जो विशेष ध्यान दिया उसको हल के विस्तृत वर्णन तथा सिवाई तकनीकों में सुधार के रूप में भी एवं जलकर साफकर जुताई करने योग्य बनाना। शासकों और मूर्ति से अन्य जल भावकताओं में खेती की जुताई का उल्लेख है, जैसे कि हल से जुताई करना, कुदाल से जुताई करना तथा जंगलों को तेज हथियार से देने के लिए गाय के गोबर व कूड़ा-ककट का उपयोग किया जाए। दखवत में कई प्रकार से खेती की देकर अधिक उपजाऊ बनाने के महत्व को स्पष्ट रूप में समझाया गया है। इसमें लिखा है कि खेतों में खार गए हैं उनके आधार पर कृषि के बढ़ते हुए महत्व को समझा जा सकता है। दखवत में फसलों को खार कृषि के बारे में बहुत संहित, अग्नि पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा कृषि पारासर में जो दिशा-निर्देश दिए

36.6.1 कृषि ज्ञान एवं तकनीकी में प्रगति

की सीमाओं पर बसे अन्य गांवों के नामों का भी ज्ञान हमें होता है।
 केवल सभी नहीं जान पाते हैं जबकि अनेक गांवों का अनुमान किया गया बल्कि अनुमानित किए गए गांवों बस्तियों के नाम भी सामिलित हैं। परन्तु नए गांवों का उद्भव व्यापक स्तर पर हुआ। हम गांवों का नाम काल की अनेक मूर्ति-अनुदान आजाओं में बहुत से ग्रामीणों के नामों को उद्धृत किया गया। इनमें पुरानी तथा दक्षिण भारत की ग्रामीण बस्तियों की स्थापना एवं प्रसार के विषय में विवरण दिया गया है। उत्तर-गुजरात पुराण में विभिन्न क्षेत्रों के बहुत से ग्रामीणों का उल्लेख है। इसी भाँति, बाद के युग से संबंधित ग्रंथों में पाइवम ग्रामीण जीवन का सर्वांग विवरण किया गया और जिनमें ग्रामीण बस्तियों की सम्पन्नता अलकनी है। स्कन्द इस समय में संस्कृत और गैर-संस्कृत नामों से प्रचलित बहुत से गांवों का उदय हुआ। समकालीन साहित्य में

अध्यावस्था एवं कृषि प्रसार के लिये अग्रदत्त साहित्य हैं।
 प्रसार प्रारम्भ में जिन क्षेत्रों में राज्य की स्थापना नहीं हुई थी, उन क्षेत्रों में राज्य की स्थापना वहीं की ग्रामीण राज्य पर निर्भर करता था। वास्तव में, उत्तर-गुजरात काल में कृषि ने राज्य के आधार को निर्मित किया। इस में आधिकारिक, शैतिक आदि का अस्तित्व था। इन क्षेत्रों में से **सामाजिक** मूर्ति और कृषि से प्राप्त होने वाले नए-नए शासक वंशों ने अपने स्वयं के मूर्ति-अनुदानों को जारी किया जिससे स्पष्ट है कि उनके अपने राज्यों की वे महाराष्ट्र, पूर्वी मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा तथा बंगाल में फैली हुई थी। इस क्षेत्र के बहुत से देवकन तथा मध्य भारत में, पावली सदी से सातवीं सदी तक के नाम पचास शासक शाकिया अस्तित्व में

सीमा क्षेत्रों में मूर्ति-अनुदानों के कारण नवीन मूर्ति कृषि कार्यों के लिए उपलब्ध हो गई।
 कौशल के ग्रामीण अंचलों में विद्यमान के कारण कृषि का विकास और तीव्र गति के साथ हुआ। कौशल में हुए। उनमें से कुछ ने अपने देशों को ही बरत लिया। दलकारों तथा कारीगरों के साथ-साथ तकनीकी गए हैं। उनमें से कुछ ने अपने देशों को ही बरत लिया। दलकारों तथा कारीगरों के साथ-साथ तकनीकी यह संभव है कि शहरों के पतन के फलस्वरूप बहुत से निपुण कारीगर ग्रामीण क्षेत्रों की ओर पलायन कर

ग्रामीण अध्यावस्था और सुदृढ़ हुई।
 सिवाई सुविधाओं में सुधार, कृषि विज्ञान के बढ़ते ज्ञान आदि ऐसे कुछ कारक तत्व थे जिनके कारण प्रसार व्यापक स्तर पर हुआ। राजाओं, राजकर्मियों तथा सरकारी के द्वारा कृषि को प्रदान किए गए संरक्षण, गुप्त तथा उत्तर-गुजरात काल के दिवाल्लेख प्रमाणों से स्पष्ट है कि इस समय में कृषि विकास एवं ग्रामीण

36.6 कृषि का प्रसार

पूर्वी मैवाड़ के ग्रामीण क्षेत्रों में **अनाथादो** या कुओं से सिंचाई करने की प्रथा का प्रचलन था। यह भी संभव है कि इनका उपयोग इस तिथि से पूर्व ही होने लगा हो।

36.6.2 फसलें एवं पौधे

अमरकोष में, जिसकी रचना की तिथि गुप्त काल मानी गई है, अन्न से संबंधित बहुत सी किस्मों जैसे कि चावल, गेहूँ तथा मसूर, फलों वाले अनाज, सब्जियों और फलों के नामों का उल्लेख है। **बृहत् संहिता** से स्पष्ट है कि लोगों को फलों के पौधों की कलम बांधने के कार्य का ज्ञान था। स्वेन-त्सांग ने चावल की किस्मों, सरसों, अदरक, बहुत से फलों तथा सब्जियों को उद्धृत किया है। **हर्षचरित** में भी फसलें तथा पौधों के विषय में अच्छा-खासा विवरण है। विभिन्न प्रकार के चावल, गन्ना, सरसों, तिल, कपास, गेहूँ, जौ एवं दालों का विवरण भी हमें **हर्षचरित** में मिलता है। विभिन्न प्रकार के मसालों जैसे कि हल्दी, लींग, काली मिर्च और अदरक का भी उत्पादन होता था। सब्जियों में लौकी, खीरा, सेम, लहसुन, कद्दू आदि का उत्पादन होता था। फलों में नारियल, सुपारी, कटहल, सन्तरा, महुआ और आम को उद्धृत किया जा सकता है। पान की पत्तियों का भी उत्पादन होता था। इनमें से कुछ पौधों तथा फलों को कुछ इस काल के अभिलेखों में उद्धृत किया गया है। वाण की रचना **हर्षचरित** में व्यापक भौगोलिक क्षेत्र का विवरण है जिसके अंतर्गत गंगा के ऊपरी तथा मध्य मैदानों सहित असम, बंगाल एवं मध्य भारत को भी सम्मिलित किया गया है। इसलिए मध्य भारत के संदर्भ में बांसों, कपास के पौधों, सन व पटसन के गट्टरों का उल्लेख किया गया है और वेंत, बांस तथा रेशम का पूर्वी भारत के विषय में। पल्लवों तथा चालुक्यों के क्षेत्रों में, जो सामान्यतः तमिलनाडु, पश्चिमी दक्कन तथा कर्नाटक के हिस्सों में फैला हुआ था, चावल, ज्वार-बाजरा, अदरक तथा गन्ने आदि की खेती होती थी। फलों में केले सहित कटहल, आम तथा नारियल का उत्पादन होता था। यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि अनाजों, फलों तथा सब्जियों की किस्में एवं संख्या बहुत ही प्रभावित करने वाली हैं। ग्रामीण वस्तियों में ब्राह्मणों तथा कारागमों की उपस्थिति, भूमि की पुनः प्राप्ति, तकनीकी में कुछ निश्चित परिवर्तनों और सिंचाई सुविधाओं के प्रसार ने अनाजों तथा पौधों के उत्पादन में वृद्धि की। इन सब विकास कार्यों का परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई।

36.7 ग्रामीण बस्तियां

उपरोक्त वर्णित विकासों ने प्रारंभिक मध्यकालीन भारत की ग्रामीण बस्तियों में स्थान ग्रहण किया। गांवों के लिए सामान्यतः ग्राम शब्द का प्रयोग किया गया। परन्तु सभी ग्रामीण बस्तियां एक समान नहीं थीं। हमें ऐसे दूसरे शब्दों के विषय में भी जानकारी है जो भिन्न प्रकार की ग्रामीण बस्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। **पालि** को सामान्यतः आदिवासी गांव के लिए प्रयोग किया जाता था। **पटका** से गांव के एक भाग का बोध होता है। यह एक छोटे गांव या पुरवा को इंगित करता है परन्तु वास्तव में यह एक बड़े गांव का ही एक भाग था। एक ही गांव की गंगाओं के अंतर्गत कई पटकों या पुरवों के पैदा हो जाने से स्पष्ट है कि कृषि का प्रसार हुआ। चरवाहों की बस्तियों को **घोष** कहा जाता था। परन्तु यह याद रखा जाना चाहिए कि ये शब्द जो विभिन्न प्रकार की बस्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे सदैव परिवर्तित होते रहते थे। कृषि एवं ब्राह्मणिक संस्कृति के प्रसार के कारण आदिवासियों की बस्तियों के चरित्र में भी परिवर्तन हो गया था।

बहुत से कारणों के एक साथ मिश्रित हो जाने के कारण कुछ गांव ऐसी जगहों पर बस गए जहां एक बिन्दु पर ग्रामीण बस्तियों का एक समूह मिलता था और वे वड़ी बस्तियों में तबदील हो गए। वास्तव में, 9वीं सदी ई. से कुछ इस प्रकार की वड़ी बस्तियां नगरीय केन्द्रों में परिवर्तित होनी प्रारंभ हो गईं। यहां पर यह याद रखना होगा कि बस्तियों के नामों से इस प्रकार के परिवर्तन सदैव प्रकट नहीं होते थे। यहां तक कि अगर कोई ग्रामीण वस्ती अपने आकार तथा चरित्र में बदल जाती थी परन्तु उसके प्रारंभिक ग्रामीण नामों का प्रयोग जारी रहता था। गांवों के अपने संस्कृत तथा गैर-संस्कृत नामों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये आदिवासी छोटे गांव थे जिनका क्रमिक रूप से संक्रमण कृषि ग्रामों में तथा संस्कृत नाम वाले गांवों में ब्राह्मणिक संस्कृति एवं विचारधारा का प्रसार हुआ। गांव का निर्माण कैसे होता था? "सामान्यतः" एक गांव के अंतर्गत निवास स्थल (वस्तु), खेती-वाड़ी वाली भूमि (क्षेत्र) और बिना जुताई वाली भूमि आती थी। भूमि की इस अंतिम श्रेणी के अंतर्गत चरागाह मैदान (गौचर) और जंगल सम्मिलित थे। गांवों की सीमाओं का निर्धारण करना एक समस्या थी क्योंकि इनको कभी भी स्पष्ट रूप से पारिभाषित नहीं किया जाता था। जैसा कि अब हम जानते हैं कि बस्तियां सदैव बढ़ती तथा फैलती रहती थीं। उस समय में प्राकृतिक सीमाओं जैसे कि पर्वतों या नदियों को ही गांवों की सीमाएं मान लिया जाता। परन्तु जहां बस्तियां एक गांव की स्थलीय सीमाओं से जुड़ती थीं वहां पर सीमाओं को पड़ोसी गांवों का उल्लेख करके निश्चित किया जाता था। उत्तर-गुप्त काल की बहुत सी तांबे की प्रज्ञाओं में, जिनको भूमि-अनुदान करते हुए जारी किया गया, भूमि की

सृष्टि में भी के लेखकों वास्तविक और बृहस्पति ने भीम के एक ही टुकड़े पर चार कम में भीम अधिकारों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार अधिकारों का उपयोग करने वाले के विभिन्न कम इस प्रकार थे: महापति (राजा), क्षत्रियपति (देव का मालिक), कृषक (खेती करने वाला) और अर्ध-कृषक। भीम-अनुदानों के भीम पर वर्गीय अधिकारों तथा अर्ध-काश्तकारी का मांग प्रस्ताव किया और इस परंपरा के कारण

36.8.2 सातवीं प-परम्परा

गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में उत्तरी महाराष्ट्र, कोंकण, मध्य प्रदेश तथा गुजरात से संबंधित भीम-अनुदान प्रज्ञाओं में भीम पर दान प्राप्तकर्ताओं के उच्च अधिकार स्पष्ट हैं। दान प्राप्तकर्ताओं को यह अधिकार था कि वे किसानों की अपनी इच्छानुसार बेदखल कर सकते और उनके स्थान पर नए किसानों को रख सकते थे। सातवीं सदी से अनुदानों के कारण जल संधियों, वृक्षों, झण्डियों और चरगाहों पर भी दान प्राप्तकर्ताओं का अधिकार होना शुरू हो गया था। दसवीं सदी के बाद से इस परंपरा की गति और तेज हो गई। इन संधियों के दान प्राप्तकर्ताओं के साथ में चले जाने से न केवल अनुदानित ग्रामों के किसानों पर विपरीत प्रभाव पड़ा बल्कि इससे दान प्राप्तकर्ताओं की स्थिति और मजबूत हो गई। बहुधा मजदूरी का उल्लेख **स्वयं गुण** में आया है। अभिलेखों में भी यह उल्लेख आया है कि पाचवीं-छठी सदियों से पश्चिमी मध्य और दक्षिणी भारत में **विभिन्न** का मही भीम प्रकार से प्रयोग होने लगा था। इसी के साथ-साथ भीम-अनुदान प्रज्ञाओं में यह धारा भी दी गई कि किसानों को दान प्राप्तकर्ताओं (ग्रहियों) के आदेशों का पालन करना चाहिए था, राजस्थान, मध्य प्रदेश और पूर्वी भारत जैसे क्षेत्रों में निहित रूप से किसानों की स्थिति में गिरावट आई।

इं. के अंत तक विभिन्न प्रकार के करों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। उल्लेख किया गया है। पल्लव शासकों के साक्ष्यों में इनकी संख्या आठारह से बीस बताई गई है। दसवीं सदी किसानों पर लगानों का बोझा बढ़ रहा था। बाकायदा अनुदान प्रज्ञाओं में चौदह प्रकार के करों का **विष्णु, उदर, वृक्षिकार, इत्यादि** का वर्णन करते हैं। यह वास्तविकता है कि पारंपरिक मध्य काल में अपवादीय जंगलों के साथ-साथ दान प्राप्तकर्ता अन्य स्थायी करों जैसे कि **भोग, भोग, कर, उपाधिकार, और** जिसका उपयोग जब भी आवश्यक होता तो जमींदार अपने जंगल के लिए करता था। इन आंतरिक आनिधित्व कर सकते थे। अभिलेखों में करों की जो सूची दी गई है उनमें **आदि** शब्द का उल्लेख हुआ है। वे स्थायी तथा अस्थायी करों को एकत्रित कर सकते थे और उनकी अदायगियों को भी निहित एवं उच्चतर अधिकार प्रदान कर दिए गए। दान प्राप्तकर्ता सभी प्रकार के करों को एकत्रित करने के हकदार थे। भीम-अनुदान प्रज्ञाओं के द्वारा अनुदान प्राप्तकर्ताओं को दान लिए गए ग्राम या ग्रामों के निवासियों के ऊपर

36.8.1 किसानों पर आर्थिक बोझ

अब हम कुछ संवर्षों की उन मुख्य-मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे, जिनका विकास पारंपरिक मध्य काल में हुआ।

36.8 कृषि संवर्षों की नवीन विशेषताएं

बनाते थे। संवर्षों बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि दान किए गए गांव जमीन बस्तियों का केवल एक भाग ही कार्य है। ऐसा कि अब हम जानते हैं कि साधारण ग्रामों का खूब अनुदान श्रावणों को दिया जाता था। इन देश के किसी भी भाग की इन दोनों प्रकार की बस्तियों के बीच अनपेक्षित विभाजन करना एक कठिन श्रावणों की बस्तियों का प्रतिनिधित्व करती थीं। जबकि इतर साधारण जमीन बस्तियों का प्रतिनिधित्व करती। बस्तियों प्रशासनिक तथा सामाजिक संगठन के स्तर पर और-शास्त्रीयक साधारण ग्रामों से भिन्न थीं। **संघर्ष** भी इस प्रकार के गांवों को **माल** के नाम से जाना जाता था। दक्षिण भारत में दोनों प्रकार की शास्त्रीयक भी रहते थे। परन्तु इस प्रकार के गांवों में सृष्टि के अधिकांश केवल श्रावणों को प्राप्त थे। दक्षिण भारत में था। जिन गांवों को श्रावणों ने दान स्वरूप प्राप्त किया था उन गांवों में श्रावणों के साथ-साथ और-शास्त्रीयक जंगल जिन ग्रामों को श्रावणों को अनुदान में दिया गया उनको "ब्रह्मदेय" और "अग्रदेय" के नाम से जाना जाता था। भीम के विस्तारपूर्वक विवरणों से स्पष्ट है कि कुछ एवं पशुपालन का महत्व बढ़ने लगा था। को संभवतः इस प्रकार की उल्लिखित किसानों के आधार पर ही निहित किया गया। भीम की किसानों के इस ग्रहण करने वाली, दलदली, हरि और जंगल वाली भीम शामिल थी। जमीन की उत्पादकता तथा भीम के गुण विभिन्न किसानों का उल्लेख किया गया है जिनके अंतर्गत खेती योग्य, जिन जगाई वाली, ऊँची, नीची, पानी

- 3) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही (✓) है और कौन सा गलत (×):
- नगरों के हास के कारण कारीगरों का विस्थापन गांवों की ओर नहीं हुआ।
 - हर्षचरित में सिंचाई सुविधाओं का कोई उल्लेख नहीं है।
 - सभी ग्रामीण बस्तियां एक समान नहीं थीं।
 - जिन ग्रामों का ब्राह्मणों को अनुदान किया गया तथा जिनमें ब्राह्मण निवास करते थे ब्राह्मण कक्ष जाता था।
 - धर्मशास्त्रों ने ब्राह्मणों के आवागमन को नियंत्रित किया।

36.9 सारांश

दसवीं सदी ई. के मध्य से अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के विभिन्न प्रतिमानों का उल्लेख किया गया है। ये परिवर्तन इसलिये और अति महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि इन्हीं के द्वारा भारत के इतिहास में प्राचीन काल का अन्त तथा नए युग का प्रादुर्भाव हुआ। जिस ढंग से पुराने युग ने नए युग में प्रवेश किया उसको महत्वपूर्ण परिवर्तनों ने स्वयं स्पष्ट किया। गुप्त और उत्तर-गुप्त काल के इतिहास को निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर रेखांकित किया जा सकता है:

- कृषि अर्थव्यवस्था में एक जमींदार वर्ग तथा दूसरे परतंत्र किसान वर्ग का उद्भव और जिसमें देहातीपन तथा कृषि की प्रमुखता थी;
- प्रत्यक्ष रूप से व्यापार का हास;
- नगरों का हास; और
- धातु धन की कमी।

फिर भी यह व्यापक गतिशीलता की विशेषता का युग था। इस पृष्ठभूमि में जो परिवर्तन हुए, उनको इस प्रकार से जाना जा सकता है: नवीन फसलों का विकास, सिंचाई सुविधाओं का निर्माण, पौधों तथा पशुओं की बीमारियों के प्रति सचेतना का बढ़ना, कृषि से संबंधित दूसरे अन्य पक्षों में सुधार, कुछ ऐसी बस्तियों के आकार में वृद्धि जो ग्रामीण समुदायों के मिलन बिन्दुओं के मध्य पैदा हुई और विनिमय व्यवस्था, मेलों तथा व्यापारिक केन्द्रों की पुनः उत्पत्ति।

36.10 शब्दावली

नवीन संस्कृति का ग्रहण: नई संस्कृति को अपनाना।

माल की अदल-बदल करना (वस्तु विनिमय): एक सामान से दूसरे सामान के द्वारा विनिमय करना।

पुजारी की वृत्ति: उपहार में की गई भू-सम्पत्ति जो ब्राह्मणों आदि के अधीन हो।

ग्रहीत: लाभ प्राप्तकर्ता।

प्रज्ञा (राजपत्र): जिसके द्वारा अनुदान के अधिकारों की व्याख्या होती थी।

विदेशी वस्तु: विदेश से आई वस्तु से परिचित होना।

मुमकड़ यात्री: एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा करने वाला।

सौदागर : यात्रा पर जाकर सामान बेचने वाला।

अर्थव्यवस्था के परिवर्तन

बन्द अर्थव्यवस्था : ऐसी अर्थव्यवस्था जिसके अन्तर्गत विनिमय प्रणाली का कम से कम उपयोग होता हो और जिसका नगरीय केन्द्रों के साथ बहुत ही कम या नहीं के बराबर सम्पर्क हो।

36.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) अपने उत्तर की तुलना भाग 36.3 के सार तत्व के साथ कीजिए।
- 2) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ✓ v) ×

बोध प्रश्न 2

- 1) उपभाग 36.6.1 को देखिए।
 - 2) भाग 36.8 को देखिए।
 - 3) i) × ii) × iii) ✓ iv) × v) ✓
-

इकाई 37 समाज में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

- 37.0 उद्देश्य
- 37.1 प्रस्तावना
- 37.2 राजनीतिक और सामाजिक पदानुक्रम तथा वर्ण व्यवस्था
- 37.3 कायस्थों का विकास
- 37.4 अछूत
- 37.5 दस्तकारी और जातियां
- 37.6 वैश्यों का हास और शूद्रों के सामाजिक स्तर में बढ़ोत्तरी
- 37.7 वर्ण पदानुक्रम के विचार का प्रसार एवं रूपांतरण
- 37.8 महिलाओं की स्थिति
- 37.9 ज़मींदार और किसान
- 37.10 जातियों की संवृद्धि
 - 37.10.1 ब्राह्मण
 - 37.10.2 क्षत्रिय
 - 37.10.3 शूद्र
- 37.11 सारांश
- 37.12 शब्दावली
- 37.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

37.0 उद्देश्य

इससे पूर्व की इकाई में हमने गुप्त और विशेषकर उत्तर-गुप्त काल में अर्थव्यवस्था में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों का विवेचन किया था। इस इकाई में हम आपको समाज में हुए परिवर्तनों के विभिन्न आयामों की जानकारी से अवगत कराएंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान पाएंगे:

- उन शक्तियों के विषय में जिनके कारण वर्ण पदानुक्रम की संरचना एवं अवधारणा में मामूली बदलाव आए,
- उन प्रक्रियाओं के विषय में जो बहुत-सी नई जातियों के उदय के लिए उत्तरदायी थीं,
- उन परिस्थितियों के विषय में जिनसे अछूतों की समाज में स्थिति दयनीय हो गई, और
- ऐसी जातीय व्यवस्था के विषय में जिसने प्राचीन काल से स्पष्ट अंतर किया।

37.1 प्रस्तावना

गुप्त तथा उत्तर-गुप्त काल में हुए सामाजिक परिवर्तनों को आर्थिक परिवर्तनों के साथ संबंधित किया जा सकता है और उनका हम इकाई 36 में विवेचन कर चुके हैं। इस काल की मुख्य-मुख्य आर्थिक शक्तियां व्यापक स्तर पर भूमि-अनुदान, व्यापार का हास, वाणिज्य और नगरीय जीवन, धन की कमी, कृषि का प्रसार और समाज का बढ़ता कृषि चरित्र, उत्पादन और उपभोग की अपेक्षाकृत बंद स्थानीय इकाइयों का उद्भव थीं। इस आधार पर एक ऐसे समाज का ढांचा विकसित हुआ जिसके अंतर्गत मुख्य रूप से काफी बड़ी संख्या में शासक कुलीन ज़मींदार, बिचौलिए और बहु-संख्यक किसान थे। भूमि सम्पत्ति और सत्ता के असमान वितरण के कारण ऐसे नए सामाजिक गुटों तथा वर्गों का उदय हुआ जो वर्ण विभाजन जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की सीमाओं को पार कर गया। सामाजिक संरचना में हुए दूसरे महत्वपूर्ण परिवर्तन थे नई जातियों की उत्पत्ति एवं संवृद्धि, जाति सम्बन्धों का कठोर होना और कबीलों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना। कबिलाई लोगों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना, भूमि-अनुदान के फलस्वरूप कबिलाई क्षेत्रों में ब्राह्मणों की गतिविधियों का साधारण परिणाम न था। इसी कारणवश दूर-दराज के इलाकों में स्थानीय शाही परिवारों का उद्भव हुआ और इन स्थानीय शासक परिवारों के द्वारा भूमि-

वर्षों तक ही गई।

(अनुसूचित जातों का उलट) पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परन्तु धीरे-धीरे अनुसूचित जातों की संख्या में भी छोटी जाति की महिमा-कर्म बंधन होने वाले विवाहों की स्वीकृति प्रदान कर दी गई। परन्तु प्रतिबंधित विवाह अनुसूचित जातों की संख्या में पक्षीय वर्ग के फलस्वरूप जातीय व्यवस्था में काफी कठोरता आ गई और जात न थी और इसके फलस्वरूप संकर-जातियों की उत्पत्ति हुई, जो सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक थीं। वर्ग संकर का अर्थ था कि परस्पर-भिन्न या वर्ग/जातियों की एकता। सामान्यतः इसकी सामाजिक मान्यता

वर्ग संकर

जो भिन्न-भिन्न उत्पत्तियों से संश्लेषित थे।

फलस्वरूप नई जातियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इसी के साथ अस्पृश्यों की उत्पत्ति किया जा सकता है। शाहीनिक संस्कृति की उपनान और कबिलेवादी तथा शूद्र जातियों के पिछड़े लोगों के बीच परस्पर मिलन के तुलना में यह एकदम विपरीत स्थिति थी क्योंकि मनु के अनुसार संकर-जातियों की संख्या मात्र 61 थी। मिल जाने के फलस्वरूप संकर-जातियों की उत्पत्ति हुई। इसी की प्रारंभिक संवेदियों की सामाजिक स्थिति की सही का ग्रहण करना है कि वैश्य महिलओं के छोटी जातियों के लोगों के साथ के फलस्वरूप तथा दलितों की पृथक विशेषता ने नई जातियों के निर्माण की प्रक्रिया में मदद की। आठवीं संख्या में काफी वृद्धि हुई। दलितों का जातियों में समांतरण, व्यापार और नगरीय क्षेत्रों के पतन संख्या में बाह्य, शहरी, कानून एवं शूद्रों की प्रभावित किया। संकर-जातियों और शूद्र जातियों की गैर-उत्तर-गुण कालों की मुख्य विशेषता नई जातियों का उदय एवं प्रसार था। नई जातियों की बर्तनी

की विना मध्यकालीन स्थापना काल के ग्रहों में भी व्यक्त की गई है।

लिया गया है। इसने जन पर आधारित सामाजिक वर्गों का पुनर्निर्माण करने का प्रयास किया है। इस प्रकार शासक वर्ग का एक भाग बन गए। वर्गीकरण की **पुनर्-वर्गीकरण** में इन परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित प्रमुखशाही किमानों में राजा, नायक वीरों उपाधियों की धारण करना शुरू कर दिया। वे उच्च समाज और 9-10वीं सदियों में इनकी गति और तीव्र हो गई। 9-10वीं सदियों से, कानून, व्यापारियों और धनी भू-स्वामियों में उसके भू-स्वामित्व की क्या स्थिति थी। इन प्रवृत्तियों का प्रारंभ इस समय में हुआ और किस्मियों से संबंधित था। उसके सामाजिक कठब के साथ ही कि विभिन्न श्रेणियों के दूसरे शब्दों में, अब किसी की सामाजिक स्थिति साधारणतः इस बात पर आधारित नहीं रहे नई थी कि यह इस आधार पर सामाजिक वर्गों का निर्माण होने लगा। और यह कि किसी वर्ग विशेष तक सीमित न था।

इस काल में भूमि में समाज में विशेष महत्व प्राप्त कर लिया। भू-सम्पत्ति या किसी के अधीन किन्ती भूमि है, इस आधार पर सामाजिक वर्गों का निर्माण होने लगा। और यह कि किसी वर्ग विशेष तक सीमित न था।

होने लगा।

इससे भी अधिक, इस काल में दिन (दो बार जन्म) और शूद्रों के बीच का प्रारंभिक अंतर भी संश्लेषित न केवल उनके सामाजिक स्तरों में वृद्धि हुई बल्कि वर्ग पर आधारित विभाजित समाज भी स्थापित हुआ। शक्ति वर्ग में और शाहीन संस्कृति का ग्रहण करने वाले कबिलेवादी लोगों के शूद्र वर्ग में शामिल हो जाने से उपाधियों की धारण किया। विदेशी जातीय कबिलेवादी सरदारों के शासक वर्गों के लोगों के साथ अधिक समानता रखते थे। बाद के समय में इन लोगों ने भी टाइट, रोल वीरों आदि केंद्रित करने लगे। शाहों के इस प्रकार के गुट शाहीनिक कार्यों को करने वालों की तुलना में शासक वर्ग उत्तीर्ण अपने शाहीनिक कार्य का परिष्कार कर दिया और भूमि तथा जनता के प्रबंधन पर अपना ध्यान शासक भू-कालों का उदय एक विशेष चरित्र के साथ हुआ। शाहीनिक जमींदार इस वर्ग का एक भाग थे। को अब गए। अपनी विभिन्न सामाजिक उत्पत्तियों (वर्गों अथवा अनुसूचित वर्गों) के बावजूद सामान्यों और समाज में सकल असमान भूमि के बंटवारे में ऐसे वर्गों की सेवा किया कि वे वर्ग पर आधारित सामाजिक स्तरों वर्ग के आधार पर विभाजित समाज की भी संश्लेषित किया। नए सामाजिक गुट चार वर्गों वाली व्यवस्था में भूमि-अनुसूचितों, अद्विष्ट हुए विदेशी जमींदारों और राजनीतिक शक्ति तथा आर्थिक ताकत के गठबन्धन में

37.2 राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन तथा वर्ग व्यवस्था

शासकों आदि जैसे विभिन्न समूहों द्वारा किया जाता था।

के रूप में हुआ जिसके अंतर्गत सामाजिक विभेद का प्रतिनिधित्व किमानों, शाहों, दलितों, व्यापारियों, इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों का उद्भव एक और अधिक जाति समाज अनुसूचितों, शाही दरबारों तथा अन्य कालों में कार्य प्रदान करके शाहों की संरक्षण प्रदान किया गया।

दिया जाता तथा जिस समय के लिए कंठ अत्यधिक होता तो उनकी काम दिया जाता। इस भाँति अष्टल लोगों कृषक नहीं बन सकते थे। वर्ष में जिस समय काम कम होता तो उनकी शारीरिक परिश्रम से वंचित कर हुआ। सामान्यतः अष्टलों के पास भूमि नहीं होती थी, गाँव से बाहर की ओर उनकी बसाया जाता और वे विहीन लोगों के समुदाय के रूप में उपस्थिति, ग्रामीण समाज के अन्य लोगों के लिए आति लम्कामी सिद्ध काफी वृद्ध और अष्टलता व्यावहारिक बन गई। श्रमिकों की बर्तनी मांग और अष्टलों की शक्ति, संपत्ति पिछड़े लोगों के द्वारा बाह्यलोक व्यवस्था का विरोध, इन सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि अष्टलों की संख्या में धार्मिक अवसरों पर उनके द्वारा आयोजित आतिथ्य को स्वीकार न किया जाना तथा समय-समय पर इन की और बसा दिया गया। बाह्यता और सत्ता-समय लोगों की ओर से इन पिछड़े लोगों का निरकार और धकल दिया गया। यद्यपि यह भी हो सकता है कि उनकी भूमि के अधिकार से वंचित करके गाँव के बाहर उनके विरोध के कारण उनकी संख्या में शामिल नहीं किया गया तथा उनकी अष्टलों की स्थिति की ओर तक दिया जाता है कि उनके पिछड़ेपन तथा बाह्यलोक संस्कृति की अप्रति की प्रकिया और बाह्यवाद के बाह्यलोक तथा बौद्ध ग्रंथों का मत है कि अष्टल जातियाँ मूलतः पिछड़े हुए आदिवासियों से संबंधित थीं। यह इस काल तथा बाद के समय में अष्टलों की संख्या में किन्तनी वास्तविक वृद्धि हुई इसको बता पाना कठिन है।

प्रयोग किया गया। जलवा, ईटा, चौर, अपवित्र आदि उनके विशेष गुण बताए गए। अष्टलों के बीच भी जाति पदानुक्रम पैदा हो गया। तत्कालीन साहित्य में उनके लिए निरकारपूर्ण शब्दों का आला धा, यद्यपि सामाजिक पदानुक्रम में उसका स्तर सबसे निम्न था। यह भी बड़ी ही रोचक बात है कि पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबंधों का रोचक चित्रण किया है। **प्रायश्चित्त** का भी एक भाग अष्टलों के अंतर्गत शामिल कर दिया गया। कालिदास, पराशरिंहिर, फाहियान, बाण तथा अन्य लेखकों ने अपनी रचनाओं में उन से शिकारियों, मछुआरों, जानवरों का वध करने वाले (कसौटियों), जलवाँ और महत्तों को अष्टल श्रेणी में अष्टल हो गए बल्कि पिछड़े किसानों की भी इस स्थिति में रख दिया गया। प्रथम सहस्राब्दी ई. के आसपास बहिन सी जातियों को अष्टल श्रेणी में शामिल कर दिया गया। न केवल शिकारियों और कारीगरों के कुछ गुट लेखक या जिसने अष्टल अर्थ के लिए **अष्टल** शब्द का प्रयोग किया। गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में अन्य कर दिया तथा इनकी संख्या में वृद्धि होने लगी। गुप्त काल में धर्मशास्त्र का लेखक कात्यायन ऐसा प्रथम समय में उनकी संख्या बहिन कम थी। तीसरी सदी ई. के आसपास से अष्टल प्रथम ने और पकड़ना शुरू "अपवित्र" या अष्टल जातियों ने ईसा की प्रारंभिक सदियों में निहित स्वरूप प्राप्त कर लिया था। परन्तु उस

37.4 अष्टल

शाही और दृढ़ निश्चय वाली जाति के रूप में हुआ। प्रारंभ हो गया। 900 ई. के लगभग से इनका उद्भव बहिन से गन्धों में उच्च पदों पर आसीन एक शक्ति निष्ठा की प्रकिया पूरी हो गई। इनके विषय में सबसे पहले उल्लेख ईसा की प्रारंभिक सदियों से मिलता तथा परिवार से बाहर विवाह करने की परम्परा का अनुसरण किया जाने लगा। इस प्रकार कायस्थ जाति के के कारण उनके सामाजिक आदान-प्रदान का दायरा सिक्किने लगा एवं उनके बीच भी एक जातीय विवाह साध-साध मनीषों को काय करने के लिए उनकी भती बहिन से वर्णों से की जाने लगी और उनके व्यवसाय लगा। प्रारंभ में उच्च वर्णों के बड़े-लिखे लोगों को कायस्थ का काम करने के लिए लगाया जाता। समय के एक गुट था। परन्तु शब्द-शब्द मनीष और समुदाय के रूप में प्रमाणों की रखने वालों को कायस्थ कहा जाने प्रत्यक्ष, विनय, अक्षयविक्रिका आदि से जाना जाता था। लेखन का कार्य करने वालों का कायस्थ मान को एक लिखने वाले वर्ण के द्वारा किया जाता जिसको बहिन नामों जैसे कि कायस्थ, करण, करिका, बड़ी जाति हो गई। इसलिए भूमि प्रमाणों की आवश्यक विवरणों के साथ रखना पड़ता था। इस कठिन कार्य आवश्यक था। एक ही भूखंड या गाँव पर भिन्न-भिन्न प्रकार के अधिकारों का अस्तित्व होने से भूमि व्यवस्था भूमि के एक-एक भूखंड के प्रमाण की ठोक प्रकार रखना, इस प्रकार के झगड़ों को निपटारने के लिए समय भी भूमि विभाजन तथा ग्रामीण सीमाओं के नियम थे जिनका उल्लेख धर्मशास्त्रों में हुआ है। के साथ-साथ भूमि हस्तान्तरण के विवरणों को रखना। गुप्त काल में भूमि का बंटवारा शुरू हो गया। उस की आवश्यकता हुई जिनका कार्य था भूमि-अनुदानों का लेखन करना और राजस्व के बहिन से अन्य मामलों इस तथा अन्य जाट प्रशासनिक कार्यों के फलस्वरूप लेखन का काम करने एवं प्रमाणों को रखने वाले लोगों फलस्वरूप भूमि राजस्व तथा भूमि का हस्तान्तरण बाह्यता, धार्मिक संतानों तथा अधिकारियों को हो गया था। मनीष या कायस्थ समुदाय उस समय की सामाजिक-आर्थिक शक्तियों की उपज थे। भूमि-अनुदानों के

37.3 कायस्थों का विकास

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत की दो महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियाएँ थीं, प्रथम, कबिलेद्वारों का एक जटिल सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत किसानों में रूपांतरण और दूसरे उनका शूर वर्ग के साथ संबंधित समझना। दूसरी और, क्षत्रिय वर्ग उत्तर भारत से बाहर के क्षेत्रों में अपनी जड़ें वास्तव में गहरी न कर सका। नए स्थापित राज्यों में बहुत से शासक वर्गों ने क्षत्रिय होने का दावा प्रस्तुत किया तथा उन्होंने अपने वर्गों का सम्बन्ध पूर्ववत् तथा वन्दवश से सिद्ध करने के प्रयास किए। इसी के साथ-साथ वैश्य वर्ग इन क्षेत्रों में उचित अनुदान एवं उनकी उच्च पर प्रदान किए गए।

असम में फैल गए। इन क्षेत्रों में ब्राह्मणिक संस्कृति का प्रभाव इससे भी स्पष्ट है कि उनको इन क्षेत्रों में भूमि-विस्थापन विभिन्न दिशाओं को होने लगा था। इन सदियों में वे दक्कन, मध्य भारत, उड़ीसा, बंगाल एवं शिक्षण संस्थाओं के विकास में ब्राह्मणीकरण स्पष्ट दिखाई देता है। पांचवी-छठी सदियों से ब्राह्मणों का ब्राह्मणिक बस्तियाँ दक्षिण भारत में पल्लव एवं उत्तर-पल्लव कालों में अस्तित्व में आयीं। पल्लव राज्य में यद्यपि कुछ ब्राह्मण एवं ब्राह्मणिक विचार दक्षिण में पहले ही फैल चुके थे, परन्तु अग्रहार के नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मणिक समाज के आधार पर पहले से बसे हुए कुछ कृषि समाज के साथ घुलमिल गए।

प्रतिपत्तिवर्तित किया। इन नए क्षेत्रों के स्थानीय कबिलेद्वारों ने ब्राह्मणिक संस्कृति को ग्रहण कर लिया तथा फलस्वरूप ब्राह्मण भी देश के अन्य भागों में फैल गए। उन्होंने स्थानीय पुजायी मूर्तियों पर ब्राह्मणों के स्वर को अन्य क्षेत्रों में फैला तब इसके मूलभूत रूप में काफी अंतर आ गया। पांचवी-छठी सदियों से भूमि-अनुदानों के और समाज पर इसकी पकड़ और मजबूत हो गई। परन्तु वर्ग पर आधारित समाज विभाजन का विचार जब में वार-स्त्रीय वर्ग व्यवस्था की ऐतिहासिक जड़ें थीं क्योंकि समय के साथ-साथ इसका वहां पर विकास हुआ। वार-स्त्रीय वर्ग व्यवस्था का प्रचलन पूर्वी, दक्कन, मध्य एवं दक्षिण भारत के भागों में नहीं था। उत्तरी-भारत उत्तर भारत के मांथ्य प्रदेश से बाहर जब वर्ग व्यवस्था का प्रसार हुआ तो इसके अंतर्गत भी संशोधन हुए।

37.7 वर्ग पदानुक्रम के विचार का प्रसार एवं रूपांतरण

उत्तर-मध्य काल में भारत के विदेश व्यापार की पराकाष्ठा के दौरान वैश्यों की पहचान व्यवसायों तथा नगरी (अवदाता) कहा गया है। उत्तर-मध्य काल में भारत के विदेश व्यापार की पराकाष्ठा के दौरान वैश्यों की पहचान व्यवसायों तथा नगरी (अवदाता) कहा गया है। उत्तर-मध्य काल में भारत के विदेश व्यापार की पराकाष्ठा के दौरान वैश्यों की पहचान व्यवसायों तथा नगरी (अवदाता) कहा गया है।

वर्तमान में उल्लेख है कि खेती करना शूद्रों का कर्तव्य था। **स्कन्द पुराण** में शूद्रों को अनजान का देने वाला स्वीकार करना पड़ा। कुछ आधार-संहिता की पुस्तकों तथा सान्नी सदी के चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के यात्रा तथा किसानों के रूप में हुआ। नगरों के पतन के कारण शूद्र कारीगरों की खेती के काम को मजबूरन परिवर्तन हुआ। शूद्र अब केवल दास और सेवक मात्र नहीं रह गए थे। उनका उदक कारीगरों, बटुईदारों नीचे के स्तर पर थे, पतन शूद्रों के स्तर तक हुआ। इस प्रकार दो नीचे के वर्गों की संघर्ष स्थिति में सामाजिक तथा आर्थिक स्तर में बहोतरी हुई। वैश्यों के विशेषकर उस भाग का, जो अपने-वर्ग में सबसे व्यवस्था में परिवर्तन होना शुरू हुआ। शूद्रों के एक भाग का कुछ के साथ सम्बन्ध कायम होने के बाद उनके धर्मशास्त्रों और इसी तरह के अन्य साहित्य में उल्लेख है कि वारी वर्गों के अंतर्गत सामाजिक

37.6 वैश्यों का ह्रास और शूद्रों के सामाजिक स्तर में बहोतरी

लिख रहे हैं, बहुत से कारीगरों के समूहों ने धीरे-धीरे अपनी स्थिति को खो दिया। काल में उनमें से कई की जैसे जुलाहों की सामाजिक स्थिति उच्च थी। इस प्रकार, जिस युग के विषय में हम निर्माण करने वाले, छहर, धोबी और अन्य की स्थिति भी अछूतों वैसे ही गई। उदाहरण के लिए, गुप्त दुई कारीगरों के भी कुछ वर्ग अछूत बन गए। दसवीं सदी के अंत तक जुलाहे, रंगकार, दर्जी, नई, जूतों का नपिता (नई) आदि की उत्पत्ति विभिन्न दस्तकारियों (जिनका अनुसरण विभिन्न मूर्तों द्वारा किया जाता था) से सम्भवा जा सकता है। बहुत सी जातियाँ जैसे कि खूर्णकार (सुनार), मालकार (माला बनाने वाला), चित्रकार,

जीविकापान भी निश्चित हो जाती थी।
 वातावरण को उत्पन्न करते थे एवं जमींदारों का सैन्य शक्ति के लिए सम्मान भी तथा इनसे किसानों की
 पूर्वाह्न में किलों की संख्या एवं उनका महत्व काफी बढ़ गया। किलों एवं विशाल भवनों के निर्माण भू-के
 आडम्बरपूर्ण निर्माणों के लिए परिश्रम करना होता था। इस संदर्भ में ज्ञान तथा रोचकपूर्ण है कि 1000 ई. के
 उत्पादन के लिए बेगार करना होती थी और इसी के साथ किलों, मंदिरों तथा अनुदान प्राप्तकर्ताओं के
 मालिक न थे। उनके परिश्रम का एक बड़ा भाग जमींदारों की इच्छा पर था। इसके अतिरिक्त, उसकी
 दिए गए और इनसे से किसानों का भी भूमि पर स्वतंत्र स्वामित्व न था। किसान लोग अपने परिश्रम के फल के
 विभिन्न प्रकार से किये जाते थे। उनकी भूमि जोतने वाला, निर्भर किसान, बटाईदार, खेत मजदूर आदि नाम
 से सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि उनका भूमि पर निश्चय से कोई सम्बन्ध न था। उनका वर्गीकरण
 शिकी, अर्थात्, आर्थिक, कृषि और भूमि कवच आदि अन्य नामों से पहचाना जाता था। इन सब नामों
 किसान वर्ग भी मध्य में कोई एक रूप समुदाय न था। उनकी भी कृषक, कृषि वाला, किसान, क्षेत्राधीनी

हो गये थे किसानों का शोषण किया।
 भी निवृत्त करते थे। इस प्रकार के अधिकारों के साथ-साथ आर्थिक प्रभुत्व होने से जमींदारों ने प्रभावशाली
 अपनाया (दशापराध) के लिए लोगों की दृष्टि करने का अधिकार मिल गया था। वे दीवानी के मामलों का
 प्रान्तकर्ताओं की परिचार, अतिरिक्त संपत्ति तथा अतिरिक्त के विच्छेद किए गए अपराधों सहित इस
 इनका विवरण दिया गया है। करने के अधिकार प्राप्त थे। भूमि-अनुदान अधिकार पत्रों के द्वारा दान
 न था। यहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि उनकी विशेष प्रकार के एवं बृद्धि (इससे पूर्व की इकाई में
 आधिकार प्राप्त थे। इन उपाधियों से यह भी प्रकट होता है कि उनका वास्तविक खेती कार्यों से कोई सम्बन्ध
 बनाए रखने के लिए जिन उपाधियों का प्रयोग करते थे उनसे स्पष्ट है कि भू-संपत्ति पर उनकी उच्च
 वे इस प्रकार की भाँती मरकम उपाधियों की धारण करती थी। जमींदार लोग भूमि पर अपने प्रभुत्व को स्पष्ट करने के लिए
 मण्डलेश्वर आदि की भी सन्निहित किया गया। भूमि पर अपने स्वामित्व और प्रभुत्व को स्पष्ट करने के लिए
 से जंग प्रान्तकर्ताओं के लिए किया गया। जमींदारों को उच्च वर्ग में गणना, राजा, सामन्त, महासामन्त,
 जमींदारों के भी कई वर्ग थे। भूमि, भोक्ता, भू-संपत्ति, महासामन्त, बृहदभोगी आदि शब्दों का प्रयोग भूमि
 यह पहले ही बताया जा चुका है कि इस समय की कृषि व्यवस्था में किसानों से भिन्नता बनाए रखने के लिए

37.9 जमींदार और किसान

रूप में हुई और यह वैयक्तिक व्यवस्था भी पूर्ण-प्रधान समाज की विजय का प्रतीक था।
 महत्पूर्ण परिवर्तन था क्योंकि इसकी अतिम परिणति उनके वैयक्तिक धर में उनके अधिकारों की समाप्ति के
 गई। विवाह के पश्चात् महिलाओं के गौरव में परिवर्तन का प्रारंभ भी पावती सदी ई. से हो गया। यह एक
 उद्योगों में भाग लेने से वंचित कर दिया गया। इसी काल में सती प्रथा को भी सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो
 संयुक्त रूप से संदर्भों का प्रयोग महिलाओं की समाज में वृद्धि का स्पष्ट करता है। उनकी बढ़ते से यहाँ एवं
 रखने का अधिकार नहीं था। बृहत् संहिता जैसे समकालीन साहित्यिक ग्रंथों में महिलाओं एवं श्रद्धों के लिए
 नहीं था क्योंकि महिलाओं की अपनी अतिरिक्त संपत्ति जैसे जेवर, आभूषण एवं उपहारों से अधिक को
 (जिसका साहित्यिक अर्थ है महिलाओं का धन) के प्रावधानों से स्पष्ट है कि इसका अधिक महत्व इसलिए
 वंचित कर दिया गया। परन्तु विधवाओं के मामले में संपत्ति अधिकारों में कुछ सुधार हुआ।
 दिया गया जिससे उनकी सामाजिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव हुआ। सामान्यतः उनकी संपत्ति अधिकार से
 महिलाओं के लिए औपचारिक शिक्षा को मना कर दिया गया। महिला और संपत्ति को एक ही श्रेणी में कर
 महिलाओं की कम आय में या जीवन अवस्था से पूर्व विवाह करने की प्राथमिकता को उल्लेख हुआ है।
 इस काल के दौरान समाज में महिलाओं की स्थिति में क्रमशः पतन हुआ। आचार-संहिता पुस्तकों में

37.8 महिलाओं की स्थिति

न हुआ क्योंकि इस समय तक दककन, मध्य भारत, पूर्वी भारत और दक्षिण में ब्राह्मणवाद का नेत्री के साथ
 केवल तब-तब प्रकट होते थे जब-जब आर्थिक सम्पन्नता, आपार एवं गणराज्य की प्रगति होती थी। फिर भी
 के रूप में ही हो पाया। शक्तियों की एक स्थायी एवं स्पष्ट समुदाय के रूप में उन्हें न जग सकी और वैश्य भी
 इस प्रकार, गौरव प्रदश से बाहर के क्षेत्रों में आपक रूप से समाज की वर्गीकरण केवल श्रेणियों तथा श्रद्धों
 केवल हुआ एवं इसलिए इन क्षेत्रों में श्रद्धों तथा वैश्यों के बीच का मनभेद काफी कम हो गया।

शिक्षणों के बीच जाति संघर्ष का कारण स्थानीय कबीलों के बीच से शासक घरानों का उदय तथा विदेशी जातीय गुटों का राजनीतिक शक्ति के साथ समाज की मुख्य धारा में मिला जाना था। विदेशी जातीय गुटों में से वैदिकों के पुजारियों, शाकों, पार्थिवों, हूणों आदि की वर्ण व्यवस्था में समाहित करते हुए उनका दृष्टीक्षेपों को क्षत्रिय बना दिया गया। यह अवधारणा कि केवल क्षत्रिय ही शासन कर सकते हैं, इसके कारण नए शासक घरानों को क्षत्रियवाद हेतु शाखाओं का समर्थन प्राप्त करने के लिए मजबूर होना पड़ा जिससे कि वे अपने शासन के लिए लोकप्रिय स्वीकृति एवं वैधता पा सकें। क्षत्रिय जातियों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि एवं वही-वही सदियों से उस समय से होनी प्रारम्भ हुई जबकि बहुत से कबीलों के सरदारों को उन शाखाओं की प्राप्ति के द्वारा 'हिन्दुत्व' स्थापित हुआ जिनकी उत्तरीन संरक्षण दिया और वैदिक बलि यज्ञों का आयोजन किया। उत्तर-गुप्त काल में बहुत से शासक वंशों का उद्भव छोटी जातियों से हुआ था और धीरे-धीरे

37.10.2 क्षत्रिय

के अंदर ही एक विशेष वर्ग बना लिया। यही प्रक्रिया क्षत्रियों के लिए भी सत्य थी। शाखा राजनीतिक शक्ति के साथ एतद्विषय रूप से जुड़े थे तथा राज्य में उच्च पदों पर आसीन होते ही उनका फिर उसके बाद स्थानीय पुजारी समुदायों को शाखा की मान्यता प्राप्त होने में कोई कठिनाई न रही। जो शाखाओं के बीच विभाजन को और गहरा किया। जहां एक बार वर्ण के विचार को स्वीकृति प्राप्त हो गई। अपने पुजारी पुजारियों को बनाए रखा और उनकी नीचे शाखाओं के रूप में मान्यता हो जाने के बादवर्द्ध भी उन्होंने एक और आधार प्राप्त किया। बहुत से कबीलों का जातियों में स्थापित हो जाने के बादवर्द्ध भी उन्होंने शाखा आदि के आधार पर अपनी पहचान को बनाए रखा। उनकी वंशानुगत पहचान ने भिन्नताओं के लिए और तेज हो गई। विस्थापित शाखाओं ने अपनी उत्पत्ति के स्थान, उनके द्वारा अनुसूचित वैदिक ज्ञान की क्षमता का विस्थापना हुआ जिसके कारण वर्ण के अंतर्गत जातियों और उप-जातियों के निर्माण की प्रक्रिया में शाखा स्वयं शारीरिक परिश्रम न करते थे। भूमि-अनुदानों का भाग करने के लिए शाखाओं का बहुत से शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता न कर सकें, उन शाखाओं को **क्षत्रिय अश्वार मण्डल** पतित समझने लगे तथा सेवाओं का 'व्यापारीकरण' किया, जो स्थानीय निवासियों के समर्थक में आए तथा उनमें जो पूर्णतः शाखाओं के बीच जिन जातियों का उद्भव हुआ उनकी संख्या भी काफी थी। जिन शाखाओं में अपनी धार्मिक

37.10.1 शाखा

इस काल के दौरान की जाति व्यवस्था की कुछ विशेषताओं का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। यह स्पष्ट किया गया था कि इस समय में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, वह था जातियों की संख्या में परिवर्द्धि होना। इस परिवर्द्धन के कारण शाखाओं, क्षत्रियों (बाद में राजपूतों), शूद्रों और अशूद्रों पर भी प्रभाव पड़ा। जिन वर्णों का अस्तित्व था वे जातियों में टूट गए और ऐसे कबीले जो जातियों में स्थापित हो चुके थे इनमें सम्मिलित हो गए। जैसे-जैसे शाखाओं का प्रसार हुआ जैसे-जैसे वर्ण व्यवस्था के अंदर मतभेद गहरे होते गए। प्रत्येक वर्ण में प्रधानकम पैदा हो गए क्योंकि विभिन्न स्तरों पर सांस्कृतिक विकास के कारण जनता और समुदायों के बहुत से गुटों के मिलन और उनके द्वारा शाखाओं का संकलन की अपना लिया गया। सम्पत्ति तथा राजनीतिक शक्ति के असमान विभाजन ने इस काल में जाति के भेदभावों को और बढ़ाया। एक ही वर्ण के अंतर्गत बहुत-सी जातियों का संयोग हो गया प्रत्येक पहले के कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं कि एक ही समान समुदाय कई वर्णों और जातियों में टूट गए। इस उपलक्ष्य में सबसे अच्छा उदाहरण आभीर कबीले का है, जो आभीर शाखाओं, आभीर क्षत्रियों तथा आभीर शूद्रों में बंट गया।

37.10 जातियों की संघर्ष

कृषि अव्यवस्था के कारण बृहत्तम मजदूरी का प्रसार और महत्व और भी बढ़ गया। की परम्परा सम्पूर्ण भारत में फैल चुकी थी। उत्तर-गुप्त काल में स्थानीयता की विशेषता के साथ निश्चित उपलब्ध होता है जिसकी रचना आठवीं सदी के आसपास की गई। इस समय के आते-आते बृहत्तम मजदूरी अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए बृहत्तम मजदूरी करने की परम्परा का सबसे पहले प्रमाण **महाराज पुराण** से मजदूर रखने का अधिकार था। छठी-सातवीं सदियों में गांवों के मुखियाओं तथा छोटे अधिकारियों को भी मजदूर रूप से लाभ प्राप्त करने वालों को गुजराने, महाराज, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक के भागों में महाराज, गुजरात तथा मालवा में किसानों के साथ-साथ करीबनों को भी बृहत्तम मजदूरी के लिए रखा जाता था। धार्मिक रूप से लाभ प्राप्त करने वालों को गुजराने, महाराज, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक के भागों में चौकी सदी से सातवीं सदी तक के काल में बृहत्तम मजदूरी या **निश्चि** का प्रारंभ हो चुका था। कर्नाटक,

रा उनका शोषण होने लगा। इससे पूर्व की इकाई में वर्णित आर्थिक परिवर्तनों ने इन सामाजिक परिवर्तनों
लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

अज्ञान में बर्बाद।

7.12 शब्दावली

ई संस्कृति को अपनाना : यहां पर इसका प्रयोग ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाने के संदर्भ में किया गया

जवासी : स्वदेशी : देशवासी : प्राचीनतमा।

हभोजन करना : आपसी लाभ के लिए एक साथ बैठकर खाना-पीना।

ज्जान आधार वाली जाति : इसका प्रयोग प्रारंभिक कृषि समाज की बस्तियों के लिए किया गया जिनके
दस्यों का वर्गीकरण जातियों के आधार पर किया गया।

जातीय विवाह : एक ही जाति के अंदर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना।

सर्जातीय विवाह : दूसरी जाति में विवाह करना।

कुल/प्रभुत्व : वे परिवार जिनका संचालन पैतृक अधिकारों के अनुरूप होता है।

7.13 बौध प्रश्नों के उत्तर

अ प्रश्न 1

1. आपको अपने उत्तर में मुख्य आर्थिक परिवर्तनों, नए सामाजिक गुटों का उद्भव, नई जातियों की
संवृद्धि, अनुष्ठान तथा गुटों के वास्तविक स्तर के बीच विरोधाभास आदि लिखना चाहिये। भाग 37.1
और 37.2 देखिए।
2. i) ✓ ii) × iii) ✓
3. उपभाग 37.2.1 देखिए।

ब प्रश्न 2

1. आपको अपने उत्तर में कृषि आधार का प्रसार, व्यापार एवं शहरी व्यवसायों के हास को शामिल करना
चाहिए। भाग 37.6 देखिए।
2. भाग 37.8 देखिए।
3. भाग 37.10, उपभाग 37.10.1, 37.10.2 और 37.10.3 देखिए।

देश के अधिकतर भाग पर राज्यों का ही शासन था। कुछ सीमान्त क्षेत्रों में गाँवों (कबीलाई गोलान्त) की

38.2 राजा

जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं उस पर उत्तर में गुप्त तथा पृथ्वीराज, दक्कन में वाकाटक, कच्छ एवं बादामी के चार्कव्य और दक्षिण के आंध्र तथा तमिलनाडु में पल्लवों का शासन रहा। इन सबके अतिरिक्त निहित रूप से कुछ छोटे राज्य एवं सरदारों के प्रभाव क्षेत्र देश के बहुत से भागों में विद्यमान थे। इस युग की राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए अभिलेख, धर्मशास्त्र साहित्य, बाण की रचना हर्षवर्धन, धोनी यात्रियों काहिथान एवं खेन-संग के यात्रा वृत्तान्त आदि इस काल के मुख्य स्रोत हैं। इस काल की राजनीतिक व्यवस्था के लिए सामान्यतः यह कहा जाता है कि उत्तराधिकारी राजतन्त्रों का छोटे क्षेत्रों पर शासन रहा परन्तु उनमें से एक या दो राजतन्त्रों ने एक व्यापक क्षेत्र पर अपने सम्पूर्ण क्षेत्रों को स्थानित किया। उदाहरण के लिए, गुप्त शासकों के (300 ई. से 500 ई. तक) तथा हर्ष के (सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध में) नियन्त्रण में सामान्यतः एक विशाल क्षेत्र था। उनके राजनीतिक इतिहास का विवरण खण्ड 8 में पहले ही किया जा चुका है। इस इकाई में हम 300 ई. से 700 ई. तक के काल के राजनीतिक संगठन की मुख्य विशेषताओं का विवेचन करेंगे। हम यह भी दिखाने का प्रयास करेंगे कि इन विशेषताओं ने पहले के युग के राजनीतिक संगठन में परिवर्तन को कैसे स्पष्ट किया और इसी प्रकार के परिवर्तन अन्य क्षेत्रों में भी हुए जैसे कि इस समय में देश के राजनीतिक संगठन में भी अति महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे।

38.1 प्रस्तावना

- राजनीतिक व्यवस्था या राजनीतिक संगठन का चित्रण, और
- पूर्व राजनीतिक व्यवस्था और इस काल की राजनीतिक व्यवस्था के बीच अंतर, और
- उन कारणों की जिनके आधार पर इतिहासकार इस काल के राजनीतिक संगठन का चित्रण सामंतीय मानते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बताना सकते हैं:

38.0 उद्देश्य

- 38.0 उद्देश्य
- 38.1 प्रस्तावना
- 38.2 राजा
- 38.3 नीकरशाही
- 38.4 सेना
- 38.5 प्रशासनिक विभाजन
- 38.6 सामंत
- 38.7 कर प्रणाली
- 38.8 न्याय व्यवस्था
- 38.9 सारंग
- 38.10 शब्दावली
- 38.11 बाह्य प्रश्नों के उत्तर

इकाई की कपरेखा

इकाई 38 राजनीतिक व्यवस्था की संरचना : सामंती, महासामंती, और शासकों तथा अधिकारियों के अन्य वर्ग

आंतरिक शांति रखने तथा आक्रमण से सुरक्षा के लिए लगातार या स्थायी रूप से सेना रखना इस युग की मुख्य विशेषता थी। जैसा कि ऊपर बताया गया कि उस समय में भी सेना के बढ़ते से उस आधिकारी के और सेना इन आधिकारियों के अधीन होती थी। कुछ सेना इस युग की सेना का मुख्य अंग होती थी। समूह तैय्य पण्डित जैसे दक्षिण के राज्यों में नौसेना भी होती थी। इस युग की सेना में रथों का प्रचलन महत्वपूर्ण नहीं था। केन्द्रीय शाही सेना का उपभोग सामान्यों की सेना होती थी।

38.4 सेना

इस काल के प्रारम्भ में प्रशासनिक आधिकारियों की भूमिगत नकद किया जाता था और बाद में एक निश्चित क्षेत्र का राजस्व वे प्राप्त करने लगे और इसलिए उनकी भूमिका और भागीदारी कहा जाने लगा। यह क्षेत्र से जान हुआ है जिसके अनुसार इस प्रकार के आधिकारियों के विकसित गाँव बालों ने वर्ष से शिक्षादाता की। वे पर बाद में धीरे-धीरे जैसे जैसे कारणावधि राजा का प्रमुख कर्मचारी हो गया।

इसके आतिरिक्त गुप्त सरकार के अन्तर्गत आधिकारियों का एक वर्ग था जिसकी कुमारमाय के नाम से जाना जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकार अधिभारियों की नियुक्ति इस वर्ग से की जाती थी और इसलिए कुमारमायों की अन्य बढ़ते से पती जैसे कि संहिताशाहिका, इन्द्रनायक, महाबलविष्णु आदि पर भी नियुक्त किया जाता। उनमें कुछ प्रमुख रूप से राजा के नियन्त्रण में होते थे और उनमें से कुछ राजकुमारों के सेवकों तथा प्रांतीय सूबेदारों के रूप में कार्य करते थे। उपायिका के नाम से पुकारे जाने वाले आधिकारियों के अधीन एक प्रशासनिक मण्डल मुक्ति होता था। आधुनिक नौकरशाही का एक संरक्षक था जो विषयवृत्ति के समान था तथा गाँव से उस स्तर पर कार्य करता था और वह ग्राम तथा मुक्ति के मध्य एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक संयुक्त था।

मौर्य काल की तुलना में, इस काल में राजा की सलाह देने के लिये किसी मन्त्रीपरिषद का अस्तित्व था इसके बाद के मण्डल प्रमाण नहीं है। परन्तु फिर भी कुछ उच्च आधिकारियों इस समय में भी थे जिनकी मन्त्री कहा जाता था। इसके उच्च आधिकारी थे संहिताशाहिका, यह विदेशी मामलों, कुछ एवं शांति का मन्त्री था। महाबलविष्णु एवं महारुद्रनायक वे दोनों सेना के उच्च आधिकारी थे। कभी-कभी एक समय में एक ही व्यक्ति एक से अधिक पदों पर पदस्थ होता था। उदाहरण के लिये, हरिवंश जो समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति का रचियता था संहिताशाहिका, होने के साथ-साथ महारुद्रनायक भी था।

38.3 नौकरशाही

राजा का पद धीरे-धीरे अधिकार क्षेत्र के विस्तार के सिद्धान्त के अनुसार ही तब किया जाता था जिसका तात्पर्य है कि सिंहासन पर राजा का जोड़ पूरा हो जाता है परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी थे। कभी-कभी राजा का निर्वाचन कुलीनों और मन्त्रियों के द्वारा होता था। सरकार का प्रमुख होने के कारण राजा अपने प्रदेश की सभी प्रशासनिक गतिविधियों का निरीक्षण करता था। वह सर्वोच्च न्यायाधीश था और सामान्यतः कुछ के मैदानों में अपनी सेना का नेतृत्व करता था।

अपवाद के रूप में कुछ ऐसी गतिधियों के नाम भी मिलते हैं जो शासन करती थीं। इनमें वाकटक रानी प्रभावती का नाम लिया जा सकता है जो गुप्त शासकों से संबंधित थी और बाद में काश्मीर की रानी विदेही थी। सामान्यतः गतिधियाँ पुष्पभूमि में ही रहती थीं।

इसके अन्दर राज्य की एक संरक्षक तथा रक्षक की अवधारणा भी निहित थी। वे कर्तव्य, वकालत, इत्यादि एवं गुप्त गतिधियों का सिद्धान्त प्रधानता की प्राप्ति कर गया था परन्तु लोकपाल कहा जाता है क्योंकि यहाँ प्रधान दिशाओं के संरक्षकों पर लोकपालों के नाम से लिखा है अन्य शोर जैसी उपाधियों की धारण करते थे। जिसका तात्पर्य है, "यहाँ पर देवताओं का धारा"। उसकी पवित्रता काल में देवी अधिकार सिद्धान्त का प्रचलन ही गया। इस सिद्धान्त की वनायें रखने के लिये राजा पृथ्वीवल्कलभ परकम उपाधियों की धारण करने लगे जिनसे अन्य छोटे शासकों पर उनकी सर्वोच्चता स्पष्ट होती है। इस राज्य धीरे-धीरे राजतन्त्रों में परिवर्तित हो गया। राजा अब परममहेश्वर, राजाधिरा, परमपुत्रिक जैसी शीर्ष एवं श्रेष्ठ, मध्य भारत के आभीर आदि का नाम फिर कभी भी सुनायी न दिया। कुछ कवीलाई सरदारों के संबलन करने के बाद वे सभी कवीलाई गुणवत्ता राजनैतिक दृश्य से मायब हो गये। इस प्रकार पंचाल में महारक्षक कायम भी चौथी सदी ई. के प्रारम्भ में समुद्रगुप्त के द्वारा उत्तर भारत में सैनिक अभियान का

राजनीतिक व्यवस्था की संरक्षण, शासक, और शासकों तथा आधिकारियों के अन्य वर्ग

पहले की तुलना में इस समय स्पष्ट व्यवस्था काफ़ी विकसित हो गई थी। इस काल में ही विधि नियमों तथा

38.8 स्पष्ट व्यवस्था

सरकार को अपना अधिकतम राजस्व कर प्रणाली के द्वारा प्राप्त होता था। भोग, भोग आदि नाम से पुकारे जाने वाले भूमि कर ही मुख्य कर थे और सदी दर सदी भूमि कर में वृद्धि होती रही। इस काल में व्यापार तथा वाणिज्य के पतन का कारण व्यापारिक करों की प्रमुखता नहीं पायी जाती। गाँवों के स्थानीय लोगों को घर एवं भोजन उपलब्ध करके अनुग्रहीत किया जाता था। यह बात विचारणीय है कि जिन स्थानों पर पुजारियों और अधिकारियों की भूमि-अनुदान दिये गये उन स्थानों से सरकार को प्राप्त होने वाले राजस्व में काफ़ी कमी आयी।

38.7 कर प्रणाली

यह सामन्तीय प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती थी। कुछ इतिहासकारों ने निष्कर्ष निकाला है कि गुप्त काल से जिस प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था का जन्म हुआ है उनकी स्वायत्तता की पुष्टि होती थी। राजनैतिक व्यवस्था में इन सब विशेषताओं के उदय हो जाने पर को धारण किया जिसको पंचमहाशब्द कहा गया। यद्यपि सामन्त तथा महासामन्त उपाधियों की धारण करने महासामन्त होती थी परन्तु उपाधियाँ धारण करने लगीं। एक सामन्त ने पाँच शब्दों की एक विशेष उपाधि ही सामन्त बन गये। इसके फलस्वरूप हम देखते हैं कि सातवीं सदी ई. में इस प्रकार के अधिकारीगण स्वभाविक ही था कि इस प्रकार के अनुदान प्राप्त करने वाले राजा से लगाना स्वतन्त्र हो गये और वे स्वयं करती। अनुदान में दिये गये क्षेत्रों को राजा की सेनाओं के प्रवेश से भी मुक्त कर दिया जाता। यह था बल्कि इसके साथ-साथ लोगों पर कर लगाने, अपराधियों को दण्ड आदि देने के अधिकारों को भी प्रदान करती। राजा भूमि-अनुदान ही नहीं प्रदान करती। सामान्यतः राजा भूमि-अनुदान ही नहीं प्रदान करती। सामान्यतः राजा भूमि-अनुदान दिये गये जिसके कारण विकेन्द्रीकरण केन्द्रिय भागों के प्रशासन का संयोजन राजा के अधिकारियों के द्वारा किया जाता था।

को उनके अपने अपने क्षेत्रों में उस प्रशासन को चलाने के लिए छोड़ दिया जाता। वास्तव में गुप्त साम्राज्य के आदिमियों की भुक्त उरुसके प्रति कुतवता अन्त करती। इन सामानों तथा कुतवताओं के बदले में सामन्तों वह उनकी राजपत्र भी देता। युद्ध के समय में ये सहायक शासक राजा की सेना में लड़ने के लिये अपने बदले में राजा उनके अपने क्षेत्र में उनके शासन करने के अधिकार को मान्यता प्रदान करता और इसके लिये भी किया। वे स्वयं राजा के दरबार में उपस्थित होकर उरुसको प्रसन्न करने के लिए सामान अन्त करती। इसके राजा की नगरना भी ट करती थी। उनमें से कुछ ने अपनी पुत्रियों का विवाह राजा के साथ उपहार के रूप में भी राजा का सहायक शासक बना दिया गया था। वे सामन्तीय शासक ही गये जिससे कि वे समय-समय पर उनकी अपने अर्थीन कर लिया। इन क्षेत्रों के कुछ ऐसे शासकों को जो गुप्त साम्राज्य को सीमाओं पर स्थित की महत्वपूर्ण विशेषता : 1. हम पहले ही बता चुके हैं कि समुद्रगुप्त ने बड़े क्षेत्रों को विजयी किया और अर्द्ध रूप से स्वतन्त्र स्थानीय सरदारों को सामन्त कहा जाता और ये सामन्त इस युग की राजनैतिक व्यवस्था

38.6 सामन्त

अपने संगठन (श्रीगण) होते थे और वे अपने इन संगठनों का प्रशासन स्वयं चलाते थे। बड़े जंग गाँव के मामलों में आदिम भूमिका अदा करते थे। नगरों या कस्बों में दस्तकारों तथा व्यापारियों के जाल और वे प्रशासनिक कार्यों में आदिम भूमिका अदा करते। गाँव में एक मुखिया होता और गाँव के बड़े था और जो ग्राम से ऊपर होता था। विषय के अधिकारियों को (या स्थानीय नाकवर लोग) विषयकित कहा विषय को राष्ट्र भी कहा जाता था। पूर्वी भारत में विषयों को भी विभिन्न विधियों में विभाजित किया गया प्रशासनिक मण्डल विषय होता था और प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होते थे। कुछ विशेष क्षेत्रों में को भूमि कहा जाता था। कभी-कभी राजकुमार इस पर नियुक्त किये जाते थे। भूमि से आगे देश का प्रशासन मुख्या रूप से चलाने के लिए उसकी कई मण्डलों में विभक्त किया गया। सबसे उच्च इकाई

38.5 प्रशासनिक विभाजन

लेकिन यह गुप्त साम्राज्य और दूसरे समकालीन राज्यों के विषय में सत्य नहीं था और वहाँ पर बहुत सी बातें सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों पर नियन्त्रण करने के लिये काफी बड़ी संख्या में उच्च अधिकारी थे।
 को नाम मात्र की मान्यता प्रदान करते थे। परन्तु मौर्य सरकार के पास साम्राज्य के बड़े भाग में प्रत्येक केंद्रीय भाग से बाहर वाले क्षेत्रों में सामान्य सरदारों के अपने प्रशासनिक नियम थे और वे राजा की शक्तियों प्रभावशाली शक्तियाँ तथा नियन्त्रण नहीं रखती थी।

के साथ की जाती है तो हम देखते हैं कि इस काल में राजा की सरकार अपने संपूर्ण क्षेत्र पर उस प्रकार की कर प्रणाली विशेषकर राज्य के केंद्रीय भाग में लगा थी। परन्तु जब इसकी तुलना गुलना मौर्य राजनैतिक व्यवस्था या राज्य के क्षेत्र का एक स्थायी स्तर पर विभाजन किया जाना एक स्थायी सेना और एक राजस्व व्यवस्था या राजनैतिक व्यवस्था की नहीं देखते। परन्तु इन सब में कुछ सामान्य विशेषताएँ थीं प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए सी क्षमता बना सकते हैं। परन्तु इसके बावजूद भी इस काल में भारत के सभी राज्यों में हम एक समान उपयुक्त विवरण के आधार पर हम 300 ई. से 700 ई. तक की प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था की एक स्पष्ट

38.9 सारांश

.....

.....

.....

.....

3) राजनैतिक व्यवस्था में सामन्तों के योगदान पर पांच पंक्तियाँ लिखें।

v) न्याय पूर्ण विभाजन पर आधारित था।

iv) पत्तों के पास नीचेना नहीं थी।

iii) इस काल के दौरान राजा भारी भरकम उपहारों की धारण करते थे।

ii) भूमि सबसे छोटा प्रशासनिक विभाजन था।

i) सामन्त अपनी स्वयं की सेना को बनाकर रखते थे।

2) निम्नलिखित कथनों पर विह्वल लगाकर बताइये कौन सा ठीक (✓) या गलत (×) है:

.....

.....

.....

.....

भिवताओं का विवरण दीजिये।

1) मौर्य राजनैतिक व्यवस्था एवं 300 ई. से 700 ई. तक की राजनैतिक व्यवस्था के बीच मुख्य

दीर्घ प्रश्न 1

संहिताओं का संकलन हुआ और धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से वैधानिक मामलों पर लिखा गया।
 उस समय में करण, अथकरण, धर्मसैन आदि के नाम से अलग-अलग अदालतें थीं। दीवानी तथा फौजदारी मामलों में एक दूसरे से स्पष्ट विभाजन किया गया था। संपत्ति तथा उत्तराधिकार से संबंधित कानून स्पष्ट थे। परन्तु न्याय समाज के वर्ण विभाजन पर आधारित था। एक ही समाज अपराध के लिये उच्च वर्ण से या उच्च जाति से संबंधित अपराधी को छोटे वर्ण या छोटी जाति से जुड़े अपराधी की अपेक्षा काफी कम दण्ड दिया जाता था। धर्मशास्त्रों में भी यह व्यवस्था की गई थी कि जब भी न्याय किया जाये तो उस समय विभिन्न शक्तियों तथा जातियों की परम्पराओं और स्थानीय परिपाटियों को ध्यान में रखा जाए।

राजनैतिक व्यवस्था की संरचना, सामन्तों, पट्टसालों, और शासकों तथा अधिकारियों के बीच का

राज्य के नियन्त्रण से बाहर थीं। उदाहरण के लिए, मौर्य राज्य के अन्तर्गत दस्तकारी तथा व्यापारिक संगठनों (श्रेणियों) को सरकार के नियन्त्रण में रखा गया था परन्तु गुप्त काल में यह करीब-करीब स्वायत्त रूप से काम करते थे। जो नियम या कानून प्रत्येक श्रेणी से सम्बन्धित थे उनको भी गुप्त काल में मान्यता दी जाती थी। राजतन्त्र की शक्तियों में इस प्रकार के विखराव ने सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में होने वाले व्यापक परिवर्तनों में काफी महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस प्रकार के परिवर्तन सातवीं सदी ई. तथा इसके बाद के समय में होते रहे जिनको प्रो. आर.एस. शर्मा ने "भारतीय सामन्तवाद" का नाम दिया। जहाँ तक इस युग का संबंध है उसमें ये नवीन परिवर्तन शुरू हो रहे थे और वे बाद की शताब्दियों में ही निश्चित आकार ग्रहण कर सके।

38.10 शब्दावली

गण : एक कबीलाई गणतन्त्र को गण कहा जाता था जिसका शासन कबीले के सरदार द्वारा चलाया जाता था न कि राजा के द्वारा।

कुमारमात्य : उच्च अधिकारियों के सामान्य वर्ग को कुमारमात्य कहा जाता था।

सन्धिबिग्रहिका : विदेशी मामलों, शांति एवं युद्ध का मन्त्री।

देव्य अधिकार का सिद्धान्त : यह वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार राजा को शासन करने की शक्ति ईश्वर से प्राप्त हुई है।

भुक्ति : उच्चतम प्रशासनिक विभाजन।

सामन्त : सामन्त सरदार।

भाग : भूमि कर।

सामन्तवाद : एक ऐसी सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था जिसके अन्तर्गत ज़मींदार तथा किसानों के सम्बन्ध भूमि पर आधारित होते हैं और जिसमें ज़मींदार का यह कर्तव्य है कि उसके भूमि क्षेत्र में रहने वाले लोगों की वह सुरक्षा के दायित्व का निर्वाह करे और इसके बदले में ये निवासी गण अपने ज़मींदार की आवश्यक समयों पर सैन्य सेवाओं की पूर्ति करते हैं।

38.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) पढ़िये भाग 38.2 और 38.9 तथा फिर अपना उत्तर दीजिये।
- 2) i) √ ii) × iii) √ iv) × v) √
- 3) देखिये भाग 38.6

इकाई 39 धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

- 39.0 उद्देश्य
- 39.1 प्रस्तावना
- 39.2 ब्राह्मण मत में भक्ति का उद्भव
 - 39.2.1 अवतारवाद
 - 39.2.2 कबीलाई अनुष्ठानों को अपनाना
 - 39.2.3 मंदिरों एवं ईश्वरवाद का राजकीय संरक्षण
- 39.3 दक्षिण भारत का ओर भक्ति का प्रसार
- 39.4 दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन
- 39.5 दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन में प्रतिरोध एवं सुधार और भक्ति आंदोलन का बाद में रूपान्तरण
- 39.6 तन्त्रवाद की उत्पत्ति
 - 39.6.1 तन्त्रवाद की कुछ मुख्य विशेषताएं
 - 39.6.2 तन्त्रवाद तथा वाममार्गी धर्म
- 39.7 सारांश
- 39.8 शब्दावली
- 39.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

39.0 उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य है कि प्रारंभिक मध्य काल में धर्म के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों की मुख्य विशेषताओं का विवेचन करते हुए भक्ति विचारधारा तथा तन्त्रवाद के रूप पर भी ध्यान केन्द्रित करना। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपको ज्ञात हो जायेगा :

- ब्राह्मणिक धार्मिक व्यवस्था में भक्ति की उत्पत्तियों के विषय में,
- उत्तर-ब्राह्मणिक मत की विशेषता के चरित्र एवं सामाजिक प्रसंग के विषय में,
- प्रारंभिक मध्य काल में भक्ति के चरित्र तथा सामाजिक प्रसंग में परिवर्तन कैसे हुआ,
- राज्य की मदद ने कैसे भक्ति सम्प्रदायों को संस्थात्मक आधार प्रदान किये,
- प्रारंभिक मध्य काल में तन्त्रवाद की उत्पत्ति तथा योगदान एवं इसके चरित्र के विषय में, और
- बौद्ध मत तथा जैन मत में तन्त्रवाद ने कैसे घुसपैठ की।

39.1 प्रस्तावना

प्रारंभिक भारत के धार्मिक इतिहास के विभिन्न चरणों से आप भली भांति अवगत हैं। पुरातात्विक सामाग्रियों से स्पष्ट है कि भारतीय धर्मों के कुछ निश्चित तत्व पुरातात्विक संस्कृतियों में निहित थे जो वेदों के पूर्वगामी थे। ऋग्वेद के श्लोकों से स्पष्ट है कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार से अर्चना की जाती थी। समय के साथ-साथ ऋग्वेद की सरल प्रार्थनायें जटिल अनुष्ठानों में परिवर्तित हो गईं जिन पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व कायम हो गया और इस स्थिति में ब्राह्मणों, शासकों तथा क्षत्रियों के बीच बढ़ते घनिष्ठ सम्बन्धों को कोई भी देख सकता है। न केवल उन धुमक्कड़ नास्तिक लोगों ने जो स्थापित समाज से दूर भागते थे बल्कि बौद्ध तथा जैन धर्मों के मतावलम्बियों ने ब्राह्मणों तथा उस कठोर समाज और नैतिक व्यवस्था का विरोध किया जिसकी ब्राह्मण वकालत करते थे। इस प्रकार इस समय में ब्राह्मण धर्म विरोधी आंदोलनों का उदय हुआ (वाममार्गी या गैर सनातनी धार्मिक आन्दोलन) जिनको न केवल शासक वर्ग ने समर्थन दिया बल्कि धनी व्यापारियों तथा जनता के अनेक वर्गों से इनको समर्थन मिला। पूर्व-गुप्त काल में बौद्ध धर्म अपनी प्रगति की चरम ऊँचाइयों पर पहुँच गया, भारत की सीमाओं से बाहर इसका प्रसार हुआ और बौद्ध धर्म के केन्द्रों का व्यापक स्तर पर निर्माण हुआ। इसी बीच ब्राह्मण धर्म में भी अनेक परिवर्तन हुए और इसी के

शुभ तथा कृष्ण शासकों के युगों में इन देवताओं की लोकप्रियता में और वृद्धि हुई। शुंग काल में जीवित रहने वाले पलाजलि ने अपने महाभाष्य में शिव, स्कन्द तथा विशाल की मूर्तियों की विस्तृत एवं प्रशंसी का उल्लेख किया है। इन देवताओं के चित्रों की कृष्ण राजाओं में विशेषकर दृष्टिका के चित्रों पर चित्रित किया गया है। उत्तर-शाहीनामिक मत में अन्य धर्मों या सम्प्रदायों की परम्पराओं को अपने अन्दर ग्रहण करने की क्षमता का विकास हो गया। यह इसलिये भी आवश्यक हो गया कि "वाममूर्ति सम्प्रदायों" ने शाहीनामिक धर्म

प्रयत्न शाहीनामिक विरोधी सम्प्रदायों में कड़पा संस्कृति के समय से ही था।

अनुयायियों का प्रसार हुआ जो शिव की पूजा पूर्वकार के देवता के रूप में करते थे। पशुपत सम्प्रदाय का सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय था। वासुदेव सम्प्रदाय के साथ ही साथ पशुपतियों के मन्त्र, पशुपति या शिव के कहने लगे। ईसा की प्रारम्भिक सदियों के प्रायः आखिरी से स्पष्ट है कि मध्य भारत तथा दक्कन में वासुदेव वासुदेव के पुजारियों ने उचित धार्मिक साथ के रूप में भक्ति को स्वीकार किया और स्वयं को भागवत वाले भगवन्नाम की भाँति क्लासिकल लेखकों ने इस विषय में सन्दर्भों का उल्लेख किया है।

बीवी सदी ई. पू. के आस-पास वासुदेव सम्प्रदाय लोकप्रिय होने लगा था। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आने कार्यों: वंश भक्ति सम्प्रदाय का उदय हुआ।

स्वीकार करना पड़ा। इस धारा में वासुदेव, स्कन्द जैसे नये देवताओं का भी समावेश हो गया। इन सभी शाहीनामिक देवताओं इन्द्र एवं वक्रण के साथ-साथ नये देवताओं विष्णु एवं शिव के बढ़ते महत्व की

39.2 शाहीनामिक मत में भक्ति का उद्भव

इस इकाई में इसकी बहुत से पक्षों का विवरण किया गया है।

समाज के शासक तथा प्रमुख सम्प्रदाय धर्मों ने अपना स्वयं का सामाजिक आधार मजबूत किया।

3) समाज के शासक एवं सम्प्रदाय धर्मों ने शाहीनामिक, भिक्षुओं, धार्मिक महाशयों, संस्थाओं और दूसरों की

संस्थानात्मक आधार विकसित किया।

2) सभी धर्मों ने चाहे शाहीनामिक धर्म हो या फिर बौद्ध मत या शैव मत मंदिरों एवं मठों के रूप में अपना

पूजा करने वाले से पुर्णतया मिली रही,

1) लौकिकी शाहीनामिक व्यवस्था को शैव मत के आन्तरिक आंदोलन के साथ-साथ कवि मन्त्रों एवं सांत्विक

परन्तु इस सन्दर्भ में हमको निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना चाहिये

भारत की प्रारम्भिक मध्य काल की इस जटिल धार्मिक स्थिति में यद्यपि शाहीनामिक ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी

रूप से एकत्रित होते तथा जहाँ से शाहीनामिक विचारों का प्रसार भी प्रभावशाली ढंग से होने लगा।

वाली मुख्य सम्पर्क केन्द्र बन गई। इस युग में मंदिर ऐसे संस्थानों के रूप में बढ़ते गये जहाँ पर लोग सामूहिक

सम्भव करते। शाहीनामिकों की अग्रहार बहिष्कार शाहीनामिक विचारों का सम्पूर्ण देश में प्रसार तथा व्यवहार करने

राजवंशों से सहजता प्राप्त होती थी और वे अब भी वेदों के ज्ञान के जानने वाले थे तथा वेद-यज्ञों को

व्यवस्था थी और उनकी भी बहुत से राजवंशों से सहजता प्राप्त होती थी। इसी के साथ-साथ शाहीनामिकों की भी

कापालिक, कालभृश शाहीनामिकों के प्रमुख का विरोध करते थे। मठों के आस-पास उनकी अपनी धार्मिक

की पूजा-अर्चना तथा विधवाओं में व्यापक विभिन्नताएँ थीं। शैव मत के विभिन्न सम्प्रदाय जैसे पशुपत कोला-

देवियों) का महत्वपूर्ण स्थान हो गया। परन्तु इसके बावजूद भी शाहीनामिक धर्म में एकलपता नहीं थी। और धर्मों

देवताओं को निमित्त करने के लिए किया। इसी कारणवश गुप्त काल से शाहीनामिक धर्म में स्त्री देवताओं (शाक्ति,

शाहीनामिकों में मूर्ति पूजा का उपयोग विभिन्न शक्तियों से स्त्री-देवताओं को एकत्रित करके सामान्य पूजनीय योग्य

आकारों और अन्य प्रतीकों की भी पूजा होने लगी।

देवताओं को पूजा जाने लगी। तीन धर्मों के अन्दर भी तीर्थकारों के आकार, बहुत छोटे देवताओं, पत्थर के

चित्रों के अन्तर्गत न केवल महात्मा बुद्ध या बौद्धमत की मूर्तियों की पूजा होने लगी बल्कि बौद्ध धर्म के अनेक

और इन्होंने काफी अनुयायी आकर्षित किये इस प्रकार मूर्ति पूजा बौद्ध धर्म में भी काफी लोकप्रिय हो गई

इंधर की उपासना एक आकार के रूप में होने लगी। वैष्णव मत तथा शैव मत शाहीनामिक धर्म के ही भाग थे

महत्वपूर्ण थे कि उपासना करने वाले के द्वारा उपासक को सर्वोच्च ईश्वर माना गया और इस प्रकार सर्वोच्च

साथ-साथ वाममूर्ति सम्प्रदायों में भी परिवर्तन हुआ। धार्मिक दृष्टिकोण से होने वाले ये परिवर्तन इसलिये भी

छठी तथा सातवीं सदियों में वैष्णव धर्म का स्थान शैव धर्म ने ग्रहण कर लिया क्योंकि उत्तरी भारत में उसी राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। शैव मत के अनुयायी उद्योग शालाओं से लेकर विदेशियों तथा भारतीयों तक के सभी वर्गों में थे। राजाओं में उसके अनुयायी महिषकुल, यशोधर्मन, शशांक और हर्ष थे। प्राथमिक या शैव प्रारम्भ हुआ।

का भीम पर अवतारवाद के रूप में जन्म लेने की परम्परा का अन्वयित रूप से प्रचलन गुप्त काल में ही हुआ। विष्णु के अवतारवाद का या यों कहें कि ब्राह्मण एक मछली मानव की संकट से उधारने के लिये विष्णु धर्म था जिसके फलस्वरूप गुप्त काल में वैष्णव धर्म के अनेक केंद्रों तथा मूर्तियों कलाओं का भरपूर विकास गुप्त राजाओं ने वैष्णव तथा शैव दोनों वर्गों को संरक्षण प्रदान किया। गुप्त शासकों का व्यक्तिगत धर्म वैष्णव महाकाव्यों और पुराणों में राम तथा कृष्ण से संबंधित वर्णित कहानियों के प्रति सुन्दर नमूने पाये गये हैं। मंदिर है जो आज भी मौजूद है और अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध है। मंदिरों में उनके स्थापत्य में शैव पर्वी देवता का दसवाँतर मंदिर, निगाव का विष्णु मंदिर और भीमरा का शैव मंदिर गुप्त काल के ऐसे कने के लिये आते थे जो सांख्यिक केंद्र हो गये थे। गुप्त काल में मंदिर स्थापत्यकला की उन्नति शैली की पूर्णता के स्थल बन गये और उपासना करने वाले लोग अपने घरों का परिवर्तन करते ऐसे स्थल की ओर पूर्ण बड़ी संख्या में करते थे क्योंकि इन तीर्थों पर जाने से पुण्य की प्राप्ति होती थी। मंदिर जो देवता का घर है, के पुराणों तथा अन्य ग्रंथों में ऐसे बहते से तीर्थस्थानों के नाम दिये गये हैं जिनकी यात्रा भक्त लोग काफी और वे नगर महत्पूर्ण तीर्थस्थल थे। इसके कारण मंदिर संस्था की विशेष बढ़ावा मिला। वास्तव में उस काल पुराणों में मथुरा तथा बनारस जैसे महान धार्मिक केंद्रों की धार्मिक यात्रा के पुण्यों पर प्रकाश डाला गया है

39.2.3 मंदिरों एवं देवताओं का राजकीय संरक्षण

ऐसी बहते से कहानियों से भरपूर है जिनमें व्यक्तिगत देवताओं की ओर भक्ति की प्रीति किया। तीर्थस्थलों के रूप में कुछ कपोल कल्पनाओं के साथ समसामयिक स्वीकार कर लिया गया। इतिहास तथा पुराण अनुष्ठानों के गुणों की गुलामा वैदिक यज्ञों से की जाने लगी। आगे चलकर कबीले के पवित्र स्थलों को नये सर्वोच्चता की बनाये रखते हुए कबीलाई अनुष्ठानों की अपना लिया। समय के साथ-साथ इन कबीलाई उत्तर-ब्राह्मण धर्म की एक अन्य महत्पूर्ण विशेषता यह थी कि इसने सिद्धांतः वैदिक याज्ञिक अनुष्ठानों की

39.2.2 कबीलाई अनुष्ठानों की अपनाना

की संबंधित कर दिया गया। आस्तिक सम्प्रदायों ने वैदिक यज्ञों की अपेक्षा पूर्ण पर अधिक बल दिया। उनकी निग के रूप में पूर्ण होने लगी। बाद में शैव के साथ स्कन्द तथा शैवी-मूख वाले गांधी जैसे देवताओं इसी भांति शैव को भी वैदिक इन्द्र तथा शैव के रूप में मान लिया गया। शैव एक कबीलाई देवता थे और संबंधित कर दिया गया। इसके बाद विष्णु भावार्थ गीता वाले सांख्यिक देवता हो गये। कबीले का देवता था, ब्राह्मण नायक परशुराम और रामायण के महान नायक राम की भी विष्णु के साथ सम्प्रदायों के देवताओं की भी संबंधित कर दिया गया। जैसे कि "यारह देवता" की जो मालवा के एक गाँव के रूप में बांसुड़ी बजाने वाले देवता के संयुक्त रूप का प्रतिनिधित्व करते थे। विष्णु के साथ अन्य वस्तु से हुई। बाद में विष्णु का नाम कृष्ण के साथ ध्वनि रूप से संबंधित हो गया। कृष्ण एक योद्धा तथा महल के देवता के समान थे और ब्राह्मणिक यज्ञों के अनुसरण जिनकी उत्पत्ति किस्ती अन्धकारमय या मलिन आभिव्यक्ति के रूप में की गई। इस प्रकार वास्तुदेव को विष्णु रूप में बताया गया। विष्णु वेदों में वर्णित कम के द्वारा की जाती थी उनकी पहचान को मान्यता प्रदान की गई और उनकी पूर्ण उत्पत्ति देवता की विकास हुआ। इस संदर्भ में अवतारवाद का तात्पर्य यह था कि जिन विभिन्न देवताओं की पूर्ण विभिन्न जोगों रूप देना शुरू कर दिया और जिसके कारणवाश एकेश्वरवादी या अद्वैतवादी महान देवता की अवधारणा की नये ब्राह्मण धर्म की एक अन्य महत्पूर्ण विशेषता यह थी कि इसने अनेक स्थानीय देवताओं को अवतार का

39.2.1 अवतारवाद

की एक गांधीय शक्ति बन गई जिसकी हिंदुवाद के नाम से जाना गया। विष्णु या शैव के रूप में अभिव्यक्त हुई और भक्ति शैली-शैली-मजबूत होने लगी। भक्ति उत्तर-ब्राह्मण धर्म देवता के साथ अपना प्रत्यक्ष संबंध कायम कर सकला था। इस प्रकार देवता की एकेश्वरवाद की अवधारणा अनुष्ठान के स्थान पर भक्ति पर अपना बल देना शुरू कर दिया। भक्ति में यह अन्तर्निहित था कि उपासक की पूर्णतया देना प्रारम्भ कर दिया था। ब्राह्मण धर्म ने अन्य नये देवताओं की अपनाते के साथ-साथ वैदिक

भाषा के माध्यम से हिन्दू धर्म का प्रचार करते थे। भक्ति की अवधारणा के अनुसार श्रेष्ठतम देवता के लिये वाले तरीकों से अपनी रचनाओं को गाया। उन ब्राह्मणों की भाँति नहीं जो गोपनीय सिद्धान्तों तथा संस्कृत आनन्द करण भी था। इन गायक सन्तों ने जन साधारण की भाषा वीजल से सरलता से समझ में आ जाने कठिन से कठिन परीक्षा को अपनाया दिन प्रतिदिन के कार्य हो गये। इन गायक-सन्तों की सफलता का एक आश्चर्यजनक कार्यों को करने की प्रतियोगिता और अपने सिद्धान्तों की सत्यता को सिद्ध करने के लिए मल तथा जैन मत के विरुद्ध धार्मिक तरीके से बोलते थे। इसके परिणाम-स्वरूप सांस्कृतिक वाद विवाद, विजय आगामी दो सदियों में हुई। इस काल के गायक कवि सन्तों की मुख्य विशेषता यह थी कि वे बौद्ध इस महान उत्साहवर्धक धार्मिक धारा का चरमोत्कर्ष प्रारम्भिक सातवीं सदी ई. में हुआ और इसकी अन्तिम तथा वैष्णव सन्तों की "आलोचन" के नाम से जाना जाता था।

सम्प्रदायों के साथ वाद विवाद करते। इन कवि सन्तों में शैव मत के अनुयायियों को "नयनारी" के नाम से लिखे कई बार देश का भ्रमण किया। वे अपने सारे रास्ते गीतों को गाते चलते, नाच करते और वाममार्गी इस आंदोलन का प्रसार छोटी सटी ई. में उन जनजात कवि सन्तों द्वारा किया गया जिन्होंने धर्म प्रचार के गया जो राजकीय समर्थन के साथ जनता में लोकप्रिय होते जा रहे थे। महान परमानन्द प्राप्त करने वाला न होकर वह उन वाममार्गी सम्प्रदायों के विरुद्ध एक आक्रामक आवाज हो तथा शैव मत के दोनों वाममार्गी सम्प्रदायों की स्वीकार कर लिया। तब भक्ति आंदोलन देवता की पूजा करके शीघ्र ही तमिल उपसनावाद एक आंदोलन के रूप में उस समय विकसित हो गया जब इसने वैष्णव मत

स्कन्द का अवतार बताया गया है तथा पारम्परिक प्रजनन का सबसे पहले उदाहरण है। देवता पर लिखा गया एक प्रसिद्ध उपसना वाला ग्रंथ है और इसमें स्थानीय कबीलाई देवता मूकान की राजधानी होती थी तथा शीघ्र ही यह पांडेय राजधानी मद्रई में पहुँच गया। **बिंदू मकान अन्वयार्थ मूकान** उत्तरी द्वार बनता था। फिर इसका विकास कांचीपुरम के आसपास हुआ जो उस समय पल्लव शासकों की था। यह पारम्परिक सम्प्रदाय तमिल तथा कलहस्ति में प्रारम्भ हुआ जिनसे उस समय के तमिल देश का स्थानीय कबीलाई सम्प्रदायों (वेदान्त धरिपादल) के परमानन्द तथा उत्तर वाममार्गी विचारों के संगम की उपज भक्ति वाममार्गी का अन्तिम स्वरूप मुख्यतः तमिल उपसनावाद के प्रभाव का परिणाम था। यह उपसनावाद

39.4 दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन

वाममार्गी संस्कृति में किया उसी प्रकार का पुनः दक्षिण में भी दोहराया गया। ब्राह्मणों ने जिस प्रकार से उत्तर भारत में प्रारम्भिक धार्मिक स्वरों का रूपांतरण मंदिर को कर बनाकर प्रचार भक्ति की अवधारणा आम जनता के बीच लोकप्रिय हो गई। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि अनुदानों की दानशीलता के साधनों से महाकाव्यों तथा पुराणों की व्याख्याओं को संस्थात्मक किया गया। इस प्रारम्भ हुआ और इसका प्रसार ब्राह्मणों की बस्तियों तथा उन मंदिरों के माध्यम से भी हुआ जहाँ पर भूमि-दक्षिण भारत में कुछ विशेष देवताओं की पूजा के इर्द गिर्द भक्ति के केन्द्रीकरण का प्रसार बढ़ी तीव्रता से महाबलिपुरम के एक ही पत्थर शिला पर बने रथों तथा उन पर बने बहिर से विग्रहों के द्वारा होती है। प्रकार कांची के पल्लव शासकों ने इन दोनों वाममार्गी सम्प्रदायों को संरक्षण प्रदान किया और इसकी पुष्टि में छोटी-सातवीं ई. सदियों में शैव सनातनी सम्प्रदायों (वाममार्गी सम्प्रदायों) की लोकप्रियता के प्रतीक है। इसी मत तथा कुछ न पशुपत सम्प्रदाय की प्रचारित किया। बादामी के प्रसिद्ध पत्थर स्तम्भों पर बने विग्रह, दक्कन सम्प्रदायों की राजवंशों ने संरक्षण प्रदान किया। बलापि के प्रारम्भिक चालुक्य शासकों के मध्य कुछ भागवत शक्तिशास्त्री हो गये और इस तथा की पुष्टि इससे भी होती है कि वैष्णव मत तथा शैव मत और उनके अन्य गये। परन्तु दक्षिण भारत में अकस्मात् ही भक्ति वाले ये दोनों वाममार्गी सम्प्रदाय अन्य किसी धर्म से अधिक उनकी स्थिति की मान्यता प्रदान करते थे। परन्तु ये वाममार्गी सम्प्रदाय संगान्य जनता के मध्य लोकप्रिय हो मत के समर्थ में भी आये। राजाओं ने वैदिक अनुष्ठानों का इसलिये समर्थन किया क्योंकि ये अनुष्ठान हुआ। ब्राह्मण धर्म के साथ-साथ दक्षिण के जंग वैदिक यज्ञों तथा शैव सनातनी सम्प्रदायों विष्णु मत और शैव उत्तर भारत के सभी बड़े धर्मों जैसे कि बौद्ध धर्म, जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म का प्रसार दक्षिण की ओर

39.3 दक्षिण भारत की ओर भक्ति का प्रसार

आचार्यों को समकालीन साहित्य में पर्याप्त मात्रा में उद्धृत किया गया है। और इस साहित्य के अन्तर्गत आभिषेक, वराहमिहिर, बाण और दंडिन-संग की रचनायें भी सम्मिलित हैं।

39.6 तन्त्रवाद की उत्पत्ति

ऐसी धार्मिक क्रियायें जिनकी उत्पत्ति गैर आर्य कबीलाई लोगों के अति प्राचीन प्रजनन संस्कारों से हुई थीं उनको बाद में चलकर तन्त्रवाद के नाम से जाना गया। इसने न केवल अन्य "साम्य" सम्प्रदायों (जैन मत, बौद्ध मत, शैव मत, वैष्णव मत आदि) को प्रभावित किया बल्कि इसका उद्भव उन सम्प्रदायों के लिये चुनौती एवं प्रतिक्रिया के रूप में हुआ जिनके अन्तर्गत निहित स्वार्थ उत्पन्न हो गये थे और जो प्रारम्भिक मध्यकाल के आते आते व्यवस्था का एक अंग बन गये। स्थापित धर्म की रीतियों ने तान्त्रिक धर्म को संशोधित किया और रहस्यमयी परिभाषाओं तथा प्रतीकों के माध्यम से इनको शुद्ध करने के प्रयास किये। इसलिये आधुनिक शिक्षितवर्ग के लिये तन्त्रवाद का तात्पर्य है कि आवेष्टपूर्ण संस्कारों को प्राप्त करने के लिये पांच मकरों—मद्य (शराब), मत्स्य (मछली), मांस, मुद्रा (हाव भाव) और मैथुन का उपयोग करना आवश्यक माना गया।

39.6.1 तन्त्रवाद की कुछ मुख्य विशेषतायें

सदैव जन मानस के बीच एक ऐसा छोटा समुदाय रहता है जिनके लिये रहस्यवाद, प्रजनन के संस्कारों और रहस्यमयी कबीलाई सम्प्रदाय अनिवार्य दिखायी पड़ते हैं। ऐसे लोग जो औपचारिक साम्य धर्म से असन्तुष्ट थे वे युगों से इन रहस्यमयी संस्कारों से लगातार कुछ न कुछ जानकारी प्राप्त करते रहे और उनको अपनाते रहे।

प्रारम्भिक मध्यकाल की तान्त्रिक क्रियाओं में हम देखते हैं कि उसकी तीन महत्वपूर्ण विशेषतायें एक दूसरे से आंतरिक रूप से संबंधित थीं। ये तीनों विशेषतायें थीं महिलाओं को उच्च स्थान प्रदान किया गया, यौन सम्बंधित अनुष्ठान और कई महिला देवताओं (देवियों) की उपस्थिति।

इन सबकी उत्पत्ति का कारण कबीलाई प्रजनन संस्कारों को बताया गया है। सभी कबीलाई क्षेत्रों में महिलाओं को उच्च स्थान प्राप्त था। जिस समय से, उनको संस्कृत के ग्रंथों में शूद्रों की श्रेणी में रखा जाने लगा तब से अपना परम्परागत अनुष्ठानिक स्तर बनाये रखने के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे तान्त्रिक क्रियाओं के साधनों को अपनायें।

इसी प्रकार भारत तथा भारत से बाहर आदिम लोगों के बीच उनके धार्मिक संस्कारों को निर्मित करने में यौन संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कबीलाई लोगों द्वारा यह विश्वास किया जाता था कि इस प्रकार के संस्कारों से भूमि की उर्वराता में भी वृद्धि होती है।

तन्त्रवाद में देवियों या देवी माता का महत्व इस कारण से था कि सभी कबीलाई क्षेत्रों में देवी शक्ति या देवी माता के सम्प्रदाय का लोकप्रिय प्रचलन था। इन कबीलाई देवियों का प्रवेश ब्राह्मण धर्म में शक्ति के रूप में, बौद्ध धर्म में तारा तथा जैन धर्म में बहु संख्यक यक्षियों के रूप में हुआ। प्रारम्भिक मध्यकाल का प्राकृत भाषा का ग्रंथ गौड़वद्य काली एवं पारवती देवियों से उसी प्रकार सम्बन्धित हैं जैसे कि वे कोल एवं सुपारा कबीलों, शक्ति मातंगल (मातंग कबिले की देवी) और चाण्डपलि (चण्डाल कबिले की देवी) देवियों को जादू वाले संस्कारों, धार्मिक यौवनता और पशुबलि की एक नयी रीति के साथ उच्च सम्प्रदायों में शामिल कर लिया गया। प्रारम्भिक मध्य काल में इन सबका बहुत महत्व बढ़ गया। तन्त्रवाद का एक धर्म के रूप में उदय छठी सदी ई. में हुआ और नौवीं सदी में एक ताकतवर शक्ति बन गया।

1) तन्वाद की मुख्य विशेषताओं का विवरण 10 पंक्तियों में दीजिये।

शेष प्रश्न 2

प्राग्भिक मध्यकाल में तान्त्रिक रीति की पूजा का काफी प्रचार किया।
 था कि वे यक्षिया अपने भक्तों को दिव्य शक्तियाँ प्रदान करती थीं। जैन धर्म के यक्षिया सम्प्रदाय ने
 सिद्धांतिका और ज्वालामालिनी जैसी यक्षियाँ के सम्प्रदाय की भी महिमा की गई। ऐसा विश्वास किया जाता
 में जिनमें जादूई तथा आश्चर्य चकित तंत्रों को शामिल किया गया, तथा उनके परमावृत्ति, अविष्का,
 साध कृष् मन्त्री (जादूई मन्त्री) को विकसित किया जिससे कि उनको वृत्त किया जा सके। जैन तान्त्रिक ग्रंथों
 धर्म ने यक्षों तथा यक्षियाँ (वीथिकाओं) के देव एवं देवियों) के लिये देवालयों का निर्माण किया और इसी के
 प्राग्भिक मध्यकाल में तन्वाद ने अन्य धर्मों की भांति जैन धर्म पर भी अपना प्रभाव डाला। फलस्वरूप, जैन
 एवं बौद्ध आत्माओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

के पुराणों और अन्य साहित्य में इस पर बल दिया गया कि आदिनाथ के उपासकों को शक्तियों, बीमारियों
 (बीसरी सदी ई.) ने अपनी रचना पारंपरिक में अनुष्ठानों तथा मंदिर पूजा की महत्ता को दर्शाया। जैन धर्म
 ईसा की प्राग्भिक सदियों में जैन धर्म में भी मूर्ति पूजा एवं अनुष्ठानों की रीति प्रकट होने लगी। सामान्यतः
 है उसकी नाममात्र की सारिणी तीन खण्डों में संकलित की गई है।
 सदी ई. में लिखा गया। वज्रयान तान्त्रिक साहित्य इतना विशाल है कि लिखत भाषा में जो साहित्य पाया गया
 क्षेत्र नालन्दा का तान्त्रिक अध्ययन केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। श्री गुरुवासमान तन्त्र की सम्भवतः तीसरी
 तान्त्रिक ग्रंथों ने वजा तथा माध में तन्वाद का प्रसार किया और पाल शासकों के शासन काल में माध
 मत के रूप में विकसित कर लिया। आन्ध्र तथा कलिङ्ग प्रदेशों में तीसरी सदी ई. में लिखे जाने वाले अनेक
 मत ने स्वयं की मन्त्रवाले मत या आंध्र प्रदेश के क्षेत्रों में तान्त्रिक प्रक्रियाओं को धारण करते हुए वज्रयान
 कृष्ण काल के दौरान बौद्ध धर्म की एक शाखा महयान मत ने मूर्ति पूजा की ग्रहण कर लिया। महयान
 चलाया। उन्होंने आत्मा की परिवर्तता पर बल दिया क्योंकि इसी से निर्वाण या मुक्ति प्राप्त की जा सकती थी।
 सम्प्रदाय शैतिक मूर्तियों को नष्ट करने वाले अनुष्ठानों तथा बलि यज्ञों के विकल्प व्यवस्थित ढंग से अभियान
 के लिए भरसक प्रयास किया। बौद्ध मत तथा जैन मत ने अपने इतिहास के प्राग्भिक दौर में मूर्ति पूजा के
 प्राग्भिक बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म ने इन तान्त्रिक क्रियाओं के प्रभाव को अपने सम्प्रदायों पर पड़ने से रोकने
 लिये यौन क्रियाओं को भी करवा। इन क्रियाओं की उत्पत्ति निश्चित रूप से आदिम सम्प्रदायों से हुई थी।
 केवल ननता की ग्रहण किया अपितु ऐसा कहा जाता है कि वे शराब का सेवन करते और कामोत्तेजना के
 जैन मत एवं ब्राह्मणिक विचारधारा में भी प्रवेश किया। बौद्ध एवं महावीर के समकालीन मक्षालि घोसाल ने न
 यह देखा गया कि आदिम प्रजनन संस्कार परिवर्तन रूप में पुनः प्रकट हुए, जैसे कि तन्वाद ने बौद्ध मत,

39.6.2 तन्वाद तथा सामाजिक धर्म

(आत्मा) का काय किया।
 इस प्रकार प्राग्भिक मध्यकाल के तान्त्रिक पुरोहितों ने एक पुरोहित, चिकित्सक, ज्योतिषि एवं पशुमन
 उन्होंने भूत शक्तों एवं ग्रहों के बुरे प्रभावों को भी दूर करने वाले अनुष्ठानों को सम्प्रदाय करने का काम किया।
 बौद्धों से न केवल साम के काटने, कौड़ी मकौड़ों के काटने और अन्य बीमारियों का इलाज करते थे बल्कि
 तान्त्रिक पुरोहितों ने अनेक अनुष्ठानों पर अपने स्थानिक का दावा किया, जैसे कि वे गूँडे क्रियाओं और जड़ी
 निम्न स्थान प्रदान किया था, महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्य की सेवा की।
 तन्वाद ने, उन छोटी जातियों और महिलाओं को दीक्षा प्रदान करके जिनको ब्राह्मणिक व्यवस्था ने समाज
 का दावा अपने रहस्यवादी अनुष्ठानों तथा यौवन यौग क्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस प्रकार
 सर्वस्वता का दावा बौद्ध अनुष्ठानों के आधार पर किया तो कबीलहई पुरोहितों ने अपनी जादूई शक्तियों
 तन्वाद के पुरोहितों ने ब्राह्मण धर्म के दीक्षा वाले संस्कारों की भी चुनौती दी। अगर ब्राह्मणों ने अपनी
 के लिये एक चुनौती बना रहा।

किया परन्तु फिर भी तन्वाद संगठित एवं औपचारिक संरक्षण प्राप्त, बौद्ध धर्म और जैन धर्म
 भी राजाओं, अधिकारियों और उन उच्च वर्गों के द्वारा लिखित इसका संस्कृतिकरण किया, ने संरक्षण प्रदान
 इस वास्तविकता के बावजूद कि प्राग्भिक मध्यकाल में तन्वाद अपने मूल चरित्र को खो चुका था और इसे

वाममार्गी सम्प्रदाय : वह सभी धर्म जिन्होंने ब्राह्मण धर्म को चुनौती दी, जैसे जैन मत, बौद्ध मत, आजीविका मत आदि।

मुरुगन : प्रारम्भिक तमिलों का यह एक कवीलाई देवता था। तीसरी-चौथी सदियों ई. के आस पास ब्राह्मणों ने इसको स्कन्द कार्तिकेय का अवतार बना दिया।

नयनार : तमिल देश के प्रारम्भिक मध्य काल में शैव भक्ति सम्प्रदाय के संत थे। इनकी संख्या 63 थी और उनमें से कुछ भक्ति गीतों के महान् कवि भी थे।

निर्वाण : वाममार्गी धर्मों के अनुसार आत्मा की मुक्ति।

पशुपत : शिव या पशुपति के भक्त। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति उत्तर में हुई और इसकी कुछ विशेषतायें थीं।

शैव मत : ऐसा कोई भी सम्प्रदाय जिसके अनुसार शिव को सर्वोच्च देवता माना जाता हो। शैव मत में स्थानीय विभिन्नतायें हो सकती हैं।

तन्त्रवाद : एक ऐसा धर्म जिसकी उत्पत्ति अनार्य कवीलाई क्षेत्रों में आदिम जनन (प्रजनन)-संस्कारों से हुई।

वैष्णव मत : एक ऐसा धर्म जिसमें सर्वोच्च देवता विष्णु हो।

वेलान बेरियावल : यह सम्प्रदाय आदिम तमिल कवीलों के मुरुगन देवता पर केन्द्रित अति प्राचीन आवेगपूर्ण रहस्यवादी सम्प्रदाय था।

यज्ञ : जटिल अनुष्ठान जिनके अन्तर्गत अति खर्चीले पशुओं की वलि देना शामिल था और उत्तर वैदिक काल में प्रचलित था।

39.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) देखिए उपभाग 39.2.3
- 2) देखिये भाग 39.3 और 39.4

बोध प्रश्न 2

- 1) देखिये उपभाग 39.6.1
- 2) देखिये उपभाग 39.6.2

NOTES